ज्योतिर्धर

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की जीवनी

लेखक :
शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ
इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम.ए.

प्रकाशक :
श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

श्री वीतरागाय नम

प्रस्तावना

(लेखक.–श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अध्यक्ष वंवई–धारासभा)

स्वर्गस्थ पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के चरित्र–ग्रथ की प्रस्तावना लिखने का मुझे अवसर दिया गया इसलिए चरित्र-समिति का मै प्रथम आभार मानता हूँ। पूज्यश्री का स्वर्गवास हुआ तव मे सन् १९४२ के आन्दोलन के सवब से कारावास मे था। कुछ दिनो के वाद मुझे वहा एक पत्र भी मिला कि मै पूज्यश्री के वारे मे, मेरी जो स्मृतिया हों, वह लिख भेजू। कारावास मे होने के सवब मैं लिखने में असमर्थ था। इसका मुझे दु ख होता रहा। प्रस्तावना लिखने का मुझे मौका मिला यह मै अपना अहोभाग्य समझता हूँ। पूज्यश्री के चरणारविन्द मे श्रद्धाजलि अर्पित करने का मेरा पवित्र कर्त्तव्य है। यह कार्य मैंने बड़े हर्ष से स्वीकार कर लिया।

पूज्यश्री के प्रथम दर्शन का लाभ मुझे तव मिला जव पूज्यश्री दक्षिण प्रान्त मे पधारे और अहमदनगर शहर में ही आपका दक्षिण का प्रथम चातुर्मास सवत् १९६८ मे हुआ। मेवाड़ मालवा छोडकर पूज्यश्री दक्षिण मे पधारे तब वह किचित् व्यथित अन्त करण से ही पधारे थे। रतलाम जैन ट्रेनिग कालेज के कुछ विद्यार्थियो ने दीक्षा लेने का निश्चय करके कालेज छोड़ दिया, उसका आरोप पूज्यश्री पर कालेज के उस वक्त के कार्यवाहक और "जैन हितेच्छु" पत्र के सम्पादक श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह ने लगाया था। पूज्यश्री को इसका बडा दु:ख होता था।

पूज्यश्री हमेशा कहते थे कि तीर्थकरो की आज्ञा में रहकर उपदेश और आदेश का पूरा खयाल रखकर मै साधु-जीवन व्यतीत करता हूँ। इसी चातुर्मास मे दक्षिण के नेता शास्त्र–वेत्ता श्रीमान् बालमुकुन्दजी साहेब मुथा और श्रीमान् वाडीलालजी अहमदनगर पधारे। पूज्यश्री के रूबरू बात होने पर और पूज्यश्री का उपदेश और आदेश का शास्त्र-शुद्ध विवरण सुनने से आत्म-साक्षी से पूज्यश्री ने ऊपर के नेताओ के और अहमदनगर के श्रावको के सामने खुले दिल से जो बाते रखीं उनसे सबको सतोष हुआ और पूज्यश्री के ऊपर लगाये हुए इलजाम का परिमार्जन हुआ।

दक्षिण में पूज्यश्री पहली बार ही पधारे थे, तो भी उनके ओजस्वी-तेजस्वी व्याख्यान का जनता के ऊपर गहरा असर हुआ और पूज्यश्री के प्रति दक्षिण प्रांत का आदर और भक्तिभाव बढ गया। पूज्यश्री की ज्ञान–लालसा बहुत बड़ी थी। पूज्यश्री का जैन शास्त्रो का अध्ययन तो ऊँचे दर्जे का और मार्मिक हुआ ही था परन्तु दक्षिण मे आने पर पूज्यश्री को अच्छे-अच्छे धार्मिक ग्रन्थ और अन्य वाङ्मय पढ़ने का अवसर मिला। पूज्यश्री रामतीर्थ, विवेकानन्द, तुकाराम आदि हिन्दुधर्मीय साधुओं की विचार–धारा से परिचित हुए। इसी वक्त सस्कृत भाषा का ज्ञान, धर्मो के तुलनात्मक अभ्यास के वास्ते बहुत जरूरी आपने समझा और उस बारे में विचार होने लगा। पूज्यश्री के सामने एक बड़ा प्रश्न उपस्थित था कि अन्य धर्मीय पडितो से साधु अध्ययन कैसे करे? पूज्यश्री ने इस बारे मे बहुत विचार करके

निश्चय किया कि इस वक्त की परिस्थिति मे अन्य धर्मीय पडित के पास से भी सस्कृत, व्याकरण आदि का अध्ययन करने मे हरकत नही। आप अनेक वक्त ऐसा कहा करते थे कि पिता की जव दो आज्ञा पुत्र को होती है कि तुम अज्ञानी मत रहो और अन्य धर्मियो से विद्या ग्रहण न करो। इन दोनो आज्ञाओ का पूर्ण पालन होना शक्य नही था। स्थानकवासी संप्रदाय मे वैसे कोई साधु ही दिखते नही थे जो सस्कृत का अध्ययन अपने साधुओ को करा सकें। तब उन्होंने इन दो आज्ञाओ मे से दूसरी आज्ञा मे किंचित् दोष लगा तो भी प्रथम आज्ञा का पालन होने से स्थानकवासी समाज मे संस्कृत के अध्यापकों की परम्परा निर्माण हो जायगी यह निश्चय करके पूज्यश्री ने अपने दो शिष्य वर्तमान पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज और प. मुनिश्री घासीलालजी महाराज को सस्कृत का अध्ययन कराना शुरू किया। पूज्यश्री भी जब समय मिलता था तब स्वय सस्कृत का अध्ययन करते थे। पूज्यश्री की ज्ञान-पिपासा दुर्दम्य थी। ज्ञान मिले तो वह उसको ग्रहण करके जैन तत्त्वज्ञान से मिलान करने का यत्न करते थे। पूज्यश्री ने देखा कि उपरिनिर्दिष्ट दोनो शिष्यो का सस्कृत व्याकरण का अभ्यास पूरा हो गया, परन्तु वह कैसा हुआ इसकी जांच होना जरूरी था। इसके लिए अहमदनगर शहर मे ही उनकी परीक्षा का आयोजन किया गया। फरग्युसन कालेज के सस्कृत-अध्यापक महामहोपाध्याय वासुदेव अभ्यकर शास्त्री तथा डाक्टर गुणे शास्त्री ने लेखी और मौखिक परीक्षा ली। उसका परिणाम बहुत सतोषजनक आया। दोनों ही साधु पहले वर्ग के गुण प्राप्त कर सके। इस आयोजन की व्यवस्था का मुझे ही लाभ मिला था। यह बात विशेष रीति से कहने का तात्पर्य यह है कि जो पूज्यश्री ने उस वक्त निश्चय करके सस्कृत अध्ययन शुरू न किया होता तो आज न्यारे–न्यारे सप्रदायो मे सस्कृत का उच्च ज्ञान धारण करने वाले साधु-साध्वी दिखते है वह न होते। अब स्थानकवासी साधु-साध्वियों को अन्य धर्मीय पडितो के पास से अध्ययन करने की जरूरत ही नही।

पूज्यश्री का जैन-शास्त्रों का अगाध ज्ञान, अन्य दर्शनो का तुलनात्मक किया हुआ अध्ययन, विशाल कल्पना-शक्ति, स्फूर्तिप्रद ओजस्वी वाणी और श्रोताओं को चकित एव प्रभावित कर देने वाली व्याख्यान-शैली से आपका प्रभाव जैन-अजैन सब श्रोताओ पर बहुत गहरा पडता था। शास्त्र मे श्रावक को साधु का 'अम्मापियरो' कहा है इस तरफ लोगों का ध्यान आप खीचते थे 'संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था सजमुत्तरा' इस शास्त्र-वचन का आधार लेकर श्रावक-श्राविकाओ को उनके ऊचे पवित्र स्थान का पूरा खयाल करा देते थे। आनन्दजी श्रावक, साधु नही थे, तो भी भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को उनकी क्षमा मागने को कहा। यह भी दृष्टान्त हमेशा आप देते थे। तात्पर्य यह था कि श्रावक लोग अपना स्थान भूल गये थे। श्रावकों ने अपने कर्त्तव्य पूरे नही बजाये तो साधु-समाज पर उसका बुरा परिणाम होगा, यह बात पूज्यश्री के सामने थी। जैन स्थानकवासी सप्रदाय में भी बहुत लोग पुराने विचार के बन गये थे। वर्तमान विज्ञान-युग और जैन-धर्म का कैसे मेल मिलाना, यह बात वह समझ ही नही सकते थे। उपदेश-परम्परा भी इसी ढग की हो रही थी। उससे तरुण शिक्षित लोग धर्म से दूर जा रहे थे।

पूज्यश्री का समस्त जैन-सघ पर बडा उपकार है कि उन्होने इन युवको को जैनधर्म की श्रद्धा मे स्थिर किया। जो-जो युवक आपके व्याख्यान सुनते थे वह सब अपनी श्रद्धा दृढ़ करके ही जाते थे। मै तो स्वय जब पूज्यश्री का व्याख्यान सुनता था तो मुझे तो एक व्याख्यान से ही १५ दिन तक विचार

करने की सामग्री मिलती थी। पूज्यश्री का श्रावको का अधिकार-विवरण तो अत्यन्त श्रवणीय और विचारणीय था। उपासकदशाग सूत्र मे वर्णित आनन्दजी श्रावक के चरित्र से लोगो के दिलो में जो भूल भरे विचार थे वे आप निकाल सकते थे।

स्थानकवासी सम्प्रदायो मे ऐसी मान्यता एक वक्त जैन भाई लेकर वैठे थे कि खेती करना पाप है। पूज्यश्री ने इसका जो खुलासा किया उससे वह भ्रम दूर हो गया। खेती करने मे पाप होता तो महावीर भगवान् के दश श्रावकों में से प्रथम श्रावक आनन्दजी सैकडों हल की खेती कैसे कर सकते थे ? आनन्दजी सरीखे पुण्यवान् श्रावक और महावीर सरीखे उपदेशक होते हुए भी खेती बडे परिमाण मे होती थी तो उसका अर्थ हमको जरूर समझना चाहिए। ससार की कोई क्रिया एकान्त पाप और एकान्त पुण्य की होती नहीं। पाप-पुण्य का अल्प बहुत्व देखना चाहिये। अल्पारभ और महारम्भ का विषय तो पूज्यश्री अपने व्याख्यानो मे बारम्बार सुनाते थे। ऐसा मान लीजिये कि किसी भी आदमी ने खेती नही की, अनाज पैदा नही किया तो जनता भूखी मरेगी या मासाहारी वन जायगी। इससे तो एक जैनी खेती करे तो वह हिंसा-अहिंसा का खयाल रखकर विवेकपूर्वक ही करेगा। वह खेती विना विवेक से होने वाले खेती-कार्य से बहुत ठीक है। पूज्यश्री का वक्तव्य इस बारे में इतना प्रभावशाली होता था कि पुराने विचारवाले बहुत-से श्रावकों ने और कुछ साधुओ ने भी अपने विचार मे परिवर्तन कर लिया।

उपासकदशाग के श्रद्धालकजी के चरित्र से पूज्यश्री समाज को अन्य-अन्य छोटी-मोटी जातियो की तरफ अपने कैसे खयाल होने चाहिये, यह समझाते थे। श्रद्धालकजी कुँभार थे तो भी दश श्रावको मे उनकी गणना हुई। जैनधर्म मे जाति और कुल को महत्व नही। महत्व है मनुष्य के कर्तव्य को। पूज्यश्री देखते थे कि चारो ओर इससे विरोधी वर्ताव हो रहा था। जो जैन कुल मे जन्मे वही जैनी; यह समझ कितनी भूलभरी है यह बात पूज्यश्री अच्छी तरह से शास्त्रो के आधार से साबित करते थे। उत्तराध्ययन सूत्र का आधार लेकर पूज्यश्री फरमाते थे कि:—

कम्मुणा बम्हणो होई, कम्मुणा होइ खत्तियो।
कम्मुणा वेसियो होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

इस सूत्र का विवरण इतना सुन्दर होता था कि वह सुनकर जनता मुग्ध होती थी। जैन धर्म विश्व-धर्म है ऐसा हम कहते है, परन्तु हमारा बर्ताव बिलकुल इसके खिलाफ है। पूज्यश्री के इस वारे मे विचार बहुत दृढ थे। छूत-अछूतो का विवरण तो आप ही के मुख से सुनना आनददायक था। जैनधर्म में नही है जाति-भेद और नही बतलाया छूत-अछूतवाद। अछूतो के वास्ते जैनधर्म खुला नहीं होता तो मेतार्य मुनि और हरिकेशी मुनि, जो चाडालकुल मे जन्मे थे, वे जैनधर्म की दीक्षा कैसे ग्रहण कर सकते थे ?

परन्तु दुर्भाग्य है हमारा कि हमारी कूप-मडूक वृत्ति ने और कोई त्रुटि ने जैनियों का दुनिया मे स्थान नीचे गिरा दिया, जैनियों की सख्या दिन-पर-दिन घटती जा रही है और उनके प्रति अन्य समाजो मे जो भाव पैदा हो रहे हैं उसके जिम्मेदार हम ही हैं। हम ऐसे मार्ग पर चलते हैं कि अपने स्वार्थ के सिवाय दूसरी बात हमारी नजर में ही नहीं आती। [illegible] में हमारा वर्ताव कैसे हमदर्दी से, प्रेम से होना चाहिये यह हम सब भूल गये। जैनधर्म में कही हुई भावनाओं को हम [illegible] मे रखना जानते है। वहुत हुआ तो उनको [illegible] कान से सुन लेते हैं, परन्तु [illegible]

मैदान में हमारा बर्ताव बिलकुल स्वार्थी, लोभी वृत्ति का बन गया। इसका पूज्यश्री को बहुत रज होता था। जैनधर्म ने सबसे ऊचा स्थान चारित्र्य को दिया है और हम सम्यक्–चारित्र्य को बिलकुल भूल गये है।

पूज्यश्री का जन्म-स्थान भिल्लो के प्रांत का है। इनको बचपन से ही गरीब, अज्ञानी लोगो की तरफ बहुत वात्सल्य और प्रेम था। इन सब लोगों के साथ हम प्रेम से रहे, उनकी सेवा करे, इसमें सच्ची अहिसा है यह पूज्यश्री फरमाते थे। पूज्यश्री आनन्दजी श्रावक का उदाहरण लेकर हमेशा कहते थे कि आनंदजी जैसे राज-दरबार से सलाह मसलत लेने योग्य थे और उनकी सलाह मसलत ली जाती थी, अब कितने श्रावक हम बता सकते है जो अपने कर्तव्य से जैनधर्म के ऊचे चारित्र्य को दीपा रहे है ?

पूज्यश्री के विचार तो बहुत ही क्रांतिकारी थे। समाज उन सब विचारो को अपना नही सका यह दुर्भाग्य है। मुझे पूरा ध्यान है कि जब पूज्यश्री दक्षिण मे दूसरे वक्त लालचन्दजी महाराज को, जो दक्षिण में बीमार थे, दर्शन देने के वास्ते पधार रहे थे। पूज्यश्री अहमदनगर से करीब २५ मील दूर राहुरी ग्राम को पधारे। वहा मै और अहमदनगर के कुछ भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ गये। राहुरी मे पूज्यश्री ने जो व्याख्यान दिया, जो विचार प्रकट किये वह मै कभी भूल नही सकता। दक्षिण देश मे मारवाड आदि प्रातो से आये हुए ओसवाल जैन भाई बहुत-से छोटे-छोटे ग्रमो में बसे है और व्यापार-धधा करके गुजारा करते है। उनका कर्तव्य और बर्ताव कैसा होना चाहिये, यह पूज्यश्री ने उस वक्त फरमाया। आपने लोगो को कहा कि जिन लोगो मे आप बसते हो, जिनसे कमाई करते हो, उनके प्रति हमदर्दी, वात्सल्य, प्रेम रखना जरूरी है, “Live and let live” जीओ और जीने दो; यह तत्त्व ध्यान में रखने की जरूरत आप पूज्यश्री ने बतलाई। हम ही सुखी बनें और पडौस मे बसनेवाले लोग कैसे भी दु.ख में हो तो परवा नहीं, यह खयाल नहीं छोड़ोगे तो आपका देहातों में रहना मुश्किल हो जायगा। वह प्रश्न आज प्रत्यक्ष खडा है और देहातो की जैन-जनता सकट मे है।

पूज्यश्री ने तो शास्त्रो से उदाहरण देकर बतलाया कि जिस स्थान मे हम बसते है वहा के लोगों को अपनाने का एक मार्ग तो उन्हीं के साथ रोटी–बेटी का व्यवहार भी कर लेना है। पूज्यश्री ने शास्त्रो के दाखले देकर बतलाया कि पूर्वकाल में जब कोई श्रावक अन्य प्रांत में या देश में व्यापार निमित्त जाते थे तो वहां पर विवाहादि क्रिया भी वह कर लेते थे। यह सब विचार शास्त्र-सम्मत होंगे तो भी हमारे वर्तमान जमाने के लोगो को कहा तक अच्छे लगेंगे, वह बात न्यारी है।

श्रावको का कर्त्तव्य समझाने के वक्त पूज्यश्री उपासक दशाग के श्रावक-चरित्र का ही उपयोग करते थे। महासतकजी श्रावक के चरित्र पर से श्रावकों को कितनी सहिष्णुता रखनी चाहिये, इसका मार्मिक विवेचन आप करते थे। महासतकजी श्रावक की पत्नी मासाहारी होने पर भी उसके साथ महासतकजी का कैसा बर्ताव था और आज हम छोटी-छोटी बातो पर से लोगो को समाज मे से बाहर फैक देते हैं। यह बात पूज्यश्री अच्छी तरह समझाते थे। पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने वाले सभी युवक ऐसे ही व्याख्यान हमको चाहिये, ऐसा कहते थे और जैन धर्म पर भी अपनी श्रद्धा स्थिर बना लेते थे। पूज्यश्री कोई भी नई बात हो जो जैन तत्वो से मिलती हो और सयमी जीवन बिताने मे उपयोगी हो उसको खुशी से ग्रहण करते थे।

महात्मा गाधी ने खादी का प्रचार हिन्दुस्तान मे सन् १९२० से किया। महात्माजी की खादी की तरफ देखने की दृष्टि आर्थिक और राजकीय थी, परन्तु पूज्यश्री ने उसमे अहिंसा का पालन देखा। चरवी लगाये हुए मिल के कपडों का उपयोग करने से खादी का उपयोग करने मे अहिंसा का पालन ज्यादा होता है। यह देखकर पूज्यश्री ने खादी का ही कपड़ा लेना मजूर किया और पूज्यश्री व्याख्यानो मे भी श्रावकों को उसका उपदेश बहुत जोर से करने लगे। आपके उदाहरण से कुछ साधुओ ने भी खादी का इस्तेमाल करने का निश्चय किया और श्रावको ने भी उस वारे मे प्रत्याख्यान किये।

पूज्यश्री व्याख्यानो मे गोपालन का बहुत महत्व समझाते थे। चार गोकुल रखनेवाले कहाँ आनंदजी श्रावक और कहाँ मोल का दूध लेकर काम चलाने वाले वर्तमान श्रावक ? हिन्दुस्थान सरीखे खेती प्रधान देश मे गोपालन की कितनी जरूरत है यह तो कहने की जरूरत ही नही। आपके इस विषय पर जो प्रभावी प्रवचन होते थे उनका ही परिणाम घाटकोपर की जीवदया संस्था है। इस संस्था ने गत बीस वर्ष में ८००० गाय-भैसो को जीवन दिया और २५ मन शाम और सुवह अच्छा निखालस दूध लोगों को मिलने की व्यवस्था हुई है। मृत्यु-भोज, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, व्याजखोरी आदि सामाजिक विषयों पर आपके विचार समाजोन्नति के पोषक और मनुष्य जीवन को नीतिमय वनाने मे बहुत मददगार होते थे।

पूज्यश्री बालब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य का पालन जीवन सफल वनाने मे अत्यन्त जरूरी है और जैन-शास्त्रो के अनुसार मनुष्य क्रमशः किस प्रकार ब्रह्मचर्य द्वारा उत्कर्ष कर सकता है इस विषय पर आपका विवेचन प्रभावी होता था।

पूज्यश्री का विभूतिमत्व बहुत बड़ा था। आपके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज हमेशा चमकता था। आपके गुणों के आकर्षण से हिन्दुस्थान के बड़े-बड़े नेताओं ने आपके दर्शन का लाभ लिया। अहमदनगर में आप विराजते थे उस वक्त लोकमान्य तिलक स्थानक मे पधारे और आपश्री से वार्तालाप किया। राजकोट मे आप विराजते थे उस वक्त महात्मा गाधी और सरदार बल्लभभाई पटेल ने आपके दर्शन किये। इसके अलावा विट्ठल भाई पटेल, जमनालाल बजाज, विनोबा भावे, ठक्कर बाप्पा, रामेश्वरी नेहरू, कस्तूरबा गाधी, सेनापति बापट आदि बहुत से देश और समाज के नेताओ ने आपके दर्शन का लाभ लेकर परिचय किया।

पूज्यश्री दस प्रकार के धर्म पर जब व्याख्यान फरमाते थे तब देशधर्म क्या है और उसके प्रति हमारे जैनियों के क्या खयाल होने चाहिये इसका सुन्दर विवरण आप फरमाते रहे।

स्थानकवासियो में से अलग हुये तेरापथी लोग शास्त्र-विरुद्ध और दुनिया की समझ के खिलाफ प्ररूपणा कर रहे हैं और उससे जैनधर्म के बारे मे लोगो को भ्रम और गैरसमझ पैदा होती है। इसलिये आप उन मतो का हमेशा खडन करने तो तैयार थे। आपने उसके वास्ते थली में विहार करके बड़ा कष्ट भी उठाया और इस विषय में 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पा-विचार' यह दो पुस्तकें लिखी है। आपने देश के न्यारे-न्यारे प्रातो मे विहार करके उपदेश द्वारा उपकार किया है। दो वक्त आपने दक्षिण देश मे विहार किया। बबई से लेकर पूरे महाराष्ट्र सतारा तक को आपने पुनीत किया। काठियावाड और गुजरात को भी आपने दर्शन दिये। उत्तर मे दिल्ली तक आपने देश स्पर्शा है। मेवाड़, मालवा, मारवाड़ और मध्यभारत यह तो आपका कार्य-क्षेत्र ही था।

मैदान में हमारा बर्ताव बिलकुल स्वार्थी, लोभी वृत्ति का बन गया। इसका पूज्यश्री को बहुत रज होता था। जैनधर्म ने सबसे ऊचा स्थान चारित्र्य को दिया है और हम सम्यक्–चारित्र्य को बिलकुल भूल गये हैं।

पूज्यश्री का जन्म-स्थान भिल्लो के प्रात का है। इनको बचपन से ही गरीब, अज्ञानी लोगो की तरफ बहुत वात्सल्य और प्रेम था। इन सब लोगो के साथ हम प्रेम से रहे, उनकी सेवा करे, इसमें सच्ची अहिसा है यह पूज्यश्री फरमाते थे। पूज्यश्री आनन्दजी श्रावक का उदाहरण लेकर हमेशा कहते थे कि आनदजी जैसे राज-दरबार से सलाह मसलत लेने योग्य थे और उनकी सलाह मसलत ली जाती थी, अब कितने श्रावक हम बता सकते है जो अपने कर्तव्य से जैनधर्म के ऊचे चारित्र्य को दीपा रहे है ?

पूज्यश्री के विचार तो बहुत ही क्रातिकारी थे। समाज उन सब विचारो को अपना नही सका यह दुर्भाग्य है। मुझे पूरा ध्यान है कि जब पूज्यश्री दक्षिण में दूसरे वक्त लालचन्दजी महाराज को, जो दक्षिण मे बीमार थे, दर्शन देने के वास्ते पधार रहे थे। पूज्यश्री अहमदनगर से करीब २५ मील दूर राहुरी ग्राम को पधारे। वहा मैं और अहमदनगर के कुछ भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ गये। राहुरी में पूज्यश्री ने जो व्याख्यान दिया, जो विचार प्रकट किये वह मै कभी भूल नही सकता। दक्षिण देश मे मारवाड आदि प्रातो से आये हुए ओसवाल जैन भाई बहुत-से छोटे-छोटे ग्रमो में बसे है और व्यापार-धधा करके गुजारा करते है। उनका कर्तव्य और बर्ताव कैसा होना चाहिये, यह पूज्यश्री ने उस वक्त फरमाया। आपने लोगो को कहा कि जिन लोगों में आप बसते हो, जिनसे कमाई करते हो, उनके प्रति हमदर्दी, वात्सल्य, प्रेम रखना जरूरी है, "Live and let live" जीओ और जीने दो; यह तत्त्व ध्यान मे रखने की जरूरत आप पूज्यश्री ने बतलाई। हम ही सुखी बनें और पड़ौस में बसनेवाले लोग कैसे भी दुःख मे हो तो परवा नही, यह खयाल नहीं छोड़ोगे तो आपका देहातों में रहना मुश्किल हो जायगा। वह प्रश्न आज प्रत्यक्ष खड़ा है और देहातो की जैन-जनता सकट मे है।

पूज्यश्री ने तो शास्त्रो से उदाहरण देकर बतलाया कि जिस स्थान में हम बसते है वहा के लोगों को अपनाने का एक मार्ग तो उन्हीं के साथ रोटी–बेटी का व्यवहार भी कर लेना है। पूज्यश्री ने शास्त्रो के दाखले देकर बतलाया कि पूर्वकाल मे जब कोई श्रावक अन्य प्रात में या देश मे व्यापार निमित्त जाते थे तो वहा पर विवाहादि क्रिया भी वह कर लेते थे। यह सब विचार शास्त्र-सम्मत होंगे तो भी हमारे वर्तमान जमाने के लोगों को कहा तक अच्छे लगेगे, वह बात न्यारी है।

श्रावकों का कर्त्तव्य समझाने के वक्त पूज्यश्री उपासक दशाग के श्रावक-चरित्र का ही उपयोग करते थे। महासतकजी श्रावक के चरित्र पर से श्रावकों को कितनी सहिष्णुता रखनी चाहिये, इसका मार्मिक विवेचन आप करते थे। महासतकजी श्रावक की पत्नी मासाहारी होने पर भी उसके साथ महासतकजी का कैसा बर्ताव था और आज हम छोटी-छोटी बातो पर से लोगो को समाज मे से बाहर फैक देते है। यह बात पूज्यश्री अच्छी तरह समझाते थे। पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने वाले सभी युवक ऐसे ही व्याख्यान हमको चाहिये, ऐसा कहते थे और जैन धर्म पर भी अपनी श्रद्धा स्थिर बना लेते थे। पूज्यश्री कोई भी नई बात हो जो जैन तत्वो से मिलती हो और सयमी जीवन बिताने में उपयोगी हो उसको खुशी से ग्रहण करते थे।

महात्मा गाधी ने खादी का प्रचार हिन्दुस्तान मे सन् १९२० से किया। महात्माजी की खादी की तरफ देखने की दृष्टि आर्थिक और राजकीय थी, परन्तु पूज्यश्री ने उसमें अहिंसा का पालन देखा। चरबी लगाये हुए मिल के कपडो का उपयोग करने से खादी का उपयोग करने मे अहिंसा का पालन ज्यादा होता है। यह देखकर पूज्यश्री ने खादी का ही कपड़ा लेना मजूर किया और पूज्यश्री व्याख्यानों में भी श्रावको को उसका उपदेश बहुत जोर से करने लगे। आपके उदाहरण से कुछ साधुओं ने भी खादी का इस्तेमाल करने का निश्चय किया और श्रावको ने भी उस बारे मे प्रत्याख्यान किये।

पूज्यश्री व्याख्यानो मे गोपालन का बहुत महत्व समझाते थे। चार गोकुल रखनेवाले कहाँ आनदजी श्रावक और कहाँ मोल का दूध लेकर काम चलाने वाले वर्तमान श्रावक ? हिन्दुस्थान सरीखे खेती प्रधान देश मे गोपालन की कितनी जरूरत है यह तो कहने की जरूरत ही नहीं। आपके इस विषय पर जो प्रभावी प्रवचन होते थे उनका ही परिणाम घाटकोपर की जीवदया संस्था है। इस संस्था ने गत बीस वर्ष में ८००० गाय-भैसों को जीवन दिया और २५ मन शाम और सुबह अच्छा निखालस दूध लोगों को मिलने की व्यवस्था हुई है। मृत्यु-भोज, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, ब्याजखोरी आदि सामाजिक विषयों पर आपके विचार समाजोन्नति के पोषक और मनुष्य जीवन को नीतिमय बनाने में बहुत मददगार होते थे।

पूज्यश्री बालब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य का पालन जीवन सफल बनाने में अत्यन्त जरूरी है और जैन-शास्त्रो के अनुसार मनुष्य क्रमशः किस प्रकार ब्रह्मचर्य द्वारा उत्कर्ष कर सकता है इस विषय पर आपका विवेचन प्रभावी होता था।

पूज्यश्री का विभूतिमत्व बहुत बडा था। आपके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज हमेशा चमकता था। आपके गुणों के आकर्षण से हिन्दुस्थान के बड़े-बड़े नेताओं ने आपके दर्शन का लाभ लिया। अहमदनगर मे आप विराजते थे उस वक्त लोकमान्य तिलक स्थानक में पधारे और आपश्री से वार्तालाप किया। राजकोट मे आप विराजते थे उस वक्त महात्मा गांधी और सरदार बल्लभभाई पटेल ने आपके दर्शन किये। इसके अलावा विट्ठल भाई पटेल, जमनालाल बजाज, विनोबा भावे, ठक्कर बाप्पा, रामेश्वरी नेहरू, कस्तूरबा गाधी, सेनापति बापट आदि बहुत से देश और समाज के नेताओं ने आपके दर्शन का लाभ लेकर परिचय किया।

पूज्यश्री दस प्रकार के धर्म पर जब व्याख्यान फरमाते थे तब देशधर्म क्या है और उसके प्रति हमारे जैनियों के क्या खयाल होने चाहिये इसका सुन्दर विवरण आप फरमाते रहे।

स्थानकवासियों में से अलग हुये तेरापथी लोग शास्त्र-विरुद्ध और दुनिया की समझ के खिलाफ प्ररूपणा कर रहे है और उससे जैनधर्म के बारे मे लोगो को भ्रम और गैरसमझ पैदा होती है। इसलिये आप उन मतो का हमेशा खडन करने तो तैयार थे। आपने उसके वास्ते थली मे विहार करके बडा कष्ट भी उठाया और इस विषय में 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पा-विचार' यह दो पुस्तकें लिखी है। आपने देश के न्यारे-न्यारे प्रातों में विहार करके उपदेश द्वारा उपकार किया है। दो वक्त आपने दक्षिण देश मे विहार किया। बबई से लेकर पूरे महाराष्ट्र सतारा तक को आपने पुनीत किया। काठियावाड़ और गुजरात को भी आपने दर्शन दिये। उत्तर मे दिल्ली तक आपने देश स्पर्शा है। मेवाड़, मालवा, मारवाड और मध्यभारत यह तो आपका कार्य-क्षेत्र ही था।

जब दक्षिण मे आप विराजते थे तब उस वक्त के पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज जो बड़े भाग्यवान् आत्मार्थी साधु थे, उन्होने सब बातो का विचार करके आपको ही उत्तराधिकारी चुना और आपको युवाचार्य बनाने का निश्चय किया। इस बारे में जब अहमदनगर जिले के हिवडा ग्राम मे आप विराजते थे वहा पत्र तार द्वारा और समक्ष टेप्युटेशन लेकर कुछ श्रावक पधारे। तब आपने बहुत विचार किया और पूज्यश्री को (पू. श्रीलालजी म. को) मिले बिना नक्की कहने से आपने इन्कार किया। युवाचार्य सरीखे बड़े मान की पदवी घर चल आती है तब भी आप स्वीकार करने में क्यों आनाकानी करते थे ? इसका खुलासा पूज्यश्री के विचारो से जो परिचित हो वही कर सकते हैं। युवाचार्य होना और पूज्य बनना यह बडा जिम्मेदारी का कार्य होता है। श्रीहुकमीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय जैसे बड़े सम्प्रदाय का, जिसमें साधु-साध्वियो की सख्या काफी है, बोझ अपने कधो पर लेने से अपनी आत्मा की उन्नति में किंचित् बाधा उपस्थित होती है। यही बाधा आपको खटकती थी और इसी कारण आपको स्वीकृति देने में देरी लगी।

पूज्यश्री ने यह बोझ उठा तो लिया, पर जहाँ तक मै पूज्यश्री के विचारो को जान सका, मैं कह सकता हूँ कि इस बोझ के कारण आपके दिल मे हमेशा यही भाव रहा कि आत्मा की उन्नति के वास्ते जितना ज्यादा समय देना चाहते थे, उतना नहीं दे सके।

न्यारे-न्यारे सम्प्रदाय होने की अपेक्षा एक ही महावीर का सम्प्रदाय हो तो बहुत अच्छा, यह आपके विचार तो सुपरिचित है। इसी कारण से अजमेर मे सन् १९३३ मे साधु-सम्मेलन का जो बडा आयोजन हुआ, उसमे आप प्रेक्षक और सलाहकार के रूप मे ही हाजिर हुए। आपको इस बड़े आयोजन की फलश्रुति समाधानकारक नही दीखती थी। परन्तु इतना होते हुए भी जब साधु-सम्मेलन के निर्णयो को कान्फरेस के अजमेर-अधिवेशन मे स्वीकार किया गया तब उसका पूरा अमल पूज्यश्री ने किया और समाज की उन्नति के प्रति अपने प्रेम का सबूत दिया।

स्थानकवासी सम्प्रदायो मे श्रीहुकमीचन्दजी महाराज का सम्प्रदाय एक बडा सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में ऊची पदवी के अनेक साधु हुए है। उन सब मे सितारे सरीखे आप चमकते हैं, यह कहने मे कुछ अतिशयोक्ति नही है, ऐसा मैं मानता हूँ।

बड़े-बड़े व्याख्यानी साधुओं के जब चातुर्मास होते हैं तब दर्शन और श्रवण के उत्सुक श्रावको की भीड़ लगती है। हजारों की मेदनी एकत्र होती है और इन सबके खाने, पीने, रहने की व्यवस्था करना एक बडा मुश्किल काम हो जाता है। बडे शहरो मे इन बातो की सुविधा मिल जाती है और वहा के लोग प्राय· ज्यादा पैसे वाले होने से सब काम सफलतापूर्वक सम्पन्न कर डालते है; मगर इसका परिणाम यह हुआ कि व्याख्यानी भाग्यवान् साधुओ के चातुर्मास छोटे गावो मे होना कठिन हो गया। इस बारे मे पूज्यश्री के विचार बिलकुल निश्चित थे। आप तो हमेशा फरमाते थे कि शहरों की अपेक्षा ग्रामो मे साधुओ को चातुर्मास में शाति ज्यादा रहती है औरअध्ययन, अध्यापन औरध्यान एवं आत्मोन्नति की तरफ ज्यादा लक्ष्य दे सकते है। इससे पूज्यश्री जहां तक बन सके, ग्रामो मे ही चातुर्मास करना पसन्द करते थे। परन्तु समाज की वर्त्तमान हालत देखते शहरो मे आपको विराजना होता था। परन्तु आप इस विषय पर फर्माते हुए स्पष्ट कहते थे कि मूर्त्तिपूजक जैन यात्री जब यात्रा के वास्ते जाते अथवा हिन्दुस्तान के लोग यात्रा के वास्ते दूर-दूर जाते थे तब कौन उनके खान-पान का इन्तजाम करता था ?

ठहरने के लिए जगह की व्यवस्था हो गई तो दूसरी सब व्यवस्था दर्शनार्थ आने वालों को कर लेनी चाहिए। इस विचार की तरफ समाज ने अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया। इस प्रथा के अमल में आने से छोटे-मोटे सब ग्रामों को सब साधु-साध्वियों का सरीखा लाभ शक्य हो जाएगा।

पूज्यश्री का जीवन-चरित इतना गहन और विशाल है कि उसके न्यारे-न्यारे पहलू का, प्रस्तावना सरीखे अल्प स्थान में विचार करना शक्य नहीं और यह करने में मैं अपने को समर्थ नहीं समझता। यह प्रस्तावना तो पूज्यश्री के प्रति मेरे दिल मे जो भाव थे और जो स्फूर्ति मैंने आपके उपदेश से पाई, उससे कुछ अश में अनऋण होने की दृष्टि से ही लिखने का साहस किया है।

पूज्यश्री के जीवन-चरित से जैन-समाज के चारों तीर्थो को स्फूर्ति-सन्देश मिले और समाज को अपना जीवन सफल बनाने में यह चरित्र सहायभूत होगा, यह मेरा विश्वास है।

पूज्यश्री के जीवन-चरित की प्रस्तावना में पूज्यश्री के विचारो को मैं पूरी तरह दर्शित नही कर सका। अगर कुछ स्थलों पर अनजान में समझफेर पैदा करने वाला लेखन मेरे हाथ से हुआ हो तो मैं सब चतुर्विधि संघ की क्षमा चाहता हूँ।

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्तो मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ ण केणई॥

श्रावण शु. ६
संवत्सरी
ता. २०-८-४७

चतुर्विध संघ का सेवक
कुं. सो. फिरोदिया

प्रकाशकीय

परम श्रद्धेय युगदृष्टा, क्रान्तदर्शी, ज्योतिर्धर आचार्य पूज्य श्रीजवाहरलालजी म. सा. भारतीय सत–परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आपका जन्म वि. स. १९३२ में कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को थादला (म प्र.) मे हुआ था। 16 वर्ष की अवस्था में आपने जैन भागवती दीक्षा अगीकृत की और सवत् २००० मे आषाढ शुक्ला अष्टमी को भीनासर (बीकानेर) में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। आपकी दृष्टि बडी उदार, प्रगतिशील तथा विचार विश्व–मैत्रीभाव व राष्ट्र चेतना से ओतप्रोत थे। आपने भारतीय स्वाधीनता–आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिसक प्रतिरोध, खादी–धारण, गो–पालन, अछूतोद्धार, व्यसन–मुक्ति जैसे रचनात्मक कार्यक्रमो मे सहयोगी बनने की जनमानस को प्रेरणा दी और देहज प्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, मृत्युभोज, सूदखोरी जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ लोकमानस को जागृत किया। आपके राष्ट्रधर्मी, क्रान्तदृष्टा, आत्मलक्षी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, लोकमान्य तिलक, प. मदनमोहन मालवीय, सरदार बल्लभ भाई पटेल जैसे महान् राष्ट्रनेता आपके सम्पर्क में आए। आप प्रखर वक्ता और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे। 'जवाहर किरणावली' नाम से ५१ भागो मे प्रकाशित आपका प्रेरणादायी विशाल साहित्य विश्व मानवता की अमूल्य निधि है। वह ओज, शक्ति और चरित्र निर्माण का जीवन साहित्य है। इस साहित्य से प्रेरणा लेकर हजारो लोगो ने अपना उत्थान किया है। ऐसे महान् ज्योतिर्धर क्रान्तदर्शी आचार्य का जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व न केवल जैन समाज के लिए वरन् सम्पूर्ण मानव समाज के लिए सतत प्रेरणा का स्रोत है।

साहित्य की विभिन्न विधाओ मे जीवनी का अपना विशिष्ट स्थान है। इसमे चरित्र नायक की छोटी–छोटी बातों और घटनाओ का उसके अन्तर और बाह्य व्यक्तित्व का कलात्मक निरूपण किया जाता है। नैतिक भावना और चरित्र निर्माणकारी चेतना उद्बुद्ध करने की दृष्टि से महापुरुषो की प्रेरणादायी जीवनियो के अध्ययन का अपना विशिष्ट महत्व है। महान् पुरुषों के जीवन की छोटी–छोटी महत्वपूर्ण घटनाओ द्वारा किशोर वर्ग के छात्रो के मानस–पटल पर जीवन निर्माण के जिन सूत्रो की छाप पड़ती है, वह वड़े–वड़े धार्मिक और सैद्धान्तिक ग्रन्थो का अध्ययन करके नही प्राप्त की जा सकती। पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की जीवन गाथा इस दृष्टि से आबाल वृद्धो के लिए प्रेरणादायी और मार्गदर्शक है।

आचार्य श्री की जीवनी का लेखन कार्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं. शोभाचन्दजी भारिल्ल एवं प. इन्द्रचन्दजी शास्त्री द्वारा आचार्य श्री की विद्यमानता में ही प्रारंभ कर दिया गया था। पर उसके सम्पन्न होने के पूर्व ही आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया था। इस पर भी जीवनी लेखन का कार्य चालू रहा और सं. २००४ मे श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर द्वारा उसका प्रकाशन किया गया।

यहा उल्लेख अप्रासंगिक नहीं कि राष्ट्रीयता, समन्वित आत्मधर्म के प्रणेता, बहुआयामी प्रभावक व्यक्तित्व के धनी, प्रज्ञा पुंज एव युग प्रवर्तक आचार्य श्री की जीवनी प्रकाशित कराने का आद्य श्रेय हितकारिणी संस्था के तत्कालीन मंत्री समाजभूषण सेठ श्री चम्पालालजी बाठिया को है। आपकी सूझबूझ, दूरदर्शिता एव गुरु–निष्ठा से ही यह कीर्तिमानीय कार्य मूर्त रूप ले सका। यहीं नहीं, श्रीमद् जवाहराचार्य की वाणी को कालजयी बनाने हेतु आपने अथक प्रयास कर उनके व्याख्यानों पर आधारित 'जवाहर किरणावली' ग्रन्थ का प्रकाशन भी कराया। इसके 35 भाग आचार्यदेव की विद्यमानता में ही प्रकाशित हो गये तथा जवाहर विद्यापीठ के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में यह संख्या 50 कर दी गई।

जीवनी के चार अध्यायो में आचार्य श्री के प्रारम्भिक जीवन, मुनि पर्याय, आचार्यत्व एव जीवन सध्या का विस्तृत एव रोचक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्ररिशिष्ट मे विभिन्न आचार्यो, सन्त मुनिराजो, राजा–महाराजाओ, सामाजिक कार्यकर्ताओ एवं विद्वानों की श्रद्धाजलियां सकलित की गई है। अन्त में कतिपय सैद्धान्तिक चर्चाए भी समाविष्ट है, जिनसे ग्रन्थ की महत्ता एव उपादेयता में वृद्धि हुई है।

द्वितीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1982 में स्व. सेठ श्री जुगराज जी धोका (मद्रास) के अर्थ सौजन्य से श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर द्वारा हुआ था परन्तु इसकी निरन्तर बढ़ती हुई मांग के कारण तृतीय सस्करण श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर (बीकानेर) द्वारा प्रकाशित कराया जा रहा है।

प्रस्तुत सस्करण आदर्श समाजसेवी, प्रतिष्ठित व्यवसायी एवं सघनिष्ठ सुश्रावक श्री सूरजमल जी पीचा के अर्थ–सौजन्य से हो रहा है। मूलत. गंगाशहर निवासी श्री पीचा का व्यवसाय–क्षेत्र दिल्ली, विजयवाडा, मद्रास आदि है। न्यासी–परम्परा के प्रतीक रूप मे आप सामाजिक/धार्मिक/शैक्षणिक/ सांस्कृतिक कार्यो में सदैव सक्रियता एवं उत्साहपूर्वक अग्रणी रहते है तथा उदात्त दानशीलता के अनुशीलन मे मुक्तहस्त से प्रभूत दान देकर पुण्यार्जन करते रहे हैं।

अपने पितृश्री– स्व. श्री सुखलाल जी, मातुश्री– श्रीमती कस्तूराबाई तथा चाचाजी श्री महेशदासजी से प्राप्त सद्–सस्कारों को आपने निरन्तर वृद्धिगत तो रखा ही, इन्हे अग्र–पीढ़ी को भी कुशलतापूर्वक सौंपा है। ऐसे सदाचारी, सुसस्कृत, शासननिष्ठ एवं दानशील परिवार से समाज गौरवान्वित एव आशान्वित है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी आदर्श सुश्राविका है जो आपके पुण्यार्थ कार्यो की प्रेरिका व सहकारी रहती है। आपके सुपुत्र–द्वय (श्री किरणचद जी श्रीमती अरुणा जी एव श्री मनोज कुमार जी) भी परिवार की यशस्वी दानशीलता के साक्षात् स्वरूप हैं और सामाजिक/

धार्मिक गतिविधियों मे सक्रिय सचेष्ट है। आपकी सुपुत्री श्रीमती शान्ता जी (धर्मपत्नी श्री पूनमचद जी दुगड़) एक धर्मप्रिय महिलारत्न हैं और संघ--शासन समर्पण की प्रतीक भी।

श्री पींचा के प्रति संस्था आभारी है और उन्हें साधुवाद देती है।

श्री जवाहर किरणावलियों के प्रकाशत हेतु समाजसेवी, उत्साही कार्यकर्त्ता श्री खेमचन्दजी छल्लाणी गंगाशहर की अहम भूमिका रही है। एतदर्थ संस्था आभार प्रकट करती है।

प्रस्तुत जीवन चरित्र के उत्तम मुद्रण, परामर्श सुझाव देने के वास्ते हम श्री दीपचन्द सांखला, साखला प्रिन्टर्स, बीकानेर के भी आभारी हैं।

आशा है, इस जीवन चरित्र के पठन से पाठको को नई स्फूर्ति, शक्ति और प्रकाश मिलेगा, इसी मगल भावना के साथ

निवेदक

बालचन्द सेठिया
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मंत्री

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर (बीकानेर)

विषय-सूची

परिशिष्ट

श्रद्धांजलियाँ

जवाहर-साहित्य

(श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर द्वारा प्रकाशित)

दिव्य दान	किरण १	उदाहरण माला भाग २	किरण २६
दिव्य जीवन	किरण २	उदाहरण माला भाग ३	किरण २७
दिव्य सन्देश	किरण ३	नारी जीवन	किरण २८
जीवन धर्म	किरण ४	अनाथ भगवान भाग १	किरण २९
सुबाहु कुमार	किरण ५	अनाथ भगवान भाग २	किरण ३०
रूक्मिणी विवाह	किरण ६	गृहस्थ धर्म भाग १	किरण ३१
जवाहर स्मारक	किरण ७	गृहस्थ धर्म भाग २	किरण ३२
सम्यक्त्व पराक्रम भाग १	किरण ८	गृहस्थ धर्म भाग ३	किरण ३३
सम्यक्त्व पराक्रम भाग २	किरण ९	सती राजमती	किरण ३४
सम्यक्त्व पराक्रम भाग ३	किरण १०	सती मदनरेखा	किरण ३५
सम्यक्त्व पराक्रम भाग ४	किरण ११	हरिश्चन्द्र तारा	किरण ३६
सम्यक्त्व पराक्रम भाग ५	किरण १२	सकडाल पुत्र	किरण ३७
धर्म और धर्मनायक	किरण १३	जवाहर ज्योति	किरण ३८
राम वन गमन भाग १	किरण १४	जवाहर विचार सार	किरण ३९
राम वन गमन भाग २	किरण १५	सुदर्शन चरित्र	किरण ४०
अजना	किरण १६	सती वसुमति भाग १	किरण ४१
पाण्डव चरित्र भाग १	किरण १७	सती वसुमति भाग २	किरण ४२
पाण्डव चरित्र भाग २	किरण १८	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग १	किरण ४३
बीकानेर के व्याख्यान	किरण १९	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग २	किरण ४४
शालिभद्र चरित्र	किरण २०	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ३	किरण ४५
मोरवी के व्याख्यान	किरण २१	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ४	किरण ४६
सम्वत्सरी	किरण २२	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ५	किरण ४७
जामनगर के व्याख्यान	किरण २३	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ६	किरण ४८
प्रार्थना प्रबोध	किरण २४	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ७	किरण ४९
उदाहरण माला भाग १	किरण २५	भगवती सूत्र पर व्याख्यान भाग ८	किरण ५०

नोट - पूरा सैट लेने पर वर्तमान मूल्य ७६६/- रु मे से २५% कमीशन वाद देकर रु ५७०/- मे दिया जावेगा।

प्रातःस्मरणीय परमप्रतापी जैनाचार्य पूज्यश्री १००८
श्री जवाहर लालजी महाराज
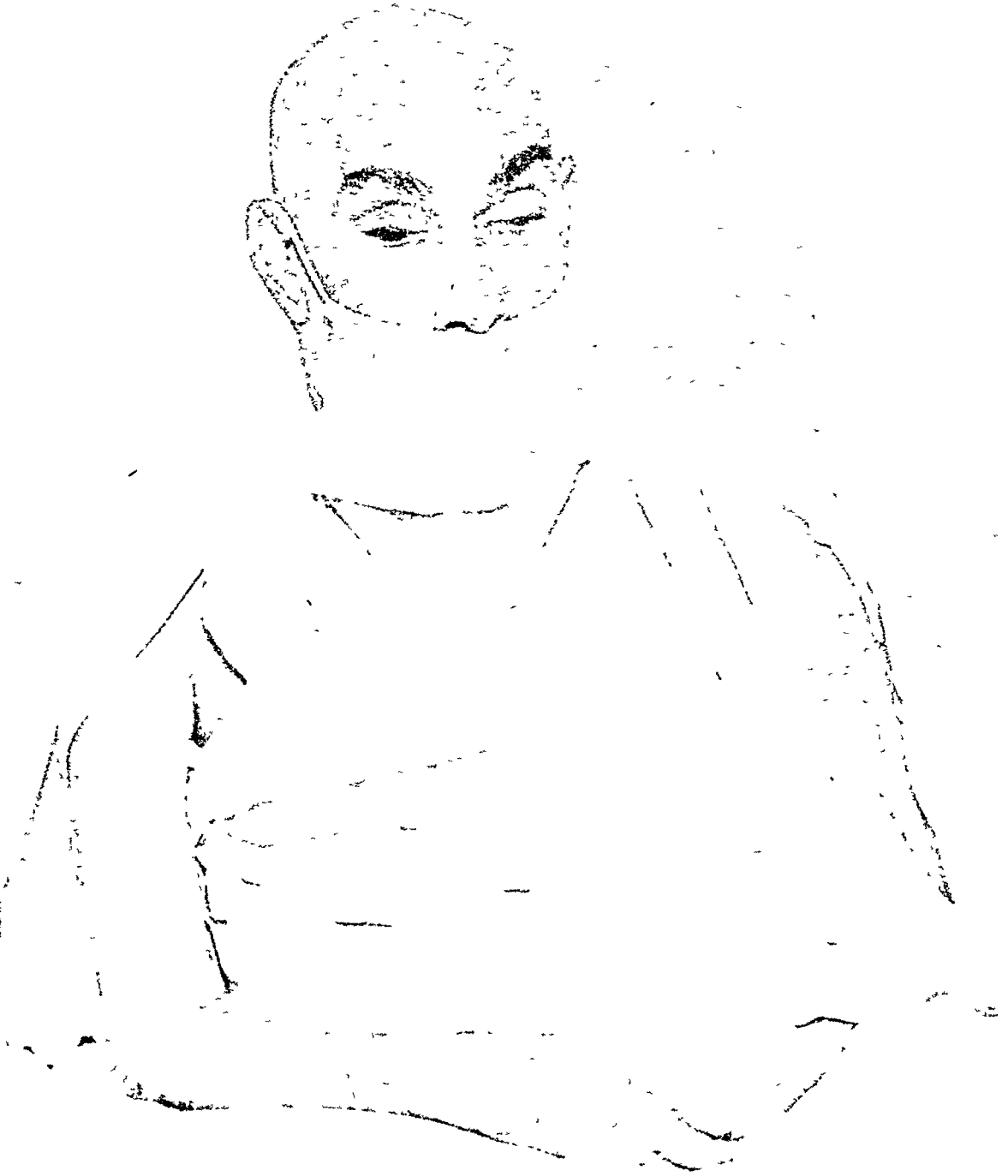
संथारा सीझने के वाद

दीक्षा—मार्गशीर्ष शु. द्वितीया १९४८

जन्म—कार्तिक शु. चतुर्थी १९३२

स्वर्गवास—आषाढ़ शु. अष्टमी २०००
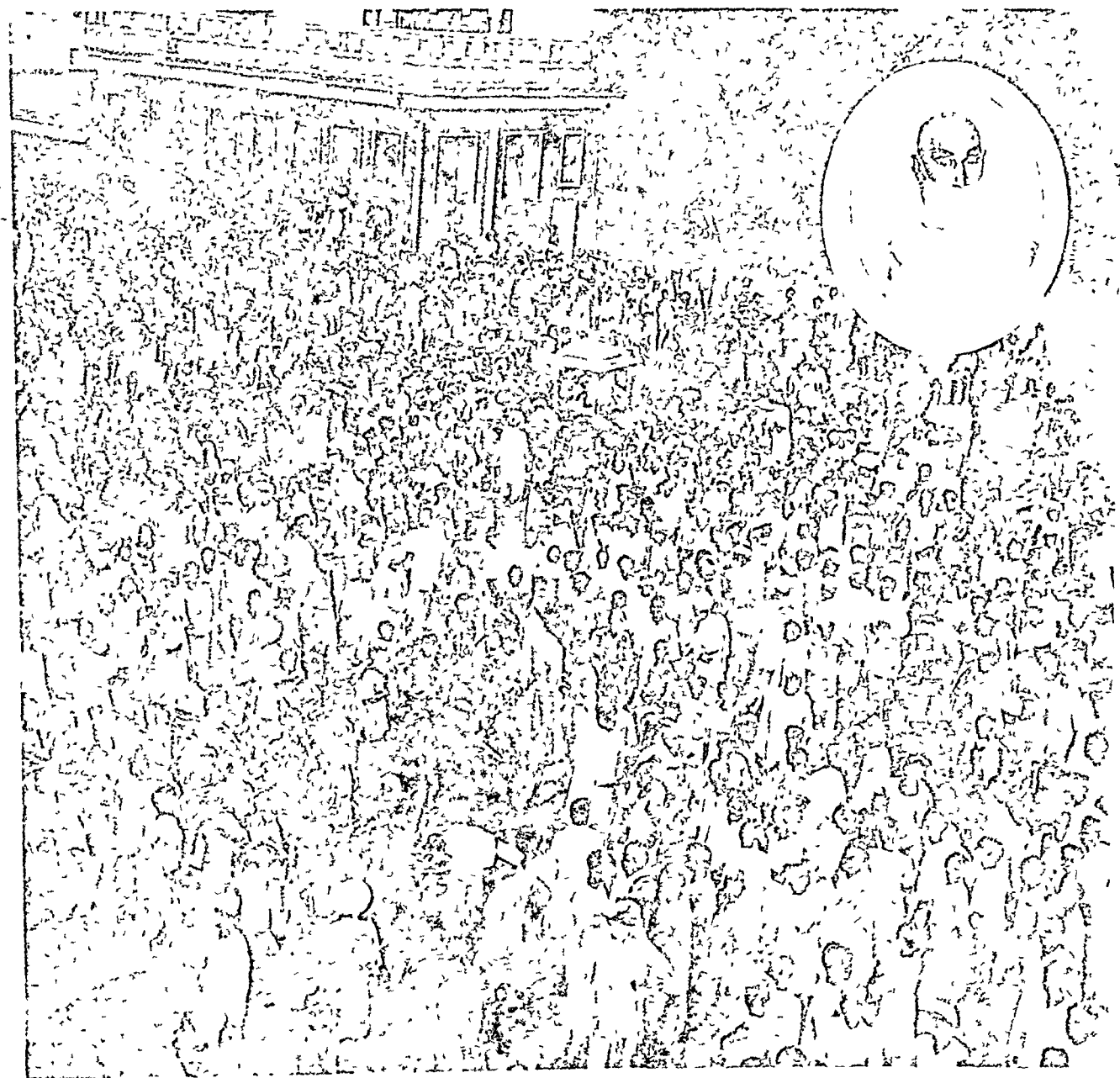
श्री जवाहर लालजी महाराज दाह क्रिया के लिए प्रस्थान
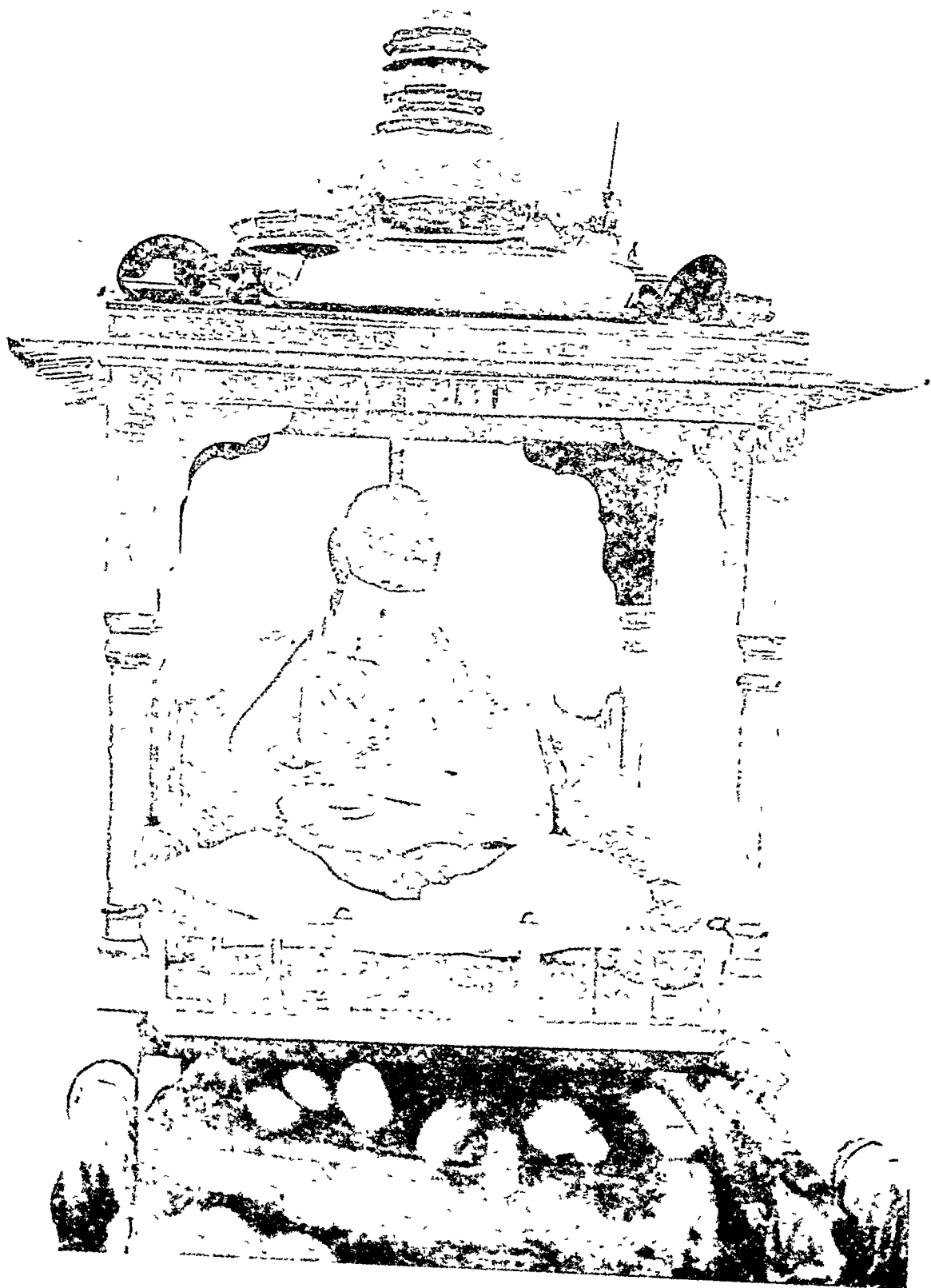
श्री जवाहर लालजी महाराज चिता पर

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक जीवन

विषय-प्रवेश

'भूतल पर मानव जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलताए अथवा उसके द्वारा बनाये और बिगाडे हुए साम्राज्य नहीं, बल्कि सचाई और भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नों मे भाग लेते हैं, उन्हें मानवीय सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त हो जाता है। समय महावीरों को अन्य अनेक वस्तुओं की भाति बडी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु सतों की स्मृति कायम है।'

-सर राधाकृष्णन्

भौतिक सफलताए प्राप्त करने वाले बडे-बडे वीर शिरोमणि अपनी स्मृति कायम रखने के लिए जो स्मारक खड़े करते हैं, वे स्मारक उसी प्रकार क्षण-भगुर है, जैसे उनकी सफलताए। न जाने कितने शासक इस पृथ्वी पर आए और चले गए। खून की नदिया बहाकर, दुर्बलो को सताकर और अगणित अत्याचार करके उन्होने अपनी विजय-पताका फहराई। वायु के वेग से चचल और निरन्तर कापनेवाली पताका ने उनकी सफलताओं की चचलता और अस्थिरता की ओर सकेत किया, मगर तात्कालिक सफलता के नशे मे चूर शासको ने उस ओर ध्यान ही नही दिया। किन्तु काल की कठोर चक्की ने कुछ ही क्षणो मे उन्हे और उनकी पताकाओ को धूल में मिला दिया। अपना नाम अमर करने के लिए उन्होने अपने नाम पर बडे-बडे नगर बसाए, वज्रमय दुर्ग खड़े किये और दृढ़तम स्तूप बनवाए, लेकिन आज उनका नाम-निशान भी शेष नही है। भूकम्प का एक धक्का, पारस्परिक द्वेष की चिनगारी, किसी अधिक बलवान् की हुकार या प्रकृति का तनिक-सा कोई क्षोभ उनकी सारी सफलताओ को और उनके समस्त स्मारको को जड से उखाड़ने के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ।

अब जरा अध्यात्म-जगत् की ओर देखिए। अध्यात्म-जगत् की वस्तु स्थायी है। आधिभौतिक आक्रमण वहा असर नही करते। जो महान् व्यक्ति आत्मान्वेषण के प्रशस्त पथ पर चल पड़ता है उसे भौतिक सफलताए विचलित नही कर सकती। जो पुरुष आध्यात्मिक जगत् का साम्राज्य प्राप्त करके, आत्मिक विभूतियो का स्वामी बन जाता है और आत्म-विकास का उज्ज्वल आदर्श जगत् के सामने

प्रस्तुत कर देता है, काल उसका दास बन जाता है। उस काल-विजेता और मृत्युञ्जय महापुरुष का जीवन-आदर्श युग-युग के मनुष्य-समाज को प्रेरणा देता रहता है। उसकी सफलता को कभी विफलता का सामना नही करना पड़ता।

जो व्यक्ति जनता को आत्मान्वेषण के पथ पर ले चलने का प्रयत्न करता है, वही संसार का सच्चा हितचिन्तक है। ऐसा महान् व्यक्ति ही ससार मे सुख और शान्ति का शाश्वत साम्राज्य स्थापित कर सकता है। वह किसी दरिद्र को हीरों, पन्नो या मोतियो का दान नही करता, किन्तु उसकी आत्मा में ऐसी शक्ति भर देता है जिससे वह नरपतियो की निधियो को ठुकरा सके। वह किसी दुर्बल को हाथी, घोडे या तोप-तलवार देकर बलवान् नही बनाता; किन्तु उसमे ऐसे प्राण फूक देता है कि वह एकाकी तोपों और मशीनगनो के सामने अविचलित मन से, शान्ति और मुस्कराहट के साथ छाती खोलकर खडा हो सकता है। ऐसे महान् पुरुष की वाणी और उसके उपदेश युग-युग मे जनता का मार्ग-प्रदर्शन करते रहते है। जबतक भव्य-पुरुष आत्म-विकास के लिए उद्योग करते रहेगे तबतक ऐसे महापुरुपो की स्मृति कायम रहेगी।

ससार में अनादिकाल से दो शक्तिया कार्य कर रही हैं। एक आसुरी शक्ति और दूसरी दैवी शक्ति। भौतिक सफलताओ के लिए सतत प्रयत्न मे लगे रहना, उसके लिए आत्मा को भूल जाना, अपनी आकाक्षाओ मे बाधक बनने वाले व्यक्तियो का हिंसात्मक उपायों से सहार करना तथा दिन-रात भोग-लिप्साओं में फसे रहना आसुरी शक्ति का खेल है। जिस व्यक्ति मे इसका प्राबल्य होता है वह सदा असन्तोष की आग में झुलसता रहता है। इस शक्ति का विकास करके मनुष्य राक्षस बन जाता है। वह दूसरो का ध्वस करके खुश होता है। सैकड़ो वर्षो की सभ्यता और सस्कृति को फूक से उडाकर अट्टहास करता है। मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाकर उसे हिंस्र-पशुओ के समान लड़ते देखकर हर्षित होता है। ससार से सुख और शाति को मिटा देना ही वह अपना कर्त्तव्य मानता है। शरीर मे क्षय के कीटाणुओं की तरह ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व ससार के लिए बहुत भयकर होता है। आसुरी शक्ति को लेकर जो व्यक्ति किसी समाज या देश के नेता बन जाते है वे दुनिया मे प्रलय-सी मचा देते है।

दैवी शक्ति से सम्पन्न पुरुष भौतिक सफलताओ को महत्त्व नहीं देता। वह तो चाहता है-हृदय में प्रेम, शाति और सन्तोष रहना चाहिए, धन चाहे रहे या न रहे। उसकी दृष्टि में सुख बाह्य साधनो मे नही किन्तु आत्म मे ही है। ससार में दैवी शक्ति का जितना अधिक प्रचार होता है उतनी ही सुख और शाति की वृद्धि होती है। ऐसी शक्ति का प्रचार करने वाले महापुरुष जगदुद्धारक कहे जाते है। सेना, शस्त्र, धन, शरीर आदि वस्तुओ पर निर्भर रहकर मनुष्य पशु बन जाता है। ऐसे व्यक्तियो में सोई हुई मनुष्यता को जगाना ही ऐसे महापुरुषों का काम है। कठोर तपस्या द्वारा वे अपनी आत्मा को निर्दोष बनाते है। कष्टो को सहकर उसे दृढ बनाते है तथा भयकर उपसर्गो का सामना करके उसकी परीक्षा लेते है। जब सभी कसौटियो पर अपने को खरा पाते है तो जन-कल्याण के लिए निकल पडते है।

उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते है। पाशविकता के अन्धकार मे दबी हुई मानवता फिर चमकने लगती है। ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्मगगन मे सूर्य के समान चमकते है। ऐसे महापुरुषो का जीवन ससार मे आदर्श की स्थापना करता है। उनके उपदेश नए ससार

को घडते है। उनके कार्य नव-निर्माण करते है। विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखे तो मालूम पडेगा कि वह इस प्रकार की थोडी-सी विभूतियो का खेल है। जो विचारधारा इन विभूतियो में बही, बाह्यरूप धारण करके वही विश्व-प्रगति का इतिहास बन गई। ऐसे व्यक्तियो का जीवन-चरित तथा उनकी विचार-धारा ही संसार का इतिहास है।

यहा हमें ऐसी ही एक विभूति की जीवन-कथा अंकित करनी है। वे एक संत थे। कहा जाता है कि उन्होने ससार को छोड दिया था। अगर उगलियों पर गिने जाने वाले कुछ व्यक्ति और घर-गिरस्ती ही ससार है तो निस्सदेह उन्होंने ससार त्याग दिया था। मगर कुछ व्यक्तियो के बदले उन्होंने विश्व के प्राणी-मात्र के साथ अपना सबध स्थापित किया था। 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना उनमें सजीव हो गई थी। और यद्यपि उन्होंने ईट-चूने का अपना कहलाने वाला मकान त्याग दिया था फिर भी वह लाखों मनुष्यो के हृदय-मदिर मे निवास करते थे। इस प्रकार संसार के त्यागी होकर भी उन्होंने ससार का बड़े-से-बडा उपकार किया है। उनकी जीवनी एक समाज के उत्थान का इतिहास है। उनका आत्म-निर्माण जन-कल्याण के महान् साधन का निर्माण है। उनका उपदेश प्रगति का बिगुल है।

जन्म

भारतवर्ष में मालवा प्रान्त का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह प्रान्त हिन्दुस्तान का हृदय है। विश्व-विख्यात विक्रमादित्य, महाराज उदयन तथा साहित्य-रसिक भोज जैसे अनेक राजाओं की क्रीड़ा-भूमि होने का सौभाग्य उसे प्राप्त है। मगर इससे भी बड़ी विशेषता यह है कि मालवा की उर्वरा भूमि में अर्वाचीन काल ने भी अनेक सतों को जन्म दिया है। मालवा का नैसर्गिक सौन्दर्य आकर्षक है। मालवा की शस्य-श्यामला भूमि विख्यात है। कहावत है-

देश मालवा गल गभीर।
पग-पग रोटी, डग-डग नीर॥

इसी मालवा प्रान्त मे झाबुआ रियासत के अन्तर्गत थादला नामक एक कस्बा है। नाग पर्वत के नाम से विन्ध्याचल की पश्चिमी पर्वत-श्रेणियो ने उसे अपनी गोद मे छिपा रखा है। घोड़पुर नदी उसका पाद-प्रक्षालन करती हुई बहती है और उसके आसपास के खेतों को सरसब्ज बनाती है। गाव के चारो ओर भीलो की बस्तिया है।

इसी कस्बे मे ओसवाल जाति शिरोमणि, कवाड़गोत्रीय सेठ ऋषभदासजी नामक सद्-गृहस्थ रहते थे। उनके दो पुत्र थे-वड़े का नाम धनराजजी और छोटे का नाम जीवराजजी था। धनराजजी के तीन पुत्र और एक कन्या थी, जिनके नाम खेमचदजी, उदयचंदजी और नेमचंदजी थे। कन्या ने आगे चलकर पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय मे दीक्षा ली।

वही पर धोकागोत्रीय सेठ श्रीचदजी रहते थे। उनके पूनमचन्द जी और मोतीलालजी नामक दो पुत्र थे। मोतीलालजी के दो सन्तान थीं-नाथीवाई और मूलचन्दजी।

जीवराजजी का विवाह कुमारी नाथीबाई से हुआ था। दम्पति मे परस्पर खूब प्रेम था। दोनो की धर्म मे दृढ़ श्रद्धा थी। स्वभाव अत्यन्त कोमल और दयालु था। श्रावक के व्रतो का पालन करते हुए दोनो सात्विक और पवित्र जीवन विता रहे थे।

ज्ञानपंचमी की पूर्वभूमिका मे, अर्थात् कार्तिक शुक्ला चतुर्थी विक्रम सवत् १९३२ के दिन नाथीबाई ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। यह वही पुत्र था, जिसने आगे चलकर ज्ञान का प्रकाश फैलाया और अगणित नर-नारियो के आन्तरिक अन्धकार को दूर करने मे अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिए बडे हर्ष की बात होती है। फिर जवाहरलाल जैसा पुत्र-रत्न पाकर कौन निहाल न हो जाता! जिस पर भी वे पहली सन्तान थे और विशिष्ट शारीरिक सम्पत्ति लेकर प्रकट हुए थे। आपके बाद नाथीबाई ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम जड़ाववाई था।

नामकरण

यथासमय बालक का नाम रखा गया-'जवाहरलाल'। माता-पिता अपनी समझ मे अपने बालक का नाम सुन्दर और प्रिय रखना चाहते है। नाम और गुणो का सामजस्य करने के लिए राशि और नक्षत्र देखे जाते है। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुकूल नाम क्वचित् ही देखा जाता है। जहा दोनों बाते अनुकूल मिल जायँ वहाँ घुणाक्षर-न्याय ही समझना चाहिए। हमारे चरितनायक के विषय में भी यही बात हुई। उस समय किसने सोचा होगा कि जिस बालक का नाम जवाहरलाल रखा जा रहा है, वह अपने भावी जीवन मे अनेक जौहर दिखलाकर अपना नाम इस प्रकार सार्थक करेगा! कौन जानता था कि कुरूढ़ियों और कुसस्कारो के अधकार मे, अज्ञानता की घोर निशा में, ढोंगों और ढकोसलों के कोहरे मे उसकी ज्योति सदा दीप्त रहेगी और वह प्रकाश का पुज सिद्ध होगा।

शैशव

प्रायः सभी महापुरुषो के जीवन-विकास का इतिहास दु.खो, कष्टों, मुसीबतों, परेशानियो या सकटो से आरभ होता है। सुख मनुष्य को बेभान बना देता है। सुख के समय आत्मा की विभिन्न शक्तिया सुस्त पड़ जाती हैं। सुख आत्मिक शक्तियो का जग है, जिसके लगने पर मनुष्य अशक्त-सा बन जाता है। इसके विपरीत दुःख आत्मिक शक्तियों के विकास मे अत्यन्त सहायक होता है। जो मनुष्य दुःख के समय दीनता को पास भी नहीं आने देता और वीरतापूर्वक दु खों के साथ सघर्ष करता है, उसकी सोई हुई शक्तिया भी जाग उठती है और उन शक्तियो मे ऐसा तीखापन आ जाता है जैसे सिल्ली पर धिसने से उस्तरे मे। यही कारण है कि आत्मा की खोज के लिए उद्यत होने वाले महान् पुरुष सबसे पहले, प्राप्त सुख-सामग्री का परित्याग कर देते हैं। 'आयावयाही चय सोगमल्लं' अर्थात् कष्ट-सहिष्णु बनो, सुकुमारता त्यागो; यह सुखी बनने का मार्ग है। भगवान् का जीवन देख जाइए, उसमे यह उपदेश ओत-प्रोत मिलेगा। भगवान् अपने-आप आये हुए कष्टो को ही सहन नही करते थे वरन् कभी-कभी स्वय कष्टमय परिस्थिति उत्पन्न करके उस पर विजय प्राप्त करते थे। यही उनके लोकोत्तर विकास का रहस्य है। इससे उनकी आत्मिक शक्तियो को बडा वेग मिलता था। मतलब यह है कि दु:ख ही आत्मिक शक्तियो के विकास मे सहायक होता है।

स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन करने में ही आत्म-विजय है। चाहे वह कष्ट स्वय उत्पन्न किये गये हो, चाहे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा प्रकृति ने उत्पन्न किए हों, यदि मनुष्य उनसे विचलित नही होता तो उसकी प्रगति रुक नहीं सकती।

आत्मोन्नति के ऊचे उद्देश्य से प्रेरित होकर मनुष्य जो कार्य करता है, वह कार्य हमारे चरितनायक के लिए प्रकृति ने किया। कौन जाने प्रकृति ने एक सत पुरुष का निर्माण करने के लिए ही ऐसी व्यवस्था की हो। प्रकृति ने उन्हें ऐसी परिस्थितियो में रखा कि बचपन से ही वे मोह-जाल को भेदने मे समर्थ हो सके। आप दो वर्ष के हुए थे कि हैजे के प्रकोप से माता का देहान्त हो गया। बालक अभी प्यासा ही था कि वह स्रोत सूख गया जिससे मातृ-स्नेह का अमी-रस झरता था। इस प्रकार प्रकृति ने उन्हे माता से वचित कर जीवन का एक प्रगाढ बधन दूर कर दिया। माता से वंचित होने पर भी मातृ-भक्ति के विषय मे आपके विचार बड़े ही गम्भीर रहे हैं।

महापुरुषों मे बचपन के सस्कार ही पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं। उनका जीवन-चरित समझने के लिए उन सस्कारो का अध्ययन करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति और महापुरुष मे एक बड़ा अन्तर यह होता है कि साधारण व्यक्ति के बचपन के सस्कार बड़े होने पर अन्य बातों से दब जाते हैं या सर्वथा नष्ट हो जाते है। महापुरुष मे बचपन के सस्कार प्रबल रूप मे मौजूद रहते है। वे अन्य बातों को अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। इस प्रकार वे संस्कार यथासमय दृढता पाकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं और जगत्-कल्याण के साधन बन जाते हैं।

मानव जीवन मे प्रेम का आरम्भ जन्म के साथ ही होता है किन्तु साधारण व्यक्ति में वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलटता रहता है और महापुरुष मे अपने असली स्थान को बिना छोडे उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। महापुरुषों का प्रेम निर्मल होने के साथ ही असीम होता है। वह एक साथ सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है। साधारण व्यक्ति के स्नेह में सकुचितता, सीमाबद्धता होती है।

हमारे चरितनायक में माता के प्रति जो निर्मल प्रेम के सस्कार पड़े थे वे विकसित होकर मातृ-जाति की महत्ता के रूप मे परिणत हुए। आपको प्रत्येक महिला मे मातृत्व का दर्शन होता था। हृदय में और आंखो के आगे भी, आपके लिए स्त्री का काल्पनिक और भौतिक रूप सदैव मातृत्व से युक्त ही होता था। कहना चाहिए कि आपके हृदय में स्त्री की कल्पना माता के रूप में ही थी। किसी भी स्त्री का अपमान आपकी दृष्टि मे माता का अपमान था। स्त्री-जाति की दयनीय दशा देखकर आपको असीम दुःख होता था। मातृ-जाति के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार की आप ओजस्वी भाषा मे टीका करते हुए कहते थे -

"मित्रो, स्त्री पुरुष का आधा अग है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अंग वलिष्ठ और आधा अग निर्वल हो ? जिसका आधा अग निर्बल होगा उसका पूरा अग निर्बल होगा। ऐसी स्थिति में आप पुरुष-समाज की उन्नति के लिए जितने उद्योग करते है, वे सव असफल ही रहेंगे, अगर पहले आपने महिला-समाज की स्थिति सुधारने का प्रयत्न न किया।"

"स्त्रिया जगज्जननी का अवतार है। इन्ही की कोख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए है। पुरुष-समाज पर स्त्री-समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उसके पति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है।

"पुरुपो, स्त्री-जाति ने तुम्हें ज्ञानवान् और विवेकी वनाया है फिर किस वूते पर तुम इतना अभिमान करते हो ? किस अभिमान से तुम उन्हे पैर की जूती समझते हो ?"

"धन्य है स्त्री-जाति! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार में ही हाय-तोबा मचाने लगता है उससे कई गुना कष्टकर कार्य स्त्री-जाति हर्षपूर्वक करती है। वह कभी नाक नही सिकोडती, मुंह से कभी 'उफ्' तक नही करती। वह चुपचाप, अपना कर्त्तव्य समझकर अपने काम मे जुटी रहती है। ऐसी महिमा है स्त्री-जाति की!"[1]

मातृ-जाति के विषय मे उस महापुरुष का ऐसा उदात्त उपदेश था।

माता की गोदी छिन जाने पर आपके लालन-पालन सा सारा भार पिताजी पर आ पडा। वे अपने हाथों से भोजन बनाते, अपने लाल को प्रेम के साथ खिलाते। आप अनेक असुविधाए सह लेते पर मातृ-हीन बालक को किसी प्रकार का कष्ट न होने देते। पिता की मीठी प्रेम-रस से पकी हुई रोटियों को आप कभी नही भूले। उनकी मधुरता का वर्णन आप अपने प्रवचनो में भी अनेक बार किया करते थे।

इधर प्रकृति एक महान संत का निर्माण करने मे लगी थी। उसने देखा कि पितृ-ममता का बन्धन मजबूत होता जा रहा है और इस कारण उसके प्रयत्न मे बाधा पडने की सभावना है, वह सावधान हो गई। उसने एक बन्धन हटाने के पश्चात् एक दूसरे बन्धन को भी हटा देना उचित समझा। जब चरितनायक पाच वर्ष के हुए तो उनके पिता का भी देहान्त हो गया। मातृ-हीन बालक अब पितृ-हीन भी हो गया। पाच वर्ष की अवस्था मे बालक को अपने पैरो पर खडा होना पड़ा।

ऊपरी दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा लगता है कि प्रकृति ने हमारे चरितनायक के साथ अत्यन्त क्रूर व्यवहार किया है। उसकी निर्दयता की सीमा नहीं है। मगर गहरी दृष्टि से देखने पर निराला ही तत्त्व दिखाई देगा। कौन कह सकता है कि प्रकृति की क्रूरता और निर्दयता ने ही जवाहरलालजी को जगत् का असली स्वरूप नहीं समझा दिया! विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को 'सत्य हरिश्चन्द्र' के रूप में ससार मे विख्यात किया। उसी प्रकार प्रकृति की निष्ठुरता ने जवाहरलालजी को 'धर्माचार्य' और 'सन्त' के रूप मे प्रसिद्ध किया। कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है!

माता और पिता का आश्रय हट चुका। अब उन्हें अपनी योग्यता द्वारा ही आश्रय प्राप्त करना था। पाच वर्ष की अल्प-अवस्था मे ही उन पर यह भार आ पडा। जो व्यक्ति आगे चलकर विशाल समाज का नेता बनने वाला हो उसके लिए प्रकृति यह कैसे बर्दाश्त कर सकती है कि वह दूसरो के आश्रय पर पले। उसे तो बचपन से ही भयंकर आपत्तियो को हॅसते-हॅसते सहने का पाठ सीखना पडता है।

पिता का देहान्त होने पर आप अपने मामा के यहां रहने लगे। पिताजी के बड़े भाई श्री धनराजजी ने इन्हे अपने पास रखने का बहुत आग्रह किया। किन्तु आपके मामा श्री मूलचन्दजी धोका ने भगिनी-प्रेम के कारण इन्हें अपने ही पास रखा। वे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। थांदला मे कपडे की दुकान करते थे। आप वहीं रहने लगे।

विद्यार्थी-जीवन

महापुरुषों का विद्यार्थी-जीवन किसी स्थान या काल-विशेष मे ही समाप्त नही हो जाता। प्रत्येक स्थान उनकी पाठशाला है और प्रत्येक क्षण उनका अध्ययन-काल। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त वे नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त करते रहते है और अपने जीवन मे उसका यथोचित उपयोग करते जाते है। सामान्य

१ जवाहर किरणावली, तृतीय भाग

व्यक्ति पुस्तको मे लिखी बातों को अपने मस्तिष्क मे ठूस लेता है, समय पर उन्हें उगल भी देता है परन्तु अपने जीवन मे नही उतारता। ऐसे व्यक्तियों के लिए ज्ञान भार होता है। महापुरुष ऐसा नही करते। वे जो कुछ भी सीखते है उसे अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते रहते है। इस प्रकार का अमली ज्ञान ही वास्तविक शिक्षा या अभ्यास कहा जा सकता है। इसी से जीवन सस्कारमय और उन्नत बनता है।

साधारण व्यक्ति अधिकतर पुस्तकों पर निर्भर रहते है। किसी से सुने या पढ़े बिना उन्हे ज्ञान नही होता। किन्तु महापुरुषों के लिए सारा ससार ही एक खुली हुई पुस्तक है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिवर्तन और प्रत्येक स्पदन उनके सामने नवीन पाठ लेकर आता है और उन्हें नवीन बोध दे जाता है।

हमारे चरितनायक प्रकृति की ओर बड़ी बारीक नजर से देखा करते थे। उन्होंने स्कूल की अपेक्षा प्रकृति की महान् पाठशाला मे अधिक अध्ययन किया। अपने जीवन के अनुभव के आधार पर ही उन्होंने कहा-'प्रकृति की पाठशाला में जो संस्कारी ज्ञान मिलता है वह कालेज या हाई-स्कूल में मिलना कठिन है।.....प्रकृति की प्रत्येक रचना मे से महापुरुष कुछ-न-कुछ शिक्षा प्राप्त करते ही रहते हैं।'

आपका इस प्रकार का विद्यार्थी-जीवन आजन्म बना रहा। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे नई-नई बाते और नये-नये विचार ग्रहण करते रहे और उन्हें अपने जीवन में उतारते गए।

यद्यपि आप मे क्षयोपशमजन्य अनुभव-ज्ञान की प्रचुरता थी, तथापि आपका साहित्यिक अध्ययन भी बहुत विशाल था। जैनागम-साहित्य तो उनका मुख्य विषय था ही, उन्होने उपनिषद्, गीता, सत-साहित्य, गाधी-साहित्य आदि का भी अध्ययन किया था। आपके अध्ययन की विशेषता यह थी कि आप अध्ययन किये हुए प्रत्येक विषय को अपने अनुभव के रस में मिलाकर सरस बना लेते थे। जैसे गाय नीरस घास को भी मधुर दूध के रूप में परिणत कर लेती है, उसी प्रकार आप अपने अध्ययन को अनुभव-ज्ञान द्वारा मिश्रित करके प्रभावशाली और विशद बना लेते थे। उनके प्रवचनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आपका अध्ययन कितना तात्त्विक, मार्मिक और सम्यग्दृष्टिपूर्ण था।

आपका जन्मस्थान थांदला गुजरात का पडौसी है। वहां की भाषा पर गुजराती भाषा का बहुत अधिक प्रभाव है। वहा के भील तथा दूसरे लोग गुजराती से मिलती जुलती भाषा बोलते है। वहा की प्रारम्भिक पाठशालाओं मे गुजराती भाषा ही पढाई जाती है।

उन दिनो थादला मे ईसाइयो की तरफ से प्राइमरी स्कूल चल रहा था। जवाहरलालजी को उनके मामाजी ने इसी स्कूल मे प्रविष्ट करा दिया। मगर स्कूल का नीरस वातावरण आपको सुहाया नही। वहा की तोता-रटन्त से आपको सतोष नहीं हुआ। जीवित और जागृत-ज्ञान की अभिलाषा रखने वाला पुरुष वहा कैसे संतुष्ट हो सकता था। कुछ गुजराती, हिन्दी और गणित सीखकर ही आप स्कूल से हट गए और साथ ही आपका स्कूली जीवन समाप्त हो गया।

तीन-दोहे

जवाहरलालजी मे मातृ-प्रेम के बीज कब और कैसे बोये गए, इस बात का साधारण उल्लेख पहले किया गया है। उस समय आप अबोध शिशु थे। स्कूल मे आने पर वे बीज अंकुरित हो गए।

स्कूल की पाठ्य पुस्तक में नीचे लिखे तीन दोहे थे:-

टगमग पग टकतूँ नही, खाई न शकतूँ खाज।
उठी न शकतूँ आपथी, लेश हती नहि लाज ॥१॥
ए असवर आणी दया, वालक पर मा-वाप।
सुख आये दुख वेठवे, ए उपकार अमाप ॥२॥
कोय करे एवे समय, वेहक घडी वरदाश।
आखी उमर थई रहे, ते नर नो नर दास ॥३॥

यह तीन दोहे चरितनायक के हृदय मे सीधे उतर गए। आप इन्हे बार-वार पढते, रास्ते चलते गुनगुनाते और अपने साथियो को सुनाते-समझाते। इनके मर्म पर विचार करते और सोचते 'मुझे माता-पिता की सेवा करने का अवसर मिलता तो मै कितना भाग्यशाली होता,' मगर खेद है कि उनकी यह अभिलाषा मन में ही रह गई। माता-पिता मे से अब कोई भी जीवित न था।

प्राय· अतृप्त अभिलाषाए हृदय मे घर कर लेती है और प्रवलतर होकर जीवन-व्यापिनी बन जाती हैं। माता-पिता की सेवा का महत्त्व उन्होंने भली-भाति अनुभव कर लिया। आगे चलकर यही सेवा-भाव विशाल रूप में परिणत हो गया और उसने मानव-सेवा का रूप धारण किया। आप जगत्-कल्याण और आत्म-कल्याण के पवित्र उद्देश्य से ससार के सुखो को ठुकराकर मुनि बने। प्राणीमात्र का कल्याण ही उनके जीवन का एक उद्देश्य था।

साहस और संकट

विपत्ति की संभावना मात्र से साधारण व्यक्ति भयभीत हो जाता है और जब विपत्ति सम्मुख आ जाती है, तो घबरा उठता है। उसकी यह घबराहट स्वय एक भयानक विपत्ति बन जाती है, किन्तु महापुरुष विपदा आने पर उल्लास का अनुभव करते है। सशस्त्र शत्रु को सामने देखकर जैसे शूरवीर क्षत्रिय वीर रस में डूब जाता है और अपना जौहर दिखलाकर विजेता का पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महापुरुष विपत्तियों का सामना होने पर उल्लास के साथ उनसे जूझता है और विजय-लाभ करके अपनी शक्तियो का विकास करता है। ऐन मौके पर पीछे हटना, अवसर को खो देना उसे ऐसा मालूम पडता है जैसे आत्मोन्नति का बहुत बडा अवसर हाथ से चला गया हो। उस समय उसकी हालत उस व्यापारी के समान होती है जो बाजार में तेजी के समय कुछ न कमा सकने के कारण हाथ मलता रह गया हो! महापुरुष सकटो पर सवार होकर विपदाओं के बीच, बाणों की बौछार झेलते हुए अपने सकल्प की ओर आगे बढ़ते चलते है। हमारे चरितनायक मे महापुरुषो का यह लक्षण भी बाल्यावस्था से ही विद्यमान था।

एक बार आप कुछ साथियों के साथ बैलगाड़ी द्वारा यात्रा कर रहे थे। पहाडी रास्ता था-टेढ़ा मेढा और ऊबड़-ख़ाबड़। ऊपर निकले हुए बडे-बडे पत्थरो पर गाडी के पहिये चढते और धड़ाम से नीचे गिरते। जान पड़ता था, गाड़ी चूर-चूर हुए बिना न रहेगी। कही-कही रास्ता बहुत तग था। एक ओर पाताल की प्रतिस्पर्धा करने वाली गहरी खाई और दूसरी ओर हिमालय का मुकाबिला करने के लिए अकड कर खड़ा पहाड। जरा चूक हुई कि खाई के सिवा और कही ठिकाना नही। पग-पग पर प्राणो का सकट!

भय के कारण गाडी-सवार नीचे उतर गए। उन्होने पैदल चलने मे ही अपनी खैर मानी। मगर दीक्षा लेने के पश्चात् सदैव पैदल विहार करने वाले और पैदल विहार की उपयोगिता समझाने वाले हमारे चरितनायक उस समय भी गाड़ी से नीचे न उतरे। सकट से बचने के लिए ऐसा करना कायरता समझकर साहस का दुर्लभ आनद उपभोग करने के लिए आप गाड़ीवान के साथ गाडी में बैठे रहे। उस समय आप तनिक भी भयभीत न हुए। गाड़ी लड़खडाती हुई आगे चलती रही। अब वह उतार में आ गई थी। बैल बेतहाशा भागने लगे। गाड़ीवान ने उन्हे काबू मे करने का बहुतेरा प्रयत्न किया, मगर वह सफल न हो सका। गाडीवान समझ गया कि आज सवार की, उसकी, और बैलो की खैर नहीं, या तो गाडी उलट जायगी या किसी गड्ढ़े मे गिरेगी। गाड़ीवान ने गाडी-बैल की चिन्ता छोड दी और प्राण-रक्षा की फिकर की। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्ध त्यजति पण्डित.' अर्थात् पण्डित पुरुष, सर्वनाश के समय आधा छोड़कर आधा बचा लेता है। गाडीवान अपने प्राणों के विषय में पंडित सिद्ध हुआ। वह अपने प्राण बचाने के लिए नीचे कूद पड़ा। थोड़ी देर के लिए बैलों को स्वराज्य मिल गया। वह निरकुश भागने लगे। कैसी मुसीबत की घड़ी थी! मगर उस समय भी एक व्यक्ति निश्चिन्त मगर गम्भीर भाव से गाडी पर सवार था। वह चाहता तो गाड़ीवान से भी पहले कूद सकता था और अपने प्राणों की रक्षा कर सकता था। लेकिन उसने ऐसा सोचा तक नही। वह था हमारा चरितनायक-अनुपम साहस का धनी जवाहरलाल!

गाडीवान के कूदने के कुछ ही क्षण पश्चात् जवाहरलालजी ने गाडीवान का स्थान ग्रहण कर लिया। रासे हाथ में लीं और बैलों को रोकने का प्रयत्न करने लगे। इतने ही में एक जोर का धक्का लगा और आप जुए पर आ गिरे। जुए पर लटकने की अवस्था मे भी आपकी बुद्धि स्थिर रही। बुद्धि की स्थिरता की बदौलत ही आप रासें अपने हाथ में पकड़े रहे और सयोग से उन्हीं के सहारे लटके चले। तनिक भी घबराहट पैदा होती तो रस्सी हाथों से सरक जाती। फिर या तो गाडी से कुचले जाते या किसी खाई मे जा गिरते। दोनों हालतो में प्राणों का संकट तो था ही।

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषा न चेतांसि त एव धीरा.।'

बुद्धि मे विकार उत्पन्न करने वाले कारण उपस्थित होने पर भी जिनका चित्त विकृत नही होता, वही वास्तव में धीर पुरुष कहलाते हैं।

जवाहरलालजी के अगाध धैर्य और असीम साहस के फलस्वरूप गाड़ी-बैल बच गये और उनका भी कुछ बिगाड़ न हुआ। अन्त मे वे सकुशल निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुंचे।

साहस के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण विरले है। इस प्रकार की घटनाए महापुरुषो के जीवन के मर्म की ओर सकेत करती है।

बचपन मे जवाहरलालजी अनेक दुर्घटनाओं से बाल-बाल बचे। एक वार आप किसी मकान की दीवार के पास खडे बाते कर रहे थे। बाते समाप्त करके ज्यो ही आप वहा से हटे त्यो ही दीवार धड़ाम से आ गिरी। दीवार मानो उनके हटने की ही बाट जोह रही थी!

कौन जाने यह घटना आकस्मिक थी या दूसरो के उपकार में लगने वाले जीवन को प्रकृति ने बचा लिया! जगत् मे ऐसी घटनाए होती है जिनका निष्कर्ष निकालना मानव-बुद्धि से परे की वात हे। महापुरुषो के जीवन मे खास तौर पर इस प्रकार की घटनाएं घटित हो जाती है।

बचपन मे आपको कई बार सन्निपात जैसे भयकर रोगो का सामना करना पडा, मगर आयुकर्म की प्रबलता समझिए, या भव्य जीवो के पुण्य का प्रभाव कहिए; आप समस्त सकटो का सामना करते हुए, मृत्यु पर विजय-प्राप्त करने में समर्थ हो सके। ऐसे गभीर प्रसगो पर भी आपकी चित्त-वृत्ति असाधारण रूप से शान्त बनी रहती थी। आपकी यह शान्ति और सहनशीलता धीरे-धीरे किस प्रकार विकसित होती गई, यह बात पाठको को अलग पृष्ठो मे अकित मिलेगी।

व्यापार

ग्यारह वर्ष की कोमल वय में जवाहरलालजी स्कूल छोडकर अपने मामाजी के साथ कपडे की दुकान पर बैठने लगे। पूरा मनोयोग लगाकर ही उन्होने यह कार्य सीखना आरभ किया। फल यह हुआ कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा के कारण कपडे के व्यवसाय मे आप शीघ्र ही निपुण हो गए। मामाजी ने यह देखकर सतोष की सास ली और सारा कार्य-भार आपके सिर पर डाल दिया। मामाजी इस ओर से निश्चिन्त हो गये। जवाहरलालजी में कपड़े परखने की इतनी योग्यता आ गई थी कि यदि कीमत मे बहुत थोडे अन्तर वाले दो थान अधेरे मे आपके सामने रख दिये जाते तो उन्हे टटोल कर ही आप बतला देते कि इनमे एक या दो पाई प्रतिगज का अन्तर है और इनका अमुक नबर है। कपड़ा पहचानने की यह कला देखकर वस्त्रो के व्यापार मे अपनी सारी आयु पूर्ण कर देने वाले बूढे व्यापारी भी चकित रह जाते थे।

बहुत-से विद्वानो का कहना है कि प्रतिभा का विकास किसी एक निश्चित मार्ग में ही होता है। जिस व्यक्ति का झुकाव त्याग की ओर होता है वह व्यापार आदि दुनियादारी के कामों मे विशेष निपुणता प्राप्त नही कर सकता। आध्यात्मिकता की ओर मनोवृत्ति वाला लौकिक बातो मे विशेष सफल नही हो सकता। कई एक महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र भी इस कथन का समर्थन करते है। मगर हमारे चरित-नायक का जीवन इसका अपवाद है। आपकी जीवनी से यह प्रमाणित होता है कि प्रतिभा के एक ही ओर विकास होने की बात सर्वाश में सत्य नही है। कोई-कोई महापुरुष विशिष्ट प्रतिभा के भी धनी होते है कि जिस ओर अपनी प्रतिभा दौडाए उसी ओर सफलता प्राप्त कर लेते है। बिजली सभी ओर प्रकाश फैलाती है। जवाहरलालजी जिस प्रकार व्यापारिक क्षेत्र मे पूर्ण सफल हुए उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी बहुत उन्नति की। आप जैसे सफल व्यापारी बने वैसे ही सफल धर्माचार्य भी सिद्ध हुए।

जहा प्रतिभा के साथ साहस और मनोयोग का समन्वय होता है, वहा सफलता मिलते देर नही लगती। यह त्रिपुटी सफलता की जननी है। जिस व्यक्ति में जितनी मात्रा मे यह त्रिपुटी होगी वह उतनी ही मात्रा मे सफलता का भागी बन सकेगा। यही तीन चीजे त्याग के साथ मिलकर मनुष्य को महान् धर्मात्मा भी बना देती है।

प्रतिभा द्वारा मनुष्य अपना मार्ग खोज निकालता है। साहस के द्वारा विपत्तियो की पहवाह न करता हुआ उस मार्ग पर चलता है और मनोयोग से उस पर स्थिर रहता है-विचलित नही होता। इसके बाद उसके विकास मे बाधा डालने वाली कोई शक्ति नही रह जाती। मनोयोग की विकसित शक्ति द्वारा ही योगीजन आश्चर्य-जनक सिद्धिया प्राप्त कर लेते है। यही कारण है कि जिस ओर वे झुके, सफलता उनकी दासी बनती गई। उनकी सम्पूर्ण सफलता का यही मूलमत्र है।

मान्त्रिक के रूप में

जिन दिनों जवाहरलालजी कपडे की दुकान कर रहे थे, आपने धरण ठीक करने का मत्र सीख लिया। किसी की धरण टल जाती तो आप मत्र पढकर उसे ठिकाने बिठा देते। धीरे-धीर गांव भर मे आपकी मंत्र-वादिता की प्रसिद्धि हो गई। आये दिन लोग आपको बुलाने आने लगे। दुकान के काम मे व्याघात होने लगा, लेकिन आप समान भाव से सभी के घर चले जाते और धरण बिठा देते। मगर मामाजी को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने जवाहरलाजी से मत्र का काम छोड देने के लिए कहा। आप उनका आदेश अस्वीकार न कर सके।

एक बार दीपावली का जमा-खर्च कर रहे थे कि तब एक दिन एक आदमी धरण ठीक करने के लिए बुलाने आया। आपने बहुत टाल-मटोल की मगर वह नहीं माना। आपने मन ही मन निश्चय किया- चला तो जाता हू मगर मंत्र नही पढूगा, यों ही हाथ हिलाकर फूक मारता जाऊंगा। इससे धरण ठीक नही होगी और लोग मेरा पिंड छोड देंगे।

उन्होने यही किया। वे रोगी के सामने बैठकर हाथ हिलाने लगे, फूंक मारने लगे, मगर मत्र-पाठ नही किया। मगर थोड़ी ही देर में उन्हे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मत्र न पढ़ने पर भी धरण ठिकाने आ गई.और दर्द बन्द हो गया। यह देखकर आपने सोचा कि वास्तविक शक्ति श्रद्धा में ही है। रोगी को श्रद्धा हो गई कि इन्होने मत्र पढ़ा है और इस मंत्र से धरण अवश्य ठीक हो जाती है। इसी श्रद्धा के कारण रोगी का दर्द मिट गया। आपका यह विचार धीरे–धीरे विश्वास के रूप मे परिणत हो गया और आपने श्रद्धा और सकल्प का प्रबल अनुभव किया। इसी अनुभव के आधार पर आपने वाणी उच्चारी है:-

' क्या संकल्प में दु.ख दूर करने का सामर्थ्य है ? इस प्रश्न का उत्तर है- अवश्य। सकल्प मे अनन्त शक्ति है। सकल्प से दुःख दूर हो जाते हैं, साथ ही नवीन दु ख का प्रादुर्भाव नही होता।'

'अपनी सकल्प-शक्ति का विकास ही आध्यात्मिक विकास है। सत्सकल्प का प्रभाव जड़ सृष्टि पर भी अवश्य पडता है।'

'संकल्प मे यदि बल हुआ तो कार्य-सिद्धि मे सुगमता और एक प्रकार की तत्परता होती है। वास्तविक वात तो यह है कि कार्य की सिद्धि प्रधानत· सकल्प-शक्ति पर अवलंबित है।'

चरितनायक के ये उद्गार अपने जीवन के अनुभव के स्रोत से ही निकले हैं। उनकी वाणी का अधिकांश भाग उनके विभिन्नकालीन निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति मात्र है। उनका ज्ञान अन्तरतम से उद्भूत होकर वाहर निकला है, बाहर से ठूसकर भीतर नही भरा गया। ऐसा ज्ञान वड़ा ही तेजस्वी, सुदृढ और परिमार्जित होता है।

काला वाव

एक वार श्री जवाहरलालजी की पीठ पर काला वाव हो गया। अनेक जगहो पर इलाज कराने पर भी आराम न हुआ। वैद्यो से चिकित्सा करवाई मगर कुछ फल न निकला। डाक्टरो का सहारा लिया, पर भी व्यर्थ हुआ। आप इस परेशानी मे थे कि एक दिन एक भील मिला। वातचीत होने पर उसने कहा- मै सिर्फ चार पैसे की दवाई मे इसे ठीक कर दूगा। उसे तुरत चार पैसे दिये गये। भील ने जगल

से एक जडी लाकर दे दी। कुछ खाई और कुछ बाव पर लगाई। तीन ही दिन मे वीमारी सफा हो गई। आपने चार आने भील को इनाम मे दिये।

इस घटना से आपके मन मे यह धारणा जम गई कि भील निरे मूर्ख या जगली ही नही है। उनके पास भी बहुत-सी ऐसी विद्याए है, जिन्हे सीखने से हम बहुत-कुछ लाभ उठा सकते है। शहर मे रहने वाले वैद्यो और डाक्टरो की अपेक्षा इन्हे जंगल की जडी-बूटियो का और उनके गुण-दोषो का अधिक ज्ञान है। इस घटना से आपका विश्वास जड़ी-बूटियो पर भी हो गया। भावी जीवन मे आपने अनेक बार विदेशी औषधों के सेवन का सख्त शब्दो में विरोध किया है। यह विरोध अनुभव-जनित ज्ञान के आधार पर था।

धर्म-जीवन का प्रभात

जैन सस्कृति में जिस क्रिया-काण्ड का वर्णन पाया जाता है; उस सब का मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व की विद्यमानता मे ही चरित्र मुक्ति या आत्मशुद्धि का निमित्त बनता है। जहा सम्यक्त्व नही, वहा कठोर-से-कठोर क्रिया-काड भी ससार भ्रमण का ही कारण होता है। सम्यक्त्व से क्रिया-काड सजीव हो जाता है, उसमे प्राण आ जाते है। अकेला क्रिया-काड ही नहीं, वरन गभीर से गभीर ज्ञान भी सम्यक्त्व के अभाव में मिथ्या ज्ञान ही रहता है। सम्यक्त्व मोक्ष-महल का पहला सोपान है। मुमुक्षु जीव का मोक्ष मार्ग यही से आरम्भ होता है। वास्तव मे दृष्टि जबतक निर्मल न बने तबतक वस्तु का वास्तविक स्वरूप समझा नही जा सकता। दृष्टि की यह निर्मलता धर्म-श्रद्धा से उत्पन्न होती है। अतएव धर्म-श्रद्धा को अगीकार करना ही व्यवहार से सम्यक्त्व ग्रहण करना कहलाता है।

सम्यक्त्व ग्रहण करते समय, ग्रहण करने वाला प्रतिज्ञा करता है कि 'मै आज से वीतराग देव को ही अपना देव मानूगा, अहिंसा आदि पाच महाव्रतधारी साधुओ को ही अपना गुरु समझूगा और वीतराग कथित दयामयधर्म को ही धर्म स्वीकार करूगा।'

किसी भी मत की परीक्षा करने का सर्वोत्तम और सरल उपाय यही है कि उसके देव, गुरु और धर्म की परीक्षा कर ली जाय। जिस मत में ऐसे देव की पूजा होती है जो अपने भक्त की स्तुति से प्रसन्न हो जाने के कारण रागी है, जो अपने निन्दक को घोर दड देने के कारण द्वेषी है, जो भोग-विलास से अतीत नही हो सकता। इसी प्रकार जिस मत के साधु कचन-कामिनी के त्यागी नही है, प्राणी-मात्र पर समभाव नही रखते और हिंसा आदि दोषो से पूर्णतया रहित नही है, वह मत मुमुक्षु जीवो के लिए उपादेय नही हो सकता। इसी भाति जिस मत मे सम्पूर्ण भूत-दया का उपदेश नही है बल्कि प्रकारान्तर से हिंसा का विधान और दया-अनुकम्पा का निषेध है वह मत भी मोक्षाभिलाषियो के लिए ग्राह्य नही हो सकता।

सम्यक्त्व ग्रहण करने का अर्थ गुण-पूजक होना है। सम्यक्त्व ग्रहण करते समय व्यक्ति यही प्रतिज्ञा करता है कि मै अब से निर्दोष देव, निर्दोष गुरु और निर्दोष धर्म को स्वीकार करता हू।

जिन दिनो जवाहरलालजी कपड़े की दुकान करते थे, थादला मे पूज्य धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री गिरधारीलालजी महाराज पधारे। आप मुनिजी का व्याख्यान सुनने गए। धर्म की ओर आपका सोया हुआ आकर्षण जागृत हो गया। उसी समय खडे होकर आपने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

किसी भी मनुष्य का असाधारण विकास पूर्व-जन्म के सस्कारो के बिना नही हो सकता। बाल्यावस्था मे धर्म के प्रति इस प्रकार की प्रीति उत्पन्न होना निश्चय ही पूर्वजन्म के सस्कारों का परिपाक है। आपकी यह धर्म-श्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम नही थी किन्तु चिरकाल से संचित सस्कारों का फल था। इस सचाई का ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्म-श्रद्धा द्वितीया के चन्द्रमा की भांति निरतर बढ़ती ही चली गई। उस धर्म-श्रद्धा के फलस्वरूप उन्होंने एक महान सत का गौरव प्राप्त किया, धर्माचार्य की प्रतिष्ठा पाई। और आत्म-शुद्धि के अधिकारी बने।

सम्यक्त्व ग्रहण करने के पश्चात् आपका इहलौकिक धार्मिक जीवन आरभ हुआ।

यद्यपि जवाहरलालजी ने सम्यक्त्व ग्रहण करके धर्म-मार्ग की ओर नजर फेर ली थी, फिर भी वे अभी तक व्यवसाय मे ही लगे हुए थे। जो प्रकृति शिशु-अवस्था से ही उनके मोह-बधन काटने मे लगी थी, उसे भला यह कैसे रुचिकर हो सकता था। प्रकृति ने माता और पिता के मोह का बंधन काट फैंका था मगर जवाहरलालजी के लिए मामा के मोह का एक नवीन बधन उत्पन्न हो गया था। ऐसी स्थिति मे प्रकृति कब निश्चेष्ट रह सकती थी। उसने इस बधन को भी काट फैंकना ही उचित समझा। जब आप तेरह वर्ष के हुए तो आपके मामाजी तेतीस वर्ष की उम्र में ही स्वर्गवासी हो गये। माता-पिता की गोद छिन जाने पर जो आश्रय मिला था वह भी अब सदा के लिए भग हो गया।

मामाजी की मृत्यु से चरितनायक के हृदय को गहरी चोट लगी। इधर मामाजी का वियोग उनके लिए असह्य हो उठा, उधर दुकान का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उनके सिर आ पडा। विधवा मामी और पाच वर्ष के ममेरे भाई घासीरामजी के पालनपोषण की जिम्मेदारी भी इन्ही पर आई।

मामाजी की अकाल-मृत्यु ने जैसे उन्हे निद्रा से जगा दिया। आपको ससार की दुःख-बहुलता का ज्ञान हुआ। मन-ही-मन सोचने लगे- जीवन पानी के बुलबुले के समान है। हवा का एक हल्का-सा झोका उसे समाप्त कर देता है। भवन, धन, तन और स्वजन- सब यहीं रह जाते है और हस निकल जाता है। प्राणी इन पराई वस्तुओ के मोह मे क्यो पड़े है ! इस जीवन का क्या उद्देश्य है! कहा की सार्थकता है! ससार का वैभव-विलास क्या जीवन की सफलता की कसौटी है! यह क्षण-नश्वर भोग्य पदार्थ क्या 'अनत जीवन' मे काम आ सकते है! और यह शरीर! कितना बेवफा है! कैसा दगाबाज है! शरीर, आत्मा का उपयोग कर रहा है! और आत्मा, शरीर की कितनी व्यथाए भोग रहा है ? इस मूर्खता का अत होना ही चाहिए।

वैराग्य

'चैतन्य आत्मा! तेरी यह गभीर भूल है कि अब तक आत्मा को भूला रहा। अब मेरी बात तू मान ले, अपनी भूल को सुधारने की चेष्टा कर। तू परमात्मा का भजन कर। परमात्मा का सान्निध्य ही तुझे अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। तू आप ही अपना कर्त्ता है और जगत् के अन्य पदार्थ तेरे सहायक है। तू उनसे काम लेने वाला स्वामी है। पर तू यह बात भूल रहा है। तू जिनका स्वामी है उनका दास बन रहा है- उनकी अधीनता मे आनन्द मान रहा है। इसलिए अपना अज्ञान दूर कर और देख कि तेरे साधन तुझे किस कटकाकीर्ण पथ पर घसीटे लिये जा रहे है। अज्ञान दूर होते ही दिव्य प्रकाश तेरा स्वागत करेगा और परम कल्याण का पथ प्रदर्शित करेगा।'

'हे आत्मन्! अनन्त काल व्यतीत हो चुका है फिर भी तूने धर्म की विशिष्ट आराधना नहीं की। इस कारण तू सिद्धरूपी कोयल होकर ससारी जीवरूप कौवा बना हुआ है। अब तुझे अत्यन्त अनुकूल अवसर हाथ लगा है। यह अवसर बार-बार नही मिलने का। इस समय तू अपनी शक्ति का प्रयोग कर। अपने पुरुषार्थ को काम मे ला। अगर अब भी तू अपना जोश न दिखायेगा तो अनादिकाल से अब तक जिस स्थिति में रहा है, उसी स्थिति मे चिर-काल पर्यन्त रहना पडेगा।'

यह उद्‌गार, जिनमे अमृत का झरना बह रहा है और जो आत्मा को पवित्र प्रेरणा एव स्फूर्ति देने वाले है, हमारे चरितनायक की अन्तरात्मा के उद्‌गार हैं। यह मुमुक्षु पुरुष का अन्तर्नाद है। इन उद्‌गारो ने वाणी का रूप भले ही बाद में धारण किया हो मगर संसार से विरक्त होते समय उनके हृदय-प्रदेश में यह उत्पन्न हो चुके थे।

इस प्रकार के विचारो मे मग्न रहने के कारण उनका वैराग्य दिनों-दिन बढता गया। जिस दुकान को उन्होने बडी लगन के साथ चलाया था, अब उसमे उनका मन नही लगता था। उन्हें घर सराय के समान मालूम होता था। सराय में मुसाफिर दो दिन ठहरता और चल देता है। दो दिन के लिए लम्बी-चौड़ी दुकान जमाकर बैठ जाना और चलने की फिकर न करना अज्ञान है। मनुष्य को अपनी महायात्रा की भी कुछ चिन्ता करनी चाहिए। माता,पिता और मामा के वियोग का स्मरण आने पर चित्त मे व्यथा उत्पन्न हो उठती थी; मगर इस समय उनकी प्रधान चिन्ता यही थी कि ससार के प्रपच से किस प्रकार और कब छुटकारा मिले!

उन्होने दुकान उठाने का निश्चय कर लिया। धीरे-धीरे काम समेटना शुरू किया। लेन-देन चुकता करने लगे। इस प्रकार विरक्त हो जाने पर भी आप अपने भविष्य का निर्णय न कर पाये। आप यह निश्चय न कर सके कि अब करना क्या चाहिए ? हृदय में प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। इस जिज्ञासा के कारण आप बेचैन से रहने लगे। वास्तव में किसी अच्छे गुरु का ससर्ग हुए बिना इस जिज्ञासा की निवृत्ति होना अशक्य था।

गुरु की प्राप्ति

'पुस्तक सामने भले रहे; परन्तु उसका ज्ञान गुरु से ही प्राप्त करना उचित है। गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त करना अधेरे में आरसी लेकर मुह देखने के समान है। आज गुरु की सहायता लिए बिना ज्ञान प्राप्त किया जाता है, यह बुराई है। प्रत्येक बात गुरु के समीम समझकर उस पर विश्वास करो तो भ्रम मे पडने से बच सकते हो और आत्मा का कल्याण कर सकते हो।'

हमारे चरितनायक का यह उपदेश उनकी उस समय की मनोवृत्ति का परिचायक है जब आप गुरु के बिना बेचैन हो रहे थे। ससार के प्रति विरक्ति को जाने पर भी आपको अपना कर्त्तव्य नही सूझ रहा था। सयोग से उन्ही दिनो थादला मे मुनिवर्य श्रीराजमली महाराज के शिष्य मुनि श्रीघासीलाल जी महाराज तथा मगनलालजी महाराज और श्रीघासीलालजी महाराज के शिष्य श्रीमोतीलाल जी महाराज तथा देवीलालजी महाराज पधारे। आप मुनियो के दर्शन करने गये। उनका प्रवचन भी सुना। चरितनायक को जैसे गुरु की तलाश थी वैसे ही गुरु मिल गए। मुनियो ने ससार से छुटकारे का मार्ग वतलाया और मुनिधर्म का स्वरूप समझाया। आप सासारिक प्रपचों से पहले ही निवृत्त हो चुके थे।

दीक्षा का मार्ग जानकर आपको ऐसा हर्ष हुआ जैसे जगल मे मार्ग भूले मनुष्य को अपने घर का मार्ग मिल गया हो। उन्होंने मन ही मन मुनिव्रत धारण करने का विचार कर लिया।

पुण्यशाली पुरुषो के लिए थोडा-सा भी धर्मोपदेश हितकर साबित होता है।प्राचीन कथा-साहित्य मे ऐसी अनेक घटनाओ का उल्लेख है। इन्ही घटनाओ की पुनरावृत्ति हमारे चरितनायक की जीवनी मे हुई।

दुविधा में

मुनि-दीक्षा अंगीकार करने का विचार कर लेने पर भी श्री जवाहरलालजी के मार्ग में एक बड़ी अडचन थी। वह अडचन किसी बाह्य व्यक्ति या वस्तु के कारण नही थी। वे इतने साहसी और निर्भय थे कि इस प्रकार की अनेक अड़चनें आने पर भी कभी कातर नहीं हो सकते थे। मगर यह अडचन तो उन्ही की अन्तरात्मा से उत्पन्न हुई थी। और उसका सम्बन्ध उनके दूसरे कर्त्तव्य के साथ था। महापुरुष किसी बाहरी अडचन की परवाह नही करते, किन्तु जहा कर्त्तव्य बुद्धि स्वयं दो मार्गो की ओर प्रेरणा करती है वहां निश्चय करना कठिन हो जाता है। उस समय वे अत्यन्त अशान्त और बेचैन हो जाते है। दो ओर से जहा एक साथ आह्वान हो रहा हो वहा किस ओर जाना चाहिए ? दुविधा की यह स्थिति बडी नाजुक होती है। ऐसी ही परिस्थिति में अर्जुन जैसा महान् योद्धा गांडीव छोडकर किकर्त्तव्य-विमूढ हो गया था। सौभाग्य से कृष्ण जैसे कुशल सलाहकार उस समय अर्जुन के समीप थे, मगर श्री जवाहरलालजी को स्वय ही अपना कर्त्तव्य स्थिर करना था।

पहले बतलाया जा चुका है कि जवाहरलालजी का एक पाच वर्ष का ममेरा भाई था। मामाजी के देहान्त के बाद उसके भरण-पोषण का भार आपके कन्धो पर ही आ पडा था। जब-जब आप दीक्षा ग्रहण करने का विचार करते तब-तब मामा के उपकारों का स्मरण हो आता। आपका हृदय गद्‌गद् हो उठता। आप सोचते- उस उपकार के नाते इस बालक के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मेरे बाद इस बालक का क्या होगा ? इसके पालन-पोषण की क्या अवस्था होगी।

जवाहरलालजी बहुत दिनो तक इस दुविधा में फसे रहे। बहुत सोचने पर भी किसी निष्कर्ष पर न पहुच सके। इस दुविधा के कारण उनके चित्त की व्याकुलता और भी बढ गई। वे अशान्त रहने लगे।

समाधान

'हमारे अन्दर अनेक त्रुटियो में से एक त्रुटि यह भी है कि हम अपनी अन्तरग-ध्वनि की ओर ध्यान नही देते। अन्तरात्मा जिस बात को पुकार-पुकार कर कहता है उसे सुनने और समझने की ओर हमारा ध्यान नही जाता। अगर मनुष्य अपने अन्तर्नाद की ओर ध्यान दे तो उसे प्रायः कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय मे विमूढ न होना पडे।'

हमारे चरितनायक ने शायद अपनी इसी अवस्था के अनुभवो पर यह वाणी उच्चारी है। अब तक आपके सामने जो विकट समस्या उपस्थित थी और सुलझाये नही सुलझती थी, उसका समाधान अन्तरात्मा की ध्वनि से क्षण भर में हो गया। मानो लोकोत्तर प्रकाश मिल गया।

बात यो हुई कि आप अपने उस भाई को छाती पर लिटाकर अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर विचार कर रहे थे। भाई के स्नेह और ससार के प्रति वैराग्य मे द्वन्द्व युद्ध चल रहा था। कभी एक ओर झुकाव होता, कभी दूसरी ओर। इतने मे अन्तरात्मा ने प्रश्न किया-'जब तुम पाच वर्ष के थे तब क्या हुआ था ?' बस इसी प्रश्न मे समस्या का पूर्ण समाधान समाया हुआ था। अन्तरात्मा ने फिर कहा-'ससार मे कोई किसी पर निर्भर नही है। सभी अपना-अपना भाग्य साथ मे लाये है। मुनष्य अपने को दूसरे का पालक-पोषक मानकर अहकार बढाता है। एक दूसरे का भाग्य-विधाता नही वन सकता।'

एक बार श्री जवाहरलालजी के मस्तिष्क में उनकी सारी जीवनी चित्रपट की भांति चक्कर काट गई। मा दो वर्ष का छोड गई और पिताजी पाच वर्ष का। उस समय मेरा पालन करने वाला कौन था ? क्या यह बालक भी तकदीर लेकर न आया होगा ? भाग्य विपरीत होने पर मेरा आश्रय भी कितने दिन टिक सकता है ? अगर आज मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाय तो इसका आश्रय-दाता कौन होगा ?

इस प्रकार विचार करके श्री जवाहरलालजी ने बिना विलब आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने का फैसला लिया।

श्री जवाहरलालजी की प्रकृति आरंभ से गम्भीर रही है। मन में दीक्षा का निश्चय कर लेने पर भी उसे जल्दी प्रकट कर देना उन्होंने उचित न समझा। अब वे प्रतिदिन व्याख्यान सुनने जाते, साधुओ की संगति करते और अधिक समय ज्ञान-ध्यान में बिताते। इस प्रकार वे मन ही मन दीक्षा के संकल्प को दृढ करने लगे।

आपके तीन सहपाठी भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार हुए थे। उनके नाम थे-श्रीमीयाचन्दजी, भानचन्द्रजी और खेमचन्द्रजी। कुछ समय बाद उनका वैराग्य तो शान्त हो गया मगर आपका वैराग्य क्रमशः बढ़ता ही चला गया।

दृढ़ और स्थायी निश्चय सफलता का प्रधान करण है। महापुरुष अपने हित-अनहित का और सभावनाओं का विचार करके एक बार जो निश्चय कर लेते है, उससे फिर विचलित नही होते। विघ्न-बाधाए उन्हें अपने पथ से डिगा नही सकती। आपत्तिया और विपत्तिया उनका रास्ता नही रोक सकती। उनका सकल्प इतना प्रबल होता है कि सफलता उनकी ओर खिंची चली आती है। श्री जवाहरलालजी ने मुनि-व्रत धारण करने का प्रबल सकल्प कर लिया था; फिर ससार की कौन-सी शक्ति थी जो उन्हें विचलित करने मे समर्थ होती ?

कसौटी

'तुम ऐसी जगह खडे हो जहा से दो मार्ग फ टते है। तुम जिस ओर चाहो, जा सकते हो। एक ससार का मार्ग है, दूसरा मुक्ति का। अर्थात् एक मार्ग बधन का और दूसरा स्वाधीनता का। ससार के-बधन के-मार्ग पर चलोगे तो चलने का कभी अंत ही नही आ सकेगा और लक्ष्य पर कभी पहुच नहीं सकोगे। मुक्ति का मार्ग शीघ्र ही भव-भ्रमण का अत लाता है। शास्त्रकारो ने मोक्ष-मार्ग पर चलने की प्रेरणा की है।'

'जो मनुष्य इस अमूल्य मानव-देह को पाकर भी मौज-शौक मे इसे गवा देता है उसके बराबर कोई मूर्ख नही कहला सकता। बुद्धिमान् मनुष्य इस देह को पाकर क्षण-क्षण मे अपनी श्रेष्ठ-साधना का

मत्र जपता रहता है; पर मूर्ख यही समझता है कि मनुष्य-जन्म पाया है- फिर ऐसी देह नहीं मिलेगी, इसलिए जो कुछ मौज-शौक करलूं, वही मेरी है।'

जिस महात्मा के हृदय से आगे चलकर इस प्रकार के उद्‌गार निकले हैं, वह भला कबतक दुनियादारी के चक्कर मे फसा रहता ? जब उसने देखा कि मेरी मानसिक तैयारी पूर्ण हो चुकी है और अब विलम्ब करना उचित नहीं है तो उसने दीक्षा ग्रहण करने का अपना विचार अपने पिताजी के बड़े भाई धनराज जी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। ताऊजी को जवाहरलालजी का विचार सुनकर बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ। उन्होंने जवाहरलालजी के विचारों की गहराई को नही पहचाना- सोचा-'नादान बालक है। साधु के बहकावे में आ गया है। डाट-फटकार से रास्ते पर आएगा।' यह सोचकर उन्होंने डाट-फटकार दिखलाकर चुप कर दिया। मगर यहा तो रग पक्का चढ चुका था। वह उतरने वाला न था। ताऊजी की फटकार कामयाब नही हुई। जवाहरलालजी का विचार अटल ही बना रहा।

धनराजजी ने जब देखा कि डाट-डपट से काम नही चलेगा तो उन्होंने उनका साधुओं के पास आना-जाना बद कर दिया। निगरानी के लिए अपने दो लड़के नियुक्त कर दिये और सख्त हिदायत कर दी कि उनमें से कोई एक हर समय जवाहरलालजी के पास रहे और उन्हे साधुओ के पास न जाने दे।

इस प्रतिबन्ध के कारण कुछ दिनों तक उनका साधुओ के पास आना-जाना रुका रहा। मगर प्रतिवन्ध ढीला होते ही फिर आवागमन आरभ हो गया। साधुओं के पास न जा सकने पर भी उनके विचारो मे तनिक भी शिथिलता न आई । वे पहले की भांति दृढ़ रहे। आपने उन्हीं दिनो सचित्त जल पीने का त्याग कर दिया।

दूसरी चाल

धनराजजी ने जब देखा कि साधुओ के पास आना-जाना बद करके भी वे श्री जवाहरलालजी के विचार नही बदल सके तो उन्होने दूसरी चाल चली। गाव के सभी लोग आपके दीक्षा लेने के विचारो से परिचित हो चुके थे। धनराजजी ने अपने सब मिलने-जुलने वालो को समझा दिया कि जब कभी जवाहरलालजी उनसे मिले तो वे साधुओ की निन्दा किया करे। उन्हें साधुओ का भय दिखाए-साधुओ को भयकर रूप मे चित्रित करे, जिससे उनके विचार बदल जाय।

ताऊजी की यह शिक्षा उनके सभी परिचित सज्जनों ने कण्ठ तक उतार ली। उनमे से जो जवाहरलालजी से मिलता वही भरपेट मुनियो की निन्दा करता। कोई बूढा कहता-'बच्चा, तुम साधु मत होना। साधु लडकों को ले जाकर जंगल मे छोड़ देते है और उनका सामान खोस लेते है ?' कोई-कोई आलकारिक भाषा मे कहते-साधु बच्चो को पीट-पीटकर हलुवा बना देते है। कड़कडाते तेल के कढ़ाहे मे कचौरी की तरह उबालते है।' इस तरह जितने मुह, उतनी ही बाते जवाहरलालजी को सुनाई पड़ती। मगर आप भी अपनी धुन के पक्के थे। वे किसी के बहकावे मे न आये और अपने निश्चय पर निश्चल बने रहे। यही नहीं, वरन् इस प्रकार के व्यवहार से उन्होने अपने निश्चय को और भी दृढ़ कर लिया।

एक बार एक वैरागी बाबा आपके मकान पर आये। नाम था उनका परमानन्दजी, मगर बावाजी के नाम से ही वह मशहूर थे। खूब मालदार और खूब प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वह धनराजजी के मित्र थे। जवाहरलालजी के दीक्षा सबधी विचार उन्हे भी विदित हो चुके थे। वे तरह-तरह से इन्हे समझाने लगे। उन्होने अपने जीवन भर में संचित समस्त बुद्धिमत्ता खर्च कर दी मगर मुद्ग शैल की दृढता धारण किये हुए श्री जवाहरलालजी पर उनकी बुद्धिमत्ता ने कुछ भी असर नही दिखाया।

बाबाजी की बातो का उत्तर देना व्यर्थ समझकर जवाहरलालजी मौन साधे बैठे रहे। ताऊजी के मित्र होने के नाते भी उन्होने नम्रता धारण करना और विरोध न करना उचित समझा। मगर इस मौन का असर बाबाजी पर उलटा पडा। बातो ही बातो मे वह बहुत आगे बढ गए। धमकाकर कहने लगे-'धनराजजी तुम्हे दीक्षा लेने की अनुमति कदापि नही देगे। अगर गड़बड करोगे तो पकड़ कर खाट के साथ बाध दिये जाओगे।'

बाबाजी को आसमान पर चढते देख जवाहरलालजी ने उत्तर देना ही उचित समझा। उन्होने गभीर और शांत स्वर मे कहा- 'बाबाजी, आप इतनी बातें तो कह गए मगर आपने यह विचार न किया कि इनका सभालना कठिन हो सकता है। मुझे दीक्षा लेने की अनुमति मिल गई तो आपकी बातो की क्या कीमत रह जायगी ? आप जैसे सयाने व्यक्ति की बातें एक बालक के सामने असत्य साबित हो, यह आप कैसे सहन कर सकेंगे ? आपके हक में अच्छा तो यही है कि आप विचार कर वचन निकाले। इसमे तो कोई सन्देह ही नही कि दीक्षा की अनुमति मुझे मिलेगी।'

जवाहरलालजी के इस उत्तर मे असीम आत्म-विश्वास भरा हुआ है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि मेरा सकल्प टल नहीं सकता। दुनिया मुझे विचलित नहीं कर सकती। इस प्रकार का दृढ आत्मविश्वास जिसे प्राप्त हो, वह बडा ही भाग्यशाली है। वह सारे ससार को अकेला ही पराजित कर सकता है। धन्य है यह दृढ़ता! धन्य है यह अक्षय अभिलाषा! धन्य है यह साहस!

वैरागी बाबा ने यह कल्पना भी न की होगी कि छोटा दिखाई देने वाला यह बालक इतना साहस कर सकता है! बाबाजी यह उत्तर सुनते ही चकित रह गए। वह मानो उडे जा रहे थे और बीच मे अचानक धक्का लगा और वह नीचे आ गिरे। इस अवज्ञा और दृढ़ता से भरे उत्तर को सुनकर उनका बोल बद हो गया। कौन जाने, बाबाजी ने मन ही मन बालक की बुद्धिमत्ता और साहसिकता की प्रशसा की या नही, मगर इतना वे समझ गये कि उसे समझा सकना उनके वश से बाहर की बात है।

इस प्रकार धनराजजी के धीरे–धीरे सभी शस्त्र बेकार होते गये। उन्होने अनेक यत्न किये मगर कोई सफल नही हुआ। किन्तु स्नेह का बन्धन साधारण बधन नहीं है। इस बधन से प्रेरित होकर धनराजजी इस बात पर तुले थे कि जवाहलाल किसी प्रकार अपना इरादा बदल दे; यदि वह सभव नहीं तो यह भी असभव है।

आंशिक त्याग

'अखड ब्रह्मचारी मे अद्भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नही है ? अखड ब्रह्मचारी अकेला ही सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियो को

और मन को अपने वश में कर लिया हो। इद्रिया जिसे फुसला नही सकतीं, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता। ऐसा अखड ब्रह्मचारी शीघ्र ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।'

'ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए और साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अकुश रखने की बहुत आवश्यकता है। जिह्वा पर अकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानिया होती है।'

हमारे चरितनायक ने ब्रह्मचर्य और रसना-निग्रह के विषय में जो प्रभाव-शाली उपदेश दिया है, उसे पहले अपने जीवन मे उतार लिया था। यह उपदेश उनके जीवन के अनुभव पर अवलंबित है। जब आप वैरागी अवस्था मे थे तभी से त्याग की ओर आपकी भावना बढ़ती जा रही थी। सचित्त जल पीने का त्याग आप पहले ही कर चुके थे। अब आपने सचित्त वनस्पति खाने का और रात्रि-भोजन का भी त्याग कर दिया। इस प्रकार जिह्वा पर अकुश स्थापित करने के पश्चात् आपने कुछ दिनों बाद आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया।

आत्मिक उन्नति के लिए त्यागशील बनना आवश्यक है। सभी मत और सभी पथ त्याग का विधान और समर्थन करते है। जैनधर्म तो त्याग की नींव पर ही खड़ा हुआ है। त्याग आत्मा में दृढ़ता उत्पन्न करता है और कठिनाइयों को जीतने मे समर्थ बनाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाने का त्याग कर देता है तो उसे रसनेन्द्रिय के सयम का अभ्यास करना ही होगा। रसनेन्द्रिय का सयम ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक है। जो जीभ को वश मे नही कर सकता वह ब्रह्मचर्य का पालन भी नही कर सकता। ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। ऊपर चरितनायक के जो उपदेश-वाक्य दिये है, उनमें थोडे से शब्दो मे ही ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन कर दिया गया है।

इस प्रकार एक-एक वस्तु का त्याग भी धीरे-धीरे विकास की ओर ले जाता है। खाने, पीने, सोने, बैठने आदि के काम आने वाली भोग्य वस्तुओ मे से जिनका जितना त्याग किया जाता है, आत्मा उतना ही बलवान् बनता है। क्या धार्मिक और सामाजिक, सभी दृष्टियो से इंद्रिय-संयम जीवन-विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

हमारे चरितनायक पूर्ण-त्याग के मार्ग पर चलना चाहते थे, अतएव उसके लिए उन्होने पहले से ही तैयारी आरभ कर दी। ताऊजी ने स्नेह के वश होकर उन्हें त्याग से च्युत करने का प्रयत्न किया, मगर आप दृढ़ बने रहे। ताऊजी के द्वारा लगभग प्रतिदिन ही कोई-न-कोई अडचन उपस्थित की जाती थी। यह देखकर आपने घर मे भोजन करना छोड दिया। आप थादला मे ही दूसरे श्रावको के घर भोजन करने लगे। इस प्रकार श्रीधनराजजी के प्रयत्नो का फल विपरीत हुआ और उनके प्रयत्नो के कारण भी जवाहरलालजी त्याग के पथ पर शीघ्रतापूर्वक दृढ होते चले गए।

वाल्यावस्था की प्रतिभा

जवाहरलालजी मे प्रतिभा का वैभव जन्म-जात था। वे उन भाग्यवान् महापुरुषों में से एक थे, जिन्हे प्रतिभा विरासत मे मिलती है। इसी कारण वे वाल्यावस्था मे भी तीव्र प्रतिभा-शाली और प्रत्युत्पन्नमति थे। किसी बात का तत्काल माकूल उत्तर देना आपकी विशेषता रही है। एक ही उदाहरण से उनकी प्रखर प्रतिभा का पाठकों को पता चल जायगा।

एक बार आप किसी ब्राह्मण पडित के घर जाकर अपनी जन्म-पत्री दिखा रहे थे। उसी समय वहा पण्डित आत्मारामजी आ पहुचे। वे राज्य के एक अधिकारी थे। मामा मूलचन्दजी के मित्र होने के कारण जवाहरलालजी उन्हें भली-भाति जानते थे।

जवाहरलालजी ने ज्योतिषी से पूछा-'कोई ऐसा ग्रह बतलाइए जो मेरी दीक्षा मे सहायक हो।

पडित आत्मारामजी ने उन्हें चिढाने के उद्देश्य से कहा- 'क्या तुम ढूढिया साधु वनना चाहते हो ? क्या तुम्हे मालूम है, ढूढियों की उत्पत्ति कैसे हुई ?'

जवाहरलालजी-'जी हा, मैं ढूढिया साधु बनना चाहता हूं। आप बताइए, किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है ?'

आत्मारामजी ने आरंभ किया-महात्मा गोरखनाथ के दो चेले थे- एक का नाम था मछेन्द्रनाथ और दूसरे का पारसनाथ। एक दिन गुरुजी ने दोनो चेलो को भिक्षा लाने के लिए भेजा। बेचारे बहुत घूमे पर भिक्षा नही मिली। एक जगह बनियो की पगत हो रही थी। पारसनाथ वहा पहुंच गए और उन्होने भिक्षा की याचना की। पगत के पास एक मरी बछिया पडी थी। बनियो ने कहा- इसे ले जाकर दूर फैक आओ तो तुम्हे बढिया पकवान देगे।

पारसनाथ ने बिना सकोच मरी बछिया खीचकर दूर फैक दी। बनियो ने खूब मिठाई दी। उसे लेकर पारसनाथ अपने गुरुजी के पास पहुचा।

उधर मछेन्द्रनाथ खाली हाथ लौटा। गुरु गोरखनाथ ने मछेन्द्र को बहुत धिक्कारा और पारसनाथ की प्रशसा की! मछेन्द्रनाथ ने उसी समय पारसनाथ की पोल खोल दी। बछिया वाली बात सुनकर गुरुजी ने पारसनाथ को अपने आश्रम से निकाल दिया और शाप दिया- 'तुमने जिन बनियों की बछिया खीची है, आज से तुम उन्हीं के गुरु हो गए।'

बस, तभी से ढूढ़िया मत चल पडा। इसी घटना के चिह्न-स्वरूप ढूढिया साधु हाथ में गाय की पूछ के समान ओघा और अम्बाडे के समान पात्र रखते है। क्या तुम उन्ही पारसनाथ के चेले बनना चाहते हो ?

पंडितजी की यह मनगढ़त कहानी सुनकर जवाहरलालजी ने उसी समय उत्तर दिया- 'पडित, आप अधूरी बात कह रहे हैं। इस कहानी में बहुत-सी बाते छूट गई हैं। आपकी आज्ञा हो तो मैं उन्हे पूरी कर दूँ'

पडितजी के पूछने पर श्री जवाहरलालजी ने कहना आरम्भ किया-'वास्तव में बात यह है कि बछिया बहुत भारी थी। पारसनाथ अकेले उसे खीच नहीं सके। सहायता के लिए उन्होने मछेन्द्रनाथ को बुलाया। मिठाई के लोभ से वह भी आकर सम्मिलित हो गया। मछेन्द्र ने मुह के तरफ से बछिया पकडी और पारसनाथ ने पूछ की तरफ से, दोनों उठाकर उसे दूर फैक आये। मगर बनियो ने कहा- हमने अकेले पारसनाथ को मिठाई देने का वायदा किया था, मछेन्द्रनाथ को नही। यह कहकर उन्होने उसे मिठाई नही दी। इससे मछेन्द्रनाथ चिढ़ गया। उसने गुरु के पास जाकर पारसनाथ की शिकायत कर दी। गुरुजी को नाराज होते देख पारसनाथ ने भी मछेन्द्रनाथ की पोल खोल दी। गुरुजी मछेन्द्र पर

भी क्रोधित हो गए। उन्होंने उसे शाप दिया-"आज से तुम ब्राह्मणों के गुरु हुए। इस पाप के लिए तुम्हारे हाथ मे गाय का मुह रहेगा और उसकी आते धारण करोगे।"

तभी ब्राह्मण हाथ में गोमुखी रखते है और आंतों की तरह जनेऊ पहनते हैं। माला फेरते समय गोमुखी मे हाथ रखते है और स्नान करते समय जनेऊ को आंते मानकर खूब धोते है, जिससे उनमे वदवू न आने पावे। गाय की पूछ में तेतीस कोटि देवताओ का वास माना जाता है। उसका अम्बाडा अमृत का स्थान है। यह दोनों अग गाय के शरीर में बहुत पवित्र माने जाते है। इसके विपरीत गाय का मुह अपवित्र माना जाता है। उससे गाय अशुचि पदार्थो को भी खा जाती है। आंतें तो अपवित्र है ही। ये दोनो चीजें ब्राह्मणो के पल्ले पड़ी। अब आप ही सोच देखिये, दोनो मे बुरा कौन ठहरा?'

श्री जवाहरलालजी का जैसे-का-तैसा उत्तर सुनकर आत्मारामजी अवाक् रह गए। यद्यपि यह एक कल्पित कहानी है, इसमें कोई तथ्य नहीं है, किन्तु श्री जवाहरलालजी की कल्पना-शक्ति और प्रतिभा का इससे भली-भाति अनुमान किया जा सकता है। छोटी-सी अवस्था में इतनी बडी बात तत्काल गढ़ लेना साधारण बात नही है। इसके लिए प्रखर प्रतिभा चाहिए; और एक राज्याधिकारी के सामने निर्भयता के साथ उसे कहने की हिम्मत होना भी कठिन है। मगर श्री जवाहरलालजी में इस हिम्मत की भी कमी नही थी। ईट का जवाव पत्थर से देना भी उन्हे खूब आता था। वस्तुत. इन गुणो के अभाव में कोई भी व्यक्ति महत्ता प्राप्त नही कर सकता।

इन दिनो श्री जवाहरलालजी जल में कमल की भाति अलिप्त भाव से घर मे रहते थे, तथापि उन्हे वर्त्तमान स्थिति मे भी सतोष नही था। वे ऐसा कोई उपाय खोज रहे थे जिससे अनगार बनने की उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी हो सके। उधर ताऊजी दीक्षा न लेने-देने पर तुले हुए थे। जवाहरलालजी की प्रत्येक प्रवृत्ति पर उनकी निगाह रहती थी।

एक वार श्री जवाहरलाल जी ने सुना कि संसार-सागर से पार उतारने वाले मुनिराज इस समय लीवडी मे विराजमान है। यह स्थान थांदला से वारह कोस दूर है। जवाहरलालजी की बडी उत्कठा हुई कि उनके दर्शन करके नेत्र सफल करू किन्तु कोई उपाय न था। तथापि श्रीजवाहरलालजी निराश होना नही जानते थे। उन्हे विश्वास था कि जहा इच्छा प्रबल है वहां कोई न-कोई मार्ग निकल ही आता है। अतएव अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

जवाहरलालजी के चचेरे भाई (धनराजजी के पुत्र) उदयराजजी किसी काम से दाहोद जाने के लिए तेयार हुए। दाहोद से लीवड़ी नजदीक ही है। जवाहरलालजी भी उनके साथ चलने को तैयार हो गये। दोनो वेलगाडी मे वैठकर चल दिये।

रास्ते मे अनास नदी पडती थी। नदी तक पहुचते-पहुचते अधेरा हो गया। नदी मे वेल उतर तो गये किन्तु चढाव मे कचिया गये। चढाने का प्रयत किया गया तो कभी इधर मुड जाते, कभी उधर। नदी पहाड़ी थी और उस समय उसमे पानी नही था किन्तु पत्थरो की भरमार थी। भयानक जंगल था, अधकार से परिपूर्ण काली रात फैल गई थी। पथरीला रास्ता था; पग-पग पर गाडी उलटने की सम्भावना थी। जवाहरलालजी उस समय पन्द्रह वर्ष के और उदयराजजी सत्तरह वर्ष के थे। गाडीवान भी इन्ही के अनुरूप छोटी उम्र का था। भीलों की आवादी होने के कारण लूटे जाने का भय सिर पर मंडरा रहा था।

एक बार आप किसी ब्राह्मण पडित के घर जाकर अपनी जन्म-पत्री दिखा रहे थे। उसी समय वहा पण्डित आत्मारामजी आ पहुचे। वे राज्य के एक अधिकारी थे। मामा मूलचन्दजी के मित्र होने के कारण जवाहरलालजी उन्हे भली-भाति जानते थे।

जवाहरलालजी ने ज्योतिषी से पूछा-'कोई ऐसा ग्रह बतलाइए जो मेरी दीक्षा मे सहायक हो।

पंडित आत्मारामजी ने उन्हे चिढ़ाने के उद्देश्य से कहा- 'क्या तुम ढूढिया साधु बनना चाहते हो ? क्या तुम्हे मालूम है, ढूंढियो की उत्पत्ति कैसे हुई ?'

जवाहरलालजी-'जी हा, मैं ढूंढिया साधु बनना चाहता हू। आप बताइए, किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है ?'

आत्मारामजी ने आरंभ किया- महात्मा गोरखनाथ के दो चेले थे- एक का नाम था मछेन्द्रनाथ और दूसरे का पारसनाथ। एक दिन गुरुजी ने दोनो चेलो को भिक्षा लाने के लिए भेजा। बेचारे बहुत घूमे पर भिक्षा नही मिली। एक जगह बनियों की पगत हो रही थी। पारसनाथ वहा पहुच गए और उन्होने भिक्षा की याचना की। पंगत के पास एक मरी बछिया पड़ी थी। बनियो ने कहा- इसे ले जाकर दूर फैक आओ तो तुम्हे बढिया पकवान देंगे।

पारसनाथ ने बिना सकोच मरी बछिया खींचकर दूर फैक दी। बनियो ने खूब मिठाई दी। उसे लेकर पारसनाथ अपने गुरुजी के पास पहुंचा।

उधर मछेन्द्रनाथ खाली हाथ लौटा। गुरु गोरखनाथ ने मछेन्द्र को बहुत धिक्कारा और पारसनाथ की प्रशसा की। मछेन्द्रनाथ ने उसी समय पारसनाथ की पोल खोल दी। बछिया वाली बात सुनकर गुरुजी ने पारसनाथ को अपने आश्रम से निकाल दिया और शाप दिया- 'तुमने जिन बनियों की बछिया खीची है, आज से तुम उन्ही के गुरु हो गए।'

बस, तभी से ढूढ़िया मत चल पडा। इसी घटना के चिह्न-स्वरूप ढूढिया साधु हाथ मे गाय की पूछ के समान ओघा और अम्बाड़े के समान पात्र रखते हैं। क्या तुम उन्ही पारसनाथ के चेले बनना चाहते हो ?

पडितजी की यह मनगढत कहानी सुनकर जवाहरलालजी ने उसी समय उत्तर दिया- 'पडित, आप अधूरी बात कह रहे है। इस कहानी मे बहुत-सी बाते छूट गई हैं। आपकी आज्ञा हो तो मै उन्हे पूरी कर दूँ'

पडितजी के पूछने पर श्री जवाहरलालजी ने कहना आरम्भ किया-'वास्तव मे बात यह है कि बछिया बहुत भारी थी। पारसनाथ अकेले उसे खीच नहीं सके। सहायता के लिए उन्होने मछेन्द्रनाथ को बुलाया। मिठाई के लोभ से वह भी आकर सम्मिलित हो गया। मछेन्द्र ने मुह के तरफ से बछिया पकड़ी और पारसनाथ ने पूछ की तरफ से, दोनो उठाकर उसे दूर फैक आये। मगर बनियो ने कहा- हमने अकेले पारसनाथ को मिठाई देने का वायदा किया था, मछेन्द्रनाथ को नही। यह कहकर उन्होने उसे मिठाई नही दी। इससे मछेन्द्रनाथ चिढ गया। उसने गुरु के पास जाकर पारसनाथ की शिकायत कर दी। गुरुजी को नाराज होते देख पारसनाथ ने भी मछेन्द्रनाथ की पोल खोल दी। गुरुजी मछेन्द्र पर

भी क्रोधित हो गए। उन्होंने उसे शाप दिया-''आज से तुम ब्राह्मणो के गुरु हुए। इस पाप के लिए तुम्हारे हाथ मे गाय का मुह रहेगा और उसकी आतें धारण करोगे।''

तभी ब्राह्मण हाथ मे गोमुखी रखते हैं और आतों की तरह जनेऊ पहनते है। माला फेरते समय गोमुखी मे हाथ रखते है और स्नान करते समय जनेऊ को आतें मानकर खूब धोते हैं, जिससे उनमें बदबू न आने पावे। गाय की पूंछ मे तेतीस कोटि देवताओं का वास माना जाता है। उसका अम्बाडा अमृत का स्थान है। यह दोनों अग गाय के शरीर मे बहुत पवित्र माने जाते हैं। इसके विपरीत गाय का मुह अपवित्र माना जाता है। उससे गाय अशुचि पदार्थो को भी खा जाती है। आंतें तो अपवित्र हैं ही। ये दोनो चीजे ब्राह्मणों के पल्ले पडी। अब आप ही सोच देखिये, दोनो मे बुरा कौन ठहरा?'

श्री जवाहरलालजी का जैसे-का-तैसा उत्तर सुनकर आत्मारामजी अवाक् रह गए। यद्यपि यह एक कल्पित कहानी है, इसमें कोई तथ्य नहीं है, किन्तु श्री जवाहरलालजी की कल्पना-शक्ति और प्रतिभा का इससे भली-भाति अनुमान किया जा सकता है। छोटी-सी अवस्था में इतनी बड़ी बात तत्काल गढ़ लेना साधारण बात नही है। इसके लिए प्रखर प्रतिभा चाहिए; और एक राज्याधिकारी के सामने निर्भयता के साथ उसे कहने की हिम्मत होना भी कठिन है। मगर श्री जवाहरलालजी मे इस हिम्मत की भी कमी नही थी। ईट का जवाब पत्थर से देना भी उन्हे खूब आता था। वस्तुत· इन गुणों के अभाव मे कोई भी व्यक्ति महत्ता प्राप्त नही कर सकता।

इन दिनो श्री जवाहरलालजी जल में कमल की भाति अलिप्त भाव से घर में रहते थे, तथापि उन्हे वर्त्तमान स्थिति मे भी संतोष नही था। वे ऐसा कोई उपाय खोज रहे थे जिससे अनगार बनने की उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी हो सके। उधर ताऊजी दीक्षा न लेने-देने पर तुले हुए थे। जवाहरलालजी की प्रत्येक प्रवृत्ति पर उनकी निगाह रहती थी।

एक बार श्री जवाहरलाल जी ने सुना कि ससार-सागर से पार उतारने वाले मुनिराज इस समय लीबड़ी में विराजमान हैं। यह स्थान थादला से बारह कोस दूर है। जवाहरलालजी की बड़ी उत्कंठा हुई कि उनके दर्शन करके नेत्र सफल करू किन्तु कोई उपाय न था। तथापि श्रीजवाहरलालजी निराश होना नहीं जानते थे। उन्हे विश्वास था कि जहा इच्छा प्रबल है वहां कोई न-कोई मार्ग निकल ही आता है। अतएव अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

जवाहरलालजी के चचेरे भाई (धनराजजी के पुत्र) उदयराजजी किसी काम से दाहोद जाने के लिए तैयार हुए। दाहोद से लींबड़ी नजदीक ही है। जवाहरलालजी भी उनके साथ चलने को तैयार हो गये। दोनों बैलगाड़ी में बैठकर चल दिये।

रास्ते में अनास नदी पड़ती थी। नदी तक पहुचते-पहुचते अधेरा हो गया। नदी मे बैल उतर तो गये किन्तु चढाव में कचिया गये। चढाने का प्रयत्न किया गया तो कभी इधर मुड़ जाते, कभी उधर। नदी पहाडी थी और उस समय उसमें पानी नही था किन्तु पत्थरो की भरमार थी। भयानक जगल था, अधकार से परिपूर्ण काली रात फैल गई थी। पथरीला रास्ता था; पग-पग पर गाड़ी उलटने की सम्भावना थी। जवाहरलालजी उस समय पन्द्रह वर्ष के और उदयराजजी सत्तरह वर्ष के थे। गाड़ीवान भी इन्ही के अनुरूप छोटी उम्र का था। भीलों की आवादी होन के कारण लूटे जाने का भय सिर पर मडरा रहा था।

तीनो ने मिलकर बहुत यत्न किया मगर गाडी नदी के चढाव पर न चढी। उदयराजजी और गाडीवान घबरा उठे। दोनो जोर-जोर से रोने लगे। मगर जवाहरलालजी किसी और ही धातु से बने थे। रोना उन्होने सीखा ही नही था। विपत्ति आने पर वह घबराते नही थे। उन्होने एक जगह कहा है- विपत्ति को सम्पत्ति के रूप मे परिणत करने का एक मात्र उपाय यह है कि विपत्ति से घबराना नही चाहिए। विपत्ति को आत्म-कल्याण का एक श्रेष्ठ साधन समझकर, विपत्ति आने पर प्रसन्न रहना चाहिए। जिसका विचार इतना उच्च गभीर है, उसके लिए यह विपत्ति तो नगण्य है। वह इससे कैसे घबराता ?

श्री जवाहरलालजी इस समय एकदम शान्त थे। उन्होने दोनो को धैर्य बधाया और कहा-'घबराने की क्या बात है ? गाडी क्या यहीं पडी रहेगी ? वह निकलेगी और जल्दी ही निकल जायगी।' इतना कहकर उन्होंने अपना काला कोट पहिना और छडी घुमाते हुए भीलों की बस्ती की ओर चल दिये। वहा जवाहरलालजी का एक परिचित भील रहता था। आप अकेले अधेरे मे उसी को बुलाने के लिए रवाना हुए। हिंसक पशुओ से भरे भयानक जगल में, रात्रि के समय, निर्भय होकर दो मील चलने पर आप भीलो की बस्ती मे पहुचे। परिचित भील को आवाज दी। उसे अपना हाल सुनाया और मिहनताना देने का वचन देकर उसे अपने साथ ले आए। गुलजी तड़वी नामक उस भील ने अपने साथ दस-बारह भील और लिये। उनकी सहायता से गाड़ी नदी के चढ़ाव पर चढ़ी और सबके जी मे जी आया।

रात भर वहीं कहीं विश्राम लेकर दोनों भाई दूसरे दिन दाहोद पहुचे। उदयचदजी अपना काम पूरा करके थादला लौट आये। श्री जवाहरलालजी वहा से लींबड़ी चल दिये। वहा जाकर वे साधुओ की सेवा मे रहने लगे और दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गए।

उदयचदजी जब अकेले थादला लौटे और धनराजजी को पता चला कि जवाहरलालजी लींबड़ी पहुच गये है, तो वह उसी समय लीबड़ी के लिए रवाना हुए। उन्हें भली-भाति पता था कि पखी पींजरे में से निकल चुका है और अब सरलता से यो ही वापस नही लौटने का। अब ऐसे चुग्गे की आवश्यकता है जिसके लोभ मे पड़कर पखी फिर पींजरे मे आ बसे। धनराजजी बड़े अनुभवी आदमी थे। जानते थे कि ससार का कोई भी प्रलोभन उस पखी को आकर्षित नही कर सकता। अतएव उन्होने ऐसे चुग्गे की व्यवस्था की कि पखी वश मे आ गया। वह चुग्गा क्या था ? थांदला के तत्कालीन सरपच शाहजी प्यारचद जीं का पत्र था, जिसमे जवाहरलालजी को लक्ष्य करके लिखा था-'तुम थादला लौट आओ। दीक्षा की आज्ञा दिलाने की जिम्मेवारी मुझ पर है।'

दीक्षा के प्रलोभन रूप चुग्गे से आकर्षिक होकर उड़ा हुआ पखी फिर लौट आया। आखिर दीक्षा के सिवाय उसे और चाहना ही क्या थी! उसने सोचा-'थादला जाते ही मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा मिल जायगी। मेरे मन की मुराद पूरी हो जायगी। अब बाबाजी के साथ चले जाने में हर्ज ही क्या है ?'

इस प्रकार विचार कर आप बाबाजी (श्री धनराजजी) के साथ लौट आये। मगर थादला आते ही बाबाजी ने रग पलट दिया। दीक्षा की आज्ञा देने से साफ इन्कार कर दिया। जवाहरलालजी को शाहजी का सहारा था। वे उनके पास पहुचे। मगर सरपच शाहजी अपनी लाचारी प्रकट करके रह गये! कहने लगे- 'मैने तुम्हारे बाबाजी को खूब समझाया मगर वे आज्ञा देने के लिए तैयार नही होते । मै क्या जानता था कि वे इस प्रकार पलट जायगे! उनकी लिखत मेरे पास होती तो कुछ कार्रवाई भी करता, मगर ऐसा कुछ है नहीं। जितना कह सकता था, कह चुका, उन्हे समझा चुका। अव क्या हो सकता है ?'

सरपंच महोदय की यह सरलतापूर्ण लाचारी देख श्री जवाहरलालजी को घोर निराशा हुई। फिर भी उन्होंने अपना सकल्प नही छोडा और किसी दूसरे अवसर की राह देखने लगे।

पुनः पलायन

थादले के भैरा धोबी के पास एक घोड़ा था, जिसे वह किराये पर भी चलाया करता था। श्री जवाहरलालजी ने वही घोड़ा पाच रुपये में तय कर लिया। भैरा अपने घोड़े पर उन्हें लीबड़ी पहुचा देगा। मगर गाव से ही घोड़े पर सवार होने में कठिनाई थी। बाबाजी को पता लग जाता तो निकलना असम्भव हो जाता। इसलिए निश्चित किया गया कि भैरा अपना घोडा लेकर नौगावा नदी पर दो पहर तक पहुच जायगा और बाद मे किसी समय जवाहरलालजी वहां आ मिलेंगे।

श्री जवाहरलालजी अपने निश्चित समय पर घर से बाहर निकले। महात्मा बुद्ध रात्रि के घोर अधकार मे घर से रवाना हुए थे, श्री जवाहरलालजी ने दुपहरी के चमकते सूर्य के प्रकाश में प्रस्थान किया। फिर भी दोनों का उद्देश्य समान था। जैसे ही आप गांव से बाहर निकले कि रास्ता भूल गए। लींबड़ी के बदले झाबुआ की राह पकड ली। कुछ ही दूर गये थे कि एक रिश्तेदार से भेंट हो गई। वे आपके रिश्ते में बहनाई होते थे और आपके विचारो से परिचित थे। उनका नाम था कोदाजी घोड़ावत। उन्होने सारा वृत्तान्त सुनकर आपको ठीक रास्ता बतला दिया।

नदी के किनारे चलते-चलते आप भैरा धोबी के पास पहुंचे और घोड़े पर सवार होकर लीबड़ी की ओर रवाना हुए। पांच कोस चलने पर सूर्य अस्त हो गया। रास्ते की चौकी पर सिपाही ने रोका। अगले गाव मे ठहर जाने का वायदा करके चौकीदार से पिण्ड छुड़ाया और आगे चले।

जो रास्ता सीधा लीबडी जाता था उसमें बड़े-बड़े पहाड़ थे और जंगल भी था। जगली जानवरों का भी भय बना रहता था। रात में उस रास्ते जाना खतरनाक था। कदाचित् आप तैयार हो जाते तो भैरा हरगिज जाना मजूर न करता। उसे अपनी और अपने घोड़े की जान की जोखिम भी तो थी। अतएव श्री जवाहरलालजी ने सीधा मार्ग छोड़कर लम्बे मार्ग से ही जाना उचित समझा। चलते-चलते दाहोद के नजदीक पहुचे। वहा खान नदी के किनाने एक खरबूजे वाले की झोंपड़ी थी। उसी झोपडी में शेष रात्रि बिताकर प्रातःकाल होते ही फिर रवाना हुए।

रास्ते मे एक हूमड़ महाजन मिले। वे आपके मित्र थे। उन्होंने भोजन के लिए बहुत आग्रह किया परन्तु आप सचित्त जल के त्यागी थे और अचित्त जल तैयार नहीं था। विलम्ब करना असह्य होने के कारण सिर्फ भैरा को भोजन कराकर वे तत्काल वहा से चल दिये।

जिस वात की आशका थी वही हुई। बहुत जल्दी करने पर भी जब आप लीबड़ी पहुचे तो आपका स्वागत करने के लिए बाबाजी वहां मौजूद मिले। बाबाजी उनसे भी पहले पहुच गये थे। उन्होंगे मार्ग की भयानकता का खयाल नहीं किया और सीधे मार्ग से ही आ पहुंचे थे।

बाबाजी ने श्री जवाहरलालजी को थांदला लौटने के लिए शक्ति भर समझाया। मगर 'सूरदास की कारी कमरिया चढ़े न दूजो रग' वाली उक्ति चरितार्थ हुई। श्री जवाहरलालजी टस से मस नहीं हुए। बाबाजी भी जल्दी हार मानने वाले नही थे। उन्होंने धमकाना शुरू किया। मगर जब तमाम धमकियां वेकार हो गई और श्री जवाहरलालजी ने लौटने से साफ इन्कार कर दिया तो बाबाजी फिर ढीले पड

गए। उन्होने अपने हृदय की सारी व्यथा जवाहरलाजी के सामने उंड़ेलकर रख दी। वृद्ध धनराजजी ने कहा-'देखो, मै बूढा हो गया हू। तुम्हारे मामा के घर कोई पुरुष शेष नही बचा है। उस कुटुम्ब का भार कौन सभालेगा ? मेरा खयाल भले ही न करो मगर मामा को मत भुलाओ। तुम्हारे ऊपर उनका कितना उपकार है ? धर्म के नाम पर क्या यह कृतघ्नता शोभा दे सकती है। मामा के उस नादान बालक को किसके सहारे छोड आए हो ? उसका उत्तरदायित्व तुम्ही पर है। अपना उत्तरदायित्व छोड़कर भाग निकलना तो कायरता है; धर्म कायरता नही सिखलाता । हां, जब वह बालक सयाना हो जाय और मेरी आंखे मुद जाय तब इच्छानुसार कर सकते हो। इसलिए बेटा! मेरी बात मानो। हट मत करो। घर लौट चलो।'

प्रतिकूल उपसर्ग देखने-सुनने में कठोर मालूम होते है परन्तु सहने मे उतने कठोर नही होते। इसके विरुद्ध अनुकूल उपसर्ग बड़े ही मनोरम और लुभावने जान पडते है परन्तु उन्हे सहन करना सरल नहीं होता। अच्छे-अच्छे योगी भी अनुकूल उपसर्गो के चक्कर में पडकर अपनी साधना से नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र में कहा है-

अहिमे सुहुमा सगा, भिक्खूण जे दुरुत्तरा।
जत्थ रागे विसीयति, ण चयंति जवित्तए॥

–सूयग. अ. 3, उ. 2।

अर्थात् यह अनुकूल उपसर्ग बड़े ही सूक्ष्म होते है। साधु पुरुष बडी कठिनाई से इन्हें जीत पाते है। कई-एक तो इन उपसर्गो के आने पर अपने सयम की रक्षा करने मे ही असमर्थ हो जाते है।

वे अनुकूल उपसर्ग कौन-से है, सो शास्त्रकार कहते है-

अप्पेगे नायओ दिस्स, रोयति परिवारिया।
पोस णे ताय! पुट्ठोसि, कस्स ताय! जहासि णे ?
पिया ते थेरओ तात! ससा ते खुड्डिया इमा।
भायरो ते सगा तात! सोयरा कि जहासि णे ?
मायर पियर पोस, एव लोगो भविस्सइ।
एव खु लोइय तात! जे पालति मायर॥
एहि ताय! घर जामो, मा य कम्मे सहा वय।
वितिय पि ताय! पासामो जामु ताव सय गिह॥

अर्थात्-साधु के परिवार वाले साधु को देखकर घेर लेते है और रोकर कहते है-तात! तू हमे क्यों त्यागता है! हमने लड़कपन से तुम्हारा पालन किया है, अब तुम हमारा पालन करो।

तात! तुम्हारे पिता बूढ़े है और तुम्हारी बहन नादान है। यह तुम्हारे सगे भाई है। तुम हम लोगो को क्यों त्यागते हो ?

हे पुत्र ! अपने माता-पिता का पालन करो। उनका पालन करने से ही परलोक सुधरेगा। जगत् का यही आचार है और इसलिए लोग अपने माता-पिता का पालन करते है।

हे तात! चलो घर चले। अब से तुम भले ही कोई काम मत करना। हम काम कर दिया करेगे। एक बार काम से घबरा कर तुम भाग आये हो, पर अब चलो, अपने घर चले।

इस प्रकार अनुनय, विनय, लाचारी और बेबसी प्रकट करने वाले तथा प्रलोभनो में फसाने वाले यह अनुकूल उपसर्ग बड़े करारे होते हैं। शास्त्रकार के शब्दो में साधु भी बड़ी कठिनाई से इन्हे सहन कर पाते है। हमारे चरितनायक अभी साधु नही बने थे, साधु होने के उम्मीदवार ही थे। फिर भी उन्होंने अत्यन्त धैर्य के साथ बाबा जी के अनुकूल उपसर्गो को सहन किया। उन्होंने बाबाजी को नम्रतापूर्वक निवेदन किया-

'गार्हस्थ्य एक जजाल है। इस जजाल मे मैं पडना नहीं चाहता। दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर चुका हू। धन दौलत और संसार के अन्य सुख-साधन मेरी निगाह मे तुच्छ है। जीवन का क्या भरोसा है! आज है, कल नही। माता छोड़कर चली गई। पिताजी भी जल्दी ही चल दिये। मामाजी ने भी उनका अनुगमन किया। यह सब घटनाए मेरी आखो के सामने घटी। जीवन पर भरोसा कैसे किया जाय! ऐसी स्थिति मे एक क्षण गवाना भी मेरे लिए असह्य है। जितनी जल्दी मनुष्य आत्म-कल्याण मे लग जाय उतना ही श्रेयस्कर है।

मामाजी की मृत्यु होने पर भी उस बालक का पालन-पोषण हुआ ही था। इसी प्रकार अब भी होता रहेगा। अभी तो मै दीक्षा ले रहा हू, यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो उसे कौन पालेगा! मै न होता तो भी उसका भरण-पोषण तो होता ही। वास्तव मे कोई किसी पर निर्भर नही है। सब अपने-अपने कर्मो का फल भोगते हैं। यह तो मनुष्य का झूठा अहकार है कि वह अपने आपको पालक-पोषक समझता है। कोई किसी का भाग्य-पलट नही सकता।

बाबाजी! मेरे विचारों को आप सोडावाटर का उफान न समझे। यह विचार क्षणिक नही, स्थायी और दृढ़ है। उनमे परिवर्तन करने का प्रयास निरर्थक है। विवेकी पुरुष के लिए ससार मे आकर्षण की क्या चीज है! सभी कुछ नीरस, दु खमय और क्षणिक है। आपके लिए यही उचित है कि आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दे। अगर आप आज्ञा न देगे तो मैं साधुओ की तरह रहकर सारा जीवन बिता दूगा। मेरा निश्चय अब बदल नही सकता। मै कोई बुरा कार्य करने के लिए उद्यत नहीं हुआ हू। आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिए और घर लौट जाइए।'

साधुता का अभ्यास

बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर गाढ़ा स्नेह था। इसी स्नेह की प्रेरणा से उन्होने दीक्षा न लेने देने का भरसक प्रयत्न किया। मगर अन्त में उन्हे निराश होना पड़ा। बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर जितना प्रेम था उससे कहीं बढ़कर श्री जवाहरलालजी का सयम पर प्रेम था। बाबाजी का प्रेम राजस था, श्री जवाहरलालजी का सात्त्विक। अन्त मे सात्त्विक प्रेम ने राजस प्रेम पर विजय प्राप्त की। बाबाजी निराश होकर थांदला लौटे। इधर जवाहरलालजी ने साधु-वृत्ति का अभ्यास प्रारभ कर दिया। अब आप किसी के घर भोजन नही करते थे। झोली मे कटोरिया रखकर साधुओं की तरह गोचरी लाते थे। आप शास्त्रो के मूलपाठ और थोकडे कठस्थ करने लगे। कुछ दिनों बाद साधु तो वहा से विहार कर गये किन्तु आप वही रहकर साधु सरीखा जीवन बिताने लगे। आठ महीने तक आप इसी अवस्था मे रहे।

गए। उन्होने अपने हृदय की सारी व्यथा जवाहरलाजी के सामने उंडेलकर रख दी। वृद्ध धनराजजी ने कहा-'देखो, मै बूढा हो गया हू। तुम्हारे मामा के घर कोई पुरुष शेष नही बचा है। उस कुटुम्ब का भार कौन सभालेगा ? मेरा खयाल भले ही न करो मगर मामा को मत भुलाओ। तुम्हारे ऊपर उनका कितना उपकार है ? धर्म के नाम पर क्या यह कृतघ्नता शोभा दे सकती है। मामा के उस नादान बालक को किसके सहारे छोड आए हो ? उसका उत्तरदायित्व तुम्हीं पर है। अपना उत्तरदायित्व छोडकर भाग निकलना तो कायरता है; धर्म कायरता नही सिखलाता । हां, जब वह बालक सयाना हो जाय और मेरी आंखे मुंद जाय तब इच्छानुसार कर सकते हो। इसलिए बेटा! मेरी बात मानो। हट मत करो। घर लौट चलो।'

प्रतिकूल उपसर्ग देखने-सुनने मे कठोर मालूम होते है परन्तु सहने मे उतने कठोर नही होते। इसके विरुद्ध अनुकूल उपसर्ग बडे ही मनोरम और लुभावने जान पडते है परन्तु उन्हे सहन करना सरल नहीं होता। अच्छे-अच्छे योगी भी अनुकूल उपसर्गो के चक्कर में पड़कर अपनी साधना से नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र में कहा है-

अहिमे सुहुमा सगा, भिक्खूण जे दुरुत्तरा।
जत्थ रागे विसीयति, ण चयंति जवित्तए॥

—सूयग. अ. 3, उ. 2।

अर्थात् यह अनुकूल उपसर्ग बडे ही सूक्ष्म होते है। साधु पुरुष बडी कठिनाई से इन्हें जीत पाते है। कई-एक तो इन उपसर्गो के आने पर अपने सयम की रक्षा करने मे ही असमर्थ हो जाते हैं।

वे अनुकूल उपसर्ग कौन-से हैं, सो शास्त्रकार कहते है-

अप्पेगे नायओ दिस्स, रोयति परिवारिया।
पोस णे ताय! पुट्ठोसि, कस्स ताय! जहासि णे?
पिया ते थेरओ तात! ससा ते खुड्डिया इमा।
भायरो ते सगा तात! सोयरा कि जहासि णे?
मायर पियर पोस, एव लोगो भविस्सइ।
एव खु लोइय तात! जे पालति मायर॥
एहि ताय! घर जामो, मा य कम्मे सहा वय।
वितिय पि ताय! पासामो जामु ताव सय गिह॥

अर्थात्-साधु के परिवार वाले साधु को देखकर घेर लेते है और रोकर कहते है-तात! तू हमे क्यों त्यागता है! हमने लडकपन से तुम्हारा पालन किया है, अब तुम हमारा पालन करो।

तात! तुम्हारे पिता बूढे है और तुम्हारी बहन नादान है। यह तुम्हारे सगे भाई है। तुम हम लोगो को क्यो त्यागते हो ?

हे पुत्र ! अपने माता-पिता का पालन करो। उनका पालन करने से ही परलोक सुधरेगा। जगत् का यही आचार है और इसलिए लोग अपने माता-पिता का पालन करते है।

हे तात! चलो घर चले। अब से तुम भले ही कोई काम मत करना। हम काम कर दिया करेगे। एक बार काम से घबरा कर तुम भाग आये हो, पर अब चलो, अपने घर चले।

इस प्रकार अनुनय, विनय, लाचारी और बेबसी प्रकट करने वाले तथा प्रलोभनों मे फसाने वाले यह अनुकूल उपसर्ग बडे करारे होते हैं। शास्त्रकार के शब्दो मे साधु भी बडी कठिनाई से इन्हे सहन कर पाते हैं। हमारे चरितनायक अभी साधु नहीं बने थे, साधु होने के उम्मीदवार ही थे। फिर भी उन्होने अत्यन्त धैर्य के साथ बाबा जी के अनुकूल उपसर्गो को सहन किया। उन्होंने बाबाजी को नम्रतापूर्वक निवेदन किया-

'गार्हस्थ्य एक जंजाल है। इस जजाल में मैं पडना नहीं चाहता। दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर चुका हू। धन दौलत और ससार के अन्य सुख-साधन मेरी निगाह में तुच्छ है। जीवन का क्या भरोसा है! आज है, कल नहीं। माता छोडकर चली गई। पिताजी भी जल्दी ही चल दिये। मामाजी ने भी उनका अनुगमन किया। यह सब घटनाएं मेरी आखो के सामने घटी। जीवन पर भरोसा कैसे किया जाय! ऐसी स्थिति मे एक क्षण गंवाना भी मेरे लिए असह्य है। जितनी जल्दी मनुष्य आत्म-कल्याण में लग जाय उतना ही श्रेयस्कर है।

मामाजी की मृत्यु होने पर भी उस बालक का पालन-पोषण हुआ ही था। इसी प्रकार अब भी होता रहेगा। अभी तो मैं दीक्षा ले रहा हू, यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो उसे कौन पालेगा! मै न होता तो भी उसका भरण-पोषण तो होता ही। वास्तव मे कोई किसी पर निर्भर नही हैं। सब अपने-अपने कर्मो का फल भोगते हैं। यह तो मनुष्य का झूठा अहकार है कि वह अपने आपको पालक-पोषक समझता है। कोई किसी का भाग्य-पलट नही सकता।

बाबाजी! मेरे विचारों को आप सोडावाटर का उफान न समझे। यह विचार क्षणिक नही, स्थायी और दृढ है। उनमें परिवर्तन करने का प्रयास निरर्थक है। विवेकी पुरुष के लिए ससार मे आकर्षण की क्या चीज है! सभी कुछ नीरस, दु खमय और क्षणिक है। आपके लिए यही उचित है कि आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दें। अगर आप आज्ञा न देगे तो मैं साधुओं की तरह रहकर सारा जीवन बिता दूगा। मेरा निश्चय अब बदल नही सकता। मै कोई बुरा कार्य करने के लिए उद्यत नहीं हुआ हू। आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिए और घर लौट जाइए।'

साधुता का अभ्यास

बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर गाढ़ा स्नेह था। इसी स्नेह की प्रेरणा से उन्होंने दीक्षा न लेने देने का भरसक प्रयत्न किया। मगर अन्त में उन्हें निराश होना पड़ा। बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर जितना प्रेम था उससे कही बढ़कर श्री जवाहरलालजी का सयम पर प्रेम था। बाबाजी का प्रेम राजस था, श्री जवाहरलालजी का सात्त्विक। अन्त में सात्त्विक प्रेम ने राजस प्रेम पर विजय प्राप्त की। बाबाजी निराश होकर थादला लौटे। इधर जवाहरलालजी ने साधु-वृत्ति का अभ्यास प्रारभ कर दिया। अव आप किसी के घर भोजन नही करते थे। झोली मे कटोरियां रखकर साधुओं की तरह गोचरी लाते थे। आप शास्त्रो के मूलपाठ और थोकड़े कठस्थ करने लगे। कुछ दिनों बाद साधु तो वहां से विहार कर गये किन्तु आप वही रहकर साधु सरीखा जीवन बिताने लगे। आठ महीने तक आप इसी अवस्था मे रहे।

सफलता

'हे आत्मन् ! जब अंतरग शत्रु तेरे ऊपर आक्रमण करेंगे, उस समय तू छिपकर बैठा रहेगा तो उन शत्रुओ पर विजय कैसे प्राप्त कर सकेगा? युद्ध के समय छिपे रहना वीरात्मा को शोभा नही देता। इसलिए तैयार हो जा। तेरा बल अनन्त है। तेरी क्षमता अपार है। ससार की समस्त शक्तियां तेरी शक्ति के सामने पानी भरती है। तेरे शत्रु भले ही प्रवल है, पर अजेय नही है। उन्हे जीतने का प्रबल संकल्प करते ही आधी विजय प्राप्त हो जाती है।

हे आत्मन्! अब उठ खड़ा हो। अपनी शक्ति को सभाल। अंतरग शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर डाल। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से तुझे अलौकिक वैभव प्राप्त होगा। तू सनातन साम्राज्य का स्वामी बनेगा।

चरितनायक की इस ओजस्वी वाणी में कितना बल है? इसमे सकल्प की महत्ता है, आत्मा की अनन्त और असीम शक्तियो पर दृढ आस्था भरी है, आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की तीव्र व्यग्रता छिपी है और आत्म-विकारों का क्षय करने के लिए प्रबल प्रेरणा नजर आती है। जिस महान् आत्मा के विचार इतने उच्च, उज्ज्वल और उन्नत है, उसे ससार के प्रलोभन अपने वश मे कैसे कर सकते थे? उसके सकल्प को कौन पराजित कर सकता था? सचमुच उसकी तीव्र भावना के सामने ससार की शक्तिया पानी भरती थीं। अनेकानेक कठिनाइया आने पर भी वह रचमात्र भी विचलित नहीं हुआ। अन्तरायो की वर्षा के बीच भी वह ज्यो-का-त्यो खडा रहा। वास्तव मे महापुरुषो का यही स्वभाव होता है।

आठ महीने तक साधु-वृत्ति का अभ्यास करने के अनन्तर जब आपने देखा कि बाबाजी अब भी आज्ञा देने को तैयार नही है तो उन्होने अपने सगे-सम्बन्धियो को पत्र लिखे। पत्रो मे यह भी उल्लेख कर दिया कि-'आप आग्रह करके बाबाजी से आज्ञा नहीं दिलायेंगे तो मुझे किसी अज्ञात स्थान को चला जाना पडेगा और फिर कभी थादला नही आ सकूगा।'

श्री जवारलालजी के निश्चय पत्थर की लकीर होते थे। सभी लोग उनकी आदत से परिचित थे। अत. पत्र मिलते ही सम्बन्धी-जन चिन्ता मे पड गये। आखिर जाति के प्रतिष्ठित पुरुषों और सम्बन्धी-जनों की एक पचायत हुई। सब पचो ने बाबाजी से आज्ञा देने का आग्रह किया।

बाबाजी सभी प्रयत्न करके थक चुके थे। अज्ञात स्थान चले जाने की धमकी से वे भी विचलित हो उठे थे। उन्होंने सोचा-'जवाहर का निश्चय बदल नहीं सकता। वह अपने विचारो का पक्का है। कही अनजान जगह चला गया तो देखना भी दुर्लभ हो जायगा। इससे बेहतर है कि आज्ञा लिख दू। जब चाहूगा, दर्शन कर आया करूगा।'

बाबाजी आज्ञा के लिए तैयार हो गए। वही पचायत मे आज्ञा-पत्र लिखा गया और श्री जवाहरलालजी के पास भी एक पत्र भेज दिया गया। उसमे लिखा था-'विक्रम सवत् १९४८ की मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के बाद आपको दीक्षा लेने की आज्ञा दी जाती है।'

'कर्म-रहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है। संयम किसी भी प्रकार दु:ख-प्रद नहीं वरन् आनन्ददायक है। विवेकपूर्वक संयम का पालन किया जाय तो सयम इस लोक मे भी सुखदायक है और परलोक में भी।'

सयम को इह-परलोक मे आनन्दप्रद मानने वाले श्री जवाहरलालजी को जब संयम धारण करने का आज्ञापत्र प्राप्त हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। 'शुभस्य शीघ्रम्' वाली उक्ति का अनुसरण करके आपने मार्गशीर्ष-शुक्ला-द्वितीया (वि.स. १९४७) को ही दीक्षा धारण करने का मुहूर्त्त निश्चय किया। दीक्षा के आमंत्रण-पत्र भेजे गये। सैंकड़ो श्रावक बाहर से एकत्रित हुए। बाबाजी स्वय उपस्थित नही हो सके। उन्होने अपने पुत्र श्री उदयचन्दजी को भेजा। निश्चित समय पर सैंकडों नर-नारियों के समक्ष मुनिश्री बड़े घासीलालजी महाराज[१] ने आपका केशलोंच किया और महाव्रतों का उच्चारण करके दीक्षा दे दी। उस समय आप श्री मगनलालजी महाराज के शिष्य बने थे। इस प्रकार हमारे चरितनायक की चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण हुई। मुनिपन धारण करके आपने अपने को कृतकृत्य समझा। आपके लिए मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया। सिर पर लम्बे अर्से से जो बोझा-सा लदा था, वह हल्का हो गया। वैरागी श्री जवाहरलालजी को संयम क्या मिला, रक को नव-निधिया मिल गई, मानो दरिद्र के घर कल्पवृक्ष आ गया। आपका हृदय संतुष्ट हुआ और अन्तरात्मा को अपूर्व शान्ति का लाभ। इसके बाद चरितनायक के जीवन का नया प्रभात आरभ हुआ।

प्रभु की गोद में

अब हमारे चरितनायक के जीवन में आमूल परिवर्त्तन हो गया। इस परिवर्त्तन के पीछे कौन-सी भावना काम कर रही थी, यह बात परोक्ष रूप मे आ चुकी है। यहा उसे स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। मुनि-जीवन धारण करने मे उनका क्या महत् उद्देश्य था, यह चीज चरितनायक के शब्दों मे ही व्यक्त करना अधिक उचित होगा। निम्नलिखित उद्धरण उन्ही की समय-समय पर प्रकट हुई वाणी से सगृहीत किये गए हैं-

(१)

प्रभो! जब तक मुझ मे अपूर्णता विद्यमान है तब तक मुझे आपके चरणों की नौका का आश्रय मिलना चाहिए। आपकी चरण-नौका का आधार पाकर मै संसार-सागर से पार पहुचना चाहता हूं।

(२)

प्रभो! मेरी आशा-अभिलाषा ऐसी है कि तुम्ही उसे पूर्ण कर सकते हो। तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई उसे पूर्ण नही कर सकता। इसलिए मैंने तुम्हारी शरण ली है। पुत्र की आशा तो स्त्री भी पूर्ण कर सकती है। उसके लिए तुम्हारी शरण ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? मैं तुमसे ऐसी ही आशा

---

१ यह श्री घासीलालजी महाराज श्री हुक्मीचन्द्रजी म. के सम्प्रदाय की महान् विभूति थे। वडे पंडित और चरित्र-सम्पन्न तपोधनी थे। उनके शुभाशीर्वाद ने ही हमारे चरितनायक को इस पद पर पहुंचाया है।

करता हू जिसकी पूर्ति किसी और से हो ही नही सकती। मैने तुम्हारा स्वरूप जानकर तुम्हें हृदय मे बसाया है और अपने हृदय को तुम्हारा मन्दिर समझने लगा हूँ।

(३)

प्रभो! मैं भागकर तेरे चरण-शरण मे आया हू। इन विकार-विषधरो से मुझे बचा। मेरी रक्षा कर। विकार-विष उतारकर मेरा उद्धार कर।

(४)

प्रभो! मै ऊर्ध्वगामी होना चाहता हू, प्रगति के महान् और अतिम लक्ष्य की दिशा मे निरन्तर प्रयाण करने की कामना करता हू। मुझे वह शक्ति दीजिए कि अधोगामी न बनू। विश्व के प्रलोभन मुझे किचित् भी आकृष्ट न कर सके। भगवन्, अगर आप मेरे कवच बन जाये तो मै कितना भाग्यशाली होऊ!

(५)

प्रभो! संसार की कामना मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी ओर खीच रही है। इस कामना से बचने के लिए तेरी शरण मे आना ही एकमात्र उपाय है। प्रभो! अगर तू मुझे अपनी शरण मे लेकर मेरी बांह पकड़ ले तो सासारिक कामना तुझसे डरकर मेरा पल्ला छोड़ देगी। इसलिए इस कामना के फदे मे से छुड़ाने के लिए मेरी बाह पकड, मुझे अपनी शरण में ले।

(६)

प्रभो! तीन लोक के समस्त पदार्थो में मुझे तू ही प्यारा है। तू मुझे प्राणों के समान प्यारा है। यही क्यों, तू मेरे लिए प्राणो का भी प्राण है। इसलिए प्राणो से भी अधिक प्यारा है।

(७)

भगवन्! यदि तेरा तेज मेरे हृदय पर प्रतिबिम्बित हो जाय तो मै अनन्त शक्तिशाली बन सकता हूं- मेरी समस्त सासारिक वासना शात हो सकती है। अत प्रभो! अपने अनन्त तेज की कुछ किरणें इधर फैंक दो, जिससे मोह-ममता के तिमिर से आवृत मेरा अन्त करण उद्भासित हो जाय।

यही कतिपय उद्धरण चरितनायक की मनोभावना समझने में पर्याप्त सहायता दे सकते है। इन्ही पवित्रतम आकाक्षाओ से प्रेरित होकर आपने प्रभु की गोद मे बैठना उचित समझा।

❑

द्वितीय अध्याय

मुनि जीवन

परीषहों पर विजय प्राप्त करना मुनिधर्म का खास अंग है। मुनियो को सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के परीषह प्राय· आते ही रहते है। उनसे घबरा उठने वाला व्यक्ति मुनिधर्म का पालन नही कर सकता।

मुनि जवाहरलालजी को दीक्षा लेते ही परिषहों का सामना करना पड़ा। दीक्षा के दिन उनकी तबीयत अच्छी न थी। नवीन साधुजीवन की गुरुता के विचार से मस्तिष्क मे भारीपन आ गया हो, यह भी सभव है।

प्रथम परीक्षा

दीक्षित लेने के दिन ही अन्य साधुओ के साथ विहार करके आप गांव के बाहर महादेव के मन्दिर मे ठहरे। सर्दी ठीक-ठीक परिमाण मे आरम्भ हो चुकी थी। मन्दिर चारों ओर से खुला था। नदी नजदीक थी। ठडी हवा के झोके शरीर में कपकपी पैदा कर रहे थे। दीक्षा लिए अभी एक दिन भी नही हुआ था। आत्मा बलवान् थी सही, मगर शरीर मे सुकुमारता थी। शीतल वायु के थपेडो से आपका शरीर कापने लगा। फिर भी उच्च उद्देश्य से दीक्षा धारण करने वाले बालक मुनिश्री जवाहरलालजी घबराये नही। सोचने लगे 'सयमी जीवन की यह पहली परीक्षा है। भविष्य किसने देखा है! कौन जाने अभी कितने और कैसे-कैसे कष्ट झेलने पडेगे ? ऐसे हीअवसर तो आत्मा को दृढ बनाते है। मुझे हर्षपूर्वक यह सब सहना चाहिए।'

नव-दीक्षित जानकर साथी मुनियो ने अपने वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये। मगर आपने अपने कष्ट की शिकायत किसी से नही की। धीरे-धीरे आप भी अन्य मुनियो की भाति सहिष्णु बन गये और फिर सर्दी-गर्मी की आपको उतनी चिन्ता नही रही। इस प्रकार आप पहली परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

अध्ययन और विहार

मुनिश्री जवाहरलालजी ने अपने गुरु श्री मगनलालजी महाराज से शास्त्रो का अध्ययन आरम्भ किया। आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी अत आप शास्त्रीय विषय की गहराई मे वहुत शीघ्र प्रवेश कर

जाते थे। स्मरण शक्ति की तीव्रता के कारण आपने शास्त्रो की बहुत-सी गाथाए और पाठ कण्ठस्थ कर लिये। बुद्धि तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति तीव्र थी ही, साथ मे एकनिष्ठा और विनयशीलता का भी सम्मिश्रण था। इन सब कारणों से आपका ज्ञान निरतर बढ़ने लगा। सीखते समय प्रत्येक बात आप बड़े ध्यान से सुनते, उस पर विचार करते और हृदयंगम कर लेते। बड़े साधुओ की सेवा करने में सदैव तत्पर रहते। आपकी बुद्धि, एकाग्रता, और सेवा-शीलता आदि देखकर सभी साधु आप पर प्रसन्न रहते थे। मुनिश्री मगनलालजी महाराज तो यह सब गुण देखकर समझ चुके थे कि आप भविष्य मे, समाज मे सूर्य की भांति चमकेगे। अत वे बडी लगन के साथ आपको पढ़ाते और सयम मे उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उपदेश देते रहते। गुरु के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति भी उत्तरोत्तर बढती जाती थी।

मुनिश्री लीबडी से विहार करके दाहोद, झाबुआ, रंभापुर और थादला होते हुए पटलावद पहुंचे।

गुरु-वियोग और चित्त-विक्षेप

पटलावद पहुचने पर मुनिश्री मगनलालजी महाराज बीमार हो गए। उनकी बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। अन्त में माघ कृष्णा द्वितीया को, आपकी दीक्षा के डेढ मास पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया।

लोकोत्तर पुरुषो का चित्त एक ओर वज्र से भी कठोर होता है तो दूसरी ओर फूल से भी कोमल होता है। जो महापुरुष अपनी विपदाओं को कठोरतापूर्वक सहन करता चला जाता है, वही दूसरों का साधारण-सा कष्ट देखकर मोम की तरह पिघल जाता है। नव दीक्षित मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज की कठोरता और कोमलता भी इसी किस्म की थी। गुरुजी के स्वर्गवास से आपके हृदय को तीव्र आघात पहुचा। माता, पिता और मामाजी की मृत्यु पर जिसने अनुपम धैर्य का परिचय दिया था वह गुरु की मृत्यु से विकल हो गया! डेढ़ महीने मे ही श्री मगनलालजी महाराज ने इन्हे अपनी ओर इतना आकृष्ट कर लिया था कि उनके वियोग का धक्का सहन करना कठिन हो गया। गुरु-विरह के कारण वह दिन-रात शोक में डूबे रहते। किसी काम मे मन न लगता। प्राय एकान्त में बैठकर कुछ सोचते रहते। इस चिन्ता का प्रभाव उनके मस्तिष्क पर बहुत बुरा पडा।

निरन्तर चिन्तित रहने से आप विक्षिप्त-से हो गये। दिन-रात गुरुजी का ध्यान बना रहता। कभी सोचते-गुरु के अभाव में मोक्षमार्ग का उपदेश कौन देगा ? शास्त्र कौन पढाएगा ? सयम मे दृढ़ कौन करेगा ? कभी इच्छा होती- अब सथारा करके जीवन का अत कर देना ही उचित है। गुरु के बिना जीवन व्यर्थ है। कभी-कभी अकेले जगल मे जाकर तपस्या करने की सोचते। उन्हे किसी पर विश्वास नही होता था। अपने साथी साधुओ और दर्शनार्थ आने वाले श्रावको को भय-दृष्टि से देखा करते। इतना सब होने पर भी इस बात का बड़ा ध्यान रहता कि कही संयम में कोई दोष न लग जाय। ·

मुनि की कठोर-चर्या का पालन करते हुए इस अवस्था मे इन्हे सभालना बहुत कठिन कार्य था। फिर भी तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने हिम्मत न छोडी। वे आपको अच्छी तरह सभालते, सान्त्वना देते और हर समय आपका ध्यान रखते। चित्त-विक्षेप का समाचार सुनकर वाबाजी आपको लेने आये। किन्तु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने उन्हे समझा दिया-अशुभ कर्मो के उदय से ऐसा हो

रहा है। उदय में आने वाले कर्म भोगने ही पडते है। थादला ले जाने से ही कर्म नही छूट जायगे। अतएव इन्हे यही रहने दो। हम इन्हें पूरी तरह संभालने का यत्न कर रहे हैं और करेंगे।

उन दिनों श्री जवाहरलालजी महाराज ने एक पद बना रखा था। उसे वे ऊचे स्वर से पढने लगते और पढ़ते-पढते उसमें लीन हो जाते। वह पद यह था-

अरिहंत देव नेड़े।
जीने तीन भुवन में कुण छेड़े॥

अर्थात् समस्त आतरिक शत्रुओं को नष्ट कर डालने वाले-अरिहंत देव जिसके नजदीक मौजूद हैं-जिसकी अन्तरात्मा मे विराजमान हैं- उसे तीन लोक में कौन छेड सकता है ?

यह पद उस समय आपका रक्षा-मंत्र बन गया। यह पद बोलते-बोलते आप समस्त बातें भूल जाते। ससार की सुध-बुध न रहती। इससे उन्हें शान्ति मिलती। इस अवस्था मे आपको जो अनुभव हुआ वह जीवन-व्यापी हो गया। आपने अपने प्रवचनो में भगवान् के नाम-स्मरण की महिमा बड़े ही ओजपूर्ण शब्दो मे प्रकट की है। एक उद्धरण लीजिए-

महापुरुषो के जीवन में नाम-स्मरण का स्थान बहुत ऊचा रहा है। जिस समय वे सासारिक उलझनो से ऊब जाते है, उनका चित्त अशान्त और उद्विग्न हो जाता है, उस समय भगवान् का नाम ही उन्हें सान्त्वना देता है। भयकर विपत्तियो के उपस्थित होने पर भगवन्-नाम ही उन्हें धैर्य बंधाता है और किकर्त्तव्यविमूढ हो जाने पर मार्ग प्रदर्शन करता है। नाम-स्मरण अपूर्व शक्ति का स्रोत है। जब-जब आत्मा निर्बल बनती है तो नाम-स्मरण उसमे नवीन शक्ति फूंक देता है। नाम-स्मरण में इतना बल, इतना रस और इतना प्रकाश कहा से आया ? इस प्रश्न का उत्तर अनुभवगम्य है। वह युक्ति और शब्दों की पहुच से परे है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि आत्मा में अनन्त शक्तिया विद्यमान है। अभी वे सभी अविकसित अवस्था मे पड़ी हुई है। आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त सुख है, अनन्त वीर्य है। जिस समय मनुष्य 'सिद्धोऽह शुद्धोऽह अनन्त ज्ञानादिगुणसमृद्धोऽहम्' का तत्त्व समझकर, भगवान् में तन्मयता स्थापित करके उनके नाम का स्मरण करने लगता है उस समय उसे अपने में छिपी हुई शक्तियो का आभास होने लगता है। यह आभास ज्यों-ज्यो निर्मल होता जाता है त्यों-त्यों परम आनन्द का अनुभव बढता जाता है। भगवान् का स्मरण आत्मविकास को आमंत्रण देता है। नाम-स्मरण आत्मिक शक्तियों का उद्‌बोधन है; क्योकि पूर्ण विकसित आत्मा ही भगवान् है।

जीवन के प्रभात से लेकर जीवन की सध्या तक मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज में नामस्मरण की लगन वृद्धिगत होती रही है। बडे सेवेरे उठकर ईश्वर का ध्यान करना आपका नित्य-कर्म था। दैनिक प्रवचन प्रारम्भ करने से पहले आप जिस श्रद्धा, भक्ति और तन्मयता से प्रार्थना किया करते थे, उसे देखने वाले ही जान सकते है। उस समय आप भक्ति-रस मे डूब जाते थे। उस समय की आपकी मुद्रा आज भी दर्शकों के सामने सजीव हो उठती है। प्रार्थना करते-करते आप सूरदास का 'निर्वल के बल राम' वाला पसिद्ध भजन गाया करते। उस समय ऐसा मालूम होता कि आप अपना सारा वल, सारा ज्ञान, सारा सुख, ईश्वर के चरणो मे समर्पित कर चुके हैं। स्वय निर्वल हो गए। अपना अस्तित्व मिटा दिया। ईश्वर के साथ अभेद होते ही ईश्वरीय वल आत्मा मे आ गया। ईश्वर के अस्तित्व में लीन हो गये।

आत्मा मे परमात्मा का वल आ जाने पर असफलता दूर हो जाती है। उस समय ईश्वरीय शक्ति मनोवाछित कार्य पूरा कर देती है। इसी समय भक्त लोग भौतिक शक्तियों का विश्वास छोडकर आध्यात्मिक शक्तियों का आह्वान करते है। उस समय अज्ञान का परदा हटते ही उन्हे जो आनन्द होता है, जो शक्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान की जो ज्योति प्रकट होती है, उसके सामने ससार की समस्त सम्पत्तिया तुच्छ है, नगण्य हैं, नाचीज है। इसी अलौकिक आनन्द का अनुभव करने के लिए अनेक मनुष्य राज-वैभव को ठुकराकर अकिचनता धारण करते है। हमारे चरितनायक मे भी उस आनन्द की दिव्य धारा का स्रोत बहता था। यह बात उनकी भावमय मुद्रा से, उनकी मस्ती से और उनकी भक्तिमयी वाणी से सहज ही प्रकट हो आती थी।

पटलावद से विहार करके मुनिश्री अनेक गांवो मे होते हुए राजगढ़ पधारे। वहा एक बार आपने जगल में जाकर तपस्या करने का निश्चय कर लिया, किन्तु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के समझाने से मान गए थे। राजगढ से आप धार पधार गये। विहार में आप आत्म-चितन मे लीन रहते थे। बडे साधु खड़े होने को कहते तो खडे हो जाते, चलने को कहते तो चल पडते। न आपको शास्त्रों का बोझ मालूम होता, न रास्ते की थकावट ही मालूम होती। कभी-कभी आप जगल मे चले जाने को उद्यत होते मगर उस अवस्था मे भी सयम का इतना भान था कि अगर कोई मुनि आपका ओघा ले लेता तो वहीं पर खडे रह जाते। बिना ओघा एक कदम भी आगे न बढाते। सयम के अतरग तक उतरे हुए सस्कारो का ही यह प्रभाव था।

घार के प्रसिद्ध श्रावक पन्नालालजी ने वैद्यो की आयुर्वेद विधि से इलाज करवाया मगर कोई इलाज कारगर न हुआ। अन्त में वे एक डाक्टर को लाये। सिर के पिछले भाग में प्लास्टर लगाने के लिए बाल हटाना आवश्यक था। बाल हटाने के लिए नाई बुलाया गया। मगर नाई से बाल कटवाना साधु के आचार से विरुद्ध है, यह बात उस समय भी आपके ध्यान मे थी। उन्होंने नाई से बाल नही कटवाये। मगर डाक्टर का कहना था कि बाल साफ होने चाहिए। अतएव उन्होने अपने ही हाथ से लोंच करना आरभ कर दिया और बिना किसी कठिनाई के सभी बाल उखाड डाले। आपके सिर पर उस समय बहुत घने घुघराले बाल थे। दीक्षा के बाद लोंच करने का यह पहला ही अवसर था। फिर भी बड़े धैर्य के साथ, बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होने लोंच कर डाला। सयम-पालन की उनकी लालसा बहुत गहरी और प्रबल थी। सयम के लिए बड़े से-बड़ा कष्ट उनके लिए नगण्य था। उनकी यह स्थिरता और सयम सम्बन्धी तीव्र श्रद्धा देखकर वहा उपस्थित जनता चकित रह गई। उस समय मुनिश्री के पास डाक्टर एम. भाऊ और डाक्टर गोपाल भाऊ उपस्थित थे।

केश-लुचन हो जाने के पश्चात् डाक्टर ने नियत स्थान पर प्लास्टर लगाया। उस समय श्री जवाहरलालजी महाराज स्थिर और शात बैठे रहे। सिर मे से लगभग तीन सेर पानी निकला। वे बेहोश हो गए। धीरे-धीरे होश आ गया, मगर अशान्ति इतनी बढ़ गई कि एक भी शब्द बोलने की हिम्मत न रही- धीरे-धीरे आपकी कमजोरी हट गई और आप स्वस्थ हो गए। मानसिक अवस्था भी ठीक हो गई। मानसिक और शारीरिक अस्वस्थता दूर होते देखकर मुनियो और श्रावको को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मुनिश्री के इस अस्वास्थ्य का कारण क्या था, यह आपने स्वय ही बाद में प्रकट किया है। राजकोट के एक प्रवचन मे आपने कहा था-'आज वालको के मस्तिष्क मे भय के सस्कार वहुत डाले जाते है।

इससे कितनी हानि होती है, यह बात मै जानता हूं। मेरी माता मुझे दो वर्ष का छोड़कर चली गई थी और मेरे पिता पाच वर्ष का छोडकर चले गये थे। मेरा पालन-पोषण मेरे मामा के घर हुआ था। वहा से थोडी दूर एक मकान था, जो बहुत नीचा होने के कारण अधकारमय रहता था। स्त्रिया कहा करतीं- इस मकान मे भूत रहता है। मै यह बात सुनकर डरता था और इस कारण रात के समय दुकान से अपने मामा के मकान जाना होता तो उस मकान के पास से न जाकर लम्बा चक्कर काटकर दूसरे रास्ते से जाता। मेरे मस्तिष्क में भूत के जो सस्कार पड गये थे, वे दीक्षा लेने के बाद भी समूल नष्ट नही हुए। दीक्षा लेने के बाद मेरे दीक्षा-गुरु का डेढ़ मास बाद ही स्वर्गवास हो गया। उस समय मैं लगभग पाच महीना विक्षिप्त-सा रहा था। मेरे मस्तक में भूत के जो सस्कार पड़े थे उनके कारण उस समय मुझे ऐसा लगता था कि कोई प्रत्यक्ष ही मुझ पर जत्र-मंत्र कर रहा है। मगर जब मैं स्वस्थ हुआ तो मालूम हुआ कि वास्तव मे वह सब मेरा भ्रम था, और कुछ भी नहीं।'

महाभाग मोतीलालजी महाराज

मनुष्य-समाज में आज यदि सस्कारिता है, नैतिकता है, धार्मिकता है, तो उसका सारा श्रेय विभिन्न युगो मे उत्पन्न होने वाले उन महापुरुषों को है, जिन्होंने मनुष्य जाति के उत्थान के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। अपने जीवन-व्यवहार द्वारा, अपने उपदेशों द्वारा, साहित्य द्वारा जिन्होंने मनुष्य के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित किया है, मानवीय भावनाओं का धरातल ऊचा उठाया है और मनुष्य जाति को जागृत एव शिक्षित बनाकर संसार का महान् उपकार किया है, उन महापुरुषों का जीवन-इतिहास ही सभ्यता का इतिहास है। ससार अनादि काल से ऐसे महापुरुषों की पूजा करता चला आया है।

महापुरुषों ने मानव-सस्कृति का निर्माण किया है, मगर महापुरुष सीधे आसमान से उतरकर नही आते। उनका निर्माण भी इसी ससार में होता है। परिस्थितियों के अतिरिक्त अनेक संबधित जन भी ऐसे होते है जो महापुरुषों के निमार्ण में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे सहायक होते हैं। अगर मनुष्य-समाज महापुरुषो का ऋणी है तो उन विशिष्ट व्यक्तियों का भी ऋणी है जिन्होने किसी को महापुरुष के दर्जे पर पहुचाने के लिए कोई कसर नहीं रखी। महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ऐसी ही विभूतियों मे से थे। प. मोतीलालजी नेहरू की छत्रच्छाया न मिलती तो प. जवाहरलालजी नेहरू इस रूप मे हमे प्राप्त होते या नहीं, कौन कह सकता है ? इसी प्रकार मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की छत्रच्छाया के अभाव मे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का इस रूप मे प्राप्त होना भी सदिग्ध ही था। प. मोतीलालजी नेहरू की सार-सभाल के फल-स्वरूप प. जवाहरलालजी राष्ट्रीय क्षेत्र मे तेजस्वी सूर्य की भाति चमक उठे। इसी प्रकार मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की निरन्तर की सार-सभाल से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज धार्मिक क्षेत्र मे सूर्य की भाति चमके। मुनिश्री जवाहरलालजी और प. जवाहरलाल नेहरू मे कितना सादृश है, यह बताने का यहा अवकाश नही है। राणपुर (काठियावाड) के प्रसिद्ध पत्र 'फूलछाब' के सम्पादक और अग्रगण्य गुजराती लेखक श्री मेघाणी ने आपके प्रचवन-सग्रह की समालोचना करते हुए लिखा है-'हिन्दुस्तान मे जवाहरलाल एक नही, दो है। एक राष्ट्रनायक है; दूसरा धर्म-नायक है।' हम इस वाक्य मे इतना और जोड़ देना चाहते है कि भारत मे जवाहरलालजी के सरक्षक मोतीलालजी भी दो थे- एक प. मोतीलाल नेहरू और दूसरे तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज। हम यहा विस्तृत तुलना मे नही पडना चाहते। कितु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के सबध मे कतिपय बातो का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी का निर्माण करने मे श्री मोतीलालजी महाराज का बहुत बडा हाथ रहा है। उन्होने बड़ी-बडी मुसीबते झेलकर, तरह-तरह की कठिनाइयां उठाकर मुनिश्री का संरक्षण किया है। चित्त-विक्षेप की अवस्था मे उन्होने जिस लगन के साथ मुनिश्री की सेवा-सुश्रूषा की, उसकी उपमा मिलना भी सरल नही है। समाज जैसे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का ऋणी है, उसी प्रकार मोतीलालजी महाराज का भी है। आपके सस्मरण हमारे चरितनायक के संस्मरणो के साथ सदा-सर्वदा जीवित रहेंगे।

तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज का जन्म सिगोली (मेवाड़) मे हुआ था। आपके पिता का नाम उदयचंदजी कटारिया और माता का नाम बिरदीबाई था। अठारह वर्ष की आयु में जीवन के उद्यान मे नवयौवन के बसत का आगमन होता है। ससार की कामना रूप कोकिलाए अपनी कुहुक से मनुष्य को मदोन्मत्त बना देती है। मन रूपी भ्रमर रस-लोलुप बनकर अधखिली कलियो के चरण चूमने को उद्यत रहता है। जीवन-उद्यान में सरसता और अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है, उस समय विरक्ति-भोगो के प्रति वैराग्य होना सहज बात नही है। प्रबल प्रकृति से युद्ध करके उसे पराजित किये बिना वैराग्य का रग ऐसे समय नही चढ सकता। मुनिश्री मोतीलालजी ऐसे ही प्रकृति-विजयी थे। उन्होने अठारह वर्ष की आयु में संसार का त्याग किया और मुनिश्री राजमलजी महाराज के निकट मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली। यह समय जीवन का ही बसन्त नहीं था वरन् प्रकृति का बसत भी था। वि. स. १९३२ के माघ शुक्लपक्ष में (बसंत पंचमी के लगभग) आपकी दीक्षा हुई और वि. स. १९८३, फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन जलगाव में आपने स्वर्गारोहण किया।

आप उच्च-कोटि के तपस्वी साधु थे। आपकी तपस्या प्रायः चलती रहती थी। एक से अडतालीस (सैतालीस को छोडकर) तक का थोक किया था और इसके अतिरिक्त मासखमण आदि अनेक तप किये थे।

आप जैसे उच्चकोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट सेवा-भावी भी थे। आपकी सेवापरायणता साधुओ के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का चित्त जब विक्षिप्त हो गया था तब बाबाजी उन्हें लेने आये, मगर आपने सेवा का भार अपने सिर ले लिया था और बाबाजी को उनकी समुचित सेवा होते देखकर सतोष भी हो गया था। अत वे लौट गये। चित्त-विक्षेप जब कुछ अधिक बढ गया तब श्रावको ने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज से निवेदन किया- 'आप अकेले है। मुनिश्री की सेवा करने में आपको बेहद कष्ट उठाना पडता है। अत आप इन्हे हमे सौप दीजिए; हम सेवा करेगे और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा मे उपस्थित कर देगे।' श्रावको की प्रार्थना के उत्तर में श्री मोतीलालजी महाराज ने कहा-'जब तक मेरे तन मे प्राण है, तब तक इनकी सेवा करता रहूगा।'

इन्ही दिनो श्री जवाहरलालजी महाराज एकबार नग्न हो गए। मोतीलालजी महाराज ने उन्हे चोलपट पहनाना चाहा। चोलपट्ट पहनाते समय उन्होंने आपके पेट में काट खाया। काटने से घाव हो गया। फिर भी धन्य मुनि मोतीलालजी महाराज! आप जरा भी हताश न हुए। आप अकेले ही अपना घाव संभालते और जवाहरलालजी महाराज को भी सभालते। साधु-मर्यादा के अनुसार दैनिक कृत्य भी करते।

गुरु-शिष्य की सकीर्ण मनोभावना के कारण, रतलाम मे तीस साधु मौजूद रहते हुए भी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के समीप कोई साधु न आया। इस सकीर्णता को नष्ट करने के उद्देश्य से ही आगे चलकर महाराज श्री जवाहरलालजी ने आचार्य-पद प्राप्त होने पर यह नियम बनाया कि समस्त शिष्य एक ही गुरु (आचार्य) के हो। धर्मक्षेत्र का यह साम्यवाद इस अवस्था के कटु अनुभवो का परिणाम था। कई कारणो से यह नियम स्थायी न रह सका और उसे परिवर्त्तित करना पडा। अस्तु।

वास्तव में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की सेवा-परायणता के फलस्वरूप ही मुनिश्री की रक्षा हो सकी। आगे चलकर आपने सदैव मुनिश्री के साथ ही चातुर्मास किया। सिर्फ एक अंतिम चातुर्मास साथ-साथ न हो सका। अंतिम समय में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की भी खूब सेवा हुई। आपके सुशिष्य तत्कालीन मुनि और वर्त्तमानकालीन आचार्यश्री गणेशीलालजी महाराज आदि साधु सदैव आपकी सेवा में तत्पर रहे।

हमारे चरितनायक मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के असीम उपकारो को हृदयग्राही शब्दो में व्यक्त किया करते थे। मुनिश्री का स्मरण आते ही आपका हृदय गद्गद् हो उठता था। अंतिम समय तक मुनिश्री के प्रति वे कृतज्ञ रहे। आप अकसर कहा करते थे-'तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार है।'

प्रथम चातुर्मास

चातुर्मास का काल समीप आ गया था। विहार करके चातुर्मास के योग्य दूसरे स्थान पर पहुचना कठिन था। अतएव धार मे ही चातुर्मास करने का निश्चय हुआ। मुनिश्री में अब कुछ शक्ति आ गई थी। मस्तिष्क भी स्वस्थ और शान्त था। अतएव आपने अध्ययन आरम्भ कर दिया। शास्त्रों का पाठ कठस्थ करने लगे। मगर आपका उर्वर मस्तिष्क इतने से ही सतुष्ट न हुआ। वह कोई ऐसा क्षेत्र खोज रहा था जिसमे कल्पना-शक्ति को पूरा अवकाश हो और साथ ही गम्भीर विचार की भी आवश्यकता हो।

वर्त्तमान धार प्राचीन काल की धारा नगरी है, जिसमे राजा भोज जैसे राज कवि हुए है। भोज के समय मे वहा सरस्वती का वास था। साधारण श्रेणी के लोग भी सुन्दर-से-सुन्दर कविता करते थे। ऐसे क्षेत्र मे पहुचकर मुनिश्री का कविताकला की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। आप कविता-रचना की ओर आकृष्ट हुए। उस समय आपने जम्बूस्वामी तथा अन्य महापुरुषो की स्तुति में कई कविताए रची । इसी मे आपको आनन्द प्राप्त होने लगा। नीतिकार का कथन है-

काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।

अर्थात्-बुद्धिमान पुरुष काव्य-शास्त्र या काव्य और शास्त्र के विनोद मे ही अपना समय व्यतीत करते है।

हमारे चरितनायक पर यह उक्ति पूरी चरितार्थ होती थी। उधर आप धर्म-शास्त्र का अध्ययन करते रहते थे और इधर भाषा-काव्य का निर्माण और आस्वादन भी करते थे। अल्पकाल मे ही आप सुन्दर रचनाए करने में सफल हुए।

काव्य-शास्त्र के अनेक आचार्य कविता के लिए शक्ति, निपुणता, अभ्यास, लौकिक और शास्त्रीय बातो का निरीक्षण आदि की आवश्यकता बतलाते है। मगर किसी-किसी आचार्य के मत से

प्रतिभा ही काव्य-रचना का प्रधान साधन है। मुनिश्री मे उस समय प्रतिभा ही सबसे वडी पूंजी थी। उसी के आधार पर आप मधुर और सरस कविता करने मे समर्थ हो सके।

मुनिश्री में प्रतिभा का वैभव जन्म ज़ात था। इस प्रतिभा के आधार पर ही आप उस समय भी तत्काल कविता रच डालते थे। कभी-कभी व्याख्यान मे बैठे-बैठे ही कविता रच डालते और वही श्रोताओ को सुनाकर आनन्द-विभोर कर देते थे। आपकी समस्त रचनाए प्राय· भक्ति-रस-मयी है। किन्तु बीच-बीच मे अन्यान्य रसो का भी उनमे बडा ही सुन्दर सन्निवेश है। पुस्तकीय अध्ययन अधिक न होने पर भी प्रकृति की पाठशाला मे आपने गम्भीर अध्ययन किया था।

वास्तव में देखा जाय तो कविता का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं के साथ उतना नही है जितना कवि के हृदय की अनुभूति के साथ। हृदय की अनुभूति बढ़कर जब संगीतमय होकर बाहर निकलने लगती है तो उसका नाम कविता हो जाता है। मुनिश्री जवाहरलालजी मे अनुभूति की प्रबलता थी। महापुरुषों में इसका होना आवश्यक भी है। कवि, धर्माचार्य,राष्ट्र-नेता, समाज-सुधारक, दार्शनिक, साहित्यकार आदि सभी में यही अनुभूति काम करती है और भिन्न-भिन्न रूप धारण करके प्रकट होती है। कवि मे यह कविता बन जाती है, धर्माचार्य मे सयम, त्याग और तपस्या का रूप ग्रहण करती है, राष्ट्र-नेता मे वाणी तथा बलिदान के रूप मे प्रकट होती है। दार्शनिक मे वह गभीरता का रूप धारण करती है। और साहित्यकार मे कला के उद्गम का स्रोत बन जाती है। मगर हमारे चरितनायक में वह कविता सयम, वाणी आदि अनेक रूपो में प्रकट हुई है। उनके प्रवचन तीव्र अनुभूति के ज्वलत प्रमाण हैं।

उग्र विहार

जीवन-निर्माण में यात्रा का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह यात्रा शिक्षा का प्रधान अग मानी गई है। केवल लम्बी-लम्बी और साहस-पूर्ण यात्राओ के कारण ही बहुत-से व्यक्तियो का नाम इतिहास मे अमर है। उनकी यात्राओं का वर्णन साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है।

भारतीय संस्कृति में यात्रा को आध्यात्मिक पवित्रता दी गई है। उसमे भी श्रमणसस्कृति मे इसे और भी अधिक महत्त्व प्राप्त है। उग्र विहारी होना श्रमण का कर्त्तव्य बतलाया गया है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर एक मास से अधिक ठहरना साधु के लिए निषिद्ध है। विशेषावश्यक भाष्य में लिखा है कि जो साधु भविष्य मे आचार्य बनने वाला हो उसे भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे भ्रमण करना चाहिए।

यात्रा का सबसे बडा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने मे मार्ग की अनेक प्रकार की परिस्थितियां सामने आती हैं। कहीं पहाड आते है, कही कल-कल करती हुई नदिया प्रवाहित होती हैं। कही हरे-भरे खेत और कही बीहड़ जगल। कही सघन वृक्षावली और कही विशाल एव रूखा रेगिस्तान। कहीं श्रद्धा-भक्ति के भार से झुके हुए भद्र ग्रामीण स्वागत के लिए उद्यत मिलते है तो कही क्रूरकर्मा डाकू लूटने के लिए तैयार होते है। कहीं सिह, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियो का सामना करना पडता है तो कही क्रीडा करते हुए भोले मृग-शिशु दृष्टिगोचर होते है। यह सब देखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और समभाव रखने का अभ्यास बढता है। हमारे चरितनायक पैदल भ्रमण करते हुए प्रकृति का बड़ी बारीक नजर से अवलोकन करते थे और उससे मिलने वाली

शिक्षा का विचार किया करते थे। आपका यह कथन कि 'प्रकृति की पाठशाला में से जो सस्कारी ज्ञान मिलता है। वह कॉलेज या हाईस्कूल मे मिलना कठिन है।' आपके प्रकृति निरीक्षण का परिणाम था। एक झरने का निरीक्षण करके आपकी कल्पना कहा तक दौड़ती है, यह जानने योग्य है। आप कहते हैं:-

'जगल में झर्-झर् ध्वनि करके बहते झरने को देखकर महापुरुष क्या विचार करते है ? वे विचारते है- जब मैं इस झरने के पास नही आया था तब भी झरना झर्-झर् आवाज कर रहा था। अब मैं इसके पास आया हूँ तब भी यह झर्-झर् आवाज कर रहा है। जब मैं यहा से चला जाऊगा तब भी इसकी यह ध्वनि बंद न होगी। चाहे कोई राजा आवे या रंक आवे, कोई इसकी प्रशसा करे, या निन्दा करे मगर झरना सदैव एक ही रूप में अपनी आवाज जारी रखता है- न उसे कम करता है न ज्यादा। वह अपनी आवाज मे तनिक भी परिवर्त्तन नही करता। इस प्रकार जैसे यह झरना अपना धर्म नही बदलता वैसे ही अगर मैं भी अपने धर्म को न बदलू तो मेरा जीवन सार्थक हो जाय। इस झरने मे राग-द्वेष नहीं है। जिस पुरुष में झरने का यह गुण विद्यमान है वह वास्तव मे महापुरुष है।

इसके अतिरिक्त झरने मे एक धारा से बहने का भी गुण है। यह जिस धारा से बह रहा है उसी धारा से बहता रहता है। मगर जब हम अपने जीवन की धारा की ओर दृष्टिपात करते है तो देखते है कि हमारे जीवन की धारा थोडी-थोड़ी देर में पलटती रहती है। हमारे जीवन की एक निश्चित धारा ही नहीं है। धन्य है यह निर्झर जो निरन्तर एक ही धार से बहता रहता है।

झरने में तीसरा गुण भी है, जो खास तौर से हमारे लिए उपादेय है। यह झरना अपना समस्त जीवन (जल) किसी बड़ी नदी को सौंप देता है और उसके साथ होकर समुद्र में विलीन हो जाता है। वहा पहुंचकर वह अपना नाम भी शेष नही रहने देता। इसी प्रकार मै भी किसी महापुरुष की संगति से परमात्मा मे मिल जाऊ तो क्या कहना है !'

'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' इस कहावत के अनुसार एक प्राकृतिक पदार्थ को देखकर एक मनुष्य जो शिक्षा लेता है, दूसरा उससे विपरीत भी ले सकता है। हमारे चरितनायक ने झरना देखकर समताभाव, धर्म-दृढ़ता और परमात्मा मे आत्मार्पण की जो महान् शिक्षा ली है वह उनके जीवन की पवित्रता का परिचय देता है। प्रकृति के विषय मे आपके विचार बहुत गभीर थे। आपके यह शब्द ध्यान देने योग्य है.-

'तुम समझे होओगे कि गूंगी प्रकृति तुम्हारी क्या सहायता कर सकती है ? मगर यह तुम्हारा भ्रम है। प्रकृति मौन सहायता पहुचाती रहती है।'

परन्तु प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द पैदल चलने वालों को ही नसीब होता है। रेल, मोटर या वायुयान की छाती पर सवार होने वाले और गोली की तरह सरसराहट करके एक जगह से दूसरी जगह जा पहुंचने वाले लोग इस आनद से प्रायः वंचित ही रहते है। मार्ग के दृश्य उन्हें भागते हुए स्वप्न के समान दृष्टिगोचर होते है। उनके साथ हृदय का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होने पाता।

पैदल यात्रा करने वाला पुरुष रास्ते के ग्रामो और वन-खडो के निवासियो के परिचय मे आता है। उनसे सभाषण करके प्रेम-सबंध स्थापित करता है। यहा तक कि जंगल के हिसक प्राणियों के साथ भी मैत्री जोड लेता है। वह धीरे-धीरे विश्व-प्रेम की ओर अग्रसर होता है।

मार्ग की विषम परिस्थितियो का धैर्यपूर्वक सामना करने से आत्म-बल की वृद्धि होती है।

पैदल यात्रा से ज्ञान-बुद्धि मे भी बहुत सहायता मिलती है। मानव-स्वभाव का परिचय प्राप्त करने के लिए पैदल भ्रमण अत्यन्त उपयोगी है। विभिन्न भाषाए, बोलियां और सस्कृतिया समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता है।

प्रचार की दृष्टि से तो पैदल भ्रमण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। महावीर और बुद्ध जैसे ससार के महान् नेताओं ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता मे धर्म-जागृति उत्पन्न की, क्रान्ति का मन्त्र फूका और युग-युग से चली आई रूढियों के स्थान पर वास्तविक कर्त्तव्य की स्थापना की थी। इस युग के आदर्श नेता महात्मा गाधी ने भी डाडी के लिए पैदल प्रयाण करके जनता मे एक अद्भुत जोश पैदा कर दिया था।

चारित्र-रक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिए एक नियत स्थान पर न टिककर पैदल भ्रमण करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोह की जागृति होने का भय रहता है। इस दृष्टि से जैन शास्त्रो मे साधु के लिए नवकल्पी विहार आवश्यक माना गया है।

धार मे चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने उग्र विहार आरम्भ किया। आपने आपने साधु-जीवनकाल में मारवाड, मेवाड, मालवा, मध्यभारत, गुजरात, काठियावाड तथा महाराष्ट्र को पवित्र किया है। हरियाना, देहली और संयुक्त-प्रान्त मे भी आपकी उपदेश-गगा प्रवाहित हो चुकी है। जैन साधु की कठोर मर्यादाओ का पालन करते हुए इतना विस्तृत विहार करना आप सरीखे धर्मवीरों का ही काम है। इसी से आपकी साहसिकता और कष्टसहिष्णुता का अनुमान किया जा सकता है।

धार से आप इन्दौर पधारे। वहा एक मास ठहकर विहार करते हुए उज्जैन पधारे। उज्जैन मे आपने मालवी भाषा मे थोड़ी देर तक व्याख्यान देना प्रारभ कर दिया। इस प्रकार राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में आपकी कविता धारा का उद्गम हुआ और परम-प्रतापी महाराजा विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी मे आपकी जयिनी व्याख्यान-धारा प्रवाहित हुई।

उज्जैन मे पन्द्रह-बीस दिन ठहरकर आप बड़नगर, बदनावर होते हुए रतलाम पधार गए।

आचार्य का आशीर्वाद

रतलाम में उस समय श्री-श्री १००८ पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज विराजमान थे। यह आचार्य श्री प. प्र. पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के तीसरे पद पर सुशोभित थे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने उनके दर्शन किये और अपने को भाग्यशाली समझा। पूज्यश्री ने उनकी कविताए, व्याख्यानशक्ति तथा प्रतिभा देखकर बहुत संतोष और हर्ष प्रकट किया। उन्होने यह भी आशा प्रकट की कि मुनिश्री भविष्य मे उत्कृष्ट साधु होगे और जिन शासन को दिपायगे। पूज्यश्री की यह आशा मुनिश्री के लिए आशीर्वाद बन गई।

पूज्यश्री ने हमारे चरितनायक से जो सुनहरी आशा बाधी थी, वह आशा आशीर्वाद ही नही बनी वरन् मुनिश्री के लिए एक बडी जिम्मेवारी भी बन गई। मुनिश्री ने यह जिम्मेवारी पूरी तरह अदा

की और पूज्यश्री की आशा पूर्णत सफल कर दिखाई। आप निरन्तर प्रगति करते गये और कुछ दिनों मे चमक उठे।

पूज्यश्री ने आपको अपने पास रखने की इच्छा प्रकट की मगर कतिपय कारणो से ऐसा सुयोग न मिला। आपकी वक्तृत्व-शक्ति उस समय भी आरम्भ में ही इतनी विकसित हो चुकी थी कि पूज्यश्री भी उससे प्रभावित हो गये और शास्त्रज्ञ एव स्थविर मुनियो की मौजूदगी मे भी आपको ही व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित करते।

कुछ दिन रतलाम ठहरकर आप जावरा पधारे। वहां मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन करके आप जावद पहुचे। जावद में मुनिश्री (बडे) चौथमलजी महाराज विराजते थे। जी जवाहरलालजी महाराज उनसे विभिन्न विषयो पर प्रश्नोत्तर किया करते और उन्हें अपनी कविताए सुनाया करते। आपकी तर्क-शक्ति और प्रतिभा देखकर भावी आचार्य मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने श्री घासीलालजी महाराज से कहा था- 'यह बालक बड़ा प्रतिभाशाली और होनहार है। आपके पास इसे पढाने की सुविधा नहीं है। अगर आपको सुविधा हो तो इसे रामपुरा (होल्कर स्टेट) ले जाइये। वहा शास्त्रो के अच्छे ज्ञाता श्रावक केशरीमलजी रहते है। उनसे इसे शास्त्रों का अभ्यास कराइये।'

द्वितीय चातुर्मास

मुनिश्री घासीरामजी महाराज को श्री चौथमलजी महाराज का परामर्श उचित प्रतीत हुआ। उन्होंने पाच ठाणो से रामपुरा की ओर विहार किया। उस समय आप निम्नलिखित पाच साधु थे -

१- मुनिश्री घासीरामजी महाराज

२- मुनिश्री बदीचद जी महाराज

३- मुनिश्री मोतीलालजी महाराज

४- मुनिश्री देवीलालजी महाराज

५- मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज

रामपुरा पहुंचकर श्री जवाहरलालजी महाराज ने शास्त्रज्ञ श्रावक श्री केसरीमलजी के पास आगमो का अध्ययन आरंभ कर दिया। सवत् १९५० का चातुर्मास वहीं किया। अल्पकाल मे ही आपने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, सूत्रकृताग और प्रश्नव्याकरण सूत्र अर्थ सहित पढ़ लिये। इसी चातुर्मास मे श्रावक-समाज मे आपकी ख्याति फैल गई। समय-समय पर आप अपने व्याख्यानों से भी श्रावक-समाज को प्रभावित करने लगे।

तृतीय चातुर्मास

उस समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को व्याख्यान देने का साधारण अच्छा अभ्यास हो गया था। आपकी वाणी मे स्वाभाविक माधुर्य और ओज था। अव आप स्वतन्त्र रूप से व्याख्यान फरमाने लगे थे। आपका तीसरा चातुर्मास जावरा मे हुआ। वहां आप ही मुख्य रूप से दैनिक व्याख्यान देते थे। व्याख्यानो में आपने नूतन शैली का भी समावेश करना आरभ कर दिया था। फिर भी प्राचीन शैली के रूढि-ग्रस्त वृद्ध और नवीन विचारो से ओत-प्रोत नवयुवक सभी आपके व्याख्यानों को समान रूप से पसद करते थे।

जावरा मे आपका उपदेश सुनने के लिए काफी भीड इकट्ठी हो जाती थी। जिस उपदेशक ने अभी तक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की थी, जिसने आगमो का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त नहीं किया था और अभी तक उदीयमान उपदेशक ही था, उसने अपनी जन्म-जात प्रतिभा के प्रभाव से, अपनी आत्मा की गहराई से स्वयं प्रस्फुरित होने वाली वाणी से तथा अल्पकालीन प्रकृति-पर्यवेक्षण से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनका उपदेश सुनने के लिए लोग उत्सुक होने लगे।

पूर्वभव के सस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम एव उपादेय नाम-कर्म का तीव्र उदय कहिए, हमारे चरितनायक का विकास दिन दूना रात चौगुना होता गया।

चातुर्मास में जावरा मे अमृत-वर्षा करके आपने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के साथ थांदला की ओर प्रस्थान किया। मुनिश्री घासीरामजी महाराज वृद्धावस्था के कारण जावरा मे ही विराजमान रहे।

थांदला आपकी जन्म भूमि थी। आप थादला की धूल मे खेले थे। वहा के अन्न-जल से बडे हुए थे। वहा के लोगो ने आपको शिशु के रूप मे, मातृ-हीन तथा पितृ-हीन बालक के रूप में और फिर वस्त्र-विक्रेता के रूप मे देखा था। आज वही बालक नवीन रूप में थांदला में उपस्थित हुआ। उसे कठोर सयमी और प्रभावशाली उपदेशक के रूप मे देखने की उत्कण्ठा किसे न हुई होगी ? थादला की जनता मुनिश्री को इस रूप में पाकर निहाल हो गई। उसने मुनिश्री के गौरव को अपना ही गौरव समझा। आपकी वाणी सुनकर लोगो को रोमाच हो आया। थांदला निवासी अपने आपको धन्य मानने लगे। कुछ दिन थादला ठहरकर आपने वहा से विहार कर दिया।

चौथा चातुर्मास

थादला से विहार करके मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज फिर जावरा पधारे। वहा से धार आदि अनेक ग्रामों और नगरो मे उपदेश की धारा बहाते हुए फिर थादला आये। वहा की जनता ने चातुर्मास समीप आता देख वही चातुर्मास करने का तीव्र आग्रह किया। अतएव स. १९५२ का चातुर्मास आपने थादला में ही किया। चातुर्मास में आपके उपदेशो से ही बहुत धर्म-जागृति हुई। जनता के जीवन मे धर्म के सस्कार पडे।

मातृभूमि के विषय में आपकी भावना बहुत उदार थीं। आप भारतवर्ष को ही भारतीयो की जन्मभूमि कहा करते थे। प्रान्तीयता का सकीर्ण विचार आपको छू तक नही गया था। भारतवर्ष को लक्ष्य करके आपने कहा है-

'आपने इसी भारत-भूमि पर जन्म ग्रहण किया है। इसी भूमि पर शैशव-क्रीडा की है। इस भूमि के प्रताप से आपके शरीर का निर्माण हुआ है। हस ने मानसरोवर से जो कुछ प्राप्त किया है उससे कही बहुत अधिक आपने अपनी जन्मभूमि से पाया है। अतएव हस पर मानसरोवर का जितना ऋण है, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक ऋण आपके ऊपर अपनी जन्मभूमि का है। इस ऋण को आप किस प्रकार चुकायगे ?'

'जिस भूमि से तुम्हारा अपिरिमित कल्याण हो रहा है, उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुणगान करते रहना एक प्रकार का व्यामोह ही है।'

मातृभूमि के विषय मे आपकी कल्पना उत्यन्त उदार थी। बड़े ही प्रभावजनक शब्दो में आप मातृभूमि की महिमा का वर्णन किया करते थे। आपके यह विचार आपके साहित्य मे जगह-जगह बिखरे पडे हैं। जब आपके साहित्य का विषयवार सकलन होगा तो इस विषय का भावमय वर्णन बड़े-बड़े राष्ट्रनेताओ को भी चकित कर देगा। अस्तु।

भारतवर्ष मे भी थादला विशेषरूप से आपका जन्म-स्थान था। उसका आप पर विशेष ऋण भी माना जा सकता है। यद्यपि आप साधु हो चुके थे और सासारिक बंधनो को काट चुके थे तथापि मातृभूमि का ऋण अब भी आप अपने ऊपर चढा समझते थे। साधुओ पर मातृभूमि का ऋण है। यह बात आप अपने प्रवचनो में कहा करते थे। मगर उस ऋण को चुकाने का गृहस्थों का तरीका और है और साधुओ का तरीका और। साधु वहा की जनता को धर्मोपदेश देकर, फैले हुए अन्याय और अधर्म को हटाकर, वहा का अज्ञान दूर करके उस ऋण से बरी हो जाते हैं। आप चार महीने तक धर्मोपदेश देकर और लोगो को धर्म-मार्ग मे लगाकर उस ऋण से मुक्त हो गये।

पांचवां चातुर्मास

थादला का चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री घासीलालजी महाराज की सेवा का लाभ उठाने के पश्चात् आप रतलाम होते हुए तथा अन्य स्थानो मे भ्रमण करते हुए शिवगढ़ पधारे। स. १९५३ का चातुमार्स वही किया।

वहा भी आपके व्याख्यानों का खूब प्रभाव पड़ा। शिवगढ़ के ठाकुर साहब के भाई जो बाद में स्वय ठाकुर साहब हो गये, आपके उपदेश से प्रभावित हुए। मुनिश्री के प्रति ठाकुर साहब की बडी श्रद्धा-भक्ति थी। आपने उपदेशो से प्रभावित होकर जीवन भर के लिए मद्य और मास का परित्याग कर दिया। अन्य लोगों ने भी अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान किये। बहुत से पशु मारे जाने से बचाये गए।

शिवगढ का चातुमार्स पूर्ण करके मुनिश्री रतलाम और फिर जावरा पधारे। उस समय जावरा में मुनिश्री बडे जवाहरलालजी महाराज विराजमान थे। शास्त्रों के अध्ययन की भूख आप को बनी ही रहती थी। महाराज का सुयोग पाकर आपने फिर आगमो का अध्ययन आरम्भ कर दिया और कई आगमो की वाचना ली।

छटा चातुर्मास

जावरा से विहार करके आप सैलाना पधारे और सं. १९५४ का चातुर्मास सैलाना मे ही व्यतीत किया।

अनुभव और अध्ययन की वृद्धि के साथ ही साथ आपकी वक्तृत्व-कला भी विकसित होती चली। सैलाना में राज्य के बडे-बडे पदाधिकारी आपके धार्मिक प्रवचनों से प्रभावित और आकृष्ट हुए। आपका तप, त्याग और सयम उत्कृष्ट श्रेणी का था ही, वाणी का भी विकास हो चुका था। यह सोने ओर सुगध का सयोग था। इस सयोग से आपके प्रति जैन-जैनेतर जनता समान भाव से श्रद्धा प्रदर्शित करती थी।

आपके उपदेश के प्रभाव से लोगो ने अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों का त्याग किया। बड़ी सख्या मे लोगो ने तपश्चर्या की। धर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

चातुर्मास पूर्ण होने के अनन्तर मुनिश्री फिर जावरा पधारे। वहा तत्कालीन युवाचार्य मुनिश्री चौथमलजी महाराज विराजमान थे। कुछ दिन ठहरकर युवाचार्यजी के साथ आपने भी रतलाम की ओर विहार किया। रतलाम मे उस समय के महाप्रतापी आचार्य पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज विराजमान थे। पूज्यश्री, युवाचार्य तथा बहु-सख्यक मुनियो के एक साथ दर्शन करके आप आनन्द-विभोर हो गए। कहते हैं, उस समय रतलाम मे करीब डेढ सौ सत और सतियां एकत्र थे।

उन्ही दिनों, माघ शुक्ला दशमी को आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया।

सातवां-आठवां चातुर्मास

रतलाम से विहार करके आप मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के साथ खाचरौद पधारे। खाचरौद पधारने पर आपने सोचा- यदि श्री घासीरामजी महाराज यहां विराजें तो उन्हे अधिक सहूलियत रहेगी। यह सोचकर आप फिर जावरा पधारे और श्री घासीलालजी महाराज को खाचरौद ले आये। संवत् १९५५ का चातुर्मास आपने खाचरौद मे ही किया। खाचरौद में रहते हुए आपको सग्रहणी का रोग हो गया। उपचार करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

जीवन-विकास के लिए एक अनिवार्य साधन है-जीवन का निरीक्षण। जो पुरुष अपने जीवन-व्यवहार को सावधानी के साथ जाचता रहता है, अपने मानसिक भावों को पहरेदार की तरह देखता रहता है, उसके जीवन का आश्चर्य-जनक विकास अल्प-काल मे ही हो सकता है। अपने प्रति प्रामाणिक रहकर ऐसा करते रहने से आत्मा पापों से बचता है। यही कारण है कि साधु अपने सयम की रक्षा के उद्देश्य से प्रतिदिन आलोचना करते है। आलोचना में गुरु के समक्ष अपने सभी दोष प्रकाशित कर दिये जाते है और उन दोषों के निवारण लिए यथायोग्य प्रायश्चित अगीकार किया जाता है। दैनिक कार्यक्रम में किसी भी कारण से व्यतिक्रम हो जाय तो उसका प्रायश्चित करने के लिए प्रायः प्रतिदिन कुछ उपवासों का दड आता है। प्रतिदिन के उपवासो का दड पूरा करने के लिए एक विशिष्ट विधि है। वह यह कि एक साथ किये गए दो उपवास (बेला), अलग-अलग समय में किये गए पाच उपवासो के बराबर होते है। तीन उपवास (तेला) करने से पच्चीस उपवासो का फल प्राप्त होता है। चार उपवास (चौला) सवा सौ उपवासो के बराबर होते है और पाच उपवास (पंचोला) छह सौ पच्चीस उपवासों के बराबर होते है। इस प्रकार उत्तरोत्तर पाच गुना फल एक-एक उपवास पर बढता जाता है। उस तप के दूसरे दिन पौरसी का त्याग बढाने से दुगुना लाभ होता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के दैनिक कार्य-क्रम मे हुए व्याघात के प्रायश्चित्त-स्वरूप कुछ उपवास चढ गये थे। बीमारी बढ़ती देखकर आपने विचार किया- जीवन का क्या भरोसा है? अगर इन उपवासो को उतारे बिना ही मेरी मृत्यु हो गई तो मुझ पर ऋण रह जायगा। अतएव पहले इन उपवासो को उतार लेना श्रेयस्कर है। शारीरिक रोगों की चिकित्सा करने से पहले आत्मा के रोग की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

इस प्रकार मुनिश्री ने सभी उपवासो को उतारने के लिए लगातार छह उपवास कर लिये। इस तपस्या से वे ऋण-मुक्त ही नही हुए वरन् रोग-मुक्त भी हो गए।

इस आकस्मिक घटना ने उपवास का प्रत्यक्ष फल सामने प्रकट कर दिया। आपको अनशन की

महत्ता का अनुभव हुआ। तत्पश्चात् आपने अपने उपदेशो मे जहा-तहा अनशन तप के महत्त्व का प्रभावशाली और अनुभव-पूर्ण विवेचन किया है। वह विवेचन आपके इसी अनुभव का परिणाम है, यह कहना असगत न होगा। आपने फरमाया है-

'तप एक प्रकार की अग्नि है जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष एवं समग्र मलीनता भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि में तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भांति तेज से विराजित हो जाता है। अतएव तप-धर्म का महत्त्व अपार है।'

'जैसे आहार करना शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है उसी प्रकार आहार का त्याग करना-उपवास करना भी जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक है। आज अनेक स्वास्थ्य-शास्त्री उपवास का महत्त्व समझकर उसे प्राकृतिक चिकित्सा में प्रधान स्थान देते हैं। उपवास से शरीर कृश अवश्य होता है परन्तु उस कृशता से शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती। शरीर की कृशता शरीर के सामर्थ्य के ह्रास का प्रमाण नही है।'

'जिन भयकर रोगों को मिटाने मे डाक्टर असमर्थ थे, वे रोग भी अनशन के द्वारा मिटाये गए है। उपवास के सबंध में मेरा स्वानुभव है और मै कह सकता हू कि उपवास से अनेक रोगो का विनाश होता है। सभव है, जिन्होने उपवास-सबधी अनुभव प्राप्त नहीं किया ऐसे लोग उपवास की यह महत्ता कदाचित् स्वीकार न करें, पर उनके अस्वीकार का कोई मूल्य नही है। अनुभवी इस सत्य को स्वीकार किये बिना नही रह सकते।'

'उपवास इन्द्रियो की रक्षा करने वाला है। धर्म साधना का सबल साधन है। इन्द्रियो की चचलता का निग्रह उपवास से होता है।

इन्द्रियो को काबू मे रखना बहुत कठिन है। महाशत्रु पर अधिकार करना सरल है पर इन्द्रियों पर अधिकार करना कठिन है। उपवास ही इन्द्रियो पर अधिकार करने का सरल साधन है।

मनुष्य हमेशा खाता है। सावधानी रखने पर भी कहीं भूल हो जाना अनिवार्य है। प्रकृति भूल का दंड देने से कभी नही चूकती। किसी और से आप अपने अपराध क्षमा करा सकते है पर प्रकृति के दड से आप किसी भी प्रकार नही बच सकते। अगर आप प्रकृति के किसी कानून को तोड़ते है तो आपको तुरन्त उसका दंड भोगने के लिए उद्यत रहना होगा। आप दूसरों की आंखो में धूल झोंक सकते है पर प्रकृति के आगे आपकी एक नही चलेगी। प्रकृति के कानून अटल है-अचल है। उनमे तनिक भी हेर-फेर नही हो सकता। ऐसी स्थिति मे भोजन मे कोई भूल हुई नही कि कोई-न-कोई रोग आ धमकता है। उस रोग के प्रतिकार का सरल और सफल उपाय उपवास ही है। आपने उपवास किया और रोग छू-मन्तर हुआ। अगर आपको कोई रोग नही है तो भी उपवास करने का अभ्यास लाभदायक ही है।

अपने नियम के अनुसार प्रकृति जितने मनुष्यो के उत्पन्न करती है, उनके खाने के लिए भी वह उतना ही पैदा करती है। पर मनुष्य अपनी धीगा-धीगी से आवश्यकता से अधिक खा जाता है। इस पकार अकेले भारतवर्ष ने छह करोड मनुष्यो की खुराक को छीन कर उन्हे भूखे मारने का पाप अपने सिर ले लिया है। भारत मे तैंतीस करोड़ मनुष्य है। इनमे से छह करोड़ को अलग कर सत्ताईस करोड महीने मे छह उपवास करने लगें तो क्या छह करोड भूखो को भोजन नही मिल सकता?

इस प्रकार उपवास भूखो की भूख मिटाने वाला, रोगियो के रोग हटाने वाला और ईश्वरोपासक को ईश्वर से भेंट कराने वाला है। उपवास का अर्थ ही है-ईश्वर के समीप वास करना।'

मुनिश्री के उपदेश अधिकाश उनके विविध अनुभवो का ही परिणाम है। उपवास के विषय मे आपने अधिकारपूर्वक, दृढ़ता के साथ जो मत व्यक्त किया है, उनका अनुभव ही उसका साक्षी है। अनुभव-ज्ञान मे कितनी गम्भीरता, कितनी तेजस्विता और कितनी दृढ़ता होती है।

चातुर्मास पूर्ण होने पर मुनिश्री अनेक स्थानो मे विचरते हुए फिर खाचरौद पधार गए और मुनिश्री घासीरामजी महाराज की सेवा में रहने लगे। स. १९५६ का चातुर्मास भी आपने खाचरौद मे ही किया। इसी चातुर्मास मे श्री राधालालजी भटेवरा ने आपके पास दीक्षा ग्रहण की।

खाचरौद में दूसरा चौमासा समाप्त करके आपने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और श्री राधालालजी महाराज के साथ जावरा की ओर विहार किया। वहा अन्य साधुओ के साथ आचार्य महाराज विराजमान थे।

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने माघ शुक्ला दशमी के दिन आचार्य-पद अलकृत किया था। उस समय वे वयोवृद्ध थे। नेत्र-शक्ति क्षीण हो गई थी। अधिक विहार नही कर सकते थे। ऐसी स्थिति में इतने विशाल सम्प्रदाय का सचालन और निरीक्षण करना उनके लिए कठिन था। अतएव उन्होने भिन्न-भिन्न प्रान्तो में विचरनेवाले साधुओ की देख-रेख के लिए चार साधु नियुक्त कर दिए, जिनमें से एक हमारे चरितनायक भी थे।

मुनिश्री को दीक्षा लिये उस समय सिर्फ आठ वर्ष हुए थे। आपकी उम्र चौबीस वर्ष की थी। सम्प्रदाय में लम्बी दीक्षा और बड़ी उम्र के बहुत से मुनिराज थे। मगर प्रतिभा, सयम-परायणता, व्यवस्था शक्ति और दूसरी योग्यताओ के कारण आप इस पद के योग्य समझे गये। इतनी छोटी दीक्षा पर्याय में यह पद प्राप्त होना सूचित करता है कि आप उस समय भी साधु-समचारी के विशिष्ट ज्ञाता हो गए थे। उत्सर्ग और अपवाद-मार्ग के रहस्य को भली-भाति जानने लगे थे, व्यवस्था करने मे कुशलता प्राप्त कर चुके थे और आगमानुकूल सयम-पालन की प्रतीति करा चुके थे।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अस्वस्थ होने के कारण अतिम तीन वर्षो मे जावरा तथा रतलाम ही विराजे रहे। उस समय मुनिश्री श्रीलालजी महाराज उनकी सेवा मे थे। तेजस्वी, प्रतिभाशाली तथा आचार-निष्ठ होने के कारण आचार्यश्री उन्हे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को आचार्यश्री ने आस-पास के क्षेत्रो में ही विचरने का आदेश दिया और वे आस-पास ही विचरने लगे।

नौवां चातुर्मास १९५७

कुछ दिन पूज्यश्री की सेवा में रहकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने तीन ठाणो से महतपुर की ओर विहार किया। उस समय मुनिश्री मोतीलालजी महाराज आपके साथ थे। महतपुर उज्जैन के समीप एक छोटा-सा कस्बा है। सवत् १६५७ का चातुर्मास वही हुआ।

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज का स्वर्गवास

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने स. १८५७ का चातुर्मास रतलाम मे ही किया था। वृद्धावस्था

के कारण आप अशक्त तो थे ही, शरीरिक अस्वस्थता भी चलती रहती थी। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा की रात्रि को आचार्यश्री की व्याधि कुछ बढ़ गई। शरीर की अस्थिरता का विचार करके आपने दूसरे दिन चतुर्विध श्रीसघ के सामने मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को युवाचार्य जाहिर किया। उसके एक सप्ताह पश्चात् ही अष्टमी की रात्रि मे आचार्यश्री चौथमलजी महाराज स्वर्ग सिधार गए।

उस समय श्री श्रीलालजी महाराज रतलाम में ही मौजूद थे। एक सप्ताह युवाचार्य-पदवी भोगकर कार्तिक शुक्ला नौवी के दिन प. प्र. श्रीलालजी महाराज ने आचार्य-पद सुशोभित किया।

नवीन आचार्य के दर्शन

रतलाम में चातुर्मास पूर्ण करके पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज अनेक स्थानों पर धर्मोपदेश देते हुए इन्दौर पधारे। उसी समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी महतपुर में चातुर्मास समाप्त करके इन्दौर पधार गये। पूज्यश्री के दर्शन करके आपको अत्यन्त प्रमोद हुआ।

इन्दौर से पूज्यश्री के साथ रतलाम की ओर विहार हुआ। बड़नगर तक सभी संत साथ-साथ पधारे। वहा से मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और हमारे चरितनायक देहात में धर्म-प्रचार करने के लिए अलग हुए और पूज्यश्री के रतलाम पहुचने के कुछ दिनों पश्चात् आप दोनों सत भी रतलाम पधार गये।

रतलाम से पूज्यश्री ने मेवाड़ की ओर विहार किया। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज आदि कई सन्तों ने कुछ दिन ठहरकर उसी ओर विचरना आरम्भ कर दिया।

जवाहरात की पेटी

मेवाड प्रान्त मे धर्म की जागृति करते हुए पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज उदयपुर पधारे। वहा आपके मधुर और प्रभावशाली प्रवचनों से अनेक धार्मिक कार्य हुए। आपके ही सदुपदेश से मेवाड के प्रधानमंत्री रा. रा. कोठारीजी श्री बलवन्तसिह जी साहब ने जैन धर्म अगीकार किया।

एक दिन कोठारीजी तथा उदयपुर के श्रीसंघ ने पूज्यश्री सें आगामी चातुर्मास उदयपुर में करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने उत्तर दिया- 'इस वर्ष यहा चातुर्मास करना मेरे लिए अनुकूल प्रतीत नही होता। मै आपके लिए जवाहरात की पेटी के समान मुनि जवाहरलालजी को भेज दूगा। उनके यहा पहुचने से आनन्द मगल होगा।'

उदयपुर के श्रीसघ ने नतमस्तक होकर पूज्यश्री का कथन स्वीकार किया। धन्य है मुनिश्री जवाहरलालजी, जो अपनी योग्यता के द्वारा आचार्य महाराज के मुखारविन्द से प्रशंसा के पात्र वने! और धन्य है आचार्य महाराज, जो अपने छोटे सन्तो के सद्गुणों की प्रशंसा करके उन्हे उत्साहित करते हैं! सचमुच सन्तों का स्वभाव ऐसा ही भद्र और कोमल होता है!

दसवां चातुर्मास १९५८

पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने तीन सन्तों के साथ स. १९५८ का चातुर्मास उदयपुर मे किया। उदयपुर मे प्रतिदिन प्रभावशाली प्रवचनो द्वारा आप श्रोताओं को प्रभावित करने लगे। हजारों श्रोता, जिनमे जैन और जैनेतर, हिन्दू और मुसलमान, पुरुष और स्त्रियो का समावेश

था, आपके उपदेश से लाभ उठाते थे। मुनिश्री मृगापुत्र का अध्ययन फरमाते थे। कर्मो का फल किस प्रकार भोगना पड़ता है, इस विषय का आप हूबहू शब्द-चित्र खीच देते थे। किसनगढ के रहने वाले एक मुसलमान भाई तो बिना नागा उपदेश सुनने आते थे। उन पर भी उपदेश का खूब प्रभाव पड़ा और वे सदा के लिए मुनिश्री के भक्त बन गये।

उसी चातुर्मास मे मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ४५ दिन की तीव्र तपस्या की। तपस्या के पूर के दिन मेवाड सरकार के आदेश से उदयपुर के सभी कसाईखाने बंद रखे गये और बहुत से प्राणियो को अभय-दान दिया गया।

चातुर्मास मे उदपुर मे बड़ा आनन्द रहा। वातावरण में उत्साह और स्फूर्ति के साथ सात्विकता छा गई। उदयपुर की जनता पूज्यश्री के वचनो को बार बार याद करती और कहती-वास्तव मे जवाहरलालजी महाराज जवाहरात की ही पेटी हैं।

इसी चातुर्मास मे चरितनायक ने वर्तमान पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को सम्यक्त्वरत्न प्रदान किया। उस समय किसे ज्ञात था कि सम्यक्त्व देकर जिसे आज धर्म के प्रवेश-द्वार पर खडा किया है, वही आगे चलकर उनका प्रधान शिष्य बनेगा और अन्त में उनका उत्तराधिकारी होकर शासन दिपायेगा।

उदयपुर मे चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री तरावलीगढ पधारे। वहा श्री घासीलालजी को मुनि-दीक्षा दी। वहा से मारवाड़ की ओर विहार किया। रास्ते में आपको कुछ लुटेरे मिल गए। उस समय श्री घासीरामजी महाराज नवदीक्षित ही थे। नवीन वस्त्र पहने थे। भिक्षा मागकर जीवन-निर्वाह करने वाले और अन्न-जल का एक भी कण आज का कल न रखने की दृढ़ परम्परा का पालन करने वाले, ससार की सम्पत्ति को सांप की तरह भयावह समझने वाले अकिचन मुनियों के पास और धरा ही क्या था ? कुछ लकड़ी के पात्र, कुछ वस्त्र और कुछ शास्त्र ही उनके पास थे। अभागे लुटेरो को लूटने के लिए मिले भी तो यह साधु मिले! न जाने किस मुहूर्त्त में लूटने चले थे! वे मन-ही-मन पछताते होंगे, झुझलाते होगे और अपनी तकदीर को कोसते होगे।

अग्रेजी भाषा में एक कहावत है-Some thing is better than nothing अर्थात् कुछ भी नहीं से कुछ भला। बेचारे कितना साहस बटोरकर घर से निकले होंगे ? जंगल मे अपने शिकार की कितनी और कितनी देर प्रतीक्षा की होगी ? कितनी मनवार करके अपने मन को इस जोखिम के लिए मनाया होगा ? अब बहुत नही तो थोड़ा ही सही ? मंगलाचरण मे असफलता तो नही कहलाएगी ? शकुन तो नही बिगड़ेगा! इसके अतिरिक्त साधु मगल-रूप है तो उनके वस्त्र भी शायद हमारे लिए मगलमय सिद्ध हो जाय! ऐसा ही कुछ सोचकर लुटेरों ने साधुओ के कई वस्त्र छीन लिये! यहा तक कि श्री घासीलालजी का कमर मे पहनने का वस्त्र चोलपट्ट भी उनके शरीर पर न रहने दिया।

उस समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने लुटेरो को जैन साधु का परिचय दिया। उन्हे बतलाया- 'हम जैन साधु है। रुपया-पैसा पास नही रखते। भिक्षा मागकर निर्वाह करते है। भिक्षा के लिए यह पात्र है, लज्जा ढकने के लिए वस्त्र और पढ़ने-पढाने के लिए शास्त्र है। इनके सिवाय हमारे पास कुछ है नही। भाइयो! हमें लूटकर तुम क्या पाओगे ? फिर जैसी तुम्हारी इच्छा!'

मुनिश्री के समझाने पर एक लुटेरे ने चोलपट्ट वापस कर दिया। कुछ वस्त्र लेकर वे एक ओर चले गए और मुनि-गण ने दूसरी ओर आगे प्रस्थान किया। अगले गाव पहुचने पर लोगो ने जब यह घटना सुनी तो उन्हे असह्य हो गई। उन्होंने रिपोर्ट करके चोरो को पूरा दड दिलाने की ठानी। मगर मुनिश्री ने समभाव का उपदेश देकर सबको शान्त किया।

ग्यारहवां चातुर्मास

चातुर्मास के पश्चात अनेक क्षेत्रों मे धर्म-प्रचार करते हुए मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज जोधपुर पधारे। सवत् १९५८ का चातुर्मास आपने जोधपुर मे ही व्यतीत किया। सयोग से तेरहपंथ सम्प्रदाय के आचार्यश्री डालचदजी का चातुर्मास भी जोधपुर मे ही था।

दया-दान का प्रचार

जैन समाज की श्वेताम्बर शाखा में तेरहपथ नाम से एक सम्प्रदाय है। इसके मूल प्रवर्त्तक भिक्खुजी स्वामी माने जाते है। प्रारभ मे वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज के शिष्य थे। कर्मोदय की विचित्रता से उनके मस्तिष्क में कुछ मिथ्या धारणाए जम गई। पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज ने उनके निराकरण का भरसक प्रयत्न किया और अनेक शास्त्रों के मूल पाठ दिखलाए, मगर कोई किसी के कर्मोदय को कैसे पलट सकता है? भिक्खुजी जब अपनी धारणाओ पर अडे रहे तो अत मे उन्हें सघ से पृथक कर दिया गया और उन्होंने अपनी मान्यताओं का स्वतंत्र रूप से प्रचार करना आरभ कर दिया। 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' कहावत के अनुसार सबकी अपनी-अपनी समझ अलग-अलग होती है और इसी कारण संसार में बहुत-से मत, पथ, सम्प्रदाय एवं परम्पराए हैं। मगर तेरहपथ सम्प्रदाय इन सबमें अपना विशेष स्थान रखता है। यह सम्प्रदाय, धर्म के मूलभूत तत्त्व दया-दान पर कुठाराघात करता है और इस प्रकार मानवता के विरुद्ध विद्रोह करता है। इसके कुछ मन्तव्य इस प्रकार है-

(१) मरते हुए जीव को बचाने मे पाप है। अगर गोओं के बाड़े मे आग लग जाय तो उन्हें बचाने के उद्देश्य से बाडा खोल देने वाला पाप का भागी होगा। बचा हुआ जीव अपने शेष जीवन में जो पाप करेगा उन सब पापों का भागी बचाने वाला भी होगा।

(२) प्यास से तडपते हुए किसी भी मनुष्य या दूसरे प्राणी को पानी पिला देना पाप है, क्योंकि पानी मे असख्यत जीव है और पानी पिलाने से एक जीवन की रक्षा करने मे असंख्यात जीवन मरते है। अगर कोई दयालु छाछ जैसी निर्वद्य चीज, जिसमें जीव नही है, पिलाकर किसी के प्राण बचा लेता है तो वह भी पाप का भागी होता है, क्योंकि जीव-रक्षा करना ही पाप है।

(३) माता का अपने बालक को दूध पिलाकर पालन-पोषण करना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना भी एकान्त पाप है।

(४) अगर कोई सुपुत्र माता-पिता की सेवा करता है तो उसका यह कृत्य भी पाप है।

भगवान् महावीर ने तेजोलेश्या से जलते गोशालक की रक्षा की थी। तेरहपथी भाइयो के सामने जीव-रक्षा का यह उदाहरण जब उपस्थित किया जाता है तो वे बिना सकोच कह देते है कि-'उस समय भगवान महावीर चूक गए।'

यहा इतना बतला देना आवश्यक है कि संसार मे जितने भी विशिष्ट विचारक और मत-प्रवर्त्तक हुए है, उन्होने धर्माचरण का ही उपदेश दिया और जीव-रक्षा को सब धर्माचरणों मे श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। जैनागम तो जीव-रक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उनका निर्माण इसी उद्देश्य से हुआ है। जैन-शास्त्र मे कहा है-'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहिय।' अर्थात् जगत् के सभी जीवो की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है। जैनेतर शास्त्र भी जीव रक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके समर्थन के लिए उन शास्त्रो के उद्धरण देने की आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज ने भिक्खूजी को शास्त्र–पाठो से बहुत समझाया, परन्तु भिक्खूजी ने अपना हठ न छोडा तो उन्हें सम्प्रदाय से पृथक् कर दिया गया। भिक्खूजी के साथ उनके स्नेही छह साधु और निकल गये। स्थानकवासी समाज में ही एक दूसरे सम्प्रदाय के आचार्य पूज्यश्री जयमल्लजी महाराज थे। पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज और उनके सम्प्रदाय के साधुओ में काफी घनिष्ठता थी। मिलना–जुलना, वार्त्तालाप तथा एकत्र निवास भी होता रहता था। अतएव भिक्खूजी ने उस सम्प्रदाय के छह साधुओं पर भी अपना असर डाल दिया। इस प्रकार तेरह व्यक्तियों ने मिलकर अपने नव–निर्मित अदया–अदान धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं का सम्प्रदाय 'तेरहपथ' कहलाता है।

भगवान् महावीर के अहिंसा-धर्म का इस प्रकार विपरीत प्रचार होते देखकर और भोली जनता को धर्म के नाम पर घोर अधर्म और निर्दयता का शिकार होते देखकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का सदय हृदय पिघल गया। जीव-रक्षा को पाप बतलाना मानवता के नाम पर और धर्म के नाम पर घोर कलक है। ऐसी भयानक मान्यताओ का प्रबल विरोध करना ही मुनिश्री ने अपना कर्त्तव्य समझा।

तेरहपथ के आचार्य डालचन्दजी का चौमासा भी उस साल जोधपुर मे ही था। इस कारण सत्य वस्तु जनता को समझाने का यह अच्छा अवसर था। मुनिश्री ने तेरहपथ के प्रधान ग्रथ 'भ्रम-विध्वसन' का सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया। 'भ्रम-विध्वसन' के अवलोकन से आप की उक्त इच्छा अधिक बलवती हो उठी। आपने सोचा–सर्व-साधारण के सामने यदि यह बात आ जाय कि तेरहपथियों का मत जैन शास्त्रों के विरुद्ध है तो यह कलक जैन-धर्म के नाम पर न रहे। श्रावको ने भी सत्य को प्रकट कर देने की मुनिश्री की इच्छा का समर्थन किया। मुनिश्री ने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए शास्त्रार्थ करने का उपाय ही समुचित समझा। शास्त्रार्थ का सिलसिला शुरू करने के अभिप्राय से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने सात प्रश्न तैयार किये। श्रावको ने उन प्रश्नों को लेकर एक विज्ञप्ति निम्नलिखित रूप मे प्रकाशित कर दी.-

तेरहपंथियों को विदित हो कि नीचे लिखे प्रश्न सविस्तर सूत्रार्थ के पाठ सहित तुम्हारे पूज्यजी से पूछकर लिखो। सात प्रश्न निम्नलिखित है-

(१) श्रीमन्महावीर भगवान् को दीक्षा लेने के बाद चूका बताते हो, सो वह पाठ दिखाओ।

(२) साधु के सिवाय किसी को दान देने मे एकान्त पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(३) बयालीस दोष टालकर आहार लेनेवाले पडिमाधारी श्रावक को दोष रहित आहार देने मे पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(४) साधुजी महाराज़ को किसी दुष्ट ने फांसी दी। किसी दयावान् ने धर्म-बुद्धि से उसे खोल दिया। तुम उन दोनो को पापी कहते हो और श्रद्धते हो, सो पाठ दिखाओ।

(५) गायो का बाड़ा भरा हुआ है, उसमे किसी दुष्ट ने आग लगा दी। किसी दयावान् ने किवाड़ खोलकर गायो को बाहर निकाल दिया और उनके प्राण बच गए। तुम उन दोनो को पाप कहते हो, सो पाठ दिखाओ।

(६) पन्द्रहवां कर्मादान 'असजती पोसणिया' कहते हो और सिखलाते हो, सो पाठ दिखलाओ।

(७) असयती का जीना नही वाच्छना, ऐसा कहते हो, सो पाठ दिखाओ।

इन प्रश्नो का उत्तर जल्दी लिखो। और भी बहुत से प्रश्न हैं।

तुम्हारा मत अर्थात् भीखमजी का चलाया हुआ मत जैन-सिद्धान्त तथा जैन आगमों के विरुद्ध स्पष्ट दिखाई देता है। तुम्हारे पूज्यश्री न्याय-पूर्वक चर्चा अर्थात् शास्त्रार्थ करना चाहे तो हमारे साधुजी चर्चा करने को तैयार हैं। स्थान तीसरा और निष्पक्ष विवेकी समझदार तीसरे मत के मध्यस्थ मोअज्जिज मुकर्रर होवें ताकि गलवा न हो सके। चर्चा जरूर होनी चाहिए। एक हफ्ते की मियाद दी जाती है, क्योंकि चौमासे के दिन थोडे रहे हैं। जो इस मौके पर तुम्हारे पूज्यश्री चर्चा नही करेगे तो हम लोग तो समझते ही है, और भी सब लोग तुम्हारे को झूठा समझेंगे। सम्वत् १९५९ कार्तिक सुदी २।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से
मुणोत अमरदास। भण्डारी किसनमल।

इस नोटिस के बाजार में बटते ही तेरहपथियो की तरफ से भण्डारी किशनमल जी एक पत्र बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों के पास आया। उसमें लिखा था-पू. डालचन्दजी शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार है, शीघ्र चर्चा कर लो। पत्र मे चर्चा-स्थान के लिए उदयमन्दिर तथा मध्यस्थ के लिए अन्य दो सज्जनों के अतिरिक्त उदयमन्दिर के महन्त गोसाई गणेशपुरीजी को चुना था। उदयमन्दिर जोधपुर से काफी दूर पर है।

इस पत्र के उत्तर मे बाईस सम्प्रदाय की ओर से भण्डारी किशनमलजी को लिखा गया कि शास्त्रार्थ के लिए स्थान उदयमन्दिर उपयुक्त नहीं है। पता नही शास्त्रार्थ कितने दिन चले, जाने मे बहुत सा समय व्यर्थ चला जायगा। मध्यस्थ, दर्शक तथा श्रोताओ को भी वहा जाने-आने में परेशानी होगी। इसलिए कोई समीपवर्ती स्थान चुनना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गणेशपुरीजी महन्त तेरहपन्थियो के पक्षपाती हैं। उनके स्थान पर शास्त्रार्थ करना तथा उन्हे मध्यस्थ बनाना दोनो बातें अनुचित है।

मध्यस्थ के लिए हम गुरा साहेब श्री जवाहरमलजी, मणिविजयजी, तथा कविराज श्री मुरारीदानजी का नाम पेश करते है। स्थान के लिए आप आहुवा की हवेली, ओसवाल जाति का नोहरा या किसी भी समीपवर्ती मकान को चुन सकते है। इससे जनता अधिक लाभ उठा सकेगी तथा शास्त्र लाने ले जाने मे मुनियो को कष्ट न होगा।

तेरहपथियो ने जवाहरमलजी तथा मणिविजयजी को मध्यस्थ बनाने से इन्कार कर दिया और गणेशपुरीजी के लिए फिर आग्रह किया। स्थान-समय के लिए भी वे टालमटोल करने लगे।

अन्त मे उनसे कहा गया-दोनों पक्ष वाले कविराज श्री मुरारीदान जी को मध्यस्थ चुन ले। स्थान और समय के लिए उन्हीं से निर्णय करा लिया जाय। वे जो कहे, दोनो को मान्य हो। कविराज जोधपुर के एक प्रतिष्ठित विद्वान सज्जन थे, मध्यस्थ भी थे। साहित्य-सेवी उनके नाम से भली भाति परिचित है।

तेरहपथियो ने इस बात को भी मजूर नहीं किया। वास्तव मे वे शास्त्रार्थ करने से डरते थे और उसे टालने का प्रयत्न कर रहे थे।

जनता ने समझ लिया कि तेरहपन्थी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। अन्त मे उनसे कहा गया-यदि आप शास्त्रार्थ करना नही चाहते तो जाने दीजिये, उन सात प्रश्नो का उत्तर दीजिए। इस पर तेरहपन्थियो की ओर से कोई उत्तर न मिला।

प्रतापमलजी का प्रतिबोध

मारवाड मे पंचभद्रा नामक एक गांव है। वहा प्रतापमलजी चोपड़ा एक धर्म-प्रेमी गृहस्थ रहते थे। वे तेरहपथ के अनुयायी थे। तेरहपथ मे उनकी बड़ी श्रद्धा थी।

एक बार विचार करते-करते तेरहपंथियो की प्ररूपणा मे उन्हे कुछ सदेह हुआ। सन्देह-निवारण के लिए चौपडाजी अपने आचार्य डालचन्दजी के पास जोधपुर आये। डालचदजी ने इधर-उधर की बातो से उन्हें समझाने का प्रयत्न किया मगर तत्त्व के जिज्ञासु को इससे सन्तोष नही हुआ। उन्होंने आगम का पाठ दिखलाने के लिए कहा। इस पर डालचदजी बिगड़ खडे हुए और उन्हें मिथ्यात्वी कहकर टाल दिया।

मनुष्य प्रायः अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए क्रोध का आश्रय लेता है। मगर धर्म तो कल्याण के लिए है। धर्म के क्षेत्र मे दृढ़ता के साथ सत्य का विचार करना चाहिए। वहा किसी प्रकार की बनावट या दिखावट को स्थान नही हो सकता। धर्म के विषय मे कोई समझौता काम नही देता। जिसे सत्य को खोजने की प्रबल आकाक्षा है वह गुपचुप बिना समझे-बूझे कोई बात न मानेगा। वह प्रत्येक बात को शास्त्र के अनुसार समझकर ही ग्रहण करेगा। वह शका करने में सकोच भी नही करेगा और उसका धर्मगुरु उसकी शका से क्रुद्ध नही होगा। इस विषय में हमारे चरितनायक स्पष्ट शब्दों में कहते है-'जैन-शास्त्र कहता है कि सूत्र सिद्धान्त की बात चुपके-चुपके बताना उचित नहीं। अतएव तुम्हे जो कुछ भी बताया गया है उसके संबध में पूछ-ताछ करो और उत्पन्न हुई शका का समाधान प्राप्त करो।' बिना समझे-बूझे किसी बात को स्वीकार कर लेने के विषय में आपका कहना है-'धर्म के विषय मे अक्सर ऐसा होता है कि शका होने पर भी पूछताछ नही की जाती और शका को हृदय मे स्थान दिया जाता है। कुछ लोगों का तो यहा तक कहना है कि हमारे सामने जो कुछ आवे, उसी को खा जाना चाहिए। इस प्रकार पशुओ की भाति सोचे-समझे बिना किसी वस्तु को खाने बैठ जाना अनुचित है।...... इसी प्रकार चाहे जिस बात को बिना विचारे मान लेना हानिकारक है। प्रतिपृच्छना के प्रश्न द्वारा जैन-शास्त्र इस बात का अनुमोदन करता है कि कोई बात बिना विचारे नही मान लेनी चाहिए, वरन् पूछ-ताछ करके योग्य मालूम हो तो ही कोई बात माननी चाहिए।

जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से शका करना आवश्यक है। शका किये बिना अधिक ज्ञान नही प्राप्त हो सकता। जिज्ञासा ज्ञानोपार्जन का एक कारण है। आज विज्ञान का जो आधिपत्य देखा जा रहा है, उस विज्ञान का आविष्कार भी जिज्ञासा से ही हुआ है।

तात्पर्य यह है कि जिसे सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा है वह न शंका करने से घबराता है और न समाधान करने से। शका-समाधान में झुझला उठना सत्य के ऊपर अश्रद्धा का द्योतक है।

प्रतापमलजी जिज्ञासु तो थे ही, समाधानकर्त्ता की टाल-मटोल से उनकी जिज्ञासा और बढ़ गई। वे सत्य वस्तु का निर्णय करना चाहते थे अतः मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के पास आये। मुनिश्री ने जैनागमों के पाठ बतलाकर उनकी सब शंकाओ का समाधान कर दिया। प्रतापमलजी ने मुनिश्री की युक्ति और आगम के अनुकूल व्याख्या सुनी तो उन्हे ऐसा मालूम हुआ कि मैं अधकार में हू और अब प्रकाश की रेखा देख रहा हू। वे फिर डालचदजी स्वामी के पास पहुचे और शास्त्रीय पाठ बताकर उनसे खुलासा करने की प्रार्थना की।

डालचन्दजी स्वामी के पास जो अन्तिम शस्त्र था, उसी का उन्होंने प्रयोग किया। वह यह कि भीखमजी महाराज के वचनों पर अविश्वास नहीं करना चाहिए। अविश्वास करने से मिथ्यात्व का पाप लगता है!

प्रतापमलजी बोले- आपके कथनानुसार चार निर्मल ज्ञानों के धनी महावीर स्वामी भी छद्मस्थ अवस्था में चूक गये तो भीख़मजी स्वामी के या आपके वचन अचूक कैसे माने जा सकते हैं ? मुझे तो एकमात्र भगवान् के वचनों पर ही भरोसा है। आप भगवान् का वचन-आगम का पाठ-दिखाइये, तभी आपकी बात मानी जा सकती है।

यह स्पष्ट और निर्भीक बात सुनकर तेरहपथियो के पूज्य डालचदजी नाराज हो गये और कहने लगे–तुम्हे बाईस टोलों के साधु ने बहका दिया है। उससे कहो शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो जाए।

प्रतापमलजी ने आकर मुनिश्री जवाहरलाल जी महाराज से यह बात कह दी। मुनिश्री तो सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए उद्यत ही थे। उन्होने कहला भेजा कि प्रात· काल अमुक स्थान पर मिल ले जिससे शास्त्रार्थ का स्थान, समय आदि का निर्णय किया जा सके।

तेरहपन्थी पूज्य डालचंदजी ने प्रतापमलजी के सामने तो मिलने की बात मजूर करली किन्तु दूसरे दिन नियत स्थान पर वे नहीं पहुचे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज तो नियत स्थान पर जाकर और वहा डालचदजी को न पाकर लौटने लगे। प्रतापमलजी साथ थे। वे मुनिश्री को ऐसे रास्ते से लाये जिस पर डालचदजी का निवास था। जब मुनिश्री उनके उपाश्रय के सामने पहुंचे और उनकी नजर आप पर पडी तो उनके शिष्य मगनजी बारह साधुओ के साथ बाहर निकल आये और अण्ड-बण्ड बोलने लगे।

मुनिश्री ने मगनजी से कहा- इस प्रकार के वचन बोलना साधु को शोभा नही देता। अगर आप शास्त्रार्थ करना चाहते है तब तो स्थान और समय का निर्णय कर लीजिए; अन्यथा स्पष्ट उत्तर दीजिए।

मगनजी ने कहा- इस सुनार के चबूतरे पर बैठकर शास्त्रार्थ कर लीजिए।

मुनिश्री ने उत्तर दिया-यो चलते रास्ते शास्त्रार्थ नहीं हुआ करते। इस समय शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है ? किसी तीसरे स्थान पर तथा पक्षपात-रहित एव समझदार चार मध्यस्थ चुन लीजिए। वहा शान्ति-पूर्वक विचार-विनिमय तथा शास्त्रो के अर्थ का निर्णय हो सकेगा।

मगर मगनजी को यह कब अभीष्ट था? वे बेसिर-पैर की बातें फिर कहने लगे और इस प्रकार बात को टालने की कोशिश करने लगे।

मुनिश्री ने यह रग देखकर उनसे अधिक वार्त्तालाप करना उचित न समझा। वे सीधे डालचन्दजी के सामने पहुंचे और कहा-'अगर आपको शास्त्रार्थ करना है तो मध्यस्थ और स्थान का चुनाव कर लीजिये। मै तैयार हूं।' इस प्रकार शास्त्रार्थ की चुनौती देकर मुनिश्री अपने स्थान पर पधार गये।

मुनिश्री के चले जाने पर तेरहपथी श्रावको और साधुओ ने प्रतापमलजी का जो घोर अपमान किया उससे उन्हे तेरहपथ से घृणा हो गई। अपनी शका का समाधान करने और तत्त्वनिर्णय के लिए किए हुए प्रयत्न का यह दुष्परिणाम होगा,यह उन्हे मालूम नही था। बाद में वे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के पास आये और उन्होने सारा वृत्तान्त कहा। मुनिश्री ने उन्हे सच्चे धर्म पर श्रद्धा करने का उपदेश दिया। प्रतापमलजी कुछ दिनो तक मुनिश्री की सेवा मे रहे और धर्म का वास्तविक स्वरूप समझने का प्रयास करते रहे। जब उन्हे सन्तोष हो गया तो मुनिश्री से सच्ची श्रद्धा लेकर और उन्हे अपना गुरु मानकर वे अपने घर चले गये।

प्रत्युत्तरदीपिका

चातुर्मास पूर्ण हो गया। डालचदजी स्वामी ने न शास्त्रार्थ किया, न सात प्रश्नो का उत्तर ही दिया। छ. महीनो बाद तेरहपथियों की तरफ से 'प्रश्नोत्तरसमीक्षा' नाम की पुस्तिका प्रकाशित हुई। उसमे सात प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया था और बाईस सम्प्रदाय से वही प्रश्न उलट कर पूछे गये थे। पुस्तिका भडारी कृष्णमल, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुई थी।

इस पुस्तिका मे प्रकट की हुई दया-दान-विरोधी भ्रमपूर्ण मान्यताओ पर विचार करने के लिए मुनिश्री ने 'प्रत्युत्तरदीपिका' नामक पुस्तक तेरह दिन की तपस्या करके तेरह दिनो मे तैयार की। यह पुस्तक श्रीमान् सेठ बहादुरमल जी बाठिया लाइब्रेरी, भीनासर (बीकानेर) की ओर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक तेरहपथ की भ्रम-मय धारणाओं का निराकरण किया गया है। इस पुस्तक के उत्तर मे तेरापथी फिर कुछ न लिख सके।

बालोतरा

जोधुपर में चातुर्मास व्यतीत करके मुनिश्री जवाहरलालजी विहार करते हुए समदडी पधारे। उसी समय तेरहपथ के आचार्य बालोतरा पहुचे। उस समय बालोतरा मे बाईस सम्प्रदाय के दो साधु थे। वे शास्त्रों के विशेष जानकार नहीं थे। उन्हे देखकर डालचदजी स्वामी का जोधपुर मे ठडा पड़ा हुआ जोश उफन आया। आपने अपने श्रावको को भेजकर शास्त्रार्थ करने का चेलेन्ज दे डाला। बाईस सम्प्रदाय वालो ने उनकी यह चाल समझ तो ली, फिर भी उन्होने चेलेन्ज स्वीकार कर लिया। साथ ही उन्होने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को सूचना देने के लिए एक आदमी समदडी भेज दिया।

सूचना मिलते ही मुनिश्री ने समदड़ी की ओर विहार कर दिया और यथा-सभव शीघ्र बालोतरा पधार गए। डालचदजी को पता चला तो वे सहम गए। किन्तु अव क्या हो सकता था? उन्होने स्वय ही जाल फैलाया था और अब वही उसमे फस गये थे। उसमे से बाहर निकलने की तरकीब सोची जाने लगी, मगर दुनिया क्या कहेगी, यह विचार परेशान कर रहा था।

आखिरकार स्वय डालचदजी तो अलग रहे। उन्होंने अपने शिष्य मगन मुनि को दस-बारह साधुओ और पचास श्रावको की एक टुकड़ी के साथ भेजा। शास्त्रार्थ का स्थान सूरतरामजी का मदिर तथा मध्यस्थ श्री चन्दनमलजी लोढ़ा चुने गये।

दूसरे दिन निश्चित समय पर मुनिश्री, सूरतरामजी के मन्दिर मे पहुंच गये। आज भी डालचदजी स्वामी गायब रहे; उनके शिष्य मगनजी पहुचे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

मुनिश्री ने प्रश्न किया- आप लोग भगवान् महावीर को दीक्षा लेने के बाद छद्मस्थ-अवस्था में चूका बतलाते है। इसके लिए आगमप्रमाण क्या है?

मगनजी मुनि बोले-भगवान ने दीक्षा लेने के बाद दस स्वप्न देखे थे, ऐसा शास्त्रो के मूल पाठ मे उल्लेख है। इसी से भगवान का चूकना सिद्ध होता है।

मुनिश्री–भगवान ने जो स्वप्न देखे थे वे यथार्थ ही थे। दशाश्रुतस्कध सूत्र के पांचवें अध्ययन मे उन्हे तीसरी चित्तसमाधि अर्थात् धर्मध्यान कहा है। अतः स्वप्न देखने से चूकना सिद्ध नहीं होता।

मगनजी ने इधर-उधर की थोथी दलीलें देना आरम्भ किया। समय अधिक हो जाने के कारण मध्यस्थ श्री चन्दनमलजी ने कहा-'आज चर्चा यही समाप्त हो जानी चाहिए। कल मै जोधपुर से पडितो को बुला लूगा। वे आकर सूत्र के अर्थ का निर्णय कर देगे।'

दूसरे दिन लोढाजी पण्डितों को बुलाने का प्रबंध कर ही रहे थे कि उन्हे पता चला-तेरहपथ के पूज्य डालचदजी विहार करने की तैयारी कर रहे है। लोढाजी ने उन्हे रोकने के लिए दो आदमी उनके पास भेजे। तब उन्होने उत्तर दिया- अब हमें यहा ठहरना नही कल्पता। मै अपने साधु मगनजी को यहा छोड जाता हू। वे चर्चा करेगे।

चढ़ जा बेटा शूली पर, राम तेरा भला करेगा! गुरुजी ने अपना पिड छुड़ाया और चेला रह गये! मगर चेला भी गुरु से कम चतुर नही थे। दूसरे दिन मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज शास्त्र आदि लेकर चर्चा के स्थान पर पहुचे। उसी समय मालूम हुआ कि 'मगन' जी अपने नाम के बीच वाले अक्षर को पहला कर रहे है अर्थात् 'मगन' जी 'गमन' करने को तैयार हैं। मध्यस्थ श्री चदनमलजी को यह बतलाया गया तो वे स्वय उनके पास पहुचे और रुक कर शास्त्रार्थ करने के लिए आग्रह किया। मगर वह चेला ही क्या जो अपने गुरुजी का अनुसरण न करे! मगनजी मुनि भी न ठहरे और चले गये।

भद्र परिणामी सीधे-सादे मुनियो को देखकर तेरहपथियो के जोश मे उफान आ गया था। क्या पता था कि वादिगज-केसरी यहा आ धमकेगा और अपनी एक ही दहाड से मतवाले हाथियो का गर्व खर्व कर देगा!

मुनि श्रीजवाहरलालजी महाराज बालोतरा मे कुछ दिन ठहरे। उनके मुख से धर्म का रहस्य श्रवण कर जनता को अपूर्व बोध हुआ। सैकडो व्यक्तियो ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये। कइयो ने धर्म की सच्ची श्रद्धा ग्रहण की और आपको अपना गुरु बनाकर कृतार्थता समझी।

बालोतरा से विहार करके आप पंचभद्रा, समदडी, सिवाना, पाली, सोजत और ब्यावर मे धर्मामृत की वर्षा करते हुए अजमेर पधारे।

बारहवां चातुर्मास

कुछ दिन अजमेर विराजकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ब्यावर पधारे। श्रावको के विशेष आग्रह से स. १९६० का चातुर्मास ब्यावर मे ही किया। चातुर्मास मे खूब आनन्द रहा। धर्म का अच्छा उद्योत हुआ।

अजमेर जाने से पहले जब आप ब्यावर पधारे थे, तब अकस्मात् वहां डालचंदजी पधार गये। कुछ जिज्ञासु भाइयों ने यहां भी शास्त्र-चर्चा कराने का प्रयत्न किया मगर डालचंदजी चर्चा के लिए तैयार न हुए।

ब्यावर मे चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री जयतारण पधारे। वहां तेरहपथियों के सुप्रसिद्ध साधु फौजमलजी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ मे चार सज्जन मध्यस्थ चुने गये। उन्होने शास्त्रार्थ संबधी नियम बनाकर दोनों पक्ष वालों के सामने रखे और दोनो ने उन्हे स्वीकार किया। मध्यस्थो ने जो प्रारंभिक विवरण लिखा था, वह इस प्रकार है-

जयतारण शास्त्रार्थ

संवत् १९६० पौष कृष्णा तृतीया को जोधपुर राज्यान्तर्गत जयतारण नगर मे बाईस सम्प्रदायान्तर्गत मुनिश्री हक्मीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के साधु मुनिश्री मोतीलालजी, जवाहरलालजी आदि तथा तेरहपन्थी साधु श्री डालचन्दजी के सम्प्रदाय के साधु श्री फौजमलजी, जयचन्दजी का पधारना हुआ। दोनों का आपस में शास्त्रार्थ करने का निश्चय हुआ। उसमे हम चार व्यक्तियो को दोनो तरफ से मध्यस्थ चुना गया जिनके नाम इस प्रकार हैं-

१- गान्धी साकलचन्द	मन्दिर मार्गी
२- सेठ मुलतानमल	मन्दिर मार्गी
३- व्यास रूपचन्दजी	वैष्णव
४- पंचोली उदयराजजी	वैष्णव

हम चारों ने शास्त्रार्थ के लिए नीचे लिखे नियम बनाए। सम्वत् १९५९ मे बाईस सम्प्रदाय के साधु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज व जवाहरलालजी महाराज का चातुर्मास जोधपुर में था। उस समय जवाहरलालजी की तरफ से तेरहपन्थियो के पूज्यश्री डालचन्दजी से सात प्रश्न पूछे गये थे। उनका उत्तर तेरहपन्थी श्रावक श्री कृष्णमल्लजी ने अपने पूज्यश्री डालचन्दजी से पूछ कर 'प्रश्नोत्तर' नामक पुस्तक के रूप मे छपवाया था। अब यहा जयतारण मे बाईस सम्प्रदाय के साधु श्री जवाहरलालजी व तेरहपन्थियों के श्री फौजमलजी विद्यमान हैं। अब जवाहरलाजी के प्रश्न और उनके उत्तरो का सत्यासत्य निर्णय हो जाना चाहिए। उसके लिए दोनों साधुओ मे शास्त्रार्थ होना तय हुआ है, उसके नियम नीचे लिखे अनुसार है-

१-दोनो ओर से मध्यस्थ, निष्पक्ष, जैनशास्त्राभिज्ञ व प्रतिष्ठित व्यक्ति चुने जाय।

२- जो व्यक्ति मध्यस्थ चुने जाय वे शास्त्रार्थ को लेख-बद्ध करके अपने निर्णय के साथ दोनो सम्प्रदायों के श्रावकों को दे देवे।

३- दोनो तरफ के श्रावक शास्त्रार्थ मे कुछ न बोले। मध्यस्थ महोदय जैसा उचित समझें करें।

४- जो साधु शास्त्रार्थ करे वह अपने-अपने वक्तव्य को लिखित रूप में मध्यस्थों के सामने पेश करे।

५- शास्त्रार्थ के लिए स्थान तपगच्छ का उपाश्रय निश्चित किया जाय।

६- दोनो ओर के साधु अपने-अपने कल्प तक चर्चा को उधूरी छोड़कर विहार न करें।

७- शास्त्रार्थ में बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ, अर्थ, टीका, दीपिका आदि पचागी प्रमाण रूप से उद्धृत की जा सकेगी।

८- समय प्रतिदिन १२ से ३ तक रहेगा।

ऊपर लिखी आठ बातों को दोनो तरफ के सन्तों ने तथा श्रावकों ने मध्यस्थों के सामने स्वीकार कर लिया। इसके बाद तय हुआ कि जोधपुर निवासी जवाहरमलजी गुरासा या और कोई सस्कृत का विद्वान सस्कृत टीका का अर्थ करने के लिए चुना जाय, वह जो अर्थ करे वह दोनों साधुओं को मान्य हो।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ करने के लिए तय हुआ कि जवाहरलालजी महाराज ने जो सात प्रश्न पूछे है तथा जिनका उत्तर 'प्रश्नोत्तर' मे छपा है, सर्वप्रथम उनमें से पहले प्रश्न का निर्णय होगा। उसके बाद फौजमलजी प्रश्न पूछेगे जिसका उत्तर जवाहरलालजी को देना होगा।

जिस पक्ष वाले इन विषयों के विपरीत चलेगे, उन्हें दोषी समझा जायगा।

पौष कृष्णा पचमी, बुधवार को शास्त्रार्थ प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ।

चारों मध्यस्थो के हस्ताक्षर

१– गाधी साकलचन्द

२– सेठ मुलतानमल

३– व्यास रूपचन्द

४– पचोली उदयराज

यह शास्त्रार्थ एक महीने तक चलता रहा। शास्त्रार्थ में वादी और प्रतिवादी ने क्या-क्या युक्तिया और आगम के पाठ उपस्थित किये, यह विषय काफी विस्तृत है। मगर ज्ञातव्य है और महत्त्वपूर्ण भी है। अधिक विस्तृत होने के कारण उसे यहा नही दे रहे है मगर ज्ञातव्य होने से उसे देना आवश्यक भी है। अतएव वह अविकल रूप से परिशिष्ट में दिया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक उस पर मनन करें और देखे कि किस बचपन के साथ, कितने घोर अज्ञान के अन्धकार मे रहते हुए भगवान् महावीर को चूका-भूला करने का दुस्साहस किया जा रहा है! यहा सिर्फ मध्यस्थो का अन्तिम फैसला दिया जाता है, जिससे यह पकट हो सके कि असत्य कब तक ठहर सकता है? असत्य वह [illegible] है जो सत्य की ज्योति के स्पर्शमात्र से दग्ध हो जाता है।

मध्यस्थों का फैसला

पर खुलासो जयपुर से साधुजी [illegible] रामजी महाराजरे [illegible]

[illegible]

हुओ फागण वदि ८ मितिरो गोलेचा धनरूपमलजी जोरावरमलजी री मार्फत खुलासो फागण वदि १० आयो। इणरो हाल ये मालूम हुवो कि श्रीवीर प्रभु ने दस स्वप्न आए यो यथातथ्य है, मोहनीय कर्म के उदय मे नहीं है और पडित देवीशकरजी वो पंडित बालकृष्णजी ने जो अर्थ किया है सो अशुद्ध (गलत) है और पंडित बिहारीलालजी ने जो अर्थ किया है वह शास्त्र मे मिलता है, वह सत्य है। जिस वास्ते आज दिन खुलासो सुणावण ने तपगच्छ के उपासरा मे आम सभा होय ने जो कुछ खुलासो जयपुर मे आयो वो सुणायो गयौ कि सवेगीजी महाराजरो खुलासो आवणसू वो वांचनेसु या बात मालूम हुई कि बाईस सम्प्रदाय के साधुजी जवाहरलालजी का प्रश्न का कहना सत्य है और जो दस स्वप्न श्री महावीर ने आये वह मोहनीय कम्र के उदय नही है। और तेरापंथिया का साधुजी फौजमलजी का उत्तर का कहना असत्य है। वह स्वप्न महावीर स्वामी ने आये सो मोहनीय कर्म के उदय नहीं है। सो सभाजनो से बीनती है। सम्वत् १९६० रा मिति फागुण सुदि ५ आदित्यवार

द.- गांधी साकलचन्द — द.- व्यास रूपचन्द

द.- सेठ मुलतानमल — द.- पचोली उदयराज

प्रथम तो वादी और प्रतिवादी का कथन ही यह साबित कर देगा कि कौन पक्ष कितने गहरे पानी में था ? सस्कृत भाषा का साधारण अभ्यासी भी समझ सकता है कि फौजमलजी जिस पक्ति के प्रमाण से (एषाञ्च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभि· स्वप्नफलविषयभूतै· सह साधर्म्य स्वय समूह्यम्) स्वप्नों को मोहनीय कर्म के उदय से होना बतलाते है, उसमे इस बात की गध मात्र भी नही है। बेचारे फौजमलजी सस्कृत तनिक भी समझते होते तो विद्वानो के समक्ष इस प्रकार हास्यास्पद कथन कदापि न करते। उन्हें इस पक्ति मे 'मोहनीय' शब्द नजर आ गया और इसी बूते पर वे अपनी बात का समर्थन करने बैठ गये। इस पक्ति का सरल और सीधा-सा अर्थ इतना ही है कि स्वप्न मे देखे हुए पिशाच आदि के साथ मोहनीय आदि कर्मो की जो समानता यहां विवक्षित है वह स्वय सोच लेनी चाहिए। इस सीधे-से अर्थ को भी समझने मे जो अयोग्य है वह किस योग्यता के बल पर दिव्यज्ञानी महाप्रभु महावीर को चूका बतलाता है! यह योग्यता किसी ऐसे-वैसे की नही, सारे सम्प्रदाय मे जो महापडित गिना जाता था उस व्यक्ति की यह योग्यता है!

केवलज्ञान प्राप्त होने से पहले की बात है। एक बार भगवान् विहार कर रहे थे। गोशालक अपने-आप भगवान् का शिष्य बनकर उनके साथ रहने लगा था। मार्ग मे एक तापस आतापना लेकर तपस्या कर रहा था। उसके सिर में बहुत सी जुए थी। वे नीचे गिर रही थीं। तापस उन्हे उठाकर फिर सिर में रख लेता था। गोशालक ने यह दृश्य देखकर मजाक किया। इससे तापस को बहुत क्रोध आया और उसने तेजोलेश्या फेंकी। गोशालक का शरीर जलने लगा। भगवान् ने अनुकम्पा करके शीतललेश्या द्वारा तेजोलेश्या को शात कर दिया।

तेरहपथ-मत के प्रवर्त्तक भिक्खूजी ने जब मरते हुए जीवन को बचाने में एकात पाप बताना शुरू किया तो प्रतिपक्षी उनके सामने भगवान् महावीर की इस अनुकम्पा का उदाहरण देकर जीव-रक्षा का समर्थन करने लगे। तेहपथियो को इस उदाहरण का कोई उचित उत्तर नही सूझा। उचित तो यह था कि इतने स्पष्ट उदाहरण के रहते हुए वे दुराग्रह ही न करते या दुराग्रह का परित्याग कर देते। मगर कर्मोदय के कारण उन्हे सत्य को स्वीकार करने का साहस न हुआ। उन्होने अपनी भूल छिपाने

का ऐसा अनोखा उपाय खोज निकाला जो संसार के पर्दे पर अन्यत्र कही नही मिल सकता। उन्होने भगवान् को ही भूला बताना शुरू कर दिया। धन्य है ऐसे भक्त, जो अपने भगवान् को भूला बतलाने मे संकोच नहीं करते। ठीक ही कहा है-

भगत जगत मे हो गये, होंगे तथा अनेक।
पर भूले भगवान् का भक्त पंथ है एक॥
कहा दयामय दानमय, जिनवर! तेरा पथ।
दया-दान-द्वेषी कहा, कलि का तेरापंथ॥

मगर भगवान् की भूल सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण की आवश्यकता थी; अतः उन्होंने दस स्वप्नो के समय भगवान् को मोहनीय का उदय बतलाना शुरू कर दिया। मगर यह भी कैसे सिद्ध किया जाय? जब यह प्रश्न सामने आया तो शास्त्र का अर्थ ही उलटा-पुल्टा करने लगे। जब सेर को सवा सेर मिल गया और काम बनते न दिखाई दिया तो ब्राह्मण पंडितों को लालच देकर इच्छानुसार उलटा अर्थ करवाया और भगवान् को शठ और कपटी तक कहलवाया। (देखो पडित देवीशंकर का वक्तव्य, जिसमे उन्होने लिखा है कि शठ होने के कारण भगवान् के चित्त मे समाधि नही थी, इत्यादि)

एक असत्य को छिपाने के लिए अनेक असत्यों की कल्पना करनी पडती है और नाना प्रकार के जाल रचने पडते है। मनुष्य की यह दुर्बलता अत्यंत दयनीय है। शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करके मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज कालू, केकिन, बलून्दा, नागौर आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए भीनासर पधारे।

भीनासर मे पदार्पण करते समय मुनिश्री की अवस्था २९ वर्ष की थी। शरीर स्वभावत सुन्दर था। यौवन और ब्रह्मचर्य के प्रताप से उसमें अद्भुत तेज और लावण्य की आभा चमकती थी। तपस्या ने आपका प्रभाव बढा दिया था। आप मे गजब की आकर्षण-शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी। गौर वर्ण, विशाल और दीप्तिमान लोचन, उन्नत और चमकता हुआ भाल, सौम्य मुख-मंडल और दूसरी शरीर-सम्पत्ति के साथ सिह-गति से जिस समय भीनासर में मुनिश्री ने प्रवेश किया तो लोग आश्चर्य करने लगे। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो सूर्य का समस्त तेज छीनकर कोई राजकुमार दीक्षित हुआ है।

अद्भुत शरीर-सौभाग्य के साथ आपकी वाणी मे भी अमृत की मिठास थी और विचारों मे मौलिकता थी। विषय-प्रतिपादन की शैली रोचक, सरल और अत्यन्त भावपूर्ण थी। कहानी कहने का आपका ढंग निराला ही था। साधारण-से-साधारण कथानक में भी वे जान डाल देते थे। अत्यन्त परिचित कथा भी जब उनके मुख से सुनी जाती थी तो अपूर्व जान पडती थी। कहानी में वे ऊचे-से ऊचे तत्त्व का सरलता के साथ समन्वय कर देते थे।

भीनासर मे मूर्तिपूजा के विषय मे यतियो के साथ भी आपकी चर्चा हुई। आपकी युक्तिया अकाट्य होती थी। आपकी प्रतिभा और तार्किकता आश्चर्य-जनक थी। उस समय के साधुओ और श्रावको के विचार से हमारे चरितनायक मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ही सम्प्रदाय मे सबसे अधिक तेजस्वी साधु थे!

भीनासर के प्रमुख तेरहपन्थी श्रावक भी मुनिश्री के पास तत्त्वचर्चा के लिए आया करते थे। कुछ दिनो के ससर्ग के फलस्वरूप उन्हे दया-दान को एकान्त पाप समझने की अपनी भूल मालूम हो गई और वे मुनिश्री के भक्त बन गए।

तेरहवां चातुर्मास

भीनासर से मुनिश्री बीकानेर पधारे। अब आपकी कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। लोग आपकी योग्यता देखकर प्रभावित थे। बीकानेर के विशाल सघ ने मुनिश्री से बीकानेर में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। आपने प्रार्थना अंगीकार करके वही चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास मे सामायिक, पौषध, व्रत, प्रत्याख्यान, दान आदि धर्मकार्य खूब हुए।

चातुर्मास के पश्चात् बीकानेर से विहार कर मुनिश्री नागौर पधारे। नागौर से अजमेर होते हुए आप आचार्य महाराज के साथ नसीराबाद पहुचे।

चौदहवां चातुर्मास

नसीराबाद में पूज्यश्री ने आपको उदयपुर मे चातुर्मास करने का आदेश दिया। पूज्य महाराज का आदेश शिरोधार्य करके आप अजमेर, ब्यावर, पाली-मारवाड-जक्शन (खारची), सादडी आदि स्थानो में विचरते और धर्मोपदेश देते हुए उदयपुर पधारे। सम्वत् १९६२ का चातुर्मास उदयपुर में किया।

उदयपुर का यह चातुर्मास बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। मुनिश्री के साथ कई तपस्वी सन्त थे। उन्होने लम्बी-लम्बी तपस्याए की। श्रावकों ने विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान आदि किये और अन्य धार्मिक कार्य किये। कई कसाइयो ने हिंसा-वृत्ति त्याग कर अपना जीवन सुधारा।

इस चातुर्मास मे उदयपुर मे नौ सन्त थे, उनमे से छ· सतो ने इस प्रकार तपस्या की:-

१- मुनिश्री मोतीलालजी महाराज — ४१ उपवास
२- मुनिश्री राधालालजी महाराज — ३० उपवास
३- मुनिश्री पन्नालालजी महाराज — ६१ छाछ के पानी के आधार पर
४- मुनिश्री धूलचन्दजी महाराज — ३५ छाछ के पानी के आधार पर
५- मुनिश्री उदयचदजी महाराज — ३१ छाछ के पानी के आधार पर
६- मुनिश्री मयाचन्दजी महाराज — ४१ छाछ के पानी के आधार पर

तपस्या एक अमोघ शक्ति है। जैन धर्म में तप की महिमा का विशद वर्णन है और वह धर्म का प्रधान अग माना गया है। हमारे चरितनायक तप के विषय मे अत्यन्त मार्मिक और प्रभावपूर्ण उपदेश फरमाते थे। उनके निम्नलिखित वाक्य आज भी अत करण मे बिजली का सचार कर देते है-

'तप मे क्या शक्ति है, सो पूछो उनसे जिन्होने छ· छ. महीने तक निराहार रहकर घोर तपश्चरण किया है और जिसका नाम लेने मात्र से हमारा हृदय निष्पाप और निस्ताप बन जाता है। तप मे क्या बल है, यह उस इन्द्र से पूछो जो महाभारत के कथनानुसार अर्जुन की तपस्या को देखकर काप उठा था और जिसने अर्जुन को एक दिव्य रथ प्रदान किया था।'

'तप एक प्रकार की अग्नि है। जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष और समग्र मलीनता भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि मे तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भाति तेज से विराजित हो जाता है। अतएव तपधर्म का महत्त्व अपार है।

'जो तप करता है उसकी वाणी पवित्र और प्रिय होती है और जो प्रिय, पथ्य तथा सत्य बोलता है उसी का तप, तप कहलाने योग्य होता है। तपस्वी को असत्य या अप्रिय भाषण करने का अधिकार नही है। तपस्वी सत्य और प्रिय भाषा ही बोल सकता है। उसे क्लेशजनक पीडाकारक या भयोत्पादक वाणी नही बोलना चाहिए। तपस्वी की वाणी में अमृत का माधुर्य होता है। भयभीत प्राणी उसकी वाणी सुनकर निर्भय बनता है। तपस्वी अपनी जिह्वा पर सदा नियत्रण रखता है। उसकी वाणी शुद्धि और पवित्रता से पूत होती है।

यही नहीं, तपस्वी मे वाचिक पवित्रता के साथ मानसिक पवित्रता भी होती है। अगर मधुर भाषण मन की अपवित्रता का आवरण बन जाय तो तपस्वी की तपस्या निरर्थक हो जाती है। जिस तप से मन शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल बन जाता है वह सच्चा तप है। मन का रजोगुण या तमोगुण से अतीत हो जाना ही निर्मलता है। तपस्वी को ऐसी निर्मलता प्राप्त करने के लिए सदा जागृत रहना चाहिए।'

'चक्रवर्ती भरत महाराज के पास सेना, अस्त्र-शस्त्र और शरीर के बल की कमी नहीं थी। लेकिन जब देवो से युद्ध का समय आता था तब वे तेला करके युद्ध किया करते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेले का बल चक्रवर्ती के समग्र बल से भी अधिक होता है और तपस्या द्वारा देव भी पराजित किये जा सकते है।'

यह तप की महिमा है। तप के प्रभाव से दुस्साध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते है। आत्मा जब तपस्या के तेज से तेजस्वी हो जाता है तो उसका दूसरो पर भी प्रभाव पड़े बिना नही रहता। उदयपुर के इस चातुर्मास मे तपस्वी संतो की तपस्या का दूसरे व्यक्तियो पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तपस्या के अन्तिम दिन सैकडो बकरों को अभयदान दिया गया। बहुत-से कसाई भी मुनिश्री का उपदेश सुनने तथा तपस्वियो के दर्शन करने आये। मुनिश्री ने अहिंसाधर्म पर प्रभावशाली भाषण दिया। 'हिंसा से प्राप्त होने वाले दु:खो का और अहिंसा से मिलनेवाले सुखों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। प्रत्येक प्राणी किस प्रकार जीवित रहना चाहता है और मृत्यु के नाम मात्र से भयभीत हो जाता है, इसका सजीव चित्र खींच दिया। श्रोताओ पर आपके भाषण का जादू सरीखा असर पडा। महाराजश्री का कथन वास्तव मे बडा ही ओजस्वी होता था। अहिंसा के विषय में आपने एक जगह कहा है-

'सब प्राणियो ने अपनी–अपनी रक्षा के लिए और खाने के लिए दाढ़ व दात, देखने के लिए नेत्र, सुनने के लिए कान, सूघने के लिए नाक, चखने के लिए जीभ आदि अग– उपाग अपने–अपने पूर्व–कर्म के अनुसार प्राप्त किये है। इनको छीन लेने का मनुष्य को कोई अधिकार नही है। जो मनुष्य मक्खी के पख को भी नहीं बना सकता। उसको उसे नष्ट करने का अधिकार नहीं है। परन्तु स्वार्थ की ओट मे कुछ भी नही दीखता। जो अग–उपांग उस प्राणी के लिए उपयोगी है, मनुष्य कहा करते हैं कि यह तो हमारे खाने के लिए पैदा किया गया! ऐसा कहनेवालों से सिंह यदि मनुष्य की भाषा मे कहे कि–तू मेरे खाने के लिए पैदा किया गया है, तो मनुष्य उसे क्या जवाव देगा ?'

मारे जाने वाले पशुओं का हृदय हिला देने वाला करुणापूर्ण वर्णन सुनकर कसाइयो का हृदय भी पिघल गया। किसी पशु के प्राण ले लेना जिनके लिए मामूली बात थी, जिनका दैनिक काम भी यही था और जिनके हृदय मे घोर क्रूरता का साम्राज्य स्थापित हो चुका था. उन कसाई भाइयों का चित्त

तेरहवां चातुर्मास

भीनासर से मुनिश्री बीकानेर पधारे। अब आपकी कीर्ति स
योग्यता देखकर प्रभावित थे। बीकानेर के विशाल संघ ने मुनिश्री
की प्रार्थना की। आपने प्रार्थना अंगीकार करके वही चातुर्मास व्यत
पौषध, व्रत, प्रत्याख्यान, दान आदि धर्मकार्य खूब हुए।

चातुर्मास के पश्चात् बीकानेर से विहार कर मुनिश्री नागौर
आप आचार्य महाराज के साथ नसीराबाद पहुचे।

चौदहवां चातुर्मास

नसीराबाद मे पूज्यश्री ने आपको उदयपुर में चातुर्मास
का आदेश शिरोधार्य करके आप अजमेर, ब्यावर, पाली-मार
स्थानों मे विचरते और धर्मोपदेश देते हुए उदयपुर पधारे। स
किया।

उदयपुर का यह चातुर्मास बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। मुनि
लम्बी-लम्बी तपस्याए की। श्रावकों ने विविध प्रकार के त्याग-
कार्य किये। कई कसाइयों ने हिंसा-वृत्ति त्याग कर अपना
इस चातुर्मास में उदयपुर में नौ सन्त थे, उनमे से

किसनाजी पटेल ने खडे

व को नहीं मारूंगा और
नही करूगा।'

का एक मुकदमा अदालत
कुछ ही दिन बाद उसकी
धर्म का प्रताप समझा।
भी हिंसावृत्ति से दूर करने
छोड़ दिया और दूसरा

आदमी सम्मिलित होते हैं।
। उस समय वर्तमान आचार्य
के संस्कारों मे धार्मिकता की
के उदयपुर के पहले चातुर्मास
की ओर काफी कदम बढ़ा चुके
करने में लगी थी।

मारुजी के हृदय मे वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी। भाद्रपद शुक्ला नवमी को आपने ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया और आजीवन चौविहार का खंध कर लिया। उसी समय आपने दीक्षा लेने का अपना निश्चय भी प्रकट कर दिया। चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को आपने दीक्षा अगीकार कर ली। उसी समय एक दूसरे सद्‌गृहस्थ श्री पन्नालालजी भी दीक्षित हो गये। दीक्षा के अवसर पर बडे-बडे राज्याधिकारी तथा हजारों की सख्या में श्रावक उपस्थित थे।

दीक्षा लेने के पश्चात् मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने संस्कृत भाषा और जैनशास्त्रो का अध्ययन आरम्भ किया। उर्दू और फारसी आप पहले से ही जानते थे। आजकल आप ही सम्प्रदाय के आचार्य है। आपका विशेष परिचय आगे दिया जायगा।

इस प्रकार उदयपुर का यह चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक ने वहां से विहार किया। अनेक स्थानो मे धर्मामृत बरसाते हुए आप नाथद्वार पधारे। जहां कहीं मुनिश्री पधारे वही लोगों मे जागृति हुई। उदयपुर के प्रधानमंत्री कई बार आपके दर्शन करने आये। गोगुंदा ग्राम के रावजी भी व्याख्यान सुनने आये और मुनिश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति लेकर लौटे।

नाथद्वारा मे उस समय मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज विराजमान थे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी वहा पधार गये। कुछ दिनों बाद आचार्य प्रवर पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के भी उसी ओर विहार करने के समाचार प्राप्त हुए। मुनिश्री को इस संवाद से बड़ी प्रसन्नता हुई। पूज्यश्री के आगमन के समय आप सामने गये और भक्तिपूर्वक उनके दर्शन किये। पूज्यश्री के साथ तपस्वी मुनि बालचन्द्रजी भी थे। जब पूज्यश्री नाथद्वारा से तीन मील दूर कोठारिया ग्राम मे पहुचे तो अकस्मात् तपस्वीजी को लकवा मार गया। कई साधुओ ने तपस्वीजी को उठाया और नाथद्वारा ले आये। उस समय नाथद्वारा मे २६ सन्त एकत्र हुए।

नाथद्वारा में कुछ दिनों तक पूज्यश्री तथा अन्य स्थविर सतों की सेवा करके मुनिश्री ने विहार कर दिया। राजनगर, कांकरोली, कुमारिया, मानवली आदि स्थानों मे उपदेश-गंगा वहाते हुए आप उटाला पधारे। वहा से उदयपुर मे पूज्यश्री के पुनः दर्शन करते हुए आपने दो ठाणा से झालावाड की ओर विहार किया। आपके साथ उस समय मुनिश्री बड़े चादमलजी महाराज थे। उंटाला से झालौड (झालावाड) सोलह मील दूर है। विकट पहाडी पथ है। मुनियों को मार्ग में आहार-पानी मिलना कठिन है। फिर भी मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने इन कठिनाइयो की परवाह नही की और आने वाली कठिनाइयो का आनन्दपूर्वक सत्कार करते हुए झालौड़ पधार गये। वहा के रावजी ने बडे प्रेम से मुनिश्री के व्याख्यानो से लाभ उठाया। धीरे-धीरे उन पर जैनधर्म की गहरी छाप पड गई।

झालावाड़ से फिर नाथद्वारा होते हुए आप गगापुर पधारे। गगापुर मे कुछ तेरहपथी भाइयो से चर्चा हुई। उसके बाद आप पोहना पहुंचे। यहा भी बहुत-से तेरहपन्थी भाई आपके पास शंका-समाधान करने आया करते थे। मुनिश्री उन्हे समभाव से शास्त्रीय प्रमाणो के साथ तत्त्व समझाते और उनकी शकाओ का सन्तोषजनक समाधान करते थे। फलस्वरूप अनेक तेरहपथी आपके भक्त वन गए।

पोहना के पश्चात् आप पूर पधारे। यहा वाईस सम्प्रदाय के पाच-सात घर थे और तेरहपन्थी गृहस्थो के घर ज्यादा थे। तेरहपन्थी गृहस्थो ने मुनिश्री को ठहरने के लिए मकान देने तक की उदारता

भी मुनिश्री का उपदेश सुनकर द्रवित हो गया। उसी समय कसाइयो के मुखिया किसनाजी पटेल ने खडे होकर प्रतिज्ञा ली-

'महाराज! मै जब तक जीऊगा, कसाईपना नही करूंगा। कभी किसी जीव को नही मारूगा और न मास खाऊंगा। मारने के उद्देश्य से बकरा आदि पशुओ का व्यापार भी नही करूगा।'

किसनाजी पटेल ने अपनी प्रतिज्ञाओं का बराबर पालन किया। उसका एक मुकदमा अदालत मे चल रहा था। उसके लगभग तीन हजार रुपये अटके हुए थे। प्रतिज्ञाए लेने के कुछ ही दिन बाद उसकी जीत हो गई और उसे तीन हजार रुपये मिल गये। सरल हृदय किसना ने उसे 'धर्म का प्रताप समझा। इससे अहिसा धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा और बढ़ गई। उसने दूसरे भाइयो को भी हिसावृत्ति से दूर करने का प्रयत्न किया। उसके प्रयत्न से ग्यारह कसाइयों ने पशु मारने का व्यवसाय छोड़ दिया और दूसरा धधा अख्तियार किया।

श्रावको ने उस समय इक्कीस रंगी सामायिकें की थी। इसमे ४४१ आदमी सम्मिलित होते है। कई श्रावकों ने धर्मोत्साह के रग मे रगकर एक साथ सौ-सौ सामायिके कीं। उस समय वर्तमान आचार्य महोदय पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज गृहस्थावस्था में थे, तथापि आपके संस्कारों मे धार्मिकता की गहरी छाप थी। आपने भी ४१ सामायिके एक साथ की थीं। चरितनायक के उदयपुर के पहले चातुर्मास में आपने सम्यक्त्व ग्रहण किया था और इस चातुर्मास में आप चरित्र की ओर काफी कदम बढ़ा चुके थे। प्रकृति अलक्षित रूप में चरितनायक के उत्तराधिकारी का निर्माण करने मे लगी थी।

उस समय उदयपुर स्टेट के प्रधानमत्री राजेश्री बलवन्तसिहजी साहब कोठारी मुनिश्री के गाढ़ परिचय में आये और परम भक्त बन गये। आपका प्रतिष्ठित परिवार आज तक पूज्यश्री के परम भक्तो में गिना जाता है। लाला केशरीलालजी, लाला हरभजनलालजी आदि उच्च राज्यपदाधिकारियों ने भी मुनिश्री के व्याख्यानो से खूब लाभ उठाया। महद्राज सभा कौसिल के मेम्बर श्रीमदनमोहनलालजी पर तो इतनी गहरी छाप पडी कि वे महाराजश्री के परम भक्त बन गये।

मुनिश्री मोतीलाल जी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन अनेक व्यक्तियों ने विविध प्रकार के व्रत ग्रहण किये। लाला केशरीलालजी और उनकी धर्मपत्नी ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। कायस्थ होने पर भी इस परिवार को मुनिश्री के प्रति बड़ी ही श्रद्धा भक्ति थी।

उत्तराधिकारी की प्राप्ति

मुनिश्री का व्याख्यान सुनने के लिए जो बहुसख्यक जनता एकत्र होती थी, उनमे श्रीगणेशीलालजी मारू का नाम खासतौर पर उल्लेखनीय है। वे प्रतिदिन व्याख्यान सुनते थे और जो कुछ सुनते थे उसे अपने कानों के द्वारा अपने अन्तरग तक पहुचाते जाते थे। सोलह वर्ष की नवीन उम्र थी मगर उनके धार्मिक सस्कार बहुत पुराने थे। उन सस्कारो का आरभ कब, कहा और किस प्रकार हुआ, यह नही कहा जा सकता। उनके सस्कार पुराने होने के कारण इसी प्रकार आच्छादित थे जैसे भस्म से अग्नि आच्छादित रहती है। उसी समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के प्रवचनरूपी प्रबल पवन से ऊपर का आच्छाद दूर हो गया और उसके भीतर की ज्योति चमकने लगी। अन्त करण उद्भासित होने लगा। जहा ज्ञान का प्रकाश है वहा मोह-ममता का तिमिर टिक नही सकता। अत

मारुजी के हृदय मे वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी। भाद्रपद शुक्ला नवमी को आपने ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया और आजीवन चौविहार का खध कर लिया। उसी समय आपने दीक्षा लेने का अपना निश्चय भी प्रकट कर दिया। चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को आपने दीक्षा अगीकार कर ली। उसी समय एक दूसरे सद्गृहस्थ श्री पन्नालालजी भी दीक्षित हो गये। दीक्षा के अवसर पर बड़े-बडे राज्याधिकारी तथा हजारो की सख्या में श्रावक उपस्थित थे।

दीक्षा लेने के पश्चात् मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने संस्कृत भाषा और जैनशास्त्रो का अध्ययन आरम्भ किया। उर्दू और फारसी आप पहले से ही जानते थे। आजकल आप ही सम्प्रदाय के आचार्य है। आपका विशेष परिचय आगे दिया जायगा।

इस प्रकार उदयपुर का यह चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक ने वहां से विहार किया। अनेक स्थानो मे धर्मामृत बरसाते हुए आप नाथद्वार पधारे। जहा कहीं मुनिश्री पधारे वही लोगों मे जागृति हुई। उदयपुर के प्रधानमत्री कई बार आपके दर्शन करने आये। गोगुंदा ग्राम के रावजी भी व्याख्यान सुनने आये और मुनिश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति लेकर लौटे।

नाथद्वारा में उस समय मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज विराजमान थे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी वहा पधार गये। कुछ दिनों बाद आचार्य प्रवर पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के भी उसी ओर विहार करने के समाचार प्राप्त हुए। मुनिश्री को इस सवाद से बडी प्रसन्नता हुई। पूज्यश्री के आगमन के समय आप सामने गये और भक्तिपूर्वक उनके दर्शन किये। पूज्यश्री के साथ तपस्वी मुनि बालचन्द्रजी भी थे। जब पूज्यश्री नाथद्वारा से तीन मील दूर कोठारिया ग्राम में पहुंचे तो अकस्मात् तपस्वीजी को लकवा मार गया। कई साधुओ ने तपस्वीजी को उठाया और नाथद्वारा ले आये। उस समय नाथद्वारा मे २६ सन्त एकत्र हुए।

नाथद्वारा में कुछ दिनों तक पूज्यश्री तथा अन्य स्थविर सतों की सेवा करके मुनिश्री ने विहार कर दिया। राजनगर, काकरोली, कुमारिया, मानवली आदि स्थानों में उपदेश-गगा बहाते हुए आप उटाला पधारे। वहा से उदयपुर में पूज्यश्री के पुन· दर्शन करते हुए आपने दो ठाणा से झालावाड की ओर विहार किया। आपके साथ उस समय मुनिश्री बडे चादमलजी महाराज थे। उटाला से झालौड़ (झालावाड) सोलह मील दूर है। विकट पहाडी पथ है। मुनियों को मार्ग में आहार-पानी मिलना कठिन है। फिर भी मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने इन कठिनाइयों की परवाह नही की और आने वाली कठिनाइयो का आनन्दपूर्वक सत्कार करते हुए झालौड़ पधार गये। वहा के रावजी ने बड़े प्रेम से मुनिश्री के व्याख्यानो से लाभ उठाया। धीरे-धीरे उन पर जैनधर्म की गहरी छाप पड़ गई।

झालावाड से फिर नाथद्वारा होते हुए आप गगापुर पधारे। गगापुर मे कुछ तेरहपथी भाइयो से चर्चा हुई। उसके बाद आप पोहना पहुंचे। यहा भी बहुत-से तेरहपन्थी भाई आपके पास शका-समाधान करने आया करते थे। मुनिश्री उन्हें समभाव से शास्त्रीय प्रमाणों के साथ तत्त्व समझाते और उनकी शकाओ का सन्तोषजनक समाधान करते थे। फलस्वरूप अनेक तेरहपथी आपके भक्त बन गए।

पोहना के पश्चात् आप पूर पधारे। यहां बाईस सम्प्रदाय के पाच-सात घर थे और तेरहपन्थी गृहस्थो के घर ज्यादा थे। तेरहपन्थी गृहस्थो ने मुनिश्री को ठहरने के लिए मकान देने तक की उदारता

न बतलाई। अन्त में आप जैन-मन्दिर में ठहरे। पूर में उस समय तेरहपन्थी साधु भी मौजूद थे। पहले उन्होंने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रदर्शित की मगर जब मुनिश्री का पूरा परिचय उन्हे मिला तो उनकी इच्छा गर्भ में ही विलीन हो गई!

पूर से विहार करके आप भीलवाड़ा, बेगूं, खदवासा होते हुए सिगोली पधारे। सिगोली मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की जन्मभूमि है। वहा के लोगों का अधिक आग्रह देख मुनिश्री वहां मासकल्प विराजे। वहा से बेगू होते हुए पारसोली पधारे। पारसोली के रावजी पर आपके उपदेशो का अच्छा असर पडा। उन्होंने कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये और पशु-हिंसा का त्याग किया। वहा से आप चित्तौड पधारे। चित्तौड़ के हाकिम साहब ने आपका उपदेश सुनकर कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किए।

चित्तौड से राशमी, अरणिया, खाखला, पोटला, गंगापुर, साहड़ा, कोशीथल, देवरिया और मोकुंदा होते हुए मुनिश्री आमेट पधारे। यहा कई तेरहपन्थी भाई धर्म-चर्चा करने आये और मुनिश्री ने उनका सन्तोषजनक समाधान कर दिया। आमेट से झिलुरा, देवगढ़, मदारिया, निबाहेड़ा, वोराना होते रायपुर पधारे।

सुगनचंदजी कोठारी को प्रतिबोध

अजमेर के पास मसूदा नाम का एक सम्पन्न ठिकाना है। वहां का कोठारी परिवार प्रतिष्ठित और विशाल है। इस परिवार के श्री सुगनचन्दजी कोठारी रायपुर में मुनिश्री के दर्शनार्थ आये। आप वहा नायब हाकिम थे। आपके पूर्वज जैन थे मगर आप आर्यसमाजी हो गये थे। अच्छे कार्यकर्त्ता, सुधारक और समझदार सज्जन थे। जैन-धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले योग्य विद्वान का समागम न होने से उनकी श्रद्धा बदल गई थी। उन्होंने यह समझ रखा था कि जैनधर्म मे बाह्य क्रियाकाण्ड ही मुख्य है, आत्म-शान्ति का असली मार्ग वहा नही है। जैन-धर्म एकान्त त्याग का विधान करके अकर्मण्यता की ओर प्रेरित करता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान सुनने से और उनके साथ धर्म-चर्चा करने से आपको अपना भ्रम मालूम होने लगा। आपके विचारों मे परिवर्त्तन हो गया। एक दिन व्याख्यान-परिषद् में ही खड़े होकर उन्होंने कहा, 'महाराजश्री, मेरा खयाल था कि जैन-धर्म सिर्फ बाहरी आडम्बरों से ही भरा है। उसमें कोई सारगर्भित बात नही है। मुझे खयाल भी नहीं था कि आप जिन बातो का उपदेश दे रहे है वे जैन धर्म में हो सकती है। आपके भाषण से मेरी आखें खुल गई। अब मै समझा कि जैनधर्म में आत्म-शान्ति के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान है।

उसी समय से कोठारी सुगनचन्दजी की श्रद्धा में परिवर्त्तन हो गया। आप फिर जैनधर्म के अनुरागी और पूज्यश्री के भक्त बन गये।

रायपुर मे धर्म का उद्योत करके मुनिश्री छह अन्य सन्तों के साथ गगापुर पधारे।

पंद्रहवां चातुर्मास

सवत् १९६३ का मुनिश्री का चातुर्मास गगापुर मे ही व्यतीत हुआ। इस चातुर्मास मे महाभाग

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ३३ दिन की तपस्या की। मुनिश्री पन्नालालजी और गगारामजी महाराज ने भी लम्बी-लम्बी तपस्याए कीं। मुनिश्री घासीलालजी महाराज ने अमरकोष सीखा। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य) ने लगभग ४० थोकड़े दशवैकालिक सूत्र मूल, सात अध्ययन का शब्दार्थ तथा उत्तराध्ययन के ९ अध्ययन कठस्थ किये। तपस्याओ के पूर के अवसर पर अनेक व्रत-प्रत्याख्यान एव खंध हुए। बाहर से भी अनेक सज्जन धर्म की प्यास बुझाने के लिए मुनिश्री की सेवा मे पहुंचे। मुनिश्री के प्रभावशाली उपदेशो से प्रभावित होकर बहुत से लोगो ने मदिरा, मास, पर-स्त्री-गमन आदि का त्याग किया। साहड़ा एव राशमी के हाकिम साहबान तथा अन्य जैनेतर भाइयों ने भी मुनिश्री के उपदेश से अच्छा लाभ उठाया।

गगापुर का चातुर्मास पूर्ण करके आप लाखोला, साड़ा, पोटला, राशमी होते हुए कपासन पधारे। कपासन से आकोला होते हुए बड़ी सादड़ी पधार गये। उस समय बडी सादड़ी मे आचार्य महाराज पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन करके मुनिश्री को अपार हर्ष हुआ।

मुनिश्री लखमीचन्दजी के ससारावस्था के पुत्र श्री पन्नालालजी, आपकी पत्नी और श्री रतनलालजी की दीक्षा इसी समय हुई। श्रीरतनलालजी बाल-ब्रह्मचारी और होनहार थे किन्तु आयुष्य की कमी के कारण स्वर्गवासी हो गये।

मुनिश्री ने विभिन्न स्थानो पर विचरकर जो धर्म-प्रचार किया था, उसके लिए पूज्यश्री ने हार्दिक संतोष प्रकट किया। वहा से अलग विचरकर आपने कानौड़ में फिर पूज्यश्री के दर्शन किए।

कानौड़ से विहार करके आप डूंगरा, नकूम, छोटी सादड़ी, निंबाहेड़ा, जावद, नीमच, मन्दसौर, सीतामऊ, नगरी, जावरा होते हुए सैलाना पधारे। सैलाना में बाजार में आपका पब्लिक व्याख्यान हुआ। वहां से खाचरौद होते हुए रतलाम पधारे।

इस लम्बे प्रवास मे मुनिश्री ने सर्वत्र हजारो व्यक्तियों को आत्म-कल्याण का प्रशस्त पथ प्रदर्शित किया। बहुत से मूक पशुओ को अभय-दान मिला। बहुतों को मदिरा, मास, पर-स्त्री-गमन आदि के पापों से बचाया। बडे-बड़े ठाकुरो, जागीरदारो, सरदारों और प्रसिद्ध शिकारियो को शिकार के घोर पाप से जिदगी भर के लिए बचा दिया।

सोलहवां चातुर्मास

वि. स. १९६४ मे आपका चातुर्मास ठाणा आठ से रतलाम मे हुआ। वहा विराजने से बहुत उपकार हुआ। प्रतिदिन हजारो व्यक्ति आपके व्याख्यान से लाभ उठाते थे। व्याख्यान मे सूत्रकृताग और भगवती सूत्र का सरल भाषा मे स्पष्टीकरण किया जाता था। स्वतन्त्र-रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन न करने पर भी अपनी अध्ययनशीलता, क्षयोपशम की प्रवलता, जन्म-जात प्रतिभा और शास्त्रीय विषयो के सूक्ष्म परिचय के कारण आप सूत्रकृताग की टीकाओ का आशय भली-भाति समझ लेते और श्रोताओ को समझाते थे। मुनिश्री दौलतऋषिजी महाराज तथा गोदाजी मालवी, सेठ अमरचंदजी, रूपचदजी, हीरालालजी तथा इन्द्रमलजी कावडिया आदि गृहस्थ दोपहर के समय आपसे भगवती सूत्र का वाचन, मनन, श्रवण करने आया करते थे और मुनिश्री की मार्मिक विवेचना सुनकर अत्यन्त हर्षित होते थे।

इस चातुर्मास मे भी अनेक सन्तो ने तपस्याए की। वह इस प्रकार है–

१- मुनिश्री मोतीलालजी महाराज	४० उपवास
२- मुनिश्री राधालालजी महाराज	४० उपवास
३- मुनिश्री पन्नालाल जी महाराज	५१ उपवास
४- मुनिश्री उदयचन्दजी महाराज	३६ उपवास

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन करीब १५० खध हुए। तरह -तरह के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। पारणा के दिन मुनिश्री मोतीलालजी महाराज स्वय भिक्षा के लिए गए। इसका जनता पर बड़ा प्रभाव पडा।

चातुर्मास समाप्त होने के अनन्तर मुनिश्री परबतगढ, बदनाव होते हुए कोद पधारे। कोद के ठाकुर साहब ने बडी श्रद्धा-भक्ति के साथ मुनिश्री के उपदेश सुने। बहुत-से लोगो ने शराब, आदि मादक द्रव्यो का और मास आदि अभक्ष्य वस्तुओ का त्याग किया। तीस-चालीस खध हुए।

कोद से विहार करके विडवाल, देसाई, कानून, नागदा होते हुए आप धार पधारे। मुनिश्री जहा भी पहुचे, सर्वत्र जनता को दुर्व्यसनो से छुडाया। कोद के ठाकुर साहब ने भक्ति-भाव पूर्वक मुनिश्री का उपदेश सुना और आभार माना। विडवाल के ठाकुर साहब भी व्याख्यान सुनते तथा शका-समाधान करते थे। आपने मुनिश्री के समक्ष कई त्याग-प्रत्याख्यान किये।

मुनिश्री के आगमन से धार की जनता मे आनन्द की लहर दौड़ गई। प्रतिदिन बहुसख्यक श्रोता आपके व्याख्यानों से लाभ उठाने लगे। वहा के सुप्रसिद्ध सेठ मोतीलालजी, गेंदालालजी और कन्हैयालालजी आदि का उत्साह विशेष रूप से प्रशसनीय था। मुनिश्री के कई जाहिर व्याख्यान हुए। धार रियासत के बड़े-बड़े सरदार तथा राज्य-पदाधिकारी आपके व्याख्यानो से लाभ उठाने लगे। मुनिश्री के व्याख्यान की प्रशसा सुनकर धार-नरेश ने भी व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रदर्शित की। मगर उसी समय अचानक कार्यवश उन्हे बाहर चला जाना पड़ा।

धार से विहार कर मुनिश्री दिसाई, राजगढ़, पटलावद और कुशलगढ होते हुए और उपदेशामृत की वर्षा करके भव्यजीवो का कल्याण करते हुए बाजणा पधारे।

पशु-बलि बन्द

बाजणा तहसील मे अधिकाश गांव भीलो के है। उनमें मदिरा और मास का प्रचार अत्यधिक था। वे देवी-देवताओ के उपासक थे और नवरात्रि मे उनके सामने भैसों तथा बकरो की बलि चढ़ाया करते थे। मुनिश्री जब बाजणा पधारे, उस समय मेहता तखतसिह जी वहा तहसीलदार थे। उन्हे धर्म से बहुत प्रेम था। वह मुनिश्री के भी परम भक्त थे और चाहते थे कि किसी प्रकार भीलों मे अच्छे सस्कारो का बीजारोपण किया जाय। भीलो की यह निरर्थक हिंसावृत्ति, जो धर्म के नाम पर प्रचलित है और उन्हे दयाहीन बनाये हुए है, रोकी जाय।

मुनिश्री के आगमन से मेहताजी को अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूरी होती नजर आने लगी। उनके तथा श्री जवाहरलालजी और तिलोकचन्दजी आदि मुख्य व्यक्तियो के प्रयत्न से लगभग ७० गावो

के पटेल मुनिश्री का व्याख्यान सुनने आये। उपदेश इतना प्रभावजनक हुआ कि हृदय तक असर कर गया। सरल हृदय पटेलों पर व्याख्यान का तत्काल प्रभाव पड़ा। उन्होंने खड़े होकर प्रतिज्ञा ली कि- 'हम लोग अपने-अपने गाव मे, दशहरे के अवसर पर देवी के सामने भैसों और बकरो की बलि नही चढायेगे और दूसरो को भी रोकने का प्रयत्न करेगे।' सभी पटेलों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने-अपने अगूठे लगाए और वह प्रतिज्ञा-पत्र वहा के श्रावकों को सौप दिया। श्रावको ने इस पवित्र प्रतिज्ञा का सत्कार करने के उद्देश्य से सभी पटेलो को पगडी बधाई और प्रेम के साथ उन्हें विदा दी। इस प्रकार मुनिश्री के उपदेश से एक ही तहसील मे हजारों प्राणियों के प्राण बच गये।

कान्फ्रेंस के अधिवेशन पर

बाजणा से विहार करके शिवगढ़ होते हुए आप रतलाम पधारे। उन्हीं दिनो रतलाम में श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस का दूसरा अधिवेशन था। भारतवर्ष के विभिन्न प्रातो से हजारों सज्जन कान्फ्रेस मे सम्मिलित होने आये थे। मोरबी के नरेश तथा राजपूताना एव मध्यभारत के अनेक जागीरदार भी कान्फ्रेन्स के अधिवेशन मे शरीक हुए थे। करीब दस हजार की भीड़ थी। उसी अवसर पर विशाल सभा में मुनिश्री का व्याख्यान हुआ। आपने अपने व्याख्यान में कान्फ्रेंस को सच्ची कामधेनु बनने की प्रेरणा करते हुए इस आशय के उद्‌गार व्यक्त किये।

'भारत मे कामधेनु की कल्पना अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। कामधेनु का असली स्वरूप क्या है ? यह कहना आज कठिन है, क्योकि साहित्यिक कामधेनु आज कहीं प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो एक सुखद कल्पना के रूप में ही आज हमारे दिमाग में विद्यमान है। उसका स्वरूप कुछ भी हो, उस परोक्ष कामधेनु के बदले हमें प्रत्यक्ष कामधेनु की ओर ही ध्यान देना चाहिए। आखों के आगे वाली वस्तु के प्रति उपेक्षा धारण करके अधकारमय अतीत मे भटकने से कोई लाभ नही हो सकता। अतएव हमारे सामने जो कामधेनु है, उसी की ओर हमे नजर दौडानी चाहिए। यही कामधेनु हमारा समस्त मनोरथ पूरा कर सकती है।

कामधेनु अपने चार पैरो पर अवलबित रहतीं है, उसी प्रकार कान्फ्रेस रूपी कामधेनु, साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ के सहारे खड़ी है। एक भी पैर अगर स्वस्थ और पुष्ट न हो तो कामधेनु लगडी और प्रगति करने में उतनी समर्थ नहीं हो सकती। प्रगति करने के लिए चारो पैरों का शक्तिशाली होना आवश्यक है। इसी प्रकार कान्फ्रेस कामधेनु भी तब ही प्रगति कर सकती है जब उसके पूर्वोक्त चारों पैर समान रूप से सामर्थ्यवान हो। अगर एक भी पैर दुर्वल या रुग्ण हुआ तो उसकी प्रगति मे बाधा पडना अनिवार्य है। यद्यपि कामधेनु के दो पैर आगे और दो पैर पीछे रहते है, फिर भी पगति के लिहाज से चारो का महत्त्व है। इसी प्रकार कान्फ्रेस अर्थात् महासंघ रूपी कामधेनु के दो पैर-साधु और साध्वी आगे है और दो पैर श्रावक और श्राविका -पीछे है, फिर भी प्रगति के लिहाज से सभी का महत्त्व है। चारो पैर एक दूसरे के सहायक है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि कामधेनु जिस ओर पयाण करने की इच्छा करती है, उसके चारो पैर उसी ओर चलते है। अगर चारो पैरो मे यह एकरूपता न हो और चारो पैर चारो विरुद्ध दिशाओ मे चलना चाहे तो बेचारी कामधेनु की क्या स्थिति हो ? वह एक भी कदम आगे नही बढ सकेगी और

जीवित रहना भी उसके लिए दूभर हो जायगा। इसी प्रकार कान्फ्रेंस-कामधेनु के चारो आधार जब एक ही दिशा मे प्रयाण करने के लिए तत्पर होगे तभी वह आगे बढ सकती है। चतुर्विध सघ की दिशा अगर एक ही न हुई और सब अपनी-अपनी मनमानी करने लगे तो वह आगे नही बढ़ सकती। यही नही, वरन् उसका जीवित रहना भी दूभर हो सकता है। कामधेनु के पिछले दोनों पैर अगले पैरो का ही अनुसरण करते है-अगले पैरो का जो लक्ष्य होता है वही पिछले पैरो का भी लक्ष्य होता है, उसी प्रकार कान्फ्रेस-कामधेनु के पिछले दोनों पैरों को अगले पैरो का ही अनुसरण करना चाहिए- वही उनका लक्ष्य होना चाहिए।

हा, अगले पैरों पर अपनी भी जिम्मेवारी है और पिछले पैरो की भी जिम्मेवारी है, अतएव रवाना होने से पहले उन्हे अपने मार्ग का भली-भांति विचार करना चाहिए। पिछले पैरो को अगले पैरों का अनुसरण करना चाहिए।

कामधेनु में यह सामर्थ्य है कि वह घास जैसे तुच्छ पदार्थ को भी ग्रहण करके उसे दूध रूप मे परिणत कर लेती है। अगर कामधेनु में यह शक्ति न होती तो कौन उसकी उपासना करता ? इसी प्रकार कान्फ्रेस-कामधेनु मे भी यह शक्ति होनी चाहिए। भगवान् महावीर के सघ मे जिसने प्रवेश किया-सघ ने जिसे अपनाया, वह चाहे घास की भाति तुच्छ ही क्यों न हो, उसे दूध के रूप में परिणत करने का सामर्थ्य उसमे होना चाहिए, जैसे दूध निष्कलक, उज्ज्वल और मधुर है उसी प्रकार वह व्यक्ति भी इस कामधेनु के अपना लिए जाने पर क्रिया से निष्कलक, मन से उज्ज्वल और वचन से मधुर बन जाना चाहिए। अगर इस प्रत्यक्ष कामधेनु में यह शक्ति न हुई तो कौन इसकी शरण ग्रहण करेगा ? कौन इसकी उपासना करेगा ?

कामधेनु के चार स्तन होते है और चारो स्तनों के द्वारा निकलने वाले दूध को प्राप्त करके कामधेनु का सेवक अपने को कृतार्थ मानता है। कान्फ्रेंस अर्थात् सघ रूपी कामधेनु के भी चार स्तन है-दान, शील, तप और भावना। इन चारों स्तनो के द्वारा निकलने वाला दूध-रूपी फल भी समान होता है और उस फल को पाकर मनुष्य अपने को कृतार्थ बनाता है।

जैसे कामधेनु को दो सुन्दर सींग सुशोभित करते हैं उसी प्रकार यह कामधेनु भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र से शोभायमान होनी चाहिए। याद रखना चाहिए कि कोई भी एक सीग दूसरे के अभाव से शोभाजनक नही होता, उसी प्रकार चरित्र के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना अकेला चरित्र शोभा नहीं पाता। अतएव इन दोनो की आवश्यकता है।

कामधेनु मे दो दृष्टिया है। दोनों से वह काम लेती है। इस प्रत्यक्ष कामधेनु को भी दो दृष्टियो से काम लेना चाहिए। एक दृष्टि से उसे अपने भीतर घुसे हुए कुसस्कार को, कुरूढियो को, अज्ञान, अनैक्य, अनुत्साह आदि दोषो को देखना चाहिए और दूसरी दृष्टि से उन आवश्यक बातो को देखना चाहिए जिनको स्वीकार किये बिना उसका निस्तार नहीं। इस प्रकार बुराइयो को त्यागने से और उनके स्थान पर अच्छाइयो को ग्रहण करने से कल्याण का, अभ्युदय का और प्रगति का मार्ग मिलेगा और जीवन आदर्श बनेगा।

लोक में कामधेनु की बडी महिमा है। लोग उसे बडे आदर की चीज समझते है। मगर उसे यह महिमा और यह आदर निष्कारण नही प्राप्त हुआ है। वह अपने सर्वस्व का-जीवन-रस का-त्याग करके अपने आश्रितो का रक्षण और पोषण करती है। इसी त्याग की बदौलत उसे महिमा मिली है। अगर

आप काफ्रेस-कामधेनु को महिमामयी बनाना चाहते है तो आपको सर्वस्व-त्याग करके परोपकार करने का पाठ सीखना होगा। एक बात और, कामधेनु उसी को मनोवाछित फल प्रदान करती है जो उसकी सेवा करता है। अगर कोई कामधेनु को घास-पानी भी न दे तो वह कैसे जीवित रहेगी और कैसे फल देगी ? इसी प्रकार अगर आप कान्फ्रेंस-कामधेनु की सेवा करेंगे, उसे पुष्ट करेगे तो वह आपको पुष्ट करेगी। पारस्परिक आदान-प्रदान का नियम यहा पूर्ण-रूप से लागू होता है।'

मुनिश्री का वह व्याख्यान आज लिखित रूप मे विद्यमान नहीं है। आपका व्याख्यान काफी लम्बा था। सच्चे सुधारक के रूप मे जनता के सामने आपने जो विचार प्रस्तुत किए थे वे अत्यन्त मननीय है। उनमे धार्मिक और सामाजिक सुधारो के सभी तत्त्वों का समावेश है। उस व्याख्यान के बाद जनता आपका व्याख्यान सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहने लगी। जब भी आपकी वाग्धारा प्रवाहित होती, लोग मंत्र-मुग्ध होकर सुनते।

रतलाम से विहार करके मुनिश्री सैलाना पधारे। वहां कुछ दिन उपदेश देकर पंचेड, नामली, शिवगढ, रावटी, करवड़, पटलावद होते हुए थांदला पधारे। सभी स्थानो पर धर्म-जागृति हुई और अनेक श्रावको ने यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान आदि किये। इस वर्ष एक तेजस्वी व्याख्याता के रूप मे सारे समाज मे आपकी प्रसिद्धि हो गई।

सतरहवां चातुर्मास

सवत् १९६५ का चातुर्मास आपने थांदला में व्यतीत किया। थादला मे बहुत से भाई रहते थे। नदी मे जाल डालकर मछलिया पकडना उनकी जीविका थी। श्रावको की प्रेरणा से भोई लोग मुनिश्री का उपदेश सुनने आने लगे। एक दिन उन्होने निश्चय किया-'जवतक महाराज थादला मे विराजमान रहे तवतक कोई भोई मछलिया न पकडे। श्रावको ने भोई भाइयो के इस शुभ निश्चय के प्रति अपना प्रेम पदर्शित किया और चातुर्मास भर अपनी ओर से उनके भोजन का प्रवध कर दिया।

विनीत निर्मंत्रण

उन्हीं दिनो कुछ विद्वान शास्त्रार्थ करने की इच्छा से धार पहुचे। धार-नरेश सुप्रसिद्ध विद्या-विलासी राजा भोज के उत्तराधिकारी है। इसी कारण विद्वान वहां गये और शास्त्रार्थ करने की अपनी इच्छा उन्होने पकट की। मगर इस समय का धार भोजकालीन धारा नगरी नही थी। वह धारा तो भोज के साथ ही समाप्त हो गई। राजा भोज की मृत्यु पर एक कवि ने कहा था-

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिता खण्डिता: सर्वे, भोजराजे दिवगते॥

अर्थात - आज भोजराज के स्वर्ग-गमन करने पर धारा नगरी निराधार हो गई, सरस्वती के लिए सहारा नहीं रहा और सब पण्डित खण्डित हो गए।

धार-नरेश मुनिश्री की प्रशंसा सुन चुके थे। उनकी दृष्टि आप पर ही गई। उसी समय उन्होने [illegible] पर धारना लिखा। उसमे लिखा था-'अगर मुनिश्री जवाहरलाल जी महाराज को शास्त्रार्थ करने [illegible] आने का [illegible] तो शीघ्र सूचना दीजिए। उन्हे लाने के लिए हाथी-घोडा आदि लवाजमा [illegible]

थादला के श्रावको ने उत्तर दिया-'जैन साधु चातुर्मास मे एक ही स्थान पर रहते है। इस समय विहार करना उनकी शास्त्र-मर्यादा में नहीं है। अतएव मुनिश्री वहां नही पधार सकते। अगर चातुर्मास के पश्चात् आवश्यकता हो तो सूचना दीजिएगा। हम मुनिश्री से उसी ओर विहार करने की प्रार्थना कर देंगे। जैन साधु सदा पैदल ही विहार करते है। किसी भी प्रकार की सवारी का उपयोग नही करते। अतएव हाथी-घोडा आदि कुछ भी भेजने की आवश्यकता नहीं है।'

धार नरेश के लिए यह गौरव की बात थी कि उन्होने आगत विद्वानों को यो ही नहीं टाल दिया। उन्होने महाराज भोज की परम्परा को किसी अश मे कायम रखा और शास्त्रार्थ के लिए आयोजना की। मगर शास्त्रार्थ-अर्थी विद्वान् अधिक दिनो तक नहीं ठहर सकते थे। इस कारण शास्त्रार्थ तो न हो सका परन्तु धार-नरेश पर उस पत्र का बहुत अच्छा प्रभाव पडा। जैन साधुओ के पैदल विहार और अन्य कठोर तपश्चरण की बात जानकर उनके हृदय मे भक्ति-भाव उत्पन्न हो गया।

इस चातुर्मास में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और मुनिश्री राधालालजी महाराज ने ४२-४२ दिन की अनशन-तपस्या की। श्री पन्नालालजी महाराज ने भी लम्बी तपस्या की। पूर के दिन बहुत भीड़ हुई। अनेक खध हुए। बहुत से भाइयो ने शिकार और मासाहार का त्याग किया। अनेक जीवों को अभय-दान दिया गया। श्रावको ने विविध प्रकार से धर्म-जागरणा की।

समाज-सुधार

उस समय थांदला में समाज सुधार के लिए नीचे लिखा पचायतनामा लिखा गया और सर्वसम्मति से वह स्वीकार किया गया।

ओसवाल सकल पंचपुर थांदला के खाता पा. १९१७ की नकल

सवत १९६५ के साल मे चौमासा की विनन्ती अरज सघ तरफ से होने से श्री १००८ श्री तपस्वीजी महाराज परमदयाल, कृपावत, करुणा के सागर, गुण के आगर, ऐसी अनेक ओपमा योग श्री १००८ श्री मोतीलालजी महाराज साहेब, श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज ठाणा ६ से चातुर्मास की कृपा करके इस क्षेत्र की सौभाग्य दशा होने से पधारे। महाराज साहेब के पधारने के पीछे यहां श्री तपस्वीजी श्री १००८ श्री मोतीलालजी महाराज साहेब, श्री १००८ श्री राधालालजी महाराज साहेब ने तपस्या दिन ४२ की दोनो महाराज साहेब ने की। बाद श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब बखाण अमृतधारा मेह की तरह फरमाते हुए जीव दया, तपस्या, त्याग, वैराग वगैरा बहोत-सा उपगार हुआ। महाराज साहेब का फरमान व्याख्यान द्वारा धार्मिक व सासारिक व्यावहारिक सुधारे बाबत उपदेश फरमाने से उसका असर होता रहने से आज रोज सकल पच शहर पूरा शरीक होकर नीचे माफिक कलमवार सासारिक व धार्मिक सुदा रेखाबद ठहराव किया गया सकल पचो की राय से।

नीचे मुजब कलमवार

१- कन्या विक्रय बन्द-याने सगपण लडकी को करवा मे देज बावत सिर्फ रु. १) एक रुपया व खोल बावत ३५०) जुमले रुपैया ३५१) तीन सौ एक्यावन सीके कल्दार बेटी को बाप लेवे। सिवाय कोई ज्यादा रुपया लेवे तो वी कुल रुपया बाद सबूती पच वसूल कर लेवे। अण के सिवाय कोई लडकी

ने परेदश जाई ने जादा देज सू परणाई देवे तो ज्यादा लिया हुआ कुल रुपया बेटी का बाप से पच वसूल कर लेवे। तथा भात खिचडी का रुपैया नकदी लेवा का हकदार पंच है सो वसूल कर लेवे। अण मे उजर व पक्ष नही करेगा। लड़की की उमर ११ वर्ष पेश्तर नहीं परणावणी। व लडके को तेरा बरस के नीचे व पीसतालीस वरस के उपरात नही परणावणो। अणा के खीलाफ कोई भी करे तो वणा के पच ठपको देवे।

२- वींद व वीदणी वरात भाणा में खरच जात रसम करवा की तादाद-वींद के यहा की रकम-

खीचडी न. १ नारेल न. १ सातो नं.१ आखा विवाह मे।

रास की खारका मण ४ वींदणी के घरे मेलणी।

नारेल न. ५१ वीदणी परणवाने जावे जदी राज खरचा का।

१२) चवरी का पंचायती।

५) वासण भांडा का भात खीचड़ी का।

३) देव का खीचडी का।

२) खोल का

४) पौषधशाला

वीदणी के यहा की रसम-

भात नग १ नारेल नग १ सातो नग १ आखा विवाह मे।

७) पचायती

३) देव का भात का

४) पोषधशाला

१॥) टीकरो देव का वावत

३- विवाह मे रण्डी को नाच करावणो नही।

४- रजा की जीमण मे मोरस खाड नही गारणी।

५- लीला वाज दूना नही वापरणा कतई वद, जात मे गाम मे।

६- न्यात का निराश्रित वाग भाया पर पचायती निगाह [illegible]

७- परगाम पंचायती रसम से जावे तो राने [illegible] नहीं [illegible]।

वेसे गाडी में बेठकर जाणो भी नहीं, रकम भाव भी मगावणी नही।

१२- घरू लेन देन बावत पचायती रजा नही सके।

१३- माती मोत पदरा साल तक की हुई जावे तो वणी पर पंचायती हक नही, सबब रजा नहीं देवे।

१४- हाथी दात को चूड़ो आपणी न्यात में, रतलाम बीरादरी मे बन्द होवे तो आपणा अठे भी बद करी चुका हां।

१५- आतिशबाजी, झाड व हाथी नार वगैरह थादला के अन्दर नही छोड़े, व परदेशी ने भी गाम मे नहीं छोडवा देना।

१६- पचायती हक सिवाय जो बाबत आवेगा इजाफ की उस की हीसा रसीद सीरस्ता मुजब समझ ली जावेगी।

ऊपर माफक सोला ही कलम को पालन समस्त पंच थादला का करेगा और अण के सिवाय खुशी से कोई भी वरोटी करेगा तो वासण भाड़ा रु. २॥) व देव का रु. २॥) जुमला पाच रुपैया लेणा। ऊपर लिख्या सिवाय पंचायती हक दस्तूर नही है। लिख्या हुआ करियावर के सिवाय करियावर पर पचायती हक नहीं है। यो ठराव समस्त पच थादला के रोबरु शाहजी साहब प्यारेलालजी के हुआ है, सो सही है।

सवत् १९६५ मी. श्रावण वदी १३ रविवार।

(इस पर एक सौ पचपन व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं)

उक्त पचायतनामा थादला के ओसवाल भाइयो का पचायतनामा है। मुनिश्री धार्मिक जीवन के अभ्युदय के लिए सामाजिक सुधारों के भी कट्टर समर्थक थे। वे जीवन मे सर्वागीण उत्कर्ष का ही उपदेश फरमाते थे। अतएव मुनिश्री के किसी भाषण से प्रभावित होकर थादला के भाइयो ने यह पचायतनामा तैयार किया था। इसकी सोलह कलमो में से प्रत्येक कलम मुनिश्री के उपदेशानुसार ही है, ऐसा समझना भ्रमपूर्ण होगा। उदाहरणार्थ कलम नबर ८ मे भीलो के हाथ के पानी को निषिद्ध ठहराया गया है। भील जाति अस्पृश्य नही है फिर भी उसमें मास मदिरा के सेवन का प्रचुर प्रचार था और शायद अब भी है। मास-मदिरा से तीव्र घृणा करने वाले ओसवाल भाइयों ने सभवत इसी कारण यह कलम बनाई है। इसमें मास-मदिरा के सेवन का त्याग कर देने वाले भील भाइयों का भी समावेश हो जाता है और मांस-मदिरा का सेवन करने वाली अन्य जातियो का समावेश नही होता। मुनिश्री का इस प्रकार का मतव्य कभी नही रहा। वे जातिगत अस्पृश्यता के तीव्र विरोधी थे और अपने भाषणो में बलपूर्वक इस विषय को प्रकट करते थे। अतएव यह निर्णय थादला की पचायत का स्वतन्त्र निर्णय ही समझना चाहिए। यही बात अन्य कलमो के विषय मे भी समझनी चाहिए।

हाथी झुक गया

थादला की ही बात है। मुनिश्री उपदेशामृत की वर्षा कर रहे थे और श्रोताओ का समूह मत्र-मुग्ध होकर अमी-रस का पान कर रहा था। स्थानक मे जगह पर्याप्त न होने के कारण सडक पर टीन

का छप्पर उतारा गया था। इसी समय एक ओर से हाथी आया। छप्पर इतना ऊचा नहीं था कि हाथी यों ही निकल जाता। महावत के इशारे से हाथी ने चारों घुटने टेक दिए और घुटने टेके-टेके ही वह छप्पर के नीचे से पार हो गया।

मुनिश्री ने यह घटना देखकर बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया। आपके व्याख्यान का आशय इस प्रकार था- 'मनुष्य अपने को सब प्राणियो से अधिक बुद्धिमान समझता है किन्तु उसे बहुत-सी बातें पशुओ से भी सीखने की आवश्यकता है। मनुष्य अकड कर चलता है। वह झुकना नहीं जानता। गर्व की मात्रा उसमे अत्यधिक है। मगर इस हाथी को देखो, महावत के जरा-से इशारे से किस प्रकार घुटने टेकता हुआ नम्रतापूर्वक निकल गया! पशु इशारे से ही इतना सीख सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं सीखता! आप लोगो को मान, दभ आदि त्यागने का उपदेश प्रतिदिन दिया जाता है, मगर उसका विशेष असर पडा दिखाई नहीं देता। शास्त्र आपको प्रतिदिन धर्म-शिक्षा देते है, किन्तु क्या मै पूछूं कि आपने जीवन मे कितनी उतारी है! इस हाथी को अच्छा कहना चाहिए या अपना स्वभाव न छोडने वाले मनुष्य को ?

हाथी चौपायो में सबसे बडा प्राणी है, फिर भी इसमें कितनी नम्रता है! वह महावत की आज्ञा का किस प्रकार पालन करता है! क्या आप अपने महावत अर्थात् गुरु के उपदेशो का ऐसा पालन करते है ? नम्रता धारण करना और बडो की आज्ञा का पालन करना बड़प्पन का लक्षण है। इसे लघुता का चिह्न समझना अज्ञान है।

आपको मालूम होगा कि मेघकुमार का जीव भी पूर्वभव मे हाथी था। उसने दूसरे प्राणियों को शरण देने के लिए ही अपने प्राण दे दिये। अपनी इस परोपकार वृत्ति के कारण उसने शुभ गति का बध किया और मोक्ष का मार्ग प्राप्त कर लिया। फिर भी हाथी तिर्यचगति मे माना जाता है। आप लोग मनुष्य-गति में है। आपको हाथी की अपेक्षा अधिक विनम्र और परोपकारी होना चाहिए।'

पत्थर फैंकने वाले पर भी क्षमा

एक बार मुनिश्री कुछ साधुओ के साथ बाहर जा रहे थे। रास्ते मे लड़के मिले–खेलते, भागते, दौडते हुए। उधर से साधुओ को निकलते देख एक लड़के ने पत्थर मार दिया। पास में खड़े एक आदमी ने यह देखा और गाव मे आकर कह दिया। कुछ भाई उस लडके के घर गये और उसे पकड लाये। लडके के मा–बाप घबराए। पचो ने उस बालक को दड देने का विचार किया।

मुनिश्री ने जब यह सब सुना तो समझाया-'यह बालक किसी वृक्ष पर पत्थर फैकता तो फल की प्राप्ति होती। हमारे ऊपर पत्थर फैकने से तो इसे कुछ भी नही मिला। यही दुःख की बात है। इसे दड मिलना तो हमारे लिए और भी लज्जा की बात होगी। साधुओ की सार-सभाल रखने की आपकी भावना प्रशस्त है मगर मेरी इच्छा है कि इस बालक को छोड़ दिया जाय, हम इस बालक की आत्मा का सुधार चाहते है।'

मुनिश्री की इस उदारता का जनता पर बडा प्रभाव पडा। उस बालक पर भी कम असर नहीं पडा। उसके हृदय मे मुनियो के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अपराधी को दड देने की सुविधा होने पर भी दड न देना महात्मा का लक्षण है।

वेसे गाडी में बेठकर जाणो भी नही, रकम भाव भी मगावणी नही।

१२- घरू लेन देन बावत पचायती रजा नही सके।

१३- माती मोत पदरा साल तक की हुई जावे तो वणी पर पचायती हक नही, सबब रजा नही देवे।

१४- हाथी दात को चूडो आपणी न्यात मे, रतलाम बीरादरी मे बन्द होवे तो आपणा अठे भी बद करी चुका हा।

१५- आतिशबाजी, झाड व हाथी नार वगैरह थादला के अन्दर नही छोडे, व परदेशी ने भी गाम में नही छोड़वा देना।

१६- पचायती हक सिवाय जो बाबत आवेगा इजाफ की उस की हीसा रसीद सीरस्ता मुजब समझ ली जावेगी।

ऊपर माफक सोला ही कलम को पालन समस्त पच थादला का करेगा और अण के सिवाय खुशी से कोई भी वरोटी करेगा तो वासण भाडा रु. २॥) व देव का रु. २॥) जुमला पाच रुपैया लेणा। ऊपर लिख्या सिवाय पचायती हक दस्तूर नही है। लिख्या हुआ करियावर के सिवाय करियावर पर पचायती हक नहीं है। यो ठराव समस्त पच थादला के रोबरु शाहजी साहब प्यारेलालजी के हुआ है, सो सही है।

सवत् १९६५ मी. श्रावण वदी १३ रविवार।

(इस पर एक सौ पचपन व्यक्तियों के हस्ताक्षर है)

उक्त पचायतानामा थादला के ओसवाल भाइयों का पचायतनामा है। मुनिश्री धार्मिक जीवन के अभ्युदय के लिए सामाजिक सुधारों के भी कट्टर समर्थक थे। वे जीवन मे सर्वागीण उत्कर्ष का ही उपदेश फरमाते थे। अतएव मुनिश्री के किसी भाषण से प्रभावित होकर थादला के भाइयो ने यह पचायतनामा तैयार किया था। इसकी सोलह कलमो मे से प्रत्येक कलम मुनिश्री के उपदेशानुसार ही है, ऐसा समझना भ्रमपूर्ण होगा। उदाहरणार्थ कलम नबर ८ मे भीलो के हाथ के पानी को निषिद्ध ठहराया गया है। भील जाति अस्पृश्य नही है फिर भी उसमे मास मदिरा के सेवन का प्रचुर प्रचार था और शायद अब भी है। मास-मदिरा से तीव्र घृणा करने वाले ओसवाल भाइयो ने सभवत· इसी कारण यह कलम बनाई है। इसमे मास-मदिरा के सेवन का त्याग कर देने वाले भील भाइयो का भी समावेश हो जाता है और मास-मदिरा का सेवन करने वाली अन्य जातियों का समावेश नही होता। मुनिश्री का इस प्रकार का मतव्य कभी नही रहा। वे जातिगत अस्पृश्यता के तीव्र विरोधी थे और अपने भाषणो में बलपूर्वक इस विषय को प्रकट करते थे। अतएव यह निर्णय थादला की पचायत का स्वतन्त्र निर्णय ही समझना चाहिए। यही बात अन्य कलमो के विषय मे भी समझनी चाहिए।

हाथी झुक गया

थादला की ही बात है। मुनिश्री उपदेशामृत की वर्षा कर रहे थे और श्रोताओ का समूह मत्र-मुग्ध होकर अमी-रस का पान कर रहा था। स्थानक मे जगह पर्याप्त न होने के कारण सडक पर टीन

का छप्पर उतारा गया था। इसी समय एक ओर से हाथी आया। छप्पर इतना ऊंचा नही था कि हाथी यों ही निकल जाता। महावत के इशारे से हाथी ने चारो घुटने टेक दिए और घुटने टेके-टेके ही वह छप्पर के नीचे से पार हो गया।

मुनिश्री ने यह घटना देखकर बडा सुन्दर व्याख्यान दिया। आपके व्याख्यान का आशय इस प्रकार था- 'मनुष्य अपने को सब प्राणियो से अधिक बुद्धिमान समझता है किन्तु उसे बहुत-सी बातें पशुओं से भी सीखने की आवश्यकता है। मनुष्य अकड कर चलता है। वह झुकना नहीं जानता। गर्व की मात्रा उसमें अत्यधिक है। मगर इस हाथी को देखो, महावत के जरा-से इशारे से किस प्रकार घुटने टेकता हुआ नम्रतापूर्वक निकल गया! पशु इशारे से ही इतना सीख सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं सीखता! आप लोगों को मान, दंभ आदि त्यागने का उपदेश प्रतिदिन दिया जाता है, मगर उसका विशेष असर पडा दिखाई नहीं देता। शास्त्र आपको प्रतिदिन धर्म-शिक्षा देते है, किन्तु क्या मैं पूछू कि आपने जीवन में कितनी उतारी है! इस हाथी को अच्छा कहना चाहिए या अपना स्वभाव न छोडने वाले मनुष्य को ?

हाथी चौपायों में सबसे बड़ा प्राणी है, फिर भी इसमे कितनी नम्रता है! वह महावत की आज्ञा का किस प्रकार पालन करता है! क्या आप अपने महावत अर्थात् गुरु के उपदेशो का ऐसा पालन करते है ? नम्रता धारण करना और बडों की आज्ञा का पालन करना बड़प्पन का लक्षण है। इसे लघुता का चिह्न समझना अज्ञान है।

आपको मालूम होगा कि मेघकुमार का जीव भी पूर्वभव मे हाथी था। उसने दूसरे प्राणियो को शरण देने के लिए ही अपने प्राण दे दिये। अपनी इस परोपकार वृत्ति के कारण उसने शुभ गति का बध किया और मोक्ष का मार्ग प्राप्त कर लिया। फिर भी हाथी तिर्यचगति में माना जाता है। आप लोग मनुष्य-गति मे हैं। आपको हाथी की अपेक्षा अधिक विनम्र और परोपकारी होना चाहिए।'

पत्थर फेंकने वाले पर भी क्षमा

एक बार मुनिश्री कुछ साधुओ के साथ बाहर जा रहे थे। रास्ते मे लड़के मिले–खेलते, भागते, दौड़ते हुए। उधर से साधुओ को निकलते देख एक लड़के ने पत्थर मार दिया। पास में खड़े एक आदमी ने यह देखा और गाव में आकर कह दिया। कुछ भाई उस लड़के के घर गये और उसे पकड लाये। लडके के मा–बाप घबराए। पंचो ने उस बालक को दड देने का विचार किया।

मुनिश्री ने जब यह सब सुना तो समझाया-'यब बालक किसी वृक्ष पर पत्थर फैंकता तो फल की प्राप्ति होती। हमारे ऊपर पत्थर फैंकने से तो इसे कुछ भी नही मिला। यही दुःख की बात है। इसे दड मिलना तो हमारे लिए और भी लज्ञा की बात होगी। साधुओं की सार-सभाल रखने की आपकी भावना प्रशस्त है मगर मेरी इच्छा है कि इस बालक को छोड़ दिया जाय, हम इस बालक की आत्मा का सुधार चाहते हैं।'

मुनिश्री की इस उदारता का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उस बालक पर भी कम असर नहीं पडा। उसके हृदय मे मुनियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अपराधी को दड देने की सुविधा होने पर भी दंड न देना महात्मा का लक्षण है।

सांप की एक घटना

एक बार पर्युषण पर्व के दिनो में श्रावको ने पौषध किया। पौषध करने वाले श्रावक रात्रि के समय उपाश्रय मे सो रहे थे। उपाश्रय मे स्थान की कमी के कारण कुछ श्रावक एक दूसरे मकान मे थे। रात मे एक काला सांप वहां आ गया और जहा श्रावक थे वहां बैठ गया। अंधेरे मे किसी को इस नवीन अतिथि के आगमन का पता नहीं चला। किसी श्रावक के सिर के पास जाकर उसने अपने आगमन की सूचना भी दी मगर उस श्रावक ने उसे कुत्ते का बच्चा समझकर पास में पड़े ओघे से दूर हटा दिया। किसी की उस पर निगाह भी न गई। मगर बिना बुलाये आये इस मेहमान ने अपने अनादर का खयाल न किया और वह किसी पर खफा भी न हुआ। ओघे से हटाने पर वह एक किनारे आकर बैठ गया और सुबह तक बैठा रहा। कुछ-कुछ प्रकाश होने पर जब लोगो की दृष्टि उस पर गई तो वे बुरी तरह घबराये। दूर हट गये। मगर सर्पराज शान्त थे। लोगों को घबराते देख और अपने सत्कार की सुविधा न देख वह वहां से शान्तभाव से चले गये। फिर कौन जाने वह कहा विलीन हो गये।

इस घटना को लेकर मुनिश्री ने अपने व्याख्यान में फरमाया-'पर्युषण के इस पावन अवसर पर और विशेषत पौषध के समय आप लोगों का प्राणी-मात्र पर समभाव होगा। आपका हृदय द्वेष और मलीनता से रहित होगा। इसका प्रभाव साप पर भी पडा। उसने आप लोगों मे आकर अपनी द्वेष-वृत्ति छोड़ दी। जब हमारे हृदय मे रोष और दूसरे को हानि पहुचाने की भावना होती है तभी सामने वाला हमसे द्वेष करता है। अगर हमारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो तो दूसरे की द्वेष-वृत्ति भी शान्त हो जाती है। यही अहिसा की भावना है। इसी भावना के कारण तीर्थंकरों एव अन्य महात्माओ के सामने प्रकृति से हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसकता भूल जाते हैं।

'अहिसा में ऐसी अपूर्व शक्ति है कि सिंह और हिरन, जो जन्म से विरोधी है अहिंसक की जाघ पर आकर सो जाते है। 'अहिंसाप्रतिष्ठाया वैरत्याग ' अर्थात् जहा अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, वहा वैर का नाश हो जाता है। अहिंसक के निकट जाति विरोधी पशुओ के एकत्र निर्वेर बसने के उदाहरण आज भले ही दिखाई न पड़ते हो, फिर भी अहिंसा की शक्ति के उदाहरणों की कमी नही है। अहिंसा के आराधक महात्माओं की चरणरेणु से हजारो को मारने वाला हत्यारा भी शुद्ध हो जाता है।

मृत्यु के मुंह में

इस प्रकार धर्मोपदेश देकर चातुर्मास समाप्त होने पर मुनिश्री ने थादला से विहार किया और रभापुर पधारे। वहा से मोतीलालजी महाराज झाबुआ होकर कोद पधार गये। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने जब झाबुआ की ओर विहार किया तो दो कोस चलते ही बामनिया गाव मे आपको बुखार हो आया। अतएव आपको फिर रभापुर लौट आना पडा। यहा आपको कै और दस्त होने लगे। प्रतिदिन १५० के करीब के दस्त का नबर पहुच गया। रात को नीद न आती। नौ दिन तक यही हाल रहा। कोई इलाज कारगर न हुआ। रभापुर में श्रावको ने आपके जीवन की आशा छोड दी। यहा तक कि अतिम सस्कार करने की तैयारी कर ली और सब आवश्यक सामान मगवा लिया। उस समय मुनिश्री राधालालजी महाराज और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य) आपकी सेवा मे मौजूद थे। उन्होने मुनिश्री की सेवा करने मे कोई कसर न रखी। हर प्रकार के कष्ट सहन करके सेवा की। रभापुर से दो कोस दूर लोहे की एक खान थी। वहा एक सरकारी डाक्टर रहता था। मुनिश्री

गणेशीलालजी महाराज प्रतिदिन वहां जाते और दवा लाते। मगर उससे भी विशेष लाभ नही हुआ। आपकी बीमारी के समाचार बिजली के वेग से सब जगह फैल गये थे।

उन्हीं दिनो नाहरसिह बुन्देला नामक वैद्य किसी का इलाज करने रंभापुर आये। वैद्यजी थांदला के रहने वाले थे। मुनिश्री की दशा देखकर उन्होने कहा- 'किसी प्रकार थादला पहुंच सके तो मै इन्हे स्वस्थ कर सकता हू।'

मुनिश्री का जीवन इतना बहुमूल्य था कि उसकी रक्षा करने के लिए कोई भी कष्ट झेलना बडी बात नही थी। मगर इस समय तो यह प्रश्न था कि आपको किस प्रकार थांदला पहुंचाया जाय ? साथ मे सिर्फ दो सत थे मगर दोनों सेवापरायण और पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने साहस करके मुनिश्री को थादला ले जाने का निश्चय कर लिया। मुनिश्री बेहद कमजोर हो गये थे! साधु की मर्यादा के अनुसार दो कोस से आगे दवाई भी साथ नही ले जा सकते। रभापुर से थांदला चार कोस था। रंभापुर का आहार पानी और औषध दो कोस तक ही काम आ सकता था। आगे क्या होगा ? यह प्रश्न सामने था। मगर जहा हिम्मत होती है, रास्ता निकल ही आता है।

मुनिश्री ने धीरे-धीरे चलना आरभ किया। आप लगातार चल भी नही सकते थे। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज आपको सहारा देते और आगे बढकर रास्ते के वृक्ष के नीचे बिछौना बिछा देते। मुनिश्री टरकते-टरकते जब बिछौने के पास पहुचते तो विश्राम के निमित्त आपको लेटा देते और आपके पैर दबाने लगते। आप अकेले ही दोनों मुनियो का सारा सामान भी लादे हुए थे। इस प्रकार सहारा देते-देते, बिछौना करते और पैर दबाते-दबाते चलने से दिन भर मे अढाई कोस की यात्रा हो सकी। मुनिश्री राधालालजी आहार-पानी लाने के लिए रभापुर ही रह गये थे। वे बाद मे आये। रात्रि में तरावली मे विश्राम किया। दिनभर चलने के कारण आपको थकावट हो गई थी इस कारण तथा राधालालजी महाराज थादला से दवा ले आये थे इस कारण रात मे कुछ नींद आ गई। नीद आने से कुछ शान्ति हुई। दूसरे दिन तरावली से विहार हुआ। मुनिश्री राधालालजी महाराज आगे बढ गये और थादला जाकर आहार-पानी और औषध लेकर फिर लौटे और मुनिश्री की सेवा मे उपस्थित हुए।

इस प्रकार दोनो मुनियो के साहस के कारण दूसरे दिन मुनिश्री थांदला पधार गये। वहा श्री नाहरसिहजी बुंदेला का इलाज शुरू किया गया। धीरे-धीरे डेढ़ मास औषधि-सेवन करने के पश्चात् आप रोग-मुक्त हुए।

कोद मे विराजमान मुनिश्री मोतीलालजी महाराज को जब मुनिश्री की बीमारी के समाचार मिले तो उन्होंने उसी समय थांदला की ओर विहार कर दिया। रास्ते की तकलीफो की परवाह न करते हुए वे शीघ्र ही थादला पहुंच गये थे। मुनिश्री का स्वास्थ्यलाभ देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। मुनिश्री इस बार मृत्यु के मुह से ही बाहर निकले।

कमजोरी दूर होने पर मुनिश्री ने कोद की ओर विहार किया। मार्ग मे झीलों की बस्तिया थी। उनमें थोडा-थोड़ा समय ठहरते हुए और भीलों को धर्मोपदेश देते हुए आप कोद् पधारे। वहा के ठाकुर साहब ने आपका मधुर भाषण सुनकर श्रद्धा प्रकट की। पौष का महीना था। इसी समय श्रीचन्द जी विनायका ने चालीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा अगीकार की।

कोद से विहार करके बिड्वाल, कडोद, होते हुए धार पधार कर और वहा कुछ दिन ठहरकर नागदा, कानून, बिडवाल, बखतगढ आदि स्थानो को पवित्र करते हुए रतलाम पधारे। रतलाम से खाचरौद और फिर जावरा पहुंचे। यहा पहुंचकर सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ वातों पर विचार करने के लिए आपको पूज्यश्री से मिलने की आवश्यकता प्रतीत हुई। आप वहा से ब्यावर पधारे और पूज्यश्री के दर्शन कर प्रसन्न हुए। यहा आपने तीन वर्ष तक दक्षिण मे विचरने की आज्ञा प्राप्त की और साथ ही निवेदन किया कि अगर धर्मप्रचार की दृष्टि से वह क्षेत्र मुझे अनुकूल लगे तो तीन साल के बाद और भी आज्ञा देने की कृपा करे। पूज्यश्री ने आपकी प्रार्थना स्वीकार की।

ब्यावर में कुछ दिन ठहर कर आपने मालवा की ओर विहार किया। जब आप नीमच पहुचे तो उदयपुर के तथा कई अन्य स्थानो के श्रावक आपकी सेवा मे चातुर्मास की प्रार्थना करने आये। किन्तु पूज्यश्री जावरा मे चातुर्मास करने की आज्ञा दे चुके थे, अतएव सभी को निराश होना पड़ा।

उन्हीं दिनों मुनिश्री के पास खबर आई कि महासती तपस्विनी श्री उमाजी महाराज ने जावरा में सथारा कर लिया है और वे आपके दर्शन करना चाहती है। मुनिश्री जावरा पधारे। सथारा लम्बा हो गया। मुनिश्री, तपस्विनीजी को बार-बार शास्त्र सुनाते रहे। ५४ दिन बाद सथारा सीझ गया और महासतीजी का स्वर्गवास हो गया। मुनिश्री वहा से विहार करके ताल होते हुए फिर जावरा पधारे।

अठारहवां चातुर्मास

पूज्यश्री के आदेशानुसार मुनिश्री ने सवत् १९६६ का चातुमार्स जावरा में किया। जावरा के नवाब साहब ने भी मुनिश्री के उपदेशो का खूब लाभ लिया। सभी श्रेणी की जनता व्याख्यान मे उपस्थित होती थी।

जावरा में चातुर्मास समाप्त करके आप रतलाम और फिर पटलाद पधारे। उस समय पूज्यश्री रतलाम पधार गये थे अतः मुनिश्री ने फिर रतलाम आकर पूज्यश्री के दर्शन किये। कुछ दिन पूज्यश्री की सेवा मे रहकर आप पटलावद, राजगढ, तेडगाव, दिसाई, बिडवाल आदि क्षेत्रो मे विचरते हुए कोद और फिर नागदा पधार गये।

उन दिनो कोद तथा आसपास के गावो मे तडबन्दी हो रही थी। मुनिश्री के पधारने पर बहुत से गावो के लोग आपके दर्शनार्थ आये। मुनिश्री ने पारस्परिक प्रेम की आवश्यकता प्रदर्शित करते हुए प्रभावशाली उपदेश दिया और वैमनस्य दूर करने की प्रेरणा की। मुनिश्री के उपदेश-रूपी जल की वर्षा से लोगो के दिलों की कालिमा बह गई। अशान्ति की ज्वालाए बुझ गई। लोगो के हृदय शात और निस्ताप हो गये। सब भाई गले से गला लगाकर मिल गए। पार्टीबन्दी समाप्त हो गई। इसी सिलसिले मे आपको एक बार कोद पधारना पड़ा। वही सब पचो ने वैमनस्य दूर करने का फैसला किया।

जिस दिन पचो ने यह शुभ निश्चय किया उसी दिन कोद के प्रमुख सज्जन श्रीलालचदजी ने भी एक महान् और प्रशस्त निर्णय कर लिया। आपने दीक्षा लेने की इच्छा प्रदर्शित की और मुनिश्री से कुछ दिन और विराजने की प्रार्थना की। लालचदजी धनाढ्य तो थे ही मगर साथ ही उदार तथा गरीब-निवाज भी थे। गाव के सभी लोग उनका आदर करते थे। आपने यथासभव शीघ्र ही हजारो का लेन-देन निपटाया। जिसने जितना दिया उससे उतना ही लेकर चुकौता कर लिया। न किसी को दवाया, न किसी

को सताया, न किसी को धमकाया, और न किसी को लाल आख दिखाई। आपने दीक्षा लेने से पहले वहा की समस्त जनता को प्रीतिभोज दिया और दीक्षा लेकर हलके हो गये।

दीक्ष-प्रसग पर सभी आसपास के गावों के विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित हुए। भरपूर सम्पत्ति छोडकर तीव्र वैराग्य के साथ आपने दीक्षा अंगीकार की।

जब दीक्षा की विधि हो रही थी तो कोद के ठाकुर साहब के बडे कुंवर दीक्षा–स्थान मे बैठे-बैठे बीडी पीने लगे। मुनिश्री को यह अच्छा न लगा। महात्मा पुरुषों के निकट बड़े–छोटे, सधन–निर्धन का कोई भेद–भाव नही रहता। मुनिश्री को इस बात का भय भी नहीं था कि यह ठाकुर साहब के कुवर है। अतएव मुनिश्री ने कुवर से कहा–आप बडे आदमी के लडके कहलाते है। आपको धर्मसभा की सभ्यता का खयाल रखना चाहिए। बीडी पीना यहा की सभ्यता के विरुद्ध है।

कुवर ने शायद कल्पना भी नही की होगी कि यह अकिंचन साधु इतने तेजस्वी हो सकते है कि मुझ सरीखे को इस प्रकार टोके। वह एकबार अचकचा गये और कुछ लज्जित हुए। फिर बोले-'महाराज, यह तो जीवन की एक साधारण आवश्यकता है।'

मुनिश्री ने फरमाया-शारीरिक, राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से बीड़ी हानिकारक वस्तु है। आप जैसे लोगो को पीना शोभा नही देता। और अगर जीवन इतना गिर जाय कि बीडी पिये बिना काम नहीं चल सकता तो क्या ऐसे स्थानो पर भी उसे नही त्यागा जा सकता ? जीवन के लिए आवश्यक तो बहुत-सी वस्तुएं हैं मगर उन सबका क्या सभी जगह उपयोग किया जाता है ?'

कुंवर साहब ने उसी समय बीड़ी फैक दी। अत में उन्होंने महाराजश्री का आभार माना। महाराजश्री पर उनकी भक्ति हो गई।

कोद से विहार करके मुनिश्री धार और इन्दौर होते हुए देवास पधारे।

उन्नीसवां चातुर्मास

देवास से लौटकर मुनिश्री फिर इन्दौर पधारे और वि. स. १९६७ का चातुर्मास इन्दौर में किया। इन्दौर मध्य भारत का प्रधान केन्द्र है। होल्कर रियासत की राजधानी है और उसमे सम्पत्तिशाली तथा विद्वानो का वास है। इन्दौर मे मुनिश्री का व्याख्यान बाजार में होता था। हजारो श्रोता एकत्र होते थे। यहां आपके व्याख्यानो की धूम मच गई। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ३९ दिन का तप किया। पूर के दिन बहुत से कसाई भाई भी व्याख्यान सुनने आये। मुनिश्री ने उस दिन अहिंसा-धर्म पर प्रभावजनक भाषण दिया। मुसलमान कसाइयो पर भी आपके भाषण का अच्छा असर हुआ। एक कसाई ने चतुर्दशी को तथा दूसरे ने एकादशी को जीवहिंसा करने का त्याग किया। उस समय जीवदया के निमित्त लगभग छ. हजार का चंदा कुछ उत्साही भाइयो ने एकत्र किया।

एक रुपया का महादान

मुनिश्री के व्याख्यान मे एक भद्र सज्जन थे। उन्होंने भी बडे ध्यान से व्याख्यान सुना था। कहना चाहिए उनके कानों ने नही हृदय ने व्याख्यान सुना था और उनकी आत्मा ने उसका अनुमोदन किया था। उनके पास कुल पूजी १०) थी। वह उन रुपयो से प्रतिदिन मूगफली खरीद कर बेचते और जो

कुछ बचत होती उसी से अपना निर्वाह करते थे। मुनिश्री के प्रभावक प्रवचन से प्रेरित होकर उन्होने अपनी पूंजी में से एक रुपया देने की इच्छा प्रकट की। जहा हजारों की बात हो वहा एक रुपये की कौन पूछता है? श्रावको ने गरीब समझकर उनका रुपया नहीं लिया। वह दान रुपये का नही, भावना का दान था- हृदय का दान था। उस दान को स्वीकार न करने के कारण उन सज्ज्न को इतना दुःख हुआ कि वे अपना रोना न रोक सके।

सत पुरुष सुखी की ओर उतना नही जितना दु:खी की ओर देखते हैं। वह सज्ज्न रोने लगे तो मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य महोदय) की दृष्टि तत्काल उन पर जा पहुंची। मुनिश्री के पूछने पर उन्होंने रोने का कारण बतलाया। अपने मर्म की चोट खोलकर दिखलाई। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने महाराजश्री को सब वृत्तान्त निवेदन किया। महाराजश्री ने अपने भाषण मे उन सज्ज्न की सद्भावना की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। मुनिश्री ने फरमाया-'भाइयो! इनके हृदय की भावना को देखो। जीव-दया के निमित्त अपनी शक्ति से भी बढकर त्याग करने के लिए इन भाई को कितनी उत्कठा है? यह अपनी समस्त सम्पत्ति का दसवा भाग देने के लिए उत्सुक है। क्या आप लोगो में कोई ऐसा है जो इनके दान का मुकाबिला करता हो? कौन आगे आता है जो अपनी पूंजी का दसवा भाग त्यागने को तैयार हो? एक लखपति के लिए हजारों रुपयो का जो मूल्य है, उससे कहीं अधिक इन भाई के लिए एक रुपये का मूल्य है! ऐसी स्थिति मे इस त्याग को तुच्छ समझना अज्ञान है, अहकार है। करोडपति के लाखों और लखपति के हजारो के दान से भी बढकर यह दान है। आप सख्या का मूल्य समझते हैं मगर हृदय का मूल्य भी समझना चाहिए। इनकी व्याकुलता को देखो। त्याग की उच्च भावना का सत्कार करो। उन्हें निराश करना उचित नही। यह दान महादान है।'

श्रावको को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होने बड़े आदर और प्रेम के साथ उनका रुपया स्वीकार किया। उन्होने उसकी प्रशंसा की और अपनी बडी-बड़ी दान की हुई रकमों से भी उसे बड़ा दान समझा।

धर्मसंकट

'व्यापारी व्यापार में हानि-लाभ का विचार करता है, पर हे मुनियो! तुम व्यापारी की तरह हानि-लाभ के प्रश्न मे मत पडो। अपनी उद्देश्य-सिद्धि की ओर और कर्त्तव्य-पालन की ओर ही ध्यान रखो। लाभ हानि के द्वद्व मे न पड़ना सयम का मूल लक्षण है।

मुनियो! क्षमा रखने के साथ सुख-दु ख मे भी समान रहो। कोई तुम्हे वदना-नमस्कार करेगा, कोई भिखमंगा, मुफ्तखोर आदि कहकर तुम्हारा अपमान करेगा। इस प्रकार प्रशसक और निन्दक- दोनों प्रकार के मुनष्य तुम्हे मिलेगे। पर प्रशसा सुनकर सुख न मानना और निन्दा सुनकर दु.ख न मानना। ऐसे वाक्यों को अन्तरतम तक पहुचने ही न देना। पृथ्वी गाली देने वाले और अपने को क्षत-विक्षत करने वाले को भी आश्रय देती है; इसी प्रकार हे मुनियो! जो तुम्हे गाली देता हो उसका कल्याण करो। गाली देने वाला तुम्हे निर्मल बना रहा है। तुम्हारी साधना मे सहायक हो रहा है। ऐसा मानकर उसका भी कल्याण करो।

कपड़ा धोनेवाला धोबी अगर बिना पैसे कपड़ा धो दे तो प्रसन्नता होती है या अप्रसन्नता? ज्ञानी पुरुष गाली देने वाले को आत्मा का धोबी मानते है-निर्मल बनाने वाला।'

'मुनियो! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील बनो। पृथ्वी को कोई पूजता है, कोई लतियाता है, कोई सींचता है, कोई खोदता है, पर वह सबके प्रति समान है। वह गुण ही प्रकट करती है, अवगुण प्रकट नही करती। तुम भी पृथ्वी के समान समभावी बनो।'

जबतक आत्मा निन्दा और प्रशसा मे अतर समझता है, कहना चाहिए तब तक उसने परमात्मा को पहचाना ही नही है। जब निन्दात्मक और प्रशसात्मक बात सुनाई पडे तो हमें यही विचारना चाहिए-हे 'आत्मन्! तू निदा और प्रशंसा के भेद-भाव मे पडकर कबतक ससारभ्रमण करता रहेगा।'

हमारे चरितनायक के यह उद्‌गार ही प्रकट कर देते है कि उनके अन्तःकरण मे किस उच्च श्रेणी का समभाव होगा ? यह उद्‌गार जिह्वा की नही हृदय की वाणी है। मुनियो को उद्देश्य करके जो महान् आदर्श इन वाक्यो मे व्यक्त किया गया है वह पाण्डित्य का परिणाम नही, चिरकालीन जीवन-साधना का सहज सुफल है। मुनिश्री ने अपने साधु-जीवन में संयम की जो श्रेष्ठ साधना की थी, उसी के फल-स्वरूप उनके अन्तःकरण में यह अपूर्व समभाव आ गया था। उनके आगे निन्दा और प्रशसा मे कोई भेद नही रह गया था।

महापुरुषो के जीवन मे कभी-कभी बड़े विकट प्रसग उपस्थित हो जाते है। वे धर्म और अधर्म के द्वन्द्व से तो अनायास ही बच निकलते हैं मगर जहां धर्म का आदेश द्विमुखी-दो तरफ को होता है वहा मनीषी महापुरुष भी एक बार चक्कर मे पड जाते हैं। मुनिश्री के जीवन में इसी प्रकार का एक धर्मसकट उपस्थित हो गया।

रतलाम में स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की ओर से श्वे. स्था. जैन ट्रेनिग कॉलेज चल रहा था। जिस समय मुनिश्री का चौमासा इन्दौर मे था, रतलाम में प्लेग फैलने के कारण कॉलेज मे चार विद्यार्थी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए थे। उनके नाम थे-गोकुलचन्दजी, सोमचन्दजी, चुन्नीलालजी और मोहनलालजी। चारो विद्यार्थी मुनिश्री के पास आकर धर्म-चर्चा किया करते थे। उन्होने कई बार मुनिश्री से आजीवन ब्रह्मचर्य अथवा दीक्षा आदि के लिए नियम दिला देने की प्रार्थना की। उनमे से दो तो कभी पहले ही प्रतिज्ञा ले चुके थे। मुनिश्री ने चुन्नीलालजी को लक्ष्य करके कहा-'नियम लेना तो सरल है मगर उसे निभाना कठिन होता है। ब्रह्मचर्य आदि व्रत बडे अच्छे होते है। उनसे आत्मा का कल्याण होता है। किन्तु उन्हे अगीकार करने से पहले शांतचित्त होकर सोचना चाहिए कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी या नहीं ? आत्म-बल को जाचे बिना जोश में आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिए पीछे पछताना पड़ता है।

कॉलेज के नियम के अनुसार जो विद्यार्थी पूरी पढाई किये विना ही संस्था छोड़ दे उससे जितने दिन वह रहा हो उतने दिनो का पूरा खर्च वसूल किया जाता था। चारों विद्यार्थी दीक्षा लेने के उद्देश्य से कॉलेज छोडना चाहते थे मगर पूरा खर्च चुकाने मे असमर्थ थे। चार में से एक गोकुलचन्दजी ने मन्त्री से आज्ञा लेकर कॉलेज छोडा, फिर भी उनसे पूरा खर्च देने का तकाजा किया गया और अन्त में पूरा खर्च देना ही पड़ा।

इस घटना से दूसरे तीन छात्रो मे भय उत्पन्न हो गया और वे चुपचुप भाग निकलने की सोचने लगे। वे मुनिश्री के पास आये और आप से सलाह मांगने लगे। मुनिश्री ने कहा-जब तुम लोग सयम के मार्ग पर चलना चाहते हो तो पहले आत्मा को सबल बनाओ। यदि तुममे इतना भी साहस नहीं कि कॉलेज के अधिकारियो से अपनी भावना स्वष्ट रूप से कह सको तो सयम का पालन कैसे कर सकोगे ?

आत्मशुद्धि और सरलता सयम के मूलाधार है। इनका अभ्यास किये बिना शुद्ध चरित्र का पालन नहीं हो सकता। वेष धारण कर लेना मात्र चरित्र नही है।

मुनिश्री की यह बात सुनकर वे चुप तो हो गये मगर उन्होने अपना भाग जाने का इरादा नही बदला। आखिर एक दिन अवसर पा कर वे चल दिये। कॉलेज के अधिकारियो और जैन हितेच्छु, अखबार ने इसके लिए मुनिश्री को दोषी समझा और मुनिश्री की निन्दा करने लगे।

मगर निन्दा और प्रशसा को समान-भाव से ग्रहण करने का उपदेश देने वाले मुनिश्री 'आत्मा के धोबियो' की बात से तनिक भी विचलित नही हुए। उन्होने निन्दा या प्रशंसा की परवाह न करके सयम–पालन की दृढ़ता पर ही ध्यान दिया। सोचा– हे आत्मन्! अगर तू ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर धर्म से विचलित हो जायगा– असत्य भाषण करेगा या विश्वासघात करेगा तो तेरी क्या स्थिति होगी ? कामदेव जैसे श्रावक भी जब घोर मुसीबत पड़ने पर भी धर्म पर दृढ़ बने रहे तो क्या तू साधु होकर और उससे कम कष्ट आने पर भी विचलित हो जायगा ? यह तेरी कसौटी है। इस कसौटी पर तुझे खरा उतरना होगा। सारा संसार एक ओर हो जाय तो उसकी चिन्ता नही, तेरे लिए धर्म का–सत्य का बल ही पर्याप्त है। अगर तूने धर्म का सहारा न छोड़ा तो तमाम निन्दा, स्तुति के रूप मे परिणत हो जायगी। अगर धर्म छोड़ दिया तो फिर क्या रह जायगा ?

इस प्रकार विचार कर मुनिश्री ने अपनी निन्दा की चिन्ता न करके अपने सयम-धर्म की रक्षा की ही चिन्ता की। मगर जब इस घटना ने ऐसा रूप धारण किया कि उससे मुनि-वर्ग पर आरोप आने लगा और मुनि-पद की ही निन्दा होने की सभावना हुई तो आपको इस ओर ध्यान देना पड़ा। वे स्वय तो सब-कुछ सहन कर सकते थे मगर मुनियों पर उनके निमित्त से कोई आरोप लगे, यह बात उन्हें रुचिकर नही हुई। अभी तक आपके सामने व्यक्तिगत निदा और सयम का प्रश्न था मगर अब एक ओर सयम और दूसरी ओर मुनि-निन्दा के निराकरण की समस्या सामने आई। यह दूसरा धर्म-सकट था। इस सकट से बचने के लिए भी आपने सयम की उपेक्षा नही की।

मुनिश्री ने सोचा- 'इस घटना पर अगर इन्दौर श्रीसघ जाच-पडताल करके अपना निर्णय दे- और वह प्रकाशित हो जाय तो समाज के सामने सचाई प्रकट हो जायगी। फिर किसी को मुनियो पर आरोप लगाने का साहस भी नहीं होगा।' इस उद्देश्य से सघ-द्वारा घटना की जाच की गई और सचाई सामने आ गई। मुनिश्री निर्दोष थे और निर्दोष ही प्रमाणित हुए।

मुनिश्री ने अपनी निन्दा की तनिक भी चिन्ता न करते हुए अपने धर्म की रक्षा की। धन्य है ऐसे महात्मा जो ऐसे विकट प्रसग पर भी धर्म पर, सत्य पर, सयम पर अविचल रहकर ससार को बोध पाठ पढाते है। मुनिश्री एक वीरात्मा थे। उनके यह शब्द प्रेरक है कि–'मै कई बार कह चुका हू कि धर्म वीरों का होता है कायरों का नही। वीर–पुरुष अपनी रक्षा के लिए लालायित नही रहते, वरन् अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी दूसरों की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते है।' इस प्रकार की वाणी उच्चारने वाला क्या कभी अपनी रक्षा के लिए दूसरे को खतरे मे डालकर–विश्वासघात करके धर्म से विमुख हो सकता था ? कदापि नही। मुनिश्री की धर्म-दृढता का यह एक उज्ज्वल उदाहरण है।

इन्दौर मे आपने मराठी भाषा का अच्छा अभ्यास कर लिया। मरहठी महाभारत का आपने पारायण किया। साहित्य-सेवन मे ही आपका बहुत समय व्यतीत हुआ। चौमासे के पश्चात् आपने दक्षिण की ओर विहार किया।

दक्षिण की ओर

दक्षिण प्रान्त के भाइयों की बहुत समय से उधर विहार करने की प्रार्थना थी और मुनिश्री गगारामजी महाराज का भी आग्रह था। इसके अतिरिक्त इन्दौर-चातुर्मास मे श्रीचन्दनमलजी फिरोदिया तथा अन्य सद्गृहस्थो ने मुनिश्री से दक्षिण की ओर पधारने की पुन. प्रार्थना की थी। मुनिश्री का विचार भी उधर विहार करने का हो गया था और अपनी मर्यादाओ का ध्यान रखकर आपने दक्षिण की ओर विहार करने की प्रार्थना अगीकार कर ली थी।

इसी विश्वास के अनुसार इन्दौर से विहार करके मुनिश्री बडवाहा, सनावद, वोरगाव, आशीर्गढ बुरहानपुर आदि क्षेत्रो को पवित्र करते हुए फैजपुर पधारे।

क्या ठिकाना वे-ठिकानों का

जिन दिनो मुनिश्री ने इन्दौर से विहार किया और सनावद से आगे पहुचे, लगभग उन्ही दिनो भारतवर्ष मे एक सनसनी फैलाने वाली घटना घटी थी। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीयुत् खुदीराम बोस द्वारा गोली चलाये जाने के कारण सारे भारत मे तहलका मचा था। देश भर मे अशान्ति फैली हुई थी। पुलिस की चारो और दौड़ धूप थी। सरकार मे तहलका मचा था। सरकार को विशेषत· पुलिस अधिकारियो को प्रत्येक भारतीय खुदीराम ही दिखाई देता था। स्थानकवासी साधु दक्षिण प्रान्त के लिए नवीन थे। भिन्न प्रकार का वेष देखकर पुलिस मुनिश्री पर भी सन्देह करने लगी। सनावद-वोरगाव आदि के समीप जनता ने भी आपको सदिग्ध दृष्टि से देखना शुरू किया। अतएव मुनिश्री को स्थान और आहार मिलने मे भी कठिनाई होने लगी। मगर मुनिश्री बिना किसी कष्ट की परवाह किये आगे ही बढते चले। वे अपने निश्चय पर अटल रहे। विहार जारी रहा। आप जहा जाते वहां पुलिस-कर्मचारी आपका नाम ठिकाना पूछते। मुनिश्री के पास बताने को नाम था मगर ठिकाना वे त्याग चुके थे। शायद ऐसा ही कुछ उत्तर देते होगे- 'ठिकाना पूछते हो, क्या ठिकाना वे-ठिकानो का।' अर्थात, तुम मेरा ठिकाना पूछते हो परन्तु हम तो बे ठिकाना अर्थात् अनगार है-हमारा कोई ठिकाना ही नही है।

संत समागम

फैजपुर के आस-पास तारनपन्थी दिगम्बर जैनो पर आपका बहुत प्रभाव पडा। फैजपुर से विहार करके मुनिश्री भुसावल पधारे। यहा श्री धर्मदास जी महाराज के सम्प्रदाय के मुनिश्री चम्पालालजी महाराज का, जिन्होने बाद में उस सम्प्रदाय के आचार्यपद को सुशोभित किया, समागम हुआ। आप एक प्रतिष्ठित साधु थे। दक्षिण मे आपका बहुत प्रभाव था। दोनो मुनिश्री आपस मे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

पत्रकार की अप्रामाणिकता

भारतीय व्यापारी जैसे अप्रामाणिकता के अपराधी बतलाये जाते हैं, उसी प्रकार भारतीय पत्रकार भी इस अपराध से बरी नही किये जा सकते। वास्तव में समाचार पत्रो का स्थान बहुत ऊचा है। देश और समाज की उन्नति में वे सबसे ज्यादा सहायक हो सकते हैं। जो पत्र जनहित की भावना से या किसी ऊचे उद्देश्य से प्रेरित होकर जन्म लेते और चलते है उनका स्थान समाज में बड़ा उच्च है। परन्तु खेद है कि अधिकाश भारतीय समाचार पत्रो के सचालक अपने उत्तरदायित्व का ठीक तरह

निर्वाह न करके अपने पत्र को स्वार्थ साधन का उपाय बना लेते है। राष्ट्रीय जागरण के इस युग मे, जब पत्रकार–कला का पर्याप्त विकास हो चुका है, पत्रो की यह दशा है तो आज से लगभग पैतीस वर्ष पहले का कहना ही क्या है ? पडित जवाहरलाल नेहरू कहते है–देश मे जिस वक्त जिन्दगी और मौत की लडाई चल रही थी उस समय हमारे समाचार–पत्र सरकारी विज्ञापन छापने मे लगे थे। .... इस युद्ध मे सब से ज्यादा मुनाफा या तो चोर बाजार वालो ने कमाया या फिर उनसे उतर कर अखबार वालों ने ।.... हमारे पत्रों का स्तर (Standard) विलायती पत्रो की तुलना मे चौथे–पाचवें ग्रेड का है।' श्रीयुत विश्वंभरनाथ विश्ववाणी-सपादक ठीक ही कहते है–'आज सती पत्रकारी कुलटा व्यावसायिकता के पंजे में फसी छटपटा रही है।...आज पत्रकारी के क्षेत्र में लोग रोजी की तलाश में आते हैं, सेवा की भावना से नहीं। देश की आजादी नही, कुटुम्ब का पालन करना उनका लक्ष्य होता है।' श्री रामावतार का यह कथन भी गलत नही है कि–'अधिकांश देशो के समाचारपत्रो पर कुछ मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार होता है जो अपने सकुचित स्वार्थ के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं।'

जब मुट्ठी भर लोगों के हाथ मे रहनेवाले समाचारपत्रों का यह हाल है तो आज से पैंतीस वर्ष पहले के, एक ही व्यक्ति की मालिकी के समाचार-पत्र का क्या हाल होना चाहिए ? पाठक स्वय विचार करे। इस प्रकार के समाचारपत्र चादी के टुकडो पर नाचते हैं। चादी के टुकडे न पाकर वे चाहे जिस पर कीचड उछाल सकते हैं और पाकेट गर्म होते ही उसकी प्रशसा के पुल भी बांधते देर नहीं करते। वास्तव में समाचारपत्रों की यह दशा बडी ही दयनीय है।

कॉलेज के विद्यार्थियों के सबध मे इन्दौर-सघ के निर्णय के पश्चात् भी और मुनिश्री पर लगाये गये आरोप असत्य प्रमाणित हो जाने पर भी 'जैन समाचार' नामक समाचार-पत्र ने किसी आन्तरिक उद्देश्य से फिर मुनिश्री के विरुद्ध एक लेख प्रकाशित किया।

पुनः प्रतिवाद

'जैन समाचार' का यह लेख देखकर मुनिश्री चम्पालालजी महाराज और उनके साथी मुनिश्री केसरीमल जी महाराज को बड़ा खेद हुआ। आखिर उन्होंने इस आरोप से सदा के लिए जड से उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से भुसावल मे एक बृहत् सभा का आयोजन किया। उसमे कॉलेज के अधिकारियों को; 'जैन-हितेच्छु' व 'जैन-समाचार' के सम्पादक श्री वाडीलालशाह को और कॉलेज के भागे हुए तीनो विद्यार्थियो को भी बुलाया गया था। वाड़ीलाल भाई उपस्थित न हुए और न कॉलेज के मत्री ही स्वय आ सके। तीनो विद्यार्थियो ने सारा वृत्तान्त सबके समक्ष कह सुनाया[१]। अन्तत हुआ वही जो होना उचित था। मुनिश्री फिर निर्दोष घोषित किये गये।

संबद्ध व्यक्तियो को भविष्य मे निराधार बाते न फैलाने की चेतावनी दे दी गई।

इतना सब हो जाने के पश्चात् भी वाड़ी भाई चुप न रहे। उन्होने फिर भी मुनिश्री के विरुद्ध लेख छाप दिया। तब अ. भा. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस ने हैदराबाद में घटना की जाच की और मुनिश्री को फिर निर्दोष घोषित किया।

कुछ दिन भुसावल में बिराजकर मुनिश्री ने अहमदनगर की ओर विहार किया। दक्षिण मे पदार्पण करते ही आपकी उस प्रान्त में प्रसिद्धि फैलने लगी।

---

१. भुसावल का पंचनामा छप गया है।

बीसवां चातुर्मास

वि. स. १९६८ का चातुर्मास मुनिश्री ने अहमदनगर मे व्यतीत किया। चातुर्मास आरभ होने के कुछ ही दिनो वाद अहमदनगर मे प्लेग फैल गया। अतएव मुनिश्री ने नगर के वाहर के एक बंगले मे चातुर्मास पूर्ण किया। यहा से आहार-पानी लाने के लिए मुनियो को कभी-कभी डेढ कोस की दूरी तक जाना पडता था।

मुनिश्री का भाषण सुनने के लिए हजारो की भीड इकट्ठी हो जाती थी। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज तथा मुनिश्री राधालालजी महाराज ने ४९-४९ दिन का तप किया। पूर के दिन करीब दस हजार रुपयो का जीवदया के निमित्त दान किया गया।

वाड़ीलाल भाई की क्षमायाचना

श्रीयुत् वाडीलाल शाह चातुर्मास से पहले यहा मुनिश्री की सेवा मे वालमुकुन्दजी, चदनमलजी मूथा सतारा वाले के साथ उपस्थित हुए। मुनिश्री ने व्याख्यान मे फरमाया- दुनिया में देखादेखी बहुत चलती है। किसी ने कोई वात गढ़कर कह दी और दूसरे लोग ग्रामोफोन की तरह विना सोचे-समझे उसे दोहराने लगते है। ग्रामोफोनअपनी ओर से कुछ मिलाता नही मगर यह मानव ग्रामोफोन अपनी ओर से नमक-मिर्च मिलाकर उस वात को अतिरंजित कर डालते है। वहुत कम व्यक्ति सचाई का पालन करते है। बुद्धिमान पुरुष पहले सत्यासत्य का निर्णय करता है और फिर कोई बात मुख से बाहर निकालता है। वाडीभाई एक पत्रकार है। पत्रकार संसार का पथ-प्रदर्शक होता है। उस पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। उसे तो हर्गिज असत्य को आश्रय नही देना चाहिए। मुझे वाड़ीलाल भाई के प्रति तनिक भी द्वेष नही है। मै चाहता हू कि वाडीलाल भाई भविष्य मे सत्य के पथ-प्रदर्शक बनें और उनकी आत्मा का कल्याण हो।

इसी सिलसिले मे मुनिश्री ने एक पीर का दृष्टान्त फरमाया जो रोचक होने के साथ शिक्षाप्रद भी है। उसका सारांश यह था-

किसी गाव मे कुछ मुल्लाओ ने मिलकर एक कब्र को पीर साहब घोषित कर दिया। उन्होंने लोगो मे फैला दिया-'ये जिदा पीर साहब है। रोज रात को अपनी करामाते दिखलाते हैं' कभी कोई कहता- 'अभी हमने देखा है अपनी आखो से, आज पीर साहब घोडे पर सवार होकर जा रहे थे।' दूसरे दिन फिर कोई नई बात ईजाद करता-'आज रात मैने पीर साहब को गाना गाते सुना था।' इस प्रकार नित्य नई बाते सुनते-सुनते लोगो का विश्वास जमने लगा। पीर साहब की मनौती शुरू हो गई और मुल्लाओं को आमदनी होने लगी। लोग बड़ी भक्ति से पीर साहब को तरह-तरह की चीजे भेंट करते और सुबह वहा उन चीजो को न पाकर समझते-पीर साहब ने मजूर करली। बात फैलते-फैलते बादशाह के दरबार तक जा पहुची। मुल्ला वहा भी पीर साहब की तारीफ फैला आये। बादशाह ने वजीर से कहा- चलो, एक दिन हम लोग भी पीर साहब के दर्शन करे।

वजीर चतुर था। वह मुल्लो की चालाकी समझता था। मगर यो कहने से बाहशाह को यकीन नही आएगा, यह उसे बखूबी मालूम था। अतः उसने एक युक्ति सोची। वजीर का एक सात-आठ वर्ष का लडका था। वजीर ने उसके पैर के नाप के बहुत खूबसूरत और कीमती जूते तैयार करवाए। मखमल

के ऊपर बढिया सलमा-सितारे का काम किया हुआ था। बीच बीच मे असली हीरा-पन्ना-जवाहरात वगैरह जडवाये गये थे। कहते है- एक जूते की कीमत सवा लाख रुपया थी।

एक दिन पीर वाली कब्र पर मेला लगा। सैकडो औरते और मर्द चढावे के लिए पहुंचे। उसी दिन बादशाह भी वजीर के साथ वहां गया। रात होने पर वापस लौटते समय वजीर ने अपने लड़के का एक जूता कब्र के पास गिरा दिया।

सुबह होते ही पीर साहब की धूम मच गई। इतनी बेशकीमती जूती भला और किसकी हो सकती है ? एक ने कहा-'साहब, रात को खुद पीर साहब तशरीफ लाये थे।' दूसरे ने ताईद करते हुए कहा- 'बिलकुल सही फरमाते हैं आप। कपडा हिलता हुआ मैंने भी देखा था।' तब तीसरे जनाब बोले- 'अजी जूते उतारते तो मैंने भी देखा है। और सबूत इसका यह है कि वे अपनी एक जूती छोड गये है।'

मुल्लों को जूती पाकर इतनी खुशी हुई जितनी शायद पीरसाहब को पाकर भी न होती। जूती लेकर वे बादशाह के दरबार मे हाजिर हुए। बादशाह को अब पूरा-पूरा यकीन हो गया कि जूती पीर साहब की ही है। उसने और उसके दरबारियो ने बारी-बारी से अपने-अपने सिर पर जूती रखी। पीर साहब की तारीफ हो ही रही थी कि वजीर वहा आ पहुचे।

बादशाह ने बड़ी खुशी के साथ जूती की बात वजीर को सुनाई। वजीर ने धीरे-से मुसकरा कर कहा- हुजूर की मर्ज़ी, जो चाहे समझें, मगर यह जूती मेरे लडके की है। सबूत में उसने दूसरी जूती पेश कर दी। बादशाह अपनी बेवकूफी पर शर्मिन्दा हुआ और मुल्ले ने अपना रास्ता नापा।

यह एक दृष्टात है। इसका अर्थ इतना ही है कि निराधार और असत्य आतें बढ़-बढ़ कर फैलती है। मुल्लों के प्रपच के कारण बादशाह को पश्चात्ताप करना पडा और जूती सिर पर उठानी पड़ी। इसी प्रकार स्वार्थी लोगो के प्रपच में भले आदमी फस जाते है और फिर उन्हें पश्चात्ताप करना पडता है। यह व्याख्यान सुन कर श्री वाडीलाल भाई ने अपने लेखो के लिए मुनिश्री से क्षमायाचना की। सघ में हर्ष छा गया।

इस चातुर्मास में मुनिश्री ने मरहठी भाषा का अभ्यास काफी बढ़ा लिया था। सत तुकाराम के बहुत-से अभंग तो आपको कठस्थ हो गए थे। आपका मराठी भाषा का ज्ञान अल्पकाल मे ही काफी अच्छा हो गया।

धर्म-बोध

स्था. जैन कान्फ्रेस के वर्तमान अध्यक्ष, प्रसिद्ध समाज-नेता और देशसेवक श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया और श्री माणिकचन्दजी मूथा उन्ही दिनो फर्ग्यूसन कॉलेज पूना से वकालत पास करके आये थे। यह दोनों सज्जन जैन कुल में ही उत्पन्न हुए थे मगर अगरेजी शिक्षा का रग उन पर गहरा-सा चढ गया था। उनके विचार मे जैन धर्म अकिचन और सारहीन था। वकालत पास करके वे अहमदनगर आये और मुनिश्री के सम्पर्क मे आये। मुनिश्री से वार्त्तालाप करके वे आपकी ओर आकर्षित हो गये। मुनिश्री ने उन्हे सूत्रकृताग सूत्र का प्रथम अध्ययन सटीक सुनाना आरम्भ किया। बीच-बीच मे शका-समाधान तो चलता ही था। मुनिश्री इतने सुन्दर ढग से समाधान करते थे कि शकाकार चकित और आनन्दित हो जाते थे। इस कारण दोनो नवयुवक मध्याह्न मे और दूसरे समय भी आने लगे। इतने सम्पर्क

के बाद जैनधर्म के विषय में उनकी काफी अच्छी जानकारी हो गई, मुनश्री ने उनके चित्त मे धर्मश्रद्धा ऐसी दृढ़ कर दी थी कि वे धर्मश्रद्धालु और समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता भी बन सके। मुनिश्री ने फिरोदियाजी जैसे कई रत्नो को खोने से बचाया है।

कुन्दनमलजी फिरोदिया के साथ अहमदनगर के प्रसिद्ध वकील बाला साहब भी मुनिश्री से वार्त्तालाप करने आया करते थे। धर्म-संबधी उनकी शंकाएं बड़ी गंभीर होती थीं मगर मुनिश्री का समाधान उनसे भी अधिक गभीर और तात्त्विक होता था। वकील साहब मुनिश्री की मार्मिक विवेचना सुनकर बड़े आह्लादित होते थे।

मुनिश्री की संगति का बाला साहब पर स्थायी प्रभाव पडा। आप सिर्फ तेंतीस वर्ष की आयु मे शरीर छोड़ गये। जीवन के अन्तिम समय मे आपने अपनी पत्नी के लिए उसकी राय से सिर्फ पच्चीस रुपये मासिक खर्च के लिए नियत किये और अपनी दो-तीन लाख की सम्पत्ति अनाथरक्षा, ज्ञान-प्रचार आदि शुभ कार्यो के लिए दान कर गये। आपने पत्नी से कहा था-तुम्हारी उम्र अभी अधिक नही है। पास मे सम्पत्ति होगी तो वह अनर्थजनक हो सकती है। अत मै अपनी उपार्जित सम्पत्ति अपने सामने ही दान कर देना चाहता हूँ।

इस प्रकार साधारण जनता मे और विद्वान् वर्ग में धर्म के प्रति प्रीति जगा कर चातुर्मास समाप्त होते ही मुनिश्री ने विहार कर दिया और घोड नदी तथा मछर होते हुए आप महाराज शिवाजी की जन्मभूमि जुन्नेर पधारे।

संस्कृत-शिक्षा

स्थानकवासी सप्रदाय में उस समय तक सस्कृत भाषा का पठनपाठन बहुत कम होता था। व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पाण्डित्य प्राप्त करने की ओर किसी की रुचि नहीं थी। यही नही, कई पुराने विचारों के लोग तो सस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को यह अच्छा न लगा। उनकी दृष्टि मे मौलिकता थी। रूढ़ सस्कारों के नीचे दबा रहना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। सयम की मर्यादाओ का वे कट्टरता के साथ पालन करते थे। मगर निराधार कुरूढ़ियों के प्रति उनके हृदय मे कोई आदर न था। अपनी इसी दृष्टि के कारण उन्होने नवयुग की सृष्टि की और जनता का विवेक जागृत करके उसे प्रकाश प्रदान किया है।

मुनिश्री स्थानकवासी सम्प्रदाय मे समर्थ विद्वान् देखना चाहते थे। अतएव सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्य मुनिश्री घासीलालजी महाराज और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को सस्कृत व्याकरण पढाने का निश्चय किया।

वैतनिक पण्डित

सस्कृत पढ़ाने का निश्चय कर लेने पर एक कठिनाई सामने आई। उस समय स्थानकवासी समाज में कोई साधु या श्रावक ऐसा न नजर आया जो इन मुनियों को नियममित रूप से पढा सके। वेतन देकर पण्डित नियुक्त करने मे बहुत लोगो को आपत्ति थी। उनका खयाल था-'अनपढ़ रह जाना अच्छा है मगर वेतन देकर गृहस्थ विद्वान् से पढना अच्छा नहीं है।' मुनिश्री अपने भाषणो मे इस विषय पर भी प्रकाश फैका करते थे।

एक बार अहमदनगर के कुछ प्रधान श्रावकों ने मुनिश्री के सामने यही प्रश्न रखा था। उन्होने पूछा-'त्यागियों को गृहस्थो से पढ़ना चाहिये या नही ? और साधु के निमित्त वैतनिक पण्डित रखने से मुनियो को दोष लगता है या नही ?'

मुनिश्री यह मानते थे कि जो व्यक्ति साधु के आचार को पूर्ण रूप से भली-भाति नही जानता वह उसका समीचीन रूप से पालन नही कर सकता। अपने आचार को 'भली-भाति समझने वाला ही आचार का पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव मे साधुता की शोभा भी नही है। समाज के उत्थान के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त जयतारण आदि के शास्त्रार्थो के समय वे सस्कृत-ज्ञान का महत्त्व भली-भाति समझ चुके थे। उस समय मुनिश्री को सस्कृत भाषा का ज्ञान था इसी कारण उन्हे उतनी शानदार विजय मिल सकी थी। सस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव मे विद्वानो के समक्ष कैसी हास्यास्पद स्थिति हो जाती है, यह बात वे तेरहपथी साधु फौजमलजी की दशा देखकर अच्छी तरह समझ चुके थे। अपने धर्म की रक्षा करने के लिए प्रतिवादियो का मुकाबिला करने के लिए संस्कृत भाषा की जानकारी अनिवार्य है।

श्रावको के प्रश्न का उत्तर मुनिश्री ने व्याख्यान मे देना ही उचित समझा। दूसरे दिन आपने व्याख्यान में फरमाया-किसी सभ्य और समझदार गृहस्थ के एक पुत्र था। पिता ने मरते समय उससे कहा- बेटा, तुम्हारे हित के लिए मै जो-कुछ कर सकता था, कर चुका। अब मैं सदा के लिए विदा होता हू। अतिम समय में एक शिक्षा और दिये जाता हू। वह यह है- 'तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना।' इतना कहने के बाद पिता की मृत्यु हो गई।

महाकवि कालिदास ने कहा है-'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।' मनुष्य की दशा सदैव बदलती रहती है। स्थिति कभी अच्छी और कभी खराब हो जाती है। बड़े-बडे लखपति क्षणभर मे कगाल हो जाते है और कगालो को लखपति होते देर नही लगती। उस लडके की स्थिति भी धीरे-धीरे गिरती गई। आखिर एक दिन वह आ पहुँचा कि ऋण लिये बिना कोई चारा न रहा। मगर उसे अपने पिता के अतिम शब्द याद आ गये कि उन्होने ऋण लेने का निषेध किया था। वह एक क्षण के लिए सहम गया। पिताजी का अंतिम आदेश वह कैसे भग करे ? परन्तु ऋण न लेने का नतीजा प्राणो का विसर्जन करना था। अगर वह ऋण नही लेता तो भूखा रहना होगा और प्राण त्यागने होगे। मगर यह भी वह कैसे मजूर कर सकता है। पिता ने भूखे न मरने का भी तो आदेश दिया है। विचित्र सकट है। एक ओर कुआ और दूसरी ओर खाई। इधर भी पिता की आज्ञा का भग और उधर भी। एक बार लड़का किकर्त्तव्य-विमूढ हो गया।

इस प्रकार की उलझन के समय अतर्नाद सहायक होता है। शान्त चित्त से विचार करने पर आत्मा ऐसी सुन्दर सलाह देती है कि दूसरा कोई शायद ही दे सके। उस लडके ने चित्त स्वस्थ करके विचार किया- इन परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली दोनो आज्ञाओ का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करना है। ऋण लेने से जीवन का सुख नष्ट हो जाता है और भूखो मरने से जीवन ही नष्ट हो जाता है तो जीवन के सुख की बात दूर ही रही। अतएव ऐसी परिस्थिति मे थोड़ा ऋण लेकर जीवन कायम रखना ही श्रेयस्कर है। उसके बाद कठिन परिश्रम करके ऋण को उतार दूगा और तब पिताजी के आदेश का भली-भाति पालन हो सकेगा। यह सोचकर उसने थोडा ऋण लेकर आत्मघात का भयकर अनर्थ बचा लिया और थोड़े दिनो मे ऋण भी चुका दिया।

भाइयो! इस लडके के मामले का फैसला आपके हाथ में दिया जाय तो आप क्या फैसला करेगे ? उस लड़के का भूखों मर जाना पसद करेगे ? क्या आप उसके निर्णय को अनुचित कह सकते है ?अगर आप थोडा-सा विचार करेगे तो मालूम होगा कि उस लडके ने उचित ही निर्णय किया।

यही बात गृहस्थ से साधुओ के अध्ययन के विषय मे समझनी चाहिए। यह ठीक है कि साधु को गृहस्थ से कोई काम नही लेना चाहिए; मगर क्या आपके धर्म-गुरुओ को मूर्ख ही बना रहना चाहिए ? क्या उन्हे धर्म पर होने वाले मिथ्या आरोपो का निवारण करने मे समर्थ नही बनना चाहिए ? शास्त्रो मे ज्ञान की महिमा का बखान निष्कारण नहीं किया गया। दशवैकालिक सूत्र में कहा है-

अन्नाणी किं काही किंवा नाही सेयपावकं।

अर्थात्-अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा ? वह भले-बुरे को- कल्याण और अकल्याण को, धर्म और अधर्म को क्या खाक समझेगा ?

अध्ययन और अध्यापन कोई सावद्य कार्य नही है। मर्यादा में रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाय तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुम कम दोष है। फिर प्रायश्चित द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान् ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। मगर जैसे भूखों मर जाने की अपेक्षा थोड़ा ऋण लेकर जीवन कायम रखना लड़के का कर्त्तव्य था उसी प्रकार विद्वान् होना और यथोचित प्रायश्चित लेकर शुद्धि कर लेना साधुओं का कर्त्तव्य है। आप स्मरण रखे। नवीन युग, जो हमारे-आपके सामने आया है उसकी विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिए अज्ञान का निवारण करना सर्वप्रथम आवश्यक है।

इस भाषण से बहुत–से लोगो को सतोष हुआ। मुनिश्री तो अपने दोनो शिष्यों को पढाने का निश्चय कर ही चुके थे। तदनुसार पढ़ाई चल भी रही थी। दोनो मुनि परिश्रम के साथ अभ्यास करने लगे।

इक्कीसवां चातुर्मास

जुन्नेर से विहार करके मुनिश्री अनेक स्थानों मे विचरे। जगह-जगह धर्म प्रचार करते हुए चातुर्मास समीप आने पर फिर जुन्नेर पधार गए। सवत् १९६९ का चातुर्मास आपने जुन्नेर में ही किया।

जुन्नेर में स्थानकवासी साधुओ का यह पहला चातुर्मास था। वहां चातुर्मास करके आपने एक नया क्षेत्र खोल दिया।

जुन्नेर के इलाके में श्रावकों के दो दल हो रहे थे। मुनिश्री के पधारने से दलबन्दी मिट गई और एकता तथा प्रेम स्थापित हो गया।

आपके लिए यह क्षेत्र एकदम नूतन था फिर भी सैकड़ो की सख्या में श्रोता एकत्र होते थे। बहुत-से राजकर्मचारी भी लाभ उठाते थे। वहा के तहसीलदार तो आपके परम-भक्त हो गये थे।

इस चातुर्मास में मुनि श्री मोतीलालजी महाराज ने ३३ दिन का उपवास किया। पूर के दिन जीवदया तथा दूसरे धार्मिक कार्य हुए।

इस चातुर्मास मे मुनिश्री ने स्वयं भी संस्कृत भाषा का विशेष अभ्यास किया।

जुन्नेर का चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री मछर होते हुए खेड पधारे। यहा से चीचवड आदि स्थानो को पवित्र करते हुए आप पूना पधार गये। पूना दक्षिण का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र है। आपका व्याख्यान सुनने के लिए पूना में बहुत बडी सख्या एकत्र होने लगी। जैनेतर लोगो पर भी आपके उपदेश का ऐसा असर पडा कि वे भी चातुर्मास की प्रार्थना करने लगे। उन्होने आग्रह करते हुए कहा-'आप इस वर्ष पूना को ही पुनीत बनाइए। दर्शनार्थ आने वाले भाइयो की समस्त व्यवस्था का भार हम उठाएगे।' मगर पूना बहुत बडा शहर है और वहां साधुओं को कई प्रकार की असुविधाए थी। अतएव पूना-निवासियो को निराश होना पड़ा।

पूना से विहार करके विचरते हुए आप चींचवड़ पधारे। यहा श्रीयुत वक्तावरमलजी पोरवाड ने बडे वैराग्य से फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को दीक्षा अगीकार की। उस समय आपकी आयु २४ वर्ष की थी। आप कष्टसहिष्णु और सयमशील है। जीवन सेवामय है। अतिम दिनो तक आपने पूज्यश्री की जो अनवरत सेवा की है वह सभी के लिए आदर्श है।

चींचवड से विहार करके मुनिश्री मछर, नारायणगाव, बोरी आदि मे धर्म जागृति करते हुए घोडनदी पधारे।

बाईसवां चातुर्मास

मुनिश्री ने सवत् १९७० का चातुर्मास घोडनदी मे किया। आप नौ ठाणों से घोड़नदी मे विराजमान हुए। यहा भी मुनिश्री मोतीलाल जी महाराज ने लम्बी तपस्या की। पूर के दिन जीवदया के निमित्त बहुत-सा दान श्रावको ने दिया।

नजर का भ्रम

चौमासे में एक बार मुनिश्री को बुखार आ गया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मुनिश्री का शरीर गौरवर्ण और सुन्दर था। स्त्रिया स्वभाव से भोली होती है। कहने लगीं-'महाराज साहब! आपको नजर लग गई है। आप का शरीर देखकर किसी औरत ने नजर लगा दी है। बात बिल्कुल सही है। आपको विश्वास न हो तो गिरधारीलालजी से पूछ लीजिए।'

गिरधारीलालजी नामक सज्जन पास ही खड़े थे। उनके पास एक मोहरा था। जब किसी को ज्वर हो आता या ऐसी ही कोई बीमारी होती तो औरते उसे गिरधारीलालजी के पास ले आती। गिरधारीलालजी अपने मोहरे को पानी में रखते और उस पर अगूठा रखकर उसे उठाते। अगर मोहरा अगूठे के साथ उठ जाता तो कहते- इसे नजर लग गई है। देखो, मोहरा उठ रहा है। स्त्रियो को मोहरा उठते ही विश्वास हो जाता था।

स्त्रियो ने उसी समय गिरधारीलालजी को मोहरा लाने के लिए कहा। मोहरा वे ले आये। उठाने की क्रिया की तो मोहरा ऊपर उठ आया। सभी स्त्रियो को विश्वास हो गया कि महाराज को नजर लग गई है। मगर महाराज चकित थे। उन्हे यह तो विश्वास था कि नजर नामक कोई वस्तु नही होती, मगर मोहरे के उठने की बात उनकी समझ मे न आई।

मुनिश्री मोहरा उठने का मर्म समझना चाहते थे। जब सब लोग चले गए तो आपने मुनिश्री गणेशीलालजी म. से मोहरा सरीखा एक पत्थर मगवाया। उसे पानी में रखकर अंगूठे से दबाया। हाथ के साथ ही साथ पत्थर भी ऊचा उठ आया।

मुनिश्री ने दूसरे दिन बाइयों को भलीभांति समझाया और अपने हाथ से मोहरा उठाकर उनका भ्रम दूर कर दिया। आपने बाइयो को समझाया- 'भोली बहिनो! पानी में रखकर इस प्रकार दबाने से मोहरा अपने-आप उठ आता है। इसमें मंत्र-तत्र या और कोई नजर आदि करामात नही है। आप अकारण ही झूठी बातो पर विश्वास करने लगती है। वास्तव मे नजर नाम की कोई चीज नही है। यह तो कोरा बहम है। इस बहम मे पड़कर तुम अपनी धर्मश्रद्धा से च्युत न होओ। अपने किये कर्मो के सिवाय कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। धर्म पर श्रद्धा दृढ रखो। फिर देवी-देवता, जादू-टोना आदि किसी से डरने की आवश्यकता नहीं।'

मुनिश्री के व्याख्यान से बहुत-से भाइयो और बहुत-सी बाइयों का भ्रम भग हो गया।

मुनिश्री के इस उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। गुलाबचदजी नामक एक सज्जन की पत्नी को भूत आता था। वे एक दिन एक मोटा और मजबूत-सा डडा लेकर अपनी पत्नी के सामने जमकर बैठ गये। कहने लगे-'आज भूत आया और मैंने इस डडे से उसका स्वागत किया! चाहे कुछ भी हो, तुम्हारी खोपडी फूट जाय तो फूट जाय मगर मै भूत को बिना मारे नही छोडूंगा। कहने की आवश्यकता नही कि डडे के डर से भूत भाग गया और फिर कभी उनकी पत्नी की ओर उसने नही झाका।

लासणगाव के एक भाई चतुर्भुजजी थे। उन्होने एक आप-बीता किस्सा सुनाया। उनकी पत्नी को भूत आया करता था। जब उसे भूत आता तो एक नाइन बुलाई जाती थी। नाइन भूताविष्ट स्त्री को एक कमरे मे बद कर लेती और हाथ मे पत्थर लेकर धमकाती-'भाग, भाग, नहीं तो तेरा सिर फोडती हू।' सिर फूटने के भय से भूत थोडी ही देर में भाग जाता था। कुछ दिनो तक यही हाल रहा। एक दिन चतुर्भुजजी ने किवाड में छेद करके सारी घटना देखी। पत्थर का महामत्र देखकर उन्होने भी भूत भगाने की कला सीख ली। अब भूत आने पर नाइन की आवश्यकता नही रही। चतुर्भुजजी स्वय उक्त विधि से भूत भगाने लगे। कुछ दिनो बाद भूत ने पिड छोड़ दिया।

इस प्रकार की अनेक घटनायें मनोभावना से हुआ करती है। मुनिश्री के उपदेश से लोगों ने यह सत्य समझ लिया।

घोड़नदी का चौमासा समाप्त करके मुनिश्री जामगांव, अहमदनगर, अम्बोरी, सोनई आदि स्थानों को पवित्र करते हुए फिर जामगांव पधारे।

तेईसवां चातुर्मास

वि. स. १९७१ का चातुर्मास जामगाव मे हुआ। यह स्थान अहमदनगर से आठ कोस दूर है। अध्ययन और धर्मध्यान की सुविधा देखकर मुनिश्री ने छोटे ग्राम में चौमासा करना ही उपयुक्त समझा। फिर भी मुनिश्री की प्रसिद्धि, प्रतिभाशालिता और तेजस्विता के कारण यहां भी काफी भीड़ होने लगी।

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने यहा ३४ दिन की तपस्या की। पूर के दिन श्रावको की ओर से दान आदि अनेक शुभ कार्य किये गये।

सेनापति बापट

जामगांव चौमासे से पहले मुनिश्री एक बार पारनेर पधारे। एस. डी. ओ. प्रभृति बडे-बड़े राज्याधिकारी मुनिश्री का व्याख्यान सुनने तो आते ही थे, पर उनमे एक विशिष्ट सज्जन थे- सेनापति बापट। बापट कट्टर देशभक्त और बृटिश शासन के घोर विरोधी थे। सरकार उनसे सदैव सतर्क रहती थी। खुफिया और दूसरी पुलिस हरदम छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। उन पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी।

विद्यार्थी-अवस्था में वे बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। आई. सी. एस. के लिए वे परीक्षा में बैठे और सर्वप्रथम आये। नौकरशाही रूपी मशीन का पुर्जा बनने के लिए वे इंग्लैण्ड भेजे गये। लाला लाजपतराय की भारत मे गिरफ्तारी होने पर उन्होंने वहा एक भाषण दिया, जो सरकार की आखो मे बहुत खटका। उसी समय से वे खतरनाक आदमी समझे जाने लगे। पुलिस उन पर निगाह रखने लगी।

इग्लैण्ड मे रहकर आप बैरिस्टर हो गये और आई. सी. एस. को छोड़ बैठे। जर्मनी जाकर आपने बम बनाना सीख लिया। आई. सी. एस. के बदले बमबाजी की विद्या सीखकर बापट साहब स्वदेश लौटे। देश मे आकर बहुत-से नवयुवकों को बम बनाना सिखाया। सेनापति उनका ऐसा ही विरुद था जैसे श्रीवल्लभ भाई का 'सरदार' विरुद है।

यह सेनापति बापट बडी श्रद्धा के साथ मुनिश्री का व्याख्यान सुना करते थे। आपके साथ सी. आई. डी. के दो सिपाही रहते थे। आपकी स्मरणशक्ति गजब की है। मुनिश्री का सारा भाषण उसी समय मरहठी-कविता मे तैयार करके सुना देना आपके लिए साधारण बात थी। कभी-कभी आप कहा करते-'अगर यह ब्राह्मणी (आपकी पत्नी) मेरे साथ न होती तो मै भी मुनिजी का शिष्य बन जाता।'

बापट साहब की दिनचर्या जानने योग्य है। सुबह उठते ही अपनी पत्नी के साथ टोकरी, कुदाली और झाड़ू लेकर घर से निकल जाते और सडके तथा नालिया साफ करते। लोग अपने-अपने घरों का कूड़ा-कचरा गलियों मे फैकते और आप चुपचाप उसे इकट्ठा करके, टोकरियों मे भरकर गाव के बाहर डाल आते। इसके बाद प्रतिदिन मुनिश्री का व्याख्यान श्रवण करने आते। दिन मे अगरेजी अखबारो के लिए लेख लिखते। शाम को चार से पाच बचे तक गलियो मे व्याख्यान देते। कोई सुनने वाला हो या न हो, समय पर आपका व्याख्यान आरम्भ हो जाता था। धीरे-धीरे श्रोताओ की भीड लग जाती थी। रात्रि मे अछूत बालको को प्रेम से पढ़ाते थे।

सेनापति बापट बड़े विनोदशील भी हैं। ये कभी बच्चो मे मिल जाते और गुल्ली-डडा खेलने लगते। मजाक में कभी कहते-'अगर कोई मेरी ब्राह्मणी को लेकर मुझे एक टाईप की मशीन दे दे तो मेरा लिखने का परिश्रम कितना कम हो जाय? समय भी बहुत-सा बच जाय।'

आपकी पत्नी बड़ी ही सहनशील, पतिपरायण और आदर्श महिला थी। बापट साहब के सभी कार्यो मे पूरी सहानुभूति रखती और उनकी सुख-सुविधाओ का सदा ध्यान रखती थी।

सेनापति बापट बड़े ही सतोषी जीव। घर मे चीनी या मिट्टी के दो-चार टूटे-फूटे वर्तन थे। खाने-पीने के मामले मे राम भरोसे खेती थी। जब जैसा मिल जाता उसी मे प्रसन्न थे। नागपुर के एक मित्र

उन्हे २०) रु. मासिक भेजते थे, किन्तु दूसरे-तीसरे महीने मनी-ऑर्डर वापस कर दिया जाता था। उन्हे लिख दिया जाता था कि इस बार आवश्यकता नही है।

बापट साहब अत्यन्त प्रतिभाशाली पुरुष है। एक बार मुनिश्री के यह पूछने पर कि आप किस उद्देश्य से सफाई किया करते है ? आपने करीब दस-बारह पृष्ठो का एक बडा ही सुन्दर और अनोखा लेख लिखा था।

वे अपने इस जीवन मे मस्त थे। उनका फक्कडपन वास्तव मे ईर्षा की चीज है। मुनिश्री के प्रति उन्हे बडी श्रद्धा थी। सेनापति की सेवावृत्ति, देशभक्ति, सादगी, प्रतिभा आदि देखकर मुनिश्री को बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्ष है कि बापट साहब अब भी मौजूद है।

गणी पदवी

सवत् १९७१ में जब मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का चातुर्मास जामगाव में था तब जैनाचार्य श्री श्री १००८ पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज रतलाम में विराजते थे। चातुर्मास समाप्त होने से पांच दिन पहले अर्थात् कार्तिक शुक्ला दशमी को आपके पैर में अकस्मात् तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। परिणाम स्वरूप चातुर्मास उठने पर आप विहार न कर सके। उसी दिन पूज्यश्री के मन में आया कि पाव में वेदना होने के कारण मै अधिक विहार नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में दूर-दूर फैले हुए विस्तृत सम्प्रदाय तथा साधुपरिवार की देख-रेख होना कठिन है। इसलिए सम्प्रदाय को कुछ भागो मे विभक्त करके उन्हें भिन्न-भिन्न योग्य साधुओं की देख-रेख में सौप देना चाहिए। पूज्यश्री ने अपनी इच्छा सघ के अग्रणी श्रावकों के सामने व्यक्त की। उसी समय पूज्यश्री की इच्छा के अनुसार व्यवस्थापत्र तैयार किया गया। उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है।

व्यवस्थापत्र की प्रतिलिपि

श्री जैन दयाधर्मावलम्बी पूज्यश्री स्वामीजी महाराज श्री श्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पाचवे पाट पर जैनाचार्य पूज्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्रीलालजी महाराज वर्तमान मे विद्यमान है। उनके आज्ञानुयायी गच्छ के साधु १०० से अधिक हैं। उनकी आज तक शास्त्र व परम्परानुसार साल सम्भाल आचार गोचार वगैरह की निगरानी यथा विधि पूज्यश्री करते रहे है। परन्तु महाराज श्री के शरीर में व्याधि वगैरह के कारण इतने अधिक सन्तों की साल सभाल करने मे परिश्रम व विचार पैदा होता है। इसलिए पूज्य महाराज श्री ने यह विचारपूर्वक गच्छ के सन्त मुनिराजो की साल सभाल व हिफाजत के लिए योग्य सन्तो को मुकर्रर कर तालुक सन्तो को इस तरह सुपुर्दगी कर दिये है कि वे अग्रेसर सन्त अपने गण की सभाल सब तरह से रखें और कोई गण की किसी तरह की गलती हो तो ओलम्भा वगैरह देकर शुद्ध करने की कार्यवाही का इन्तजाम करें। फकत कोई बडा दोष होवे और उसकी खबर पूज्य महाराज को पहुचे तो पूज्यश्री को उसका निकालने का अख्तियार है। सिवाय इसके जो अग्रेसर है वे थोक आज्ञा चातुर्मास आदि की पूज्य महाराज श्री से अवसर पाकर ले लेवें।

इसके सिवाय जो कोई सन्त नीचे के गणो से कारणवश नाराज होकर पूज्यश्री के समीप आवे तो पूज्य महाराजश्री जैसी योग्य कार्यवाही होवे वैसी करें। यह अख्यितार पूज्य महाराज श्री को है। पूज्य महाराज श्री का कोई सन्त चला जावे तो अग्रेसर बिना पूज्य महाराज श्री की आज्ञा के उससे

सभोग न करे। इसके सिवाय आचार गोचार श्रद्धा प्ररूपणा की गति है, वह गच्छ की परम्परा मुताबिक सर्वगण प्रतिपालन करते रहें।

यह ठहराव शहर रतलाम मे पूज्यश्री की मरजी के अनुकूल हुआ है सो समस्त सघ को इसका अमलदरामद रखना चाहिए।

गणो के अग्रेसरों की खुलावट नीचे लिखे अनुसार है-

(१) पूज्य महाराज श्री के स्वहस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज श्री की खास सेवा मे रहने वालो की देख-रेख पूज्य महाराज श्री करेगे।

(२) स्वामीजी श्री चतुर्भुजजी महाराज के परिवार में हाल वर्तमान में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज बड़े हैं, आदि दाने जो सन्त है उनकी साल सभाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्नालाल जी महाराज की रहे।

(३) स्वामीजी महाराज श्री राजमलजी महाराज के परिवार मे श्री रत्नचन्दजी महाराज की नेश्राय के सन्तो की सुपुर्दगी श्री देवीलालजी महाराज की रहे।

(४) पूज्यश्री चौथमलजी महाराज के सन्तो की सुपुर्दगी श्रीडालचन्दजी महाराज की रहे।

(५) स्वामीजी श्री राजमलजी महाराज के शिष्य श्री घासीरामजी महाराज के परिवार मे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज साल सभाल करें।

ऊपर प्रमाणे गण पाच की सुपुर्दगी अग्रेसरी मुनिराजो को हुई है सो अपने सन्तो की साल सम्भाल व उनका निभाव करते रहें।

यह ठहराव पूज्य महराज श्री के सामने उनकी राय मुताबिक हुआ है, सो सब सघ मजूर करके इस मुताबिक बर्ताव करे।

इस ठहराव के अनुसार मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी एक गण के अग्रणी चुने गए।

चौबीसवां चातुर्मास

जामगाव का चौमासा पूर्ण होने पर विभिन्न क्षेत्रों मे विचरते और धर्मोपदेश करते हुए मुनिश्री अहमदनगर पधारे। श्रावकों के विशेष आग्रह के कारण सवत् १९७२ का चौमासा आपने अहमदनगर में करना स्वीकार कर लिया।

मुनिश्री का व्याख्यान बहुत ही प्रभावक, व्यापक और सार्वजनिक होता था। सभी श्रेणियो के लोग बडे चाव से सुनने आते और प्रभावित होते थे।

प्रोफेसर राममूर्त्ति का आगमन

उसी अवसर पर कलियुगी भीम प्रोफेसर राममूर्त्ति अपनी सरकस-कम्पनी के साथ अहमदनगर मे आये। अमदनगर में मुनिश्री के उपदेशो की प्रसिद्धि थी ही। प्रोफेसर राममूर्त्ति के कानों तक भी वह जा पहुची। राममूर्त्ति ने व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रदर्शित की।

दूसरे दिन नियत समय पर कम्पनी के कार्यकर्त्ताओ के साथ प्रोफेसर राममूर्त्ति उपदेश सुनने आये। मुनिश्री के व्याख्यान में यो ही भीड होती थी, आज राममूर्त्ति के कारण बहुत अधिक भीड थी।

मुनिश्री ने उस दिन जीवदया और गौ रक्षा पर बडा ही ओजस्वी भाषण दिया। जनता पर गहरा प्रभाव पडा। प्रोफेसर राममूर्त्ति ने देखा होगा, वे अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर के करतब दिखलाकर जनता को जितना प्रभावित करते है, उससे कहीं ज्यादा मुनिश्री छोटी सी जिह्वा के जादू से जनसाधारण को प्रभावित कर देते है। मुनिश्री के प्रभावशाली प्रवचन को सुनकर वे चकित रह गये।

मुनिश्री का भाषण होने पर उन्होने अपने सक्षिप्त भाषण मे कहा-

'इस समय मै क्या बोलूं ? सूर्य के निकल आने पर जिस प्रकार जुगनू का चमकना अनावश्यक है, उस प्रकार मुनिश्री के अमृततुल्य उपदेश के बाद मेरा कुछ बोलना भी अनावश्यक है। मै न वक्ता हूं, न विद्वान् हू। मै तो एक कसरती पहलवान हू। किन्तु बड़े-बडे विद्वानों का व्याख्यान सुनने का मुझे बड़ा शौक है। आज मुनिश्री का उपदेश सुनकर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पडा है वह आज तक किसी के उपदेश से नही पडा। यदि भारतवर्ष मे ऐसे दस साधु भी हों तो निश्चित रूप से भारत का पुनरुत्थान हो जाय।

जब मैं अपने डेरे से चला था तो मुझे यह आशा नही थी कि मै जिनका उपदेश सुनने जा रहा हू वे मुनिराज इतने बड़े ज्ञानी और ऐसे सुन्दर उपदेशक है। आज मेरा हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द अनुभव करके प्रफुल्लित हो रहा है। मैं जीवन भर इस सुन्दर उपदेश को न भूलूंगा।

मैं क्षत्रिय हू किन्तु मांसभोजी नहीं हू। जीवो पर दया करने का सदैव पक्षपाती हू। कुछ लोगो की धारणा है कि मनुष्य बिना मांस खाए शक्तिशाली हो ही नही सकता। यह उनका भ्रम है। मैं स्वय अन्न और वनस्पतियो के सहारे इतना बडा शरीर पाल रहा हूं। कुछ लोगों की मेरे विषय मे यह गलत धारणा है कि मेरे शरीर में कोई दैवी शक्ति है। मेरे शरीर में कोई दैवी शक्ति नही है। केवल ब्रह्मचर्य और व्यायाम से मैने यह शक्ति सम्पादित की है। आज भी यदि कोई छह से नौ वर्ष तक का लड़का मुझे मिल जाय तो मैं उसे बीस वर्ष के परिश्रम से अपनी सारी शक्ति दे सकता हूं। इसके लिए मै जिम्मेवार हू कि वह बीस वर्ष में ही राममूर्त्ति बन जायगा।'

इस प्रकार अहमदनगर में अपूर्व यशोराशि उर्पाजन करके चौमासा समाप्त होने पर आपने घोड़नदी की ओर विहार किया।

लोकमान्य तिलक से भेंट

घोड़नदी पहुचकर मुनिश्री राजणगाव आदि क्षेत्रो में विचरते हुए फिर अहमदनगर पधारे। उन्ही दिनो लोकमान्य बालगगाधर तिलक कारागार से मुक्त हुए थे। अहमदनगर में आपका 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' विषय पर जोशीला भाषण हुआ। श्रीकुन्दनमलजी फिरोदिया, माणिकचदजी मूथा, सेठ किसनदासजी मूथा तथा श्रीचदनमलजी पीतलिया आदि के प्रयत्न से लोकमान्य भी मुनिश्री के निकट आये।

आपका सम्मिलन देखने के लिए करीब पाच हजार जनता वहा इकट्ठी हुई।

लोकमान्य तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'गीतारहस्य' में सभी धर्मो की तुलनात्मक विवेचना की है। आपने यह ग्रन्थ कारागार मे रहते हुए बड़े ही कठोर परिश्रम से लिखा है। ग्रंथ आपकी सूक्ष्म विवेचना शक्ति का, विशाल अध्ययन का और प्रखर पाण्डित्य का परिचायक है। इस ग्रथ में बौद्धधर्म का विवेचन

करने के बाद जैनधर्म को कुछ बातो में भिन्न बताकर उसी के समान बतलाया है। 'गीतारहस्य' पढ़ने पर पाठक के मन पर यह छाप पडती है कि जैनधर्म मे भी बौद्धधर्म के समान केवल निवृत्ति प्रधान है। उदाहरणार्थ-गृहस्थ मोक्ष में नही जा सकता। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए ससार-त्याग अनिवार्य है। जीवन का एकमात्र लक्ष्य गार्हस्थ्य जीवन को छोड़कर मुनिवृत्ति अगीकार करना होना चाहिए। मुनियो के लिए भी मुख्य बात निवृत्ति ही निवृत्ति है। विधेय या आचरणीय बाते बहुत कम अथवा नही हैं।

यद्यपि ऊपर-ऊपर से देखने पर यह बाते ठीक मालूम होती हैं किन्तु गभीर विचार करने से मालूम होता है कि इनमे वैसा तथ्य नही है। तिलक स्वय उच्च कोटि के विद्वान थे। वे अपने ग्रन्थ कोअधिक से अधिक प्रामाणिक बनाना चाहते थे। पक्षपात मे पड़कर कोई मिथ्या बात लिखने की उनसे आशा नहीं की जा सकती। फिर भी जैनधर्म के मूल मे जो दृष्टिकोण छिपा हुआ है, तिलक उस तक पूरी तरह नहीं पहुंच पाये थे। मुनिश्री वह दृष्टिकोण समझाना चाहते थे। अतः मुनिश्री ने कहा-

जैनधर्म केवल निवृत्ति प्रधान नहीं है, इसकी प्रकृति अनासक्ति प्रधान है। जैनधर्म मे वेष या बाह्य आचार वाड़ की तरह सहायक माना है, धान्य का स्थान वह नही ले सकता। वेष मुक्ति कारण नही है। कोई भी किसी भी वेष मे हो, अगर वह विषयो में पूर्णरूप से अनासक्त हो चुका है तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है। निवृत्ति मार्ग का अभ्यास भी मुक्ति का कारण है, अत· स्वलिंग सिद्ध भी कहा है। अनासक्ति का अभ्यास करने के लिए साधु धर्म और निवृत्ति मार्ग है। गृहस्थ होकर भी जो महापुरुष आसक्ति से सर्वथा अतीत हो जाते है वे गृहस्थलिग से भी मुक्ति के अधिकारी हो जाते है। मुक्ति के लिए जैसे निवृत्ति आवश्यक है उसी प्रकार शुद्ध प्रवृत्ति भी आवश्यक है। साधु के अमुक प्रकार के वस्त्र पहने बिना भी मोक्ष हो सकता है। भरत महाराज चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने साधु के वस्त्र धारण नही किये थे, फिर भी शीशमहल में खड़े-खडे उन्हें केवलज्ञान हो गया था। माता मरुदेवी और इलायची पुत्र आदि के अनेक उदाहरण है, जो गृहस्थलिग से ही मुक्त हुए है। यह आन्तरिक भावना के प्रकर्ष का ही परिणाम था। जैनधर्म में मोक्ष जाने वाले जीवो के पन्द्रह भेद है। उनमे एक भेद अन्यलिग सिद्ध भी है। अर्थात् पूर्ण अनासक्ति या निर्मोह-अवस्था प्राप्त हो जाने पर किसी भी वेष मे रहा हुआ व्यक्ति केवल-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि जैनधर्म न तो सर्वथा निवृत्ति की हिमायत करता है और न मुक्ति के लिए अमुक प्रकार के बाह्य वेष की अनिवार्यता प्रकट करता है। अनाशक्ति ही प्रधान है। अनाशक्ति के अभाव मे निवृत्ति अकर्मण्यता है। कामभोगों में मूर्छा, गृद्धि या आसक्ति का होना ससार का कारण है और न होना मोक्ष का कारण है। अतएव जैनधर्म को सर्वथा निवृत्ति प्रधान बतलाने से उसका पूर्ण परिचय नही मिलता।

साधुओ के लिये त्याज्य बातें आवश्यक बतलाई गई है तो विधेय भी कम नही है। पाच महाव्रतो मे त्याज्य और विधेय दोनों अश हैं। किसी प्राणी की हिंसा न करना अहिंसा महाव्रत का त्याज्य अश है किन्तु ससार के सभी प्राणियों पर मैत्रीभाव रखना, उनकी रक्षा करना, सभी के कल्याण की कमाना करना उसका विधेय अश है। असत्य भाषण न करना सत्यमहाव्रत का त्याज्य अश है किन्तु हित, मित और सत्य वचन द्वारा जनकल्याण करना उसका विधेय अश है। शास्त्र पढ़ना, स्वाध्याय करना, सत्य की खोज के लिए युक्तिसगत वाद करना ये सभी सत्य महाव्रत के विधेय अश है। विना दी हुई वस्तु न लेना तीसरे महाव्रत का त्याज्य अश है, किन्तु प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करते समय उसके स्वामी की

आज्ञा लेना विधेय अश है। कामभोगों को छोडना चौथे महाव्रत का निवृत्ति प्रधान अंश है किन्तु आत्मरमण करना उसका प्रवृत्यश है। किसी भी वस्तु मे ममत्व न रखना पांचवे महाव्रत का निवृत्ति प्रधान अश है और तप, परीषह जय आदि के द्वारा शरीर तथा वस्त्र आदि वस्तुओं मे अनासक्ति रखने का अभ्यास बढाना प्रवृत्ति प्रधान अश है। इसी प्रकार समिति, गुप्ति आदि का पालन, पैदल विहार तथा दूसरी सभी बातें ऐसी है। जिन में प्रवृत्ति और दोनो निवृत्ति हुई है। अशुभयोग से निवृत्ति और शुद्ध तथा शुभयोग में प्रवृत्ति जैनधर्म का सिद्धान्त है।

बौद्धधर्म मे ज्ञान सन्तान के सिवा कोई आत्मा नहीं है। मोक्ष अवस्था मे वह भी नहीं रहता। इसलिए वहा अपने अस्तित्व को मिटा देना ही मुख्य ध्येय है। जैनधर्म मे मुक्त होने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।

आत्मा कर्मो के अधीन होकर संसार में भ्रमण करता है। जैन साधक आत्मा को नवीन कर्मबन्ध से बचाना चाहता है और बधे हुए कर्मो को आत्मा से अलग करना चाहता है। इसके लिए दो मार्ग है। संवर और निर्जरा। पहला प्रवृत्ति रूप है और दूसरा निवृत्ति रूप। संवर का अर्थ है अपने को अशुभ प्रवृत्तियो से बचाना- निर्जरा का अर्थ है तप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि आदि से, बधे हुए कर्मो को आत्मा से पृथक् करना। इसके बारह भेद हैं। इस प्रकार जैनधर्म मे प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ-साथ चलते है। मोक्ष अवस्था में जहां सभी दु'खो का अभाव है वहा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि सद्भूत गुण विद्यमान हैं। जैनियो का आत्मा वेदान्तियों के समान निगुर्ण नही है।

आशा है, जैन धर्म का दृष्टिकोण आपके ध्यान मे आ गया होगा।

मुनिश्री की जैनधर्म की व्याख्या से तिलक को बहुत हर्ष हुआ। आपने 'गीतारहस्य' में अगली आवृत्ति मे उचित संशोधन करना स्वीकार किया।

इसके पश्चात् लोकमान्य ने खड़े होकर एक सक्षिप्त भाषण देते हुए कहा- जैनधर्म और वैदिकधर्म दोनो प्राचीन हैं, किन्तु अहिंसाधर्म का प्रणेता तो जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिकधर्म पर कभी न मिटने वाली छाप लगा दी है। वैदिकधर्म पर जैनधर्म विजयी हुआ है। यह बात तो मै पहले से ही मानता आया हू।

जैनधर्म के विषय मे मेरा ज्ञान बहुत थोड़ा है, जितना है वह जैनदर्शन के मूल ग्रन्थों के आधार पर नही है। अंग्रेज या दूसरे अजैन विद्वानों ने जो थोडा बहुत लिखा है उसी को पढ़कर मैने इस मत का परिचय प्राप्त किया है। जैनदर्शन के ग्रन्थ या तो प्राकृत भाषा में है या संस्कृत में। उनमें भी ऐसा कोई ग्रन्थ मेरे देखने में नही आया जिसे पढ़कर जैन मत का मौलिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैन विद्वानों द्वारा आधुनिक शैली पर लिखा हुआ तो एक भी ग्रन्थ नही है। समय की अल्पता के कारण संस्कृत-प्राकृत के विशाल साहित्य का मंथन करना मेरे लिए बहुत कठिन है। इसलिए अग्रेज या अजैन विद्वानों द्वारा लिये हुए फुटकल निबन्धो पर से ही अपने विचार घड़ने पड़ते है। मुनिश्री ने आज जो बाते समझाई, उनसे मुझे बडा लाभ हुआ है। मै मानता हू, जैनदर्शन का गहराई के साथ अध्ययन करने वाला एक जैन विद्वान जो सूक्ष्म बातें बतला सकता है, दूसरे विद्वान उन पर नहीं पहुच सकते। अहिंसा धर्म के लिए सारा ससार भगवान् महावीर व बुद्ध का ऋणी है।

मै मुनिश्री का आभार मानता हू, जिन्होने भारतवर्ष के एक महान् धर्म के विषय मे मेरी गलतफहमी दूर की और उसका शुद्ध स्वरूप समझाया।

आज के भारतीय साधु समाज मे जैन साधु त्याग तपस्या आदि सद्गुणो से सर्वोत्कृष्ट हैं। उनमे से एक मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज हैं जिनका मैं दर्शन कर रहा हू और जिनके व्याख्यान सुनने का आनन्द उठा चुका हूं। आप सर्वश्रेष्ठ तथा सफल साधु है। मैं जहा अनेक उपास्य देवो का उपासक हू-वहा सन्तों का भी अनन्य भक्त हूं। अतएव अपने व्याख्यानो के प्रारम्भ में सन्त तुकाराम के अभगो का मंगलगान करता हूं तथा उन्हें वेदवाक्य के समान मानता हूं

गुणाःप्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः

अर्थात् मनुष्य अपने गुणो के कारण प्रिय होता है परिचय से नहीं। हमारे ये सत प्रिय है। मैं भारत की भलाई में ऐसे सत्पुरुषो से आशीर्वाद चाहता हू।'

मुनिश्री को लक्ष्य करके आपने कहा-'मुनि महाराज आप सन्त है। सर्वस्व तथा सब कामनाओं का त्याग कर चुके है। फिर भी आपमे जीवमात्र के कल्याण की कामना है। भारत की स्वतन्त्रता मे करोड़ो व्यक्तियो की भलाई सीमित है। जब भारत स्वतन्त्र होगा तभी जैनधर्म फूलेगा, फलेगा। यह आप जानते है। मै यह भी जानता हूं कि आप सन्तों के आचार एव धार्मिक नियमों से बद्ध हैं। आपको प्रायः राज्यविरोधी कार्य मे भाग लेने की आज्ञा नहीं है। अतएव केवल आशीर्वाद दीजिए। करने वाले हम कई करोड़ हैं।'

अन्त में मै इतना और कहना उचित समझता हू कि जैन-धर्म तो आरभ से अहिंसा का प्रबल समर्थक रहा ही है किन्तु वैदिकधर्म भी जैनधर्म के प्रभाव से अहिंसा का आराधक बना है। अब अहिंसा के विषय मे आप और हम एक मत हैं। अत हम सब को कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी मातृभूमि के उद्धार मे लग जाना चाहिए।'

लोकमान्य चले गये और जैन विद्वानो को एक उपयोगी एव आवश्यक परामर्श भी दे गये। तिलक सरीखे विद्वान जैनधर्म की कई मान्यताओ को गलत समझे, इसमे उनका इतना दोष नही, जितना दोष युगानुकूल शैली से लिखे गये साहित्य के अभाव का है। ऐसे साहित्य के अभाव में अधिकाश जिज्ञासु जैनेतर विद्वान जैनधर्म की वास्तविकता से अपरिचित रह जाते है। लोकमान्य तिलक को यह कहे तीस वर्ष से अधिक हो गये। मगर यह कमी अब भी ज्यों की त्यो बनी हुई है।

उन्हीं दिनों तप्त मुद्रा लेने वाले काची के सतो के साथ सनातनधर्मियो का शास्त्रार्थ होने वाला था। उसमें भारत धर्म-महामण्डल के महोपदेशक मुरादाबाद निवासी विद्यावारिधि प. ज्वालाप्रसाद जी आये। आप अपने दल के साथ मुनिश्री के व्याख्यान मे पहुचे। उस दिन व्याख्यान का विषय था-

'न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

अर्थात् ससार मे कर्तृत्व और कार्यो का स्रष्टा ईश्वर नही है।

मुनिश्री ने गीता के इस वाक्य का वर्णन करते हुए कहा- 'भगवान् भले ही भक्त के वश मे हो; किन्तु वे सुख-दु.ख के दाता नही है। अगर ऐसा हो तो सारी दुनियादारी का उत्तरदायित्व ईश्वर पर

आ जाता है। जीवात्मा खिलौना बन जाता है।' इसके अतिरिक्त अन्य अनेक युक्तियो से मुनिश्री ने ईश्वर का अकर्तृत्व सिद्ध किया। पश्चात् आपने फरमाया- 'यदि विद्यावारिधिजी कुछ बोलना चाहे तो बोल सकते हैं।' विद्यावारिधिजी कुछ न बोले।

मुनिश्री ने इस प्रकार विश्वविख्यात व्यक्तियो के हृदयो पर अपनी विशिष्टता, विद्वता और तेजस्विता की छाप अंकित करके तथा धर्म की अपूर्व प्रभावना करके शेषकाल समाप्त होने पर अहमदनगर से विहार किया।

पच्चीसवां चातुर्मास

अहमदनगर से विहार करके स्थान-स्थान पर विचरते हुए मुनिश्री घोडनदी पधारे। वही वि. स. १९७३ का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास आरंभ होने के कुछ ही दिनों बाद घोड़नदी और आसपास मे प्लेग फैल गया। प्लेग के कारण आप पास के सिरूर नामक गाव मे पधार गये। कुछ ही दिन व्यतीत हुए कि वहा भी प्लेग आरभ हो गया।

ऋषि सम्प्रदाय की कुछ सतियो का भी वहा चौमासा था। मुनिश्री ने उन्हे भी अन्यत्र विहार करने का परामर्श दिया। मगर उन्होने विहार करने मे एक दिन का विलम्ब कर दिया। इसका परिणाम बहुत भयकर हुआ। दो सतिया प्लेग से बीमार हो गई। उनकी बीमारी के कारण दूसरी सतियो को भी ठहरना आवश्यक हो गया। दो सतियां और बीमार हो गई। अन्त में दो सतियो का स्वर्गवास हो गया।

ऐसे समय अगर साधु- साध्वी बीमारी वाले स्थान से विहार न करें तो श्रावकों को भी भक्तिवश वही ठहरना पड़ता है और उन्हे हानि उठानी पड़ती है। प्लेग जैसी बीमारी के समय जब गाव खाली हो जाता है तो साधुओं को भी विहार करना लाजिमी हो जाता है।

प्रश्नोत्तर समीक्षा की परीक्षा

सं १९७२ मे पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का चौमासा उदयपुर में था। न्यायविशारद, न्यायतीर्थ सवेगी मुनिश्री न्यायविजयजी का भी वही चौमासा था। इस समय तो न्यायविशारद जी साम्प्रदायिक सकीर्णता से बाहर से है और उनके विचारों मे काफी औदार्य आ गया है, मगर उस समय वे नवयुवक ही थे और काशी से पढ़कर बहुत कुछ ताजा ही आये थे। उस समय उनमे साम्प्रदायिकता का अभिनिवेश प्रर्याप्त मात्रा में मौजूद था। वे अपने उपार्जित विपुल ज्ञान को पचा नही पाये थे। अतएव उन्होने पूज्यश्री से विविध प्रकार के प्रश्न पूछना आरभ किया। पूज्यश्री शान्तस्वभावी थे। वे उनके प्रश्नो का उचित समाधान कर दिया करते थे। न्यायविशारदजी को इतना ही बस न जान पड़ा। पूज्यश्री सागर की तरह गभीर थे। वहा उफान नही आया और उफान के बिना तूफान कैसे मचता ? अतएव न्यायविशारदजी ने १०८ प्रश्नो की एक लम्बी-चौडी पोथी-सी तैयार करके पूज्यश्री के पास भेज दी। पूज्यश्री को यह सब बखेडा पसद नही था अपने तप-सयम मे मग्न रहना उन्हे प्रिय था। पूज्यश्री ने उसका यथोचित उत्तर दे दिया। मगर श्रावको ने वह प्रश्नावली मुनिश्री के पास भिजवादी। मुनिश्री ने पहले-पहल प्रारभिक आठ प्रश्नो के उत्तर संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध तैयार करवाकर भेज दिये। न्यायविशारदजी को तो उस समय अपने ज्ञान का प्रदर्शन करना अभीष्ट था। जिज्ञासा या तत्त्वचर्चा के भाव से प्रश्न नही किये गये थे। अतएव उन्होने 'प्रश्नोत्तर-समीक्षा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवा दी। मुनिश्री ने धामोड़ी में

इस पुस्तक का खण्डन करते हुए 'समीक्षा की परीक्षा' नामक पुस्तक तैयार की। वह पुस्तक उसी समय प्रकाशित हो गई। उसे देखने से आपकी प्रकृष्ट प्रतिभा का पता चलता है।

प्रलोभन ठुकरा दिया

घोडनदी और आसपास के ग्रामो मे चौमासा पूर्ण करके मुनिश्री गणिया गाव पधारे। उन दिनों आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी ने किसी अपराध के कारण जावरा वाले सतो को सम्प्रदाय से पृथक् कर दिया था। उन्होंने अलग होते ही अपना अलग संगठन स्थापित करने का विचार किया। इसके लिए उन्हे ऐसे आचार्य की आवश्यकता थी जो अपनी प्रतिभा, प्रभाव और वाक्शक्ति के द्वारा नवीन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा जमा सके। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उनकी दृष्टि मुनिश्री जवाहरलालजी पर गई। ख्यालीलालजी उर्फ हरखचंदजी नामक एक भाई मुनिश्री की सेवा मे पहुचे और इनसे आचार्य पदवी ग्रहण करने की प्रार्थना की।

साधारण साधु के लिए आचार्य पदवी उतनी ही प्रलोभन की वस्तु है, जितना साधारण गृहस्थ के लिए राजसिहासन। संसार त्याग देने पर भी इस पद का प्रलोभन अनेक साधुओं में शेष रह जाता है। किन्तु मुनिश्री ने सयम को ही अपने जीवन मे प्रधान समझा। सघ के सगठन और ऐक्य के लिये वे सैदव प्रयत्नशील रहे। साधु सम्मेलन के समय उन्होने जो योजना तैयार की थी उसे देखने से उनके विचार स्पष्ट समझ मे आ सकते है। वे समस्त स्थानकवासी परम्परा के सम्प्रदायो को एकता के सूत्र मे बद्ध करने के इच्छुक थे। एक बार देहली मे अपने भाषण मे उन्होने साफ शब्दो में धोषणा की थी.-

'मेरी स्पष्ट सम्मति यह है कि जब तक समस्त उपसम्प्रदायो के साधु अपने पृथक्-पृथक् शिष्य बनाना तथा पुस्तक आदि अपने-अपने अधिकार मे रखना छोडकर एक ही आचार्य के अधीन न होंगे तथा अपने शिष्य और शास्त्र आदि पूर्ण रूप से उन आचार्य को न सौप देगे, तब तक सघ की कोई मर्यादा स्थिर रहना कठिन है। यह कार्य चाहे आज हो चाहे कल हो या बहुत समय बाद हो, परन्तु जब तक ऐसा न हो जायेगा तब तक सघ में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली खराबिया दूर न होगी।

मुझे अपनी ओर से यह बात प्रसिद्ध करने में किचित् भी सकोच नही है कि यदि उक्त रीति से समस्त सघ एक सूत्र मे सगठित होता हो तथा शास्त्राज्ञा का पालन होता हो तो इसके लिए सर्वस्व समर्पण करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हू। हा, साधुता को मैने अपने जीवन का प्राण समझकर अंगीकार किया है, इसलिए उसे अगर कोई प्राण लेने का भय बताकर भी छुड़ाना चाहे तो भी मै उसे नही छोड़ सकता। अलबत्ता साधुता के अतिरिक्त और सब कुछ उपाधि, शिष्य, शास्त्र आदि छोड़ने मे मुझे तनिक भी सकोच नही हो सकता।'

मुनिश्री के यह उद्‌गार स्पष्ट घोषणा कर रहे है कि सघ एकता के लिए वे अपना शिष्य समूह, आचार्यपद आदि सभी कुछ त्यागने को उत्सुक थे। साधु सम्मेलन के समय आपने साम्प्रदायिक एकता के लिए जोरदार प्रयत्न किया था। मुनिश्री अपने अतिम समय तक एकता की पुकार करते रहे मगर वह आज तक न सुनी गई। अस्तु-

इस स्थल पर मुनिश्री के सगठन और एकता सबधी प्रबल प्रयत्नो का दिग्दर्शन करना हमारा उद्देश्य नही है। यहा सिर्फ इतना बतला देना ही पर्याप्त है कि जो महान् पुरुष सघ की एकता को अपने

जीवन की बडी साधना समझता था और उसके लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार था,वह सघ में अनैक्य पैदा करने वाले किसी प्रयत्न में कैसे शरीक हो सकता था? मुनिश्री ने साफ इकार कर दिया।

गणिया गाव से विहार करके महाराजश्री धामोरी पधारे। वहा कुछ दिन विराजकर खेड़ होते हुए घोड़नदी पधार गये। घोडनदी में पृथक् किये हुए सन्तो की ओर से रतलाम वाले गब्बूलालजी नामक एक वकील आये और उन्होने भी आचार्य पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होने कई इधर-उधर की बाते भी कहीं।

महाराजश्री अपने एक सिद्धान्त पर चलने वाले सन्त थे। उन्होने इस बार भी मनाही कर दी।

मुनिश्री का उत्तर सुनकर और आपकी दृढ़ता देखकर वकील साहब निराश होकर लौट आये। यह घटना मुनिश्री की उदात्त और संघश्रेयस् की पवित्र भावना को द्योतित करती है।

घोडनदी से विहार करके मुनिश्री विभिन्न स्थानो मे धर्मप्रचार करते हुए और संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए हिवड़ा पधारे। वहा कुछ दिन ठहरकर आपने फिर विहार कर दिया

छब्बीसवां चातुर्मास

हिवड़ा से विहार करके अनेक क्षेत्र में विचरते हुए मुनिश्री मीरी पधारे। सम्वत् १९७४ का चौमासा मीरी में ही किया।

आपके उपदेश से प्रभावित होकर लोगो ने यहा गौशाला की स्थापना की। भीनासर (बीकानेर) के प्रसिद्ध श्रावक स्वर्गीय सेठ बहादुरमलजी बांठिया ने गौशाला को २०००) रु. भेंट दिये।

मुनियों की परीक्षा

चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् मुनिश्री विभिन्न स्थानों में विचरते हुए और धर्मोपदेश देते हुए अहमदनगर पधारे।

बम्बई धारासभा के वर्तमान स्पीकर श्रीकुन्दनमलजी फिरोदिया तथा श्री माणिकचदजी मूथा वकील ने एक दिन मुनिश्री से वार्त्तालाप के सिलसिले मे कहा-आपके दोनो शिष्य संस्कृत का अध्ययन कर रहे है, यह आनन्द की बात है। मगर उनका अध्ययन किस प्रकार चल रहा है, और उन्होंने कितनी प्रगति की है, यह बात हमें और जनता को मालूम हो?

यद्यपि मुनियों को परीक्षा देने और प्रमाण पत्र लेने की कोई आवश्यकता नही होती और न इस ध्येय से वे अध्ययन ही करते है, तथापि समाज की शक्ति का दुरुपयोग नहीं हो रहा है और अध्ययनकर्त्ता मुनि अप्रमत्त भाव से अध्ययन करते है, यह जानने के लिए परीक्षा की आवश्यकता रहती है। उक्त वकीलों का कथन सुनकर मुनिश्री ने अपने दोनो शिष्यो से परीक्षा देने के लिए पूछा। दोनो ने स्वीकृति दे दी। तब अहमदनगर में आपने दोनो मुनियों की परीक्षा दिलाने का निश्चय किया। प्रसिद्ध विद्वान् प. गुणे शास्त्री, पी-एच.डी. तथा म. म. प. अभ्यकर शास्त्री परीक्षक निर्वाचित किये गये । श्रीसंघ तथा अनेक दर्शको की उपस्थिति में परीक्षा ली गई। व्याकरण और साहित्य विषय में प्रश्न पूछे गये। व्याकरण विषय में मुनिश्री घासीलालजी महाराज को तथा मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज

को ८२ प्रतिशत प्रथम श्रेणी के नम्बर प्राप्त हुए। साहित्य मे मुनिश्री घासीलालजी म. को ६७ और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को ७४ प्रतिशत अक प्राप्त हुए। मौखिक परीक्षा मे दोनो मुनियों ने सौ मे से सौ अक प्राप्त किये।

दोनो मुनियो की यह सफलता सराहनीय थी। परीक्षकों ने अध्यापक तथा अध्येता दोनो की भूरि-भूरि प्रशसा की। उन्होने कहा- आजकल इस प्रकार प्राचीन और नवीन मत का परिस्फोट करने पढाने की पद्धति उठ-सी गई है। दोनों मुनियों ने संस्कृत मे पूर्ण परिश्रम किया है तथा अच्छी योग्यता प्राप्त की है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज साधुओ को पढाने के लिए जहा विद्वान शिक्षक उपयोगी समझते थे वहा इस बात का भी उन्हे पूरा ध्यान था कि शिक्षक का सदुपयोग हो रहा है या नही।

परीक्षा आदि से निवृत्त होकर मुनिश्री ने अहमदनगर से विहार किया और हिवड़ा पधारे।

सत्ताईसवां चातुर्मास

वि. स. १९७५ का चातुर्मास हिवड़ा में हुआ। हिवड़ा के पास तेलकुड़ नामक एक ग्राम था। वहा एक सद्‌गृहस्थ थे। नाम था उनका भीमराजजी। बड़े धर्मात्मा और श्रद्धालु सज्जन थे। उनके पास उनके एक भानेज (भागिनेय) रहते थे। उनका नाम सूरजमलजी कोठारी था। पूज्यश्री का धर्म और अध्यात्म रस से परिपूर्ण उपदेश सुनकर सूरजमल को १८ वर्ष की उम्र मे वैराग्य हो गया। उन्होने ससार का अनित्य और दु:खमय स्वरूप समझकर दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को हिवडे में ही उन्होंने मुनिश्री से मुनिदीक्षा अगीकार कर ली। दीक्षा महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। लगभग दो हजार व्यक्ति दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित हुए।

दुष्काल में सहायता

उन दिनो दक्षिण प्रान्त मे भयकर दुष्काल पड गया और साथ ही इन्फ्लुएजा का भी प्रकोप हो गया। प्रतिदिन अनेक व्यक्ति भूख तथा इफ्लुएजा से मरने लगे। उनकी करुण कथाएं प्रतिदिन मुनिश्री के कानों मे पड़ने लगी। मुनिश्री तथा पन्नालालजी महाराज को छोडकर नौ सन्तों को भी रोग ने धर दबाया। मुनियों की देख-रेख तथा सेवा सुश्रूषा का सारा भार इन्ही दोनों सन्तो पर आ पडा। मुनिश्री उत्तम कोटि के विद्वान वक्ता और प्रभावशाली होते हुए भी इतने अधिक सेवा-भावी थे कि रात-दिन रुग्ण मुनियो की सेवा मे तत्पर रहते थे। आपने मुनिश्री गणेशीलालजी म. पर अचित्त लालमिट्टी का प्रयोग किया, हवा में रखा और जब चित्त घबराने लगता तो बडे स्नेह के साथ चित्त शान्त करते। इस प्रकार बड़े परिश्रम से अपने सब मुनियो को सम्भाला। उन दिनो मुनि श्री ने शाक खाना छोड दिया। एक दिन आपने नीचे लिखी हृदय विदारक घटना सुनी।

हिवड़े के पास ही एक छोटे से गाव मे एक परिवार था। उसमे दो भाई, माता, बडे भाई की स्त्री तथा तीन बच्चे थे। भाइयो मे अनबन होने के कारण बडा भाई बच्चो के साथ अलग रहता था। छोटा भाई अपनी मा के साथ था। उसके पास खाने को अनाज था, किसी प्रकार की तंगी न थी। स्त्री और बच्चो के खर्च के कारण बडे भाई का हाथ सदा तग रहता था। दुष्काल पडने पर वह भयंकर मुसीबत मे पड गया। कुछ दिन तो घर की चीजे बेचकर गुजारा किया मगर अन्त मे वे भी समाप्त हो गई। बेचारा

चिन्ता मे पड गया। घर में दो चार दिन के गुजारे के लिए भी कुछ न था। खाने वाले पाच थे। सभी का पेट प्रतिदिन मागता था। हारकर वह मजदूरी ढूंढ़ने के लिए गाव छोडकर चला गया। सोचता था कहीं से कुछ मिलने पर वापिस चला आऊगा।

घर मे बहुत थोड़ा अनाज बचा था। पति को न लौटा देखकर स्त्री ने स्वयं भोजन करना बन्द कर दिया। उस अनाज से बच्चो का पेट पालने लगी। उन्हे रोटी खिला देती और स्वयं भूखी सो रहती। इस प्रकार तीन दिन बीत गए। पतिदेव फिर भी न लौटे। घर में अनाज का एक भी दाना बाकी न रहा। बच्चे फिर खाने को मागने लगे किन्तु मां के पास अब कुछ भी न था। वह स्वयं तीन दिन से भूखी थी। उसे अपनी भूख की अपेक्षा बच्चों की भूख अधिक सता रही थी। किसी प्रकार दोपहर तक समझा बुझा कर बच्चो को चुप किया। किन्तु भूखे कब तक चुप रहते ? वे बिलबिला कर रोटी मागने लगे। मां भी उन्हीं के साथ रोने लगी। किन्तु मा का रुदन बच्चों की भूख न मिटा सकता था। मा का हृदय फटा जा रहा था किन्तु कोई चारा न था।

देवर और सास से अनबन होने पर भी वह इस आपत्ति के समय वहा जा पहुची। उस समय देवर घर पर नहीं था। बच्चों की करुण कथा सुन का सास का हृदय पसीज गया। उसने एक सेर बाजरी उधार दे दी।

बाजरी लेकर वह अपने घर आई और आटा पीस कर रोटी बनाने लगी।

इतने में छोटा भाई अपने घर आया। बाजरी देने के अपराध मे उसने मां से बहुत कहा सुनी की और दौडा हुआ बड़े भाई के घर पहुंचा। उस समय एक रोटी अगारे पर थी, एक तवे पर सिक रही थी, एक पोई जा री थी। बाकी आटा कठोती में था। तीनों बच्वे अंगारो पर सिकती हुई रोटी की आशा मे बैठे थे। इतने में वह नर पिशाच आ पहुचा और भौजाई पर बाजरी ठग लाने का इल्जाम लगा कर गालियो की बौछार करने लगा। हल्ला सुन कर पडौसी इकट्ठे हो गए। बच्चों पर दया करने के लिए उसे बहुत समझाया किन्तु उसने एक न सुनी। तवे तथा अगारों पर पड़ी हुई रोटियां तथा सारा आटा उठाकर गालिया देता हुआ वह चला गया।

बच्चे अपनी आशा को टूटते देखकर बिलख-बिलख कर रोने लगे। मा का हृदय भी टूट गया। वह भी फूट-फूटकर रोने लगी। किन्तु भूख की समस्या फिर भी हल न हुई।

माता ने अचानक रोना बन्द कर दिया। वह बन्द करना रुदन से भी अधिक भयकर था। उसने बच्चों से कहा- "आओ रोटी लेने चले।" भोले बालको को क्या पता था कि भूख से तंग आकर मां का हृदय क्या करने जा रहा है ? वे साथ हो लिए। बच्चो को लेकर वह गांव से बाहर निकली। थोड़ी दूर पर जंगल में एक कुआ था। बच्चो को एक वृक्ष के नीचे खड़ा करके वह बोली-'तुम यही खड़े रहना। मैं रोटी लेने जाती हू।' यह कह कर वह कुए पर गई और उस में कूद पडी।

बच्चो ने समझा- मा रोटी लेने गई है। थोड़ी देर तो वे आशा मे खड़े रहे किन्तु मां रोटी लेकर न लौटी। वे जोर से रोने लगे और कुए में झाक कर मा-मा पुकाने लगे। उन्हें क्या पता था, उनकी क्षुधा से तग आकर माता उन्हे छोडकर किसी दूसरे लोक मे पहुच गई है और अब उनका क्रन्दन उसके पास न पहुच सकेगा।

उसी समय बडा भाई लौटा। बेचारा मजदूरी खोजने गया था किन्तु वहा भी भाग्य ने पीछा न छोड़ा। तीन दिन भटकने पर भी कही काम न मिला। भूखा मरता घर लौटा तो किवाड खुले पडे थे। घर मे कोई न था। पडोसियों से सारी कथा सुनकर वह भी उसी ओर चल दिया जिधर उस की पत्नी गई थी। कुए के पास पहुंचने पर उसे रोते हुए बालक दिखाई दिए। पिता को देखते ही वे रोटी-रोटी चिल्लाते हुए दौडे। बाप ने झूठी सांत्वना देते हुए पूछा-"मै तुम्हे रोटी देता हूं। बताओ! तुम्हारी मां कहा गई है ?" बालको ने कुए की तरफ इशारा करते हुए कहा-"यहा रोटी लेने गई है।" उसने कुए पर जाकर देखा अभी बुलबुले उठ रहे थे। कई दिन की भूख के कारण वह पहले ही बहुत घबराया हुआ था, यह दशा देख कर विक्षिप्त-सा हो उठा। उसने बच्चों से कहा-"आओ! अपन भी रोटी लेने चले।" यह कहकर एक बचे को पीठ से बांध लिया और दो को बगलो मे रख लिया। कुए पर चढ़ कर वह भी धम से कूद पडा। भूख से तग आकर उसने अपनी तथा अपने बच्चो की जीवन लीला समाप्त कर दी।

इस हृदय विदारक घटना को मुनिश्री ने अपने व्याख्यान में सुनाया। गरीबों की करुण दशा का वर्णन करते हुए दया दान का उपदेश दिया। परिणाम स्वरूप बाहर से दर्शनार्थ आए हुए तथा स्थानीय श्रावको ने गरीबों को भोजन देने के लिए बहुत-सा रुपया जमा किया। गाव के बहुत-से व्यक्तियों ने दस-दस मन जुआर दी। छोटी-छोटी भी बहुत-सी सहायताए प्राप्त हुई। मजदूरी करने वाली एक बहिन ने अपनी मजदूरी में से चार आने दिए।

तदनन्तर एक विशाल भोजनालय प्रारम्भ हो गया। गरीबो को मुफ्त भोजन दिया जाने लगा। आस-पास के गावो मे इस बात की घोषणा कर दी गई। लगभग दो-अढ़ाई सौ व्यक्तियों को प्रतिदिन दोनों समय भोजन मिलने लगा। उन में बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी होते थे जिन्हे एक हफ्ते से कुछ भी खाने को न मिला था।

युवाचार्य पदवी

उन दिनो पूज्यश्री का चौमासा उदयपुर में था। इन्फ्लुएजा का प्रकोप प्रायः सर्वत्र था। आश्विन मास में उदयपुर पर भी उसका कृपाकटाक्ष बरस पड़ा। पूज्यश्री पर उसका असर हुआ। उनके शरीर में तीव्र ज्वर रहने लगा। किन्तु ज्वर की दशा मे भी पूज्यश्री अपनी दैनिक धर्मक्रिया नियमित रूप से करते थे। महापुरुष अपनी नही, अपने आश्रित की चिन्ता पहले करते हैं। पूज्यश्री ने अपनी रुग्ण अवस्था की चिन्ता न करते हुए सघ के हित का विचार किया। सोचा जीवन का क्या भरोसा है ? रोग का एक ही हल्का-सा आक्रमण इसे समाप्त कर देने के लिए काफी है। रोग के अतिरिक्त भी मृत्यु के अनगिनत साधन ससार मे विद्यमान हैं। आचार्य होने के कारण मेरे ऊपर सारे सम्प्रदाय का भार है। अतएव अब मुझे अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी चुन लेना चाहिए, जो मेरे बाद सम्प्रदाय को भली भाति संभाल सके और चतुर्विध सघ की धर्मसाधना निर्विघ्न होती रहे।

पूज्यश्री ने अपने सम्प्रदाय के मुनियों पर एक सरसरी निगाह डाली। उनकी निगाह एक तेजस्वी और सर्वथा सुयोग्य संत पर ठहर गई। वह सत कौन थे ? यही हमारे चरितनायक पुण्यकीर्त्ति मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज।

चरितनायक कई वर्षो से दक्षिण प्रान्त मे विचरण कर रहे थे किन्तु उनकी कीर्त्ति सभी प्रान्तो मे भ्रमण कर रही थी। पूज्यश्री स्वय गुणग्राही और मनुष्य प्रकृति के पक्के परीक्षक थे। चरितनायक का

ध्यान आते ही उन्हे सान्त्वना मिली, संतोष हुआ और एक प्रकार से वे निश्चिन्त हो गये। उन्होने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य चुनने का मन ही मन निश्चय कर लिया।

स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर पूज्यश्री ने उदयपुर में उपस्थित श्रीसंघ के सामने अपने विचार प्रस्तुत किये। उस समय वहां रतलाम, जावरा, बीकानेर आदि बहुत-से नगरों और ग्रामों से दर्शनार्थ आये हुए श्रावक भी उपस्थित थे। सभी श्रावकों ने पूज्यश्री के चुनाव का हार्दिक अभिनन्दन किया।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के ज्ञान, दर्शन और चरित्र की महिमा उस समय सर्वत्र फैल चुकी थी। आपकी ओजस्विनी वाणी, प्रखर प्रतिभा, सादगी तथा अन्य अनेक गुणों से सभी लोग परिचित हो चुके थे। आपका व्यक्तित्व तो असाधारण था ही। आपकी शरीर सम्पत्ति के विषय मे पहले ही लिखा जा चुका है।

अपने संयमशील शिष्यों से घिरे हुए जब आप व्याख्यान-मण्डप में विराजते थे तो तारा मण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे। आश्चर्य तो यह है कि आपका मुख सूर्य की भाति देदीप्यमान था मगर मुख से निकलनेवाले वचन इतने मधुर और शान्तिप्रद होते थे मानों चन्द्रमा से अमृत बरस रहा हो। इस अमृत का पान करने के लिए हजारो चातक लालायित रहते थे। उस समय की आपकी दिव्य छवि जिसने एक बार निरख ली कि उसके हृदय मे उतर गई। आपका उपदेश अनेकान्त तत्त्व से परिपूर्ण होता था, और आपका शरीर अनेकान्त की प्रत्यक्ष साक्षी उपस्थित करता था।

दक्षिण प्रदेश में जैसे महाराज शिवाजी ने अपनी वीरता की धाक जमाई थी उसी प्रकार मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने अपनी धर्मधीरता की धाक जमा दी थी। वहां आपने उसी प्रकार जैनधर्म की विजयपताका फहराई जिस प्रकार शिवाजी ने अपनी विजयपताका फहराई थी। जैसे शिवाजी ने अपने शत्रुओ को कुचल डाला था उसी प्रकार आपने समाज और धर्म संबंधी कुरूढ़ियों को कुचल दिया था। जैसे शिवाजी अपनी राजकीय स्वाधीनता के लिए जूझते रहे और अपने पथ मे आने वाले कष्टों की उन्होंने कभी चिन्ता न की उसी प्रकार मुनिश्री अपनी आध्यात्मिक स्वाधीनता (मुक्ति) के लिए जूझते रहे और मार्ग मे आने वाले विघ्नो की आपने तनिक भी परवाह नहीं की। महाराज शिवाजी की कीर्ति का बखान भूषण जैसे कवियों ने किया जबकि महाराज श्रीजवाहरलालजी की कीर्त्ति का बखान करने वाले, भारतवर्ष के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ नेता लोकमान्य तिलक और विश्वविख्यात पहलवान प्रोफेसर राममूर्त्ति, सेनापति बापट आदि थे।

धर्मनौका के ऐसे कर्णधार को पाकर मोक्ष-मार्ग के किस यात्री को अपार आनन्द न होता? सभी ने मुनिश्री की प्रशसा की और पूज्य श्री के विचार के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की। सबकी अनुकूल सम्मति देखकर पूज्यश्री को और अधिक आनन्द हुआ। पूज्यश्री ने कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन मुनि श्रीजवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की घोषणा कर दी। अपनी जन्मतिथि से दो दिन पूर्व ४३ वर्ष की अवस्था में आप युवाचार्य घोषित कर दिये गए।

उसी समय उदयपुर श्रीसघ की ओर से हिवडा श्रीसघ को तार दिया गया- पूज्यश्री ने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया है। स्वीकृति लेकर खुशखबरी का तार दीजिए।

तार मुनिश्री की सेवा मे उपस्थित किया गया। तार सुनकर आपके चेहरे पर एक खास तरह की गभीरता झलक उठी, जैसे कोई परेशानी आ पडी हो। मगर उस समय आपने कोई उत्तर नही दिया।

महापुरुष सेनापति बनने की अपेक्षा सिपाही बनना अधिक पंसद करते है। सिपाही बनने मे एक सुविधा यह है कि सिपाही को सिर्फ अपने शरीर की ही जोखिम रहती है। अपने शरीर को सेनापति के सिपुर्द करके वह आगे ही आगे बढता जाता है। मगर सेनापति की परिस्थिति दूसरे प्रकार की है। सारी सेना ही सेनापति का शरीर बन जाती है और इस शरीर का नैतिक उत्तरादायित्व उस पर होता है। सिपाही का कर्त्तव्य सिर्फ जूझना है जब कि सेनापति पर जय-पराजय की भी जिम्मेदारी होती है। सिपाही अपने बल पर खड़ा होता है जबकि सेनापति को सेना के बल पर साहस करना होता है। सेनापति में अनुभव और बुद्धि होनी चाहिए जब कि सिपाही के लिए यह उतने आवश्यक नही हैं।

महापुरुष अपनी क्षमता को बराबर तोलते है और उनमें जितनी क्षमता होती है उससे भी कम मानकर चलते है। इससे उनकी क्षमता का निरन्तर विकास होता रहता है।

युवाचार्य पद पर नियत किये जाने का समाचार सुनकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज विचार में पड गए। वे अपनी शक्ति के बाट से सम्प्रदाय का भार तोलने लगे। साधारण साधु होता तो इस अवसर पर फूला न समाता। मगर मुनिश्री इसे बहुत बडा भार समझते थे। उन्होने अपनी विस्तीर्ण सम्प्रदाय पर दृष्टि डाली और सोचा- मैं लम्बे अर्से से दक्षिण में हू। सम्प्रदाय के विशिष्ट क्षेत्रों से बहुत दूर हू! मुझ से अधिक अनुभव, योग्यता, शास्त्रीय-ज्ञान तथा उम्र वाले अनेक साधु इस सम्प्रदाय में विद्यमान हैं। जिस भार को वहन करने में उन्हे असमर्थ माना गया, क्या मैं उसे वहन कर सकूगा ?

शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण पद सभालने से पहले बुद्धिमान शासक उन सब लोगों की रुचि और सम्मति जानना आवश्यक समझता है जिन पर उसे शासन करना हो। धर्म और प्रेम के शासन में तो यह जान लेना बहुत ही आवश्यक है। तलवार का शासन भी आखिर लोकमत अनुकूल होने पर ही चिरस्थायी हो सकता है। अतएव आपने महाराष्ट्र प्रान्त में विचरने वाले सतो, सतियो और श्रीसघों की सम्मतिया मांगी। सभी ने मुनिश्री को अपना भावी आचार्य स्वीकार करने में हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की।

उत्तर में विलम्ब होते देख उदयपुर श्रीसंघ की ओर से दो तार और दिये गये, मगर मुनिश्री शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करना चाहते थे।

जब तारों से काम न चला तो सतारा निवासी सेठ बालमुकुन्दजी तथा चन्दनमलजी मूथा हिवडा आये और मुनिश्री से युवाचार्य पद अगीकार करने की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा-'पूज्यश्री बडे दूरदर्शी और गंभीर विचारक है। उन्होंने गहरा सोच-विचार करके ही आपके ऊपर यह भार डाला है। इस विकट परिस्थिति में प्रतिभाशाली योग्य व्यक्ति के बिना इस गुरुतर भार को कोई नही उठा सकता। पूज्यश्री ने आपको समर्थ समझा है। अस्वस्थता के समय उन्हें शीघ्र ही चिन्तामुक्त कीजिए और स्वीकृति प्रदान करके पूज्यश्री तथा समस्त सम्प्रदाय को आनन्दित कीजिए।'

सेठजी की बातें युक्तिसंगत और उचित थीं किन्तु मुनिश्री सहसा किसी निर्णय पर नही पहुचना चाहते थे। अतएव उन्होने उत्तर दिया- ' मै बहुत दिनो से महाराष्ट्र में हू। उस तरफ की परिस्थितियो

से अपरचित हूं। परिस्थितियो से परिचित हुए बिना पूर्ण स्वीकृति दे देना मेरे लिए उचित नहीं है। हां, पूज्यश्री की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है मगर मुझे यह देखना है कि मुझ में वह शक्ति है भी या नहीं ? अपनी शक्ति देखकर ही मुझे यह आज्ञा उठानी चाहिए, क्योकि इसका सम्बन्ध सिर्फ मेरे साथ नहीं वरन् समस्त श्रीसघ के साथ है। मुनिश्री घासीलालजी और गणेशीलालजी का अध्ययन चल रहा है। उसे बीच में स्थगित कर देना भी उचित नही जान पडता। इनका अध्ययन पूरा होने पर मेरा विचार स्वयं पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होने का है। प्रत्यक्ष मिलने पर विशेष विचार कर लेंगे।

यह उत्तर लेकर दोनो सज्जन चले गये। मुनिश्री हिवडा-चातुर्मास पूर्ण करके मीरी पधारे। तीन-तीन तारो का उत्तर न पाकर उदयपुर से श्री गेरीलालजी खिवसरा तथा कोई दूसरे सज्जन मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होने बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना की- 'आप शीघ्र ही पधार कर पूज्यश्री के दर्शन कीजिए और युवाचार्य पद स्वीकार करके हम सब को आनदित कीजिए।' मगर मुनिश्री अपने दोनों शिष्यों के अध्ययन को इतना आवश्यक समझते थे कि उसे अधूरा छोडकर शीघ्र विहार कर देना उन्हें उचित प्रतीत न हुआ। अतएव उदयपुर का शिष्टमंडल भी वापिस लौट गया।

विनय-पत्रिका

मीरी से विहार करते हुए मुनिश्री सोनई पधारे। आपके उपदेशों का बडा प्रभाव पड़ा। सार्वजनिक हित के बहुत-से कार्य हुए। उस समय सोनई-सेनेटरी बोर्ड के सदस्यों ने तथा स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री केशव बाजीराव देशमुख ने मुनिश्री को विनयपत्रिका अर्पित करते हुए कहा-

'ससार में अनेक दुःख देने वाले मायामय बधनो को तोड़ने वाले, काम क्रोध आदि छ· रिपुओं को वश मे करने वाले, कामनाओ का सर्वथा त्याग करने वाले अर्थात् संसार से विरक्त, 'अहिंसा परमो धर्म ' के महा-मत्र से ओतप्रोत, सकटाकीर्ण तथा कठोर सयम महाव्रत को धारण करने वाले, जगत् का कल्याण करने के लिए ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्वनामधन्य, तपोधन श्री श्री १००८ श्री मुनि मोतीलालजी महाराज एव पण्डितप्रवर श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज अपने विद्याविलासी एव गुरुभक्त शिष्यों के साथ विचरते हुए ता. २२ जून १९१८ ई. को प्रात·काल ८ बजे सोनई ग्राम मे पधारे। हम अपने ग्राम का सौभाग्य मानते हैं कि आप सरीखे पवित्र एव विद्वान् महात्माओ के दर्शन एव चरणस्पर्श से यह पवित्र हुआ। आपके विद्वता और नैतिकता से परिपूर्ण उपदेशो से भरे व्याख्यान सर्वधर्मावलम्बियों ने बडी श्रद्धा और सम्मान के साथ सुने और परम हर्ष प्रकट किया। उस समय वे अपना धार्मिक भेदभाव भूल गए।

पहले दिन दान विषय पर आपका भाषण बालाजी के मन्दिर में हुआ। ता. २३ से २७ तक पंचायती बाडे मे नीति, परोपकार, एकता, विद्या तथा अनुकम्पा विषयो पर आपके व्याख्यान हुए। इसके बाद भी जनता के विशेष आग्रह से विविध विषयो पर आपके व्याख्यान हुए। आपके उपदेशों का जनता पर गहरा एवं स्थायी प्रभाव पड़ा। विद्वता तथा त्याग से भरे आपके उपदेशों ने हमारे सामाजिक जीवन में उथल-पुथल करदी है। आपका महत्त्व हमारे हृदयों में बैठ गया है। अपने पवित्र और उच्च विचारों द्वारा आपने जाति तथा धन के भेद-भाव को दूर करके प्रेम करना सिखलाया है जो बाते बड़े-बडे विद्वान् भी नही समझा पाते उन्हें आपने बहुत ही सरल तथा सक्षेप रूप से समझा दिया है।'

मालवा की ओर प्रस्थान

उदयपुर के श्रावको के लौट जाने पर सम्प्रदाय के प्रधान श्रावक रतलाम निवासी सेठ वर्धभानजी पीतलिया तथा भीनासर निवासी सेठ बहादुरमलजी बांठिया मीरी मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने आचार्य श्री की वृद्धावस्था और अस्वस्थता का स्मरण दिलाते हुए कम से कम एक वर्ष के लिए मालवा में पधारने और युवाचार्य पदवी स्वीकार करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। आप लोगो ने यह भी कहा कि इसके पश्चात् आप आवश्यक समझें तो फिर महाराष्ट्र पधार जावे। आचार्यश्री का तो यही फरमान है कि मुनिश्री जवाहरलालजी को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की घोषणा तो हो ही चुकी है; परम्परागत विधि से मुनिश्री मोतीलालजी महाराज उन्हे चादर ओढा देवे। फिर वे जब उचित समझे तब मालवा की ओर विहार कर सकते है। किन्तु समस्त श्रीसघों की यही इच्छा है कि युवाचार्यपद-महोत्सव आप दोनों महापुरुषो की एक जगह उपस्थिति मे ही मनाया जाय।

मुनिश्री स्वय भी आचार्य महाराज के दर्शन करने से पहले और मालवा आदि की साम्प्रदायिक परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन किये बिना यह भार स्वीकार करने मे सकोच कर रहे थे। अतः आपने पीतलियाजी और बांठियाजी की बात मान ली और अध्ययन करने वाले दोनो मुनियो को महाराष्ट्र में ही छोडकर मालवा की ओर विहार कर दिया। यह समाचार सुनकर आचार्यश्री को और समस्त श्रीसघ को बडी प्रसन्नता हुई।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के लिए रतलाम क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है। सम्प्रदाय के बड़े-बडे महोत्सवो को मनाने का गौरव इसी स्थान को प्राप्त है। तृतीय पाट पर विराजमान पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज ने रतलाम में ही पूज्यश्री चौथमलजी महाराज को युवाचार्य घोषित किया था। यही पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने आचार्यपद सुशोभित करके सम्प्रदाय का भार सभाला था। पूज्य श्रीलालजी महाराज ने भी इसी स्थान पर युवाचार्य पद अलकृत किया था। इसके बाद उन्होने भी यही सम्प्रदाय का भार सभाला था। अब मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पदवी देने का महोत्सव मनाने के लिए भी रतलाम स्थान ही उपयुक्त समझा गया।

पूज्यश्री ने भी उदयपुर में चौमासा पूर्ण करके रतलाम की ओर विहार किया। उधर से मुनिश्री भी रतलाम की ओर अग्रसर होने लगे। आप मीरी से विहार करके जलगांव, भुसावल बुरहानपुर तथा अन्य अनेक स्थानो को पावन करते हुए सनावद पधारे। वहा से आपने इन्दौर की ओर प्रस्थान किया।

भावी आचार्य का अभिनन्दन

मुनिश्री के महाराष्ट्र से रवाना होने के समाचार रतलाम में तथा अन्य प्रायः सभी स्थानो मे पहुच चुके थे। अपने भावी आचार्य का स्वागत करने के लिए जगह-जगह के श्रीसघ उमड रहे थे। मालवा प्रान्त में पदार्पण करते समय अगवानी के लिए पाच-छह साधुओं ने रतलाम से विहार किया और जब आप इन्दौर से छह कोस दक्षिण मे थे, आपकी सेवा में पहुच गये।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि महाराष्ट्र मे विचरते हुए आपकी असाधारण कीर्त्ति सर्वत्र फैल गई थी। वे अपने अनेक गुणो के कारण सब के श्रद्धापात्र वन गये थे। अत अपने श्रद्धास्पद को नेता के रूप मे आते देखकर किसका हृदय प्रफुल्लित न हो जाता?

जिस दिन आप इन्दौर में पदार्पण करने वाले थे, ऐसा जान पडता था कि किसी महोत्सव की तैयारी हो रही है। जनता हर्षविभोर थी। सभी के वदन पर प्रसन्नता नाच रही थी। उत्साह और उमगे उछल रही थी। नर-नारियो के झुण्ड मुनिश्री की अगवानी करने जा रहे थे। भगवान् महावीर के जयघोष के साथ आपने इन्दौर में प्रवेश किया।

केसरीचंद भंडारी की आत्म-शुद्धि

इन्दौर के केसरीचंदजी भडारी को पाठक जानते होंगे। जैन ट्रेनिग कॉलेज के विद्यार्थियो के मामले मे आपने भी मत्री की हैसियत से मुनिश्री पर आरोप लगाया था। आप अपने कृत्य के लिए यद्यपि पहले ही क्षमायाचना कर चुके थे, फिर भी उन्हे आत्मसन्तोष नही हुआ था। एक पवित्र महात्मा पर मिथ्या दोषारोपण करने की बात स्मरण करके आपको ऐसा लगता जैसे किसी ने डक मारा हो। ज्यो-ज्यो मुनिश्री की कीर्ति बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों केसरीमलजी का सताप भी बढ़ता जाता था।

मुनिश्री जब इन्दौर पधारे तब केसरीचदजी मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए और लिखित क्षमापत्र पेश करके विनम्र क्षमायाचना की। मुनिश्री ने केसरीचदजी को सतजनोचित उदारभाव से सान्त्वना देते हुए कहा-'आप अब नि:शल्य हो। आपने मेरी आत्मा का कोई अपराध नहीं किया है। बल्कि मुझे अपनी अपकीर्त्ति सहन करके भी सयम की मर्यादा पर दृढ़ रहने का अवसर आपके निमित्त से मिल गया। इससे मेरा कुछ लाभ ही हुआ है। हानि कुछ नहीं हुई। आपके प्रति मेरे हृदय में अणु-मात्र भी दुर्भाव नही है। मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है कि भविष्य में आप और सत्य के पक्ष-पाती बने।

मुनिश्री का यह उदार भाव और सयम-प्रेम साधु-समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय है। केसरीचदजी आपकी क्षमाशीलता देखकर बहुत प्रसन्न हुए और धर्मध्यान में अधिक लीन रहने लगे।

रतलाम में पदार्पण

इन्दौर से विहार करके मुनिश्री रतलाम पधारे। रतलाम निवासियों के हर्ष का पार न रहा। बाहर के भी बहुसंख्यक लोग उपस्थित थे। फाल्गुन शु. १० को मुनिश्री मोतीलालजी महाराज तथा अन्य मुनियो के साथ जब आप रतलाम पधारे तो हजारों नर-नारी आपकी अगवानी के लिए सामने गये।

पूज्यश्री फाल्गुन शुक्ला पचमी को ही पधार चुके थे। आपने आते ही सर्व-प्रथम पूज्यश्री के दर्शन किये और पूज्यश्री ने अपना प्रमोद व्यक्त किया। वर्त्तमान आचार्य और भावी आचार्य का यह सम्मिलन ऐसा जान पड़ता था जैसे चिरोदित और उदीयमान सूर्य मिलकर चमक रहे हों।

युवाचार्य पद महोत्सव

चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार सम्वत् १९७५ ता. २६ मार्च १९१९ का दिन युवाचार्य पद-प्रदान के लिए नियत किया गया। आचार्य तथा युवाचार्य दोनों महापुरुषो का एक स्थान पर दर्शन करने तथा महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए हजारों व्यक्ति बाहर से आने लगे। चैत्र कृष्णा सप्तमी तक सारा नगर भक्त श्रावक वृन्द से भर गया। रतलाम श्रीसघ ने सभी के स्वागत का उत्तम प्रबन्ध किया था। रतलाम श्रीसघ ने बाहर से आनेवालों के लिये जो कल्पना की थी उससे चार गुणा लोक उतर आये,

यह देख रतलाम के लोगो में भी उत्साह का पूर उमड आया। तुरन्त ठहरने के लिये मकानों व सभी तरह का रातदिन एक करके प्रबन्ध किया गया और महोत्सव को यादगार बनाया। व्याख्यान हाल मे इतनी गुंजायश नही थी कि उस जनता को समावेश कर सके इसलिए बहुत दूर तक सडक पर जनता बैठी थी। बडे-बडे रायबहादुर और पांव मे सोना पहने हुए राज्य-मान्य लोगों को भी व्याख्यान हाल मे प्रवेश करना कठिन हो गया था। स्वागताध्यक्ष सेठ वर्धभानजी साहब बडी कठिनाई से अन्दर जा सके। क्योंकि उनकी वहा जरूरत थी।

चैत्र कृष्णा अष्टमी मंगलवार को समाज के प्रमुख श्रावकों की एक सभा श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी साहब बाठिया भीनासर निवासी की अध्यक्षता मे हुई। उसमें अगले दिन का कार्य-क्रम निश्चित किया गया और अन्य कई उपयोगी प्रस्ताव पास किये गए। जिनका विशद वर्णन उस समय के जैन प्रकाश मे प्रकाशित हुआ है।

चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार को प्रातःकाल छह बजे से ही उपाश्रय मे दर्शको की भीड जमा होने लगी। रग-बिरगी पोशाकों में सजे हुए विभिन्न प्रान्त निवासियों का यह सम्मेलन अपूर्व-सा दिखाई देता था। ऐसा मालूम पडता था जैसे जिन शासन का उद्यान रग-बिरगे फूलों से भरा हो और विकास के यौवन में प्रवेश कर रहा हो। भिन्न-भिन्न प्रकार की पगडी धारण किए हुए पुरुषो का इतनी बड़ी सख्या मे एक स्थान पर जमा होना और एक ही धार्मिक उद्देश्य के लिए इतना उत्साह प्रदर्शित करना इस बात की सूचना देता था कि भारतीय जीवन मे धर्म अभी बहुत बड़ी चीज है। भारतीय जनता धर्म की छाया मे अपने प्रान्तीय तथा जातीय भेद-भाव को भुला सकती है उसके लिए धार्मिक बन्धन सबसे बड़ा बन्धन और धार्मिक बन्धुत्व सबसे बडा बन्धुत्व है।

धीरे-धीरे भीड़ इतनी बढ़ गई कि उपाश्रय में जगह न रही। बाहर सड़क पर कई शामियाने ताने गये।

आचार्यश्री का उद्बोधन

लगभग आठ बजे आचार्यश्री बहुत-से साधुओं के साथ बाहर पधारे और पाट पर विराज गए। साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका रूप चतुर्विध संघ ने खड़े होकर आपका अभिनन्दन किया और विराज जाने पर भक्तिपूर्वक वन्दना की। किन्तु उठकर वापस बैठने मे बडी तकलीफ हुई। आचार्य श्री ने मगलाचरण के बाद नन्दीसूत्र का स्वाध्याय किया। इसके बाद युवाचार्यश्री को सम्बोधित करके अपना सन्देश प्रारम्भ किया। आपने कहा-

मुनि जवाहरलालजी!

'प्राणिमात्र का जीवन क्षण भगुर है। कोई भी अपने को नित्य या चिरस्थायी नही कह सकता। उसमे भी हम सरीखे सोपक्रम आयुष वालो पर तो मृत्यु प्रति क्षण सवार रहती है। ऐसी दशा मे क्षण का भरोसा नहीं करना चाहिए। फिर भी स्वास्थ्य, युवावस्था आदि वाह्य कारणो का अवलम्वन लेकर व्यवहार चलाया जाता है। स्वास्थ्य गिर जाने पर या वृद्धावस्था आ जाने पर प्रत्येक व्यक्ति को तैयार हो जाना चाहिए। अपना सारा उत्तरदायित्व दूसरों को सभलाकर तथा सारे सबन्धो से नाता तोडकर विदा होने के लिए तैयार रहना चाहिए। उदयपुर चातुर्मास के अन्तिम भाग मे मेरे शरीर पर रोग ने

भयकर आक्रमण किया। उसी समय मुझे चेत हो गया कि अब छुट्टी लेने का समय आ पहुचा है। आयुकर्म के शेष होने से मेरा जीवन बच गया किन्तु उस घटना ने मुझे सूचना दे दी है। दीक्षा लेते समय ही हम सासारिक सभी बन्धनो को तोड देते है। सासारिक बन्धु बांधवो की दृष्टि से तो हम उसी समय मृत्यु का आलिंगन कर लेते हैं। इसलिए शरीर को त्यागकर की जानेवाली इस महायात्रा के समय हमे किसी से विदा मागने की आवश्यकता नही है। हम लोग तो उसी समय विदा ले लेते है। शरीर का छूटना हमारे लिए दुःख या अमगल की बात भी नही है। हमारे लिए जन्म ही अमगल है, दुबारा शरीर को धारण करना दुःख है। इसलिए मृत्यु को आई देखकर हमे किसी प्रकार का भय या शोक भी न होना चाहिए। हमे उस का सहर्ष स्वागत करना चाहिए।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्मिलित उन्नति के लिए भगवान् महावीर ने चतुर्विध सघ की स्थापना की है। इस प्रकार सासारिक परिवार को छोड देने पर भी हम धर्मपरिवार मे प्रवेश करते हैं। इसके साथ-साथ हम पर कुछ उत्तरदायित्व भी आ पड़ता है। हम जिस समाज का अन्न, पानी लेकर धर्म की आराधना करते हैं, जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना से हमारी भक्ति करते हैं, जिनका आध्यात्मिक विकास हमीं पर निर्भर है, उन्हे व्यवस्थित करना तथा सत्य मार्ग बताते रहना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि साधु सभी प्राणियो का समानभाव से अकारण मित्र होता है किन्तु ऐसे मुमुक्षु जीवो के लिए तो दूसरा आधार ही नहीं है। उन्हें सन्मार्ग की ओर लाना, अग्रसर करना तथा स्थिर रखना साधुओं का कर्तव्य है। इसी प्रकार बहुत-से लघुकर्मा (हलुकर्मी) जीव ससार से विरक्त होकर अपना सारा जीवन धर्म की आराधना मे लगाना चाहते है। वे पांच महाव्रत स्वीकार करके उनका शुद्ध पालन करने के उद्देश्य से हमारे साथ रहते है और हमारी आज्ञानुसार चलते हैं। ऐसे साधुओं के ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति करना, महाव्रतो के पालन मे किसी प्रकार की उलझन आने पर ठीक मार्ग बताना तथा किसी प्रकार का दोष लगने पर प्रायश्चित आदि देकर उन्हें शुद्ध करना बड़े तथा गीतार्थ साधुओ का काम है। इन्ही सब बातो की व्यवस्था के लिए जैन शासन में एक आचार्य चुना जाता है। उस पर चतुर्विध सघ के हित का भार होता है।

आज से अठारह वर्ष पहले, कार्तिक शुक्ला द्वितीया सम्वत् १९५७ को आचार्यप्रवर श्री १०८ पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने इस भार को सभालने के लिए मुझे चुना था। सात ही दिन बाद अर्थात् कार्तिक शुक्ला नवमी की रात को पूज्यश्री का स्वर्गवास हो गया। सारा भार मुझ पर आ पडा। तब से लेकर आजतक मैंने उसे यथाशक्ति निभाया है। उदयपुर की बीमारी ने मुझे सूचना दे दी कि मुझे भी यह भार सौपने के लिए कोई उत्तराधिकारी चुन लेना चाहिए। जिस प्रकार स्वर्गीय पूज्य श्री ने मुझे यह उत्तरदायित्व दिया उसी प्रकार मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं किसी योग्य व्यक्ति के हाथ मे यह उत्तरदायित्व सौप दू। इसके बाद किसी प्रकार की आकस्मिक घटना होने पर मुझे संघ की चिन्ता न रहेगी। अतएव शीघ्रातिशीघ्र किसी का चुना जाना आवश्यक था।

आपका स्मरण आते ही मुझे प्रसन्नता हुई। मैने सोचा-'सघ के शासन की बागडोर आपके हाथ मे सौप देने पर किसी प्रकार का डर नहीं है। आप सरीखे प्रतिभाशाली, तेजस्वी, कठोर सयमी और दृढधर्मा आचार्य को पाकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज का यह सम्प्रदाय अधिकाधिक विकास करेगा, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है।'

मुझे इस बात का बडा हर्ष है कि मेरी तथा सघ की इच्छा को सम्मान देकर आप यहा आ गए हैं। अब इस भार को सभालिए। मुझे निश्चिंत कीजिए और श्रीसघ का हर्ष बढाइए।

आप स्वय समझदार है। शास्त्रों के जानकार है। मै इस समय आपको क्या शिक्षा दूं ? मेरा तो इतना ही कहना है कि परमप्रतापी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज सरीखे महापुरुषो का यह सम्प्रदाय दिन प्रतिदिन ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे वृद्धि करे। हमारे पूर्ववर्ती आचार्यो ने सयम के जिस स्तर को कायम रखा है आप उसे ऊंचा उठाने का प्रयत्न करे। किसी प्रकार की कमी न आने दें। आपकी प्रवृत्ति इस प्रकार हो जिससे श्रावक तथा श्राविकाओं मे भी धर्म-श्रद्धा उत्तरोतर वृद्धिगत हो। वे सदा सत्य के पक्षपाती बनें। सच्चे साधु को माने। सच्चे धर्म पर चलें।

मेरा विश्वास है, आपकी कर्तव्यनिष्ठा, आपकी ओजस्विनी वाणी, आपकी प्रतिभा और आपका प्रभावशाली व्यक्तित्व इन सब बातो को करने मे समर्थ है। आपके कारण अहिंसा-धर्म का महत्त्व बढ़ेगा और उन्मार्गगामी भोले जीव सन्मार्ग पर आएगे।

यही सब बातें सोचकर मैंने आपको युवाचार्य चुना है। इस बात की स्वीकृति के प्रतीक रूप इस पछेवडी को धारण कीजिए।''

यह कह कर आचार्य श्री ने स्वय धारण की हुई पछेवडी उतारी और चतुर्विध सघ के जयनाद के साथ मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को ओढ़ा दी। उपस्थित मुनियो ने भी आचार्य श्री के इस कार्य मे अपनी स्वीकृति प्रदर्शित करने के लिए पछेवड़ी ओढ़ाने मे हाथ लगाया। उस समय आचार्य महाराज और युवाचार्य श्री के जयनाद के साथ सभा गूज उठी।

इसके बाद युवाचार्य श्री ने आचार्य श्री तथा स्थविर मुनिश्री मोतीलालजी महाराज को वन्दना की। क्रमश दूसरे मुनियो ने युवाचार्य श्री को वन्दना की। साध्वी समुदाय, श्रावक तथा श्राविकाओं ने भी भक्तिपूर्वक वन्दना की। तदन्तर युवाचार्य श्री नीचे के आसन से उठकर आचार्य श्री के समीप वाले आसन पर विराज गए।

आचार्य श्री ने संघ को लक्ष्य करके फरमाया-

'पूज्यश्री हुक्मीचन्द जी महाराज की सम्प्रदाय का सौभाग्य है कि उसे ऐसा योग्य साधु नेता के रूप मे मिला है। मुनिश्री जवाहरलालजी आज से युवाचार्य है। साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका रूप समस्त श्रीसंघ का कर्तव्य है कि उनकी आज्ञा मे रहकर अपने ज्ञान, दर्शन चारित्र की वृद्धि करे। मुनिमण्डल तथा इस सम्प्रदाय की आज्ञा मे विचरने वाले साध्वी समुदाय को मेरा आदेश है कि वे युवाचार्य श्री जवाहरलालजी की आज्ञा का उसी प्रकार पालन करे जिस प्रकार वे मेरी आज्ञा का पालन करते रहे है।'

पूज्यश्री के वक्तव्य के पश्चात् मुनिश्री हर्षचन्द्रजी महाराज ने समस्त मुनिमण्डल की ओर से युवाचार्यश्री का अभिनन्दन किया और उनकी आज्ञा मे रहने का विश्वास दिलाया। मुनिश्री हीरालालजी महाराज ने भी इस का अनुमोदन किया।

इसके बाद भिन्न-भिन्न प्रान्तो के श्री सघो की ओर से प्रमुख श्रावको ने हर्ष प्रकट किया और युवाचार्य श्री की आज्ञा पालन करने का वचन दिया। जिन श्रीसघो के प्रतिनिधि उपस्थित न हो सके थे उन्होने भी तार या पत्र द्वारा अपनी सम्मति भेजी थी।

उसी अवसर पर पूज्यश्री माधवमुनिजी महाराज ने अपनी शुभ कामना नीचे लिखी कविता के रूप मे भेजी थी-

विज्ञ युवराज श्री जवाहरलालजी मुनीश,
शान्तता के साथ एकता का साज साजेगे।
द्वैतता मिटाय वात्सल्यता हृदय में लाय,
सर्व सम्प्रदायों के हितैषी आप बाजेगे॥
लाजेंगे विपक्षीलोक, गाजेंगे गजेन्द्रसम,
अह! हा! हमारे सब शोक थोक भाजेंगे।
पूज्य पद पाय सम्प्रदाय मे बढाय प्रेम,
प्रतिदिन प्रताप दूनों पाते पट्ट राजेंगे॥

इत्यादि अनेक कविताए, सन्देश तथा तार आदि सुनाये गये। इसके बाद युवाचार्य श्री ने नम्रतापूर्वक उस पद को स्वीकार करते हुए चतुर्विध संघ का कर्तव्य बताया। आपने फरमाया---

युवाचार्यजी का प्रवचन

आचार्यश्री एव समस्त श्रीसघ ने मुझ पर जो गुरुतर भार डाला है, उसे सफलता के साथ वहन करना साधारण कार्य नहीं है। विशाल सम्प्रदाय के शासन को सभालना खास तौर से मुझ जैसे अल्पशक्तिमान् व्यक्ति के लिए और भी कठिन है। मेरी कठिनाई इस कारण भी बढ़ जाती है कि मैं लम्बे समय से दक्षिण प्रांत मे विचरता रहा हूं और सामाजिक परिस्थितियों के निकट सम्पर्क मे नही रह सका हू। फिर भी जिस उत्साह के साथ स्वागत करके संघ ने मेरा उत्साह बढ़ाया है उससे जान पड़ता है कि मुझ पर संघ का प्रेम है और सघ मुझे यह भार उठाने में सहायता देगा। मैं सघ के सहयोग से अपना गभीर उत्तरदायित्व निभाने में समर्थ हो सकूंगा। मुनिमण्डल के हार्दिक सहयोग के बिना क्षण भर भी कार्य चलना कठिन है अतएव मुनियों से मै विशेष सहयोग की आशा करता हूं। इसी आशा और विश्वास के बल पर मैं पूज्यश्री तथा समस्त श्रीसंघ की आज्ञा शिरोधार्य करता हूं।

किसी नगर मे राजा का देहान्त हो गया। राजा निस्संतान था, अतएव प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजगद्दी किसे दी जाय? परम्परा के अनुसार एक पक्षी छोड़ा गया और निश्चय हुआ कि यह जिसके सिर पर बैठ जाय उसी को राजा बना दिया जाय। पक्षी जगल मे जाकर एक घसियारे के सिर पर बैठ गया। मन्त्री तथा दरबारियों ने मिलकर उस घसियारे को राजा बना दिया। घसियारा राज्य करने लगा। वह मन्त्रियो के परामर्श से राज्य का भली-भाति सचालन करने लगा।

दरबार मे राजा के पास ही मंत्री बैठा करता था। राजा जब खड़ा होता तो मत्री के कधे पर हाथ रखकर उसके सहारे खड़ा होता। एक दिन अधिक जोर देकर उठने के कारण मंत्री को हसी आ गई। राजा ने तिरछी नजर से उसे हंसते देख लिया।

मत्री को एकान्त मे बुलाकर राजा ने हंसने का कारण पूछा। मत्री पहले तो भयभीत हुआ मगर अभयदान मिलने पर उसने सच्ची बात कह दी। बोला- 'महाराज! जिस समय आप घसियारे थे उस समय बिना किसी की सहायता के ही घास का गट्ठा लादकर और दो कोस चलकर नगर में बेचने आते

थे। आज राजा हो जाने पर अपना शरीर भी आपसे नही उठता! खडे होते समय आपको मेरे कधे का सहारा लेना पडता है। इस परिवर्त्तन को देखकर मुझे हसी आ गई।

राजा ने कहा- मन्त्रीजी, आप मर्म की बात नही समझे। जिस समय मै घसियारा था, मेरे ऊपर सिर्फ घास के गट्ठे का ही बोझ था। मैं उसे आसानी से उठा सकता था। अव सारे राज्य और समस्त प्रजा का बोझ मेरे सिर है। उसे अकेले उठा लेना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। आपके सहारे ही मैं वह भार उठा रहा हू। इसलिए खडा होते समय आपका सहारा लेता हू।

सज्ज्नो! मेरी स्थिति भी उस घसियारे के समान है। घसियारा इस अश मे अभागा था कि राजा के मरने के पश्चात् उस पर राज्य का भार आया था। मेरा सौभाग्य यह है कि पूज्यश्री की छत्र-छाया मेरे सिर मौजूद है और उनसे मै बहुत कुछ शक्ति प्राप्त कर सकूंगा। हा, घसियारे के समान अभी तक मुझ पर सिर्फ मेरा ही भार था, अब सारे सम्प्रदाय रूपी राज्य का भार मेरे सिर आ रहा है। इसे सभालने में मै अकेला असमर्थ हू। मुझे भी मंत्री के समान स्थविर मुनिराजों की सहायता अपेक्षित है। उनकी सहायता पाकर ही मै सघ रूपी प्रजा को सभाल सकूंगा।

व्यवहार में आचार्य-पदवी सम्मान की वस्तु समझी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में यह सब से बडा पद है। मगर मै तो इसे बडे सेवक का पद मानता हूं। इस पद को प्राप्त करने के कारण मै अपने को गौरवान्वित नहीं समझूगा वरन् इस पद के अनुरूप श्रीसघ की सेवा कर सका तो मै अपने को गौरवशाली समझूंगा। व्यवहार में, जो देता है उसी को लेने का अधिकार है। इसी प्रकार जो सेवा करता है उसी को सेवा कराने का अधिकार होता है। श्रीसंघ की दृष्टि मे मै भले ही आचार्य, पूज्य या ऊचे पद पर आसीन समझा जाऊ मगर मै अपनी नजरो मे धर्म का एक अकिचन सेवक ही रहूगा।

पूज्यश्री का मुझ पर असीम उपकार है। मै इनके ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता। मुझे अध्ययन करने आदि की सब सुविधाए आपने दी है। मेरे जीवन को ऊचा उठाने मे आपका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। इसके लिए मैं इनका कृतज्ञ रहूगा। इस अवसर पर मैं पूज्यश्री को विश्वास दिलाना चाहता हू कि श्रीसघ का कल्याण और जिनशासन की सेवा मेरे जीवन का ध्येय होगा और पूज्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज आदि महान् पुरुषो द्वारा पावन इस सम्प्रदाय की गौरव-रक्षा करने मे मैं सदैव उद्यत रहूगा।

युवाचार्य श्री के प्रवचन के पश्चात् कई अन्य वक्ताओं के भाषण हुए। श्री वर्धभानजी पीतलिया ने आगत सज्ज्नों का आभार माना और उस समय का कार्य समाप्त हो गया।

मध्याह्न

मध्याह्न मे जीवदया, शिक्षा प्रचार आदि के सबध मे कई सज्ज्नों के प्रभावशाली भाषण हुए। 'जैनो की उन्नति कैसे हो ?' इस उपयोगी विषय पर पूज्य महाराज ने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए फरमाया-किसी भी समाज की उन्नति प्रचारकों पर निर्भर है। हमारे समाज में ऐसे प्रचारको की अत्यन्त आवश्यकता है जो सर्वत्र घूम-घूम कर समाज को सभालते हों। समाज मे जहा जिस बात की आवश्यकता हो उसकी पूर्त्ति करना, धर्मविमुख लोगो को धर्म की ओर आकर्षित करना, जहा शिक्षा की समुचित व्यवस्था न हो वहां व्यवस्था करना- बालकों के अभिभावको को समझा-बुझा कर धार्मिक सस्थाओं मे भिजवाना या अनुकूलता हो तो शिक्षा सस्था की स्थापना करना, वहा इस प्रकार समाज

में से अज्ञान हटाकर ज्ञान और सदाचार का प्रसार करना; इत्यादि अनेक कार्य योग्य और सेवाभावी प्रचारको के अभाव मे नही हो सकते। प्रचारको के बिना आर्थिक कठिनाइयो के कारण कष्ट पाने वाले स्वधर्मी बन्धुओं का पता कौन चलावे ? प्रचारक हों तो यह सब समाज और धर्म की उन्नति करने वाले कार्य सुचारू रूप से हो सकते है और समाज की दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। सच्ची लगन वाले पचास उपदेशक समाज के लिए पर्याप्त हो सकते हैं।

किसी सम्मेलन या उत्सव में व्याख्यान देकर अग्रेसर का गौरव प्राप्त कर लेने मात्र से समाज का श्रेय नही हो सकता इसके लिए तो रचनात्मक कार्यपद्धति अपनाना ही उपयोगी होता है। समाज को ठोस कार्य की आवश्यकता है। कोई निश्चित योजना बना कर उसे कार्यान्वित करने से ही जैन समाज का उत्थान होगा।

यह नही समझना चाहिए कि गृहस्थ प्रचारक जनता पर क्या असर डाल सके है ? सच्ची लगन से कार्य किया जाय तो गृहस्थों का भी आदर हो सकता है। समाज में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहा साधुओं का विचरण नही हो पाता। साधु की मर्यादा कायम रखकर वहा पहुचना बहुत कठिन है। उन क्षेत्रों मे श्रद्धाशील विद्वान् और सच्ची निष्ठा वाले गृहस्थ ही कार्य कर सकते हैं। साधुओ पर सारा भार डालकर गृहस्थो को निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए।

साधु अपनी मर्यादा के अनुसार धर्मप्रचार का कार्य करते ही हैं मगर-श्रावको को भी समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए पीछे नहीं रहना चाहिए।'

पूज्यश्री के उपदेश से उत्साहित होकर अनेक श्रावक समाज-सेवा के इन महत्त्वपूर्ण कार्यो में योग देने के लिए उद्यत हुए। मगर आखिर वह तैयारी यों ही रह गई। संवत् १९७५ में पूज्यश्री ने जो आवश्यक उपदेश दिया था, आज भी वह ज्यो का त्यो उपयोगी है। इतने लम्बे अर्से में भी इस दिशा मे कोई व्यापक और ठोस प्रयत्न नही किया गया है। वास्तव मे पूर्वोक्त योजना का अमल मे आना समाज के अभ्युदय का कारण होगा।

रतलाम से विहार

रतलाम का समारोह सानन्द और सहर्ष सम्पन्न हो गया। आचार्यश्री और युवाचार्यश्री ने एक साथ विहार किया और दोनो महापुरुष जम्बूद्वीप के दो सूर्यो के समान प्रकाशमान होते हुए खाचरौद पधारे। वहा से पूज्यश्री ने उज्जैन की ओर तथा युवाचार्यश्री ने तालमडावल की ओर विहार किया। कुछ दिनो बाद पूज्यश्री भी तालमण्डावल पधार गये। यहा से फिर दोनों महानुभाव साथ विहार करके नगरी पधारे।

सम्प्रदाय के शासन का अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से युवाचार्यश्री पूज्यश्री के साथ ही चौमासा करना चाहते थे। किन्तु जावरा के नवाब और श्रीसघ की प्रार्थना पर पूज्यश्री जावरा मे चौमासा करने का वचन पहले ही दे चुके थे और युवाचार्यश्री को उदयपुर भेजना आवश्यक था। अतएव यहा से दोनो को दो दिशाओं में विहार करना आवश्यक हो गया। पूज्यश्री ने जावरा की ओर विहार किया और युवाचार्यश्री ने पूज्यश्री के आदेशानुसार उदयपुर की ओर प्रस्थान किया।

अट्ठाईसवां चातुर्मास

अपने चरणकमलो से मेवाड़भूमि को पवित्र करते हुए युवाचार्यजी महाराज उदयपुर पधारे। सं. १९७६ का चौमासा वही किया। उदयपुर की जनता आपके उपदेशामृत का पहले भी पान कर चुकी थी। किन्तु इस बार आप चिरकाल के पश्चात् पधारे थे, आपके अनुभव और आपकी योग्यता भी पहले से कई गुना बढ चुकी थी और अब आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित थे। युवाचार्य के रूप में आपका यह पहला ही चौमासा था। अत· उदयपुर की जनता को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। दिन-रात धर्म का ठाठ लगा रहता। सभी प्रकार की जनता आपके उपदेशो को सुनकर कृतार्थ होती थी। आपके उपदेश से बहुत-से जीवों को अभयदान मिला और सैकड़ो श्रावकों ने विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।

एकता का प्रयास

चातुमार्स के बाद चित्तौड, भीलवाड़ा होते हुए आप ब्यावर पूज्यश्री की सेवा मे पधारे। उस समय आगरा तथा जयपुर के कतिपय मुख्य श्रावको का एक डेप्यूटेशन ब्यावर आया। पूज्यश्री से प्रार्थना की- 'मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज तथा उनके साथ के मुनि देहली से विहार करके पधार रहे हैं और आपसे मिलकर साम्प्रदायिक विषयो पर, विचार विमर्श करना चाहते है। अत· जयपुर या किसी अन्य स्थान पर मिलन हो तो ठीक होगा। साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ रहा है, वह कम हो जायगा और कोई मार्ग निकल आएगा।

पूज्यश्री सरल हृदय महापुरुष थे। माया प्रपच से दूर रहते थे। किसी प्रकार की चालबाजी उन्हे पसन्द नहीं थी। उनके इस मिलने में कोई तथ्य दिखाई नही दिया। अत· उन्होने स्पष्ट शब्दों मे इन्कार कर दिया। होली चातुर्मास के बाद पूज्यश्री तथा युवाचार्यश्री का मारवाड की तरफ विहार हो गया किन्तु कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने फिर प्रार्थना की कि आप एक बार कही पर अवश्य मिल ले और जो अपवाद लगाया जाता है कि हम तो मिलना चाहते है, और समझौता करना चाहते है मगर पूज्य महाराज मिलना नहीं चाहते और दूर-दूर जाते है, इस अपवाद को दूर कर दे और जनता को दिखा दें कि सत्य वास्तव में क्या है।

यह सुनकर पूज्यश्री ने अजमेर पधारना स्वीकार कर लिया, युवाचार्यजी को जो आगे पधार गये थे, अजमेर पहुचने का सन्देश भेज दिया। दोनो महापुरुष वैशाख शुक्ला मे अजमेर पधारे। श्री मुन्नालालजी महाराज आदि पहले ही पधार चुके थे। अजमेर सघ ने दोनों महानुभावो का हार्दिक स्वागत किया।

साम्प्रदायिक एकता सबधी वार्तालाप हुआ। दोनों ओर से दो-दो व्यक्ति बातचीत करने के लिए चुने गये। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की ओर से राजे श्री कोठारी बलवतसिह जी साहब और मेहता बुधसिहजी सा. वैद तथा दूसरी तरफ से ला. गोकुलचदजी जौहरी और पीरूलालजी चौपडा। मगर श्रावको के समक्ष सब बाते कहना उचित न समझकर पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज, मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज तथा मुनिश्री देवीलालजी महाराज ने एकान्त में वार्तालाप करना तय किया। पाच-छह दिनो तक बातचीत होती रही। एकता के लिए जितना किया जा सकता था, वह सब और उससे भी अधिक पूज्यश्री ने किया। एकता के लिए आपने पूरी तत्परता दिखलाई। मगर भावी को वह मजूर नही था।

अत में वार्तालाप असफल हो गया। जनता को सच्ची परिस्थिति का दिग्दर्शन कराकर दोनों महापुरुष अजमेर से पधार गए।

अजमेर की इस कार्रवाई का एक अलग ही प्रकरण बन सकता है। उस समय पूज्यश्री धर्मदासजी म. के सम्प्रदाय के सन्त श्री रतनचन्दजी म., श्री सिरमेलजी म. तथा श्री समरथमलजी म. वहा मौजूद थे। वे इस प्रकरण से पूरी तरह परिचित हैं, क्योंकि सन्देशवाहक का कार्य उन्होने ही किया था।

अजमेर से विहार करके पूज्यश्री ब्यावर पधारे और युवाचार्यश्री ने बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। पुष्कर से कुछ ही दूर जाने पर आपको मुनिश्री राधालालजी महाराज की अस्वस्थता के समाचार मिले। राधालालजी महाराज आपके दर्शन के लिए उत्सुक थे। अतः आप पुष्कर से ब्यावर पधारे। मुनिश्री राधालालजी म. को दर्शन दिये। और पूज्यश्री के दर्शन किये। आपकी इच्छा पूज्यश्री की सेवा में रहकर चौमासा करने की थी, मगर पूज्यश्री के आदेश से आपने बीकानेर की ओर विहार किया। पूज्यश्री बड़े ही दूरदर्शी महापुरुष थे। उन्होंने अपनी मौजूदगी में ही आपको सम्प्रदाय के विशिष्ट क्षेत्रों में युवाचार्य के रूप में भेजना आवश्यक समझा होगा। तदनुसार आप मार्ग में धर्म का उपदेश देते हुए भीनासर पधारे।

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्वर्गवास

आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी का दिन था। पूज्यश्री जयतारण पधारे थे। अमावस्या के दिन व्याख्यान देते समय अकस्मात् आपके नेत्रों की ज्योति बंद हो गई। सिर में चक्कर आने लगे। पूज्यश्री को मृत्यु का आभास होने लगा। आपने उसी समय उपस्थित साधुओं को संथारा करा देने के लिए कहा। श्रावक और साधु विविध प्रकार से औषधोपचार कर रहे थे किन्तु पूज्यश्री को विश्वास हो गया था कि यह सब उपचार अब वृथा हैं। अन्तिम समय सन्निकट आ पहुंचा है।

उसी समय मुनिश्री हरखचदजी महाराज को सूचना की गई। वे उस समय ब्यावर में विराजते थे। लगभग १४-१५ कोस का उग्र विहार करके सुदि १ को नीमाज पधारे और दूसरे दिन सुदि २ को जयतारण पहुच गए।

आषाढ कृष्णा प्रतिपद् को आचार्यश्री ने उपस्थित साधुओ को अपने समीप बुलाया। उनके सिर पर हाथ फेरा और अंतिम विदा लेते हुए कहा-

'मुनिराजो! सयम को दिपाना। परस्पर प्रीतिपूर्वक रहना। युवाचार्य श्री जवाहरलालजी की आज्ञा मे विचरना! वे दृढ़धर्मा, चुस्त सयमी हैं। और मुझसे भी अधिक तुम्हारी सार-संभाल रख सकते है। मै और वे एक ही स्वरूप के है, ऐसा समझना। उनकी सेवा करना। पूज्यश्री हुकमीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय को जाज्वल्यमान रखना। शासन की शोभा बढ़ाना। आत्म-कल्याण को सदा सामने रखना। खमाता हूं। क्षमा करना।

पूज्यश्री बोलते-बोलते रुक गये। पास में बैठे सन्तो के भी नेत्र आंसुओं से भर गये। मृत्यु को महोत्सव मानने वाले मुनि भी अपने सरल हृदय और सुयोग्य धर्मनायक की यह स्थिति देखकर एक बार विचलित हो उठे। धर्मानुराग ने उन्हें विह्वल कर दिया। उनमें से एक मुनि ने कहा-

'पूज्य महाराज साहव! आपकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य रही है और अब भी रहेगी। आप निश्चिन्त हो। हम वालकों को आप क्या खमाते हैं? हम लोग आपको वारम्वार खमाते है, जो आपके उपकार के बदले मे आपकी कुछ भी सेवा न कर सके। आप महापुरुप हैं। अविनय-आसातना के लिए क्षमा करे।'

क्षमा का आदान-प्रदान करने के पश्चात् पूज्यश्री ने अपना मनोयोग सभी ओर से एकदम निवृत्त कर लिया और श्री उत्तराध्ययनसूत्र की यह गाथा उच्चारण करने लगे-

सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध जीवी, न वीससे पडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबल सरीरं, भारंड पक्खीव चरेऽप्पमत्ते॥

अर्थात् सदा जागृत रहकर जीनेवाला, विवेकशील और शीघ्रबुद्धि वाला मनुष्य जीवन का भरोसा न करे। काल भयंकर है और शरीर निर्बल है। काल के एक ही आक्रमण से शरीर छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह जानकर भारड-पक्षी के समान प्रतिक्षण अप्रमत्त भाव से विचरना चाहिए।

पूज्यश्री इस प्रकार स्वाध्याय करके अपनी आत्मा में लीन हो रहे थे। अन्य सन्त भी आपके साथ स्वाध्याय में सम्मिलित हो गये। विषाद के स्थान पर गभीर शान्ति का सात्विक वातावरण फैल गया।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को व्याधि अधिक बढ़ गई। उस दिन आप प्रतिक्रमण आदि नित्य नियम भी न कर सके। पूज्यश्री कहा करते थे- 'जिस दिन मुझसे नित्य नियम न हो सके, समझना वही मेरे जीवन का अतिम दिन है।' उपस्थित साधुओं को पूज्यश्री का यह कथन याद था। महान् सन्त की वाणी अन्यथा कैसे हो सकती है? इससे संतो को फिर चिन्ता ने घेर लिया। उसी रात्रि को मुनिश्री हरखचन्दजी ने पूज्यश्री को सथारा करा दिया। रात्रि के पिछले प्रहर मे, ब्राह्म मुहूर्त्त में पूज्यश्री की आत्मा औदारिक शरीर कर बन्धन छोड़कर चली गई।

शोक का पारावार

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार फैलते ही सारा समाज शोकसागर में डूब गया। उस समय सबके लिए एक मात्र सहारा युवाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज थे। श्रीयुत डाह्याभाई ने जैनप्रकाश मे उस प्रसग को नीचे लिखे शब्दों में अभिव्यक्त किया था-

"जिन्होंने हमारे लिए इतना कष्ठ उठाया, हम उन्हे जीते जी विशेष आराम न दे सके। उनके दु.ख में उनके जीते जी हमने कुछ भाग न लिया। उनकी तप्त आत्मा को शान्ति न दे सके। उनके गुणगान करने की शक्ति को भी कार्यरूप मे प्रकट न कर सके। कुछ कृतघ्न व्यक्तियो ने तो उनकी व्यर्थ टीका की। अपना श्रेय करने वाले सुकृत्यो को छोडकर ऐसे महात्मा, ऐसे सन्त और ऐसे कोमल हृदय दयालु पुरुष को दुःख पहुचाने की बात जब याद आती है तो हृदय फटा जाता है.....। परन्तु अहोभाग्य है कि आप सरीखे महारथी की जगह एक दूसरे सन्त महात्मा ने स्वीकृत की है और सम्प्रदाय के सेनापति का जोखिम भरा हुआ पद स्वीकार किया है। उन्हे यश प्राप्त हो।

लगभग बत्तीस वर्ष तक प्रव्रज्या पालकर और उसी के बीच बीस वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित करके अनेक जीवों को प्रतिबोध दे पूज्यश्री ने जीवन सार्थक किया। आपका जन्म, आपका शरीर, आपकी प्रव्रज्या, आपका आचार्य पद यह सब अस्तित्व जनसमूह के कल्याण के लिए ही था। आपने अपनी नेश्राय मे एक भी शिष्य न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, किन्तु बहुसंख्यक मनुष्यो को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया और कई मुनिवरो पर अवर्णनीय उपकार किया। आपका चारित्र अत्यन्त अलौकिक था। आपके गुण अपार थे। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। विद्वान लेखक और शीघ्रकवि वर्षो तक वर्णन करते रहें तो भी आपके चारित्र का यथातथ्य निरूपण होना या आपके गुण समूह का पार पाना अशक्य है। आपके ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्धि, आपके पूर्वसचित शुभकर्मो के उदय का अपूर्व प्रभाव, वर्तमानकालीन शुद्ध प्रवृत्ति, आगामी समय के लिए दीर्घदर्शीपना, इतने प्रबल थे कि जिनकी उपमा देना ही अशक्य है। इस पंचमकाल के जीवों मे आपकी समानता करने वाला कोई विरला ही व्यक्ति होगा।

तथापि आश्वासन पाने योग्य बात यह है कि आप के समान ही अनुपम आत्मीय गुण, अद्वितीय आकर्षण शक्ति, दिव्य तेज, अपार साहस, महान् आत्मबल, आपकी गादी पर विराजमान वर्तमान आचार्यश्री १००८ श्री पंडितरत्न पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब में अधिक अश में विद्यमान है। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पर्यायों में समय-समय पर अधिकाधिक अभिवृद्धि होती रहे और वे निरामय तथा दीर्घ आयुष्य भोग कर जैनधर्म की उदार और पवित्र भावनाओं का प्रचार करने के अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

इसी तरह अनेक जाहिर पेपरो में उनका विवरण प्रकाशित हुआ। कान्फ्रेंस की जनरल कमिटी की बैठक हुई, उसमें भी यह प्रस्ताव आया और समाज के कर्णधारों ने खड़े होकर पास किया तथा 'जैनप्रकाश' में मुनियों का नाम आना बद था परन्तु कमिटी ने खास तौर से इसे प्रकाशित कराया।

भीनासर में स्वर्गवास-समाचार

पूज्यश्री का स्वर्गवास होने के समाचार युवाचार्य मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को भीनासर में प्राप्त हुए। इस आकस्मिक अवसान से आपको बहुत दुःख हुआ। अभी शोक का भार हल्का न हुआ था कि आप आचार्य घोषित कर दिए गए। समाज की सारी व्यवस्था का भार आप पर आ पडा। इतने दिन पूज्यश्री की छत्रछाया थी। इसलिए सब कुछ करते हुए भी आप निश्चिन्त थे। अब सारा उत्तरदायित्व आप पर आ पडा।

महापुरुषों के जीवन मे ऐसे अवसर बहुत आया करते हैं, जब एक तरफ वे शोक के आवेग से दबे रहते हैं, दूसरी तरफ महान् उत्तरदायित्व आ पड़ता है। उस समय शोक का भार मन ही मन दबाकर उन्हें कर्त्तव्य के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ता है। मन मसोस कर, विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है। किन्तु महापुरुष ऐसे विकट काल मे भी कातर नही होते। यह उनकी परीक्षा का समय होता है।

जिस दिन पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार भीनासर पहुंचा, उस दिन आपके तेला की तपस्या थी। आपने अपनी तपस्या लम्बी कर दी और आठ दिन का उपवास कर लिया। आठ दिन बाद भी आप अपनी तपस्या कुछ दिन और बढाना चाहते थे। मगर श्रीसघ के अत्यन्त विनम्र और करुण आग्रह के कारण आपने पारणा कर लिया।

यहां से हमारे चरितनायक पर सम्प्रदाय का गुरुतर उत्तरदायित्व आता है। आप अपने जीवन के एक नवीन अध्याय मे प्रवेश करते हैं।

❑

तीसरा अध्याय

आचार्य-जीवन

उनतीसवां चातुर्मास १९७७

अपने परमोपकारक आचार्य महाराज के स्वर्गवास का समाचार पाकर मुनिश्री शोक से अभिभूत हो गये। शोकाकुल और उपवास की अवस्था में जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज बीकानेर पधारे और पूर्वनिश्चयानुसार संवत् १९७७ का चौमासा आपने बीकानेर में ही किया।

गुरुकुल की योजना

महाराष्ट्र प्रांत के दीर्घकालीन प्रवास के समय पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज विभिन्न समाजों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आये थे। आपने जैन समाज की अवनति के कारणों पर गभीर विचार किया था। जैनधर्म सरीखे श्रेष्ठ धर्म को प्राप्त करके भी जैनसमाज विभिन्न दृष्टियों से और अनेक क्षेत्रों मे पिछड़ा हुआ क्यों है ? इस प्रश्न का आपने समाधान प्राप्त कर लिया था। आपके विचार से अज्ञान ही सब प्रकार की अवनति का कारण था। बहुमूल्य वस्तु पास में होने पर भी जो व्यक्ति उसका वास्तविक मूल्य नहीं समझता, उसके लिए उस वस्तु का कोई महत्त्व ही नहीं होता। जैन समाज़ की यही स्थिति है। जैनधर्म सरीखा अनमोल रत्न पाकर के भी उसका असली मूल्य न समझने के कारण जैनसमाज का आध्यात्मिक विकास नहीं हो पा रहा है।

अज्ञानता निवारण का एकमात्र उपाय सुशिक्षा का प्रचार करना है कि जिसके विषय में पूज्यश्री के विचार अत्यन्त गंभीर और सुलझे हुए थे। शिक्षा का उद्देश्य प्रकट करते हुए आपने फरमाया था-

'मनुष्य अनन्त शक्ति का तेजस्वी पुंज है। मगर उसकी शक्तिया आवरण में लिपटी हुई है। उस आवरण को हटाकर विद्यमान शक्तियों को प्रकाश में लाना शिक्षा का ध्येय है। मगर शिक्षा शक्तियों के विकास एवं प्रकाश में ही कृतकृत्य नहीं हो जाती।...... शक्तियों के विकास के साथ उसका एक और महान् कर्तव्य है। वह यह कि शिक्षा मनुष्य को ऐसे सांचे में ढाल दे कि वह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करे।'

'बहुत कम माता-पिता शिक्षा के वास्तविक महत्त्व को समझते हैं। अधिकाश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार अथवा धनोपार्जन का साधन मान कर ही अपने बालकों को शिक्षा दिलाते है। इसी कारण वह शिक्षा के विषय मे कजूसी करते है। लोग छोटे बच्चों के लिए कम वेतन वाले, छोटे

अध्यापक नियत करते हैं, किन्तु यह बहुत बडी भूल है। छोटे बच्चों मे अच्छे सस्कार डालने के लिए वयस्क और अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है।'

इस प्रकार पूज्यश्री समय-समय पर शिक्षा की महत्ता और आवश्यकता का प्रतिपादन करते थे। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के बाद बीकानेर पधारने पर आपने शिक्षा पर बहुत जोर दिया। आपने व्याख्यान में फरमाया-किसी महापुरुष का स्वर्गवास हो जाने पर उसकी स्मृति कायम रखने के लिए लोग स्मारक बनाते है, किन्तु ईट और पत्थरो का बना हुआ स्मारक स्वय अस्थिर होता है। किसी त्यागी और धर्म के सच्चे सेवक का स्मारक ऐसा न होना चाहिए। त्यागी महात्मा का सबसे बड़ा स्मारक, जो उसके अनुयायी बना सकते है, वह है उस महात्मा के कार्य को पूरा करना। जिस बात के लिए उस महापुरुष ने अपना सारा जीवन लगा दिया, जिस ध्येय की पूर्त्ति के लिए अनेक कष्ट सहे उसे पूरा करने का प्रयत्न करना ही उनकी सब से बडी सेवा है। महापुरुषो को अपने जीवन तथा नाम से भी बढकर कार्य प्रिय होता है। वे मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के भूखे नही होते। इन सब को ठुकरा करके भी वे यही चाहते है कि किसी प्रकार उनका कार्य पूरा हो जाय।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने अपना जीवन धर्म-प्रचार तथा समाजहित में लगाया था। उनकी सदा यही अभिलाषा रहती थी कि किसी प्रकार समाज की उन्नति हो। प्रत्येक व्यक्ति धर्म का सच्चा स्वरूप समझे। समाज की उन्नति का पहला पाया है- अज्ञान दूर करना। धर्म का सच्चा स्वरूप समझने की योग्यता भी ज्ञानप्राप्ति के द्वारा ही आ सकती है। यदि आप लोग समाज में फैली हुई अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न करेगे तो स्वर्गस्थ पूज्यश्री की आत्मा को सतोष होगा। जैन समाज में साधनो की कमी नही है। आप लोग सब तरह से समर्थ है। किन्तु प्रयोग में बिना लाये कोरे साधन क्या कर सकते हैं ? समाज मे ज्ञान का प्रचार करना आप सभी का कर्त्तव्य है। स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने का यही उत्तम मार्ग है।'

स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति तथा वर्तमान पूज्यश्री श्रीलालजी के उपदेश से प्रेरित होकर बीकानेर श्रीसंघ ने एक विशाल शिक्षण सस्था के रूप में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्मारक बनाना निश्चित किया। मुख्य-मुख्य श्रीसघो के अग्रणी व्यक्ति निमन्त्रित किये गये। लगभग दो सौ सज्जन बाहर से आये, जिनमे प्राय सभी स्थानो के प्रमुख व्यक्ति थे।

ता. ८ अगस्त १९२० के दिन आमंत्रित सज्जनो तथा बीकानेर एव भीनासर श्रीसघो की एक एक-सभा हुई। सभापति के आसन पर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन झवेरी आसीन हुए।

पूज्यश्री के वियोग पर खेद और विचाराधीन आयोजन की सफलता की कामना प्रकट करने के लिए आये हुए तारो और पत्रों का वाचन होने के पश्चात् पूज्यश्री की स्मृति में एक विशाल शिक्षासस्था की योजना पेश की गई। विचार विनियम के पश्चात् नीचे लिखे प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये-

प्रस्ताव पहला

(क) निश्चय हुआ कि सघ की उन्नति के लिए एक गुरुकुल खोला जाय और उसका नाम 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन गुरुकुल' रखा जाय।

(ख) इस सस्था के लिए अनुमानत पांच लाख रुपयों की आवश्यकता है, जिसमे दो लाख का चदा वसूल हो जाने पर कार्य प्रारभ कर दिया जाय।

(ग) कम से कम रु. २५०००) का विशेष दान करने वाला इस सस्था का सरक्षक (Patron) समझा जावेगा। सस्था की प्रबन्धकारिणी का सभापति सरक्षको मे से ही चुना जायगा।

(घ) रु. ११०००) ग्यारह हजार देने वाले गृहस्थ इस संस्था के सहायक गिने जायेंगे। और उनमे से सस्था की प्रबन्धकारिणी का उपसभापति या कोषाध्यक्ष चुना जायगा।

(ड) रु. ५०००) पाच हजार या ज्यादा और रु. ११०००) से कम देने वाले व्यक्ति इस सस्था के शुभेच्छुक (Sympathisor) गिने जाएंगे और उनमे से भी मन्त्री आदि पदाधिकारी चुने जा सकेंगे।

(च) रु. २०००) या इससे अधिक प्रदान करने वाले गृहस्थ इस संस्था के सभासद् माने जाएगे और उनका चुनाव प्रबन्धकारिणी में हो सकेगा।

(छ) चन्दा प्राप्त करने वाले गृहस्थो के नाम शिलालेखों मे गुरुकुल भवन के दरवाजे पर मय चन्दे की तादाद के प्रकट किए जाएंगे।

(ज) प्रबन्धकारिणी अपनी इच्छानुसार पाच अन्य विद्वान गृहस्थो को सलाह लेने के लिए शरीक कर सकेगी और उनके मत गणना में आ सकेंगे, उन पर चन्दे का कोई प्रतिबन्ध न रहेगा।

नोट- इस गुरुकुल का उद्देश्य समाज की भावी सन्तान को धर्मपरायण, नीतिमान्, विनयवान्, शीलवान् व विद्वान् बनाने का होगा।

प्रस्ताव दूसरा

बीकानेर श्रीसघ ने प्रकट किया कि यदि बीकानेर शहर के बाहर गुरुकुल खोला जाय तो इस समय रु.१२००००) की रकम यहा के सघ की ओर से लिखी जाती है। चन्दा बढ़ाने का प्रयत्न जारी रहेगा। दो लाख रुपए इकट्ठे होने पर कार्यारम्भ किया जायगा।

उक्त कार्य के लिए सभा की ओर से बीकानेर श्रीसघ को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होने उत्साहपूर्वक इतनी बडी रकम प्रदान कर ऐसी सस्था की बुनियाद डालने का साहस किया कि जिसकी परम आवश्यकता थी।

प्रस्ताव तीसरा

इस उपयोगी कार्य मे सलाह देने के लिए तकलीफ उठाकर बाहर से पधारने वाले सज्जनों को यह सभा धन्यवाद देती है।

प्रस्ताव चौथा

श्रीयुत दुर्लभजी भाई के सभापतित्व मे यह कार्य सफलतापूर्वक किया गया, अतएव यह सभा उनका उपकार मानती है।

जावरे वाले सन्तों के अलग हो जाने से उन दिनो समाज मे कुछ अशान्ति छाई हुई थी। उस समय उनकी ओर से एक ट्रेक्ट भी निकला था। उसका जवाब देने के लिए इधर के भी श्रावक तैयार हुए किन्तु शान्ति रक्षा के उद्देश्य से पूज्य श्री ने अपने श्रावको को मनाह कर दिया।

इस विषय में कमिटी ने नीचे लिखे अनुसार प्रस्ताव पास किया-

प्रस्ताव पांचवां

आपस में निन्दा युक्त लेख छपने से समाज में पूरी हानि होती है। हाल मे जो सत्यासत्य कमिटी जावरे की तरफ से ३६ कलमो का एक ट्रेक्ट निकला है, उसका यथोचित उत्तर दिया जाना स्वाभाविक है। मगर आज रोज श्रीमान् परमपूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब ने शान्तिपूर्वक ऐसा उपदेश व्याख्यान द्वारा विस्तारपूर्वक फरमाया कि श्रीमान् सद्गत पूज्य महाराज साहेब के उपदेशामृत व श्री जैनधर्म के मूल क्षमाधर्म को अंगीकार करके श्रीमान् के भक्तो को शान्ति ही रखनी चाहिए और छापे द्वारा उत्तर प्रत्युतर नहीं करना चाहिए। महाराज साहेब के इस फरमान को सबने सहर्ष स्वीकार किया। यदि किसी की तरफ से भविष्य मे भी निन्दायुक्त लेख प्रकट हो और न्यायपूर्वक उत्तर देना ही जरूरी समझा जावे तो नीचे लिखे पांच मेम्बरो के नाम से उसका प्रतिकार किया जाय-

(१) नगर सेठ नन्दलालजी बाफणा, उदयपुर।

(२) सेठ मेघजी भाई थोभण, बम्बई।

(3) सेठ कनीरामजी बाठिया, भीनासर।

(4) सेठ नथमल जी चोरड़िया, नीमच।

(५) सेठ दुर्लभ जी भाई जौहरी, जयपुर।

सभा की बैठके तारीख ८ से लेकर १० तक लगातार तीन दिन होती रहीं। बीकानेर श्रीसघ में अपूर्व उत्साह था। त्याग की भावना जागृत हो रही थी। लक्ष्मी की कृपा तो इस नगर पर सदा से रही है। चन्दे का चिट्ठा भरा गया। श्रीमन्तों ने बड़ी-बड़ी रकमें भरीं। अनायास ही उस चिट्ठे में केवल बीकानेर और भीनासर वालो की तरफ से दो लाख रुपए से ऊपर भरे गए। जिन से एक विशाल सस्था की नींव रखी जा सकती थी।

किन्तु स्थानकवासी समाज के भाग में ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य का होना बदा न था। चातुर्मास समाप्त होते ही पूज्यश्री को मेवाड़ और उस के बाद दक्षिण की ओर विहार करना पड़ा। शारीरिक अस्वास्थ्य और दूसरे कारणों से फिर सात वर्ष तक इधर पदार्पण न हो सका। किसी योग्य प्रभावशाली कार्यकर्ता के अभाव मे वे रकमें दाताओ के पास ही पड़ी रहीं। समय बीतने पर किसी के विचार पलट गए और उसने रकम देना नामजूर कर दिया। किसी की आर्थिक स्थिति डावाडोल हो गई, इसलिए उस के पास देने को कुछ न रहा। परिणाम स्वरूप गुरुकुल की स्थापना न हो सकी।

सवत् १९८४ का चातुर्मास जब पूज्यश्री ने फिर भीनासर मे किया तो उस योजना की बात फिर उठी। कुछ सज्जनो ने अपने वचन का पालन करते हुए चन्दे मे लिखाई हुई रकम भर दी। एक लाख के लगभग इकट्ठा हो गया। उस से 'श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था' की स्थापना हुई। उसके द्वारा शास्त्रोद्धार हुन्नरशाला, एव सहायता का कार्य प्रारम्भ किया गया। आजकल यह सस्था गावों मे कई स्कूल चला रही है तथा असमर्थ बहिनो और भाइयो की सहायता कर रही है। इसका पूरा विवरण सवत् १९८४ के बीकानेर चातुर्मास में दिया जायगा।

साम्प्रदायिक साधुसम्मेलन

आचार्य पद स्वीकार करने के पश्चात् पूज्यश्री सम्प्रदाय के साधुओ को एकत्र करके भावी उन्नति की रूपरेखा निर्धारित करना चाहते थे। उनकी यह भी इच्छा थी कि साधु समाचारी पुनः व्यवस्थित कर ली जाय और व्यवस्था सबधी नियम सब को सुना दिये जाएं। स्व. पूज्यश्री का जब स्वर्गवास हुआ तब चातुर्मास आरभ होने में सिर्फ ग्यारह दिन शेष थे। इतने अल्प समय मे सब साधु न एकत्र हो सकते थे और न भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे चौमासा करने के लिए वापिस लौट सकते थे। अतः चौमासा समाप्त होने पर पूज्यश्री ने सम्प्रदाय के साधुओं का सम्मेलन करना निश्चित किया।

सब साधुओ की अनुकूलता के लिहाज से सम्मेलन का स्थान उदयपुर उपयुक्त समझा गया। सब को सूचना दे दी गई। विहार करके चालीस संत उदयपुर में एकत्र हो गये। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज पूज्यश्री की सेवा में रहना चाहते थे और पूज्यश्री भी उन्हें सेवा में रखना चाहते थे। अत आप दो ठाणे से दक्षिण प्रान्त से विहार करके उदयपुर पधार गये।

पूज्यश्री भी बीकानेर का चौमासा पूर्ण होते ही स्थान-स्थान पर धर्म का प्रचार करते हुए उदयपुर पधारे। उदयपुर पधार कर आपने साधुसमाचारी संबधी तथा दूसरी कलमें बाधी। सभी सतो ने पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य की।

मिल के वस्त्रों का परित्याग

उन्ही दिनो पूज्यश्री को मालूम हुआ कि मिल में बनने वाले वस्त्रों में चर्बी लगाई जाती है। वस्त्रों को मुलायम और चमकीला बनाने के लिए की जाने वाली इस घोर हिंसा की बात जानकार पूज्यश्री को आश्चर्य और खेद हुआ। उन्होने मिल के वस्त्रो को सर्वथा हेय समझा और उनका त्याग कर दिया। आपने खद्दर के वस्त्र धारण किये।

तभी से आप चर्बी वाले वस्त्रो को घोर हिंसाजनक समझकर उनका तीव्र विरोध किया करते थे। आपका यह विरोध आजीवन ज्यों का त्यों बना रहा। खादी की उपयोगिता तथा विलायती एवं चर्बी-लगे वस्त्रों के संबध मे आपका उपदेश बडा ही प्रबल रहा है और आपका वह उपदेश आपके साहित्य मे यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। एक बार आपने कहा था-

'साधु-संतों की यह विशेष जिम्मेवारी है कि वे तुम से चर्बी के वस्त्रो का त्याग करावें। साधु-सत अपनी जिम्मेवारी को समझें तो अहिंसा का पालन हो सकता है और तुमसे चर्बी के वस्त्रों का भी त्याग कराया जा सकता है किन्तु जब तक वे स्वय चर्बी के वस्त्रों का त्याग नही करते तब तक दूसरों से कैसे त्याग करा सकते है!........ कोई यह कह सकता है कि साधु, गृहस्थ के घर से वस्त्र लाते है। इस अवस्था मे उन्हें जैसे मिल जाते है वैसे ही पहनने पड़ते हैं; पर इस कथन में कोई जान नही है। जब चर्बी के वस्त्र उन्हे मिल जाते है तो तलाश करने पर क्या बिना चर्बी के-खादी के-वस्त्र नहीं मिल सकते ? अतएव सर्वप्रथम साधुओं को चर्बी के कपड़ो का त्याग करना चाहिए।.....जिन चर्बी के वस्त्रों के लिए घोर हिंसा की जाती है उन वस्त्रों का त्याग करना ही तुम्हारे लिए उचित है। अगर तुमने अहिंसा को समझा है, अगर तुम महावीर स्वामी को समझ पाये हो तो चर्बी के वस्त्रों का त्याग करना ही चाहिए। चर्बी के वस्त्रो का त्याग करने से स्वार्थ के साथ परमार्थ भी सध सकता है। इससे जीवन मे सादगी

आती है और अहिसा की आराधना होती है। चर्बी के वस्त्रों के लिए कैसे-कैसे भयकर हत्याकाण्ड होते है, यह सब जानते-बूझते हुए भी उन वस्त्रों का उपयोग करना अहिंसा की अवहेलना करना है।'

'अगर तुम चर्बी लगे मिल के वस्त्रों का त्याग करो तो तुम्हारी क्या हानि होगी ? ऐसा करने मे क्या सरकारी रुकावट है ? सरकार की ओर से ऐसी कोई रोकटोक नही है। फिर भी अगर कोई सरकार के डर से चर्बी के कपड़े नही छोड़ता तो वह देवादिक का उपसर्ग उपस्थित होने पर किस प्रकार निर्भय और निश्चल बना रह सकेगा ?'

'तुम जिस देश में जन्मे हो, जहा के अन्न, जल और वायु से तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण हुआ है, उसी देश मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं का तुम्हें त्याग करना चाहिए। उस वस्तु से तुम्हारा जीवननिर्वाह सरलता से हो सकेगा और साथ ही तुम महा-आरम्भ से भी बच जाओगे।'

इस प्रकार पूज्यश्री ने स्वयं आजीवन खादी धारण की और जीवन भर चर्बी के वस्त्रों के त्याग का उपदेश दिया। अस्तु।

उदयपुर से विहार करके अनेक स्थानो मे विचरते हुए पूज्यश्री सनवाड़ पधारे। सनवाड़ के तत्कालीन रावजी प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनते थे। एक दिन गीता पर पूज्यश्री का प्रवचन सुनकर उन्हे आश्चर्य हुआ। उन्हे मालूम हुआ कि गीता का कर्मयोग जैनधर्म के अनासक्ति मार्ग का ही रूपान्तर है। अहिसा और जीवदया पर दिये हुए व्याख्यानों का उन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि प्रसिद्ध निशानेबाज और शिकारी होते हुए भी उन्होने जीवन भर के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया। उन्होने दशहरे के अवसर पर मारे जाने वाले भैंसों को मारना बंद कर दिया।

सनवाड़ के इन रावजी ने पूज्यश्री से चौमासा करने का अत्यन्त आग्रह किया मगर कई कारणों से पूज्यश्री स्वीकार न कर सके।

सनवाड से विहार कर पूज्यश्री कानौड़ पधारे। कानौड़ के रावजी ने तथा जैन-जैनेतर भाइयों ने आपके उपदेश से खूब लाभ उठाया। तदनन्तर आप बड़ी सादडी, छोटी सादड़ी होते हुए नीमच पधारे। श्रीनथमलजी चोरड़िया के प्रयत्न से वहा के चमार भी पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आते थे। आपके उपदेश से चालीस चमारो ने यावज्जीवन मास-मदिरा का त्याग किया।

नीमच से विहार करके पूज्यश्री जावद, रामपुरा और मन्दसौर होते हुए जावरा पधारे। यहां रतलाम श्रीसघ के प्रमुख सेठ वर्धमान जी पीतलिया आपके दर्शनार्थ आये। पहले कहा जा चुका है कि पूज्यश्री के व्याख्यानो में चर्बी-लगे वस्त्रो का अकसर निषेध किया जाता था। उस दिन के व्याख्यान मे भी यही विषय आ गया। आपने फरमाया-'दूध के घडे मे यदि गाय के खून की एक भी बूद पड जाय तो उसे काम मे नही लाया जाता। उसे अपवित्र समझकर लोग छोड देते है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि गाय की चर्बी लगे वस्त्र पहनने मे लोगो को सकोच नही होता। मित्रो! इन वस्त्रो के लिए कितनी गायो और भैसो के प्राण ले लिये जाते हैं, क्या आप इसे जानते है ? यह वस्त्र महा आरम्भ के द्वारा बने हुए है, इसलिए पाप के कारण है। आप सभी को ऐसे वस्त्रो का परित्याग कर देना चाहिए।'

इस प्रकार की अनेक युक्तियों और दृष्टातो से पूज्यश्री ने चर्बी के वस्त्र का निषेध किया।

कहते है, उन दिनो रतलाम नरेश खादी से बुरी तरह चिढते थे। गाधी टोपी उनके लिए वम की भाति भयकर थी। कई-एक गांधी टोपी पहनने वाले सिर्फ यह टोपी पहनने के अपराध मे ही गिरफ्तार कर लिये गये थे और उन्हे सजा दी गई थी। अपने महाराजा की मनोवृत्ति और पूज्यश्री के मनोभावो पर विचार करके पीतलियाजी पशोपेश में पड़ गये। वे पूज्यश्री का चौमासा रतलाम मे करवाना चाहते थे। उन्हे आश्वासन भी मिल चुका था। उन्होंने सोचा-अगर पूज्यश्री ने रतलाम मे भी ऐसा ही व्याख्यान दिया तो रतलाम-नरेश की नाराजी का पार नहीं रहेगा।

एक दिन एकान्त मे पीतलियाजी ने पूज्यश्री से निवेदन किया- पूज्यश्री! रतलाम नरेश की खादी पर तीव्र कोपदृष्टि है और हम आप का चातुर्मास रतलाम में अवश्य कराना चाहते हैं। वहां इस प्रकार का उपदेश देना क्या योग्य होगा ?

पूज्यश्री को रतलाम नरेश की मनोवृति जानकर आश्चर्य हुआ। साथ ही यह भी विचार आया कि ऐसे शासक को तो अवश्य ही समझाना चाहिए। उन्हें समझाने से बहुतो का उपकार हो सकता है।

मगर पूज्यश्री ने पीतलियाजी को सक्षेप में इतना ही कहा- 'जैसा अवसर होगा, देख लिया जायगा।'

पीतलियाजी यह आश्वासन पाकर सन्तुष्ट हुए और रतलाम लौट गए। पूज्यश्री भी जावरा से विहार करके रतलाम पधारे।

तीसवां चातुर्मास (१९७८)

पूज्यश्री ने संवत् १९७८ का चौमासा रतलाम में किया। चातुर्मास में हजारों श्रोता आपके व्याख्यान से लाभ उठाते थे। आसोज कृष्णा एकादशी के दिन रतलाम-नरेश व्याख्यान सुनने आये। पूज्यश्री का प्रभावशाली उपदेश लगातार दो घटे तक सुनकर वे चकित रह गये। पूज्यश्री ने बड़े ही असरकारक शब्दों में और बडी ही कौशल के साथ रतलाम-नरेश को चर्बी के वस्त्रों की हेयता और खादी की उपादेयता समझाई। आपकी वक्तृता सुनकर उनकी खादी के प्रति जो चिढ़ थी वह दूर हो गई और उन्होंने पूज्यश्री को आश्वासन दिया। व्याख्यान की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशसा की।

रतलाम मे एक घटना और घटी। एक दिन पूज्यश्री शौच के लिए बाहर पधारे। वहां एक गाय और एक भैस चर रही थी। एक आदमी उन्हें चरा रहा था। इतने मे गालियों की बौछार करता हुआ दूसरा आदमी वहां आधी की तरह आ धमका। उसने बड़ी बेरहमी के साथ गाय-भैंस को पीटा और चराने वाले आदमी को भी पीटा।

पूज्यश्री यह देखकर चकित हुए। आपकी समझ में न आया कि गाय, भैंस और ग्वाले का अपराध क्या है ? आखिर आपने उस ग्वाले से कारण पूछा। उसने बतलाया-महाराज! यह भूमि राज्य की है। उसने (पीटने वाले ने) अपने पशु चराने के लिए यह ठेके पर ले ली है। मै अपने पशु लेकर इधर आगया। अनजान होने के कारण मुझे इसकी सीमा का ध्यान नही था। इसकी सीमा में ढोरों का चला आना ही मेरा और इन गूगे पशुओ का दोष है।

यह बात पूज्यश्री को बहुत खटकी। भारत के प्राचीन राजवंश गोभक्त थे। वे गो-सेवा को अपना परमधर्म समझते थे। मगर आज जंगलात के महकमे ने घास का एक-एक तिनका बेचकर पैसे इकट्ठा करने की नीति अपनाई है। पशुओ के लिए गोचरभूमि छोडना क्या राज्य का कर्त्तव्य नही है ? संसार का असीम उपकार करने वाले पशु क्या पेट भर घास के भी अधिकारी नही है ?

रतलाम-नरेश जब व्याख्यान मे आये तो पूज्यश्री ने इस घटना का उल्लेख करते हुए गोचरभूमि न होने की हानियां भी प्रकट की। रतलाम-नरेश पर इसका भी बड़ा प्रभाव पड़ा और आपने आभार मानते हुए आश्वासन भी दिया।

जावरा वाले सन्तो के साथ पहले से मतभेद होने के कारण पूज्यश्री को अशान्ति होने की सम्भावना थी। उसे रोकने के लिए आपने अपने सम्प्रदाय वालों से पहले ही यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि दूसरी ओर से चाहे जैसा व्यवहार हो, मगर अपनी ओर से उसका कोई वैसा उत्तर नहीं दिया जायगा। परिणामस्वरूप कुछ अशान्तिप्रिय लोगो की ओर से छेड़छाड़ होने पर भी इस तरफ का श्रीसघ शान्त रहा। यहां तक कि पूज्यश्री पर भी कई प्रकार के आक्षेप करने से लोग न चूके मगर सागरवत्-गभीर पूज्यश्री एकदम शान्त रहे और अपने उत्तेजित श्रावको को भी शाति रखने का उपदेश देते रहे।

चौमासे के पश्चात् पू. श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनिश्री चम्पालालजी म. रतलाम पधारे। उन्होने चातुर्मास के वातावरण से परिचित होकर और पू. श्री का शान्तिप्रेम देखकर आश्चर्य प्रकट किया। आपने एक दिन अपने व्याख्यान में फरमाया-पूज्यश्री पर कई प्रकार के निराधार आक्षेप किये गये। भोली और अज्ञान बाइया किसी के बहकाने से पूज्यश्री की व्याख्यान सभा के पास से निन्दात्मक गीत गाती हुई निकली। उन्हें सुनकर श्रावकों मे उत्तेजना फैली। कई बार वातावरण मे क्षोभ भी उत्पन्न हो गया, मगर आचार्य महाराज सदैव जनता को शान्त करते रहे। वे मुह तोड़ उत्तर दे सकते थे मगर शान्तिरक्षा के उद्देश्य से उन्होंने कभी एक भी शब्द नहीं कहा। ऐसे अवसर पर धैर्य रहना कठिन है, मगर आचार्य महोदय की शान्तिप्रियता प्रशसनीय है। ऐसे मौके पर मेरा शान्त रहना भी कठिन-सा ही था। आचार्य महोदय ने जो शान्ति रक्खी है वह उन्ही के योग्य है। उससे दूसरों को शिक्षा लेनी चाहिए। आपने धर्म को बदनाम होने से बचा लिया है।'

इस चातुर्मास में मुनिश्री सुन्दरलालजी म. ने लम्बी तपस्या की थी। तपस्या के पूर के दिन राज्य की ओर से अगता पलाया गया। अर्थात् जीव-हिंसा बन्द रखने की आज्ञा जारी की गई।

इस चातुर्मास मे पूज्यश्री ने चर्बी वाले वस्त्रो के निषेध पर खूब जोर दिया। परिणाम स्वरूप बहुसख्यक लोगो ने त्याग किया। जिन्होंने जावरा मे इस प्रकार के उपदेश से खतरा अनुभव किया था उन सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया ने भी सपत्नीक चर्बी लगे वस्त्रों का परित्याग किया। इसी चातुर्मास मे श्री श्वे. स्था. जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मडल की स्थापना हुई।

फिर दक्षिण की ओर

रतलाम का चौमासा समाप्त होते ही पूज्यश्री को विदित हुआ कि दक्षिण मे मुनि श्रीलालचन्दजी म. रुग्ण अवस्था में है और दर्शन करना चाहते है।

यद्यपि इधर आपके कई आवश्यक कार्य शेष रह गये थे, फिर भी भक्त की इच्छा को टालना आपके लिये अशक्य हो गया। आपने समाचार मिलते ही बिना विलम्ब महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान कर दिया।

रतलाम से विहार करके पू. श्री कोद, विडवाल, कडोद, धार, नालछा, मांडव, खलघाट निमरानी और ठीकरी होते हुए खुर्रमपुरा पहुचे।

उग्र परीषह

खुर्रमपुरा में श्रावक का एक भी घर नही था। दूसरे लोगों को न गोचरी के नियमो का पता था न जैन साधुओं के विषय मे कोई जानकारी थी। अतएव शुद्ध आहार-पानी मिलना कठिन हो गया। उस समय पूज्यश्री के साथ नौ संत थे। आहार-पानी की बेहद कठिनाई का विचार कर मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने सींदवा, सिरपुर की ओर विहार किया और पूज्यश्री अन्य चार संतो के साथ अलग हो गये।

हणुतमलजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री हणुतमलजी म. कुचेरा (मारवाड़) निवासी भण्डारी ओसवाल थे। गृहस्थावस्था में किनारी-गोटे का व्यापार करते थे। वे एक आदर्श और प्रामाणिक व्यापारी थे। उन्होंने एक आना फी रुपया से अधिक कभी मुनाफा नही लिया। कभी जकात की चोरी भी नही की। जकात के थानेदारो ने कई बार थोडी-सी रिश्वत लेकर बहुत से माल पर जकात छोड़ देने का प्रलोभन दिया किन्तु आप कभी सहमत नही हुए। इस प्रकार के प्रयत्नो को वे अत्यन्त जघन्य समझते थे। उन्होंने एक पैसे के लिए भी कभी अप्रामाणिक व्यवहार नहीं किया। बहुत बड़े धनाढ्य न होने पर भी अपनी प्रामाणिकता की प्रभूत पूंजी के प्रभाव से बड़े-बड़े नगरों में आपकी खूब प्रतिष्ठा थी। जब, जहा से और जितना माल वे चाहते, ला सकते थे। बडे व्यापारी आपको उधार देने मे किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं करते थे। आसपास में आपका काफी सम्मान था। आपने हजारो की सम्पत्ति न्याय-नीति से कमाई थी। अन्त मे वह सारी सम्पत्ति त्यागकर प्रबल वैराग्य के साथ मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के पास दीक्षित हुए। दीक्षा लेने के बाद आपके परिणामो मे उत्तरोत्तर निर्मलता आती गई। आपने संयम मे किसी प्रकार का दोष नहीं आने दिया।

खुर्रमपुरा में आप पूज्यश्री के साथ थे। वहा ठहरने के लिए कोई अच्छा मकान भी नही मिला था। पौष का महीना था और कडाके की सर्दी पड़ रही थी। तिस पर ठंडी हवा भी चल रही थी। ऐसे अवसर पर एक खुला मदिर उतरने के लिए मिला। रात्रि के समय मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने और आपने पूज्यश्री की सेवा की। पूज्यश्री विश्राम करने लगे और आप मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज की सेवा करने लगे। एकाएक आपकी छाती मे दर्द उठा और वह बहुत तीव्र हो गया। साथ ही ज्वर भी चढ आया। रात्रि के समय और कोई उपाय नही किया जा सकता था अतः मुनि श्रीगणेशीलालजी म. ने आपकी छाती दबाई। मगर उसका कोई असर न हुआ। दर्द और साथ ही बुखार बढ़ता चला गया। दोनो मुनियों को ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब आराम होना कठिन है। मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने उस समय आपको आलोयणा आदि करवा दी। मुनि श्रीहणुतमलजी म. ने शुद्ध हृदय से अपने जीवन

की आलोचना की। मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज आपको पास के एक कच्चे मकान मे ले गये और रात्रि को दो बजे तक उनके पास बैठे रहे। इसके बाद तपस्वी मुनि श्रीसुन्दरलालजी म. ने उन्हें विश्राम करने के लिए कहा और वे स्वय रात भर उनके पास बैठे रहे।

उस खुले मदिर मे निर्वाह होना कठिन समझ कर प्रात.काल होने पर मुनि श्रीगणेशीलालजी म. दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज करने गये। नजदीक की एक कपास की जीनिंग फेक्टरी थी। उसके मैनेजर कोई अहमदावादी मंदिरमार्गी जैन दशा श्रीमाली सज्जन थे। मुनिश्री ने उन्हे जैन जानकर उनसे स्थान की याचना की तो उन्होने एक कच्ची कोठरी बता दी। कोठरी मे नीचे धूल का मोटा पलस्तर था और ऊपर कवेलू की छत थी। लेकिन उसमें विशेषता यह थी कि कोठरी बद की जा सकती थी और इस तरह हवा से कुछ बचाव हो सकता था। कोठरी का मिल जाना गनीमत समझ कर श्रीहणुतमजी म. को वहां लाया गया।

मगर आहार-पानी और बीमारी की समस्या कठिन से कठिनतर होती जाती थी। इधर आहार-पानी दुर्लभ था और उधर बीमारी के कारण आगे विहार होना कठिन था। उस गाव मे चार घर अग्रवालो के और चार घर मरहठे ब्राह्मणों के थे। कुल पच्चीस घरों का छोटा-सा गाव था। मुश्किल से दस घर ऐसे होगे, जहा भिक्षा मिल सकती थी।

ऐसे विकट-प्रंसग का सामना करने के लिए पूज्यश्री ने तथा तपस्वी जी ने एकान्तर उपवास करना आरभ किया। निमोनिया मे लाभदायक होने के कारण हणुतमलजी म. को तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे बीमारी मे कुछ अन्तर पडा मगर कमजोरी ज्यादा बढ़ गई।

पूज्यश्री अपना कष्ट सहने मे जितने कठोर थे, दूसरो के कष्ट के लिए उतने ही कोमल हृदय थे। आपसे सतो का यह दैनिक कष्ट नहीं देखा गया। बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनो का अभाव भी आपको खटका। अतएव आपने विचार किया-'आसपास में अगर कोई दूसरा गाव हो जहा मुनि श्रीहणुतमलजी की बीमारी तक ठहरने की और उपचार की सुविधा हो सके तो वहा जाना उचित होगा। इस स्थान पर तो निर्वाह होना कठिन है।'

परिणाम स्वरूप मुनि श्रीगणेशीलालजी म. तथा मुनि श्रीसूरजमलजी म. दूसरा गाव देखने के लिए गए। चार कोस दूर एक बड़ा गाव था। लगभग १२०० घरों की आबादी थी। छह घर दिगम्बर जैनों के भी थे। दोनों मुनि वहां पहुचे और एक दिगम्बर जैन सेठ के पास जाकर उन्होने ठहरने के लिए स्थान मांगा। सेठजी ने पहले कभी श्वेताम्बर साधुओं को नही देखा था। अत· पहले पहल तो उन्होने आनाकानी की किन्तु सारी बात समझाने पर एक खाली दुकान मे उतरने के लिए जगह दे दी। दुकान क्या थी, चूहो का गाव ही समझिए जिसमे उनके बहुसख्यक विल विद्यमान थे।

गाव में एक घर विवाह था। प्रायः सभी दिगम्बर भाई उसी घर भोजन करते थे। अतएव सभी घरों में घूमने पर भी बहुत थोड़ा आहार मिला। अजैनो के घर से जवार की दो रोटिया और थोडा-सा गर्म पानी मिला।

शाम के समय मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज का उपदेश हुआ। कुछ लोग उपदेश सुनने के लिए इकट्ठे हो गये। उनमे एक स्कूल-मास्टर भी थे। उपदेश का ठीक प्रभाव पडा।

दुकान में चूहे इतने अधिक थे कि रात्रि के समय विश्रान्ति लेना असभव–सा था। अत. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने विश्राम के लिए स्कूल-मास्टर साहब से मकान मांगा। मास्टर साहब ने स्थान तो दे दिया मगर शर्त यह रक्खी कि सुबह होने पर–स्कूल के समय से पहले-पहले मकान खाली कर दिया जाय।

रात भर स्कूल मे विश्राम करके सुबह दोनों मुनियो ने आहार-पानी की सुविधा देखने के लिए गाव में घूमना आरंभ किया। थोड़ा-सा आहार और कुछ पानी मिल गया। वहा इतनी सुविधा नही थी कि पाच साधु वहां कुछ दिनो तक ठहर सके। अन्त मे दोनों साधु खुर्रमपुरा लौट गये।

मुनिश्री हणुतमलजी म. की बीमारी फिर बढने लगी। पूज्यश्री ने तथा अन्य साधुओ ने कल्पमर्यादा एवं सुविधा के अनुसार सभी सभव उपचार किये। पूज्यश्री कभी-कभी स्वय गर्म जल मांगकर लाते और अपने हाथ से सेक करते। तपस्वीजी ठीकरी गाव से औषध लाते। अन्य मुनि भी रात-दिन यथायोग्य उपचार मे लगे रहते। किन्तु नौवे दिन बीमारी बढ गई। ग्लान मुनि की मुखाकृति बदल गई। चेहरे पर भावी मृत्यु की अस्पष्ट छाया पडी दिखाई देने लगी। जीवित रहने की आशा क्षीण हो गई। पूज्यश्री ने उनके परिणामों को स्थिर रखने के लिए अंतिम उपदेश देना आरभ किया। हणुतमलजी महाराज ने सथारा करने की इच्छा प्रकट की।

मुनिश्री की बीमारी का समाचार कई स्थानो पर पहुंच गया था। आठवे दिन जावरा के श्री प्यारचन्दजी डफरिया तथा एक दूसरे सज्जन वहां पहुंच गये। उन्होंने तथा सभी सन्तो ने सथारा करा देने की सम्मति दी, लेकिन पूज्यश्री शीघ्रता नहीं करना चाहते थे। आपने वहा के कुछ समझदार व्यक्तियो से परामर्श किया। सभी ने एक ही बात कही–'अब मुनिजी के बचने की कोई आशा नहीं है। परलोक-सुधार के लिए उचित अन्तिम क्रियाए करा देना चाहिए।'

इस प्रकार सब का एक मत जानकर पूज्यश्री ने चार बजे दिन को तिविहार संथारा करा दिया। उसके बाद फिर अवस्था बिगड़ते देखकर चौविहार करा दिया। दूसरे दिन ग्यारह बजे मुनि श्रीहणुतमलजी महाराज ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर दिया। आपकी परिणाम धारा अन्त तक निर्मल रही। पूज्यश्री पास में बैठकर अन्त तक ससार की असारता, जीवन की क्षण भगुरता और धर्म की उपादेयता का उपदेश देते रहे।

गाव की जनता ने स्वर्गस्थ मुनिश्री की धर्म दृढ़ता और कष्टसहिष्णुता की बड़ी प्रशंसा की और विधिपूर्वक अंतिम सस्कार किया।

खुर्रमपुरा मे इस प्रकार कष्टमय काल व्यतीत करके पूज्यश्री ने वहा से विहार किया। लालचन्दजी महाराज के नजदीक शीघ्र पहुचना चाहते थे अतः आप जल्दी-जल्दी विहार करने लगे। जिस गाव के समीप सूर्य अस्त होने को होता वही ठहरते। रास्ते के ग्रामों में रूखा-सूखा थोडा-बहुत जो भी आहार-पानी मिलता उसी पर निर्वाह करते। इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक विहार करते हुए पूज्यश्री बालसमद पधारे।

बालसमंद में ठहरने के लिए कोई स्थान नही मिला। अन्त मे पूछताछ करने पर एक धर्मशाला का पता चला। पूज्यश्री वहा पहुचे। धर्मशाला एक प्रकार से पशुशाला थी। इधर-उधर से गाडीवान आते। अपने बैल उसमे बाध देते और आग तापते-तापते रात बिताकर चल देते। गोबर और पेशाव

के कारण वहा बेहद डास-मच्छर और जवे थे। जहा-तहां गोवर और पेशाब भरा घास विखरा था। जो बहुतों का है वह किसी का भी नही है।ऐसी स्थिति में धर्मशाला की सफाई कौन करता ? सार्वजनिक स्थानों को मैला-कुचैला करने की प्रवृत्ति शिष्ट भारतीय जनता में भी पाई जाती है। फिर इस धर्मशाला मे तो अशिक्षित ग्रामीण और उनके पशु ही ठहरते थे। वहा सफाई का क्या काम ?

थोडी देर तक तो पूज्यश्री धर्मशाला मे बैठे रहे मगर रात्रि व्यतीत करना वहा असंभव जान पड़ा। आपने मुनिश्री गणेशीलालजी म. को दूसरे स्थान की खोज करने के लिए भेजा। मुनिश्री बहुत घूमे-फिरे मगर कोई उपयुक्त स्थान न मिला। अलबत्ता एक गृहस्थ के घर के बाहर का चबूतरा दिखाई दिया। चबतूरे का मालिक कहीं बाहर गया था। मुनिश्री ने घर मालिक की पुत्र-वधू से चबतूरे पर रात-विश्राम करने की आज्ञा मागी। वह आनाकानी करने लगी। वहा के लोगों की धारणा थी कि चोर और डाकू साधु के वेष में फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चलते बनते है।

मुनिश्री ने उस बहिन को बहुत समझाया। कहा-हमारे गुरुजी बहुत बडे महात्मा है। वे अपने पास पैसा- टका कुछ नही रखते, बड़े-बडे लखपति और करोड़पति उनके चरणों में गिरते हैं। वे अपने एक भक्त रोगी साधु को दर्शन देने के लिए उग्र विहार करते हुए दक्षिण की ओर जा रहे हैं। बहिन! तुम अपना अहोभाग्य समझो कि ऐसे महात्मा के दर्शन के लाभ का तुम्हें अवसर मिला है। रात भर विश्राम करके सुबह होते ही चले जाएगे। रात को धर्म की बातें, भजन और भगवत्कथा सुनाएगे। दिन भर चलते-चलते बहुत थक गये हैं। अब और कही नही जा सकते। मुनिश्री की इन बातों से उस बाई का दिल पसीज गया, किन्तु वह अपने ससुर से डरती थी।ससुर बडा क्रोधी था। उसने कहा-'महाराज! वे आने ही वाले है और आते ही तुम्हे उठा देंगे। मेरी ओर से तो मनाई है नहीं।'

मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने कहा-'अच्छा बाई, कोई हर्ज नही। हम तुम्हारे ससुर को भी समझा लेंगे।'

इस प्रकार उस बहिन की अनुमति पाकर चारो मुनि वहा ठहर गये। भण्डोपकरण उतारकर अभी बैठे ही थे कि घर-मालिक आ पहुचा। अपनी जगह में साधुओ को बैठा देखते ही दूर से ही उसने अपशब्दों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। पास आकर बोला-देखो, अपना भला चाहते हो तो फौरन से पेश्तर अपना सामान उठाओ और लम्बे बनो। ठहरना है तो धर्मशाला मे जाओ। मेरा मकान धर्मशाला नही है। उठो जल्दी करो। वर्ना तुम्हारे यह सब पात्र वगैरह फोडकर टुकड़े-टुकडे कर डालूंगा। '

पूज्यश्री ने तथा मुनि श्रीगणेशीलालजी म. ने उसे बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की, मगर वह भलामानुस न समझा। सौ बातो का एक ही उत्तर उसके पास था- 'बस उठ जाओ, जल्दी करो। मै तुम्हे ठहरने दूगा तो मेरा मकान धर्मशाला बन जाएगा। सभी भिखमगे मेरे घर पर ही ठहरने लगेंगे। मै ऐसा रिवाज नही डालना चाहता।'

मुनिश्री की चर्या कितनी कठोर है! सयम की साधना करना दूध-बतासे का कौर नहीं है- तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति को बिना किसी क्षोभ के मन से सह लेना बहुत बडी बात है। प्रतिदिन का लगातर लम्बा विहार! सुबह से शाम तक पैदल चलना! कई दिनो से भर पेट आहार तक न मिलना! और फिर यह व्यवहार! ठहरने को साधारण-सा भी स्थान नही! डांस-मच्छरो को अपना शरीर समर्पित करना! हे मुनि! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है!

अन्त मे पूज्यश्री अपने शिष्यो के साथ वहा से चल दिये और उसी धर्मशाला का आसरा लिया। धर्मशाला के पास तेली का एक घर था। सत उससे थोडा-सा सूखा घास माग लाये। वह नीचे बिछाया और किसी तरह रात काटी। प्रातःकाल घास वापस देकर वहा से विहार कर दिया।

विहार करके पूज्यश्री सेंधवा पधारे। इसके बाद और भी उग्र विहार आरम्भ कर दिया और ग्यारह कोस चलकर एक चौकी में ठहरे। रास्ते मे पाच गावो में गोचरी करने पर भी सिर्फ डेढ़ रोटी, आधा सेर के करीब भुने चने और थोड़ी-सी खट्टी छाछ मिली। उसी पर निर्वाह करके पूज्यश्री आगे बढे!

खुर्रमपुरा पहुचने के बाद एक-दो दिन छोड़कर कभी भरपेट आहार नहीं मिला था। थोडा-बहुत जो भी मिल जाता उसी पर चार साधुओं को गुजारा करना पड़ता। उग्र विहार के कारण भूख भी कड़ाके की लगती थी। फिर भी सब साधु प्रसन्न थे। बीकानेर और उदयपुर आदि स्थानो में बड़े-बड़े रईसों और करोडपति सेठो द्वारा भक्ति-भाव पूर्वक वदना करते समय आपके हृदय में जैसे भाव रहते थे, इस कष्टकर विहार के इस गाढ़े समय में भी वैसे ही भाव थे।

जिनके उपदेश से हजारों भूखो को रोटी मिल जाय वे अपनी भूख की परवाह नही करते। दूसरों की भूख उन्हे जितना सताती है उतना अपनी भूख नही सताती। पूज्यश्री अथवा दूसरे किसी भी साधु को तनिक भी खेद नही हुआ और वे निरन्तर उग्र विहार करते रहे।

चौकी से विहार करके पूज्यश्री शीरपूर और वगाणी होते हुए माडल पधारे। उग्र विहार और अल्प आहार के कारण साधुओं का शरीर कुछ निर्बल-सा हो गया था मगर मन अधिक प्रबल बन गया था।

५-६ दिन मांडल ठहर कर आपने विहार किया और धूलिया पहुचे। धूलिया में पूज्यश्री को ज्वर हो आया, अत. एक सप्ताह रुकना पड़ा। सात दिन में पूज्यश्री का उपदेश सिर्फ डेढ़ घटा हो सका। इतने उपदेश से ही लोग बहुत प्रभावित हुए और कुछ दिनों ठहरने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री को महाराष्ट्र पहुंचने की जल्दी थी; अतएव स्वास्थ्य कुछ ठीक होते ही आपने धूलिया से विहार कर दिया।

लालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज उस समय चारौली में थे। पूज्यश्री धूलिया से विहार करके मालेगाव, मनमाड़ होते हुए राहोरी पहुचे। यहा से चारौली पधारने वाले थे, मगर राहोरी पहुचते ही आपको लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। जिस भक्त की भावना पूरी करने के लिए अपने कई आवश्यक कार्य अधूरे छोड़कर पूज्यश्री राजपूताना से रवाना हुए थे और मार्ग में भयकर से भयकर कष्ट झेलते हुए, भूख-प्यास विसर कर थोड़े ही समय मे आपने इतनी लम्बी यात्रा की थी, उस भक्त ने आपके पहुचने से पहले ही महायात्रा कर दी। भक्त के नेत्र अतृप्त ही रह गये। उन्होंने अपने आराध्य के दर्शन न कर पाये। किन्तु उस आराध्य की क्या स्थिति हुई होगी जो सैकड़ों कष्ट उठाकर और सैकड़ो मील का लम्बा विहार करके भी अपने भक्त की अन्तिम अभिलाषा पूरी न कर सका। मनुष्य की यह विवशता देखकर पूज्यश्री को बड़ी विरक्ति हुई।

जिस प्रकार मानव-जीवन क्षणभंगुर है उसी प्रकार विवश और पराधीन भी है। मनुष्य की ऐसी कोई योजना नहीं है जिसे वह पूरा करने का या उसका फल प्राप्त करने का दावा कर सकता हो। भागीरथ प्रयास करने पर भी ऐन मौके पर जरा-सी बात किसी भी योजना को सदा के लिए समाप्त कर देती है। विवशता की इस दुनिया में रहकर मनुष्य किस बूते पर गर्व कर सकता है ? गर्व कर सकते है वे जो विवशताओ को जीत चुके है। यह जीत आध्यात्मिक बल से ही प्राप्त होती है। अतएव मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा और प्रधान उद्देश्य आध्यात्मिक बल प्राप्त करना ही होना चाहिए।

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिलने से पूज्यश्री ने चारौली जाना स्थगित कर दिया। आपने यही से मालवा की ओर लौट जाने का इरादा किया। मगर अहमदनगर श्रीसघ का प्रतिनिधिमडल आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ और अहमदनगर पधारने की प्रार्थना करने लगा। श्रीसघ के तीव्र आग्रह को आप टाल न सके और अहमदनगर पधारे। यहा महासती श्री रामकुवरजी महाराज के पास एक दीक्षा होने वाली थी। श्रीसघ के विशेष आग्रह से आपने दीक्षा-सम्मेलन तक ठहरना स्वीकार कर लिया।

उन दिनों अहमदनगर मे दुर्भिक्ष था। २२ फरवरी, १९२२ के 'जैन प्रकाश' में जैनसमाज का उल्लेख करते हुए सम्पादक ने लिखा था-

'अहमदनगर जिला-वासियो की दुर्दशा जिन्हे देखनी हो वे वहा जाकर स्वय देखें, अथवा वहां के किसी नागरिक से दर्याफ्त करे; लेकिन इस ओर ध्यान अवश्य दे। जहा मनुष्य के लिए जीने की आशा, निराशा में परिणत हो रही हो वहा पशुओं की दुर्दशा का क्या ठिकाना है ? हजारों मनुष्य विधर्मी हो रहे है। सैकड़ो ओसवाल वश के भूषण, होनहार बच्चे निराश्रित होकर इधर-उधर भटक रहे है। इस समय साधुमार्गी जैन समाज की ओर से एक भी सस्था नही जो निराश्रितों को आश्रय दे। यह अभाव बहुत खटकता है।

इस समय अहमदनगर के सुदैव से दयामयहृदय, विद्यानुरागी, मार्मिक प्रभावशाली वक्ता, पडित प्रकाड पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहब वहा विराज रहे है। अत. अहमदनगर निवासी श्रावको को उचित है कि वे इस कमी को पूर्ण करने का प्रयत्न करे।'

पूज्यश्री ने उस समय बडे ही मार्मिक शब्दों मे दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए भूखों मरने वाले प्राणियों की रक्षा करने का उपदेश दिया। फल-स्वरूप सेठ मोतीलालजी मूथा सतारा-निवासी और श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, बी. ए. एल. एल. बी. ने पीड़ित जनता की सेवा करने के लिए एक योजना तैयार की और कार्य आरभ कर दिया। इससे बहुत-से भाइयों को सहायता मिली।

अहमदनगर मे तेलकूड़-निवासी श्रीभीमराजजी, पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। श्रीभीमराजजी बडे दयालु और धर्मात्मा थे। इसी कारण वह लोकप्रिय भी बहुत थे। न केवल गाव के वरन् उस प्रान्त के किसान, गरीब, अमीर सभी आपका आदर करते थे। वे अपनी आजीविका धर्म-पूर्वक ही करते थे। किसान, हजारो की कीमत के खेत आपके यहा गिरवी रखते थे किन्तु जब पूरी रकम अदा करने मे असमर्थ होकर, दुःखी हृदय से आपके पास आते तो आपका दिल पिघल जाता था। उसके पास जो भी कुछ देने को होता, ले लेते और खेत उसका लौटा देते ? जब आपके कोई कुटुम्वी आपके ऐसे व्यवहार

का विरोध करते और कहते कि पूरी रकम अदा न करने से तो खेत ही अपना हो जायगा, तो श्री भीमराजजी प्रेम के साथ उन्हे समझाते थे। कहते थे– इतने दिनों तक गिरवी रखे हुए इनके खेत का अन्न हम लोगो ने खाया है और अब खेत भी हजम कर जाना चाहते हो। बेचारे कितने दुखी है! अपने पुरुषार्थ से कमाओ। दूसरो को लूटकर पेट भरना महापाप है।

श्रीभीमराज का व्यवहार अगर इतना दयामय न होता तो वे एक बडे लखपति गिने जाते।

उन्होने पूज्यश्री से तेलकूड पधारने की विनम्र प्रार्थना की। पूज्यश्री अहमदनगर से विहार करके मीरी होते हुए वहा पधारे। वहा आप मारुति-मदिर में विराजे थे। उसी दिन भीमराजजी अपने पन्नालालजी और चुन्नीलालजी नामक दो पुत्रों के साथ पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। पुत्रों ने विनोद में कहा- पिताजी! आप कहते थे कि अगर पूज्यश्री यहां पधार जावें तो मै दीक्षा ले लूं। अब आपका क्या विचार है?

भीमराजजी ने उत्तर दिया- 'मै तो अब भी तैयार बैठा हूं। तुम्हारी और तुम्हारी माता की अनुमति मिलने की देरी है। अनुमति मिल जाय तो मै दीक्षा लेकर अपना जीवन सफल कर लूं।'

सबकी अनुमति मिल गई और भीमराजजी ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। वे वयस्क पुरुष थे। यह प्रश्न खडा हुआ कि उनकी सेवा कौन करेगा? साधु, श्रावक से सेवा नही कराते। अतः भीमराजजी के साधु हो जाने पर उनकी सेवा करने वाले को भी साधु हो जाना चाहिए। अतएव प्रश्न यह था कि उनके साथ दूसरा कौन साधु होता है? जब सब लोग इस सोच-विचार में थे तब तक एक वीर बालक साहस के साथ आगे आ गया। उसने कहा- 'ताऊजी की सेवा मैं करूगा। मै भी आपके ही साथ दीक्षा-अगीकार करूगा।' आत्म कल्याण का और साथ ही संतसेवा का दोहरा लाभ मिलना बडे भाग्य की बात है।'

बालक का यह उत्साह देखकर लोगो को आश्चर्य हुआ। वह बालक था- भीमराजजी का भतीजा। बालक का नाम-सिरेमल।

ससार के अनुभव से रहित एक बालक मे इस प्रकार की धर्मभावना होना असाधारण नहीं तो विरल घटना अवश्य है। ऐसी धर्मभावना माता-पिता के धार्मिक सस्कारों से आती है। जो माता-पिता अपने बालक को शरीर ही नहीं वरन् सुसस्कार भी प्रदान करते है उन्ही का गृहस्थ जीवन सार्थक होता है।

पूज्यश्री ने अपने एक प्रवचन मे कहा था-'बच्चों के सस्कार बचपन मे ही सुधारने चाहिए। बड़े होने पर तो वह अपने आप सब बातें समझने लगेंगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे हुए सस्कारो के ही अनुसार होगी। वचपन मे जिनके सस्कार नही सुधरे, उनकी दशा यह है कि कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल देते है। इसके विपरीत सुसंस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते है उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्त्व है।'

माता-पिता सन्तान उत्पन्न करके छुटकारा नहीं पा जाते, किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के साथ ही उनका उत्तरदायित्व आरभ होता है। शिक्षक के सुपुर्द करने से भी उनका कर्त्तव्य पूरा नही होता। उन्हें

बालक के जीवन-निर्माण के लिए स्वयं अपने जीवन को आदर्श बनाना चाहिए। सस्कार-सुधार की बहुत बडी जिम्मेदारी उन पर भी है। बालक को उत्पन्न कर देने से नही वरन् उसे सस्कारी बनाने से ही माता-पिता का कर्ज बालक पर चढता है।'

'अच्छी और सदाचारी सतान उत्पन्न करने के लिए पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिए। बबूल के वृक्ष मे आम का फल नही लग सकता।'

पूज्यश्री के इन महत्त्वपूर्ण उद्गारो की प्रत्यक्ष साक्षी श्री सिरेमलजी ने उपस्थित की। आपकी यह धर्मभावना आपके परिवार की धर्मभावना का प्रतिबिम्ब था। भीमराजजी का सारा परिवार धर्म-प्रेमी था। श्री सिरेमलजी की माताजी पहले ही दीक्षित हो चुकी थी। कुटुम्ब के किसी भी व्यक्ति का दीक्षा लेना उस कुटुम्ब के सदस्य सौभाग्य की बात समझते थे। जिस समय की यह घटना है उस समय सिरेमलजी की सगाई की तैयारियां हो रही थी। फिर भी उनके मार्ग में कोई रुकावट नही डाली गई। उन्हे भी दीक्षा लेने की अुनमति मिल गई। इस परिवार से और भी अनेक पुरुषो एव स्त्रियों ने दीक्षा ली है। उनमे से सिरेमलजी म. उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त करके इस सम्प्रदाय में चमक रहे है। समाज को आपसे बड़ी-बड़ी आशाए है।

तेलकूडगाव मे दो दिन ठहरकर और इन्ही दो दिनों में दो भव्य पुरुषों को लोकोत्तर कल्याण का पथ प्रदर्शित करके पूज्यश्री कोकाना, हिवडा होते हुए बेलापुर पधारे।

श्री सिरेमलजी की सगाई के लिए जो सामग्री इकट्ठी की गई थी उसे बहिन-बेटियों में बाटकर सिरेमलजी को अपने साथ लिये श्रीभीमराजजी बेलापुर आ पहुचे और पूज्यश्री की सेवा मे रहकर साधु-प्रतिक्रमण सीखने लगे।

उसी समय अहमदनगर के मुख्य-मुख्य श्रावक पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और अपने नगर मे चातुर्मास करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। उधर जलगाव का श्रीसघ भी उपस्थित हुआ और उसने भी चौमासे की प्रार्थना की। हैदराबाद (दक्षिण) और तासगांव में चौमासा करने की भी प्रार्थना की गई। सतारा निवासी सेठ चन्दनमलजी मोतीलालजी मूथा ने सतारा मे चातुर्मास करने की प्रार्थना करते हुए कहा-'सतारे में आज तक न तो कोई दीक्षा हुई है और न आपश्री का चौमासा ही हुआ। अतएव दोनो कार्य सतारे मे हो तो धर्म की बहुत प्रभावना होगी। अजैन जनता भी धर्म का महत्त्व समझने लगेगी।' यह सुनकर पूज्यश्री ने मूथाजी की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

बेलापुर से विहार करके पूज्यश्री अहमदनगर पधारे। वहा मुनि श्रीघासीलालजी महाराज आपसे मिल गये। श्रावको ने चौमासे के लिए फिर प्रार्थना की मगर पूज्यश्री अब तो सतारे के लिए वचन दे चुके थे। फिर भी अहमदनगर सघ की प्रार्थना का खयाल करके मुनिश्री घासीलालजी महाराज और तपस्वी श्री सुन्दरलालजी महाराज को वहा चौमासा करने की आज्ञा फरमाई।

सतारा में दीक्षा-समारोह

अहमदनगर से सतारा ७५ कोस दूर है। पूज्यश्री विहार करके वैशाख शुक्ला अष्टमी, गुरुवार को प्रात काल सतारा पधार गये। आपके साथ पाच और साधु थे। तपस्वीराज स्थविर मुनिश्री मोतीलालजी महाराज भी साथ थे।

सतारा के श्रावकों और श्राविकाओं मे अपार हर्ष छा गया। पूज्यश्री ने जिस समय रतलाम से दक्षिण की ओर विहार किया था, उसी दिन से सतारा की जनता आशा लगाये बैठी थी। चातुर्मास की स्वीकृति से आशा फूल उठी और जब पूज्यश्री साक्षात् पधार गये तो आशा फलवती हो गई। अत· सतारा के श्रीसघ को असीम हर्ष होना स्वाभाविक ही था।

दोनो वैरागी पूज्यश्री के सतारा पहुंचने से २०-२५ दिन पहले ही वहां पहुच चुके थे। वे साधु-प्रतिक्रमण सीख रहे थे। पूज्यश्री के पधारने पर दोनों ने शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

पूज्यश्री ने फरमाया-'पहले घरवालों की आज्ञा नियमानुसार लेनी होगी, फिर दीक्षा का दिन निश्चित किया जायगा।'

भीमराजजी ने कहा- हम घर से सब की सम्मति लेकर आये हैं, अब फिर आज्ञा प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं रही है। इसके अतिरिक्त अपने घर मे मै सब से बडा हू। मुझे आज्ञा कौन देगा ? रहा सिरेमल; सो वह जब लगभग ९ वर्ष का था, तब उसकी माता ने दीक्षा लेने से पहले मुझ से कहा था- 'मेरे बाद आप ही इसके मा-बाप हैं। इसका पालन करें और फिर किसी योग्य साधु के पास दीक्षा दिला दें। दीक्षा के लिए मेरी आज्ञा है।

उनका यह अंतिम आदेश मुझे भली-भाति स्मरण है। माता की अभिलाषा पूर्ण करना मेरा कर्त्तव्य है। मेरे ऊपर उसका उत्तरदायित्व है। सिरेमल की अवस्था अब १२ वर्ष की हो गई है। लडका बड़ा बुद्धिशाली है। समयानुसार सब बाते समझता है। हम इसकी सगाई की तैयारी कर रहे थे मगर आपका पदार्पण हुआ और इसने सगाई करने से इंकार कर दिया तथा दीक्षा लेने को तैयार हो गया। हमने कई बार पूछा कि तुम विवाह करोगे या दीक्षा लोगे ? यह अपने निश्चय पर अटल रहा और अत तक दीक्षा लेने के लिए ही कहता रहा है। इस प्रकार उसकी माता पहले ही आज्ञा दे चुकी है और सरक्षक की हैसियत से मै आज्ञा देने को तैयार हू। हम दोनो घरवालों की सहमति लेकर ही आये है। आपश्री भी यह जानते है। फिर सदेह का क्या कारण है ?

अभिभावक अथवा घर वालों की स्वीकृति के बिना किसी को दीक्षा देना शास्त्रविरुद्ध है। पूज्यश्री स्पष्ट रूप से लिखित आज्ञा-पत्र चाहते थे, ताकि शास्त्रीय मर्यादा का सम्यक् प्रकार से पालन हो।

इस प्रकार की बाते चल ही रही थी कि सिरेमलजी के बड़े भाई श्रीदानमलजी सतारा आये। घर मे वही बडे थे। भीमराजजी ने श्रीसघ से कहा- अब आप पूछकर अपना सशय निवारण कर लीजिए।

श्री दानमलजी से श्रीसघ ने पूछताछ कर ली और दानमलजी ने स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिलने के दूसरे ही दिन दीक्षा का मुहूर्त्त निश्चय कर दिया गया। दानमलजी से लिखित आज्ञापत्र ले लिया गया। छपी हुई आमंत्रण पत्रिकाए जगह-जगह भेज दी गई। दीक्षा समारोह मे सम्मिलित होने के लिए दानमलजी अपने घरवालो को लाने के लिए गये और ले आये।

नियत समय पर जुलूस दीक्षास्थल पर पहुच गया। पूज्यश्री वहां पहले ही विराजमान थे। दोनो दीक्षार्थी के योग्य वस्त्र-पहनकर पूज्यश्री के चरण-कमलो मे उपस्थित हुए। पूज्यश्री ने साधु-जीवन के कष्टों और परीषहो का वर्णन करते हुए पूछा- 'क्या तुम इन कष्टों को सहन कर सकोगे ? वैरागियो

ने दृढता और हर्ष के साथ स्वीकृति प्रकट की। तब पूज्यश्री ने साधु-जीवन की प्रतिज्ञाए करवाई और केशलोंच किया। बाद में साधु के कर्त्तव्य विषय पर सुन्दर और सामयिक भाषण किया। भगवान् महावीर और जैन-धर्म की जय की ध्वनि के साथ महोत्सव सम्पन्न हो गया। अन्त मे प्रभावना वितरण की गई।

इस महोत्सव में माहेश्वरी भाइयो का तथा दूसरे सतारा-निवासियो का उत्साह प्रशसनीय था। ऐसा जान पडता था कि उत्सव केवल जैनो का नहीं, वरन् समस्त सतारा शहर का है। पूज्यश्री की प्रभावशाली वक्तृत्व शैली और उनका शानदार व्यक्तित्व ही जैनेतर समाज के सम्मिलित होने का प्रधान कारण था।

दीक्षा-समारोह सम्पन्न होने के अनन्तर पूज्यश्री कराड होते हुए तासगाव पधारे। वहा से विविध स्थानो में धर्म-प्रचार करते हुए फिर सतारा पधार गए।

इकतीसवां चातुर्मास (१९७९)

पूज्यश्री ने सात सन्तों के साथ वि. स. १९७९ का चातुर्मास सतारा में किया। तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की अवस्था अब पैसठ वर्ष की हो गई थी, फिर भी आपने लम्बी तपस्या की। पूर के दिन अभयदान आदि अनेक उपकार के कार्य हुए। मच्छीमारों का बाजार दो दिन बन्द रक्खा गया। वे पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये। अमावस्या के दिन वे लोग पहले से ही जाल नहीं डालते थे, व्याख्यान सुनकर उन्होने ग्यारस को भी मछलिया मारने का त्याग कर दिया। कुछ ने तो जिदगी भर के लिए मछली मारना छोड दिया।

सतारा–चातुर्मास मे पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने के लिए दादा करदीकर तथा राव साहब काले जैसे प्रतिष्ठित जैनेतर सज्जन भी उपस्थित होते थे। एक दिन राव सा. ने सक्षिप्त भाषण करते हुए कहा– 'जिसमें पूज्यश्री सदृश विद्वान् और खरे सत है वह समाज धन्य है। ऐसे महापुरुष के दर्शन करके हम धन्य हो गए। हमारे पूर्व सचित पुण्य के प्रभाव से ही आप यहा पधारे है। अब तक हमारी दृष्टि में जैनधर्म एक मामूली मत था; मगर पूज्यश्री के उपदेशों से उसका महत्त्व हमारी समझ मे आ गया है। अब हम मानते है कि जैनधर्म का आश्रय लेकर भी मनुष्य आत्म–विकास की चरम सीमा पर पहुच सकता है।'

पर्युषण पर्व

सतारा मे पर्युषण पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया गया। मारवाड़, मेवाड, मालवा, गुजरात, नागपुर, महाराष्ट्र, और काठियावाड़ आदि प्रान्तो के अनेक श्रावक और श्राविकाए पूज्यश्री के दर्शन के लिए तथा पूज्यश्री की सेवा मे रहकर पर्युषण की आराधना करने लिए आये थे। पर्व के समय पूज्यश्री लम्बे समय तक व्याख्यान फरमाते थे। पहले प. मुनि श्रीगणेशीलालजी म. अपनी मधुर वाणी मे टीका सहित शास्त्र की व्याख्या करते थे और फिर पूज्यश्री का प्रवचन होता था। शास्त्र के आदेश और वर्त्तमान जीवन में असामजस्य क्यों दिखाई दे रहा है ? और इसे दूर करने का उपाय क्या है ? इत्यादि विषयो पर पूज्यश्री बहुत ही मार्मिक विवेचन करते थे। जैन और जैनेतर श्रोता मत्र-मुग्ध होकर सुनते थे।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी अर्थात् सवत्सरी के दिन पूज्यश्री का विद्यादान और अभयदान पर व्याख्यान हो रहा था। व्याख्यान भवन खचाखच भरा था। उसी समय सेठ मोतीलालजी मूथा ने श्री

चन्दनमलजी मूथा की स्मृति मे पन्द्रह हजार रुपयों के उदारतापूर्ण दान की घोषणा की। उसके उपयोग के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण करते हुए आपने कहा-'जब तक किसी उपयोगी सस्था की स्थापना नहीं हो जाती तब तक इस रकम का ब्याज विविध प्रकार के धार्मिक कार्यो मे खर्च किया जायगा। योग्य स्थान स्थापित होने पर सारी रकम उसे सौंप दी जायगी।' आपने यह भी कहा-' कई दिनो से हम पूज्यश्री का उपदेश सुन रहे है। मैं मानता हू कि उपदेश सुनकर हमे बडे से बड़ा त्याग करना चाहिए। मगर मेरा यह दान तुच्छ है। किन्तु पूज्यश्री के उपदेशो का हमारे हृदय में अभी अकुर ही उगा है। हमारे भाग्योदय से तथा पूज्यश्री की कृपा से भावना का यह अकुर एक दिन अवश्य वृक्ष का रूप धारण करेगा और हम अपने जीवन में शान्ति का अनुभव करेगे, ऐसी आशा है। हमारे पहले के पुण्य का ही यह प्रभाव है कि जिस बात की कल्पना करना भी दुस्साहस समझा जा सकता था वही आज प्रत्यक्ष हो चुकी है। पूज्यश्री ने सतारा में चातुर्मास करने की कृपा की और सोने में सुगन्ध के समान आप महानुभावों की चरणरज से हमारा नगर पवित्र हुआ है। हमारी आत्मा आज कृतकृत्य है। सत्य समझिए कि हमारे जीवन मे इससे बढ़कर हर्ष का विषय कोई दूसरा नही हुआ। पूज्यश्री के महान् उपकारों का बदला हम धन, जीवन और सर्वस्व अर्पण करके भी नही चुका सकते। पूज्यश्री को सतारा तक पहुंचने मे अनेक कठोर परीषह सहने पडे हैं। आपने हमारे कल्याण के लिए ही सब कुछ सहन किया है। हम उनके इस ऋण से किसी भी प्रकार मुक्त नही हो सकते। अन्त में हम अपनी ओर से हुई अविनय आसातना के लिए पूज्यश्री से क्षमा-याचना करते हैं।

चातुर्मास का अन्तिम दृश्य

चातुर्मास समाप्त होने जा रहा था। पूज्यश्री अंतिम व्याख्यान फरमा रहे थे। नगर के बड़े-बड़े विद्वान्, वकील तथा इतर जैन एव जैनतर श्रोताओं से व्याख्यान भवन भरा हुआ था। रीवा (मारवाड़) के प्रतिष्ठित रईस सेठ मगनमलजी और श्री नौरतनमलजी भी उपस्थित थे। पहले मुनि श्री गणेशीलालजी महाराज का व्याख्यान हुआ। तत्पश्चात् पूज्यश्री ने एक कुल पुत्र का उदाहरण देते हुए 'मानव-कर्त्तव्य' की अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक व्याख्या की। आज व्याख्यान भवन मे सर्वत्र विषाद की छाया स्पष्ट नजर आती थी। पूज्यश्री की आसन्न विदाई के विचार से जनता का हृदय गद्‌गद् हो रहा था।

सेठ मोतीलालजी मूथा भाषण करने के लिए खडे हुए। मगर उनका हृदय गद्‌गद् हो उठा। आंखो से आसुओ की धारा बहने लगी। किसी प्रकार जी कड़ा करके उन्होने कहा- 'सतारा में ऐसी कोई विशेषता नही थी जिससे कारण पूज्यश्री का पदार्पण यहा होता। किन्तु पूज्यश्री का यह महान् अनुग्रह है कि आपने हमारे को पावन किया। हमारे निर्गुण क्षेत्र मे ही पूज्यश्री ने गुणों की वर्षा करना उचित समझा। कहना चाहिए कि हमारी निर्गुणता ही पूज्यश्री को यहा खींच लाई। अतएव हमारी निर्गुणता भी आज सफल हो गई। पूज्यश्री का हमारे ऊपर महान् उपकार है। दूसरा उपकार मुनि श्रीभीमराजजी का तथा बालक मुनि श्रीसिरेमलजी का है, जिन्होने दीक्षा के लिए सतारा क्षेत्र चुना। तीसरा उपकार हमारे व्यवसाय वन्धु माहेश्वरियो का है जिनकी भक्ति से प्रेरित होकर पूज्यश्री ने सतारा मे चौमासा स्वीकार किया। ऐसा धार्मिक प्रसग मुझे अपने जीवन मे पहली ही वार देखने को मिला, इत्यादि।'

इसके वाद धर्मवीर सेठ दुर्लभजी भाई जौहरी ने संक्षिप्त भाषण करते हुए कहा-स्वर्गीय महाप्रतापी आदर्श क्रियावान् पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज के उत्तराधिकार को जिस खूबी और योग्यता

से पडितप्रवर पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज पार लगा रहे है, उसे देखते हुए हम श्रावको को भी चाहिए कि हम पूर्ववत् श्रद्धा, भक्ति और प्रीति रक्खे। हम देख रहे हैं कि उनके मुख से शब्द निकलना भी कठिन हो गया। कोमल हृदय भव्य प्राणियो के लिए ऐसा होना स्वाभाविक है। मगर वास्तव में इतना दुखी होने की कोई बात नही है। पूज्यश्री सतारा से पधार रहे है, मगर सतारा को धर्ममय बनाकर पधार रहे हैं। लोहे को सोना बनने के बाद पारसमणि बिछुड़ ही जाती है। मुझे विश्वास है, जहा ऐसी धर्म-भावना है वहा धर्म की उन्नति अवश्य होगी।'

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। चातुर्मास मे पूज्यश्री ने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा सुनाई थी। आज कथा की पूर्णाहुति थी। धर्म और सत्य का पालन करने के लिए चाण्डाल के हाथ बिक जाने वाले राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र स्वभावत. करुणापूर्ण है। जिस पर पूज्यश्री ने अपनी वाणी के चमत्कार से उसे और भी प्राणवान् बना दिया था। एक तो पूज्यश्री की विदाई का विषाद, दूसरे राजा हरिश्चन्द्र की करुण कथा! जनता की स्थिति विलक्षण हो गई। सभी श्रोता गद्‌गद् हो गये। सेठ मोतीलालजी के संक्षिप्त वक्तव्य के बाद सेठ मगनमलजी ने कहा- 'इस प्रकार का अतिशय और इस प्रकार की भक्ति मैने अन्यत्र कही नही देखी।'

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को पूज्यश्री का अतिम उपदेश हुआ। नगर के अनेक विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे। आज फिर सेठ मोतीलालजी ने अपने सहयोगी ब्राह्मण, माहेश्वरी, नाई आदि बन्धुओ का आभार माना और पूज्यश्री ने श्रोताओ को सान्त्वना देते हुए कहा- 'धर्मोपदेश देना मेरा कर्त्तव्य है। यदि आप इसे अपना उपकार मानते है, प्रत्युपकार की भावना रखते हैं तो मै आपसे एक ही वस्तु मागना चाहता हू और वह यह है कि मैंने जो बातें आपको बतलाई है, उन्हे आप आचरण में लाने का अभ्यास कीजिये। धर्म पर श्रद्धा रखिए। अहिंसा-धर्म को ही ससार के लिए हितकारक मानिए। सत्य तथा धर्म का उपदेश देते समय बहुत-सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहनी पडती है, किन्तु उनमें एकान्त हितभावना रही हुई है। मेरी किसी भी बात से किसी का दिल दुखा हो तो मै क्षमा चाहता हू।'

इसके बाद सतारा के प्रसिद्ध वकील राव साहब सोमन ने पूज्यश्री का आभार माना और पूज्यश्री के सदुपदेशो को अमल मे लाने से लिए जनता को प्रेरणा की।

सतारा में पूज्यश्री के चातुर्मास से अनेक उपकार हुए। जैनेतर शिक्षित-अशिक्षित जनता की जैनधर्म के विषय मे जो मिथ्या धारणाए अर्से से चली आ रही थी वह सब सफा हो गई। लोगो को जैन-धर्म का सच्चा स्वरूप समझने का सुअवसर मिला। बहुत-से लोगो ने तरह-तरह का त्याग-प्रत्याख्यान किया। भाऊ पटेल नामक एक सज्जन ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया। कइयों ने मास-मदिरा का परित्याग किया। पारस्परिक मैत्री, सदाचार, गुणो से प्रेम, प्रामाणिकता आदि मानवीय गुणो के विषय मे पूज्यश्री ने मार्मिक उपदेश दिया।

इस चातुर्मास मे बलुन्दा (मारवाड) निवासी श्रीमान् सेठ गगाराम जी साहब मूथा तथा सेठ गिरधारीलाल जी सांखला आदि बेगलौर श्रीसङ्घ के प्रमुख व्यक्ति बैगलौर मे चातुर्मास करने की प्रार्थना करने उपस्थित हुए। मगर इतनी जल्दी पूज्यश्री कोई आशाजनक उत्तर न दे सके।

अवश्य है फिर भी आपके पधारने से बम्बई में धर्म का वहुत प्रचार होगा। बंवई की विशाल जैन जनता का भी असीम उपकार होगा। कृपाकर हमारी अभ्यर्थना स्वीकार कीजिए और कष्ट झेलकर भी एकबार अवश्य पधारिए।

पूज्यश्री ने एक बार घाटकोपर पधारने की स्वीकृति दे दी। कुछ दिनों पश्चात् नासिक होते हुए घाटकोपर पधार गये। वहां आपके उपदेश मे हजारों की भीड़ होना साधारण बात थी। तपस्वी मुनिश्री सुन्दरलालजी ने उस समय पंद्रह दिन की तपस्या की। बम्बई श्रीसङ्घ मे अपूर्व उत्साह था। जब देखा कि पूज्यश्री को स्थान अनुकूल पड़ गया है और धर्म की खूब प्रभावना हो रही है तो श्रीसङ्घ ने चौमासे के लिए फिर प्रार्थना की। पूज्यश्री अब की बार भक्तो का आग्रह न टाल सके। आपने चातुर्मास स्वीकार कर लिया।

उन दिनों घाटकोपर में 'प्रान्तीय राजद्वारी परिषद्' की चहलपहल थी। परिषद के सिलसिले-मे एक दिन जुलूस निकला, जिसमें तीन हजार व्यक्ति थे और सभी के हाथ मे राष्ट्रीय ध्वजा शोभायमान हो रही थी । वे सब पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और वदन करके शातिपूर्वक बैठ गये। पूज्यश्री ने राष्ट्रसेवा, मादक द्रव्य निषेध, मिल के वस्त्रों की अपवित्रता आदि कई विषयों पर धार्मिक दृष्टि से सक्षिप्त और प्रभावजनक भाषण दिया। उस समय सैकड़ो व्यक्तियों ने चाय-तमाखू आदि का त्याग किया और सैकड़ों ने चर्बी वाले वस्त्रों का परित्याग किया।

होली-चातुर्मास घाटकोपर में व्यतीत करके पूज्यश्री माटुंगा होते हुए दादर पधारे। दादर बहुत संकीर्ण और कोलाहलपूर्ण स्थान है। वहा की जनता ने पूज्यश्री से कुछ दिन और विराजने की प्रार्थना की। किन्तु आपने फरमाया- दादर जैसे स्थान सतों के लिए नही, व्यवसायी लोगो के लिए हैं। ऐसे अशान्ति और कोलाहल से परिपूर्ण स्थानो में साधुओं का चरित्र निर्मल नही रह सकता। साधुओ को एकान्त चाहिए, शान्त वातावरण चाहिए। उसी समय आपने श्रीमेघजी भाई को लक्ष्य करके कहा- 'मेघजी भाई! अगर आप साधुओं का संयम निर्मल चाहते हो तो ऐसे प्रवृत्तिमय और धमाल वाले स्थानो में साधुओं को लाना उचित नही हैं।'

पूज्यश्री दादर में सिर्फ दो दिन ठहरे और घाटकोपर लौट आये। यहा श्रीमहावीर जयन्ती पर भाषण देकर आपने विहार कर दिया। मुलून, थाना, पनवेल, उरण आदि स्थानों मे विचर कर चौमासा समीप आने पर आप फिर घाटकोपर पधार गये।

बत्तीसवां चातुर्मास (१९८०)

विक्रम सवत् १९८० का चौमासा पूज्यश्री ने घाटकोपर में व्यतीत किया। इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि सुन्दरलालजी ने ८१ दिन की तपस्या धोवन-पानी के आधार पर की। इतने लम्बे उपवास का वृत्तान्त जानकर बडे-बड़े डाक्टर और विद्वान लोग भी आश्चर्य करते थे। डाक्टरों का विश्वास था कि केवल पानी के आधार पर मनुष्य इतने दिनों तक जीवित नही रह सकता, मगर अपने विश्वास का प्रत्यक्ष खडन होते देखकर उनकी बुद्धि चकरा जाती थी। आखिर वे इस निर्णय पर पहुंचे कि साधारण व्यक्ति से महात्माओ की शक्ति को तोलना उचित नही है। वास्तव में आत्मबल का सामर्थ्य असीम है। जहा आत्मिक बल प्रबल होता है वहा दु:साध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते है। पूज्यश्री ने आत्मबल के सवध में कहा है :-

'आत्मबल मे अद्भुत शक्ति है। इस बात के सामने संसार का कोई भी बल नही टिक सकता। इसके विपरीत जिसमे आत्मबल का अभाव है वह अन्यान्य बलो का अवलम्ब करके भी कृतकार्य नही हो सकता।'

'आत्मबल सब बलो में श्रेष्ठ है। यही नहीं वरन् यह कहना भी अनुचित न होगा कि आत्मबल ही एक मात्र सच्चा बल है। जिसे आत्मबल की उपलब्धि हो गई है उसे अन्य बल की आवश्यकता नहीं रहती।'

'आत्मबल प्राप्त करने की क्रिया है तो सीधी-सादी, लेकिन क्रिया करने वाले का अन्तःकरण सच्चा होना चाहिए। वह क्रिया यह है कि अपना बल छोड़ दो अर्थात् अपने बल का जो अहकार तुम्हारे हृदय मे आसन जमाये बैठा है उस अहंकार को निकाल बाहर करो। परमात्मा के शरण में चले जाओ। परमात्मा से जो बल प्राप्त होगा वही आत्मबल होगा।'

'आत्मबली को प्रकृति स्वयं सहायता पहुंचाती है।'

आत्मबल के द्वारा महात्माओं को भी चकित कर देने वाली शक्ति प्राप्त होती है। ८१ दिन की इस तपस्या को देखकर जैन शास्त्रों मे वर्णित लम्बी तपस्याओं को अशक्यानुष्ठान समझने वाले बहुत-से लोग व्यवहार्य मानने लगे। बड़े-बडे अंगरेज भी तपस्वी जी को देखने आते थे। उपवास-चिकित्सा के एक डाक्टर साहब तो अकसर आपके स्वास्थ्य का चढ़ाव उतार देखने के लिए आया करते। उन्हे अनायास ही अपने अनुभव की वृद्धि का साधन मिल गया।

तपस्या के अतिम दिन हजारों जैन-जैनेतर व्यक्तियो ने मिलकर तप-उत्सव मनाया। उस दिन आने-जाने वाले व्यक्तियो की इतनी भीड़ थी कि रेलवे को स्पेशियल गाडिया चलानी पड़ीं। उसी दिन घाटकोपर पशुशाला के लिए चदा हुआ। दीर्घ तपस्या और पूज्यश्री की वाणी के प्रभाव से अजैन भाइयो ने भी हजारों का त्याग किया। पूज्यश्री के जीवदया के निमित्त करीब सवा लाख का चंदा एकत्र हो गया। इसी अर्से मे जुन्नेर निवासी श्रावक मूलचदजी ने एक मास की तपस्या की।

जीवदया खाते की स्थापना

'मित्रो! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दुखी प्राणियों को देखो। देखो, न केवल नेत्रों से वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी ही विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो।'

घाटकोपर मे होली चातुर्मास व्यतीत करके जब पूज्यश्री ने दादर के लिये प्रस्थान किया तो रास्ते मे मास से भरे हुए टोकरे ले जाते हुए बहुत-से लोगो पर आपकी दृष्टि पडी। दर्याफ्त करने पर ज्ञात हुआ कि बादरा और कुटले के कसाईखानों में जो पशु मारे जाते है उनका मास वेचने के लिए टोकरे वाले ले जाते है। उस समय बंबई में एक लाख चवालीस हजार गाए और भैंसें प्रति वर्ष कटती थी।

बम्बई मे पशुओं को रखना महंगा पड़ता है। अतः दूध का व्यापार करने वाले घोसी अकसर यह करते है कि गाय-भैस जब तक काफी दूध देती है तब तक अपने पास रखते हैं और ज्योंही दूध तीन-चार सेर या इससे कम हुआ कि उसे कसाई को सौंप देते है। बम्बई नगर मे होने वाली इस भयानक हिंसा का हाल जानकर पूज्यश्री का हृदय दया से द्रवित हो गया। बम्बई के श्रावक पूज्यश्री का चौमासा

वहां कराना चाहते थे मगर पूज्यश्री ने चौमासा करना तो दूर, पाप के इस गढ मे पैर रखना भी उचित न समझा। जहां हत्या का इस प्रकार विकराल ताण्डव-नृत्य होता है, जहा पाप का राज्य है और निर्दयता का वास है वहा सन्त पुरुषों को शान्ति नही मिल सकती। पूज्यश्री ने बम्वई मे प्रवेश तक नही किया। वे दादर से लौटकर घाटकोपर आ गये।

पूज्यश्री विचारने लगे–मनुष्य सृष्टि का राजा–इतना घोर स्वार्थी है! उसके विवेक और उसकी बुद्धि का क्या यही–सही उपयोग है! वह पशुओं का दूध पी जाता है सो तो खैर, मगर समूचा पशुओ को ही इस पकार निगल जाता है! पेड़ में जब फल न हों तो पेड को ही खा जानें वाला मनुष्य क्या बुद्धिमान कहा जा सकता है! यह स्वार्थपरायणता और मूर्खता जिसमे भरी हुई है वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है ? इन बेचारे मूक पशुओ की रक्षा के लिये पूज्यश्री कुछ उपाय सोचने लगे। घाटकोपर चातुर्मास में आपने जीवदया पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। अहिंसा धर्म का मार्मिक विवेचन करते हुए पशु हिंसा निवारण करने की प्रबल प्रेरणा की।

पूज्यश्री के उपदेश के प्रभाव से घाटकोपर मे 'घाटकोपर सार्वजनिक जीवदया मडल' नामक सस्था की स्थापना की गई। प्रारम्भ मे सस्था का रूप छोटा था किन्तु भावना विशाल थी। पूज्यश्री के उपदेशामृत से समय-समय पर सींची जाती रहने के कारण संस्था निरन्तर विकास करती रही और बड़े परिणाम में जीवों को बचाने मे समर्थ हो सकी। चौमासे के अन्त तक लगभग सवा लाख रुपया सस्था के पास एकत्र हो गये। बीस वर्ष मे इस सस्था ने ८००० से अधिक गायो और भैंसों को कसाई के हाथों से बचा लिया। यह सस्था करीब २५ मन शुद्ध दूध सुबह और शाम जनता मे पहुंचाती है। इस संस्था का दैनिक खर्च करीब ४००) रुपया है। सस्था की पशुशाला में ६०० पशुओं का पालन हो रहा है। दूध देना बन्द कर देने पर पशुओं का पालन करने के लिए पनवेल, जलगाव, इगतपुरी तथा गोटी आदि कई स्थानो मे उसकी शाखाए खुल गई हैं।

पूज्यश्री गोपालन के विषय मे शास्त्रीय-मर्यादा के अनुसार बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया करते थे। उनकी करुणाभावना मानव-समाज तक सीमित न होकर प्राणीमात्र तक गहरी पहुँच गई थी। एक प्रवचन में आपने फरमाया था-

'शास्त्र में लिखा है कि प्राचीन काल में श्रावक जितने करोड मोहरो का व्यापार करता, उतने ही गोकुल (दस हजार गाय) का पालन करता था। जिस समय भारत मे गौओ को ऐसा मान था उस समय भारत वैभवशाली क्यो न होता ? भारतवासी मानते है कि गौ ऋद्धि-सिद्धि देने वाली है।

श्रीकृष्ण मूर्ख नही थे, दरिद्र नहीं थे। फिर उन्होने गौए क्यो चराई ? उनके गाये चराने का मर्म समझने की चिता किसे है ? एक कवि ने कहा है- गौवश की रक्षा करने के लिए ही कृष्ण ने अवतार धारण किया था। हाथ मे लकड़ी लेकर गौओ के साथ श्रीकृष्ण का जगल में जाना कितना मार्मिक व्यापार है ? पिजरापोल या गोशाला खोली जाती है और चन्दा उगाकर उनका निर्वाह किया जाता है। यह उपाय कहा तक कारगर होगा ? इस प्रणाली से कब तक काम चलेगा ? गोरक्षा का असली और बुनियादी उपाय श्रीकृष्ण ने बतलाया है। वही सच्चा और ठोस उपाय है।

आज लोगों को गोरक्षा के प्रति उपेक्षा हो गई है। इसी कारण ऋद्धि-सिद्धि देनेवाली गौ भार रूप प्रतीत होती है। इस समय गौधन पर जितना सकट आ पड़ा है उतना पहले कभी नही आया था।

ऊपर कहा जा चुका है कि गौ ऋद्धि-सिद्धि देने वाली मानी जाती है। महगाई के जमाने मे भी क्या यह कथन सत्य साबित होता है, इस पर जरा विचार कीजिए। मान लीजिए, एक अच्छी दुधारू गाय अभी सौ रुपये मे मिलती है। आप यह सौ रुपया गाय-खाते नाम लिख देंगे। गाय अकसर दस महीना दूध देती है। इस समय में आप उस पर दो सौ रुपया खर्च करेंगे। इस प्रकार कुल तीन सौ रुपये खर्च हुए।

सौ रुपये की अच्छी गाय प्रातःकाल और सायंकाल चार-चार सेर दूध कम-से-कम देगी। बाजार में अच्छा दूध चार सेर का बिकता हो तो दस महीने में कितने का दूध आपको मिलेगा। छह सौ रुपये का दूध आप प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् तीन सौ रुपया खर्च करके आप छह सौ रुपया प्राप्त कर सकते है।

दस मास के पश्चात् गाय दूध देना बंद कर देगी, फिर भी उस पर कुछ खर्च करना होगा। मगर उसके बदले उसके वश की वृद्धि भी होगी। इसके अतिरिक्त जिनके यहां खेती होती है उन्हें खर्च और भी कम पड़ता है। इस प्रकार महगाई के जमाने मे भी गाय आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है। कम-से-कम हानिकर तो नहीं ही है। गाय का गोबर ईधन के काम आता है। गाय का मूत्र वातावरण को ऐसा विशुद्ध रखता है कि उसके प्रभाव से अनेक बीमारिया नहीं उत्पन्न होतीं। गो-मूत्र के गुण कस्तूरी से भी अधिक बतलाये जाते है। ऐसी आजकल के वैज्ञानिको की मान्यता है।'

'.......... हिन्दू लोग भी किसी-न-किसी रूप में गोवंश के विनाश में सहायक हो रहे हैं। उदाहरण के लिए वस्त्रों को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक से पहने जाते है। क्या गाय की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है ? चर्बी के लिए बड़ी क्रूरता से गायो को कत्ल किया जाता है और उन चर्बी वाले वस्त्रो को पहनकर लोग कहते है- 'हम गोभक्त हैं! गाय हमारी माता है!' धन्य है ऐसे मातृभक्त सपूतो को!

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायो की ही हानि हुई है। इस पद्धति से जहा गोवश को हानि पहुंची है वहा मानववश को भी काफी हानि उठानी पड़ी है और पड़ रही है। दूध मर्त्यलोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है। परिणाम यह है कि लोगों में निर्बलता और निर्वलताजन्य हजारों रोग आ घुसे है। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट में जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है।'

पूज्यश्री के उक्त कथन मे चेतावनी है, मार्ग-प्रदर्शन है। कहते हैं- सिर्फ बम्बई में एक हजार मे से करीब ६८५ नवजात शिशु काल का ग्रास बन जाते है। इसका प्रधान कारण शुद्ध दूध न मिलना है।

एकता की विज्ञप्ति

श्री श्वे. स्थानकवासी जैन सकल श्रीसघ बम्बई की ओर से श्रीसंघ के प्रमुख सेठ मेघजी भाई थोभण को पूज्यश्री ने अपनी ओर से यह वक्तव्य प्रकट करने की अनुमति दी थी:-

'पत्येक समाज अपनी-अपनी स्थिति को सुधारकार आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। साधुमार्गी समाज में सैकड़ो की संख्या मे पाच महाव्रत-धारी साधुओ के होते हुए भी समाज की अवनति हो रही है। हम साधुओ पर भी इसका वडा उत्तरदायित्व है। अत. मै अपना कर्त्तव्य समझकर श्रीसघ को निवेदन

करता हू कि सब समाज और सम्प्रदाय परस्पर प्रेमभाव रक्खें। परस्पर निन्दात्मक लेख, हैडबिल, पुस्तक वगैरह किसी प्रकार का छापा न छपावे।

हम अपनी तरफ से प्रतिज्ञापूर्वक आज्ञा करते है कि हमारी आज्ञा में चलने वाले सङ्घ मे किसी भी तरह का निन्दाजनक लेख, जिससे दूसरे का दिल दुखे, नहीं छापा जाय। दूसरे पक्ष वाले यदि इस प्रकार के लेखादि छपावें तो भी इस सम्प्रदाय के संङ्घ की तरफ से प्रत्युत्तर के रूप मे कुछ भी न छपेगा। किसी दूसरे से छपवाकर कह देना कि हमने नही छपाया, यह मायामृषावाद है। सत्य को आदरणीय समझ कर इसे भी स्थान नही दिया जाएगा। यदि कोई व्यक्ति साधुओ पर झूठा कलंक लगायेगा तो योग्य मध्यस्थों द्वारा खुलासा करने में कोई आपत्ति नहीं है।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज और मेरे यश को जो सङ्घ चाहता है उसे निन्दाजनक किसी प्रकार का लेख नही छपाना चाहिए। हमें पूर्ण विश्वास है कि मेरी और स्वर्गीय पूज्यश्री की कीर्त्ति चाहने वाले भक्त उपर्युक्त आज्ञा को भंग न करेगे।

कार्तिक शुक्ला सप्तमी को छोटी सादड़ी (मेवाड़) निवासी श्रीकेसरीमलजी सिघी ने बडे वैराग्य से दीक्षा ली। आपने दीक्षा के लिए उत्सव और जुलूस आदि भी नही निकलने दिये।

सादगी के साथ दीक्षा सम्पन्न हुई। आगे चलकर आप भी घोर तपस्वी हुए।

एक दिन घाटकोपर के सब गोवाल पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये। उपदेश से प्रभावित होकर उन्होने यह प्रतिज्ञा की कि यदि पशुशाला से हमें रुपये के चार आने भी मिल जाये तो हम कसाइयों के हाथ पशु नहीं बेचेगे।

पूज्यश्री प्राय: व्यापक धर्म पर ही प्रवचन करते थे। प्रवचन सार्वजनिक होने से सभी सम्प्रदायो के जैन और जैनेतर बधु तथा देश नेता भी आया करते थे। श्रीमती कस्तूरबा गाधी जब पूज्यश्री के दर्शन के लिए आई तो उनका प्रत्यक्ष आदर्श उपस्थित करते हुए पूज्यश्री ने महिला समाज को खादी और सादगी का उपदेश दिया। बहुत-सी बहिनो ने जीवन-पर्यत खादी के अतिरिक्त और कोई वस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा ली। पूज्यश्री ने बा से भी कुछ बोलने के लिए कहा। वे बोली- 'मै आज अपना अहोभाग्य समझती हूं कि पूज्यश्री के दर्शन हुए। मै जिस उद्देश्य से आई थी वह पूरा हो गया। मुझे अब बोलने की आवश्यकता नही रही। पूज्यश्री ने मेरा मतव्य पूरा कर दिया है।'

केन्द्रीय धारासभा के प्रेसीडेंट श्रीयुत विट्ठल भाई पटेल भी एक बार पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। पूज्यश्री के व्यापक और उच्च विचारो से, उनके तप और त्याग से तथा वक्तृत्वशक्ति से वे बहुत प्रभावित हुए। प्रसिद्ध विद्वान प. लालन अनेक बार पूज्यश्री के उपदेश सुनने आये। पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। मुक्त कठ से व्याख्यानों की प्रशसा की। इस चातुर्मास मे श्री मेघजी भाई, श्री अमृतलाल रायचन्द झवेरी, जगजीवनदयाल भाई, मोहनलाल चन्दूलाल भाई, रतनचन्द भाई आदि भाइयो ने बहुत उत्साह दिखलाया।

विहार और प्रचार

घाटकोपर का महत्त्वपूर्ण चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री विहार करके माटुगा पधारे। उस समय पूज्यश्री के उपदेशो का मुख्य विषय जीवदया प्रचार होता था। अत. जगह-जगह जीवदया सबधी

उत्तम कार्य हुए। माटुंगा से मुलून, थाना आदि मे धर्मोपदेश करते हुए आप इगलपुरी पधारे। यहा बम्बई के बहुत-से श्रावक आपके दर्शनार्थ आये। उस समय वहां के दयालु श्रावकों ने घाटकोपर की सस्था से संबध रखने वाली जीवदया संस्थाए स्थापित की। घोटी में भी एक ऐसी सस्था स्थापित हुई।

अस्पृश्यता

नासिक मे श्री मेघजी भाई थोभण जे. पी. पूज्यश्री के दर्शन करने आये। पूज्यश्री ने अछूतोद्धार के विषय मे अत्यन्त प्रभावशाली प्रवचन किया। अछूतोद्धार आपका प्रिय विषय रहा है। इस विषय पर आपने सैकड़ों मार्मिक और प्रभावक प्रवचन किये है। इस विषय में आप कहा करते थे-

'धर्मभावना का तकाजा है कि मनुष्य मात्र को भाई समझा जाय। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक मनुष्य का बधु है। बंधु का अर्थ सहायक है। इस प्रकार शूद्र आपके सहायक हैं और आप शूद्रों के सहायक है। चमार ने जूता बनाया और आपको पहना दिया। क्या यह आपकी सहायता नहीं है ? भंगी ने आपका पाखाना साफ किया, आपकी नाली स्वच्छ की और आपको बदबू एव बीमारियों से बचा दिया। क्या भगी ने आपकी मदद नहीं की ? क्या आपकी सहायता का पुरस्कार यह होना चाहिए कि वह नीच गिना जाय ? सफाई करके भयकर बीमारियो की सम्भावना को दूर कर देने वाले मेहतर को नीच गिनना क्या कृतज्ञता की भावना के अनुकूल है ? मानव-समाज का असीम उपकार करने वाले वर्ग को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले लोग अपने को जब उच्च वर्ग का कहते है तो समझ में नही आता कि उच्चता का अर्थ क्या है ? क्या उच्चता का अर्थ कृतघ्नता है ?

याद रक्खो यह नीच कहलाने वाले हिन्दू समाज के प्यारे लाल हैं। इन्हे धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो। इनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करो। इन पर दया करो। इनके साथ स्नेह पूर्ण व्यवहार करो।'

'शूद्र आपके समाज की नींव है। महल का आधार नीव है। नींव में अस्थिरता आ जाने से महल स्थिर नही रह सकता। अगर तुमने शूद्रों को अस्थिर कर दिया- विचलित कर दिया तो तुम्हारे समाज की नीव हिल उठेगी। तुम्हारी सस्कृति धूल में मिल जायगी।'

'अत्यजो के विषय मे तनिक विचार कीजिए। वह आपकी अशुचि उठाते है तथा दूसरे सफाई के काम करते है। फिर भी आप उनसे घृणा करते है। आपकी अशुचि दूर करके स्वच्छता रखना क्या उनका इतना बडा अपराध है ? एक आदमी यहा अशुचि बिखेरता है और दूसरा उसे साफ कर डालता है तो आप दोनो में से किसे अच्छा समझेंगे ? आपकी अन्तरात्मा की सच्ची ध्वनि क्या होगी ? यदि साफ करने वाले को अच्छा समझेगे तो पाखानों में अशुचि फैलाने वाले अच्छे हैं या उनकी सफाई करने वाले ? क्यो आप सफाई करने वाले से घृणा करते हैं ?

'अन्त्यजो के प्रति दुर्व्यवहार करके आप धर्म का उल्लघन करते है, मनुष्यता का अपमान करते है, देश और जाति को दुर्बल बनाते है, अपनी शक्ति को क्षीण करते हैं और अपनी ही आत्मा को गिराते है ?'

इस प्रकार पूज्यश्री अस्पृश्यता के विरोध मे अकसर प्रवचन करते थे। आपके यह प्रवचन आधुनिक साहित्य की शोभा है और प्राचीन धर्मशास्त्रो का निचोड़ है। जनता आपके प्रवचन सुनकर

बडी प्रभावित होती थी। नासिक मे आपका प्रवचन श्रवण कर जनता ने अछूतों के साथ घृणापूर्ण व्यवहार न करने का आश्वासन दिया।

नासिक से आप पालखेड पधारे। यहां दशहरे के दिनों में देवी के सामने भैंसा मारा जाता था। पूज्यश्री के उपदेश से यह अमानुषिक प्रथा बन्द हो गई।

ब्याजखोरी का निवारण

पालखेड से विहार करके पूज्यश्री नान्दुर्डी पधारे। वहा लगभग १८०० की आबादी थी। जैन श्रावकों का प्रधान धन्धा सूद लेना था। कड़ा ब्याज लेने के कारण वहा की जनता श्रावकों के प्रति संतुष्ट नहीं थी। पूज्यश्री स्वय अकिंचन अनगार थे और अपरिग्रह के समर्थ और अधिकारी समर्थक थे। आपके शब्द कितने सजीव है-

'तुम समझते हो हमने धन को तिजोरी मे कैद कर लिया है, पर धन समझता है कि हमने इतने बडे धनी को अपना पहरेदार मुकर्रर कर लिया है।

तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नही कर सकते पर धन तुम्हारे प्राणो का भी व्यय कर सकता है।

तुम धन को चाहे जितना प्रेम करो, प्राणो से भी अधिक रक्षा करो, उसके लिए भले ही अपनी जान दे दो, लेकिन धन अन्त मे तुम्हारा नहीं रहेगा- नहीं रहेगा। वह दूसरो का बन जायगा।

तुम धन का त्याग न करोगे तो धन तुम्हारा त्याग कर देगा। यह सत्य इतना स्पष्ट और ध्रुव है कि इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति मे विवेकवान् होते हुए भी इतने पामर क्यो बने जा रहे हो ? तुम्हीं त्याग की पहल क्यो नहीं करते ? क्यो स्वत्व के धागे को तोड़कर फैक नही देते ?'

'पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने एक बार कहा था-ऐ धनिको! सावधान रहो। अपने धन मे से गरीबो को हिस्सा देकर उन्हें शान्त न करोगे, उनका आदर न करोगे, उनकी सेवा न करोगे तो साम्यवाद फैले बिना न रहेगा। सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो जायगी कि गरीब लोग धनवानों के गले काटेंगे। उस समय हाय-हाय मच जायगी।'

नान्दुर्डी मे आपका प्रवचन हुआ। अन्य जातियो के श्रोता भी उपस्थित होते थे। पूज्यश्री ने एक दिन दशहरा आदि अवसरों पर होनेवाली हिंसा के निषेध का उपदेश दिया। अन्य जातीय लोगो ने कहा- 'महाराज! हम लोग भैसा मारते है मगर यह साहूकार लोग सूद ले-लेकर हम मनुष्यो को मारते है! अगर ये लोग अपनी करतूतो से बाज आए तो हम भी भैसा मारने का त्याग करने के लिए तैयार है।'

पूज्यश्री ने वहां के साहूकारो को समझाया-वैश्य देश के पेट के समान है। पेट आहार को स्थान अवश्य देता है परन्तु उस आहार का उपयोग समस्त शरीर करता है। वह सिर्फ अपने ही लिये आहार जमा नही करता। वैश्य देश की आर्थिक दशा का केन्द्र है। देश की आर्थिक दशा को सुधारना उसका कर्त्तव्य है। वैश्यो को आनन्द श्रावक का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और स्वार्थमय वृत्ति का त्याग कर जन-कल्याण की भावना को हृदय मे स्थान देना चाहिए।

इस प्रकार के उपदेश से वहा के साहूकारो ने भी अनुचित और अन्याय-पूर्ण ब्याज लेने का त्याग कर दिया। दूसरी जाति वालो ने हिसा का त्याग कर दिया। इस प्रकार पूज्यश्री के प्रभाव से दोहरा लाभ हुआ और गाव मे पारस्परिक प्रेम का एक नवीन वातावरण उत्पन्न हो गया। वहा के जैन और जैनेतर सभी व्यक्तियो ने नीचे लिखी व्यवस्था कीः–

नान्दुर्डी

२५-२-२४

मिति माघ वदी ५ शके १८४५ कथितोद्गारी नाम सवत्सरे ता. २५-२-२४ के दिन नान्दुर्डी निवासी नीचे हस्ताक्षर करनेवाले मनुष्य, श्री पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के सम्मुख आगे लिखे मुताबिक बातों का ठहराव करते है-

(१) अब से आगे जो हिसाब होंगे या कर्ज लिया जायगा, उसमे मारवाडी लोगो ने १) रु. प्रति सैकडा या इससे कम ब्याज लेना।

(२) किसान या ऋण लेनेवाला ब्याज तथा मुद्दत की अदायगी का ठीक-ठीक ध्यान रखे।

(३) चक्रवृद्धि ब्याज (पुलतो ब्याज) कभी न जोड़ा जाय।

(४) यदि किसान और साहूकार के बीच में झगड़ा पैदा हो जाय, तो उसका फैसला गाव के पच करेंगे।

(५) यदि किसान को पचों का फैसला मान्य न हो अर्थात् वह पचो की बताई रीति से रुपया अदा न करे, तो साहूकार को अदालत में नालिश करने की स्वतंत्रता होगी।

(६) जैनेतर मण्डली इससे आगे दशहरे पर भैसा नहीं मारेगी। इसके अतिरिक्त अन्य दिनों मे भी हिंसा करने की हमने आज दिन से बदी कर दी है।

''शस्त्र से जिस प्रकार हिंसा होती है, उसी प्रकार ही लोगो के पास से अधिक ब्याज वसूल करने अथवा अन्याय पूर्वक दूसरे की सपत्ति हजम करने से किसानो के गले कटते है। ऐसी दशा में बेचारे किसान के स्त्री-बच्चे मारे-मारे फिरते है।'' यह बात जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश से हम लोगो की समझ मे आ गई। अत॰ जैन धर्म की पवित्र आज्ञा का अनुसरण करके हम नादुर्डी निवासी जैन धर्मावलम्बी लोग आज से अधिक ब्याज लेने, अधिक नफा लेने, अथवा अन्याय पूर्वक दूसरे की सम्पत्ति को हजम करने के दुष्कृत्यो को अपनी इच्छा से छोड़ते हैं।

इसी प्रकार हम जैनेतर लोग यह प्रतिज्ञा करते है कि साहूकारों की मुद्दत रकम और व्याज, खेती के नियमों के अनुसार ठीक टाइम पर अदा करते रहेगे।

(७) यदि कोई साहूकार अपनी आसामी को अनाज दे, तो बाजार भाव से १) रु. प्रति मन अधिक का भाव लगाकर उससे चिट्ठी लिखा ले और उचित रीति से व्याज लगावे।

(८) हर चीज की वसूली की रसीद देना आवश्यक है।

(९) अब से आगे के तथा पीछे के जो हिसाब हों, उन सबमें यही नियम लगाया जावे। इससे अधिक अनाज पर बढ़ती का धान्य वसूल नही किया जावे।

यह ठहराव जैन व जैनेतर (ब्राह्मण, मराठे, कोली, चमार, महार वगैरह) सब लोगो को स्वीकार है। इति।

गांव के आदमियों के हस्ताक्षर

नान्दुर्डी के एक भाई शोभाचन्द्रजी ने रुपयों की वसूली के लिए अदालत मे नालिश करने का सर्वथा त्याग कर दिया। इस उदारतापूर्ण त्याग के परिणामस्वरूप वे किसी प्रकार के घाटे मे भी नही रहे। अदालतबाज साहूकारो के रुपये चाहे न पटे मगर इन भाई की वसूली पाई-पाई हुई। इनकी उदारता ने किसानो का हृदय जीत लिया था।

नान्दुर्डी से विहार करके पूज्यश्री निफाड़ नेताल, लासनगाव होते हुए मनमाड पधारे। यहा भी बड़ी संख्या में लोग व्याख्यान सुनने आते थे। अनेक धार्मिक कार्य हुए। यहा से विहार करके निआल डूगरी पधारे। गाव के अस्पृश्य व्याख्यान सुनने आए और उन्होंने मास एव मदिरा का त्याग किया। बहुत से मुसलमान भाइयों ने भी मास-भक्षण एव जीव-हिंसा का त्याग कर दिया।

पूज्यश्री जब निआल डूगरी आदि गावो में विचरते थे उस समय श्रावकों द्वारा जो कठोर ब्याज किसान आदि गरीब जनता से वसूल किया जाता था, उसकी कहानी जब पूज्यश्री ने सुनी तब उन्हे बहुत दुःख हुआ, अपने व्याख्यान मे इस प्रकार के धनोपार्जन के निर्दय अत्याचार को पूज्यश्री व्यावहारिक व धार्मिक दृष्टि सामने रखकर असरकारक उपदेश देते थे। वे कहते-अगर इसी प्रकार पठानी ब्याज वसूल करने वाले श्रावकों के यहा से मै भिक्षा ग्रहण करू तो मेरे ऊपर व मेरे उपदेश का आप पर क्या असर पड़ सकता है। उसी समय से पूज्यश्री अग मेहनत करने वालो के घर से ही अपने लिए भिक्षा मगवाते थे।

निआल डूगरी से विहार करके पूज्यश्री चालीसगाव, बागली, पाचोरा और खेड़गाव होते हुए जलगाव पधारे। मार्ग मे छोटे-छोटे अनेक गावों मे जीव-दया का उपदेश किया तथा लोगों को कसाई के हाथ पशु बेचने का त्याग करवाया। जलगाव से विहार करके हिंगोणे, धारणगाव, अमलनेर होते हुए फिर धारणगाव पधारे। यहा अछूतो ने मास एव मदिरा का त्याग किया।

धारणगाव से विहार करके पूज्यश्री हिगोणे पधारे। यहा के निवासियो ने आपके उपदेश से मास, मदिरा एवं जीव-हिंसा का त्याग किया।

पंचों ने इकट्ठे होकर नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था-पत्र लिखा-

श्री:

''श्री समस्त फूलमाली पच, लोहारपंच, सुथारपंच, कुम्हारपच, सुनारपच, शीचीपच, कुनबीपच, कोलो पच, मौजे हिंगोणे बुर्द परगना येरण्डोल। आज मिति ज्येष्ठ शुक्ल ३ शके १८४६ तारीख ५ माहे जून सन् १९२४ के दिन श्री १००८ श्री पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ठाणे १९ के उपदेश से हम सार्वजनिक पच गण कबूल करते है कि कभी भी न तो जीव- हिंसा करेगे, न मांस-भक्षण ही करेगे। शराब को न तो घर लावेंगे, न पीएगे। ऐसा हम सार्वजनिक पचो ने महाराज साहब के सामने स्वीकार किया है। इसके विरुद्ध यदि कोई आदमी ये काम करेगा, तो उसे १५) रु. दण्ड दिया जावेगा। ऐसा ठहराव है।

इस ठहराव के अनुसार व्यवहार न करने वाले अर्थात् मदिरा, मास आदि का सेवन करने वाले की बात का यदि कोई मनुष्य अनुमोदन करेगा, तो वह भी दण्ड का भागी होगा। यह लेख हम सार्वजनिक पञ्चो ने राजी खुशी लिखा है। तारीख मजकूर

गांववालों के हस्ताक्षर तथा अगूठे की निशानियां

यहां से विहार करके विभिन्न स्थानो पर विविध प्रकार का उपकार करते हुए आषाढ़ बदी नवमी को चौदह ठाणो के जलगाव पधारे। आषाढ़ वदी ११ को सुबह साढ़े नौ बजे पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज भी पधार गए। आषाढ़ बदी १० को महासतीजी श्रीरामकुंवरजी महाराज भी ठाणा ७ से पधार गई। साधु और साध्वी मिलाकर कुल २४ ठाणों के विराजने से धर्म का ठाठ रहने लगा। पूज्यश्री तथा विद्वान् संतों के विराजने से धर्म का प्रद्योत होने लगा।

तेतीसवां चातुर्मास (सं. १९८१)

जलगाव के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मणदासजी श्री श्रीमाल पूज्यश्री के अत्यन्त भक्त श्रावको में से हैं। लम्बे अर्से से आपकी उत्कठा थी कि पूज्य श्री जलगाव में पदार्पण करें और धर्म सेवा का सुअवसर प्राप्त हो। सेठजी की इच्छा इस बार फलवती हुई। पूज्यश्री जलगांव पधारे। संघ मे अपूर्व उत्साह और आनन्द की लहर दौड़ गई। नर-नारियो ने बड़े ही चाव और भाव से पूज्यश्री का स्वागत किया।

पूज्यश्री ने ७ ठाणो से चातुर्मास किया। महासती श्रीरामकुवरजी म. का चातुर्मास भी ठा. ७ से वहीं हुआ। व्याख्यान मे जैन और जैनेतर श्रोताओं की बड़ी भीड़ रहने लगी। डाक्टर, वकील, शिक्षक आदि सभी श्रेणियो के सस्कारी व्यक्ति आपका उपदेश सुनने आते थे।

इस चातुर्मास मे मुनि श्रीछगनलालजी महाराज ने तथा मुनि श्रीकेसरीमलजी म. ने इक्कीस-इक्कीस दिन की तपस्या की। मुनिश्री जिनदासजी ने तेले-तेले का पारणा तथा प्रतिदिन धूप में आतापना लेना आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद आप पाच-पाच उपवासों के पश्चात् पारणा करने लगे। अन्य मुनियों ने भी फुटकर तपस्या की। तपस्या के प्रभाव से जनता भी धार्मिक कार्यो मे खूब रस लेने लगी।

पूज्यश्री के दर्शनार्थ सेठ जमनालालजी बजाज, आचार्य विनोबा भावे तथा सेठ पूनमचन्दजी रांका उपस्थित हुए। श्री विनोबा भावे से पूज्यश्री ने उपनिषदो के संबंध मे वार्त्तालाप किया। तत्त्व-चर्चा का मधुर रस आस्वादन करने के लिए श्री विनोवा तीन-चार दिन पूज्यश्री के साथ रहे।

पूज्यश्री जव चातुर्मास करने के निमित्त जलगाव पधारे थे तभी वहा के भगीरथ मिल मे मिल-मालिक और मजदूरो ने आपका भाषण सुना था। उस समय पूज्यश्री ने मजदूरो की दुर्दशा का मार्मिक चित्र खीचते हुए मिल-मालिकों का कर्त्तव्य बतलाया था। आपने फरमाया था कि जो मजदूर जनता को कपडे देते है वही स्वय नगे फिरते है! जिनकी कमाई से मिल-मालिक गुलछर्रे उडा रहे है। उनके बाल-बच्चों को भरपेट समुचित भोजन तक नहीं नसीब होता! यह स्थिति कब तक कायम रह सकेगी!

पूज्यश्री ने मदिरा-पान, तमाखू-सेवन आदि से होने वाली भयकर हानियो का दिग्दर्शन कराते हुए मजदूरो को भी इनके त्याग का सुन्दर उपदेश दिया था। तब से मजदूर भी समय पाकर पूज्यश्री के उपदेश सुनने आया करते थे।

रोग का आक्रमण

आषाढ की अमावस्या के आसपास पूज्यश्री की हथेली में अचानक दर्द होने लगा। दो-चार दिन बाद एक छोटी-सी फुन्सी निकल आई और पीडा बहुत बढ़ गई। पूज्यश्री ने तथा अन्य साधुओ ने उसे साधारण फुन्सी समझकर सोचा-पीव निकलने से वेदना शान्त हो जायगी और फुन्सी भी साफ हो जायगी। यह सोचकर मुनियों ने उसे चाकू से चीर दिया और पीव निकाल दी। मगर दो दिनो के बाद फुन्सी ने भयंकर रूप धारण कर लिया। फुन्सी की जगह एक भयकर फोडा निकल आया। धीरे-धीरे कोहनी तक सारा हाथ सूज गया। वेदना अधिक बढ़ गई।

चिकित्सा के लिए स्थानीय डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने ऑपरेशन करके सारा मवाद निकल दिया और घाव भरने के लिए पट्टी बांध दी। घाव जल्दी भरने के उद्देश्य से डाक्टरों ने पूज्यश्री को जलेबी जैसे तरल पदार्थ सेवन करने का परामर्श दिया। इसका परिणाम विपरीत आया। कई बार ऑपरेशन किया गया और फोड़ा अधिकाधिक भयकर रूप धरण करके निकलने लगा। मानो वह कोई भयानक दैत्य था जो काटने पर अधिक विकराल रूप मे फिर खड़ा हो जाता था।

परिस्थिति इतनी भयकर हो गई कि पूज्यश्री का जीवन भी खतरे में दिखाई देने लगा। पूज्यश्री को अपने शरीर की तो कोई चिन्ता नही थी और न जीवन का ही कोई मोह था; मगर सघ की चिन्ता उन्हें अवश्य हो गई। किसी योग्य उत्तराधिकारी के हाथ में श्रीसङ्घ का उत्तरदायित्व सौंपे बिना यह चिन्ता दूर नहीं हो सकती थी। पूज्यश्री ने अपने सम्प्रदाय के सन्तों पर दृष्टि दौडाई और उनका ध्यान प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. पर केन्द्रित हो गया। मुनिश्री विद्वान्, चरित्र-परायण और सुविनीत थे। सङ्घ का शासन-सूत्र आपके हाथों में सौंप देने का पूज्यश्री ने विचार किया।

समाज के प्रधान श्रावक, जो वहा मौजूद थे, उनसे विचार-विनिमय किया गया। सम्प्रदाय के अनेक सतो और श्रावको से भी राय मगाई और उन्होने पूज्यश्री के विचार का समर्थन किया। इस प्रकार पूज्यश्री के चुनाव का सबने समर्थन किया। मगर मुनिश्री गणेशीलालजी म. को इस बात का अभी तक पता नही चला था।

अचानक सेठ वर्धमानजी सा. पीतलिया मुनिश्री के पास पहुचे। उन्होने कहा-महाराज! मै आपसे एक निवेदन करने आया हूँ। वह यह है कि पूज्यश्री का स्वास्थ्य इस समय ठीक नही है, यह तो आप जानते ही हैं। ऐसी स्थिति मे आप पूज्यश्री को किसी प्रकार के पशोपेश में न डाले और पूज्यश्री आपको जो आज्ञा दे, उसे स्वीकार कर ले।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य-सा हुआ। उन्होंने उत्तर दिया-मैने कब पूज्यश्री की आज्ञा टाली है, जो आपको ऐसा कहने की आवश्यकता पडी ? मै तो पूज्यश्री का एक तुच्छ सेवक रहा हू और इसी रूप में रहना चाहता हू।

सेठजी ने कहा-बस, ठीक है, आपसे हम सभी ऐसी ही आशा रखते है। आप पूज्यश्री की आज्ञा का उल्लघन नही करेगे, यही समझकर तो पूज्यश्री आपको आज्ञा देगे।

आखिर मुनिश्री, पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उनसे सम्प्रदाय का भार स्वीकार करने के लिए कहा गया। यह सुनकर मुनिश्री को पता चला कि पहले की समस्त आज्ञाओ से यह आज्ञा विलक्षण

है और इसका पालन करना बड़ा ही कठिन है। मुनिश्री बडे पशोपेश मे पड़े। क्या करना चाहिए ? क्या मै इस गुरुतर भार को उठाने मे समर्थ हो सकूगा ? मगर अस्वीकार करने का अर्थ पूज्यश्री को इस नाजुक अवस्था मे ठेस पहुचाना होगा ? स्वीकार करने के लिए जिस सामर्थ्य की आवश्यकता है, वह मै अपने मे नहीं पाता! ऐसी स्थिति में मै सङ्घ की सेवा कैसे कर सकूगा! इस प्रकार पशोपेश के पश्चात् आपने जब अपनी असमर्थता प्रकट की तो सेठ वर्धमानजी पीतलिया ने बनावटी रोष भरी आखो से मुनिश्री की ओर देखा। उनकी दृष्टि मे स्पष्ट संकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए भी इस प्रसग पर यह अस्वीकृति क्यों प्रकट कर रहे है ?

परिणाम यह हुआ कि मुनिश्री को विवश होकर वह भार स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पडी।

सेठ पीतलियाजी ने मुनिश्री घासीलालजी म. को युवाचार्य पदवी का व्यवस्था-पत्र लिखने के लिए कहा। मगर उनके यह कहने पर कि मुझे लिखना नही आता, स्वय सेठजी ने व्यवस्था-पत्र का ड्राफ्ट बना दिया और मुनिश्री घासीलालजी म. को उसकी नकल कर देने के लिए दे दिया। मुनिश्री घासीलालजी म. ने उसकी नकल की और वह पूज्यश्री ने अपने पास रख लिया।

श्रीसघ पूज्यश्री की बीमारी से अत्यन्त चिन्तित हो उठा। आखिर बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर मुलगावकर को बुलाने का विचार किया गया। उनके बुलवाने का समाचार पाकर स्थानीय सर्जन ने पूज्यश्री के मूत्र की परीक्षा की और मधुमेह की बीमारी का निर्णय किया।

डाक्टर मुलगावकर ने रोग का इतिहास सुनकर भली-भांति परीक्षा की तो उन्होने भी कहा कि पूज्यश्री को मधुमेह की भी शिकायत है। पौष्टिक और मिष्ट आहार के कारण वह घटने के बदले बढ गया था। फोडे का मूल कारण भी यह मधुमेह ही था। डाक्टर ने एकदम ही अन्न बन्द करके सिर्फ छाछ पर रहने की सलाह दी। फोडे का ऑपरेशन और साथ ही मधुमेह का इलाज आरम्भ हुआ। तबीयत मे सुधार होने लगा। सवत्सरी के दिन पूज्यश्री मे इतनी शक्ति आ गई कि वे व्याख्यान मण्डप मे पधारे और करीब २० मिनट तक भाषण भी दे सके।

ऑपरेशन का दृश्य बडा ही हृदय-द्रावक था। ऑपरेशन देखनेवालो का हृदय काप रहा था। मगर पूज्यश्री के चेहरे पर चिन्ता का कोई चिह्न तक नही था। उन्होंने बेहोशी के लिए क्लोरोफॉर्म नही सूघा था। होश में रहते हुए ऑपरेशन करवाया। हथेली डाक्टर के सामने पसार दी। डाक्टर ने पहले तो चाकू से एक क्रोस-सा बनाया और फिर कैंची उठाकर हथेली की चमडी काट दी। पूज्यश्री के मुह से उफ तक नही निकला। जान पडता था, शरीर की ममता त्यागकर वे आत्म-लोक में रमण कर रहे है और आत्म-रमण की तल्लीनता मे उन्हे अपने शरीर का भान ही नही है।

पूज्यश्री का यह अगाध धैर्य और असीम सहिष्णुता देखकर चकित हो जाना पड़ा। धन्य है ऐसे सहनशील महासन्त, जिन्होने इस रुग्ण अवस्था में भी अपने आदर्श चरित द्वारा जनता को वोध पाठ दिया।

इस अवसर पर जलगाव के श्रीसङ्घ ने, सेठ लक्ष्मणदासजी श्री श्रीमाल, सेठ सागरमलजी, पेमराजजी, जुगराजजी, किसनलालजी आदि और श्रीअमृतलाल रायचन्द झवेरी तथा भीनासर के सेठ बहादुरमल सा बांठिया, सेठ वर्धमानजी पीतलिया, सेठ नथमलजी चोरड़िया आदि सज्जनो ने बहुत सेवा की।

पर्युषण पर्व के मौके पर पूज्यश्री के दर्शनार्थ खानदेश, वरार, मद्रास, मेवाड, मालवा आदि विभिन्न प्रान्तो से लगभग छह हजार श्रावक जलगाव आये। सबके स्वागत की व्यवस्था श्रीसङ्घ के सहयोग से सेठ लक्ष्मणदासजी ने उत्साहपूर्वक की। जलगाव सङ्घ के अन्य श्रावको ने भी अतिथियो का अच्छा सत्कार किया।

उसी अवसर पर घाटकोपर-जीवदया खाते की सहायता के लिए एक शिष्ट-मडल आया। पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ का प्रमोद श्रीसंङ्घ में काम हो रहा था, अतः तीन दिन के प्रयत्न से करीब बत्तीस हजार रुपया एकत्र हो गया।

उन्ही दिनों गुजरात मे बाढ़ आने के कारण भीषण तबाही हुई थी। श्रावको ने बाढ़ पीडितो की सहायता के लिए भी लगभग तीस हजार रुपया प्रदान कर अपनी उदारता प्रदर्शित की।

लगभग इसी अवसर पर उदयपुर की जैन ज्ञान पाठशाला और ब्रह्मचर्याश्रम को करीब छह हजार की एक मुश्त सहायता और ९२६) रु. वार्षिक सहायता प्रदान की गई।

इस अवसर पर सेठ लक्ष्मणदासजी मूथा का उत्साह अतीव प्रशंसनीय था। उन्होंने अकेले ही करीब तीस हजार रुपया खर्च करके यह साबित कर दिखाया कि लक्ष्मी का स्वामी किस प्रकार अपने धन का सदुपयोग करता है। सेठ अमृतलाल रामचद झवेरी और सेठ बहादुरमलजी बाठिया ने भी सराहनीय उत्साह प्रदर्शित किया। कई अन्य धर्म-प्रेमी श्रावक भी लम्बे अर्से तक पूज्यश्री की सेवा में रहे और धर्माराधन करके उन्होंने अपना जीवन सफल बनाया।

पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ के उपलक्ष्य में उदयपुर, रतलाम आदि विविध स्थानों में हर्षोत्सव मनाया गया और सार्वजनिक एवं आत्म-हित के अनेक कार्य हुए। जलगाव में इसी अवसर पर एक जैन बोर्डिंग की स्थापना की गई जो अब तक चल रही है।

चौमासा समाप्त होने पर भी दुर्बलता के कारण दो मास तक पूज्यश्री विहार न कर सके। मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को आपके निकट बालोतरा निवासी श्रीचुन्नीलालजी तानेड़ तथा बिनौली (मेरठ) निवासी श्रीवीरबलजी अग्रवाल ने दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के अवसर पर प्रसिद्ध देश-सेवक सेठ जमनालालजी बजाज भी उपस्थित थे। आपने भाषण करते हुए कहा- भारतवर्ष के सद्‌भाग्य हैं कि म.गांधी जैसे महान् पुरुष यहां पैदा हुए। यदि भारतीय जनता इनके बताए मार्ग पर चले तो स्वराज्य प्राप्त करने में जरा भी देर न लगे; परन्तु भारत की जनता उनके बतलाये रास्ते पर नही चल रही है, यह हमारा दुर्भाग्य है। उसी तरह जैन समाज का अहोभाग्य है कि पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज सा. जैसे आचार्य उन्हें प्राप्त हुए है। वे जो मार्ग बताए उस पर जैन समाज चले तो थोडे ही दिनों में वह अपना पूरा विकास व विस्तार कर सकता है। आपका बताया मार्ग एव उपदेश हमे स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायक है; परन्तु मै देखता हूं कि जैन जनता आपके बताए हुए मार्ग पर नही चलती। यह उसका दुर्भाग्य है। इत्यादि।

कोलाड़ी-निवासी श्रीतिलोकचन्दजी जसरूपजी धोका ने दीक्षा के अवसर पर सात हजार रुपया घाटकोपर-जीवदया खाते को दान दिये और सात हजार दीक्षा के निमित्त लगाए।

चातुर्मास समाप्त होने पर बहुत-से साधुओं ने मालवा की ओर से पूज्यश्री के दर्शनार्थ जलगांव की ओर विहार किया।

प्रायश्चित्त

"जैन शास्त्र प्रायश्चित से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशुद्धि बतलाते है।........... अन्य दर्शनकारो ने भी प्रायश्चित्त को स्वीकार किया है। सभी दार्शनिक पाप से की विशुद्धि के लिए कहते है और इस प्रकार सभी ने प्रायश्चित्त को अगीकार किया है। जैनदर्शन कहता है-प्रायश्चित्त द्वारा पाप का विशोधन करो। पाप के सन्ताप से बचते रहने की इच्छा करना और पाप का त्याग न करना प्रायश्चित्त नही है। पाप के परिणाम से अर्थात् दड से नहीं घबराना चाहिए वरन् पाप से डरना चाहिए।"

साधु का मार्ग कितना कठोर है! सयम की मर्यादा के लिए कितना सावधान रहना पड़ता है! सच्चा साधु अपनी निर्मलता में लेश-मात्र भी धब्बा लगना सहन नहीं कर सकता। उसकी आत्मा मलीनता की आशंका मात्र से कराह उठती है! शारीरिक लाचारी की दशा में अगर संयम की किसी मर्यादा का उल्लघन हो गया हो तो वह उसे छिपाने का प्रयत्न नही करता वरन् सर्वसाधारण के समक्ष अपनी वास्तविकता खोलकर रख देता है और इस प्रकार अपने अन्तःकरण को उज्ज्वल बनाता है। यह साधु की साधना है। स्वेच्छा-साधना ऐसी जीवित और जागृत होती है।

साधु अपनी सेवा गृहस्थ से नही कराता। मगर पूज्यश्री को लाचार होकर डाक्टरो की सहायता लेनी पडी। इस कारण जब डाक्टरों का उपचार चल रहा था तभी पूज्यश्री ने कहा- मेरे सयम में दोष लग रहा है। अत जब तक मै प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि न कर लूं तब तक मेरा आहार-पानी अलग रखो। सिर्फ एक साधु मेरी सेवा के लिए रहे। मगर सन्तों ने भक्ति-वश प्रार्थना की- हम आपसे अलग होना नही चाहते। यथा समय प्रायश्चित्त लेकर हम भी शुद्धि कर लेंगे।

रोग से मुक्त होने पर पूज्यश्री ने रुग्णावस्था मे लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त करना उचित समझा। अतः पौष कृष्णा १४ को व्याख्यान मे चतुर्विध सङ्घ के सामने आपने आलोचना की और शास्त्रानुसार छ' महीने का छेद-प्रायश्चित्त स्वीकार किया। अपनी सेवा मे रहे सन्तो को भी चौमासी तप अर्थात् १२० उपवास का प्रायश्चित्त दिया गया।

उस समय भी पूज्यश्री मे अन्न को पचाने की शक्ति नहीं आई थी। छाछ पर ही निर्वाह हो रहा था। अत. लम्बा विहार होना अशक्य था। फिर भी कुछ दिनो बाद थोड़ा-थोड़ा विहार करते हुए आप भुसावल पधारे। वहा अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, सरावगी और ब्राह्मण आदि मारवाड़ी भाइयो मे पारस्परिक वैमनस्य हो रहा था। प्रत्येक दल दूसरे को नीचा दिखाने का अवसर देखता रहता था। आपस मे इस सघर्ष से हजारो रुपयो का कचूमर हो गया था। एक दूसरे का दुश्मन बना हुआ था। पूज्यश्री ने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिए उपदेश देना आरम्भ किया। दुर्वलता की दशा में भी पूज्यश्री मस्तिष्क से पूरा परिश्रम करने लगे। आपका उपदेश सुनकर सबका हृदय द्रवित हो गया और द्वेषाग्नि शान्त हो गई। फाल्गुन सुदी अष्टमी को सभी दल वालो ने व्याख्यान मे खडे होकर पूज्यश्री से प्रार्थना की-आपके उपदेश से हमारी द्वेष-भावना शान्त हो गई है। अब आप जो भी व्यवस्था देगे, हमे स्वीकार होगी।

दूसरे दिन पूज्यश्री ने व्यवस्था देते हुए कहा- 'द्वेष उत्पन्न करने वाली पुरानी सब बातें भूल जाओ और अब से ऐसा वर्त्ताव रक्खो जिससे प्रेम की वृद्धि हो।'

पर्युषण पर्व के मौके पर पूज्यश्री के दर्शनार्थ खानदेश, वरार, मद्रास, मेवाड, मालवा आदि विभिन्न प्रान्तों से लगभग छह हजार श्रावक जलगांव आये। सबके स्वागत की व्यवस्था श्रीसङ्घ के सहयोग से सेठ लक्ष्मणदासजी ने उत्साहपूर्वक की। जलगांव सङ्घ के अन्य श्रावकों ने भी अतिथियो का अच्छा सत्कार किया।

उसी अवसर पर घाटकोपर-जीवदया खाते की सहायता के लिए एक शिष्ट-मडल आया। पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ का प्रमोद श्रीसंङ्घ मे काम हो रहा था, अत· तीन दिन के प्रयत्न से करीब बत्तीस हजार रुपया एकत्र हो गया।

उन्हीं दिनों गुजरात मे बाढ़ आने के कारण भीषण तबाही हुई थी। श्रावको ने बाढ़ पीड़ितो की सहायता के लिए भी लगभग तीस हजार रुपया प्रदान कर अपनी उदारता प्रदर्शित की।

लगभग इसी अवसर पर उदयपुर की जैन ज्ञान पाठशाला और ब्रह्मचर्याश्रम को करीब छह हजार की एक मुश्त सहायता और ९२६) रु. वार्षिक सहायता प्रदान की गई।

इस अवसर पर सेठ लक्ष्मणदासजी मूथा का उत्साह अतीव प्रशसनीय था। उन्होंने अकेले ही करीब तीस हजार रुपया खर्च करके यह साबित कर दिखाया कि लक्ष्मी का स्वामी किस प्रकार अपने धन का सदुपयोग करता है। सेठ अमृतलाल रामचद झवेरी और सेठ बहादुरमलजी बाठिया ने भी सराहनीय उत्साह प्रदर्शित किया। कई अन्य धर्म-प्रेमी श्रावक भी लम्बे अर्से तक पूज्यश्री की सेवा में रहे और धर्माराधन करके उन्होंने अपना जीवन सफल बनाया।

पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ के उपलक्ष्य में उदयपुर, रतलाम आदि विविध स्थानों में हर्षोत्सव मनाया गया और सार्वजनिक एव आत्म-हित के अनेक कार्य हुए। जलगाव में इसी अवसर पर एक जैन बोर्डिंग की स्थापना की गई जो अब तक चल रही है।

चौमासा समाप्त होने पर भी दुर्बलता के कारण दो मास तक पूज्यश्री विहार न कर सके। मार्गशीर्ष कृष्णा पचमी को आपके निकट बालोतरा निवासी श्रीचुन्नीलालजी तानेड तथा बिनौली (मेरठ) निवासी श्रीवीरबलजी अग्रवाल ने दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के अवसर पर प्रसिद्ध देश-सेवक सेठ जमनालालजी बजाज भी उपस्थित थे। आपने भाषण करते हुए कहा- भारतवर्ष के सद्भाग्य है कि म.गाधी जैसे महान् पुरुष यहां पैदा हुए। यदि भारतीय जनता इनके बताए मार्ग पर चले तो स्वराज्य प्राप्त करने में जरा भी देर न लगे; परन्तु भारत की जनता उनके बतलाये रास्ते पर नहीं चल रही है, यह हमारा दुर्भाग्य है। उसी तरह जैन समाज का अहोभाग्य है कि पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज सा. जैसे आचार्य उन्हे प्राप्त हुए है। वे जो मार्ग बताए उस पर जैन समाज चले तो थोड़े ही दिनो में वह अपना पूरा विकास व विस्तार कर सकता है। आपका बताया मार्ग एव उपदेश हमें स्वतत्रता प्राप्त करने में सहायक है; परन्तु मै देखता हूं कि जैन जनता आपके बताए हुए मार्ग पर नही चलती। यह उसका दुर्भाग्य है। इत्यादि।

कोलाड़ी-निवासी श्रीतिलोकचन्दजी जसरूपजी धोका ने दीक्षा के अवसर पर सात हजार रुपया घाटकोपर-जीवदया खाते को दान दिये और सात हजार दीक्षा के निमित्त लगाए।

चातुर्मास समाप्त होने पर बहुत-से साधुओं ने मालवा की ओर से पूज्यश्री के दर्शनार्थ जलगांव की ओर विहार किया।

प्रायश्चित्त

"जैन शास्त्र प्रायश्चित से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशुद्धि बतलाते है।........... अन्य दर्शनकारो ने भी प्रायश्चित्त को स्वीकार किया है। सभी दार्शनिक पाप से की विशुद्धि के लिए कहते है और इस प्रकार सभी ने प्रायश्चित्त को अगीकार किया है। जैनदर्शन कहता है-प्रायश्चित्त द्वारा पाप का विशोधन करो। पाप के सन्ताप से बचते रहने की इच्छा करना और पाप का त्याग न करना प्रायश्चित्त नही है। पाप के परिणाम से अर्थात् दंड से नही घबराना चाहिए वरन् पाप से डरना चाहिए।"

साधु का मार्ग कितना कठोर है! संयम की मर्यादा के लिए कितना सावधान रहना पडता है! सच्चा साधु अपनी निर्मलता में लेश-मात्र भी धब्बा लगना सहन नही कर सकता। उसकी आत्मा मलीनता की आशका मात्र से कराह उठती है! शारीरिक लाचारी की दशा में अगर संयम की किसी मर्यादा का उल्लघन हो गया हो तो वह उसे छिपाने का प्रयत्न नही करता वरन् सर्वसाधारण के समक्ष अपनी वास्तविकता खोलकर रख देता है और इस प्रकार अपने अन्तःकरण को उज्ज्वल बनाता है। यह साधु की साधना है। स्वेच्छा-साधना ऐसी जीवित और जागृत होती है।

साधु अपनी सेवा गृहस्थ से नही कराता। मगर पूज्यश्री को लाचार होकर डाक्टरों की सहायता लेनी पडी। इस कारण जब डाक्टरो का उपचार चल रहा था तभी पूज्यश्री ने कहा- मेरे सयम में दोष लग रहा है। अतः जब तक मैं प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि न कर लू तव तक मेरा आहार-पानी अलग रखो। सिर्फ एक साधु मेरी सेवा के लिए रहे। मगर सन्तो ने भक्ति-वश प्रार्थना की- हम आपसे अलग होना नही चाहते। यथा समय प्रायश्चित्त लेकर हम भी शुद्धि कर लेंगे।

रोग से मुक्त होने पर पूज्यश्री ने रुग्णावस्था मे लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त करना उचित समझा। अत· पौष कृष्णा १४ को व्याख्यान मे चतुर्विध सङ्घ के सामने आपने आलोचना की और शास्त्रानुसार छ. महीने का छेद-प्रायश्चित्त स्वीकार किया। अपनी सेवा में रहे सन्तो को भी चौमासी तप अर्थात् १२० उपवास का प्रायश्चित्त दिया गया।

उस समय भी पूज्यश्री मे अन्न को पचाने की शक्ति नही आई थी। छाछ पर ही निर्वाह हो रहा था। अतः लम्बा विहार होना अशक्य था। फिर भी कुछ दिनों बाद थोड़ा-थोड़ा विहार करते हुए आप भुसावल पधारे। वहा अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, सरावगी और ब्राह्मण आदि मारवाड़ी भाइयों मे पारस्परिक वैमनस्य हो रहा था। प्रत्येक दल दूसरे को नीचा दिखाने का अवसर देखता रहता था। आपस में इस सघर्ष से हजारों रुपयों का कचूमर हो गया था। एक दूसरे का दुश्मन बना हुआ था। पूज्यश्री ने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिए उपदेश देना आरम्भ किया। दुर्बलता की दशा में भी पूज्यश्री मस्तिष्क से पूरा परिश्रम करने लगे। आपका उपदेश सुनकर सबका हृदय द्रवित हो गया और द्वेषाग्नि शान्त हो गई। फाल्गुन सुदी अष्टमी को सभी दल वालों ने व्याख्यान मे खड़े होकर पूज्यश्री से प्रार्थना की-आपके उपदेश से हमारी द्वेष-भावना शान्त हो गई है। अब आप जो भी व्यवस्था देंगे, हमे स्वीकार होगी।

दूसरे दिन पूज्यश्री ने व्यवस्था देते हुए कहा- 'द्वेष उत्पन्न करने वाली पुरानी सब बातें भूल जाओ और अब से ऐसा वर्त्ताव रक्खो जिससे प्रेम की वृद्धि हो।'

पूज्यजी की यह उदार व्यवस्था सभी ने स्वीकार की।

इसके पश्चात् पूज्यश्री ने भुसावल से विहार किया और आसपास के स्थानों मे विचरते हुए आप पुन· जलगांव पधारे।

चौंतीसवां चातुर्मास (१९८२)

पूज्यश्री के शरीर मे अभी तक अन्न पचाने की शक्ति नही आई थी। थोडे-बहुत शाक के अतिरिक्त छाछ ही आपका मुख्य भोजन था। अन्न ग्रहण करने से पुनः रोग के आक्रमण की आशका थी। अत· चातुर्मास के योग्य किसी अन्य स्थान मे पहुँचना सम्भव न होने के कारण सम्वत् १९८२ का चौमासा पूज्यश्री ने जलगाव में ही करना उचित समझा। इस बार भी जलगाव श्रीसघ का धर्म-प्रेम और उत्साह खूब प्रशसनीय रहा।

चौमासे मे उपदेश-गगा बहाकर पूज्यश्री ने मालवा की ओर प्रस्थान किया। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज अब बहुत वृद्ध हो चुके थे। उन्होने जलगाव मे ही स्थविर वास ले लिया। उनकी सेवा के लिए मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज तथा अन्य चार सन्त वही रह गये। अन्य सन्त पूज्यश्री के साथ मालवा की ओर आये।

जलगाव से विहार करके पूज्यश्री माघ की पूर्णिमा के दिन रतलाम पधारे। रास्ते मे जगह-जगह अनेक उपकार हुए। कई स्थानो पर जातीय झगडे मिटाये। बखतगढ और वधनावर में अनेक विध त्याग-प्रत्याख्यान क अतिरिक्त तीन गृहस्थों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया।

पूज्यश्री जब रतलाम पधारे तो सम्प्रदाय के बहुत-से बड़े-बड़े सन्त भी वहा पधार गए। सब मिलकर ४३ ठानो की उपस्थिति हो गई। लगभग इतनी ही सख्या में साध्विया भी उपस्थित हुई। हजारो श्रावक पूज्यश्री तथा मुनिमण्डल के दर्शन करके नेत्र पवित्र करने के लिए आ गये। रतलाम-सघ ने सभी आगन्तुकों के स्वागत और भोजन की समुचित व्यवस्था की।

पूज्यश्री सदैव सादगी के समर्थक रहे है। वे अकसर अपने उपदेश मे फरमाया करते थे- मुनियो के दर्शन के निमित्त जो श्रावक आते है वे स्थानीय श्रावको के भाई बनकर आते है या जमाई बनकर आते हैं ? अगर भाई बनकर आते है तो उन्हे मिठाई वगैरह नही खाना चाहिए। मिठाइया और पक्का भोजन तैयार करने में विशेष आरम्भ होता है और सत्कार करनेवालों पर विशेष बोझ पडता है। अतः यह प्रथा हटा देने योग्य है। रतलाम-श्रीसङ्घ ने कच्चे और सादे भोजन की व्यवस्था करके अन्य सङ्घो के सामने अच्छा आदर्श उपस्थित कर दिया।

बहुत-से साधुओ और साध्वियो ने उग्र तपस्या की। चार गृहस्थो ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। यहा पूज्यश्री ने अपने सम्प्रदाय की समाचारी फिर एक बार सगठित की। सामयिक परिस्थिति पर नजर रखते हुए आवश्यकतानुसार अनेक नये नियम बनाए। श्रीसङ्घ के अभ्युदय के हेतु कई अच्छी योजनाए तैयार की गई।

रतलाम से विहार करके पूज्यश्री रामबाग पधारे। वहा रतलाम नरेश आपके दर्शन करने आये और आधा घंटा ठहरे। पूज्यश्री ने उन्हें आत्म-कल्याण और प्रजा-हित के लिए बहुत-सी सूचनाए दी, जिन्हे नरेश ने आभारपूर्वक स्वीकार किया और तदनुसार व्यवस्था करने का वचन दिया। राजधर्म एव दुर्व्यसन त्याग पर आपका सक्षेप मे भाषण भी हुआ। रतलाम-नरेश उससे अत्यन्त प्रभावित हुए।

साम्प्रदायिक एकता

जावरा वाले सन्तों के अलग हो जाने पर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय मे दो आचार्य हो गये थे। दूसरे पक्ष के आचार्य पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज थे। एक सम्प्रदाय के दो भाग हो जाना कोई भी विवेकवान् व्यक्ति पसन्द नही करता था और फिर इस कारण मुनियो एवं श्रावको में भी पारस्परिक मन-मुटाव रहता था। कही-कही तो श्रावको में द्वेष का तीव्र वातावरण फैल गया था। समाज के अग्रणी व्यक्तियों ने दोनों को एक करने का प्रयत्न कई बार किया था किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई थी।

जिस समय पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज जलगाव से रतलाम की ओर पधार रहे थे तब बखतगढ़ मे मुनिश्री देवीलालजी महाराज आपसे मिले। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के समक्ष साम्प्रदायिक प्रेम की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया। पूज्यश्री शान्ति के प्रेमी थे। रतलाम मे एकता सबंधी वार्तालाप करना निश्चित हुआ। पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज पहले से ही रतलाम में विराजते थे।

पूज्यश्री अत्यन्त दूरदर्शी और सयम के सच्चे प्रेमी थे। जब साम्प्रदायिक एकता संबधी वार्तालाप आरम्भ हुआ तभी आपने मुनिश्री मोडीलालजी म. मुनिश्री चादमलजी महाराज, मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज, मुनिश्री घासीलालजी महाराज और मुनिश्री हीरालालजी महाराज को पंच नियुक्त किया कि समस्त साधुओ के अब तक के समस्त दोषो की शुद्धि कर ली जाय। कोई किसी का दोप छिपा न रक्खे। किसी भी साधु का कोई भी दोष मुझसे अज्ञात न रहे। इसके बाद कोई किसी को दोषी न कहे। इस प्रकार सब दोषो की शुद्धि हो गई। उस समय तक कोई भी साधु दोषी न रहा। जावरा [illegible] लिफाफा देने से तीन दिन पहले ही सब शुद्धि कर ली गई। पूज्यश्री ने इस प्रकार [illegible] ली।

(१) जो लिफाफे दोनो तरफ से एक-दूसरे को दिये गये थे वे दोनो अपनी-अपनी धर्म-प्रतिज्ञा से यह लिख देते है कि लिफाफो के लेखानुसार दोनों तरफ कोई दोष नही है।

(२) आज मिति पीछे दोनो पक्ष वाले मन काल सबधी किसी भी साधु का दोष प्रकाशित करेगे तो वे दोष के भागी होंगे और चतुर्विध सङ्घ के अपराधी ठहरेगे।

(३) आज पीछे दोनो पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज के छठे पाट पर समझे जाएगे।

(४) भविष्य में दोनों तरफ के सन्त परस्पर प्रेम-वत्सलता बढावें।

(५) दोनो तरफ के सन्त परस्पर निंदा न करे। यदि किसी साधु या किसी को कसूर नजर आवे तो उस धनी को व उस गच्छ के अग्रेसर को सूचित कर देवें।

(दस्तखत दोनों पूज्यों के)

चैत्र कृष्णा प्रतिपद् को दोनो आचार्य रामबाग पधारे और दोनो अपने-अपने आसनो पर बराबरी से विराजमान हुए। एकता के इस सम्वाद को सुनकर जनता हर्ष के कारण उमड पडी। पूज्यश्री मुन्नालाल जी महाराज ने मंगलाचरण करके पौन घटा तक व्याख्यान दिया। फिर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का भाषण आरम्भ हुआ। रतलाम रियासत के दीवान श्रीब्रजमोहननाथ भी वहा उपस्थित थे। भाषण सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसके बाद मुनि श्री चौथमलजी म. ने पहले दिन का प्रस्ताव पढ़कर सुनाया। दोनों आचार्यो ने हस्ताक्षर करके उसकी एक-एक प्रति अपने पास रख ली। पूज्यश्री जवाहरलालजी म. ने अन्त में फरमाया- ''साम्प्रदायिक एकता का द्वार आज खुल गया है। साधुओं को परस्पर प्रेम बढाने का मौका मिल गया है। यदि इसी प्रकार प्रेम की वृद्धि होती रही तो दोनों को एक सम्प्रदाय होते देर न लगेगी। हम सब को शान्ति तथा प्रेम की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।''

खेद है कि यह एकता लम्बे समय तक न टिक सकी।

प्रथम चैत्र कृष्णा ४ को पूज्यश्री जावरा पधार गये। उस समय ओसवाल पचायत ने ८ ओसवालो को जाति बहिष्कृत कर रखा था। आपके सदुपदेश से समझौता हो गया और आठो व्यक्ति जाति मे शरीक कर लिये गये। जनाब खानबहादुर साहबजादा शेर अलीखा साहब भी पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये थे। उन्होंने भी जातीय समझौते के लिए प्रयत्न किया।

इसके सिवाय पर-स्त्री-सेवन, धूम्र-पान, विवाहादि अवसरों पर वेश्या-नृत्य, अश्लील गीतो का गाना, विधवाओं का भडकीली पोशाक पहनना, आदि-आदि विषयों पर पूज्यश्री ने प्रभावशाली भाषण दिये। इससे जनता के विचारों और व्यवहार मे पर्याप्त सुधार हुआ।

जावरा से विहार करके पूज्यश्री नगरी पधारे। यहा भटेवरा जाति मे चार वर्षो से आपस मे वैमनस्य फैला था और इस कारण कुछ गावो में भी इसका प्रभाव पडा था। पूज्यश्री के उपदेश की वर्षा से सारा वैमनस्य धुल गया और लोगो के दिल साफ हो गए। रिंगणोद मे आपके उपदेश से जनता ने गोशाला की स्थापना की और कन्या-विक्रय, चर्बी वाले वस्त्रो का उपयोग तथा अन्य कुरीतियो का त्याग किया।

वहा से आप निबोंद, करजू, नन्दावता, करनाखेडी, आकोरडा, दलावदा, धुंधडका होते हुए मन्दसौर पधारे। जगह-जगह गाव के ठाकुर और दूसरे लोगों ने हिंसा, मास-मदिरा सेवन, चर्बी के वस्त्र आदि का त्याग किया। अनेक हितकर प्रतिज्ञाए ली।

मन्दसौर मे आपके नौ व्याख्यान हुए। करजू वाले सेठ पन्नालालजी ने पाच हजार रुपया जीव-दया और विद्या-प्रचार के लिए दान किए।

मन्दसौर से आप नीमच पधारे। यहा भी कई व्याख्यान हुए। बहुतसे चमारो ने मदिरा-मांस तथा पशु-बलिदान आदि का त्याग किया। मेहतरो ने भी आपके व्याख्यान से लाभ उठाया। अस्पृश्यता निवारण पर दिये हुए आपके व्याख्यान के कारण उच्च जाति वालो की अछूतों के प्रति घृणा कम हो गई। चमारो ने सबके पास बैठकर उपदेश सुना। जैनेतर जनता तथा अधिकारी वर्ग ने भी उपदेश का लाभ उठाया। इसी अवसर पर ब्यावर श्रीसङ्घ का प्रतिनिधि मण्डल चौमासे की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुआ। पूज्यश्री ने सुख-समाधे ब्यावर गये विना दूसरी जगह की चौमासे की प्रार्थना स्वीकार न करने का वचन दिया।

यहा से आप निम्बाहेडा, साटोला होते हुए और विनौला से रुग्ण तपस्वी श्री उत्तमचन्दजी महाराज को साथ लेकर बडी सादड़ी पधारे। यहा समाज-सुधार, विद्या-प्रचार एव जातीय प्रेम के अनेक कार्य हुए। एक पाठशाला की स्थापना हुई। बडी सादडी से जब आप कानौड पधारे तो वहा के रावतजी ने कृषकों को कई करो से मुक्त कर दिया। अनेक त्याग-प्रत्याख्यान हुए। कानौड से विहार करके पूज्यश्री उदयपुर पधारे।

उदयपुर में उपकार

वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को पूज्यश्री २६ ठाणो से उदयपुर पधारे। १३ वर्ष से केवल छाछ के आधार पर निर्वाह करने वाले तपस्वी मुनिश्री उत्तमचन्दजी महाराज भी आपके साथ थे। लोकोपयोगी विषयो पर पूज्यश्री के प्रभावशाली व्याख्यान हुए। बहुत से लोगो ने नीचे लिखे अनुसार त्याग पच्चसवाण किए।

(१) लोग परस्त्री को माता के समान समझने लगे और उसके सेवन का त्याग किया।

(२) छल-कपट आदि के द्वारा परद्रव्य-हरण का त्याग।

(३) गाय, भैस, सूअर आदि की हिंसा के कारणभूत चरबी लगे वस्त्रों का त्याग।

(४) शिकार, मास, मदिरा तथा जीव-हिंसा का त्याग। मुमताज नाम की एक वेश्या ने एक ही दिन के उपदेश से मास व मदिरा का त्याग कर दिया।

(५) वेश्या-नृत्य, गन्दी गालिया गाना और महीन वस्त्रो के पहनने का त्याग।

(६) विधवाओं द्वारा जेवर तथा भडकीले वस्त्रों का पहनना और आपस में कदाग्रह करने का त्याग।

(७) बीड़ी, भाग, चाय, गाजा आदि मादक द्रव्यो के सेवन का त्याग। अधिक भोजन, मकानो की गन्दगी तथा दूसरी अस्वास्थ्य बातो के सेवन का त्याग।

(८) कसाइयों ने प्राणि-वध को कम करने तथा अगता आदि रखने का निश्चय किया।

(९) वर्त्तमान उदयपुर नरेश ने, जो उस समय युवराज थे, पूज्यश्री का व्याख्यान सुना और प्रजा-हित तथा जीव-दया के लिए विशेष ध्यान देने का वचन दिया। दो दिन तक अगता रखाया।

(१०) सार्वजनिक हित के लिए एक फण्ड कायम किया गया।

ज्येष्ठ शु. ४ को उदयपुर से विहार करके बेदला, धर्मशाला, गोगुदा होते हुए ब्यावर पधारे।

पैंतीसवां चातुर्मास (१९८३)

पूज्यश्री का संवत् १९८३ का चौमासा १८ ठाणो से ब्यावर में हुआ। तपस्वी मुनि श्री सुन्दरलालजी महाराज ने धोवन-पानी के आधार पर ७६ दिन की तपस्या की। तपस्वी मुनि केसरीमलजी महाराज ने ६६ दिन की तपस्या की। दोनो तपस्याओं के पूर पर अनेक धार्मिक उपकार हुए।

भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को जयतारण-निवासी सुगालचदजी मुकाणा ने २५ वर्ष की अवस्था में वैराग्य के साथ दीक्षा अगीकार की। वैरागीजी ने चार हजार रुपया इसी अवसर पर शुभ कार्यो मे लगाया। बलुदा निवासी और बैंगलोर के प्रतिष्ठित व्यवसायी श्रीमान् सेठ गगारामजी ने ब्यावर की पाठशाला के दस छात्रो को छात्र-वृत्ति के रूप मे ३६००) रु. प्रदान किये।

ब्यावर के इस चौमासे मे कुछ साम्प्रदायिक अभिनिवेश वाले लोगों ने अशान्ति फैलाने की चेष्टा की; किन्तु पूज्यश्री की असीम शान्ति के सागर में वह विलीन हो गई। ता. १ अगस्त को मौलाना मुहम्मद अली पूज्यश्री के दर्शन करने आये और उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुए।

उन्हीं दिनों ता. ७ नवम्बर १९२६ के 'तरुण राजस्थान' के सम्पादक ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था-

आजकल नामधारी साधुओ की कमी नही है। इनकी सख्या इतनी अधिक है कि सच्चे साधु मिलना दुर्लभ-सा है। किन्तु साधु जवाहरलालजी ऐसे ही दुर्लभ साधुओ मे है। आप जैनियों के मुख्य आचार्यो मे गिने जाते है। उस दिन ब्यावर मे हमें आपकी कथा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। रहन-सहन और जीवन बिलकुल प्राचीन ढंग का होते हुए भी आपके विचार और शक्ति नवीन है। आप धर्म के प्राचीन सिद्धान्तों को देश, काल और पात्र के अनुकूल नए ढग से इस प्रकार उपस्थित करते है कि श्रोताओ को अपने इस अर्वाचीन मार्ग पर चलने के लिए उत्तम मार्ग मिल जाता है। देश की आवश्यकताओ को आप खूब समझते है। खादी प्रचार और अछूतोद्धार पर आपका बहुत ध्यान है। जीवन को सादा अैर सेवामय बनाने का आप अपने अनुयायियों को बराबर उपदेश करते रहते है। सचमुच भारतवर्ष मे यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्य जवाहरलालजी महाराज का अनुकरण करे तो देश को बड़ा लाभ हो सकता है। हमारा अपने स्थानीय ओसवाल भाइयो से अनुरोध है कि इन सच्चे साधु को निमन्त्रण देकर उनके उपदेशो से लाभ उठावे।

चातुर्मास की समाप्ति पर विहार होने से पहले आर्यसमाज ब्यावर के उपप्रधान श्रीचादमलजी मोदी ने नीचे लिखे उद्‌गार प्रकट किए-

पूज्यवर और अन्य महानुभावो!

समय बीतते देर नही लगती। आज पूज्य महाराज के चौमासे की अवधि समाप्त होती है। कल आपका विहार होगा।

इस अवसर पर मैं अपने हृदय के उद्गार पूज्य महाराज तथा आप लोगों के समक्ष प्रकट करना चाहता हूं।

मुझे पहले-पहल महाराज के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य कुछ वर्ष पहले तब मिला था जब कि महाराज बीकानेर से पूज्य पदवी प्राप्त कर पधारे थे। उसी व्याख्यान से मेरी धर्म-चर्चा सुनने की रुचि हुई थी।

उसके पहले अंग्रेजी स्कूलो की शिक्षा के कारण मेरी धर्म-शास्त्र सुनने की रुचि नही थी, जैसे कि प्राय. स्कूल के लडको मे नही होती है। मै व्यावहारिक किताबों तथा अखबारो मे ही सारी विद्वत्ता समझता था। लेकिन उस दिन का व्याख्यान सुनने से मेरी इच्छा धर्म के व्याख्यानो को सुनने की हो गई और उसके बाद मैंने रतलाम मे भी पूज्य महाराज के व्याख्यान सुने। अन्य साधुओ का व्याख्यान सुनने और धर्म-शास्त्र पढने की ओर भी रुचि हो गई।

इसलिए बहुत अर्से से अपने ऊपर पूज्यश्री का अतीव उपकार मानता हू। इस चौमासे मे भी मैंने आपके कई व्याख्यान सुने हैं। यदि कभी नही आया तो भी अपने काकाजी से व्याख्यानो के नोट सुन लिए हैं।

इस पर से यह कहने का साहस करता हू कि महाराज ने हमेशा ऐसी रीति से व्याख्यान दिया है कि किसी अन्य मत की निन्दा न हो। आपके विचार सब मतो को समता में लाने के रहे हैं। ऐसी उदारता का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भिन्न-भिन्न मतावलम्बी महाराज श्री के पास बराबर आते है और मुक्तकठ से प्रशसा करते है।

नोटिसो द्वारा जो थोड़ी गड़बड हुई है उसका ज्यादा विवेचन न करके मै इतना ही कहूंगा कि यह हमारी अधूरी विद्या का परिणाम है, जिससे हम एक दूसरे के विचारो को नही सह सकते और उनके उपकारों को भूल जाते हैं।

महाराज की दूसरी विशेषता समाज-सुधार है। आपके व्याख्यान का अधिक भाग समाज सुधार की प्रेरणा करता है। आपने कई बार कहा है, सामाजिक सुधार के बिना आध्यात्मिक उन्नति पूर्ण नहीं हो सकती। आपने महाराज के व्याख्यानों में सामाजिक विषयों पर बहुत सुना होगा। बाल वृद्ध विवाह, विधवाओं की दशा, फिजूलखर्ची, गहने कपडे, अछूतोद्धार इत्यादि विषयो पर धार्मिक दृष्टि से पूज्यश्री ने सुन्दर तथा असरकारक विवेचन किया है।

महाराज की तीसरी विशेषता जैन समाज के विचारों का सुधार करना है। धर्म को समझने मे जो गलत विचार फैले हुए है, उनका पूज्यश्री ने निर्भय होकर विरोध किया है। गोपालन आदि कार्यो को उच्च दृष्टि से देखने तथा जैन समाज मे वीरता के भावों को फैलाने आदि का प्राचीन शास्त्रानुसार जोरदार समर्थन किया है और उन्हे अच्छी तरह सिद्ध किया है। महाराजजी धार्मिक सुधारक, समाज सुधारक और जैन-धर्म प्रचारक हैं।

ऐसे पूज्य महानुभावो का हमारे ब्यावर नगर में पधारना अत्यन्त सौभाग्य की बात है। हम आशा करते है कि महाराज हमारे ऊपर विशेष कृपा करते हुए फिर भी दर्शन देगे।

अन्त मे मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि वे महाराज को चिरायु करे जिससे जनसमाज का आपके धर्मोपदेशो द्वारा विशेष कल्याण हो।

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री बावरा, जेठाणा, तबीजी आदि स्थानो मे धर्मोपदेश देते हुए अजमेर पधारे।

अजमेर मे श्रीयुत जालिमसिंह जी कोठारी पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। वे आर्यसमाज के एक उत्साही कार्यकर्त्ता थे। पूज्यश्री का उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। एक दिन उन्होने कहा- 'मै समझता था कि जैनधर्म मे कार्यकर्त्ता के लिए स्थान नही है। वह केवल निषेध सिखलाता है- यह मत करो, वह मत करो। इस प्रकार वह मनुष्य को प्रत्येक प्रवृत्ति से अलग हटाता जाता है। समाज सेवा या लोग सेवा के लिए उसमें स्थान नही है। मेरा जीवन आरभ से ही प्रवृत्तिमय रहा है। अकर्मण्य होकर बैठना मुझे पसद नही है। एकान्त निवृत्तिमार्ग मेरी रुचि के प्रतिकूल है। आपके (पूज्यश्री के) व्याख्यानो से मै मानने लगा हू कि जैनधर्म में सम्यक् प्रवृत्ति के लिए भी बहुत बडा क्षेत्र है। वह सार्वजनिक कार्यो का विरोध नही करता। मुझे जैन-धर्म का यह स्वरूप पहले सुनने को मिला होता तो सम्प्रदाय-परिवर्त्तन करने की कोई आवश्यकता ही न रहती।

व्याख्यान में इस प्रकार के उद्गार प्रकट करने के बाद वे कई बार दूसरे समय में भी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और अपनी शकाओं का समुचित समाधान पाकर मुनिश्री के भक्त बन गये। उनका परिवार अब जैनधर्म का अनुयायी है।

जालिमसिंहजी जन्मत· जैन थे और फिर आर्यसमाज की ओर उनकी रुचि हो गई थी। उनकी यह घटना जैन समाज के लिए विशेष महत्त्व रखती है। जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप समझाने वाले योग्य उपदेशकों की कमी के कारण पता नहीं कितने जैनी अन्य धर्मी बन गये है।

वाणी का प्रभाव

साधु की चर्या बडी कठिन है। निर्दोष संयम का पालन करते हुए किसी मुनि का सब जगह विहार कर सकना सभव नही है। नगे पैर, नगे सिर, पैदल विहार, बयालीस दोष टाल कर आहार–पानी लेना, समिति–गुप्ति आदि का पालन आदि ऐसे नियम हैं जिनकी सब जगह रक्षा होना कठिन है। फिर भी कुछ मुनि ऐसे स्थानो में भी कभी–कभी विचरते है और परीषहो को सहन करने में आनन्द मानते है, मगर प्रथम तो विद्वान् साधुओ की ही अत्यन्त कमी है और उनमे भी अपरिचित क्षेत्रो मे विचरने वाले इनेगिने हैं। परिणाम यह है कि बहुत–से क्षेत्र ऐसे रह जाते है जहा धर्म की चर्चा ही कभी नही हो पाती। समाज में सुयोग्य विद्वान्, श्रद्धाशील गृहस्थ उपदेशक हो तो वे जगह–जगह घूमकर धर्म–प्रचार कर सकते हैं और जैनो को विधर्मी होने से बचा सकते है।

विद्यमान धर्मोपदेशको को भी इस घटना पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जैनधर्म का मार्मिक स्वरूप समझ कर उसे जनता के समक्ष रखने की इस युग मे बड़ी आवश्यकता है। ऐसा किये बिना धर्म की प्रभावना की विशेष आशा कैसे की जा सकती है ?

पौष कृष्ण १२ को आपश्री ने अजमेर से विहार किया। किसनगढ होते हुए जयपुर पधारे। जयपुर छोटी काशी माना जाता है। सस्कृत तथा अंगरेजी शिक्षा का अच्छा केन्द्र है। यहा पूज्यश्री के उपदेश मे बडे-बडे विद्वान आने लगे और उपदेश से प्रभावित होकर सभी मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। उस समय 'जैनजगत्' के सपादक ने लिखा था-

"साधु लोग यदि विद्वान्, लोकस्थिति को जानने वाले और धर्म के वास्तविक सिद्धान्तो को प्रकट करने वाले हो तो उनके उपदेश का कैसा बढिया असर होता है, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण गत ता. २४ फरवरी १९३७ को जयपुर मे देखा गया, जब कि श्वेताम्बर वाईस टोला पथ के पूज्य आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज का एक सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। साधुजी महाराज ने करीब तीन घटे तक व्याख्यान दिया और बीडी, सिगरेट, भाग आदि मादक द्रव्य, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, कन्याविक्रय, वृद्ध विवाह आदि का विशेष, अछूतोद्धार, गोरक्षा व हिन्दू सगठन पर ऐसा प्रभावशाली व्याख्यान दिया कि श्रोता गद्गद् हो गए।

व्याख्यान मे बहुसख्यक अजैन, प्रतिष्ठित सज्जन व विद्वान् लोग उपस्थित थे। सभी ने मुक्तकठ से आपके उपदेश की प्रणाली की प्रशंसा की। आपके व्याख्यान की खास खूबी यह थी कि उसमे संकीर्णता की तनिक भी बू न थी। किसी भी मत वाले को कडवी लगे ऐसी कोई वात न होती थी। व्याख्यान के अत मे बीसियो अजैनों ने आपके चरण छुए, जिनमें रायबहादुर डाक्टर दलजनसिंहजी खानका, चीफ मेडिकल आफिसर जयपुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव मे अगर उच्च चारित्र के साथ विद्वत्ता हो तो ऐसी आत्माओ के उपदेश का असर बहुत होता है। आज जैन समाज मे विद्वान् साधुओ का बहुत बडा अभाव है और यह इस धर्म की बडी भारी कमी है।"

जयपुर समाज-सुधारक मडल की ओर से पूज्यश्री के दो जाहिर व्याख्यान हुए। हजारों की सख्या मे जनता ने लाभ उठाया। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, वेश्यानृत्य, अश्लील गीत तथा रात्रि भोजन आदि बुराइयो को बद करने के लिए लोगो ने हस्ताक्षर कर दिये। गोचरभूमि की व्यवस्था तथा दूध देनेवाले पशुओ को बचाने के लिए पिजरापोल-कमेटी की स्थापना हुई।

इस अवसर पर पजाब-सम्प्रदाय के युवाचार्य श्रीकाशीरामजी महाराज ने पूज्यश्री से पंजाब पधारने का अनुरोध किया था। अलवर, देहली तथा दूसरे श्रीसघों की भी प्रार्थना थी। जयपुर-श्रीसंघ चौमासे के लिए प्रबल आग्रह कर रहा था किंतु पूज्यश्री बीकानेर श्रीसघ को आश्वासन दे चुके थे। अतः आपने बीकानेर की ओर विहार किया।

जयपुर नगर के बाहर पधारते ही जलगाव से तार द्वारा सूचना मिली की तपस्वीराज मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज ने, जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है अधिक बीमारी के कारण सथारा कर लिया है। पूज्यश्री वही ठहर गए। थोड़ी देर बाद स्वर्गवास का समाचार आ गया। पूज्यश्री ने बड़े ही करुणोत्पादक शब्दों में तपस्वीजी की जीवनी सुनाई। श्रोताओ की आखों से अश्रुधारा बहने लगी। उस समय जीवदया के लिए ६०००) रु. का चदा हुआ। बहुत से व्यक्तियों ने अपनी-अपनी ओर से कसाइयों के शिकार होने वाले पशुओ के प्राण बचाने का निश्चय किया।

विदा के समय एक साहित्यरत्न पंडितजी ने नीचे लिखे उद्गार प्रकट किये–

यो जैनागमतत्त्वविद् भव महा सन्तापहारी गिरा,
नित्यं पूरयते दयारसमल नो मानवाना हृदि।
पीत्वा यस्य वचः सुधां किलजना मुञ्चन्ति दोषान् खिलान्।
स श्रीयुक्त जवाहरो विजयतामाचार्य वर्यश्चिरम्॥

मनहर छन्द

जय जवाहरलाल मुनि हम, धन्य कहते आपको।
आपने उपदेश से, सचमुच हटाया ताप को॥
कोमल मधुर रचनावली, पीयूष-सी गुणवान है।
धर्म की रक्षार्थ तन मन दे रहे स्वच्छन्द हो।
क्या पुरुष हो या दया के मूर्तिधर निष्यन्द हो॥
आपसे इस जयपुरी ने उच्च गौरव पा लिया।
जो समाज-सुधार हित, सत्सग कुछ तुम से किया॥
लोग जयपुर के तुम्हे सब, धन्य ही कहते रहे।
पर प्रभो इस की सुआशा, के लिए गुण बह रहे॥?॥
जो यहा से आज इतने, शीघ्र आप पधारते।
इस नगर पर और कुछ भी आप करुणा धारते॥
तो सुसभव था कि जयपुर कुछ सुधार दिखायगा।
दुर्जनों की वचना से फिर न धोखा खायगा॥
इसलिए है प्रार्थना, कृपया इसे उर धारिए।
आप चातुर्मास मे जयपुर समोद पधारिए॥
बस दया के सिन्धु हरि की जो कृपा इस पर रही।
तो जवाहर निज जवाहर फिर दिखावेगे यही॥

जयपुर से विहार करके बगुरु, दूदू, मकराणा, बड़ू रूपनगढ़, भादवा आदि छोटे बड़े गावो मे धर्म-प्रचार करते हुए पूज्यश्री १२ ठाने से कुचेरा पधारे। बड़ू में सरावगी, ओसवाल, माहेश्वरी और अग्रवालो में वैमनस्य चल रहा था वह आपके उपदेश से दूर हो गया। मार्ग मे प्रायः सभी ठाकुरो ने पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। कई ठाकुरो ने मासाहार, मदिरा आदि का त्याग किया। रूपनगढ के ठाकुर साहब ने पूज्यश्री के प्रति खूब भक्ति-भाव प्रकट किया। आप अपने लवाजमे के साथ पूज्यश्री के स्वागत के लिए सामने आये, पूज्यश्री की सेवा करके अच्छा लाभ लिया।

कुचेरे से विहार करके नागौर, नोखा, सूरपुरा, देशनोक, उदयरामसर आदि स्थानो को पवित्र करते हुए जेठ शु. ५ को पूज्यश्री बीकानेर पधारे।

छत्तीसवां चातुर्मास (१९८४)

कुछ दिन बीकानेर विराज कर पूज्यश्री भीनासर पधार गए और ठा. १३ से सम्वत् १९८४ का चौमासा भीनासर में किया।

भीनासर का यह चौमासा बीकानेर के इतिहास में बडा महत्त्व रखता है। पूज्यश्री के व्याख्यानो का तथा तपस्वी मुनियो की तपस्या का जैन एव जैनेतर जनता पर गहरा प्रभाव पडा। उसी अवसर पर श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस का आठवा अधिवेशन तथा भारत जैन महामण्डल का वार्षिक अधिवेशन होने से सोने मे सुगन्ध हो गई।

इस चातुर्मास में सन्तो और सतियो ने निम्नलिखित तपस्या की -

(१) तपस्वी मुनिश्री सुन्दरलालजी महाराज ६० दिन

(२) तपस्वी मुनिश्री केसरीमलजी महाराज ६५ दिन

(३) तपस्वी मुनिश्री बालचन्दजी महाराज २५ दिन

(४) तपस्वी मुनिश्री महासती श्रीगुरसुन्दरजी ४० दिन

(५) तपस्वी मुनिश्री महासती चम्पाजी ३६ दिन

इनके अतिरिक्त मासखमण तथा उसके भीतर की बहुत-सी तपस्याए हुई। एक गृहस्थ महिला (भीनासर निवासी श्रीमान् धनराजजी पटवा की धर्मपत्नी) ने एक मास की (मासखमण की) तपस्या की। मुनिश्री सुन्दरलालजी महाराज की तपस्या का पूर भाद्रपद शुक्ला १४ को था और तपस्वी श्री केसरीमलजी म. की तपस्या का पूर आश्विन शुक्ला १३ रविवार को था। उस दिन राज्य की ओर से अगता रखा गया। कान्फ्रेस के अधिवेशन के कारण हजारों व्यक्ति बाहर से आये। इन महातपस्वी मुनियो का दर्शन करके वे अपने को धन्य समझने लगे।

पूज्यश्री के व्याख्यान का मुख्य विषय श्रावक के १२ व्रत, अस्पृश्यतानिवारण, बाल-वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि कुरीतियो का निवारण, चर्बी वाले वस्त्रो एव अन्य महारम्भी वस्तुओ का निषेध, ब्रह्मचर्य आदि होते थे, जिनसे व्यक्ति का जीवन उन्नत हो, समाज एव राष्ट्र का कल्याण हो और इस प्रकार विश्व-कल्याण साधा जा सके।

एक बार आपका व्याख्यान सुनने के लिए लगभग तीन सौ अछूत आए। व्याख्यान मे उन्हे सब के साथ बैठने को स्थान दिया गया। पूज्य महाराज ने उस दिन मासाहार और मदिरापान की बुराइयों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। इनसे होने वाली आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय हानियों का मार्मिक विवेचन किया। परिणामस्वरूप बहुत से अछूतों ने मदिरा और मास का त्याग करके अपना जीवन उन्नत बनाया।

कालेज तथा स्कूलों के विद्यार्थी, राज्य कर्मचारी, राजवशीय एव इतर सज्जन बड़ी रुचि के साथ आपका उपदेश सुनने आते थे। बीकानेर से भीनासर यद्यपि तीन मील दूर है तथापि बहुत से धर्मप्रेमी जैनेतर भाई भी प्रतिदिन उपदेश सुनने आते थे। एक बार पूज्यश्री का उपदेश बीकानेर नोबिल स्कूल (राजकुमार-विद्यालय) के विद्यार्थियो के समक्ष विशेषत ब्रह्मचर्य पर ही हुआ। उपदेश अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक था। उसका श्रोताओ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आपने कहा-

'आजकल ब्रह्मचर्य शब्द का सर्वसाधारण मे कुछ सकुचित-सा अर्थ समझा जाता है; पर विचार करने से मालूम होता है कि वास्तव मे उसका अर्थ बहुत विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उसकी महिमा भी बहुत अधिक है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नहीं कर सकते। जो विस्तृत

अर्थ को लक्ष्य में रखकर ब्रह्मचारी बना है उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते है। अखंड ब्रह्मचारी का मिलना इस काल में अत्यन्त कठिन है। आजकल तो अखंड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुर्लभ है। अखड ब्रह्मचारी मे अद्‌भुत शक्ति होती है। वह चाहे सो कर सकता है।

अखड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियो को और मन को अपने अधीन बना लिया हो जो इन्द्रियों और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रिया जिसे फुसला नहीं सकती, मन जिसे विचलित नही कर सकता। ऐसा अखड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी की शक्ति अजब-गजब की होती है।

. . . .अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्यरक्षा को कहते है। वीर्य वह वस्तु है जिसके सहारे सारा शरीर टिका हुआ है। यह शरीर वीर्य से बना भी है। अतएव आखे वीर्य हैं, कान वीर्य है, नासिका वीर्य है, हाथ-पैर वीर्य है- सारा शरीर वीर्य है। जिस वीर्य से सारे शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या साधारण कही जा सकती है? किसी ने ठीक ही कहा है-

मरण विन्दुपातेन जीवन विन्दुधारणात्।

अर्थात् वीर्य के आधार पर ही जीवन टिका है। वीर्यनाश का फल मृत्यु है।

जो वीर्य रूपी राजा को अपने काबू में कर लेता है वह सारे ससार पर अपना दावा रख सकता है। उसके मुख-मडल पर विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रों से अद्‌भुत ज्योति टपकती है। उसमे एक प्रकार की अनोखी क्षमता होती है। वह प्रसन्न, नीरोग और प्रमोदमय जीवन का धनी होता है। उसके इस धन के सामने चादी-सोने के टुकडे किसी गिनती मे नही है।

जिस वीर्य के प्रताप से तुम्हारे पूर्वजो ने विश्व भर में अपनी कीर्त्ति-कौमुदी फैलाई थी, उस वीर्य का तुम अपमान करोगे?

वीर्य का अपमान न करने से मेरा आशय यह नही है कि आप विवाह ही न करे। मै गृहस्थ धर्म का निषेध नही करता। गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार ही रहना चाहिए। वीर्य का अपमान करने का अर्थ है-गृहस्थ-धर्म की मर्यादा का उल्लघन करके पर-स्त्री के मोह में पड़ना, वेश्यागामी होना अथवा अप्राकृतिक कुचेष्टाएँ करके वीर्य का नाश करना। भीष्म पितामह ने आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था। आप उनका अनुकरण करके जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य पाले तो खुशी की बात है। अगर आपसे यह नही हो सकता तो विधिपूर्वक लग्न करने की मनाही नहीं है। पर विवाहिता पत्नी के साथ भी सन्तानोत्पत्ति के सिवाय-वीर्य का नाश नही करना चाहिए। स्त्रियो को भी यह चाहिए कि वे अपने मोहक हाव-भाव से पति को विलासी बनाने का प्रयत्न न करें। जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के सिवाय केवल विलास के लिए अपने पति को विलास में फंसाती है वह स्त्री नही पिशाचिनी है। वह अपने पति के जीवन को चूसने वाली है।

ऐ भीष्म की सन्तानो! भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानो मे ब्रह्मचर्य का पावन मत्र फूका था। आज उन्ही की सतान कहलाते हुए उन्ही के मत्र को तुम क्यो भूल रहे हो?

ब्रह्मचर्य पालने वालो को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालना चाहते है उन्हे विलास पूर्ण वस्त्रो से, आभूषणो से तथा आहार से सदैव बचना चाहिए। मस्तिष्क के कुविचारो का अकुर उत्पन्न करने वाले साहित्य को हाथ भी नही लगाना चाहिए।

पूज्यश्री का यह भाषण सुनकर अनेक श्रोताओं ने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

चर्बी लगे वस्त्रो को पूज्यश्री धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त हेय समझते थे। जो श्रावक कीडो-मकोड़ो की दया पालते है उनके लिए ऐसे वस्त्र पहनना कहां तक शोभा दे सकता है ? गो को माता मानने वाले हिन्दुओ के लिए तो गोवध कराने वाले वस्त्रों का स्पर्श करना भी अनुचित है। इन सब विषयों पर पूज्यश्री यदा-कदा विवेचन करते ही रहते थे। एक दिन विशेष रूप से इसी विषय पर आपका उपदेश हुआ और अनेक श्रोताओं ने चर्बी के वस्त्रो का त्याग करके खादी के अतिरिक्त अन्य वस्त्र न पहनने की प्रतिज्ञा ली। उसी दिन सेठ अमृतलाल रामचंद झवेरी ने तार देकर पाच सौ रुपया की खादी बम्बई से मंगवाई। वह आते ही बिक गई।

श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था की स्थापना

खादी की इस उपयोगिता के साथ-साथ पूज्यश्री ने विधवाओं की दुर्दशा का भी रोमांचकारी वर्णन किया। श्रोताओं के हृदय सहानुभूति से भर गए। उसी समय बीकानेर तथा भीनासर के प्रमुख व्यक्तियो की एक सभा हुई और पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के स्वर्गवास के अवसर पर गुरुकुल खोलने के लिए चदे के जो वचन प्राप्त हुए थे उन्हे सहायता, शिक्षा-प्रचार तथा खादी-प्रचार के कार्यों में लगाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए विजयदशमी को 'श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था' के नाम से एक सभा की स्थापना हुई। इसके प्रथम सभापति श्रीमान् सेठ भैरोदान जी सेठिया और मंत्री श्रीमान् कुवर जेठमलजी सेठिया निर्वाचित हुए। इसके पश्चात् इसके सभापति श्रीमान् सेठ मगनमलजी सा. कोठारी हुए।

विचारो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए जिन-जिन सज्जनो ने वचन दिया था, सब से रुपया दे देने की प्रार्थना की गई। अभी तक जिसने जितना रुपया देने का वचन दिया था, उसी के यहा वह जमा था। उस बात को आठ वर्ष बीत गए थे।

अब उन विचारों को कार्य में परिणत करने का अवसर आया। तब कितने ही सज्जनों ने अपने वचन के अनुसार रुपये दे दिये किन्तु कुछेक सज्जनो ने अपनी पूर्ववत् स्थिति रहते हुए भी रुपये नही दिये और कितने ही सज्जनों ने तो अपनी आगे वाली स्थिति न रहने की भावना की प्रबलता के कारण अपने वचनानुसार सस्था को रुपये दे दिये। परिणाम स्वरूप सवा दो लाख के वचनो मे से एक लाख से कुछ अधिक रकम जमा हुई। उससे श्रीमान् मदनमलजीसा बांठिया के हाथ से 'हुन्नर शाला' का उद्घाटन हुआ। इसके अवैतनिक मैनेजर के रूप में श्रीमान् सूरजमलजी लोढ़ा ने काम किया। इस सस्था के द्वारा विधवा बहनें तथा दूसरे भाई सूत कातकर, कपड़ा बुनकर अथवा दूसरे किसी प्रकार का कार्य करके अपना भरण-पोषण करते थे। जो बहिनें परदा या किसी दूसरे कारण से सस्था भवन मे कार्य करने नही आ सकती थी उन्हें घर पर ही चरखा दे दिया गया था और ऊन पहुचा दी जाती थी। कुछ दिनो में संस्था का कार्य अच्छा चलने लगा। ऊनी आसन, वस्त्र तथा दूसरी वस्तुओ के निर्माण के साथ-साथ बहुत-सी असमर्थ बहिनों तथा भाइयों को सहायता मिलने लगी।

आजकल इस सस्था द्वारा गावो मे शिक्षा-प्रसार तथा सहायता-कार्य चल रहा है। नोखा मण्डी, नोखा गाव, उदासर, झज्झू तथा सारुडा मे इसकी तरफ से पाठशालाएं चल रही हैं। रासीसर में भी एक पाठशाला आठ वर्ष तक चली। वहा तेरापथियो की अधिक आबादी है। उन्होने अपनी तरफ से पाठ ..।

खोलने का निश्चय किया। हितकारिणी संस्था का उद्देश्य किसी भी सम्प्रदाय के सघर्ष मे खडा होने का नही है। जब उसने देखा कि एक दूसरा समाज शिक्षाप्रचार के कार्य को अपने हाथ मे ले रहा है तो वहा की पाठशाला बन्द कर दी गई और सारुण्डे में एक पाठशाला खोल दी गई। यह स्थान नोखामण्डी से २४ मील है। आस-पास मे कोई स्कूल नही है। सबसे नजदीक का स्टेशन नोखा ही है। इसी प्रकार सस्था आवश्यक स्थानो मे शिक्षा का प्रचार कर रही है।

सहायता विभाग के द्वारा कुछ असमर्थ बहिनो तथा भाइयो को सहायता दी जाती है।

उपरोक्त कार्यो मे सस्था के मूलधन का व्याज ही खर्च किया जाता है। एक लाख मे से सत्तर हजार का ब्याज शिक्षा-प्रचार मे और शेष सहायता-कार्य मे किया जाता है। समय-समय पर अन्य उपयोगी कार्य भी यह सस्था करती है। प्रस्तुत जीवन चरित्र तथा पूज्यश्री के अन्य साहित्य के प्रकाशन के निमित्त सस्था ने १२ हजार व्यय करना निश्चित किया है। सस्था का कार्य स्थायी और ठोस है।

विधवा बहिनें और सादगी

जीवन मे जब कृत्रिमता आती है तो जीवन का वास्तविक अभ्युदय रुक जाता है। मगर जिसे सयममय जीवन बिताना हो उसके लिए तो सादगी धारण करना और कृत्रिमता से बचना अनिवार्य है। पूज्यश्री अपने उपदेश में सर्वसाधारण को और विशेषत विधवा बहिनों को सादे रहन-सहन की शिक्षा दिया करते थे। भडकीले और रंगीन वस्त्र पहनना, जेवर पहनना या बारीक वस्त्रों का उपयोग करना ब्रह्मचारिणी के लिए शोभास्पद नही है। ब्रह्मचारी पुरुष या स्त्री को पवित्र श्वेत वस्त्रों के अतिरिक्त बहुरगी वस्त्र पहनना शोभा नही देता। पूज्यश्री इस विषय में प्रभावशाली प्रवचन किया करते थे। विधवाओ के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार को आप भयानक समझते थे और सद्व्यवहार करने की शिक्षा दिया करते थे। भीनासर के एक उपदेश के आपके शब्द कितने सबल है-

'आपके घर मे विधवा बहिने शील-देविया है। इनका आदर करो। इन्हे पूज्य मानो। इन्हे खोटे दुखदायी शब्द मत कहो। यह शीलदेविया पवित्र है, पावन है। मंगलरूप है। इसके शकुन अच्छे है। शील की मूर्ति क्या कभी अमगलमयी हो सकती है ?'

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मगलवती और मगलवती को अमगला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है।

याद रखो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओ की मानरक्षा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रहे, उन्हे ठुकराते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पडेगा। आपका आदर्श धूल मे मिल जायगा और आपको ससार के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।

बहिनो! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होने शील का पालन किया वे प्रात स्मरणीय बन गई। आप धर्म का पालन करेंगी तो साक्षात् मगलमूर्ति बन जाएगी।

बहिनो! स्मरण रखो-तुम सती हो, सदाचारिणी हो, पवित्रता की प्रतिमा हो। तुम्हारे विचार उदार और उन्नत होने चाहिए। तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी नही जानी चाहिए। बहिनो! हिम्मत करो। धैर्य धारण करो। सच्ची धर्मचारिणी बहिन मे कायरता नही हो सकती। धर्म जिसका अमोघ कवच है उसमें कायरता कैसी ?'

बीकानेर का महिला समाज अशिक्षित और पिछड़ा हुआ माना जाता है। उसमे कुरीतियो का साम्राज्य है और पुराने विचारो से वह प्रभावित है। अगर कोई महिला अपने रूढ रहन-सहन में किसी प्रकार का परिवर्तन करके आदर्श की ओर कदम बढ़ाए तो उसे सत्कार नही तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति में पूज्यश्री के उपदेशों को अमल मे लाना किसी महिला के लिए बडे साहस का काम था। फिर भी कुछ साहसी विधवा महिलाए निकल आई और उन्होने तितली की तरह रंग-बिरंगे वस्त्रो का तथा जेवरो का त्याग करके बिना चर्बी के श्वेत वस्त्रो को ही धारण करने का निश्चय किया।

अ. भा. स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस के अधिवेशन में उन बहिनो को धन्यवाद देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और दूसरो को उनके अनुकरण की प्रेरणा की गई।

कांफ्रेंस का अधिवेशन

भीनासर- चातुर्मास को एक विशेष घटना अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन काफ्रेस का आठवां अधिवेशन होना है। कांफ्रेंस के साथ ही भारत जैन महामण्डल का भी अधिवेशन था। दोनों के अध्यक्ष श्रीवाडीलाल मोतीलाल शाह थे। व्यापार प्रधान जैनसमाज मे सभापतित्व का गौरव प्राय श्रीमानो को प्राप्त होता है; मगर काफ्रेंस के इतिहास में यह पहली घटना थी कि केवल विद्वान् होने के कारण किसी व्यक्ति को सभापति चुना गया था। इस कारण शिक्षितवर्ग मे और नवयुवको मे अपूर्व उत्साह था।

पूज्यश्री ने अपने ओजस्वी उपदेशो द्वारा समाज की अनेक कुरूढ़ियों की जड हिला दी थी। अधकार मे लोगों को प्रकाश की किरण दृष्टिगोचर होने लगी थी। आपने सामाजिक जीवन को ऊचा उठाने के लिए जनता मे साहस भर दिया था। क्षेत्र तैयार हो चुका था। इसी बीच काफ्रेस का अधिवेशन हुआ। लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो समाज मे नवीन सूर्योदय का समय आ गया है। प्रात'काल पूज्यश्री का उपदेश होता था। उनके उपदेशों मे जोश, जीवन और जागृति का सदेश रहता। वे उपदेश असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का संचार करते। पूज्यश्री के प्राणप्रेरक प्रवचन प्रगति की प्रेरणा करते। मध्याह्न में काफ्रेस का अधिवेशन होता और पूज्यश्री द्वारा प्रदर्शित पथ प्राय. प्रस्तावो का रूप धारण कर लेता था।

वाड़ीलाल भाई अधिवेशन से कुछ दिन पहले पूज्यश्री से समाजहित के सबध मे विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से आ गये थे और अधिवेशन के कुछ दिन बाद तक पूज्यश्री की सेवा में रहे। आपने जैन साहित्य की उन्नति के लिए दस लाख की अपील की थी। बीकानेर के उत्साही उदार श्रीमानो ने दो लाख रुपया देने का वचन दिया था।

पूज्यश्री के उन दिनों के व्याख्यानो के विषय में ३० अक्टूबर १९२७ के 'जैनप्रकाश' मे इस प्रकार लिखा गया था-

यह व्याख्यान आदर्श तथा व्यवहार का सुन्दर तथा स्वाभाविक समन्वय करते है। विश्वहित की भावना से ओतप्रोत है। उन्हें नियमित रूप से लिखने के लिए एक पडित रखा गया है। सब व्याख्यान जिस समय पुस्तक के रूप में बाहर निकलेगे, उस समय जैनधर्म की व्यावहारिकता तथा व्यापकता

समझने के लिए जनता को सामग्री मिल जायगी। संघ, कांफ्रेस तथा व्यक्ति की आन्तरिक दशाओ का चित्र खीचने में तथा उनके स्वाभाविक तथा सुधार का पथप्रदर्शन करने मे आपकी आश्चर्यजनक शक्ति है। व्यक्तित्व के साथ-साथ देश तथा धर्म का अभिमान विकसित करते ही एक विशेपता होती है। वाह्य तथा आन्तर दृष्टि से पूज्यश्री बहुत-सी बातों का एक साथ स्पर्श कर सकते है। आपके मस्तिष्क मे पृथक्करण और समन्वय की क्रियाएं एक साथ चलती रहती है। उनकी भाषा सस्कारी होने पर भी सादी है। उनके चेहरे पर आत्मगौरव तथा करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण है। उनके व्याख्यान मे सूक्ष्म रूप से देखने पर भी कहीं कृत्रिमता नही दिखाई देती। वर्त्तमान समस्त जैन समाज मे धर्मज्ञान का इतना सुन्दर उपयोग करने की कला धारण करने वालो में आपका स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

प्रमुख साहेब (श्री वाडीलाल शाह) ने संवत्सरी, साधुवर्ग की एकता, जैन सीरीज आदि विषयो पर परामर्श करने के लिए आपसे विशेष वार्तालाप किया।''

यह पहले ही कहा जा चुका है, पूज्यश्री का हृदय यद्यपि विशाल था और विभिन्न धर्मो का समन्वय करने में वे अत्यन्त कुशल थे, तथापि दया-दान जैसे धर्म के अत्यावश्यक अगो को एकान्त पाप की कोटि मे गिने जाते देखकर उनके हृदय को बड़ी चोट पहुचती थी। मनुष्य निर्दय और स्वार्थी बन जाय और धर्म उसकी निर्दयता और स्वार्थ का समर्थन करे तो ससार की क्या स्थिति हो ? ऐसा ससार नरक से क्या अच्छा होगा ? फिर भी जो भाई इस भयकर मान्यता के चक्कर में पड़कर स्व- पर का घोर अहित कर रहे हैं, उन पर पूज्यश्री को अत्यन्त दया थी। दयाभाव से प्रेरित होकर आपने दया-दान आदि का समर्थन करने के लिए 'सद्धर्ममण्डन' नामक ग्रंथ इसी चौमासे में लिखना आरभ किया। पूज्यश्री मध्याह्न में एक से चार बजे तक 'सद्धर्ममण्डन' का कार्य करते थे। मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज तथा श्री जिनदासजी म. लिखते और पूज्यश्री बोलते थे। इसी बीच इस सबध मे प्रश्नोत्तर भी होते थे।

इस प्रकार भीनासर का यह चातुर्मास न केवल आसपास वालो के लिए वरन् समस्त स्था. जैन समाज के लिए विशेष तौर पर लाभदायक सिद्ध हुआ। पूज्यश्री यह स्मरणीय चातुर्मास समाप्त होने पर बीकानेर पधारे और वहां अठारह दिन विराजे। जैन-जैनेतर जनता ने खूब लाभ उठाया।

पूज्यश्री और सर मनुभाई मेहता

पूज्यश्री का व्यक्तित्व तो उच्च था ही, उनकी विद्वत्ता उससे भी उच्चतर श्रेणी की थी। शास्त्रो का उनका ज्ञान शब्दस्पर्शी नहीं मर्मस्पर्शी था। अत्यन्त गहराई मे उतरकर उन्होने धर्मतत्त्व की पर्यालोचना की थी। इसी कारण उन्हे धर्म के व्यापक स्वरूप की उपलब्धि हुई थी। मगर धर्मतत्त्व को उपलब्ध कर लेने पर भी साधारण विद्वान् उसे अपने व्यवहार में नही ला पाता, जब कि पूज्यश्री ने उसे अपने जीवन व्यवहार में भी पूरी तरह उतारा था। वे उस श्रेणी के महात्मा थे, जिनके विषय मे कहा है-

धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।

अर्थात्-'पर-उपदेश-कुशल बहुतेरे' होते है पर धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले महात्मा भाग्य से विरले ही मिलते है!

इन्ही सब कारणो से पूज्यश्री का प्रभाव एक सम्प्रदाय तक सीमित न रहकर बहुत व्यापक हो गया था। महात्मा गाधी, लोकमान्य तिलक, पण्डित मदनमोहन मालवीय, सरदार पटेल, जैसी भारत

की विभूतियो के साथ आप परिचय मे आये और उनपर अपनी विशिष्ट छाप भी अकित करने में समर्थ हो सके थे।

यो तो भारत-विख्यात अनेक राजनीतिज्ञों के साथ आपका परिचय हुआ और यत्र-तत्र उसका उल्लेख भी किया गया है और आगे किया जायगा मगर उनमे सर मनुभाई मेहता का स्थान विशेषता रखता है। सर मेहता भारत के यशस्वी प्रधान मन्त्रियो मे से एक है। पहले आप बड़ौदा रियासत के प्रधानमत्री थे और फिर बीकानेर रियासत के प्रधानमत्री होकर आये। बीकानेर मे जब पूज्यश्री पधारे तो अनेक बार आप व्याख्यान मे सम्मिलित हुए। आप पूज्यश्री के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि कई बार अपने समस्त परिवार के साथ बीकानेर और भीनासर उपदेश सुनने आये। आप पूज्यश्री के विशिष्ट अनुरागी हो गये।

एक बार सर मनुभाई की उपस्थिति मे पूज्यश्री ने बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरुद्ध बडा ही प्रभावशाली भाषण दिया।[१]. सर मेहता पर उसका इतना प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों बाद आपने बाल-वृद्ध-विवाह निषेध बिल बीकानेर-असेम्बली में उपस्थित किया। उस पर भाषण करते हुए आपने पूज्यश्री के उपदेश का भी उल्लेख किया। बिल असेम्बली मे स्वीकृत होकर कानून बन गया।

लदन मे होनेवाली पहली गोलमेज कॉन्फरेस मे सम्मिलित होने के लिए सर मनुभाई मेहता जब विलायत जाने लगे तब आप पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। उस समय पूज्यश्री ने उन्हें जो उपदेश दिया था, उससे पूज्यश्री के स्पष्ट वक्तृत्व एव राष्ट्रहित की भावना का भली-भाति पता चलता है। आपके कथन का सक्षिप्त सार ही यहा दिया जाता है.-

आज मेरा और सर मनुभाई मेहता का यह मिलन एक महत्त्वपूर्ण अवसर पर हो रहा है। सर मेहता विलायत का प्रवास करने वाले हैं। आपका यह प्रवास अपने किसी निजी प्रयोजन या बीकानेर सरकार के किसी कार्य के लिए नही है। आज जो विकट समस्या केवल भारत मे ही नही, सारे ससार मे व्याप्त हो रही है, उसे सुलझाने मे सहयोग देने के लिए आप जा रहे है। दूसरे शब्दो में, भारत के भाग्य का निपटारा करने जा रहे है।

इस अवसर पर मैं अकिचन अनगार उन्हे जो भेंट दे सकता हूं, वह उपदेश ही है। साधुओ पर भी राजा का उपचार है। साधु-जीवन की रक्षा के लिए जो पाच वस्तुएं सहायक मानी गई है, उनमें तीसरा सहायक राजा है। राजा द्वारा धर्म की रक्षा होती है। राजा द्वारा राष्ट्रीय स्वतत्रता की रक्षा होती है। प्रजा में शान्ति, सुव्यवस्था और अमन चैन रहने पर ही धर्म की आराधना की जा सकती है। जहा परतत्रता है, जहा अराजकता है, जहा परतत्रता के कारण हाहाकार मचा होता है, वहां धर्म को कौन पूछता है?

सर मेहता की यह चौथी अवस्था संन्यास के योग्य है। एक कर्मयोगी सन्यासी का जो कर्त्तव्य है, आप वही कर रहे हैं। इसी के लिए विलायत जा रहे हैं। धर्म की रक्षा करने का आपको यह अपूर्व अवसर मिला है।

---

१ व्याख्यान देखो, तीसरी किरणावली।

सर मनुभाई यद्यपि अनभिज्ञ नही है, फिर भी मै इस अवसर पर खासतौर से स्मरण करा देना चाहता हू कि धर्म को लक्ष्य बनाकर जो निर्णय किया जाता है, वही निर्णय जगत् के लिए आशीर्वाद रूप हो सकता है। धर्म की व्याख्या ही यह है कि वह मगलमय कल्याणकारी हो। 'धम्मो मगल मुक्किट्ठं।' अर्थात् जो उत्कृष्ट मंगलकारी है, वही धर्म है।

कोई यह न सोचे कि धर्म का सबध केवल व्यक्ति से है। राउण्ड टेबल कान्फ्रेस मे, जिसके लिए मेहताजी जा रहे है, धर्म का प्रश्न ही क्या है ? मै पहले ही कह चुका हू कि गुलाम और अत्याचार पीडित प्रजा मे वास्तविक धर्म का विकास नही हो सकता। धार्मिक विकास के लिए स्वातन्त्र्य अनिवार्य है, और इसी समस्या का समाधान करने के लिए लदन मे कांफ्रेंस की जा रही है।

श्रेष्ठ पुरुष अपने उत्तरदायित्त्व का भली-भाति ध्यान रखते है और गभीर सोच-विचार करके, धर्म और नीति को सामने रखकर ऐसा निर्णय करते है, जिससे सबका कल्याण हो। ऐसा निर्णय ही सर्वमान्य होता है। जन कल्याण के लिए नीति-मर्यादा का विधान करने वालों को अगर 'विधाता' या 'मनु' का पद दिया जाय तो इसमे अनौचित्य ही क्या है।

सर मनुभाई स्वय विवेकशील है, बुद्धिमान् है फिर भी हम परमात्मा से प्रार्थना करते है कि इन्हे ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त हो जिससे वे सत्य के पथ पर डटे रहे। नाजुक से नाजुक प्रसग उपस्थित होने पर भी वे सत्य से इच मात्र भी विचलित न हो। सत्य एक ईश्वरीय शक्ति है जो विजयिनी हुए बिना नही रह सकती। चाहे सारा ससार उलट-पलट जाय, मगर सत्य अटल रहेगा। सत्य को कोई बदल नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य की जीवन लीला एक दिन समाप्त हो जायगी, ऐश्वर्य बिखर जायगा, परन्तु सत्य की सेवा के लिए किया गया उत्सर्ग अमर रहेगा। सत्य पर अटल रहने वालों का वैभव स्थायी रहेगा।

साधु के नाते मै सर मनुभाई को यही उपदेश देना चाहता हू कि दूसरे के असत्यमय विचारो के प्रभाव से दूर रह कर शुद्ध मस्तिष्क से सत्य विचार करना। चाहे विश्व की समस्त शक्तिया सगठित होकर विरोध में खड़ी हो तब भी सत्य को न छोड़ना। किसी के असत्य विचारों की परछाई अपने ऊपर न पड़ने देना। शास्त्रानुसार और अपने अन्तरतर के सकेत के अनुसार जो सत्य है, उसी को विजयी बनाना। सत्य की विजय मे ही सच्चा कल्याण है।

कार्य करने के लिए व्यक्ति कानून कायदे तथा बहुमत आदि का आश्रय लेता है। किन्तु यह सब परतत्रता है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का पुत्र है। प्रत्येक मे बुद्धि है और उसकी जागृति भी है। जिसने सासारिक लोभ में पड़कर उस पर परदा डाल दिया है उसकी बौद्धिक शक्ति अवश्य छिप गई है। किन्तु जिसने अपनी बुद्धि से स्वार्थ का परदा हटा दिया है, वह तुच्छ से तुच्छ आत्मा भी महान बन गया है। इसी निःस्वार्थ विचार शक्ति के प्रभाव से वाल्मीकि और प्रण्व चोर महर्षि के पद पर पहुच गए। स्वार्थ के किवाड लगाकर विचार-शक्ति को रोक देना उचित नही है। अपनी बुद्धि को, विचार-शक्ति को सब प्रकार के विकारों से दूर रखकर जो निर्णय किया जाता है, वही उत्तम होता है।

जीवन व्यवहार के साधारण कार्य, जैसे खाना, पीना, चलना-फिरना आदि ज्ञानी भी करते है और अज्ञानी भी करते है। कार्यो मे इस प्रकार समानता होने पर भी बडा भेद है। अज्ञानी पुरुष अज्ञानपूर्वक, बिना किसी विशेष उद्देश्य के काम करता है। ज्ञानी पुरुष छोटे-से-छोटा और

बडे-से-बडा व्यवहार गम्भीर ध्येय से, निष्काम भावना से, वासना हीन होकर यज्ञ के लिए करता है। शास्त्रकारो ने यज्ञ के लिए काम करना पाप नही माना है। किन्तु प्रश्न यह है कि वास्तविक यज्ञ किसे कहना चाहिए। इसके लिए गीता मे कहा है-

द्रव्ययज्ञा स्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथाऽपरे।

स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च, यतय. सशित व्रत्त·॥ अ ४० श्लोक २

यज्ञ अनेक प्रकार के होते है। किसी को द्रव्ययज्ञ करना है तो धन पर से अपनी सत्ता उठाले और कहे 'इद न मम।' अर्थात् यह मेरा नहीं है। बस यज्ञ हो गया।

ससार मे जो गडबडी मची हुई है, उसका मूल कारण सग्रह बुद्धि है। संग्रह बुद्धि से सग्रहशीलता उत्पन्न हुई और सग्रहशीलता ने समाज मे वैषम्य का विष पैदा कर दिया। इस वैषम्य ने आज समाज की शाति का सर्वनाश कर दिया है। इस विषमता को दूर करने का एक सफल उपाय है-यज्ञ करना। अगर आप लोग अपने द्रव्य का यज्ञ कर डाले, 'इद न मम' कहकर उसका उत्सर्ग कर दे तो सारी गड़बड आज ही शान्त हो जायगी।

द्रव्ययज्ञ के पश्चात् तपोयज्ञ आता है। तप करना उतना कठिन नही है, जितना तप का यज्ञ करना कठिन है। बहुत से लोग तप करते है किन्तु उनकी अमुक फल प्राप्त करने की आकाक्षा बनी रहती है। किसी प्रकार की आकाक्षा वाला तप एक प्रकार का सौदा बन जाता है। वह तप रूप नही रहता। तप करके उससे फल की कामना न करे और 'इद न मम' कहकर उसका यज्ञ कर दे तो तप अधिक फलदायक होता है।

मै सर मनुभाई मेहता को सम्मति देता हू कि वे प्रधानमत्री के अधिकारो का यज्ञ कर दें।

मेरा तात्पर्य यह है कि अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओ पर से अपना ममत्व हटा ले। 'यह मेरा है' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। इस दुर्बुद्धि के कारण ही लोग ईश्वर का अस्तित्व भूले हुए है। 'इद न मम' कहकर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

वे योगी, जो यज्ञ नहीं करते उपहास के पात्र बनते है। योगियो! अपना किया हुआ स्वाध्याय, प्राप्त किया हुआ विविध भाषाओ का ज्ञान, आचरित तप आदि समस्त अनुष्ठान ईश्वर को समर्पित कर दो। अगर तुमने सभी कुछ ईश्वर को अर्पित कर दिया तो तुम्हारे सिर का बोझ हल्का हो जायगा। कामनाए तुम्हे सता न सकेगी। बुद्धि गभीर होगी। अपना कुछ मत रखो। किसी वस्तु को अपनी बनाई नही कि पाप ने आकर घेरा नही।

भाइयो! आप सब लोग भी हृदय मे ऐसी भावना लाइए कि सर मनुभाई मेहता को ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिससे वे इग्लेड जाकर गोलमेज कान्फ्रेंस मे अपूर्व साहस का परिचय दे। मेरी हार्दिक भावना है कि सब प्राणी कल्याण के भाजन बने।

सर मनुभाई मेहता का पूज्यश्री पर कितना अनुराग था, यह बात उनके द्वारा पूज्यश्री के प्रति अर्पित की गई श्रद्धाञ्जलि से भी स्पष्ट हो जाती है।

पूज्यश्री जब दया-दान का प्रचार करने के लिए थली की ओर प्रस्थान करने लगे तव रियासत के प्रधानमत्री की हैसियत से आपने राजकर्मचारियों को कुछ आवश्यक आदेश भेज दिये थे। वे आदेश इस प्रकार थे-

(१) पूज्यश्री के व्याख्यान में कोई गड़बडी न डालने पावे।

(२) प्रश्नोत्तर के समय किसी प्रकार की असभ्यता न होने पावे।

(३) पूज्यश्री के धर्म-प्रचार मे किसी प्रकार की वाधा न आने पावे।

इन आदेशों के अनुसार प्रत्येक तहसील में पूज्यश्री के पधारने से पहले ही स्थानीय राज्याधिकारी यह घोषणा कर देते थे कि वाईस टोलों के पूज्यश्री पधार रहे है। उनके प्रति कोई किसी प्रकार की गडबड न करे, नहीं तो बाजाब्ता कार्रवाई की जायगी।

इस राजकीय आदेश के कारण पूज्यश्री शान्ति के साथ थली मे दया और दान का प्रचार करने मे समर्थ हो सके। इसका विवरण पाठक अगले पृष्ठों में पढ़ सकेंगे।

मालवीयजी का आगमन

जिन दिनो पूज्यश्री थली की ओर प्रस्थान करने वाले थे, उन्ही दिनो प मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय के सिलसिले में बीकानेर पधारे। पण्डितजी, पूज्यश्री के विषय में पहले ही सुन चुके थे। अत· आप पूज्यश्री के व्याख्यान में पधारे। पूज्यश्री ने समयोचित भाषण देते हुए फर्माया कि पुराण के अनुसार गोवर्धन पर्वत तो कृष्णजी ने उठाया ही था मगर दूसरे ग्वालों ने भी अपना सहयोंग प्रदर्शित करने के लिए लाठिया तान ली थीं। इसी प्रकार मालवीयजी ने भारतीय सस्कृति की रक्षा और उन्नति के हेतु हिन्दू-विश्वविद्यालय रूपी गोवर्धन पर्वत का भार अपने कन्धों पर उठाया है तो श्रीमानों को भी उसमें यथोचित सहकार प्रकट करना चाहिए। पूज्यश्री का यह भाषण काफी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण हुआ था, मगर खेद है कि वह लिखा हुआ न होने के कारण यहां नहीं दिया जा सका।

अन्त में मालवीयजी बोले। आपने पूज्यश्री के प्रभावशाली भाषण की मुक्त कठ से प्रशसा करते हुए पूज्यश्री के प्रति हार्दिक सद्भाव प्रकट किया।

थली की ओर प्रस्थान

पिछले प्रकरणों से पाठक भली-भांति जान गये होंगे कि पूज्यश्री अनेक बार तेरापथी भाइयों के सम्पर्क में आये थे। उन्होने उनकी निराली और धर्म से असंगत मान्यताओं मे सुधार करने के लिए यथासम्भव प्रयत्न भी किया था। बालोतरा और जयतारण में शास्त्रार्थ करके तथा व्याख्यानों में उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न किया था। जब आप भीनासर मे विराजमान थे, बहुत से तेरापन्थी भाई शका-समाधान करने आते थे। पूज्यश्री उनकी अधश्रद्धा देखकर चकित रह जाते थे। भाव-रोग से पीड़ित इन भाइयो पर उन्हे करुणा आती थी। पूज्यश्री का नवनीत के समान कोमल हृदय दया-दान के विरोधी भाइयों की अज्ञानता देखकर द्रवित हो गया। उन्होने इनके उद्धार का विचार किया। मगर यह उद्धार-कार्य सरल नहीं था। उसके लिए अनेक कष्ट सहन करके प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता थी। सर्वसाधारण को धर्म का मर्म समझाना आवश्यक था।

थली तेरापंथियों की रंगस्थली है। वह उनका दुर्भेद्य दुर्ग है। पूज्यश्री बखूबी जानते थे। कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध कठिनाइयां झेलनी पड़ेगी। फिर भी जन-कल्याण की कामना से पेरित होकर उन्होंने थली में प्रवेश करना निश्चित कर लिया।

एक बार भगवान् महावीर ने अनार्य क्षेत्र मे विहार किया था। विश्व-कल्याण की भावना वाले महापुरुष अपने सुख-दुःख की चिन्ता छोड़कर पर सुख के लिए ही पयास करते हैं। थली यद्यपि अनार्य देश नहीं है तथापि वहां के बहुत-से मनुष्य दया, दान, परोपकार और परसेवा आदि सिद्धान्तों को अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन बहुमूल्य गुणों का बहिष्कार करने वाले धर्म और धरा का कलंक धो डालना चाहते थे। थली के कुछ धर्मप्रेमी भाइयों का भी आग्रह था। सरदारशहर के सेठ खूबचदजी चंडालिया, तनसुखदासजी दूगड़ तथा चूरू के सेठ मूलचंदजी कोठारी आदि ने भीनासर आकर पूज्यश्री से थली में पधारने की प्रार्थना की थी। इन कारणों से पूज्यश्री ने थली की ओर पधारने का निश्चय कर लिया।

मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया संवत् १९८४ को पूज्यश्री ने पं. मुनिश्री घासीलालजी, प. मुनिश्री गणेशीलालजी आदि २९ संतो के साथ थली की ओर प्रस्थान कर दिया। उदासर, गाढवाला, नापासर, सींथल, बेलासर, तेजरासर, नाहरसीसर, देरासर, दुलचासर, सूडसर, बेनीसर, भोजासर, हेमासर आदि होकर आप डूंगरगढ़ पधारे। डूंगरगढ़ में चार व्याख्यान हुए। तहसीलदार आदि राज्यकर्मचारी भी व्याख्यान सुनने आये। पूज्यश्री रायबहादुर सेठ आशारामजी झंवर की बगीची मे उतरे थे। सेठ आशारामजी जाति के माहेश्वरी हैं। बड़े उदारचित्त और धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। आपने अत्यन्त तन्मयता के साथ पूज्यश्री की भक्ति की। 'यस्य देवस्य गन्तव्यं स देवो गृहमागतः' अर्थात् जिस देव के पास चलकर जाना चाहिए वह स्वयं घर आ पहुंचा! ऐसा समझकर झवरजी ने पूज्यश्री की सेवा का अच्छा लाभ लिया। पूज्यश्री ने तेला की तपस्या करके डूगरगढ मे पदार्पण किया था। वहां पहुचने पर आपका पारणा हुआ। चार दिन डूगरगढ़ विराज कर आप सरदारशहर की ओर अग्रसर हुए।

पूज्यश्री की इस विहारयात्रा की कठिनाइयो की कल्पना उन्हे नही हो सकती जिन्होंने कभी इस रेगिस्तान के दर्शन नहीं किये है। चारों ओर असीम फैली हुई बालुकाराशि शीतकाल के प्रातःकाल में ओलो की तरह ठंडी पड़ जाती है। कभी मध्यम और कभी प्रबल वेग से बहने वाली वायु के ठंडे-ठंडे झौंके सीधे कलेजे तक पहुचकर प्राणों को भी स्पंदनहीन बनाने के लिए यत्नशील रहते हैं। मार्ग में कोई वृक्ष नही जिसकी आड़ में पथिक क्षण भर सतोष की सांस ले सके। सर्वत्र अप्रतिहत वायु और अपरिमित बालुकापुज उस मरुभूमि के पथिक का स्वागत करते है।

मध्याह्न में मरुभूमि मानो अपना रूप पलट लेती है। सूर्य की अनावृत धूप के स्पर्श से बालुका उत्तप्त हो जाती है और अपना सारा उत्ताप पथिक के पैरो में भर देना चाहती है। पथिक अगर पूज्यश्री की भाति नगे पैर हुआ तो फिर कहना ही क्या है! खुले सिर पर ऊपर आसमान से बरसने वाला सूर्य का प्रचड संताप और नीचे भाड की भाति जलती हुई बालुका! दोनों ओर का यह दुस्सह संताप पथिक की प्राण-परीक्षा लेता है!

ऐसे विकराल पथ पर तीव्र स्वार्थसाधना के लिए चलने वाले तो बहुत मिल सकते हैं मगर शुद्ध परमार्थ-बुद्धि से विचरण करने वाले महात्मा पूज्यश्री सरीखे विरले ही होंगे। पूज्यश्री प्रातःकाल के शीत को अपने तप की अग्नि से निवारण करते हुए और मध्याह्न के घोर संताप को हृदय के करुणाभाव

रूपी शीतल निर्झर से दूर करते हुए मरुभूमि मे अग्रसर होते गये। पूज्यश्री जिन जीवो का उद्धार करने के हेतु यह सब सहन करते हुए विहार कर रहे थे, उनकी ओर से पद-पद पर उनेक प्रकार की असुविधाए उत्पन्न की जाती थीं। आहार-पानी एव स्थान आदि की सब असुविधाए पूज्यश्री के लिए तुच्छ थी। दया-दान के विरोधी लोगों का विपरीत व्यवहार देखकर पूज्यश्री का हृदय दया से अधिकाधिक द्रवित होता जाता था। अज्ञानी जीव की बाल दशा ज्ञानी पुरुप के विषाद का कारण बन जाती है। ज्ञानी पुरुष उनकी बालदशा देखकर ही उनके उद्गार का सकल्प करते है। अतएव पूज्यश्री के पथ मे ज्यों-ज्यो बाधाएं उपस्थित की गई त्यों-त्यो उनका सकल्प दृढ़ से दृढतर होता गया!

दया-दान का प्रचार करने और दया-दान के विरोधियो को सन्मार्ग पर लाने के सुदृढ सकल्प के साथ विचरते हुए पूज्यश्री सरदारशहर पधारे।

सरदारशहर तेरापथियो का सबसे बडा केन्द्र है। यहां ओसवालो के बारह सौ घर है। अधिकाश घर तेरापथियो के है। उन दिनो तेरापथ सम्प्रदाय के पूज्य कालूरामजी स्वामी वही मौजूद थे।

ज्यो ही पूज्यश्री सरदारशहर पधारे त्यों ही तेरापथियो मे खलबली-सी मच गई। सामना करने की अनेक योजनाए बनाई गई, मगर खेद है कि उनमें एक भी ऐसी योजना न थी जिसका सभ्य ससार अनुमोदन कर सके। उचित तो यह था कि आत्म-पर-कल्याण की सच्ची इच्छा से दोनो आचार्य मिलकर परस्पर तत्त्वनिर्णय करते और वीतराग भगवान के मार्ग का निश्चय करके अज्ञान जनता को मार्ग पर लाते। मगर तेरापथ के आचार्य ऐसा करके अपनी जमी दुकान उजाडना पसन्द नही करते थे। इसमे उन्हे अपनी प्रतिष्ठा के भग हो जाने का भय था। उन्होंने ऐसा नही किया। बल्कि उनके शिष्यो ने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया। वे पूज्यश्री को तथा उनके सतों को परेशान करके मैदान मारने की सोचने लगे। पूज्यश्री के सत साधुधर्म के अनुसार भिक्षा लाने मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही करते थे। जिस भाव से दूसरो के यहा भिक्षा के लिए जाते उसी भाव से तेरापथी गृहस्थो के घर भी जाते। मगर कई एक पाषाणहृदय गृहस्थो ने सतो के पात्र में आहार के बदले पाषाण रख दिये। इसी प्रकार की और भी जघन्य चेष्टाए की गई जिनका उल्लेख करने मे मनुष्यता लजाती है और सभ्यता भी शर्मिन्दा होती है। इन भाइयो ने अपनी चेष्टाओ से यह जाहिर कर दिया कि हम वचन से ही दया-दान के विरोधी नही अपितु व्यवहार में भी दया और दान के कट्टर दुश्मन है!

पूज्यश्री के जीवन की पिछली घटनाए बतलाती है कि आप एक बार जो सत्सकल्प कर लेते थे, लाख बाधाए भी उससे उन्हे विचलित नहीं कर सकती थी। आचार्य प्रभाचन्द्र कहते है।

त्यजति न विदधान कार्यमुद्विज्य धीमान्,

खलजनपरिवृत्ते स्पर्धते किन्तु तेन।

खलजनो की चेष्टाओ से घबराकर बुद्धिमान् पुरुष अपने आरम्भ किये हुए कार्य को त्याग नही बैठता; वरन् उनसे स्पर्धा करता है। अर्थात् जैसे खल अपनी चेष्टाओ से बाज नही आता उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अपने कार्य को पूरा किये बिना नहीं मानता।

थली की इस विहारयात्रा के समय पूज्यश्री ने भाति-भाति के कष्ट सहन किये। कष्टो को उन्होने जिस शान्ति और प्रसन्नता के साथ सहन किया उससे पूज्यश्री के अनेक छिपे हुए सद्गुण जनता मे

प्रकाशित हो गये। इससे मध्यस्थ जनता का पूज्यश्री के प्रति अधिक आकर्षण हो गया। इसका श्रेय अवश्य ही उन विरोधी भाइयो के हिस्से मे जाना चाहिए। महाकवि हरिचन्द कहते है-

खल विधात्रा सृजता प्रयत्नात्,
कि सज्जनस्योपकृत न तेन ?
ऋते तमासि द्युमणिर्मणिर्वा-
विना न काचै' स्वगुण व्यनक्ति॥

अर्थात्- विधाता ने बड़ा भारी प्रयत्न करके खल की रचना की है, मगर उसने इस रचना से क्या सज्जन पुरुष का उपकार नही किया ? अवश्य किया है। अधकार के बिना सूर्य का महत्त्व समझ नही आता और काच के अभाव में मणि का मूल्य नही समझा जा सकता।

तात्पर्य यह है कि जैसे अधकार के बदौलत सूर्य की महिमा बढती है और काच के कारण मणि का महत्त्व बढ जाता है, उसी प्रकार खल जनो के कारण संत पुरुषो की महिमा बढती है।

पूज्यश्री के विषय मे यह सूक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती हुई नजर आती है। कुछ लोगो ने अवाछनीय व्यवहार किया और पूज्यश्री ने अपने सत-स्वभाव के अनुसार उसे साधारण भाव से सहन किया। परिणाम यह हुआ कि थली की सरलहृदय जनता ने पूज्यश्री का महत्त्व आक लिया। लोग उनके उपदेशो की ओर आकर्षित होने लगे। उनके आचार विचार की सराहना करने लगे।

जिस महापुरुष ने भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वानो और नेताओ के समक्ष अपनी तेजस्विता प्रकट की थी, जिसके प्रवचनो से जैनधर्म का गौरव बढा था, जिसके आदर्श चरित के सामने बड़-बड़े विद्वान् नतमस्तक हो जाते थे, वही महापुरुष आज करुणा के स्रोत मे बहकर थली प्रात मे जा पहुचा था और एक बडे जनसमूह को अधकार से निकालकर प्रकाश में लाने के लिए तपश्चर्या कर रहा था। वह असभ्य शब्दावली को अपनी स्तुति समझता था और परीषहों को जीवन साधना का अग मानता था।

पाठक यह न समझे कि वहा सभी एक-से थे। लका मे सभी रावण नही थे। कुछ लोग वहा सरलहृदय भी थे। पूज्यश्री के कुछ ही व्याख्यान हुए थे कि जनता प्रभावित होने लगी। अनेक तेरापथी भाई प्रकाश मे आये। करीब पचास भाइयो ने जैनधर्म की सच्ची श्रद्धा ग्रहण की।

सरदारशहर के अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण, स्वर्णकार और दर्जी आदि जैनेतर भाइयो ने पूज्यश्री के मुख से जैनधर्म का स्वरूप सुना तो वे चकित रह गये। वे अभी तक समझते थे कि तेरापथ और जैनधर्म एक ही चीज है और जैनधर्म, तेरापथी साधुओं के सिवाय औरों को दान देने मे तथा मरते जीव को बचाने मे पाप बतलाता है। पूज्यश्री ने जैनधर्म के अनुसार जब दया और दान का प्रतिपादन किया तो लोगो को सचाई का पता चला। सैकडो श्रोता व्याख्यान सुनने आने लगे। कई आपके भक्त बन गये। पूज्यश्री के व्याख्यान मे आने वाले स्वर्णकार तथा दर्जी आदि भाइयो पर तेरापथी भाइयो की कोपदृष्टि थी। जो लोग सरल भाव से पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने आते थे, उनका वे बहिष्कार करने से भी न चूके। उन्हे काम देना-दिलाना बन्द करके उनकी आजीविका का उच्छेद किया। फिर भी उन्होंने व्याख्यान सुनना बन्द न किया और भक्ति-पूर्वक व्याख्यान सुनते रहे। वहा आपके कई जाहिर व्याख्यान हुए। अनेक जैनेतर भाई भी पूज्यश्री के

भक्त बने। मध्याह्न में सेठ वृद्धिचन्दजी गोठी आदि शकासमाधान करने आते और निरुत्तर होकर जाते थे।[1]

जब पूज्यश्री सरदारशहर में विराजमान थे, आबू वाले बाबा परमानन्दजी वहां आये। बाबाजी पूज्यश्री से मिले। उन्होने तेरापंथियो के सिद्धान्त सुने और तेरापंथियो से शास्त्रार्थ करने के लिए कहा। मगर तेरापंथी शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुए। पूज्यश्री ने भी कई बार तेरापथी पूज्य कालूरामजी स्वामी को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया मगर वे सामने न आये।

सरदारशहर में चूरु के सुप्रसिद्ध धनिक सेठ मूलचन्दजी कोठारी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने चूरू पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और माघ कृष्ण एकादशी को विहार कर तेले की तपस्या के साथ चूरू में प्रवेश किया। आपके चूरू मे पहुंचने से पहले ही आपकी कीर्ति वहा पहुंच चुकी थी। सैकड़ों की सख्या में जनता ने आपकी भक्तिभाव-पूर्ण अगवानी की। बड़े समारोह के साथ आपने नगर मे प्रवेश किया।

उन दिनो चूरु में तेरापथियों के माघ महोत्सव की तैयारियां हो रही थीं। सैकड़ों साधु-साध्विया और हजारों गृहस्थ इकट्ठे हो रहे थे। यहां भी उपद्रव करने की अनेक प्रकार की चेष्टाये की गई मगर, तमाम चेष्टाये विफल हुई।

चूरू मे भी बहुत-से तेरापंथी भाई शका-समाधान के लिए आते थे। पूज्यश्री आगमों के प्रमाणो के साथ युक्ति पूर्वक शकाओ का समाधान करते। फल यह हुआ कि बहुत-से व्यक्तियों की तेरापथ से श्रद्धा हट गई। सेठ धनपतिसिंहजी और गुणचन्दजी कोठारी-दोनों भाइयों ने पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया। जैनेतर जनता में भी पूज्यश्री का प्रभाव खूब बढ़ा। श्रीशुभकरणजी सुराणा आदि भी शका-समाधान के लिए आये।

वायुकाय और साध्वी संयोग

फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को पूज्यश्री ने चूरू से विहार किया। सैकड़ो व्यक्ति विदा देने के लिए आये। चूरू की जैनेतर जनता ने पूज्यश्री से चातुर्मास की प्रार्थना की किन्तु पूज्यश्री समग्र थली प्रान्त मे विहार करके ऐसे स्थान पर चातुर्मास करना चाहते थे, जहा धर्म की विशेष उन्नति हो। अतएव चूरू की जनता की प्रार्थना स्वीकृत न हो सकी।

चूरू से विहार करके आप फाल्गुन शुक्ला प्रतिपद् को, तेला की तपस्या के साथ रतनगढ़ पधारे। रतनगढ़ में सस्कृत-विद्या का अच्छा प्रचार है। इसे बीकानेर राज्य की काशी कहा जा सकता है। रतनगढ़ में ऋषिकुल नामक सस्था बड़ी सुन्दर है। पूज्यश्री जब वहा पहुंचे तो ऋषिकुल के ब्रह्मचारियो ने वैदिक मत्रो से आपका स्वागत किया। रतनगढ के बहुत-से विद्वान् आपके सम्पर्क में आये और जैनधर्म के सबध मे उनकी जो विपरीत धारणाए, तेरापथी सम्प्रदाय के प्रचार के कारण बन गई थी, उनका निराकरण किया। यहा के हनुमान पुस्तकालय मे पूज्यश्री का सार्वजनिक भाषण हुआ। व्याख्यान में तेरापथी भाइयो ने कुछ उपद्रव मचाया। उनके और अन्य सज्जनो के प्रश्न तथा पूज्यश्री के उत्तर अलग परिशिष्ट मे दिये जाएंगे। उस समय वहा तहसीलदार उपस्थित न थे। वे पीछे से आये और अपनी

---

१ उनके और अन्य सज्जनो के प्रश्न तथा पूज्यश्री के उत्तर अलग परिषिष्ट मे दिये जाएगे।

असावधानी के लिए पूज्यश्री से क्षमायाचना करने लगे। पूज्यश्री ने उदार हृदय से तहसीलदार साहब को क्षमा प्रदान की।

रतनगढ़ मे सेठ सूरजमलजी नागरमलजी तथा श्रीयुत् विलासरायजी तापड़िया आदि सज्जनो ने पूज्यश्री के प्रति गहरा भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। संत-समागम का उन्हे खूब लाभ मिला।

जब रतनगढ़ मे पूज्यश्री विराजमान थे तभी वहां से आपने श्रीसूरजमलजी म., श्रीसुन्दरलालजी म., श्रीभीमराजजी म., श्री सिरेमलजी म., श्री जेठमलजी म. ठाणा ५ का विहार सुजानगढ़ की ओर करा दिया था।

कलई खुल गई

यहां से विहार करके पूज्यश्री पडिहारा पधारे।

पडिहारा में विदित हुआ कि जिन पाच सन्तो ने अलग विहार किया था, उन पर कुछ तेरापंथियो ने रणदीसर गाव मे कुण्ड से सचित्त पानी निकलवाकर पीने का आरोप लगाया है। पूज्यश्री के सन्त जब भिक्षा के लिए पधारे तो तेरापथी साधुओ ने उनसे कहा- आपके साधुओं ने सचित्त पानी पीया है। आपका और हमारा वेष एक सरीखा है। आपके कामों से हमारी भी बदनामी होती है। क्यो इस वेष को लजाते हो! इत्यादि। पूज्यश्री को जब इस आरोप का पता लगा तो उन्होने मौन साधन करना उचित न समझा। प्रथम तो तेरापथी साधुओं से, साथ चलकर जांच-पडताल करके आरोप की सत्यता-असत्यता की परीक्षा करने के लिए कहा गया। मगर तेरापथियो कों परीक्षा करना अभीष्ट नही था, क्योकि वे अपने आरोपों की असत्यता और मन-गढन्ता भली-भाति समझते थे। असत्य परीक्षा को सहन नहीं कर सकता।

इतना ही नहीं, पडिहारा के मुखिया तेरापंथी सेठ भैरोदानजी सुराणा को जब मालूम हुआ कि इस घटना की जाच होने वाली है तो उन्हे अपने सम्प्रदाय वालों की और विशेष तौर से अपने साधुओ की कलई खुल जाने की चिन्ता हुई। उन्होने चादिया नामक एक नाई को गणेगाव में रहनेवाली नाथी नामक एक बाई को बुलाने भेजा। नाथी बाई उस दिन रणदीसर के उस कुण्ड पर मौजूद थीं। वे अपने नकदनारायण के बल पर सत्य और धर्म को खरीदने की चेष्टा करने लगे।

चादिया नाई गणेगाव पहुंचा। नाथी बाई नहीं गई। वह नाथी बाई के काका कानदासजी वैरागी को ऊट पर बिठलाकर पडिहारा लाया। पडिहारा आने पर भैरोदानजी सुराणा ने उसे बहुत समझाया कि-भाई! हमारी तरफ से लोगों ने वाईस टोला के साधुओं के कच्चा पानी पीने की बात कह दी है। अब यह हमारी इज्जत का प्रश्न बन गया है। हमारी इज्जत रखना तुम्हारे हाथ में है। नाथी बाई उस कुण्ड पर थी। किसी भी तरह उससे यह कहला दो कि बाईस टोला के साधुओं ने कच्चा पानी पीया है। इतना कह देने से हमारी इज्जत रह जायगी।

कानदास देहाती आदमी था। वह निर्धन और अशिक्षित था। मगर उसका हृदय पाप से डर गया। उसने स्पष्ट कहा- सेठजी, असत्य बात कहकर निर्दोष साधुओ को कलंक लगाना घोर पाप है। मै यह पाप नही कर सकता। चाहे मेरी जीभ ही क्यो न काट ली जाय, मगर मैं साधुओ को झूठा कलक लगाकर पाप का भागी नहीं बनूगा। बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी जब कानदासजी झूठ बोलने को तैयार न

हुए तो सेठजी को निराशा हुई। तव उनकी सेठानीजी आगे आई। उन्होने कानदासजी को बुलाकर मुह मागी रकम देने का लोभ दिया। सेठानी ने सोचा-रुपया लेकर एक झूठ वोलना कौन वडी बात है। गरीब आदमी रुपयो के लोभ मे फंस जायगा। मगर कानदासजी ने धर्म को रुपये से बडा समझा और असत्य बोलने से साफ इन्कार कर दिया।

पूज्यश्री को विश्वास था कि हमारे साधु सचित्त पानी ग्रहण नही कर सकते, तथापि लोकापवाद मिटाने के लिए वे रणदीसर जाने को तैयार हुए। उस समय कुछ सन्त, तेरापथी साधुओ के पास गये और उनसे कहा-हम लोग रणदीसर जाकर कच्चा पानी पीने की घटना की जाच करने जा रहे है, आप लोग भी साथ चलिए, ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो जाए। मगर उनका हृदय तो सत्य को समझता ही था अतएव वे साथ जाने को तैयार नहीं हुए। बोले-'थें जाणो थांका काम जाणे।'

आखिर पूज्यश्री रणदीसर पधारे। घटना की जाच की तो मालूम हुआ कि यह सब तेरापथियो की करतूत है। वास्तव मे किसी भी साधु ने कच्चा पानी ग्रहण नही किया है। पूज्यश्री ने गाव के मुखिया लोगों से पंचनामा लिख देने के लिए कहा तो सभी लोग सहर्ष तैयार हो गए। पचनामा लिखा जाने लगा।

जब पचनामा लिखा जा रहा था, तब छापर की ओर जाते हुए कुछ तेरापथी साधु रणदीसर के पास से निकले। पूज्यश्री के एक सन्त से उनका साक्षात्कार हो गया। सन्त ने उनसे कहा- गाव मे पचनामा लिखा जा रहा है। आप लोग चलकर देख क्यो नही लेते ? तब उन साधुओ ने कहा-हमें इस प्रपञ्च मे पड़ने की क्या आवश्यकता है ? और मन ही मन लज्जित होते हुए वे चुपचाप आगे चल दिये।

अन्ततः पचनामा लेकर पूज्यश्री छापर पधार गये। कुछ सन्तो ने तेरापथी साधुओ के पास जाकर कहा-रणदीसर के पचो ने पचनामा लिख दिया है और कच्चे पानी की बात जाच करने पर मिथ्या सिद्ध हो गई।

तेरापथी साधु बोले- तो हम क्या करे ? हमारे पास बात बाजार भाव आई और हमने बाजार भाव बाट दी। इसमें हमारा क्या! उत्तर में कहा गया-ठीक है, तो जैसे पानी लेने की बात बाजार भाव बांट दी थी उसी प्रकार यह बात भी बाजार भाव बाट दीजिएगा। पचनामे की नकल इस प्रकार है.-

श्री रामजी

गाव रणदीसर का नीचे सई करने वाला सगला पॅच ई बात की गवाई देवा, हा, के, माका गाव में २२ टोला रा ५साधु मिती चेत बदी १४ साजका चलका दिन थका मारा मन्दीर मे आया जि बखत केसरबाइ जेकुदासजी साधु गाव जेगनिया वाला की बेटी अठे उरो नानेरो है वा यहा ही है वोने साधांनें उत्तरबारी आना दी अर बिणने मा सन्ना के साम्हने कहयो के वासाधा कने गाव पडियारा से लीयोडों पानी उणे साथ मे छो अठे पानी उवा साजरो लियो नही अर परबातरा साधाऐ पेमाजी जाट उनो पानी खारा कुवारो बेरायो वो लेकर साधु चल्या गया मारा गाव मे कुँड को काचा पानी साधाऐ बेरीयो कहयो सो झूठ है मारा गाव में कूँड रो पानी रे ताला लगीयो रेवे है मिन्दर का पुजारी सुखदासजी कने कुंजी रेवे है पुजारी ने भी मा सब जण पूछ लियो पुजारी कयो के कूँची मारा कने थी, मे कूँची कोई ने दीवी नही मारी भानजी नाथी है काचो पाणी कुन्ड से निकालनें पाच साधाने देवारो कहयों सो झूठी बात

है कूँची मारा कने ही तों नाथी कुँडरो पानी दियो कठा सूँ. सो, मां, सब झना आप आपना धर्म से कहा के म्हारा गाव में बाईसटोलारा पाच साधा मे से कोई सावु ने काचो पानी दिनो नहीं साधां लिया नहीं और हम सब जना नाथी को पानी देवा को झूठो नाम गांव पडियारा का माजन कहयो करके सुनियों जद मा नाथी उठा सूँ उवा पीयर गाव जेगनिये गई परी जिकों सूँ हमां पिरोयत धनजी ने गांव जेगनियें भेजकर नाथी से पूछाय लियों इनें माने ध्यायकर कयो के नाथी साफ कहयो के मैं पानी कुण्ड को साधां ने दियो नहीं मारो नाम झूठो लेवे छै या बात सन्नी साधां ने काचो पानीं बैरावा, को. नाम लें वाका झूठा छै और हमारे पंचों कें सामनें गाव जेगनीया का कानदासजी साधु अठे आय गया वां हमारें सामने इसी तरह कहयों के मारे गाव जेगनिया मे गांव पडियारा सूँ चाँदा नाई नें भैरूदान जी सुराना को भेज्यो थको मनें अर मारा माई की लड़की नाथी नें ऊँटपर चढ़कर लेवा को आये सो मैं उरे साथे गयो अर, नाथी, न गई जेगनियां में वूजकर गाव पडियारे गयों उठे भैरूदान की हवेली में जठे वांका साधु उतरया हा वठे मने लेयगा उठे वांरा साधु और गण, भांजना. के सामनें मांसू भैरूदान जी पूछीयों कें थे जिन दिन बाईस टोलारा पांच साधु सांजरा वखत रणदीसर आया था उस दिन ये रणदीसर में था और छोटा भाई की बेटी नाथी भी उठेई थी में कयो कें में और नाथी उन दिन उठेई था पीछे भैरूदान जी पूछियों कें थां बाईस टोला का पांच साधु में सें कोई साधु नें कुँड रो काचोपानी दियो जद मां कयो के में तो पाच सावां में से कोई ने भी काचो पानी पायो नहीं दियो नहीं पछे और पूछियो के थारो नाथी साधां कूँ काचो पानी दियों जद में कयो कें में नाथी से पूछकर आयो हूं और थांहरों भैरूदान जी सामने नाथी भी मारे सामने नाथी ने पूछलियों उनने साफ कहयो कें में काचो पानी कूँड को पांच साधां ने से कोई ने भी दीयो नहीं पायो नहीं जद मने भैरूदान जी री बहु और उन चांदियो नाई ने रातको मनें बहुत समझायों के थने केवे जितना रूपीया दे देवा ने सूँया बात कै दे के नें काचो पानी साधां ने वैरायो जद में कयो के मारी जीभ कट जाय मै तों झूठ नहीं बोलूँ जद फेर कयो के नाथी को नाम लेले के नाथी कूँड को काचो पानी सावां ने दियो जद मे कयो कि नाथी भी काचो पानी सावां ने दियों नहीं झूठो नाम मै केवूँ नहीं जद सेठानी कयों कि मारी बात थां गमाय दी मैं तों तीन गाँव में या बात चलाय दी के बाईस टोलारा सावां काचो पानी लिदों ने पीदो जद में कयों के थां इसी बात झूठी क्यूँ चलाई सो थे भुगतों में तो झूठ नही बोलूँ [illegible]

सैंतीसवां चातुर्मास (वि. सं. १९८५)

सरदारशहर श्रीसंघ के सज्जनों के आग्रह से स. १९८५ का चातुर्मास सरदारशहर में हुआ। प. र. मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज का चातुर्मास चूरू में हुआ। इस प्रकार थली प्रान्त के दो प्रधान क्षेत्रों मे दोनो महापुरुष दया-दान-धर्म का प्रचार करने लगे। सरदारशहर मे प्रातःकाल पहले मुनिश्री हर्षचन्दजी म. 'प्रश्नकाकरण' सूत्र का व्याख्यान करते थे। उसके पश्चात् पूज्यश्री 'सुखविपाक' सूत्र के आधार पर अपनी ओजस्विनी वाणी उच्चारते थे। प्रासगिक विवेचन करते हुए आप शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित करके अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों मे दया और दान का समर्थन करते थे। मध्याह्न मे तेरापंथी भाई तथा दूसरे लोग शंका-समाधान करने आते थे। पूज्यश्री प्रमाणपूर्वक उनकी शकाओं का समाधान करते थे।

इस अवसर पर तपस्वी मुनिश्री मागीलालजी महाराज ने उष्ण जल के आधार पर ४५ उपवास किये। तपस्वी श्री केसरीमलजी महाराज ने धोवन और गर्मजल के आधार पर ७१ दिन का तप किया।

सरदारशहर के सेठ श्रीमान् फूसराजजी दूगड़ तेरापंथियो के माने हुए कट्टर श्रावक थे। पूज्यश्री के व्याख्यानों से प्रभावित होकर वे शका-समाधान के लिए आने लगे। कुछ दिनों समागम करने से उनका समस्त भ्रम दूर हो गया और वे पूज्यश्री के भक्त बन गये। इस उदाहरण का प्रभाव दूसरो पर भी पड़े बिना न रहा। थली में सैकड़ो लखपती और कई करोड़पति सेठ है। तेरापथी श्रद्धा के कारण वे दया-दान मे पाप मानते हैं। बाढ़ या दुर्भिक्षआदि प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित मनुष्यों और पशुओ की सहायता करना वे पाप समझते है। एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य की सहायता करना अधर्म मानता है। उनके धर्मगुरु उन्हें ऐसा ही पाठ पढ़ाते है! धर्म का यह कैसा भयानक विकार है। धर्म की सफेद चादर ओढे स्वार्थ की इस कालिमा का नग्न स्वरूप दिखलाने के उद्देश्य से ही पूज्यश्री ने यह प्रवास किया था। थाली लोगों मे से एक भी व्यक्ति अगर दया और दान में धर्म मानने लगे तो कितने ही प्राणियों का भला हो सकता है! सेठ फूसराजजी दूगड़ के साथ उनकी पतिपरायण पत्नी ने भी अपना भ्रम दूर कर दिया। वह दया-दान मे धर्म मानने लगे।

द्वितीय श्रावण कृष्णा १४ के दिन तपस्वी मुनिश्री-मांगीलालजी म. की तपस्या का पूर था। उस दिन बहुत से तेरापथियों ने पूज्यश्री के चरण-कमलो में उपस्थित होकर सम्यक्त्व ग्रहण की और अपना जीवन धन्य बनाया।

सवत्सरी के दिन बाजार और कसाईखाना बन्द रखा गया। तेरापथी भाई पूज्यश्री के बढते हुए प्रभाव को सहन न कर सके। उन्होंने उस दिन दुकानें खुलवाने का बहुत प्रयत्न किया। दुकान बन्द रखने वालो का बष्किार करने की धमकी दी मगर सारे शहर में ८-९ दुकानों के अतिरिक्त सभी दुकानें बन्द रहीं। उस दिन तेलियों ने घानी नही चलाई। यह सब पूज्यश्री के उपदेशों का ही प्रभाव था।

इस निष्फलता को देखकर तेरापंथी भाई और चौकन्ने हो गये। उन्होंने देखा- अब हमारे किले की ईंटे धीरे-धीरे खिसकती जा रही हैं। वे उसकी रक्षा के लिए व्यग्र हो उठे। आहार-पानी सबधी अड़चने डालकर भी वे कुछ कामयाब न हुए तो उनके साधुओ ने अपने श्रावको और श्राविकाओ को स्थानकवासियों के व्याख्यान सुनने का त्याग कराना आरम्भ कर दिया। इस पद्धति से व्याख्यान सुनने वालो की संख्या अलबत्ता कुछ कम हो गई किन्तु भीतर ही भीतर लोगो की जिज्ञासा बढने लगी। मानव

स्वभाव गोपनीय वस्तु की ओर स्वभावतः अधिक आकृष्ट होता है। कइयो ने प्रेरणा करके पूज्यश्री के जाहिर व्याख्यान करवाये। बाजार मे तथा चौधरियो की धर्मशाला में आम व्याख्यान हुए। तेरापंथी और अन्य लोगो पर व्याख्यानों का बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रकार चार मास पर्यन्त पूज्यश्री धर्म का उद्घोष करते रहे।

सरदारशहर का विजयी चातुर्मास पूरा होने आया तो चूरू के कोठारीजी ने पूज्यश्री से चूरू पधारने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर पूज्यश्री ने चातुर्मास समाप्त होने पर चूरू की ओर विहार कर दिया। विहार के समय का दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण और द्रावक था। सरदारशहर की जनता ने उमड़ते हुए हृदय से और धर्म-प्रेम के कारण भीगी हुई आंखों से पूज्यश्री को विदाई दी। सैकड़ों की सख्या में लोग आपको पहुचाने गये। बहुत-से व्यक्तियों ने विदाई के अवसर पर भी शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। इस बार चूरू में श्रीमालचंदजी तथा श्री चम्पालालजी कोठारी ने पूज्यश्री से विविध प्रश्नोत्तर किये। पूज्यश्री के उत्तरो से सतुष्ट होकर उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

कुछ दिनों चूरू विराजकर आप ठेलासर होते हुए 'रामगढ' पधारे। रामगढ़ लक्ष्मी और सरस्वती का गढ़ ही समझिए। यहां बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली श्रीमान् भी है और धुरधर विद्वान् भी हैं। यहां की जनता मे बड़ी गुणग्राहकता है। सभी ने हृदय से पूज्यश्री का स्वागत किया। यहा विद्वन्मडली होने के कारण तेरापंथियो को फिर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया गया किन्तु किसी ने सामने आने का साहस न किया। राजवैद्य प. नाथूरामजी ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके तेरापंथियों को शास्त्रार्थ के लिए आमत्रित किया और अजैन विद्वानो एव श्रीमानों को मध्यस्थ बनाने की सलाह दी। फिर भी तेरापथी भाइयो ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया।

रामगढ में विहार कर पूज्यश्री फतहपुर पधारे। फतहपुर में श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी ने पूज्यश्री से मिलकर सतसमागम का लाभ उठाया। यहा कुछ दिन तक धर्म-प्रचार करके आप पुनः रामगढ़ होते हुए चूरू पधार गये। चूरू मे दो दीक्षाए होने वाली थी।

चूरू में दीक्षामहोत्सव

गगाशहर निवासी वैरागी रेखचदजी संसार से विरक्त होकर पूज्यश्री के निकट दीक्षा ग्रहण करना चाहते थे। कोठारी तथा अन्य सद्गृहस्थों के आग्रह से पूज्यश्री ने चूरू में दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। फाल्गुन कृष्णा नवमी को धूमधाम के साथ वैरागी की सवारी निकली और धर्मशाला मे पहुँची। दीक्षा के लिए यही स्थान नियत किया गया था। ५-६ हजार व्यक्तियो की भीड़ जमा थी। बाहर से भी बहुत-से गृहस्थ आये थे। ३९ साधु और २० आर्यिकाए उपस्थित थीं।

इसी अवसर पर तेरापथी साधु हमीरमलजी ने वहा खड़े होकर कहा- मैंने तेरहपंथी सम्प्रदाय में दीक्षा ली है। मगर उस सम्प्रदाय के अनेक साधु दोषी है। मैंने अपने पूज्यश्री से उनकी शुद्धि के लिए कहा, मगर वहा सुनवाई नही हुई। अतएव मैंने तेरहपथ का परित्याग कर दिया है। साथ ही 'जीवरक्षा और दया-दान विषयक शास्त्रों का परिचय प्राप्त करके मैने समाधान प्राप्त कर लिया है। मैंने आत्म-कल्याण के लिए घर छोडा है। ऐसी स्थिति में जानबूझकर असत्य मार्ग पर नही चलना चाहता। जीवरक्षा, दया-दान और परोपकार शास्त्रविहित है, यह बात पूज्यश्री ने स्पष्ट करके बतला दी है। मै सब भाइयों की साक्षी से पूज्यश्री को गुरु मानकर दीक्षा लेना चाहता हू। पूज्यश्री मुझपर कृपा करे।'

पूज्यश्री ने कोठारीजी तथा दूसरे प्रमुख व्यक्तियो की सम्मति से हमीरमलजी को भी दीक्षा दे दी।

हमीरमलजी ने अभी तक तेरापंथी सम्प्रदाय की दीक्षा पाली थी। उन्हे स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधुओ की कठोर चर्या का भी पता नही था। इन साधुओ के संयम की कठोरता, आहार-पानी की नीरसता आदि देखकर हमीरमलजी १५ दिनो में ही साधुत्व के पालन मे अपने को असमर्थ अनुभव करने लगे। मगर लोक-लाज के कारण वह खुलकर बोल नही सकते थे। नतीजा यह हुआ कि एक दिन आहार करते समय करडा धोवन पीना पड़ा। तब वह बोले-'इसो धोवण पीणो करता तो मरणोई चोखो।' और उसी रात्रि को वह चुपचाप उठकर चल दिये!

दीक्षा-प्रसग पर चूरू के कोठारी-परिवार ने जो उत्साह दिखलाया वह प्रशसनीय और आदर्श था। सभी के स्वागत के लिए आपने सुप्रबध किया था। पूज्यश्री, सेठ मालचदजी साहब की कोठी में ठहरे थे। उसी समय श्रीचम्पालालजी कोठारी तथा श्रीमालचदजी कोठारी ने कई दिनो तक चर्चा करने के पश्चात् शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की।

'जैनधर्म कायरो का नही, वीरों का धर्म है' इस विषय पर पूज्यश्री का अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। महाराज भैरोंसिहजी साहब के. सी. आई. ई., जज, वकील तथा अन्य राज्याधिकारी उपस्थित थे। अजैन जनता भी बड़ी सख्या में व्याख्यान सुनने आई थी।

चूरू से विहार करके पूज्यश्री रतनगढ, सुजानगढ, राजलदेसर, बीदासर आदि स्थानों मे दया-दान का प्रचार करते हुए आषाढ़ शुक्ला ८ को फिर चूरू पधारे। मार्ग मे कई स्थलों पर तेरापथी पूज्य कालूरामजी स्वामी को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी गई, किन्तु वे सामने न आये। बहुत-से तेरापथी भाई भी व्याख्यान सुनने आते थे। तेरापथी साधु जगह-जगह घूमकर पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने का अपने श्रावकों को त्याग करवाते थे, फिर भी कुछ सुलभबोधि और जिज्ञासु व्यक्ति व्याख्यान सुनने आ ही जाते थे।

इसी विहार मे पूज्यश्री ने अनुकम्पा की ढालो की रचना की, जिनमे तेरापथियों की युक्तियो का खडन करके शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा अनुकम्पा का प्रबल समर्थन किया गया है। तेरापथियो ने साधारण जनता को भ्रम मे डालने के लिए थली प्रान्त की बोली मे ऐसी कुछ ढाले बना रखी हैं जिनमे दया-दान का निषेध किया गया है। पूज्यश्री ने भी उसी बोली मे उन ढालो का खण्डन करते हुए दया-दान का समर्थन किया है। पूज्यश्री का जन्म मालवा मे हुआ और थली प्रान्त की बोली से वह प्रारभ मे परिचित नहीं थे, तथापि अल्प काल के परिचय से ही वे उस बोली में ढाले रचने मे सफल हो सके। यह उनकी प्रखर प्रतिभा का परिचायक है। इसी समय मे पूज्यश्री ने एक वृहत् ग्रथ की रचना भी की, जिसका नाम 'सद्धर्म-मण्डन' है। यह ग्रथरत्न सरदारशहर, चूरू और बीकानेर के चौमासो मे लिखा जाता रहा। तेरापथियो के 'भ्रम-विध्वसन' नामक ग्रथ में जैनागम के विपरीत जिन कपोल कल्पित बातो का समर्थन किया गया है, उन बातो की सद्धर्ममडन मे बडी कुशलता और सावधानी के साथ परीक्षा की गई है और तेरापथ की मान्यताओ को जिनागम विरुद्ध सिद्ध किया गया है। इस सबध का यह अद्वितीय और प्रामाणिक ग्रथ है। इसके अध्ययन से जहा तेरापथ की मान्यताओ की कल्पितता विदित हो जाती है

वहा पूज्यश्री की तीक्ष्ण समीक्षा शक्ति, अगाध सिद्धान्त-ज्ञान और प्रखर प्रतिभा का भी सहज ही पता चल जाता है।

अड़तीसवाँ चातुर्मास (सं. १९८६)

वि स. १९८६ का चौमासा पूज्यश्री ने चूरू मे किया। यहां विराजने से अन्यतीर्थिकों पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। सिर्फ दो घर श्रद्धान्तु थे, फिर भी सैकडो की सख्या मे बहुत श्रोता व्याख्यान का लाभ लेते थे। जो लोग जैनधर्म को दया-दान परोपकार आदि का निषेधक समझकर उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे, उनके दिल मे भी उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। श्रीयुत मूलचदजी कोठारी ने धनतेरस के दिन अपने अनेक साथियों के साथ पूज्यश्री से श्रद्धा ग्रहण कर ली। श्रद्धा ग्रहण करते समय आपने धोषणा की- 'मैं सत्य समझ कर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हू। इसमें मुझे लेश-मात्र भी संशय नही है। हा, अगर किसी को संदेह हो तो दोनो आचार्य आपस में शास्त्रार्थ करे। अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मै एक लाख रुपया गोशाला के निमित्त दान दूगा। अगर तेरापथी पक्ष पराजित हो जाय तो वह भले ही कुछ भी न दे।' कोठारी जी की यह ठोस चुनौती भी निरर्थक हुई। उसे किसी ने स्वीकार करने की हिम्मत न दिखलाई।

चौमासा समाप्त होने पर पूज्य ने चूरू से विहार किया और सरदारशहर पधारे। सरदारशहर मे आपके आम व्याख्यान हुए। नेमिचदजी छाजेड और मोहनलालजी दूगड़ आदि कई भाइयों ने यहा पर भी तेरापथी सम्प्रदाय का परित्याग कर पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया।

सरदारशहर से विहार करके अनेक स्थानों पर धर्म का उद्योत करते हुए पूज्यश्री बीकानेर पधारे।

माघ शुक्ला सप्तमी को सुजानगढ मे तेरापथियों का माघ-महोत्सव होने वाला था। इस उत्सव के अवसर पर उस सम्प्रदाय के प्रायः सभी साधु और साध्विया एकत्र होते है। हजारो गृहस्थ दर्शन के निमित्त इकट्ठे होते है। इस अवसर पर दया और दान का प्रचार करने के निमित्त वहा की धर्मशील जनता के विशेष आग्रह से पूज्यश्री फिर सुजानगढ पधारे। तेरापथियों का जमघट होने पर भी जैनेतर जनता बडी सख्या मे पूज्यश्री के उपदेशों का लाभ उठाती थी। जनता की प्रबल इच्छा थी कि इस अवसर पर दोनो आचार्यो का शास्त्रार्थ हो और दया-दान सबधी विवादग्रस्त विषय प्रकाश में आजाए, मगर तेरापथी पूज्यश्री कालूरामजी भूल करके भी शास्त्रार्थ के फदे में नही फँसना चाहते थे।

तेरापथी सम्प्रदाय के आचार्य को बारम्बार शास्त्रार्थ के लिए मध्यस्थ जनता ने उकसाया परन्तु वे सामना करने का साहस न कर सके। स्वभावत· जनता इस दुर्बलता को समझ गई थी और उनके अनुयायी भी इस सचाई को मन ही मन समझ रहे थे। अपनी इस दुर्बलता को छिपाने का कोई उपाय करना उनके लिए आवश्यक हो गया। आखिर एक उपाय ऐसा निकल आया जिससे साप मरे न लाठी टूटे। अर्थात्-शास्त्रार्थ की पराजय से भी बचा जा सके और दुर्बलता का अपवाद भी कुछ अशों मे दूर हो जाय। एक जाट पडित नेमिनाथ को वे कही से पकड़ लाए और उसे अगुवा करके शंका -समाधान के लिए तैयार किया। इस शका-समाधान में जाट पडित को किस प्रकार निरुत्तर होना पडा, और क्या-क्या शका-समाधान हुए, इत्यादि सभी बाते 'सुजानगढ चर्चा' नामक पुस्तक में विस्तार पूर्वक · हो चुकी है। जिज्ञासु पाठक परिशिष्ट मे देख सकते है।

यद्यपि तेरापथी पूज्य स्वयं सामने नही आये तथापि इस शका-समाधान का प्रभाव वहुत सुन्दर हुआ। लोगों को बहुत अंशों में सत्य का भान हो गया। पूज्यश्री की योग्यता से वहा की जनता पहले ही परिचित थी, इस शंका-समाधान के पश्चात् तो आपका लोहा मानने लगी। श्री रामनदजी ने तथा जैनेतर जनता ने अत्यन्त श्रद्धाभाव से चौमासा करने का वहुत आग्रह किया किन्तु पूज्यश्री ने उस समय कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया।

सुजानगढ़ से विहार करके पूज्यश्री छापर, पडिहारा, रतनगढ, राजलदेसर आदि स्थानो को पावन करते हुए भीनासर पधार गये। रतनगढ में सेठ श्रीसूरजमलजी नागरमलजी का तथा अन्यत्र अनेक भाइयो का प्रबल आग्रह टालते हुए तपस्वी श्री बालचदजी महाराज के सथारे के कारण पूज्यश्री शीघ्र ही गगाशहर पधार गये।

तपस्वीराज श्रीबालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

घोर तपस्या और उत्कृष्ट चारित्र के लिहाज से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय का स्थान बहुत ऊचा रहा है। पूज्यश्री स्वय बहुत बड़े तपस्वी थे। उन्होने २१ वर्ष तक बेले-बेले पारणा किया था। उत्कृष्ट चारित्र, सरलता, विद्वत्ता आदि अनेक गुणो के कारण विरोधी भी उनके भक्त बन गये थे। उनके पश्चात् दूसरे आचार्यो के समय भी अनेक घोर तपस्वी और उग्र सयमी मुनिराज होते रहे हैं। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के समय भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। मुनिश्री बालचन्दजी महाराज का उग्र सयमी और तपस्वी मुनियों में एक विशिष्ट स्थान था। दीक्षा लेने के बाद तपस्या में तत्परता से प्रवृत्त हुए। ७० वर्ष की आयु तक आप बराबर छोटी-बड़ी तपस्याए करते रहे। दीक्षित अवस्था का हिसाब लगाया जाय तो दीक्षित होने के बाद आपका अधिकाश समय तपस्या में ही बीता।

संवत् १९८७ के चैत्र मे आपको यह प्रतीत होने लगा कि इस जीवन का अतिम समय अब सन्निकट आ गया है। आपकी आयु उस समय ७० वर्ष की थी। आपने उसी समय निराहार रहने की प्रतिज्ञा कर ली। पानी के अतिरिक्त सभी आहारों का त्याग करके तिविहार संथारा ले लिया। पूज्यश्री तपस्वीजी को दर्शन देने के लिये गगाशहर पधार गये। तपस्वीराज ने आचार्य महाराज के दर्शन करके अपने को कृतकृत्य माना और पानी का भी त्याग कर देने का विचार प्रकट किया। आपकी परिणामधारा उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती जाती थी। आपने शरीर का और जीवन का मोह त्याग दिया था। पूज्यश्री ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर उस समय पानी का त्याग कराना उचित नही समझा। तपस्वीजी किसी दिन पानी का सेवन कर लेते और किसी दिन नही भी सेवन करते थे।

ज्येष्ठ कृष्ण ४ की रात्रि को ९ बजे तपस्वीजी ने औदारिक शरीर त्याग दिया। अन्तिम समय तक आपके मुख पर एक प्रकार की अनुपम शान्ति और तेजस्विता विराजमान रही। अतिम समय में आपने अनेक श्रावकों और श्राविकाओ को अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान करवाए। दूसरे दिन बडी धूमधाम के साथ आपका अतिम सस्कार किया गया।

ज्येष्ठ बदी ५ को पूज्यश्री भीनासर पधार गये।

उनतालीसवां चातुर्मास (सं. १९८७)

बीकानेर की जनता चातक की तरह पूज्यश्री की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी आकाक्षा वडी

प्रबल थी कि इस बार का चौमासा बीकानेर मे ही किया जाय। तदनुसार पूज्यश्री के प्रति आग्रहपूर्ण प्रार्थना की गई और वह स्वीकृत हो गई। चौमासे की स्वीकृति से बीकानेर की साधु मार्गी जैन जनता में उत्साह की लहर दौड़ गई।

आषाढ़ शुक्ला १० को पूज्यश्री १५ ठाणों से चौमासा करने के निमित्त बीकानेर पधार गये। उसी वर्ष श्रीनन्दकुवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीकिसनाजी ने १६ ठाणों से तथा श्रीरंगूजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्री गुलाबकुंवरजी ने ठाणा ९ से बीकानेर मे चौमासा किया।

इस चातुर्मास मे तपस्वी मुनि श्री फौजमलजी म. ने धोवन के आधार पर ६८ दिन की तपस्या की। ७४ वर्ष की वृद्धावस्था होने पर भी आप एक दिन धोवन पीते थे और दूसरे दिन चौविहार उपवास करते थे। आपके अतिरिक्त अन्य सन्तो और सतियो ने भी विविध प्रकार की तपस्याए कीं। पूज्यश्री ने स्वय ७ दिन की थोक तथा प्रकीर्णक तपस्या की।

आसौज वदि ११ को तपस्वी मुनि श्रीफौजमलजी महाराज की तपस्या का पूर था। उस दिन राज्य की ओर से कसाई खाना बन्द रखा गया और स्थानीय श्रीसघ की प्रेरणा से ठठेरों, लुहारों, भटियारों तथा तेलियो ने अपना धन्धा बन्द रखा। जीव-दया आदि अनेक उपकार हुए। आसौज वदि १२ को तपस्वीजी का पारणा निर्विघ्न हुआ। आप अन्त समय तक प्रसन्न रहे और प्रतिदिन व्याख्यान मे उपस्थित होते रहे।

इस चातुर्मास में मन्दिरमार्गी भाइयो की ओर से कुछ प्रश्न किये गये जिनका उत्तर पूज्यश्री की ओर से दे दिया गया । वे प्रश्नोत्तर छप चुके है, अतः उन्हें यहा देने की आवश्यकता नहीं है।

पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने के लिए हजारों की सख्या में श्रोता उपस्थित होते थे। राज्याधिकारी, व्यापारी, जैन, जैनेतर सभी श्रेणियों के श्रोता व्याख्यान से लाभ उठाते थे।

हिन्दी के प्रतिष्ठित लेख श्रीरामनरेश त्रिपाठी पूज्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। आपने पूज्यश्री के अनेक व्याख्यान सुने। तत्पश्चात् श्रीत्रिपाठीजी ने प्रयाग की मासिक पत्रिका सरस्वती मे एक लेख प्रकाशित किया, जिसका अंश इस प्रकार है:-

मेरी बीकानेर यात्रा

अब मैं एक बात की चर्चा और करने वाला हूं, जो राजपूताने से भिन्न प्रान्त-प्रान्त वालों के लिये नई ही नही, कौतूहलजनक भी है। बीकानेर मे जैनधर्मावलम्बी ओसवाल वैश्यों की सख्या अधिक है। ये लोग कलकत्ते- बम्बई में बड़ा-बड़ा व्यापार करते हैं और बड़े ही धनी होते हैं। इनमें दो सम्प्रदाय है एक के आचार्य श्री कालूरामजी है जो तेरापथी कहलाते हैं, दूसरे के आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज हैं जो वाइस पथ कहलाता है। गतवर्ष फतहपुर में जवाहरलालजी महाराज से मेरा साक्षात्कार हुआ था। उनका चरित बहुत ही अच्छा, पवित्र और तपस्या से पूर्ण है। वे अच्छे विद्वान् निरभिमानी, उदार, सहदय और निस्पृह हैं। चौमासे मे वे किसी एक स्थान में ठहर कर चौमासा करते है और जनता को अपने व्याख्यानामृत से तृप्त करके सन्मार्ग पर ले चलते है। उनके व्याख्यान मे सामयिकता रहती है। और देश की प्रगति का भी उन्हें काफी ज्ञान है। वे इतिहास से सत्पुरुषो के जीवन चरितो से उपकारी बातें लेकर अपने भक्तों को देने में कभी आलस्य और संकोच नही करते। इस वर्ष उनका चौमासा

बीकानेर में था। मै प्रायः प्रतिदिन उनके व्याख्यान में जाया करता था। कई वार उन्होंने श्रीमुख से मेरी चर्चा भी की। इससे उनके भक्तों का मैं प्रिय पात्र हो गया और वे लोग मेरे साथ वडा प्रेम-प्रदर्शन करने लगे। आचार्यजी के भाषणों का प्रभाव उनके सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष दोनो पर बहुत अच्छा पड रहा है।

वे बडे निर्भय वक्ता हैं, पर अप्रियतावादी नहीं। उनका व्याख्यान सुनने के लिये बीकानेर के राजपदाधिकारी तथा अन्य मत-मतान्तरो के खास-खास लोग भी आते थे।

कोतूहल-जनक बात दूसरे सम्प्रदाय की है जिसके आचार्य श्रीकालूरामजी महाराज है। ये भी चौमासा करते है। उनके भी भक्तों की संख्या अधिक है। आचार्य कालूरामजी की शिक्षा का कोतूहल-जनक अश यह है- किसी के गले मे फासी लगी हुई हो तो उसे काट देना पाप है। गायो के बाडे मे आग लगी हो तो उसे बुझा देना या दरवाजा खोलकर गायो को बाहर निकाल देना पाप है। किसी दीन-दुखी पर दया करना या दान देना पाप है। कोई किसी निर्दोष बच्चे के पेट मे छुरी खोसता हो तो उसे बचाना पाप है। कोई क्रोधावेश मे गड्ढे में या कुए मे गिरने जा रहा हो तो उसे बचाना पाप है। इत्यादि इसी प्रकार की कोतूहल जनक अनेक बातें है। जो श्रोताओ को समझाई जाती हैं और उनका प्रभाव भी पड़ता है। इस सम्प्रदाय मे धनियों की सख्या बहुत है पर शिक्षितो की सख्या अत्यन्त कम। क्योंकि शिक्षा के लिये दान देना भी पाप है। हां खाने, पीने, पहनने में ये लोग किफायत नहीं करते। आचार्यजी का उपदेश भी ऐसा ही है। इस सम्प्रदायवाले भक्त आचार्य कालूरामजी को ही ईश्वर तुल्य मानते है। और उनके साथी साधुओं की सेवा तन-मन-धन से करते है। अच्छी-से-अच्छी चीजें खिलाते हैं। बढ़िया-से-बढिया वस्त्र पहनाते है और उत्तम-से-उत्तम स्थान में ठहराते हैं। स्त्रियों को रात के पहले और पिछले पहर मे आचार्यजी का व्याख्यान सुनने की स्वतत्रता रहती है। इस सम्प्रदाय के लोग खूब मौज की जिन्दगी बिताते हैं। सुनते है कि राजपूताने में इस सम्प्रदाय वालो की सख्या साठ हजार के लगभग है। साठ हजार लोग बीसवीं सदी में ऐसी भयानक शिक्षा के शिकार हो रहे है, क्या यह कम आश्चर्य की बात है?

रामनरेश त्रिपाठी

'सरस्वती'

जनवरी, १९३१

सरदारशहर के सेठ तनसुखरामजी दूगड़ तथा अन्य सज्ञनो ने सरदारशहर पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने साधुभाषा में समुचित आश्वासन दिया।

बीकानेर का यशस्वी चौमासा समाप्त होने पर पूज्यश्री गगाशहर, भीनासर होते हुए मार्ग-शीर्ष कृष्णा १३ को देशनोक पधारे। २९ दिन तक विराजमान रहे। जैन जैनेतर जनता ने आपके उपदेशो से खूब लाभ उठाया। देशनोक के चारणों तथा दूसरे लोगो पर आपका बहुत प्रभाव पड़ा। आपके सदुपदेशों के प्रभाव से वहा निम्नलिखित सुधार हुए -

(१) यहा के ओसवाल नुकते के समय रात्रि मे भोजन बनवाते थे। उसमे जीव-हिंसा बहुत अधिक होती थी। पूज्यश्री के उपदेश से सब भाइयों ने रात्रि मे रसोई बनाने-बनवाने का त्याग कर दिया।

(२) यहा के चारण जागीरदारो में दो वर्ष से पारस्परिक उग्र वैमनस्य के फलस्वरूप एक आदमी के प्राण भी चले गये थे। पूज्यश्री के प्रभावक उपदेश से वैमनस्य की ज्वालाएं शात हो गई और प्रेम की धारा बहने लगीं।

(३) चारण, खत्री, सुनार आदि ने मांस, मदिरा, बीड़ी, तमाखू आदि अभक्ष और मादक द्रव्यो तथा वृक्ष काटने का त्याग किया।

(४) खूब तपस्या हुई। तीन पचरगिया हुई।

(५) अनेक अजैनों ने, तेरापथी तथा मदिरमार्गी भाइयो ने पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया।

(६) देशनोक तथा आसपास के जैनों का सगठन करने के लिए 'श्रीसाधुमार्गी जैन सभा' स्थापित हुई।

(७) बहुत से लोगों ने कन्या-विक्रय करने तथा चर्बी लगे वस्त्र पहनने का त्याग किया।

देशनोक से विहार करके पूज्यश्री रासीसर पधारे। यहां चार तेरापंथी भाइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। सूरपुरा में तीन भाइयो ने सम्यक्त्व लिया। नारवा मे बीस सुलभबोधि भाइयो को सम्यक्त्व दिया। पूज्यश्री नारवा से पाचू पधारे। वहा ७० तेरापथियों ने शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। पांचू मे शिथिल साधुमार्गी भाइयो को उपदेश देकर आपने दृढ़ धर्मी बनाया। तत्पश्चात् पूज्यश्री का सरदारशहर में पदार्पण हुआ। यहा शेष काल विराजे। दो बाइयो ने दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सार्थक किया। सरदारशहर से आप चूरू पधारे। चूरू मे शानदार स्वागत किया गया। कुछ दिन यहा बिराजने के अनन्तर ता. १२-३-३१ को आप राजगढ पधारे। ग्राम से बाहर शान्त एकान्त वातावरण मे धर्मशाला में विराजमान हुए। पूज्यश्री के विहार का सवाद पाकर एक दिन पहले ही वहा तेरापथी साधु भी आ पहुचे थे। पूज्यश्री का प्रभावशाली स्वागत हुआ। ता. १३-३ को बाजार में आपने आम जनता को लाभ पहुचाने के लिए सुन्दर उपदेश दिया। समस्त राज्याधिकारी और एक हजार के लगभग अन्य श्रोता उपस्थित थे। यहा के तेरापथी बन्धु सरल और भद्र थे। जनता पूज्यश्री के दर्शन से तथा उपदेश से अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित हुई। सभी लोग मुक्त कठ से व्याख्यान की प्रशसा करने लगे।

सेठ अमृतलाल रामचन्द जौहरी, श्री आनन्दराजजी सुराणा और बीकानेर के अनेक श्रावक पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। तेरापथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए अकसर आते रहते थे। प्रभाव बहुत सुन्दर पडा। ता. २० को यहा के प्रसिद्ध तेरापथी श्री भीखमचन्दजी सरावगी ने अपने सुयोग्य पुत्र के साथ पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया। इस घटना ने ओसवालों मे–तेरापथियों मे हलचल–सी मचा दी।

यहा हासी और हिसार के श्रावक पूज्यश्री से अपने नगरो में पधारने की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए। उनका आग्रह इतना प्रबल था कि पूज्यश्री के लिए टालना अशक्य हो गया।

राजगढ मे धार्मिक जागृति और विशेषत· दया-दान के प्रति प्रबल श्रद्धा उत्पन्न करके पूज्यश्री ने विहार किया। यद्यपि पूज्यश्री हिसार की ओर पधारना चाहते थे मगर भादरा के सेठ पूनमचदजी नाहरा और खूबराम सर्राफ के अनिवार्य आग्रह के कारण आप भादरा की ओर पधारे। ता ५-४-३१ को आप भादरा पधारे। लगभग २५० अग्रवाल भाइयो ने डेढ मील सामने जाकर पूज्यश्री का स्वागत किया। व्याख्यान मे खासी उपस्थिति होती थी। राज्याधिकारी वर्ग ने खूब लाभ उठाया। यहा सेठ

पूनमचंदजी नाहरा पूज्यश्री के विशेष भक्त थे। सेठ खूबरामजी सर्राफ पूज्यश्री के उपदेशो से प्रभावित होकर पूज्यश्री के अनुरागी बने। तेरापथी साधु अपने श्रावको को संभाले रहने के उद्देश्य से यहा भी आ पहुंचे थे।

भादरा की भद्र-हृदय जनता को भव्य उपदेश देकर, भव-भ्रमण से छूटने का पथ प्रदर्शित करके पूज्यश्री विचरते हुए हिसार पधारे। यहां जाहिर व्याख्यान हुए। आर्यसमाज और दिगम्बर भाइयों के साथ प्रश्नोत्तर हुए। अच्छा प्रभाव पडा। हिसार के अनन्तर हासी में भी आपके आम व्याख्यान हुए। तेरापथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए आये। देहली श्रीसंघ की ओर से कुछ प्रमुख सज्जन देहली मे आगामी चौमासा करने की प्रार्थना करने आये। यहां पं. मुनिश्री मदनलालजी महाराज से भी मुलाकात हुई। आप जैनशास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। पूज्यश्री पर आपकी गाढी श्रद्धा थी। परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा।

पूज्यश्री भिवानी भी पधारे। यहा भी आपके जाहिर व्याख्यान हुए। यहा के तेरापथी भाइयो ने अनेक प्रकार से विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। मगर पूज्यश्री की विद्वत्तापूर्ण वाणी और उत्कृष्ट संयम के सामने विरोधी प्रचार टिक न सका। आर्यसमाजी और दिगम्वर, जैन भाइयों के कारण वह प्रचार एकदम ठंडा पड़ गया।

भिवानी से विहार कर पूज्यश्री रोहतक पधारे। देहली के श्रीसघ की ओर से पुन. चौमासे की प्रार्थना की गई। पूज्यश्री ने श्रीसघ का आग्रह अनिवार्य-सा समझकर साधुभाषा मे समुचित आश्वासन दे दिया। आपने देहली की ओर ही प्रस्थान किया।

दादरी मे पूज्यश्री मनोहरदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज तथा मुनिश्री पृथ्वीदासजी महाराज जो बाद में आचार्य-पद पर आसीन हुए-तथा कविवर मुनिश्री अमरचन्दजी महाराज विराजमान थे। पूज्यश्री का इन सतों से प्रेमपूर्ण समागम हुआ। इन्ही दिनो कान्फ्रेस की ओर से एक सवत्सरी करने के लिए सभी मुनियो के पास विज्ञप्ति भेजी गई थी। पूज्यश्री ने तथा वहा विराजमान अन्य सतों ने उदारतापूर्वक कॉन्फ्रेंस के निश्चयानुसार सवत्सरी करने की स्वीकृति फरमाई।

चालीसवां चातुर्मास (१९८८)

रोहतक से विहार करके पूज्यश्री ता. ११-७-३१ को ठाणा १२ से देहली पधारे। देहली का श्रीसघ चिरकाल से पूज्यश्री के लिए लालायित था। भक्ति में असीम शक्ति है। भक्त के हृदय की प्रबल भावना भक्तिपात्र को आकर्षित किये बिना नही रहती। तदनुसार पूज्यश्री देहली पधार गये और वहा ता. १७-७-३१ के दिन चौमासा करने की स्वीकृति दे दी। देहली के श्रीसंघ के लिए पूज्यश्री की स्वीकृति अत्यन्त उत्साह और आनन्द देने वाली सिद्ध हुई। सघ मे एक प्रकार की नई जागृति आ गई। उल्लास का वातावरण फैल गया।

भारतवर्ष के इतिहास मे देहली, दिल्ली या इन्द्रप्रस्थ का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारत का इतिहास बनाने में दिल्ली ने जो भाग लिया है वह किसी दूसरे नगर ने नहीं लिया। अत्यन्त प्राचीन काल से दिल्ली राजनीतिक हलचलो का केन्द्र रहा है। दिल्ली ने भारतीय वीरो की वीरता देखी है, मुगलो का वैभव-विलास देखा है और फिरगियो की कूटनीति देखी है। देहली भारत का शासक है। भारतवर्ष के लिए राजशासनादेश दिल्ली से जारी होते रहे है।

ऐसे नगर मे पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज जैसे महान् धर्मोपदेशक का चौमासा होना भी एक विशेष धटना है। दिल्ली नगर भारत का राजनीतिक शासक है तो पूज्यश्री धर्मशासक थे। जैसे दिल्ली के आदेशो की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक की जाती है उसी प्रकार पूज्यश्री के आदेशो और उपदेशो की प्रतीक्षा लाखो व्यक्ति करते थे।

भारत की राजधानी मे पूज्यश्री का यह चातुर्मास कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण रहा। पूज्यश्री देहली के प्रधान और दर्शनीय बाजार चादनी चौक मे; महावीरभवन में ठहरे थे। आपके व्याख्यानो में जैन-जैनेतर जनता की भीड लगी रहती थी। व्याख्यान इतने प्रभावशाली होते थे कि देहली जैसे विशाल नगर मे भी उनकी कीर्ति फैलते देर न लगी। अनेक हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्रीय नेता आपके विचारो से स्फूर्ति लेने के लिए व्याख्यान में आते थे। कांग्रेस के तत्कालीन प्रसिद्ध नेता शेख अताउल्लाशाह बुखारी और उनके भाई हबीबुल्ला शाह बुखारी आदि अनेक सज्जनों ने पूज्यश्री के व्याख्यान मे सम्मिलित होकर नवीन प्रेरणा प्राप्त की। श्रीबुखारी ने सक्षिप्त भाषण करते हुए मुक्त कठ से पूज्यश्री के उपदेशों की प्रशंसा की और विदेशी तथा मिल के वस्त्र त्यागने की जनता को प्रेरणा की। काका कालेलकर जैसे विचारक विद्वान् भी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। आपने राष्ट्रोन्नति के विषय मे पूज्यश्री के विचार सुने। काका साहब ने अन्त में बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

ई. सन् १९३१ भारतवर्ष के स्वतत्रता-सग्राम मे बड़ा ही गौरवपूर्ण समय है। उस समय भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक क्राति की लहरे लहरा रही थी। महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन अत्यन्त सफलता के साथ चल रहा था। पूज्यश्री इस अहिंसात्मक आन्दोलन का महत्त्व भली-भाति समझते थे। उन्हे विदित था कि यह अहिंसा की खरी कसौटी है। इसकी सफलता और असफलता पर अहिंसा की प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा निर्भर है। अगर यह आन्दोलन सफल होता है तो यह अहिंसा धर्म की अभूतपूर्व विजय होगी। जैन धर्म अहिंसा का प्रतिपादक और जैन-समाज अहिंसा का समर्थक और पोषक है। उसे अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए होने वाले इस विशुद्ध सघर्ष में अपना समुचित भाग अदा करना चाहिए। ऐसा करके वे अहिसा की महान्-से-महान् सेवा बजा सकेंगे। यही कारण था कि पूज्यश्री अपने प्रवचनों मे राष्ट्रधर्म का अत्यन्त प्रभावजनक शब्दों में प्रतिपादन करते थे। देहली-चातुर्मास के कतिपय व्याख्यान 'जवाहरकिरणावली' के प्रथम और द्वितीय भाग मे प्रकाशित हो चुके हैं।[१]. उन्हें देखने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्यश्री ने अहिसाधर्म के प्रचार का अनुकूल अवसर पहचान कर कितनी खूबी के साथ उपयोग किया है। आचार्य महोदय की युगदर्शक तीक्ष्ण दृष्टि का इससे भली-भाति पता चल जाता है। उस समय के आपके उपदेश किसी भी राष्ट्रीय नेता के उपदेशों से कम प्रभावशाली नही हैं, फिर भी तारीफ यह है कि आपने अपनी साधुभाषा का कही उल्लघन नहीं किया है और उन उपदेशो मे धार्मिकता उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूध मे मिठास व्याप्त रहती है। निस्सदेह आपके यह अमर उपेदश जनता को चिरकाल तक पथ प्रदर्शित करते रहेगे।

जैसे समग्र राष्ट्र मे नवीन चेतना दौड रही थी उसी प्रकार स्थानकवासी समाज मे भी जागृति की नई लहर उठ रही थी। सारे समाज का सगठन करने के लिए अखिल भारतीय 'साधु सम्मेलन' करने की धूम थी। धर्मवीर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी तथा दूसरे सज्जन जी जान से प्रयत्न कर रहे

---

१ यह पुस्तके श्रीमान् सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया, भीनासर (बीकानरे) से प्राप्त हो सकती हैं।

थे। समाज का प्रतिनिधिमंडल प्रधान-प्रधान मुनिराजों से मिल रहा था और आशाजनक आश्वासन प्राप्त कर रहा था।

ता. ११-१०-३१ को दिल्ली मे स्थानकवासी जैन कांफ्रेस की जनरल कमेटी का अधिवेशन हुआ। मुख्य विचारणीय विषय साधु सम्मेलन था। प्राय: सभी प्रातों के और सभी सम्प्रदायों के प्रधान श्रावक उपस्थित थे। पूज्यश्री के इस विषय के उपयोगी, सुन्दर और महत्त्वपूर्ण विचार सुनकर सभी श्रोता गद्‌गद् हो उठते और उनमे नवीन उत्साह आ जाता था। साधु-सम्मेलन के सिलसिले में एक दिन पूज्यश्री ने फरमाया-

पूज्यश्री का भाषण-ब्रह्मचारी वर्ग

आज निर्ग्रन्थवर्ग की स्थिति कुछ विषम-सी हो रही है। साधु-समाज और साध्वी-समाज में निरकुशता फैलती जाती है। इसका कारण, किस प्रकार के पुरुष और किस प्रकार की महिला को दीक्षा देनी चाहिए, इस बात का पूरी तरह से विचार नही किया जाता रहा है। दीक्षा सबधी नियमो का पालन बहुत कम हो रहा है। इस नियमहीनता का दुष्परिणाम यहा तक हुआ है कि अपनी जैन सम्प्रदाय से भिन्न जैन सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के कारण मुकदमेबाजी तक हो जाती है।

साधु-समाज के निरकुश होने और साधुता के नियमो मे शिथिलता आ जाने के कारणो मे से एक कारण है-साधुओ के हाथ मे समाज-सुधार का काम होना। आज सामाजिक लेख लिखने, वाद-विवाद करने और इस प्रकार समाज-सुधार करने का भार साधुओ पर डाल दिया गया है। समाज-सुधार करने का कार्य दूसरा कोई वर्ग अपने हाथ मे नहीं ले रहा है। अतएव यह काम भी कई-एक साधुओं को अपने हाथ में लेना पड़ा है। इसलिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में साधुओ द्वारा ऐसे-ऐसे काम हो जाते है जो साधुता के लिए शोभास्पद नही कहे जा सकते।

यदि समाज-सुधार का काम साधु-वर्ग अपने ऊपर नही लेता तो समाज बिगडता है और जो समाज लौकिक व्यवहार में ही बिगड़ा हुआ होगा उसमे धर्म की स्थिरता किस प्रकार रह सकेगी। व्यवहार से गया-गुजरा समाज धर्म की मर्यादा को किस प्रकार कायम रख सकेगा! इस दृष्टि से समाज-सुधार का प्रश्न भी उपेक्षणीय नही है।

साधु-वर्ग पर जब समाज-सुधार का भार भी होगा तब उनके चारित्र के नियम-परम्परा मे बाधा पहुचने से चारित्र में न्यूनता आ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार आज का साधु समाज बडी विषम अवस्था में पडा हुआ है। एक ओर कुआ, दूसरी ओर खाई-सी दिखाई पड़ती है।

समाज-सुधार का भार साधुओ पर पडने का परिणाम क्या हो सकता है, यह समझने के लिए यति-समाज का उदाहरण मौजूद है। पहले का यति-समाज आज सरीखा नही था। लेकिन उसे समाज-सुधार का कार्य अपने हाथ मे लेना पडा। इसका परिणाम धीरे-धीरे यह हुआ कि सामाजिकता की ओर अग्रसर होते-होते उनकी प्रवृत्ति यहा तक बढी कि वे स्वय की पालकी आदि परिग्रह के धारक बन गये। यदि वर्त्तमान साधुओ को समाज-सुधार का भार सौपा गया और उनमे सामाजिकता की वृद्धि हुई तो उनकी भी ऐसी ही-यतियों जैसी-दशा होना सभव है। अतएव साधु-समाज के ऊपर-समाज का बोझ न होना ही उत्तम है। साधुओं का अपना एक अलग ही कार्यक्षेत्र है। उससे बाहर निकल कर भिन्न क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ऐसा कौन-सा उपाय है; जिससे समाज-सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओ को समाज-सुधार मे पडना न पडे ?

हमारे समाज मे मुख्य दो वर्ग है- साधु-वर्ग और श्रावक-वर्ग।पर उक्त बोझ पडने से क्या हानिया हो सकती है, यह बात सामान्य रूप से मैं बतला चुका हू। रहा श्रावक-वर्ग, सो इसी वर्ग को समाज-सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए। मगर हमारा श्रावक वर्ग दुनियादारी के पचड़ो मे इतना अधिक फसा रहता है और उसमे शिक्षा का भी इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् सचालित नहीं कर सकता। श्रावको मे धर्म-सबधी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नहीं है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रखकर धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखकर, तदनुकूल समाज-सुधार कर सकें। कदाचित् कोई विद्वान् श्रावक मिलता भी है तो उसमें श्रावक के योग्य आदर्श चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना पर्याप्त रूप में नही पाई जाती। वह गृहस्थी के पचड़ों मे पड़ा हुआ होता है, अतएव उसकी आवश्यकताए प्राय. अन्य सामान्य गृहस्थों के समान ही होती हैं। ऐसी स्थिति मे वह अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठ पाता और जो व्यक्ति अर्थ के धरातल से ऊपर नही उठा है, उसमें निस्पृह, निरपेक्ष भाव के साथ समाज-सुधार के आदर्श कार्य को करने की पूर्ण योग्यता नही आती। उसे अपनी आवश्यकताए पूर्ण करने के लिए श्रीमानों की ओर ताकना पड़ता है, उनके समाज-हित-विरोधी कार्यो को सहन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त-त्याग की मात्रा अधिक न होने से समाज में उसका पर्याप्त प्रभाव भी नही रहता। इस स्थिति मे किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए, जिससे समाज-सुधार के कार्य में रुकावट न आवे और साधुओ को भी इस कार्य से अलहदा रखा जा सके ? आज यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है और उसे हल करना अत्यावश्यक है।

मेरी सम्मति के अनुसार इस समस्या का हल ऐसे तीसरे वर्ग की स्थापना करने से ही हो सकता है, जो साधुओ और श्रावको के मध्य का हो। यह वर्ग न तो साधुओ में ही परिगणित किया जाय और न गृह-कार्य करने वाले साधारण श्रावको मे ही।इस वर्ग मे वे ही व्यक्ति समाविष्ट किये जाए जो ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करे और अकिचन् हों अर्थात् अपने लिए धन-सग्रह न करे। वे लोग समाज की साक्षी से, धर्माचार्य के समक्ष इन दोनो व्रतों को ग्रहण करें। इस प्रकार के तीसरे त्यागी श्रावक-वर्ग से समाज-सुधार की समस्या भी हल हो जायगी और धर्म का भी विशेष प्रचार हो सकेगा। साथ ही निर्ग्रन्थवर्ग भी दूषित होने से बच जायगा।

इस तीसरे वर्ग से समाज-सुधार के अतिरिक्त धर्म को क्या लाभ पहुँचेगा, यह बात सक्षेप में बतला देना आवश्यक है।

मान लीजिए कोई व्यक्ति धर्म के विषय मे लिखित उत्तर चाहता है। साधु अपनी मर्यादा के विरुद्ध किसी को कुछ लिखकर नही दे सकता। अतएव ऐसी स्थिति मे लिखित उत्तर न देने के कारण धर्म पर आक्षेप रह जाता है। अगर यह तीसरा वर्ग स्थापित कर लिया जाय तो वह लिखित उत्तर भी दे सकेगा।

इसी प्रकार अगर अमेरिका या अन्य किसी विदेश मे सर्वधर्म-सम्मेलन होता है, वहा सभी धर्मो के अनुयायी अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते है। ऐसे सम्मेलनों मे मुनि सम्मिलित नही हो सकते; अतएव धर्म-प्रभावना का कार्य रुक पडता है। यह तीसरा वर्ग ऐसे-ऐसे अवसरो पर उपस्थित

होकर जैनधर्म की वास्तविक उत्तमता का निरूपण करके धर्म की बहुत कुछ सेवा बजा सकता है। आजकल ऐसे सम्मेलनो मे बहुधा जैनधर्म के प्रतिनिधि की अनुपस्थिति रहती है और इससे जैनधर्म के विषय मे इतर सहानुभूतिशील व्यक्तियों मे भी उतना उच्च विचार उत्पन्न नही हो पाता। वे जैनधर्म के गरिमा-ज्ञान से वंचित रहते है। तीसरा वर्ग ऐसे सभी अवसरों पर उपयोगी होगा। इससे धर्म की प्रभावना होगी।

इसके अतिरिक्त और भी बहुतेरे कार्य है, जो सच्चे सेवा भावी और त्यागपरायण तृतीय वर्ग की स्थापना से सरलतापूर्वक सम्पन्न किये जा सकेंगे, जैसे साहित्य-प्रकाशन और शिक्षा आदि। आज यह सब कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं हो रहे है। इनमे व्यवस्था लाने के लिए भी तीसरे वर्ग की आवश्यकता है।

तीसरे वर्ग के होने से धार्मिक कार्यो में बडी सहायता मिलेगी। यह वर्ग न तो साधुपद की मर्यादा मे बधा रहेगा और न गृहस्थी के झंझटो मे ही फसा होगा। अतएव यह वर्ग धर्म-प्रचार मे उसी प्रकार सहायता पहुँचा सकेगा, जैसे चित्त प्रधान ने पहुँचाई थी।'' ' ''तात्पर्य यह है कि तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे अनेक कार्य सम्पन्न हो सकेंगे, जो न साधुओ द्वारा होने चाहिए और न (साधारण) श्रावकों द्वारा हो सकते है।

तीसरे वर्ग के होने से एक लाभ और भी है। आज अनेक व्यक्ति ऐसे है, जिनसे न तो साधुता का भली-भांति पालन होता है और न साधुता का ढोंग ही छूटता है। वे साधु का वेष धारण किये हुए साधु की मर्यादा के भीतर नही रहते। तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे व्यक्ति इस वर्ग मे सम्मिलित हो सकेगे और साधुत्व के ढोग के पाप से बच जाएगे। लोग असाधु को साधु समझने के दोष से बच सकेंगे।

तीसरे वर्ग की स्थापना से यद्यपि साधुओ की संख्या घटने की सम्भावना है और यह भी सम्भव है कि भविष्य मे अनेक पुरुष साधु होने के बदले इसी वर्ग मे प्रविष्ट हों, लेकिन इससे घबडाने की आवश्यकता नही है। साधुता की महत्ता सख्या की विपुलता में नहीं है, वरन् चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है। उच्च चारित्रवान् और सच्चे त्यागी मुनि अल्प-सख्यक हों तो भी वे साधु-पद की गुरुता का सरक्षण कर सकेगे। बहुसख्यक शिथिलाचारी मुनि उस पद के गौरव को बढाने के बदले घटाएगे ही। अतएव मध्यमवर्ग की स्थापना का परिणाम यह भी होगा कि जो पूर्ण त्यागी और पूर्ण विरक्त होंगे वही साधु बनेंगे और सच्चे लोग मध्यम वर्ग में सम्मिलित हो जाएगे। इस प्रकार साधुओ की संख्या कदाचित् घटेगी तो भी उनकी महत्ता बढ़ेगी। जो लोग साधुता का पालन पूर्णरूपेण नहीं कर सकते या जिन लोगो के हृदय मे साधु बनने की उत्कठा नही है, वे लोग किसी कारण विशेष से, वेष धारण करके साधु का नाम धारण कर भी ले तो उनसे साधुता के कलकित होने के अतिरिक्त और क्या लाभ हो सकता है? इसलिए ऐसे लोगो का मध्यम वर्ग में रहना ही उपयोगी और श्रेयस्कर है। इन सब दृष्टियो से विचार करने पर समाज मे तीसरे वर्ग की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है।'

पूज्यश्री ने ब्रह्मचारी वर्ग की स्थापना की जो योजना कान्फ्रेस के सदस्यो के समक्ष उपस्थित की थी, आज भी विचार करने पर वह अत्यन्त उपयोगी है। पूज्यश्री की इस योजना को लोगो ने बहुत पसन्द किया। कान्फ्रेस के अगले अजमेर अधिवेशन मे वह स्वीकृत भी की गई और धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी ने उसी समय उसमे प्रविष्ट होने की पहली घोषणा भी की मगर खेद है कि वह योजना

कार्यान्वित नही हुई। वह चाहे आज कार्यान्वित न हो सके मगर एक दिन आएगा जब उसे अमल मे लाना अनिवार्य हो जायगा। अतएव पूज्यश्री की यह योजना अमर है और उसे काम में लाये बिना संघ का श्रेयस सध नही सकता।

देहली चातुर्मास मे तपस्वी मुनिश्री केसरीमलजी म. ने ४१दिन का उपवास केवल उष्ण जल के आधार पर किया। पूर के दिन गरीबो को अन्न बांटा गया, दूध-की-प्याऊ-लगाई गई और जीव-दया के अन्य अनेक कार्य हुए।

पदवी-प्रदान

देहली की जनता पूज्यश्री के व्याख्यानो को मंत्र-मुग्ध होकर सुनती थी। आपकी विद्वत्ता और सयम निष्ठा से प्रभावित होकर देहली श्रीसघ ने निम्नलिखित मानपत्र पूज्यश्री की सेवा मे समर्पित किया:

श्रीमान् भगवान् महावीर परम्परागत श्री स्थानकवासी जैनाचार्य पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज की पवित्र सेवा में सविनय समर्पित-

अभिनन्दन पत्र

मिथ्यात्विमत करिकुलकुहेतु कुम्भविदारण केसरिणम्।
पूज्य जवाहरलाल जैनाचार्य स्मरामि सद्भक्त्या॥
प्रतिभाजित वाचस्पतिरिति कृत्वा मुग्धमानसा नित्यम्।
निवसति धन्यमन्या कंठे देवी सरस्वती यस्य॥

पूज्यवर!

हमें आपके रोचक, मर्मस्पर्शी, हृदयग्राही, एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप अपने व्याख्यान मे जैन साहित्य का जो न्यायसगत दिग्दर्शन कराते है, उसे तथा आपके त्याग, वैराग्य और क्षमा शान्ति आदि गुणो को देखते हुए हम इस निश्चय पर पहुचे है कि आप जैन साहित्य तथा जैन न्याय के प्रतिभाशाली विद्वान् और वक्ता हैं। हमे अपने आचार्य के गुण,विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता और गम्भीरता पर गर्व है। आपकी अलौकिक प्रतिभा और विद्वत्ता हमे विवश कर रही है कि हम अपने आचार्य को कुछ भेट करे। लेकिन क्या भेंट करें! धन-सम्पत्ति को तो आपने स्वयं त्याग दिया है, इसलिए उसे आपकी भेट करना आपका सम्मान नहीं कहला सकता। अत. हम आपकी सेवा मे अपनी श्रद्धा और भक्ति का परिचय देने के लिए केवल 'जैन साहित्य चिन्तामणि' और 'जैनन्याय दिवाकर' ये दो उपाधिया भेट करते है। आशा है कि आप हमारी तुच्छ भेट को स्वीकार करके हमें कृतार्थ करेगे। इति शुभम्।

हम है आपके सेवक गण
श्री स्थानकवासी जैन श्रीसघ
देहली

पूज्यश्री की अस्वीकृति

जीवन मे एक ऐसी अवस्था होती है जब मनुष्य को पदवियो की प्रबल लालसा रहती है। मगर जब वह अवस्था व्यतीत हो जाती है तब उपाधिया व्याधियां प्रतीत होने लगती है। जिसके जीवन का

स्तर वास्तव में ऊंचा उठ जाता है- जो अपनी आत्मा को ही ऊपर उठा लेता है, वह उपाधिया लेकर क्या करेगा ? ऊपर से जोडी हुई उपाधि वास्तविक व्यक्ति की हीनता की सूचक है। जब जीवन हीनता से ऊपर उठ गया तो उसे उपाधियो की कोई आवश्यकता नही रही। जैसे वालक सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनकर ख़ुशी के मारे उछलने लगता है उसी प्रकार हीन व्यक्तित्व वाला पुरुष अपने नाम के आगे-पीछे उपाधि लगी देखकर फूला नही समाता। पूज्यश्री इस कोटि के पुरुष नही थे। उनका व्यक्तित्व स्वतः इतना उच्चतर था कि वह उपाधियो से परे पहुच चुका था। उपाधिया उनके जीवन की ऊंचाई तक पहुच भी नहीं सकती थी तो उनकी क्या महत्ता बढ़ाती ?

इसके अतिरिक्त अवस्थासूचक पदवी के अतिरिक्त गुणो को व्यक्त करने वाली पदवियां एक प्रकार का आन्तरिक परिग्रह है। जो महात्मा बाह्य परिग्रह को भी नही सहन कर सकता वह आन्तरिक परिग्रह को कैसे स्वीकार कर सकता है ?

पूज्यश्री ने देहली श्रीसघ द्वारा दी जाने वाली पदवियो को स्वीकार नही किया। श्रीसघ ने यद्यपि अपनी प्रशसनीय गुणग्राहकता का परिचय दिया था फिरभी पूज्यश्री ने धन्यवाद के साथ पदविया अस्वीकार कर दीं। इस अस्वीकृति के मूल में शायद एक कारण भी था कि यह परम्परा आगे चलकर गलत रूप धारण कर सकती थी और साधुओ को पदवी के प्रलोभन मे डाल सकती थी। पूज्यश्री ने पदविया अस्वीकार करके साधु-समूह के सामने एक सुन्दर आदर्श खड़ा किया।

मुनियों की परीक्षा

इस चातुर्मास में मुनिश्री श्रीमलजी महाराज तथा प. मुनिश्री जेठमलजी म. का सस्कृत भाषा अध्ययन चालू था। आप बडे परिश्रम से अध्ययन करते रहते थे। एक बार कुछ श्रावकों ने कहा- मुनिश्री कितना और कैसा अभ्यास कर रहे है, इस बात का पता तो हमें भी चलना चाहिए ? तब कलकत्ता विश्वविद्यालय के सस्कृत भाषा के लेक्चरार प. सकलनारायण शर्मा ने मुनि महाराज की परीक्षा ली। सस्कृत की परीक्षाएँ यों तो अनेक जगह होती हैं परन्तु उन सबमे बनारस की परीक्षाओं का बहुत महत्त्व है और बनारस की परीक्षाएँ अच्छी योग्यता वाले ही उत्तीर्ण कर पाते हैं।

प्रोफेसर शर्मा ने मुनिश्री की सस्कृत-व्याकरण की मध्यमा परीक्षा के ग्रथों में परीक्षा ली थी। हर्ष का विषय है कि मुनिश्री ने प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त करके अपनी कुशलता का परिचय दिया। परीक्षक अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने निम्नलिखित प्रमाणपत्र दिया-

अस्माभिः श्रीमुनिवर जवाहरलाल शिष्य श्री श्रीमल्ल श्वेताम्बरीयो मुनिर्वाराणसीस्थ राजकीय सस्कृत व्याकरणमध्यमापरीक्षापाठ्यग्रन्थै परीक्षित । योग्यता चास्य समीचीनाऽऽस्ते। अनेन प्रथमश्रेण्या उत्तीर्णाङ्का· लब्धा। वय ंपरीक्षापाटवप्रदर्शनेन प्रीताः प्रमाणपत्रमुत्तीर्णतासूचक मस्मै प्रयच्छाम.।

सकलनारायणशर्मणाम्।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय व्याकरण व्याख्यातृणाम्।

यद्यपि साधुओ को परीक्षा देने की कोई आवश्यकता नही होती, तथापि उनके अध्ययन के लिए समाज का जो व्यय होता है, वह सार्थक हो रहा है या नही, और पढने वाले मुनि कही प्रमाद तो नही

करते, यह जानने के लिए परीक्षा ही उपयोगी उपाय हैं। पूज्यश्री जब अपने शिष्यों को अध्ययन कराते थे तो वे इस बात की बड़ी सावधानी रखते थे।

इसी प्रकार मुनिश्री जेठमलजी म. सा. ने भी सफलता के साथ उत्तीर्णता प्राप्त की। खेद है कि आप अल्प वय मे ही स्वर्गवासी हो गये।

देहली का चौमासा बडी शान्ति से व्यतीत हुआ। चौमासे में अनेक उपकार के कार्य भी हुए। बगाल के बाढ-पीड़ितो की दयनीय दशा का पूज्यश्री ने हृदयद्रावक शब्दो मे वर्णन किया। श्रोताओ पर गहरा प्रभाव पडा और देहली श्रीसघ की ओर से अच्छी सहायता पहुचाई गई।

चौमासे मे श्रीमणिलाल कोठारी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। पूज्यश्री उन दिनो भी खादी के सबध मे प्रभावशाली वक्तृता दिया करते थे। कोठारीजी पूज्यश्री से अत्यन्त प्रभावित हुए। एक दिन उन्होंने कहा- 'मैने अपने जीवन मे साधुओ मे से सिर्फ गाधीजी और पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज को तथा नरेन्द्रो मे मेवाड के महाराणा फतहसिहजी साहब को ही सिर झुकाया है। मेरा मस्तक और किसी के सामने नहीं झुका।'

श्रीमणिलाल कोठारी ने खादी के सबध में एक अपील भी की और देहली के श्रावको ने पर्याप्त खादी खरीद कर उनकी अपील का समुचित उत्तर दिया।

पूज्यश्री के सदुपदेश से बन्दरो के प्राणो की भी रक्षा हुई।

इस प्रकार दिल्ली चौमासा बडी शानदार सफलता के साथ समाप्त हुआ।

जमुना पार: गिरफ्तारी की आशंका

जिस समय पूज्यश्री दिल्ली मे विराजमान थे, यमुना पार के बहुत से सज्जन सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने अपने क्षेत्र मे पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और चातुर्मास समाप्त होने पर उस ओर विहार कर दिया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि उन दिनो राष्ट्रीय आन्दोलन जोरो पर था। प्राय: सभी नेता जेल के सीखचों मे बद कर दिये गये थे। पूज्यश्री के व्याख्यान धार्मिकता से संगत किन्तु राष्ट्रीयता के रग में रगे होते थे। श्रोताओ मे जैन-अजैन का भेद-भाव लगभग उठ गया था। सभी प्रकार की जनता आप का व्याख्यान सुनने के लिए टूट पड़ती थी। शुद्ध खद्दर के वस्त्र, राष्ट्रीयता से सनी हुई ओजस्विनी वाणी, अपार जनता के हृदयों पर जादू-सा प्रभाव आदि देखकर सरकार भयभीत हो गई। धर्माचार्य के रूप मे यह नया राष्ट्रीय नेता सरकार की आखो मे खटकने लगा। सरकारी गुप्तचर पूज्यश्री के पीछे-पीछे फिरने लगे।

जब श्रावको को इस परिस्थति का पता चला तो उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। श्रावको को पूज्यश्री की गिरफ्तारी का भय होने लगा। कुछ श्रावको ने पूज्यश्री से प्रार्थना की- 'आप अपने व्याख्यान को धर्म तक ही सीमित रखें। राष्ट्रीय बातो के आने से सरकार को सदेह हो रहा है। कही ऐसा न हो कि आप गिरफ्तार कर लिये जाए और सारे समाज को नीचा देखना पडे।'

पूज्यश्री का सिंहनाद

पूज्यश्री ने उत्तर दिया- 'मैं अपना कर्त्तव्य भली-भांति समझता हूं। मुझे अपने उत्तरदायित्त्व का भी पूरा भान है। मै जानता हूं कि धर्म क्या है? मै साधु हू। अधर्म के मार्ग पर नही जा सकता। किंतु परतन्त्रता पाप है। परतन्त्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नही कर सकता। मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रहकर कहता हूँ। इस पर यदि राजसत्ता हमे गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या आवश्यकता है? कर्त्तव्य-पालन में डर कैसा? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिए, अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए। सभी परिस्थितियो मे धर्म की रक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन-समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इसमे जैन-समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की बात नही हैं। इसमे तो अत्याचारी का अत्याचार सभी के सामने आ जाता है।'

पूज्यश्री के दृढतापूर्ण और वीरतापूर्ण उत्तर को सुनकर प्रार्थना करने वाले श्रावक चुप रह गये। आपके व्याख्यानो की धारा निर्बाध-रूप से उसी प्रकार प्रवाहित होती रही।

विहार ओर प्रचार

देहली से विहार करके पूज्यश्री सदर, शहादरा, विनौली, बडौत, शिरसली, एलम, निसार, काधला, छपरौली आदि अनेक स्थानो मे विचरे। पूज्यश्री के व्याख्यानों का वहा के किसानों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बहुतेरे किसान सर्दी के दिनों में, प्रातः काल उठकर पांच-पाच कोस की दूरी तक आकर पूज्यश्री के व्याख्यानों में सम्मिलित होते थे। हजारों किसान चातक की भाति आपके व्याख्यानों के लिए उत्कंठित रहते थे। जहा आपका व्याख्यान होता वहीं अपार भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। पूज्यश्री थोड़े ही दिनों का कार्यक्रम बनाकर उस ओर पधारे थे किन्तु कृषक जनता के भक्तिमय आग्रह से काफी दिन लग गये। किसानो में इस प्रकार धर्म और राष्ट्रीयता का प्रचार करने वाले आप प्रथम उपदेशक थे।

आपके उपदेशों से बहुत-से लोगो ने पुरानी अदावतें छोडी, बीडी, सिगरेट, शराब, मास आदि हानिकारक पदार्थो के सेवन का त्याग किया और अनेक प्रकार के अनाचारों का त्याग किया।

खेखडा ग्राम मे दिगम्बर समाज ने हृदय से आपका स्वागत किया।

खट्टा गाव में तमाखू का बहुत प्रचार था। आपके उपदेश से प्राय· सभी ने उसका त्याग कर दिया। पूज्यश्री खट्टा से लोहासराय पधार रहे थे तब मार्ग मे जमीदारों ने आपको घेर लिया और व्याख्यान देने की विनीत प्रार्थना की। पूज्यश्री को रुकना पडा। व्याख्यान हुआ। श्रोताओ ने हुक्का तथा विदेशी वस्त्रो आदि का त्याग किया। इसी प्रकार बड़ौत मे भी हुक्का और चर्बी के वस्त्रो का त्याग कराया गया। शिरसली मे पचों में आपस में वैमनस्य था। आपके प्रभाव से वैमनस्य दूर हो गया। जमीदारो ने हुक्के का तथा अमावस्या के दिन बैल जोतने का त्याग किया। नामनौली मे पुराना झगडा मिट गया। जमीदारो ने अनेक प्रकार के त्याग किये। ईश्वर-भजन करने का नियम लिया।

इस प्रकार पूज्यश्री के उदात्त चरित्र तथा तेजस्वी व्यक्तित्व और प्रभावशाली वक्तृत्व से इस प्रात में असीम उपकार हुआ।

इस ओर जैन साधुओ का विहार बहुत कम होता है। यहा की जनता ने चौमासा करने की प्रार्थना की-अत्यधिक आग्रह भी किया किन्तु कई आवश्यक कारणो से आपको मारवाड की ओर पधारना था, अतएव आपने यह प्रार्थना स्वीकार नही की। पूज्यश्री छपरौली होते हुए यमुना के इस पार पधार गये। वहा से भिवानी, हासी, हिसार, राजगढ आदि क्षेत्रो को पवित्र करते हुए चूरू पधार गये। चूरू मे जोधपुर से श्रीचदनमलजी कोचर आये। आपने जोधपुर मे चौमासा करने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री ने सिर्फ नागौर की ओर विहार करने के भाव व्यक्त किये।

पूज्यश्री ने साधु-सम्मेलन तथा समाचारी आदि आवश्यक विषयो पर विचार करने के लिए मुख्य-मुख्य मुनिराजों को नागौर में एकत्र होने का आदेश दिया था। तदनुसार मुनि श्री मोड़ीलालजी महाराज, मुनिश्री चादमलजी महाराज, मुनि श्रीहर्षचन्दजी महाराज, पं. मुनि श्री गणेशीलालजी महाराज, (वर्त्तमान आचार्य) आदि प्रधान मुनि वहा एकत्र हुए। पूज्यश्री ने मार्ग मे ही 'श्रीवर्द्धमान सघ' की योजना तैयार की थी। यह योजना मुनियो के समक्ष पढ़ी गई और सबने स्वीकार की। योजना साधु-सम्मेलन के प्रकरण मे दी जायगी।

नागौर मे जोधपुर श्रीसघ की ओर से चौमासा करने की पुन' प्रार्थना की गई। इस बार पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। ता. १२-५-३२ को आप नागौर से विहार कर गोगोलाव पधारे। वहां तथा मार्ग में सर्वत्र धर्मोपदेश देते हुए और यथाशक्य त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए आषाढ शुक्ला १ को आप जोधपुर पधार गये।

एकतालीसवां चातुर्मास (सं. १९८९)

विक्रम सवत् १९८९ का चौमासा पूज्यश्री ने ठाणा १३ से जोधपुर मे व्यतीत किया।

आपके धर्मोपदेश से जोधपुर मे बहुत उपकार हुआ। सैकड़ों व्यक्तियो ने मांस, मदिरा, बीड़ी, सिगरेट, चर्बी लगे वस्त्र आदि जीवन को पतित करने वाले पदार्थो का परित्याग कर उद्धार-मार्ग की ओर कदम रखा। कई व्यक्तियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य जैसा दुरूह व्रत अगीकार किया। राज्याधिकारियो ने तथा अन्य जैनेतर जनता ने भी खूब लाभ उठाया। महाराज श्रीफतहसिहजी सा. होम मिनिस्टर, रा. -ब. रावराजा श्री नरपतसिहजी मिनिस्टर, महाराज श्री विजयसिहजी आदि विशिष्ट सज्जनों ने पूज्यश्री का उपदेश श्रवण किया। धर्म-चर्चा की और खूब प्रभावित हुए। जोधपुर के युवकरत्न श्रीइन्द्रनाथजी मोदी और श्री जसवतराजजी मेहता जैसे सज्जनों के हृदय में पूज्यश्री ने धर्म के प्रति विशिष्ट अनुराग का भाव उत्पन्न कर दिया।

जोधपुर में निम्नलिखित सतों ने तपस्या कीः-

(१) श्रीसूरजमलजी महाराज ३१ दिन

(२) श्रीभीमराजजी महाराज ६ का थोक

(३) श्रीजेठमलजी महाराज ६ दिन

(४) श्रीधनराजजी महाराज ७ का थोक

(५) श्रीसुगालचन्दजी महाराज ६ दिन

(६) श्रीजवरीमलजी महाराज ६ का थोक

इनके अतिरिक्त कतिपय महासतियो ने भी अच्छी तपस्या की। इस चातुर्मास मे जोधपुर श्रीसघ ने लोगो की टीका-टिप्पणी की परवाह न करके आगत दर्शनार्थी भाइयों का सादे भोजन से स्वागत किया। श्रीसघ का यह साहस सराहनीय था। जोधपुर के श्रीसघ ने अन्य श्रीसघो के सामने अच्छा आदर्श उपस्थित किया और छोटे श्रीसघो को इससे राहत मिली।

साधु सम्मेलन का प्रतिनिधि मण्डल

कार्तिक शुक्ला ११ को साधु-सम्मेलन का शिष्टमण्डल पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुआ। उसमे स्थानकवासी जैन समाज के निम्नलिखित प्रधान पुरुष सम्मिलित थे -

(१) श्रीमान् राजाबहादुर एस. ज्वालाप्रसादजी हैदराबाद

(२) श्रीमान् वेलजी लखमसी नप्पू, बी. ए. एल. एल. बी. बम्बई

(३) श्रीमान् राय सा. ला. टेकचन्दजी झडियाला

(४) श्रीमान् लाला रतनचन्दजी, अमृतसर

(५) श्रीमान् ला. त्रिभुवननाथजी, कपूरथला

(६) श्रीमान् सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी, जयपुर

(७) श्रीमान् श्रीधीरजलाल केशवलाल तुरखिया

(८) श्रीमान् सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया, रतलाम

उक्त सज्ञनो के अतिरिक्त अजमेर में साधु-सम्मेलन को आमन्त्रित करने वाले चार सज्ञन और उपस्थित हो गये थे। शिष्टमण्डल ने पूज्यश्री से साधु-सम्मेलन के विषय मे बातचीत की। उस समय मुख्य प्रश्न थे- 'साधु-सम्मेलन किया जाय या नही ?' किया जाये तो कब और कहा ? साधु-सम्मेलन मे किन-किन बातों पर विचार किया जाय ? सभापति किसे बनाया जाय ? सगठन किस प्रकार किया जाय ? समस्त सम्प्रदायो का आचार्य एक हो या अनेक ?

इन प्रश्नो पर पूज्यश्री ने बड़ी गभीरता के साथ अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये। शिष्टमडल को इससे उत्साह और प्रेरणा प्राप्त हुई। पूज्यश्री के विचार सक्षेप मे इस प्रकार थे-

(१) इस सम्मेलन का नाम 'जैन-साधु-सम्मेलन' रखा जाय। यहा पर साधु शब्द मे उन्ही का संमावेश किया जाय जो मुख पर मुखनासिका बाधते हो, रजोहरण एव प्रमाणोकेत श्वेत वस्त्र धारण करते हों तथा धातुरहित काष्ठादि के पात्र रखते हो।

साधु का उपरोक्त लक्षण बताने का तात्पर्य यह है कि शास्त्र में साधु के बाह्य और आभ्यन्तर दो लक्षण बताए गए है। उनमें से महाव्रतादि साधु-धर्म का पालन अन्तरग लक्षण है। यह लक्षण अलौकिक है, क्योकि बाह्यरूप मे दिखाई नही देता। अतएव ससार मे साधु की पहिचान के लिए बाह्यलक्षण होना अत्यावश्यक है। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वे अध्ययन मे आई है। वह पाठ यह है "लोगे लिगप्यओयण"। टीका-लोके लिगस्म प्रयोजनम्। साधुवेशस्य प्रवर्तनम् यत्तीर्थ करैरुक्तं तल्लोकस्य प्रत्ययार्थम्, लोकस्य गृहस्थस्य प्रत्ययार्थम्।" तीर्थकरों ने लिगधारण करने का प्रयोजन बताते हुए कहा

है कि जिससे गृहस्थो को पता लग जाय कि यह साधु है। इसलिए लिगधारण करने की आवश्यकता है। इसी सिद्धान्त को लेकर 'जैन-साधु-सम्मेलन' मे आने वाले साधुओ के लिए हमने खास तौर पर बाह्यलिंग (वेश) पर जोर दिया है। उपरोक्त लक्षण वाला साधु अर्थात् मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना, आदि लिग रखने वाला साधु बाईस सम्प्रदाय का हो, तेरापथ सम्प्रदाय का हो, शुद्ध श्रद्धा वाला हो या विपरीत श्रद्धावाला हो, उग्रविहारी हो या दासत्थविहारी हो गच्छविहारी हो या एकलविहारी हो, मोटी पक्ष हो या छोटी पक्ष का हो, इस सम्मेलन में सम्मिलित न हो तो यह बात दूसरी है। सम्मेलन का द्वार उक्त चिह्न वाले प्रत्येक के लिए खुला होना चाहिए।

इस सम्मेलन में सम्मिलित होना किसी तरह के सम्भोग या आदर-सम्मान की प्राप्ति के लिए नही है किन्तु भूत और भविष्य के सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणो की शुद्धि और वृद्धि के लिए है। इसमें सभी महानुभावों को निष्पक्ष होकर परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिए अपनी-अपनी स्वतत्र सम्मति भेजनी चाहिए। साधु-सम्मेलन मे उसी समाचारी पर शान्तिपूर्वक शास्त्रीय ऊहापोह के साथ विचार होना चाहिए। इसी में साधु-सम्मेलन की सफलता है और इसी के लिए सभी को सम्मिलित होना चाहिए। शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रकट करने के लिए सम्मेलन मे प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिए, किसी को सकोच न करना चाहिए। साधु-सम्मेलन से किसी मान्यता को धक्का पहुँचने का भय नहीं है। किसी की परम्परा को इससे बाधा नही पहुचती। धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिए एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी सम्प्रदायो को सम्मत है।

किसी की प्रतिष्ठा को धक्का न पहुचे, इसलिए सभी महानुभावों की बैठक भूमि पर समान रूप से गोलाकार रहनी चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि सभी महानुभाव नि· सकोच वृत्तिं से इस जैन-साधु-सम्मेलन में पधारें।

सम्मेलन मे प्रेमालाप द्वारा जो सच्चा और शास्त्रोक्त सुधार होगा, उस सुधार को जिन महात्माओं का जी चाहेगा वे अपनाएगे और उस सुधार को अपनाने वाले महात्मा ही आपस में संभाग आदि एक करने की योजना बनाएगे। उस सुधार से जो असहमत होंगे अर्थात् उस सुधार में सम्मिलित न होगे वे उस सुधार-सघ से अलग समझे जाएगे।'

इसके साथ ही आपने एक अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण सुझाव शिष्टमडल के समक्ष उपस्थित किया था। वह यह था कि सामान्य साधु-सम्मेलन करने से पहले विभिन्न सम्प्रदायो के मुख्य-मुख्य मुनिराजों का सम्मेलन करना बहुत उपयोगी होगा। उसमें समस्त योजनाए निश्चित कर ली जाए। उसके पश्चात् सामान्य (General) साधु-सम्मेलन किया जाय तो लाभ होगा।'

पूज्यश्री का यह सुझाव अत्यन्त व्यवहार्य, सुविधाजनक, कार्य को सरलता से सम्पन्न करने वाला और उपयोगी था। साधारणतया विशाल सम्मेलन से पहले चुने हुए प्रधान पुरुष कार्य की दिशा निश्चित कर लेते हैं और ऐसा करने से ही कार्य सुकर बनता है। साधु-सम्मेलन के सबध में यह सुझाव अमल मे नही आ सका और इसी कारण लम्बे समय तक बैठकें करनी पड़ीं, फिर भी जिस सुन्दर परिणाम की आशा की गई थी वह प्राप्त न हो सका। शिष्टमडल की प्रार्थना पर पूज्यश्री ने अजमेर पधारने की स्वीकृति दे दी।

दीक्षा-समारोह

जोधपुर-चातुर्मास के समय पूज्यश्री की सेवा में तेलकूडगाव (दक्षिण) निवासी श्रीमान् चुन्नीलालजी गूगलिया और उनके भतीजे श्रीगोकुलचदजी उपस्थित हुए। इसी धर्मपरायण परिवार मे से पहले श्रीभीमराजजी और श्रीमल्लजी दीक्षित हो चुके थे। यह दोनो सज्जन मुनि श्रीभीमराजजी महाराज के संसारपक्ष के पुत्र और पौत्र थे। अपने पारिवारिक सुसस्कारो के कारण आपको संसार के प्रति विरक्त हुई और दीक्षा लेने के उद्देश्य से पूज्यश्री के चरण-कमलो में उपस्थित हुए। पूज्यश्री इस परिवार से भली-भांति परिचित थे। आपने योग्य पात्र समझकर दोनो विरक्त सज्जनो को दीक्षा की अनुमति दे दी।

दीक्षा के समय वैरागियों के श्तिेदार वहां उपस्थित थे। रिश्तेदारो की आंखो में स्नेह के आसू थे और हृदय में प्रमोद एव गौरव का भाव था। पूज्यश्री ने जब उनसे दीक्षा की अनुमति मागी तब उनकी स्थिति अनिर्वचनीय-सी थी। आखो मे आसू छलछला आये मगर दृढतापूर्वक अनुमति दे दी। पूज्यश्री ने स्वय वैरागियों को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया।

दीक्षा देने के बाद पूज्यश्री ने सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित प्रवचन किया। तत्पश्चात् भगवान महावीर और पूज्यश्री के यशोगान हुए। दीक्षा का समस्त व्ययभार जलगाव-निवासी सेठ लछमनदासजी श्री श्रीपाल ने उठाया।

चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को पूज्यश्री ने विहार किया। जोधपुर की जनता ने आखों में आसू भर कर गद्गद् हृदय होकर विदाई दी। राजपूताना के ओसवाल समाज मे जोधपुर शिक्षा के क्षेत्र मे अग्रणी हैं। वहा के समाज में उत्साह है, कार्य करने की क्षमता है और लगन भी है। पूज्यश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, उच्च चारित्र और प्राभाविक प्रवचन से वहा की जनता बडी प्रभावित हुई थी। यही कारण था कि आज विदाई की वेला मे उसे वियोग की व्यथा साल रही थी।

पूज्यश्री विहार करके सरदारपुरा पधारे। पुष्टिकर हाई स्कूल और सरदार हाई स्कूल मे आपका उपदेश हुआ[1].यहा से विहार करके आप महामदिर पधारे। यहां अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। यहा से आप नागौरी वेरा पधारे। श्रीयुत हरनाथजी पुरोहित उर्फ टल्लूजी जो पुष्टिकर ब्राह्मण-समाज के नेता है और माली जाति के प्रमुख नेता तथा फरासखाने के सुपरिंटेडेंट श्रीनेनूरामजी पूज्यश्री से बहुत प्रभावित हुए। पूज्यश्री जोधपुर से विहार करके मंडोर के समीप माली भाइयों की बस्ती में पहुंचे तब श्रीनेनूरामजी ने सैकडों मालियों को आमंत्रण देकर व्याख्यान का लाभ दिलाया तथा आस-पास से आने वाली तीन हजार जनता के ठहरने की जगल मे समुचित व्यवस्था की। माली भाइयो की पूज्यश्री पर इतनी अधिक श्रद्धा बढी कि उन्होने तीन दिन तक पूज्यश्री को विहार नही करने दिया। पूज्यश्री भी भक्ति के आग्रह को टाल न सके। यह स्थान जोधपुर से करीब ६ मील दूर है। रेलवे कम्पनी की ओर से यहा तक के लिए स्पेशल ट्रेने चलने की व्यवस्था की गई। हजारों व्यक्ति पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने के लिए जमा हो गए। अनेक राज्याधिकारी, ठाकुर साहबान, जागीरदार और शिक्षित मडल उपस्थित थे। उस समय का दृश्य बडा ही भव्य और सुहावना था। पूज्यश्री के स्थान के पास ऐसा जान पड़ता था मानो यहा स्टेशन बन गया है। करीब चार हजार व्यक्ति उपस्थित हुए। श्रीसघ की ओर से आगत सज्जनो के भोजन की व्यवस्था की गई। श्रोताओ ने मास-मदिरा आदि का त्याग किया।

---

१ यह व्याख्यान 'जवाहरकिरणावली' के चौथे भाग में प्रकाशित है।

पूज्यश्री यहा से विहार करके मथानिया, लोहावट तथा खिचन होते हुए फलौदी पधारे। यहा के पुष्करणा भाइयो पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। मथानिया में आपके उपदेश से जागीरदारों ने करणीजी के मदिर मे होने वाली हिंसा बंद कर दी। अछूतो ने मास-मदिरा का त्याग किया।

फलौदी से विहार का पूज्यश्री लोहावट आदि होते हुए फिर मथानिया पधारे। यहां दो-तीन दिन विराजकर रीया, पीपाड़ आदि में विविध उपकार करते हुए ता. २९-१-३३ को जयतारण पधारे।

जयतारण में दीक्षा-समारोह

जयतारण में पूज्यश्री ने श्रीमान् मोतीलालजी कोटेचा को दीक्षा प्रदान की। आप मलकापुर (खानदेश) के रईस थे। लाखो की सम्पत्ति के स्वामी थे। अखिल भारतीय श्वे. स्थानकवासी कान्फ्रेंस में छठे मलकापुर- अधिवेशन में आप ही स्वागताध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। उस समय भी आप कान्फ्रेंस के एक सेक्रेटरी थे। पाच भाई, तीन सन्तान, पत्नी आदि करीब सौ आदमियो का परिवार छोडकर उत्कट वैराग्य के साथ आपने दीक्षा लेने का निश्चय किया। उस समय आपकी भावना का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है-

दारा परिभवकारा, बन्धुजनो बन्धन विष बिषयाः।
कोऽय जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥

अर्थात्- पत्नी की बदौलत पर भव में परिभव प्राप्त होता है, बन्धु-बांधव बन्धन रूप है और इद्रियो के विषय वास्तव में विष हैं। फिर भी न जाने मनुष्य का कैसा मोह है कि वह शत्रुओं में मित्र की बुद्धि रखता है!

इस प्रकार ससार से विरक्त होकर आप पूज्यश्री के चरण-शरण मे आये। कुछ समय तक पूज्यश्री के साथ रहकर आपने मुनि-जीवन की चर्या सीखी।

माघ शुक्ला दशमी, ता. ४ फरवरी सन् १९३३ को जयतारण मे बडे समारोह के साथ आपका दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। दीक्षा के अवसर पर आपके लगभग सभी कुटुम्बीजन उपस्थित हुए। पूज्यश्री ने स्वय दीक्षा देकर उनका जीवन सफल किया।

दूसरे दिन जयतारण से विहार करके फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को पूज्यश्री का ब्यावर में पदार्पण हुआ। अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन में सम्मिलित होने से पहले आप अपने सम्प्रदाय के मुनियों का सम्मेलन कर लेना चाहते थे। इस सम्मेलन के लिए ब्यावर स्थान उपयुक्त समझा गया। सभी मुनियो को ब्यावर पहुचने के लिए समाचार भेज दिये गये थे। पूज्यश्री के ब्यावर पहुचने तक ४२ साधु सम्मिलित हो चुके थे। अतएव जब पूज्यश्री ने ब्यावर नगर में ४२ सतों के साथ पदार्पण किया तो भगवान् महावीर के समय का दृश्य लोगों को याद आने लगा। अहा! कितना भव्य दृश्य रहा होगा वह जब पूज्यश्री जैसे महान् धर्मनेता के नेतृत्त्व में इतने मुनियों ने एक साथ प्रवेश किया होगा ? उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो धर्म इन मुनियो का वेष धारण करके ब्यावर मे सजीव हो रहा है!

ब्यावर की जनता का क्या पूछना! उसके हृदय की उमगें हृदय में समाती नही थी। उत्साह की उद्दाम ऊर्मियां मनुष्यो के मानस-सरोवर मे उमड़ रही थी। हर्ष का पार नहीं था। ब्यावर की जनता ने बडी उत्कठा और उत्सुकता के साथ पूज्यश्री का तथा समस्त सन्तो का स्वागत किया।

कुछ दिनो मे ब्यावर मे ४५ सन्त एकत्र हो गये। मुनिश्री मोड़ीलालजी महाराज, मुनिश्री चांदमलजी महाराज, मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज, मुनिश्री (बडे) गव्वूलालजी महाराज, प. र. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज आदि साधु प्रमुख थे।

ब्यावर मे पूज्यश्री ने सम्प्रदाय के प्रमुख मुनियों के साथ सम्मेलन के सवध मे, सम्प्रदाय के विषय मे तथा अन्य आवश्यक विषयो पर विचार किया।

पूज्यश्री ने सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने के लिए अपनी ओर से पाच नाम निर्वाचित किये:- (१) मुनिश्री मोड़ीलालजी महाराज (२) मुनिश्री चादमलजी महाराज (३) मुनिश्री हर्षचन्दजी महाराज (४) प. मुनिश्री घासीलालजी महाराज[१]. और (५) प. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज।

किन्तु मुनिराजो ने पूज्यश्री के बिना सम्मेलन में सम्मिलित होना उचित नही समझा। पूज्यश्री से प्रार्थना की-'आप हमारे नायक है। आपका पथ-प्रदर्शन ही हमारे लिए मगलमय होगा। आपके सम्मिलित होने से सम्प्रदाय की भी शोभा बढ़ेगी और साधु सम्मेलन की भी। अतएव कृपा कर आप अवश्य पधारे।' इस प्रकार मुनिराजो के आग्रह को देखकर पूज्यश्री ने फरमाया- 'आप सबका मुझपर पूर्ण विश्वास है और आप मुझे सम्मेलन मे सम्मिलित होने का आग्रह करते है तो फिर उचित यह होगा कि मैं अकेला ही सम्मेलन मे जाऊ।'

पूज्यश्री का यह कथन समस्त मुनिराजो ने सहर्ष अगीकार किया।

जैसे इग्लैण्ड मे होने वाली राउण्ड टेबिल कान्फ्रेस के लिए राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि महात्मा गाधी चुने गये थे, उसी प्रकार अजमेर के अ. भा. स्था. जैन साधु-सम्मेलन के लिए पूज्यश्री एकमात्र प्रतिनिधि निर्वाचित किये गये।सम्प्रदाय के सभी साधुओं ने नीचे लिखे अनुसार प्रतिनिधि पत्र लिखकर पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित किया था-

श्रीमान् निज-परशास्त्र सिद्धान्ततत्त्वरत्नाकर, विद्वन्मुकुट चिन्तामणि, भव्यजनमानसराजहस, भक्तगणकमलविकासन प्रभाकर, वाणीसुधासुधाकर, गाम्भीर्य-धैर्य-माधुर्य-औदार्य-शान्ति-दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणगण परिपूर्ण, रमणीय विशालभवन, ऐक्येच्छुकशिरोमणि, ज्ञानादिरत्नत्रय-सरक्षक, सिरताज जैनाचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री श्री श्री जवाहरलालजी महाराज के चरण कमलो मे सर्वसंभोगी मुनिमण्डल की यह सविनय प्रार्थना है कि आप जिनशासन के उत्थान के लिए जैन-साधु-सम्मेलन, अजमेर में पधारकर जो कार्य करेगे, हमें सर्वथा मान्य होगा। सम्वत् १९८९ माघ शुक्ला ९, शनिवार। (सभी उपस्थित साधुओ के हस्ताक्षर)

---

१ मुनिश्री घासीलालजी महाराज उस समय ब्यावर में उपस्थित नही थे, अतएव उन्हे बुलाने के लिए पहले सघ की ओर से पत्र दिया गया। किन्तु न वे आये और न पत्र का समुचित उत्तर ही दिया। तब ब्यावर के मा. उग्रसिहजी उनके पास गये और उन्होने कहा–सम्मेलन के समय सभी सम्प्रदायो के सन्त अजमेर पधार रहे है तो आपको भी अवश्य उपस्थित होना चाहिए, ऐसा पूज्यश्री का फर्माना है। अतः आप ब्यावर की ओर पधारे। मगर फिर भी मुनिश्री घासीलालजी म नही पधारे। अन्त मे पूज्यश्री ने मुनिश्री गब्बूलालजी म तथा श्री मोहनलालजी म. को उन्हें लाने के लिए भेजा। मगर खेद है कि फिर भी उन्होने पूज्यश्री की आज्ञा का पालन न किया और वे इधर न आये।

श्री. रगूजी महाराज की सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी श्री आनन्द कुवरजी म., श्री. खेतूजी महाराज की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनी श्री केशर कुवरजी म. के तथा मौजूदा सब सतियों के भी इस प्रतिनिधिपत्र पर हस्ताक्षर हुए। इस पत्र द्वारा पूज्यश्री १९३ साधु-साध्वियो के प्रतिनिधि नियत हुए थे।

ब्यावर में मुनि-मण्डल से आवश्यक विचार-विनिमय करके पूज्यश्री ने ता. २८ फरवरी को विहार कर दिया। साधु-सम्मेलन का समय सन्निकट होने से तथा सम्मेलन मे सम्मिलित होने वाले अन्य मुनिराजों से विचार-विमर्श करने के हेतु आप ब्यावर के आस-पास विचरने लगे। आपका होली-चातुर्मास बावरा ग्राम में हुआ।

युवाचार्य श्रीकाशीरामजी महाराज से भेंट

बावरा से विहार करके पूज्यश्री जेठाणा पधारे। उधर से पजाब केसरी युवाचार्य श्रीकाशीरामजी महाराज भी सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए पधार रहे थे। जेठाना मे दोनों महानुभावों की भेंट हुई। दोनो बड़े प्रेम से मिले और सम्मेलन तथा समाज-सुधार सबधी बातचीत की। दोनो ने साधु-सम्मेलन में विचारणीय विषयो की एक सूची तैयार की। वह नीचे लिखे अनुसार थी-

(१) पक्खी, सवत्सरी आदि पर्वाराधन सारे सम्प्रदायों का एक ही समय मे होना चाहिए। पर्वो का निर्णय केवल पंचागों के आधार पर न करना चाहिए। अंग्रेजी महीनों में जिस प्रकार तारीखें निश्चित है और सभी कार्य नियमित रूप से निश्चित तारीख पर होते है उसी प्रकार पर्वाराधन के लिए तारीखें निश्चित करके साधारण नियम बना दिए जाय। जिससे सभी सम्प्रदाय तथा सभी प्रान्तों मे एक ही तिथि पर पर्वाराधन हो और पचाग की परतत्रता और उससे होने वाले मतभेद न हो।

(२) मुनि विहार का कल्प, चातुर्मास और शेषकाल के नियम भी बना लिए जायं जिससे कोई भी मुनि कल्प-मर्यादा को तोड़कर न रह सके।

(३) आवश्यक विधि (प्रतिक्रमणादि) का समय, पचम आवश्यक में 'लोगस्स' का ध्यान तथा देवसी, रायसी, पक्खी, चौमासी, और सम्वतसरी में भी 'लोगस्स' का ध्यान सभी सम्प्रदायो का एक रूप मे होना चाहिए।

(४) शय्यातर किसे किस समय से समझना, इसका निर्णय।

(५) प्रतिदिन एक घर से बिना कारण आहार पानी ले सकते है या नही ? यदि ले सकते है तो एक दिन मे कितनी बार।

(६) केले आदि पके हुए फल कल्प्य है या अकल्प्य ?

(७) दर्शनार्थ आये हुए का आहार-पानी कितने दिन बाद ले सकते है ?

(८) विहार मे साथ रहने वाले गृहस्थो से आहार-पानी ले सकते हैं या नही ?

(९) श्रावक प्रतिक्रमण मे श्रावकसूत्र गिनना या श्रमणसूत्र भी ?

(१०) दीक्षा लेने वालों की उम्र और जाति का निर्णय।

(११) अपनी-अपनी सम्प्रदाय में, आचाराग और निशीथ बिना पढ़े साधु को अग्रेसर बनाकर विहार नही कराना चाहिए।

(१२) सारे शिष्य और शास्त्र सम्प्रदाय के आचार्य की नेश्राय मे हों। आचार्य होने पर प्रवर्त्तक अथवा मुख्य साधु की नेश्राय मे हो। साध्विनी मे प्रवर्तिनी अथवा मुख्य साध्वी की नेश्राय मे ही शिष्याए तथा शास्त्र हों। दूसरे की नेश्राय मे न हो।

(१३) बिना कारण ३ से कम साधु और ४ से कम साध्विया न विचरे।

(१४) गोचरी के काल के सिवाय गृहस्थ के घर मे दो से कम साधु या साध्वियां प्रवेश न करे।

(१५) दीक्षा के समय वैरागी या वैरागिन से नीचे लिखा प्रतिज्ञापत्र लिखा लिया जाय- "मै संयम पालन करता हुआ आचार्य और उसके अभाव मे प्रवर्त्तक, मुखिया सन्त या प्रवर्तिनी की आज्ञा में रहूंगा। आज्ञा बिना कोई भी काम नही करूगा। मेरे पास की पुस्तक, पन्ने, शास्त्र आदि सभी वस्तुए आचार्य की नेश्राय की है। कदाचित् मैं मोहवश सम्प्रदाय छोड कर जाऊ तो शास्त्रादि उपाधि आचार्य श्री की नेश्राय मे होने से मै नहीं ले जाऊगा।"

(१६) दीक्षा लेने वाले को वस्त्र-पात्र आदि उपकरण जितने चाहिए, उससे ज्यादा दीक्षा पर न रखने चाहिए।

(१७) ऊन और सूत के सिवाय किसी भी प्रकार के वस्त्र न रखने चाहिए।

(१८) प्रतिवर्ष चातुर्मास के लिए साधुओ का परिवर्तन किया जावे। उसमें आचार्य (यदि आचार्य न हो तो प्रवर्त्तक या मुखिया साधु) जैसा उचित समझें वैसा परिवर्तन करें। साथ चातुर्मास करने वाले साधु कारण विशेष के लिए परिवर्तन करने वाले से प्रार्थना कर सकते है, लेकिन आचार्य और उसके अभाव में प्रवर्त्तक या मुखिया साधु की आज्ञा अन्तिम तथा मान्य होगी।

(१९) दीक्षा देने का अधिकार आचार्य (उसके अभाव में प्रवर्त्तक या मुखिया साधु) को रहे। यदि कारणवश या अवसर देखकर वे स्वयं दीक्षा न दे सके तो उनकी आज्ञा से दूसरे साधु भी दीक्षा दे सकते है।

(२०) मुनि-वेश में रहकर जिसने चौथा व्रत नष्ट किया है, उसे सम्प्रदाय से बाहर किया जावे। उसे दुबारा दीक्षा न दी जाय।

(२१) दूसरे गच्छा से आए हुए साधु-साध्वी को पुन. समझा कर उसी गच्छ मे लौटा दे। यदि उस गच्छ के मालिक की आज्ञा आ जावे और योग्यता आदि देखकर उचित समझा जावे तो अपनी मर्यादा के अनुसार गच्छा मे मिला सकते है।

(२२) दीक्षा छोड़कर जो साधु-साध्वी चला जावे और फिर दीक्षा लेना चाहे तो सम्प्रदाय के मुख्य श्रावकों की राय बिना दीक्षा न दी जावे। तीसरी बार तो दी ही नहीं जानी चाहिए।

(२३) साधु-साध्वी अपनी नेश्राय के भण्डोपकर गृहस्थ की नेश्राय मे न रखे, न उनसे किसी भी समय उपकरण आदि उठवावे। गृहस्थ की लाई हुई कोई वस्तु अपने काम मे न लावे।

(२४) पुस्तक, पाने, शास्त्र आदि उपाधि के लिए गृहस्थ के रुपए इकट्ठे नहीं करवावे।

(२५) किसी तरह का कागज या चिट्ठी लिखकर गृहस्थ को न देवे।

(२६) आचार्य के सिवा चार साधु से ज्यादा न विचरें, न चातुर्मास आदि करे। ठाणा पति साधु की बात अलग है।

(२७) साधु-साध्वी को स्थिरवास रहने की जब जरूरत पडे तो आचार्य की आज्ञानुसार रहें। आचार्य भी जहा तक सम्भव हो, अलग-अलग क्षेत्र न रोकें। वैयावच के लिए रखे गए साधुओ का भी परिवर्तन किया जाय।

(२८) प्रत्येक सम्प्रदाय के सब साधु-साध्वी एक या दो वर्ष में एक समय अपने आचार्य से मिलकर सम्प्रदाय की भावी उन्नति का और साधु-आचार का विचार दृढ करें।

(२९) सुखे समाधे सारे साधुओं को सभी प्रातों मे विचरना चाहिए।

(३०) कोई साधु सम्प्रदाय मे नया परिवर्तन आचार्य की स्वीकृति के बिना न करें।

(३१) श्रमण सूत्र सीखे बिना वैरागी को दीक्षा न दी जाय।

(३२) साधु-साध्वी गृहस्थ को अपने दर्शनों का नियम न करावें।

(३३) किसी गृहस्थ को दीक्षा लेने से पहले मुनि-वेश पहिनने की सम्मति नहीं देना, सहायता भी नही करना, 'स्वय दीक्षा लेलो' यह सम्मति भी वारिस की आज्ञा बिना न देना, वह अपनी इच्छा से स्वय दीक्षा लेले तो उसे अपने साथ नहीं रखना, अपने उतरने के मकान में नही ठहराना, आहार-पानी न स्वय देना न दिलाना। यदि कोई साधु-साध्वी ऐसा करे तो उसे शिष्यहरण का प्रायश्चित्त लेना होगा।

(३४) साध्वियो को साधु के स्थान पर और साधु को साध्वियों के स्थान पर बिना कारण नहीं जाना व बैठना। यदि आवश्यकता हो तो पुरुष-स्त्री की साक्षी बिना न बैठें।

(३५) साधु-साध्वी अपना फोटो नहीं खिचवावे।

(३६) सारी सम्प्रदाय की श्रद्धा प्ररूपणा एक ही रहनी चाहिए।

(३७) उत्सर्ग मार्ग में साधु-साध्वी को स्वदेशी वस्त्र ही रखने चाहिए, दूसरे नहीं।

(३८) प्रत्येक साधु-साध्वी को चारों काल स्वाध्याय करना चाहिए। चारों समय का स्वाध्याय कम से कम १०० श्लोक का होना चाहिए। यदि किसी को शास्त्र न आता हो तो नवकार मत्र का जाप करे।

(३९) बिना कारण साबुन से कपडे नहीं धोने चाहिए।

(४०) आचार्य अथवा सम्प्रदाय के मुख्य सन्त की आज्ञा बाहर विचरने वाले साधु-साध्वी का व्याख्यान सघ के श्रावक-श्राविका और साधु-साध्वी नही सुनें। उसका किसी तरह पक्ष भी न करें और साधु को की जाने वाली विधिवन्दना आदर-सत्कार आदि भी नही करें। अन्नादि देने का निषेध नही है।

(४१) व्याख्यान के सिवाय साधुओं के मकान मे स्त्रियो को और साध्वियों के मकान में पुरुषो को नही आना चाहिए। किसी कारण से आना पडे तो स्त्री-पुरुष की साक्षी बिना न आवे।

(४२) सारे साधु-सम्प्रदाय में आचार्य की और साध्वी-सम्प्रदाय में प्रवर्तिनी की स्थापना की जावे।

अजमेर साधु-सम्मेलन

जिस महान् आयोजन के लिए चिरकाल से तैयारियां हो रही थी, उसका समय निकट आ पहुचा। ता. ५ एप्रिल १९३३ मिति चैत्र कृष्ण दशमी का दिन साधु-सम्मेलन प्रारम्भ करने के लिए शुभ माना गया था। चारो तरफ से मुनिराज अजमेर मे एकत्रित होने लगे। पजाव, गुजरात, काठियावाड़, मारवाड, मेवाड, मालवा आदि विभिन्न प्रातो मे विचरने वाले साधुओ का एक जगह इकट्ठे होना जैन-समाज के लिए बिलकुल नई बात थी। भगवान् महावीर स्वामी के बाद अढ़ाई हजार वर्षो मे पहले तीन बार साधु इकट्ठे हुए थे। पहले पटना मे, दूसरी बार लगभग ३०० वर्ष पश्चात् मथुरा में और तीसरी बार वीरसवंत् ९८० मे दवर्द्धिगाणि शमा श्रयम के प्रयत्न से वल्लभीपुर मे। अन्तिम सम्मेलन को हुए १५०० वर्ष बीत चुके थे। पूर्वोक्त सभी सम्मेलन शास्त्रों के उद्धार के लिये हुए थे।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओ मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिए तथा साधु-समाज का पुन सगठन करने के लिए एक साधु सम्मेलन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। दो वर्ष से इस कार्य के लिए डेपुटेशन घूम रहा था। धर्मवीर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन झावेरी इस आयोजन के विधाता थे और महान् परिश्रम कर रहे थे।

अन्त मे वह प्रयत्न सफल हुआ। आठ-आठ सौ मील का लम्बा विहार करके, सरदी-गरमी तथा दूसरे परीषहों की परवाह न करके मुनिराज अजमेर के प्राङ्गण मे पधार गए। ५ एप्रिल को प्रात काल पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने अपने सन्तों के साथ अजमेर मे पदार्पण किया। २६ सम्प्रदायो के २४० साधु एकत्र हो गए।

पाच एप्रिल को सुबह नौ बजे ममैयो के नोहरे मे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। प्रथम दिन प्रात·काल की कार्रवाई खुले रूप मे करने का निश्चय हुआ था। इसलिए दर्शनार्थी हजारों की सख्या मे पहले से ही जमा हो गए। जनता तथा साधुओं मे अपूर्व उत्साह था। सभी के हृदय मे समाजोन्नति की भावना थी। बाहर से इतने दर्शनार्थी आए थे कि अजमेर में स्थान मिलना मुश्किल हो गया था। स्वागत समिति ने तम्बू तथा दूसरी व्यवस्थाए विशाल परिमाण में की थीं।

सभी साधु एक ही पक्ति में समान भूमि पर विराजे थे। छोटे-बडे का भेद-भाव भुला दिया था। श्रावकों को सभी के दर्शनो का एक साथ लाभ मिल रहा था।

सवा नौ बजे कार्य प्रारम्भ हुआ। पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज ने नवकार मत्र द्वारा मगलाचरण किया। इसके बाद शतावधानीजी, कविश्री नानचन्दजी महाराज तथा पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने प्रार्थना की। इसके बाद पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज ने सम्मेलन की सफलता के लिए संस्कृत पद्य उच्चारण किये।

इसके बाद शतावधानीजी तथा कविश्री नानचन्दजी महाराज को सम्मेलन की कार्रवाई के लिए निर्देशक (डायरेक्टर) चुना गया। विभिन्न मुनिराजों ने सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी कविताए तथा सदेश सुनाए। इसके बाद श्री दुर्लभजी भाई ने अखिल भारतीय श्रीसघ की ओर से मुनियो का आभार माना।

पूज्यश्री का स्पष्टीकरण

साधु-सम्मेलन समिति का प्रतिनिधिमंडल जब जोधपुर मे पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ था, तभी पूज्यश्री ने उसे अपने उपयोगी विचार दर्शा दिये थे। पूज्यश्री ने स्पष्ट शब्दों में बतला दिया था कि सम्मेलन से पहले मुख्य-मुख्य मुनिराजों का एक सम्मेलन हो जाना आवश्यक है, जिससे महत्त्वपूर्ण और विवादग्रस्त विषयों पर विचार-विमर्श हो जाय और निर्णय करने मे सुविधा रहे। किन्तु सम्मेलन का समय इतना सन्निकट रखा गया था कि यह सुझाव अमल मे नही आ सका। मगर इसके बिना सम्मेलन की वास्तविक सफलता सदिग्ध ही थी।

इसके अतिरिक्त गुजरात-काठियावाड के छोटी पक्ष के सन्त-सम्मेलन मे सम्मिलित नही हुए थे। साथ ही सम्मेलन से पहले मुख्य-मुख्य मुनिराजों से पूज्यश्री का जो वार्तालाप हुआ था, उससे पूज्यश्री को समझने मे देरी नही लगी कि अभी तक विभिन्न सम्प्रदायो के मुनिराज सघ-श्रेयस् के लिए यथोचित त्याग करने के लिए उद्यत नही हैं। अपनी-अपनी सम्प्रदाय का सभी को आग्रह है और सब एक गच्छ में सम्मिलित होकर एकता का सूत्रपात नहीं करना चाहते।

ऐसी परिस्थितियो मे पूज्यश्री की तीक्ष्ण दृष्टि मे सम्मेलन का भविष्य साफ दिखाई देने लगा। अतएव अजमेर पधार करके भी आपने सम्मेलन मे, प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित न होने का निर्णय किया।

जब सम्मेलन आरम्भ होने लगा तो पूज्यश्री ने प्रतिनिधि मुनियो के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा-

मै एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हू। मेरे सम्प्रदाय के समस्त मुनियों ने तथा मुझ पर पूज्य भाव रखने वाली सभी सतियों ने मुझे अपनी ओर से एक मात्र प्रतिनिधि निर्वाचित किया है। मगर कतिपय कारणो से मैंने प्रतिनिधि रूप मे सम्मिलित न होने का निश्चय किया है। मै एक दर्शक के रूप मे यहा उपस्थित हुआ हूँ। अगर इस सभा मे सिर्फ प्रतिनिधि ही सम्मिलित हो सकते हो तो मुझे चले जाने मे किचित भी सकोच नहीं है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि सम्मेलन के प्रति मेरा विरोधी भाव नही है। जब तक सम्मेलन जारी रहेगा तब तक मैं अजमेर में ही ठहरने की इच्छा रखता हू और आप चाहेंगे तो यथायोग्य सलाह-सूचना आपको देता रहूँगा। ऐसा करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। आप शास्त्रानुसार जो नियम-उपनियम बनाएँगे, उन्हे मै सहर्ष लेकर अपने सन्तो और सतियो में बाट दूगा।

पूज्यश्री के इस वक्तव्य को सुनकर प्रतिनिधि मुनियो ने आप से बैठक मे ही विराजने की प्रार्थना की। और सलाहकार के रूप मे योगदान करने का आग्रह किया। तदनुसार आप साधु-सम्मेलन मे सलाहकार के रूप मे सम्मिलित हुए और महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर अपनी सम्मति प्रकट करके सम्मेलन का मार्ग-प्रदर्शन किया।

पूज्यश्री ने वर्द्धमान सघ की महत्त्वपूर्ण योजना सम्मेलन में रखी। सभी मुनिराजों ने योजना का हार्दिक स्वागत किया मगर अमल में लाने मे अपनी असमर्थता प्रकट की।

वास्तव मे पूज्यश्री द्वारा प्रस्तुत योजना अत्यन्त उपयोगी थी और उसे काम मे लाये बिना संघ का यथोचित अभ्युदय होना कठिन है। पाठको की जानकारी के लिए योजना यहा दी जा रही है।

श्री वर्द्धमान संघ योजना

वर्तमान कालीन सम्प्रदायो की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रणाली से चल पड़ने से शासन संगठन अस्त-व्यस्त हो गया है। इससे श्रद्धा प्ररूपणा और आचार व्यवस्था की प्ररूपणा एकमुखी होने के बदले शतमुखी हो गई है। इस आपत्ति को मिटाने का सरल और सीधा उपाय है कि एक ऐसा संघ निर्माण किया जावे, जिसमे सम्मिलित होकर आत्मार्थी मुनिगण एक प्रणाली मे चल सके। इसके लिए 'वर्द्धमान संघ' की स्थापना करना उचित होगा। क्योकि जब तक शास्त्र-सम्मत नाम वाला सघ न स्थापित किया जाय, तब तक किसी भी सम्प्रदाय के मुनिगण अपनी सम्प्रदाय को छोडकर दूसरे की सम्प्रदाय मे सम्मिलित न हो सकेंगे। इस आपत्ति को मिटाने के लिए 'वर्द्धमान संघ' नाम के संघ की स्थापना करन। उचित होगा। यह नाम रखने से किसी भी सम्प्रदाय के मुनियो को यह खयाल न होगा कि मैं अपनी सम्प्रदाय को दोडकर दूसरे की सम्प्रदाय में क्यों जाऊ। प्रत्युत यह खयाल आना स्वाभाविक है कि जब समस्त सम्प्रदायों के कल्याणार्थ और भविष्य में चिरकाल तक सघ मजबूत रीति से चलता रहे, इसके लिए एक शास्त्र सम्मत संघ का निर्माण होता है और उसमे किसी का पक्ष नही है। तो फिर ऐसे सघ मे सम्मिलित होने से हमारा भी गौरव बढता है और जैन शासन का भी गौरव बढता है।

अपना और पराए का कल्याण करना ही मुनि-समुदाय का परम कर्त्तव्य है। किन्तु जब तक समस्त मुनि-महात्माओ की श्रद्धा प्ररूपणा आदि एक न हो, तब तक विद्वान् मुनि महाराज अपना कल्याण तो किसी प्रकार कर भी सकते हैं, परन्तु साधारण स्थितिवाले मुनिगण एवं साध्वी-समुदाय और श्रावक-श्राविकाओं की, जब तक श्रद्धा प्ररूपणा तथा व्यवहार समाचारी एक न हो, कल्याण सधना अत्यन्त कठिन है। ऐसी अवस्था मे ऐसे कौन मुनि महात्मा होगे, जो पक्ष को छोडकर-सबके कल्याण मे अपना कल्याण है, इस बात को मान नवनिर्मित वर्द्धमान सघ में सम्मिलित होने से इन्कार करेंगे। अपितु सभी मुनि-महात्मा इस सघ मे सम्मिलित होंगे।

"वर्द्धमान सघ" यह नाम ही महान् कल्याणकारी है। इस नाम पर श्रीमान् चरम तीर्थकर श्री वर्द्धमान जिन, जिन का यह शासन है, के नाम की छाप लगी हुई है। इसके सिवाय इस सङ्घ का नाम किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय विशेष के नाम पर नही है। इसलिए इस नाम के विषय में किसी प्रकार के तर्क-वितर्क को स्थान नहीं है।

वर्द्धमान संघ के नियम

(१) इस सङ्घ का जातिकुल सम्पन्न, द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का ज्ञाता, आचारादि मुनिक्रिया में निष्णात और नवीन सङ्घ का भार उठाने में समर्थ ऐसा एक सर्वमान्य मुख्याचार्य स्थापित करना चाहिए।

(२) मुख्याचार्य की अधीनता मे उपरोक्त गुण युक्त अनेक उपाचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, गणावच्छेदक, आदि स्थापित किये जाय और इनकी अधीनता मे यथायोग्य मुनियो को कार्यकर्त्ता स्थापित कर कार्यभाग सौप दिया जावे। अपनी अधीनता के मुनि-महात्माओ की देखरेख और आचार-

विचार ज्ञान-ध्यान आदि की साल सम्भाल बडे मुनि-महात्मा करें और अधीनस्थ मुनि-महात्मा, जिनकी अधीनता मे हैं उनकी आज्ञानुसार विनय-भक्ति-व्यावच आदि समस्त कार्य करें।

(३) साध्वी-समुदाय मे मुख्य प्रवर्तिनी और प्रवर्तिनी के नीचे गणावच्छेदिनी आदि स्थापित की जाय।

(४) मुख्याचार्य जिन साधु-साध्वियों का सघाडा बांध देवे, उन साधु-साध्वियो को उस सघाड़े में रहना होगा।

(५) देश-विदेश भेजने या चातुर्मास कराने के लिए जो सघाड़े बाधे जावे, उनमे साधुओ के एक सघाड़े मे ३ से कम साधु और साध्वियो के एक संघाड़े मे ४ से कम साध्विया न होनी चाहिए।

(६) चातुर्मास या पूर्ण शेष काल में साधु और साध्वी-किसी एक ही ग्राम में मुख्याचार्य की आज्ञा बिना न रह सकेंगे।

(७) आचार्य के समीप उस ग्राम नंगर मे साध्विया मर्यादापूर्वक रह सकती हैं।

(८) जहां तक हो सके प्रवर्तिनी उसी ग्राम या नगर मे चातुर्मास करें, जहां मुख्याचार्य का चातुर्मास हो।

(९) वर्द्धमान संघ की जो समाचारी तैयार की जावे, सभी साधु-साध्वियो को तदनुसार बर्तना होगा। यदि कोई साधु-साध्वी मोहवश उस समाचारी का उल्लंघन करे तो खोट बातो का प्रायश्चित्त उपाचार्य गणावच्छेदक, प्रवर्त्तक, प्रवर्तिनी आदि से लेना होगा और बडा प्रायश्चित्त छेद या मूल देना हो तो ऐसा प्रायश्चित्त देने का अधिकार उपाचार्य आदि को भी रहेगा, परन्तु उस दोष की आलोचना मुख्याचार्य को सुनानी होगी। आलोचना सुनने और प्रायश्चित्त में कम ज्यादा करने का अधिकार मुख्याचार्य को पूर्णरीति से होगा।

(१०) इस संघ के साधु-साध्वी जिसे भी श्रद्धा दें उसे वर्द्धमान सघ के नाम से श्रद्धा देवें। वर्द्धमान सघ के मुख्याचार्य को धर्माचार्य (गुरु) श्रद्धवें और श्रावक-श्राविकाओ को उन्ही की श्रद्धा में करें।

(११) जिस पुरुष-स्त्री को दीक्षा देनी होगी, उसकी आयु, प्रकृति, शिक्षा, जाति, कुल, वैराग्य और सम्बन्धियो की आज्ञा आदि की जाच जब तक मुख्याचार्य स्वय या किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा न करा लें और दीक्षा देने की आज्ञा न दे दे तब तक कोई साधु-साध्वी किसी को दीक्षा न दे सकेंगे। प्रत्येक दीक्षा मुख्याचार्य की स्वीकृति से ही होगी।

(१२) शिठय मुख्याचार्य की ओर से शिठया प्रवत्तिनी की नेश्राय मे की जावे, जिससे खींचातानी और सघ के टुकड़े न हो।

(१३) साधु-साध्वियो को शास्त्र-साहित्य पढ़ाने और उपदेश की शिक्षा देकर योग्यता उत्पन्न करने के लिए मुख्याचार्य प्रबन्ध करे, जिससे विद्वान् साधु और विदुषी साध्विया बन सके। यदि मुख्याचार्य उचित समझें तो इस विषय में उपाचार्य, उपाध्याय, आदि की भी सम्मति ले लें।

(१४) हस्तलिखित शास्त्र-पुस्तक, पाने आदि मुख्याचार्य की नेश्राय में रहें और वे योग्यतानुसार साधु-साध्वियो को पढ़ने के लिए दे दे। गच्छ छोड कर या सयम त्याग कर जाने वाले को शास्त्र आदि अपने साथ ले जाने का अधिकार न होगा।

(१५) शास्त्र आदि लिखने वाले साधु-साध्वी भी तैयार किए जावें, जिससे शुद्ध और सुन्दर लिपि के शास्त्र एवं साहित्य की वृद्धि हो।

(१६) साध्वियों से विना कारण आहार-पानी लेना-देना आदि शास्त्र मे वर्जित है, इसलिए आहार-पानी का सभोग न किया जावे।

(१७) इस गच्छ मे प्रवेश होने के लिए आलोचला का एक खरडा तैयार किया जाय और उस मुआफिक प्रत्येक साधु-साध्वी को प्रतिज्ञापूर्वक सच्चे दिल से पूर्वानिश्चित मुख्य-मुख्य महात्माओ के पास आलोचना कराकर, उस आलोचना मे यदि व्रतो में त्रुटि न हो तो जिस दिन सर्वप्रथम दीक्षा ली है, उसी दिन को दीक्षामिति कायम किया जाय और उसी मुआफिक छोटे बडे का दर्जा समझा जाय। इस खरड़े के मुताबिक कार्य हो जाने पर ही साधु-साध्वियो को सघ में सम्मिलित किया जावेगा, अन्यथा नही।

(१८) मुख्याचार्य जिस साधु-साध्वी को अयोग्य समझेगे वह इस सघ में प्रविष्ट न हो सकेगा।

(१९) वर्द्धमान सघ के मुख्य आचार्य जिस साधु-साध्वी को अलग कर दे, उसके लिए सर्वसङ्घ को चाहिए कि वह उसे साधु-साध्वी न माने और साधु-साध्वी को की जाने वाली विधि वन्दना भी उसे न करे। यह नियम तभी तक है, जबतक वह मुख्याचार्य से प्रायश्चित्त लेकर सघ मे सम्मिलित न हो जावे।

(२०) किसी साधु-साध्वी को दोष के कारण संघ से अलग करने का समय आवे तो उसे मुख्याचार्य की परवानगी लेकर ही अलग किया जावे। हा, मुख्याचार्य की स्वीकृति के बिना जिनके साथ वह साधु-साध्वी है, वे साधु-साध्वी आहार-पानी वन्दन आदि सभोगवृत्ति न करें, परन्तु जब तक मुख्याचार्य की आज्ञा न हो उस साधु-साध्वी को अपने पास से न तो अलग ही किया जावे न उसे अलग करने के विषय की कोई घोषणा ही सघ में की जावे। यदि जाहर व्यवहार बिगड़ गया हो तो सध में यह प्रकट करे कि इस विषय की सब सूचना मुख्याचार्य को दे दी गई है और उनका हुक्म जब तक न आ जावे, तब तक इसके साथ सम्भोग न रखते हुए भी हम इसे अपने पास रखते है। मुख्याचार्य का हुक्म आने पर उनकी आज्ञानुसार कार्य किया जावेगा।

(२१) कोई साधु-साध्वी छन्द या कविता बनावे तो मुख्याचार्य को या मुख्याचार्य जिसके लिए कहे उसे बताए बिना और मुख्याचार्य की स्वीकृति लिए बिना लोगों मे प्रसिद्ध न करे। केवल स्तुति-रूप बोलने की बात अलग है, परन्तु उसमे सघ की श्रद्धा के विपरीत बात न आनी चाहिए। और आचार्य के पास रजू करने पर उनके कथनानुसार फेर-फार करना होगा।

(२२) वर्द्धमान-सघ के साधु-साध्वियो की श्रद्धा प्ररूपणा एक रहनी चाहिए। जो मुख्याचार्य श्रद्धे, पुरुषे, वैसा ही सब साधु-साध्वियो को श्रद्धना प्ररूपणा चाहिए। यदि किसी को कोई तर्क उत्पन्न हो और वह तर्क सघ परम्परा के विरुद्ध हो तो जब तक मुख्याचार्य से उसका समाधान न हो जावे तब तक प्रसिद्ध रूप मे किसी के पास प्ररूपणा नहीं करे। मुख्याचार्य के पास निवेदन करने पर भी यदि उन्हे वह तर्क ठीक जंचे तो उसके मुआफिक श्रद्धा प्ररूपणा करने का मुख्याचार्य को अधिकार है। और उनसे पास हो जाने पर सबकी श्रद्धा प्ररूपणा उसी मुआफिक रहे।

(२३) वर्द्धमान-सघ की जो समाचारी तैयार की जावे वह शास्त्रसम्मत और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर होनी चाहिए। जिन बातो का शास्त्र में निषेध है। किन्तु अपवाद मार्ग में विधान शास्त्रसम्मत है, ऐसी बातो को ध्यान में रखकर तथा लौकिक लोकोत्तर से अविरुद्ध जिताचार से समाचारी बाधने की आवश्यकता है।उस समाचारी मे समय-समय पर देश कालानुसार फेरफार करने का मुख्याचार्य को पूर्ण अधिकार रहेगा।

(२४) पाटपरम्परा के विषय में वर्द्धमान-सघ की यह धारणा रहेगी कि भगवान् महावीर स्वामी का संघ भगवती सून्य २० शतक के उद्देश्य ८ के पाठानुसार इक्कीस हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रहेगा। उसमे चतुर्विध संघ शुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा वाला रहा है और रहेगा। इसके अनुसार उन सब महानुभाव आचार्यो को यह संघ प्रमाण रूप मानता हुआ यह पाटपरम्परा कायम करता है कि अब से पाटपरम्परा वर्द्धमान-सघ के मुख्याचार्य से ही मानी जावेगी। क्योंकि वर्तमान काल में अलग-अलग सम्प्रदाय में अलग-अलग पाटपरम्परा की पाटावलिया है।इसलिए आगे एक परम्परा कायम करने के लिए उपरोक्त पाटपरम्परा कायम की जाती है।

(२५) वर्द्धमान-सघ की पाटावली मे शास्त्रोक्त सर्वमान्य आचार्यों का उल्लेख करके बाद में वर्द्धमान-संघ के आचार्यो से पाटपरम्परा लिखी जावे। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के भिन्न आचार्यो का नामोल्लेख न किया जावे। जिससे एकता कायम करने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो।

शुद्धिपत्र

जो मुनि 'वर्द्धमान-सघ' में प्रविष्ट होना चाहे उन्हे अपनी शुद्धि के लिए अरिहन्त, सिद्ध तथा अपनी आत्मा की साक्षी से सत्य को सिर पर रख कर नीचे मुताबिक आलोचना करनी चाहिए।

ज्ञान- ११ अग, १२ उपाग, ४ मूल, ४ वेद तथा आवश्यक इन ३२ शास्त्रों के मूल पाठ को अक्षरश प्रमाणस्वरूप सत्य-रूप न माना हो तथा उक्त शास्त्रों से अविरोधी वचनों को छोड कर शेष ग्रन्थों को प्रमाण भूत माना हो।

दर्शन- १८ दोष रहित वीतराग देव, तथा उनकी आज्ञा में विचरने वाले निर्ग्रन्थ गुरु, एव सर्वज्ञप्रमीत निरारम्भ निष्परिग्रह स्वरूप वाला अहिंसामय धर्म इन तीन तत्त्वों सत्य-स्वरूप न श्रद्धा हो तथा इनके विपरीत अर्थात् कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को देव, गुरु, धर्म श्रद्धा हो। एव आरम्भ परिग्रह मूर्ति मदिर आदि सखघ कार्यो मे धर्म श्रद्धा प्ररूपा हो, धोवण आदि अचित्त पदार्थो में जीव की शका की हो, धान्यादि बीज मे जीव न श्रद्धे हों, अनुकम्पादान में एकान्त पाप श्रद्धा हो तथा मिथ्यात्वी की करणी को वीतराग की आज्ञा-स्वरूप मोक्ष का मार्ग श्रद्धा हो।

चारित्र- (१) जानबूझ कर प्राणियो की हिंसा की हो।

(२) " " झूठ बोला हो।

(३) " " स्वधर्मी या परधर्मी का अरन्त लिया हो। शिष्य, वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि की चोरी की हो।

(४) जानबूझ कर विषय-विकार के लिए मनुष्यणी या तिर्यंचणी का स्पर्श किया हो, कुचेष्टा की हो, अनाचार सेवा हो, हस्त-मैथुन किया हो। ऐसे ही साध्वी ने पुरुष के साथ किया हो। तथा साधु ने किसी

अन्य पुरुष के साथ हस्त-मैथुन किया हो या अन्योऽन्य मैथुन-कर्म किया हो या अन्य किसी तरह की कुचेष्टा की हो, ऐसे ही साध्वी ने किसी अन्य स्त्री के साथ दुर्व्यवहार किया हो।

(५) जानबूझकर पैसा, रुपया, मोहर, सोना, चांदी, जेवर, धातु, नोट, कार्ड, लिफाफे, टिकिट आदि परिग्रह रखा हो।

(६) जानबूझकर अस्त्र, पान, खादिम, स्वादिय, औषध, सूघने या मसलने की चीजे रात्रि मे रखी हो, या भोगी हो, तथा प्रथम प्रहर की उपरोक्त चीजे सुखे समाधे चतुर्थ प्रहर मे भोगी हो।

(७) जानबूझकर आधाकर्मी तथा मोल का आहार, वस्त्र, पात्र आदि भोगे हो।

(८) जानबूझकर आधाकर्मी मकानो मे उतरे हों।

(९) जानबूझकर सचित्त पानी, बीज, हरित, फल, फूल आदि भोगे हों।

(१०) क्रोधवश किसी पर लाठी, मुक्की, थप्पड़, आदि से प्रहार किया हो।

(११) यन्त्र-मन्त्र, टूना, टोटका, यज्ञ, होम आदि सखघ कार्य किए हो या कराए हो। गृहस्थ को इस लोक के वास्ते यन्त्र मन्त्रादि सिखाए हों।

तप—आहार करके अनशन की प्रसिद्धि की हो।

श्रावक—श्राविकाओं के संगठन के लिए श्रावक समाचारी

(१) वर्द्धमान-सघ की स्थापना हो जाने पर, वर्द्धमान सघ के मुख्याचार्य को ही सब श्रावक-श्राविका अपना धर्माचार्य मानें। अर्थात् गुरु आम्नाय श्रद्धा प्ररूपणा उन्हीं की रखे। किन्तु उनके सिवा दूसरे साधुओ की अलग गुरु आम्ना स्वीकार नही करे।

(२) मुख्याचार्य स्थापित हो जाने पर भूतकाल मे जो गुरु आम्नाय श्रावक-श्राविका ने ले रखी है,उसे परिवर्तन करके वर्द्धमान-सघ के मुख्याचार्य की गुरु आम्ना स्वीकार करें। (खुलासा)

इसका मतलब यह नही है कि पूर्व गुरुओ को अगुरु समझ कर यह परिवर्तन किया। किन्तु पूर्व के सदाचारी गुरुओं का उपकार मानते हुए, जैसे भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिक साधु भगवान महावीर के शासन में प्रवेश होने के समय में अपने पूर्व-गुरु तथा प्रवर्ज्या को शुद्ध मानते हुए शासन-सगठन के महान् उद्देश्य को लेकर प्रविष्ट होते हैं, उसमे उन महामुनियों की भावना सघ मे एकता बढ़ाने की ही होती है। इसी तरह इस नव निर्मित वर्द्धमान-सघ के आचार्य की गुरु आम्नाय धारण करने के श्रावक-श्राविकाओ की पूर्व आचरित श्रद्धा में कोई दोष नहीं आता है। और न दोष समझ कर ही गुरु आम्नाय बदली जाती है। किन्तु सघ-सगठन रूप महान् उद्देश्य को लेकर गुरु आम्नाय का परिवर्तन किया जाता है। इसलिए कोई भी श्रावक-श्राविका यह सन्देह न करे कि इतने काल तक पालन की हुई हमारी श्रद्धा बेकार गई। किन्तु यह सरलता धारण करनी चाहिए कि जब अनेक सम्प्रदाय के साधु-साध्वी अपने-अपने गच्छ का परिवर्तन करके नूतन वर्द्धमान-सघ के मुख्याचार्य की आज्ञा स्वीकार करते है और उन्ही की नेश्राय में रहते है, तो फिर हम श्रावक-श्राविकाओ को वर्द्धमान-सघ के मुख्याचार्य की आम्ना धारण करने में कोई हानि नही, किन्तु लाभ ही है।

(३) वर्द्धमान-सघ के मुख्याचार्य की नेश्राय बिना आज्ञा बाहर स्वछन्दता के विचरने वाले साधु-साध्वियो को गुरु समझ कर वन्दन-सत्कार आदि क्रिया न करें, किन्तु अनुकम्पा करके अन्नादि देने का निषेध न समझे।

(४) जिन साधु-साध्वियो को मुख्याचार्य अपनी आज्ञा से बाहर करदे, और फिर जब तक उनको सङ्घ मे सम्मिलित न करें, तब तक उनके साथ किसी प्रकार का पक्षपात श्रावक-श्राविका न करे। उनको मदद न देवें, वन्दनादि सत्कार भी नही करे, और न उनका व्याख्यानादि ही सुने।

(५) वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की समाचारी के विरुद्ध यदि कोई साधु-साध्वी प्रवृत्ति करे, तो उसकी सूचना मुख्याचार्य को श्रावक-श्राविका करें। जिससे मुख्याचार्य विपरीत प्रवृत्ति करने वाले साधु का उचित प्रबन्ध करें या किसी साधु को आज्ञा देकर कराए।

(६) धर्म-क्रिया तथा व्यवहार-क्रिया के लिए जो मकान श्रावक लोग खरीदें, अथवा नया तैयार करावे; उसमे साधु-साध्वियों का भाव न मिलावे, जिस से उस मकान में उतरने में साधु-साध्वियों को दोष न लगे। साधु--साध्वियो को उतारने के लिए बनवाया या खरीदा हुआ मकान हो तो उसमें साधु-साध्वियों को नही उतारें, न उतरने ही दे।

(७) वर्द्धमान-सङ्घ स्थापित होने से पहले जो मकान, धर्म-क्रिया के लिए बनाया या खरीदा हो, उन मकानो मे साधु का भाव न मिलने का निर्णय, वर्द्धमान-सङ्घ का मुख्याचार्य अथवा उनकी आज्ञा से अन्य कोई साधु जब तक न करले, तब तक उन मकानो में साधु-साध्वी न उतरें। भाव न मिलने का निर्णय हो जाने पर मुख्याचार्य की आज्ञा से साधु-साध्वी उन मकानों में उतर सकते हैं।

(८) वस्त्र, पात्र, पुस्तक, अन्नादि उत्सर्ग अपवाद मार्ग मे कल्पने वाली वस्तु जो साधु कल्प के विरुद्ध हों, उन वस्तुओं को कोई भी समझदार श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वियो को न दें। और आमन्त्रित भी न करे। कल्पाकल्प का निर्णय नही जानने वाले भोले श्रावक-श्राविकाए यदि उक्त प्रवृत्ति करे तो समझदार श्रावक-श्राविका उन्हे रोकें और साधु-साध्वियों को वे चीजे न लेने की अर्ज करे।

(९) साधु-साध्वी के नेश्राय के वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि श्रावक-श्राविका अपने घर तथा अपनी देख-रेख मे न रखें। यदि कोई अनजान श्रावक-श्राविका ऐसा करें, तो समझदार श्रावक-श्राविका उपाधि रखने वालों को रोकें और मुख्याचार्य को तुरन्त सूचित करे। जिससे कि मुख्याचार्य उस प्रवृत्ति करने वाले साधु-साध्वी को रोके और उन्हे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध करे।

(१०) साधु के कल्पा-कल्प की जो समाचारी वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की आज्ञा से तैयार हो, उसको प्रत्येक ग्राम-नगर का श्रावक-सङ्घ अपने सङ्घ मे फैलाने की कोशिश करे। जिससे सर्व-साधारण को कल्पा-कल्प का ज्ञान रहे। यदि उस समाचारी में मुख्याचार्य की आज्ञा से कुछ फेर-फार हो, तो वह भी सर्वसाधारण को समझाए, जिससे सङ्घ मे दोष की ओर से विशुद्धि रहे। तथा पारस्परिक मत-भेद एव फूट न फैलने पाए।

(११) प्रतिक्रमण की वन्दना मे धर्माचार्य के स्थान पर वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य और उनकी आज्ञा में रहने वाले साधु-साध्वियो की वन्दना करें तथा चौबीसी की प्रार्थना के पश्चात् वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की प्रार्थना पद्य मे अवश्य बोले और नवकार मंत्र आदि के स्मरण के साथ मुख्याचार्य के स्मरण की भी कम-से-कम एक माला अवश्य फेरनी चाहिए।

अजमेर से विहार

साधु-सम्मेलन की कार्रवाई पूर्ण होने के पश्चात् पूज्यश्री ने अजमेर से विहार किया और मार्गवर्त्ती स्थानो में धर्मजागरण करते हुए ठा. २२ से बगडी-सज्जनपुर पधारे। बगडी मे आपके व्याख्यान सुनने के लिए वहां के ठाकुर साहब भी आते थे और हरिजन भाई भी आते थे। आपके उपदेश मनुष्य-मात्र के लिए थे। श्रोताओं पर आपकी वाणी का अच्छा प्रभाव पडा। मुसालिया मे दो तेरहपथी भाइयो ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

बगडी से विहार कर पूज्यश्री देवगढ़, गगापुर, साहाडा, लाखोला, पोटला, आरणी आदि स्थानो में धर्मोपदेश करते हुए राशमी पधारे। पोटला में बहुत-से तेरहपंथी भाइयो ने भी पूज्यश्री के उपदेशों से लाभ उठाया। आरणी मे जैनेतरो ने माताजी के मदिर मे होने वाली बलि बद कर दी।

यहा से पूज्यश्री कपासन पधारे। कपासन के माहेश्वरी भाइयो मे तडबदी थी और वह भी साधारण नही बल्कि सौ घरो मे नौ धडे थे। धड़े भी बहुत पुराने पड़ गए थे। सवत् १९२२ से चले आते थे। पूज्यश्री के उपदेशामृत की वर्षा से सारा वैमनस्य साफ हो गया। धडाधड़ धड़े टूटने प्रारम्भ हुए। पूज्यश्री सिर्फ तीन दिन यहाँ विराजे और इतने अल्पकाल मे ही सब धडे टूट गये। ओसवालो और ब्राह्मणों का मन-मुटाव भी मिट गया। इस प्रकार चिरकाल से चली आई अशान्ति पूज्यश्री के उपदेश से शान्ति के रूप मे परिणत हो गई।

चित्तौड आदि अनेक स्थानो के करीब हजार-आठ सौ भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। पूज्यश्री ने उन्हे भी प्रेम और एकता का उपदेश दिया।

पूज्यश्री कपासन से सनवाड और फिर मावली और उँटासा पधारे। यहाँ आपको पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के स्वर्गवास के समाचार मिले। समाचार मिलते ही आपने ध्यान किया। जयध्वनि और गीतों का गाना बद करके स्वर्गीय महात्मा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। पूज्यश्री ने तथा युवाचार्य प. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज आदि सतों ने उपवास किया।

कुछ दिन वहाँ विराजकर मावली पधारे। मावली में मुनि श्रीघासीलालजी महाराज पूज्यश्री से मिले। इस विषय का वर्णन आगे किया जायगा।

उदयपुर का श्रीसङ्घ अपने नगर मे पूज्यश्री का चौमासा कराने के लिए अत्यन्त उत्कठित था। अनेक बार श्रावकगण प्रार्थना करने के लिए पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए थे। इस बार अनुकूल सयोग होने से उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। पूज्यश्री कई स्थानो मे धर्म का प्रचार करते हुए चौमासे आरभ होने के समीप उदयपुर पधार गये।।

एकतालीसवा चातुर्मास (संवत् १९९०)

पूज्यश्री ने सवत् १९९० का चातुर्मास ठा. १३ से मेवाड की राजधानी उदयपुर मे व्यतीत किया। उदयपुर की धर्मामृत-पिपासु जनता को इससे कितना हर्ष हुआ यह कौन कह सकता है? उसकी चिरकालीन लालसा पूरी हुई। आनन्द छा गया।

पूज्यश्री के व्याख्यानो मे हजारो श्रोताओ की उपस्थिति होना, उच्चतम पदाधिकारियो का आना और उन पर प्रभाव पडना तो साधारण बात थी। वह सब यहा भी हुआ।

तपस्वी मुनिश्री किशनलालजी महाराज ने ४१ दिन की और तपस्वी श्रीकेसरीमलजी महाराज ने ६० की तपस्या गर्म जल के आधार पर की। गोगुन्दा निवासी श्रावक श्रीगणेशलालजी ने ४५ दिन के उपवास किये।

साधु-सम्मेलन के नियमानुसार पूर के उपलक्ष्य मे बाहर कही आमत्रणपत्रिकाए नही भेजी गई। सवत्सरी के दिन श्रीकेसरीमलजी महाराज के तप का पूर था। उस दिन लगभग ७०० पौषध हुए।

उन्ही दिनो उदयपुर मे 'जैन-नवयुवक-मंडल' की स्थापना हुई। पूज्यश्री के उपदेश से कई स्थानों की तडबदियां मिट गई और परस्पर प्रेम का सचार हुआ।

एक बहुत बड़ी और उल्लेखनीय घटना यहा यह हुई कि पूज्यश्री के एक ही उपदेश से स्थानीय तथा किसी जातीय प्रसग पर बाहर से आये हुए करीब दो हजार चमारों ने मास, मदिरा और परस्त्री-गमन का त्याग कर यह सिद्ध कर दिया कि शूद्र कहलाने वाले भाई भी उपेक्षा के पात्र नहीं। उच्च कुलीन लोग तो अपने कुलक्रम से आगत सस्कारो की बदौलत अभक्ष्यभक्षण आदि अनेक दोषों से प्राय· बचे रहते है और इस दृष्टि से उन्हे उपदेश की उतनी आवश्यकता नही रहती जितनी निम्नश्रेणी के कहे जाने वाले भाइयों को रहती है। इसी कारण पूज्यश्री के व्याख्यान में आने की किसी को कोई रुकावट नहीं थी। कदाचित् कोई उच्च कुलाभिमानी किसी प्रकार की रुकावट डालता भी तो पूज्यश्री उसे सहन नही करते थे।

एक बार पूज्यश्री ने इस विषय में बडी ही दृढता और तेजस्विता से परिपूर्ण वाणी उच्चारण की थी।

रतलाम मे पूज्यश्री ने फरमाया था:-

'जब समाज व्यवस्था आरभ हुई तब एक वर्ग को सेवा का कार्य सौपा गया। वह वर्ग अगर सेवा करता है तो क्या कुछ बुरा करता है? एक ओर चँवर-छत्र धारण किये कोई महिला हो और दूसरी ओर मेहतरानी हो तो इन दोनो मे जन साधारण के लिए उपयोगी कौन है? सोने की डडी वाले चँवर तो किसी विरले पर ही ढोरे जा सकते है तथा उनके अभाव में किसी का कोई काम भी नही रुकता; लेकिन मेहतरानी तो जन-साधारण के लिए उपयोगी है। ऐसा होते हुए भी अगर आपको चामर-छत्रधारिणी ही अच्छी लगती है तो कहना चाहिए कि आप वास्तविकता से दूर हट रहे है। अभी आपको ज्ञान नही है। मेहतरानी गटर साफ करती है और नगर की जनता को रोगो से बचाती है। वह नगर की जनता के प्राणो की रक्षिका है। उसकी सेवा अत्यन्त उपयोगी और अनुपम है। फिर भी चँवर वाली को बडी समझना और मुकाबिले मे मेहतरानी को नीच मानना भूल है, अज्ञान है और कृतज्ञता से विरुद्ध है। क्या आपमे इतनी उदारता नही आ सकती कि आप इस प्रकार की सेवा करने वालों को भी मनुष्यता की दृष्टि से देखकर उनके साथ मनुष्योचित ही व्यवहार करे?

आज उल्टी ही स्थिति दिखाई दे रही है। लोग उन्हें अछूत या अस्पृश्य कहकर उनके प्रति ऐसा हीनतापूर्ण व्यवहार करते है, मानो वह मनुष्य ही नही है। गदगी फैलाने वाले वे बुरे और हीन! न्याययुक्त बुद्धि से उनके साथ अपने इस कर्त्तव्य की तुलना करके देखो तो आपकी आँखे खुल जाएगी।

'जैनधर्म कहता है कि चाण्डाल कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी मुनि हो सकता है और मुनि होने पर वह महान्-से-महान् धर्म का ब्राह्मणों को भी उपदेश दे सकता है।'

पूज्यश्री के उपदेश से प्रतिबोध पाकर इन हीन कहे जाने वाले सरल हृदय भाइयो का असीम उपकार हुआ। उन्होने उपदेश श्रवण सार्थक किया।

हेमचन्द भाई का आगमन

श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस के इतिहास मे अजमेर का नवा अधिवेशन अभूतपूर्व था। साधु-सम्मेलन के कारण उसमे लगभग पचास हजार जनता इकट्ठी हो गई थी। समाज-सगठन तथा पुनर्निमाण के लिए इसमे कई योजनाएं बनाई गई। इस अधिवेशन के सभापति भावनगर स्टेट रेलवे के चीफ इञ्जीनियर श्री हेमचन्द रामजी भाई मेहता थे। कान्फ्रेंस मे पास हुए प्रस्तावो को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने समाज के अग्रणी व्यक्तियों के साथ एक दौरा करने का निश्चय किया। उसी सिलसिले मे जब आप उदयपुर पधारे, पूज्यश्री वही विराजते थे। उस समय पूज्यश्री तथा हेमचन्द भाई ने जो उद्‌गार प्रकट किए उनका साराश यहां दिया जाता है। कान्फ्रेस का डेपुटेशन उदयपुर में दो दिन ठहरा था। उस अवसर पर पूज्यश्री ने नीचे लिखे विचार प्रकट किये।

प्रथम व्याख्यान

ता. ९-९-३३

अभी कुछ ही दिन पूर्व आत्म-धर्म, साधु-धर्म और चारित्र-धर्म की शुद्धि के लिए साधु व श्रावको ने बड़ा परिश्रम किया है। इसी के लिए अजमेर में सम्मेलन भी हुआ था। जिन लोगों या महात्माओ का केवल नाम ही सुना था, या नही भी सुना था, अजमेर में उन सभी का सम्मेलन हुआ। इसी प्रकार श्रावक भी बहुत से एकत्रित हुए। यदि श्रावकों मे साधुओं के प्रति भक्ति न होती तो क्या कान्फ्रेस के किसी और अधिवेशन के समय भी इतने आदमी इकट्ठे हुए थे ? जो लोग अजमेर में एकत्रित हुए थे, वे लोग कैसे कष्ट मे रहे होगे, इस बात को तो वे ही जानते होंगे, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि लोगो की नसो में साधु-भक्ति है। इसी से लोगो ने अपना सब काम छोड़कर, खर्च उठाकर और कष्ट सहकर भी इस कार्य में भाग लिया।

चारित्र की शुद्धि कैसे हो, इस बात का निर्णय और ऊहापोह करने मे साधु-सम्मेलन के समय, किसी ने कोई कसर नही रखी। परन्तु जब तक बाडी नही है तब तक रखवाली की चिन्ता नही होती। परन्तु बोने के बाद यदि बाडी सूनी छोड़ दी जाय तो बन्दर आदि उसे खा जावेंगे, या नष्ट कर डालेगे। यही बात साधु-सम्मेलन के लिए भी है। दुर्लभजी भाई ने साधु-सम्मेलन के लिए ही सैकड़ो कोस का दौरा किया था। अब प्रेसिडेण्ट साहेब ने सारा बोझा अपने पर उठा लिया। इस प्रकार के परिश्रम से लगाई हुई बाड़ी को सूनी छोड देना ठीक नही है, यह जानकर ही प्रेसिडेण्ट साहेब ने प्रवास का यह कष्ट किया है।

प्रेसिडेण्ट साहेब का कान्फ्रेंस के समय दिया हुआ सारा भाषण तो मैने नही पढा, परन्तु उसका कुछ अश मैने पढ़ा है। प्रमुख साहेब ने अपने भाषण मे यह बतलाया है कि मुझ इन्जीनियर को कान्फ्रेस का प्रमुख क्यों चुना ? कान्फ्रेस के प्रमुख साहेब ने तो इस विषय मे कुछ कहा ही, लेकिन मैने कुछ दूसरी

ही कल्पना की है। एक गाड़ी दौडती हुई जा रही है। उसके भीतर इन्जीनियर शांति से बैठा है। फिर भी शक्ति-गाडी की बडी है या इन्जीनियर की ?

इन्जीनियर की

यद्यपि इजीनियर गाड़ी से छोटा है। गाडी का एक पुर्जा भी यदि इजीनियर पर गिर जावे तो इजीनियर को दबा सकता है। दूसरी तरफ गाड़ी ऐसी ताकतवाली है कि इजीनियर को भी जहा चाहे वहा ले जा सकती है। फिर भी गाडी की शक्ति बडी नही है, किन्तु इजीनियरी की शक्ति बड़ी है। क्योकि एजिन मे पुर्जे इजीनियर ही लगाता है। साधारण आदमी और इजीनियर में यह अन्तर है कि गाड़ी के विषय मे इजीनियर जो कुछ कर सकता है, साधारण आदमी वैसा नही कर सकता। इजीनियर में यह शक्ति है कि वह जोर भर दौड़ती हुई गाडी को रोक सकता है। रुकी हुई गाड़ी को चला सकता है। इसी प्रकार एजिन से डिब्बे को अलग भी कर देता है और जोड़ भी देता है। इन्जीनियर टूटे फूटे लोहे को भी एजिन के रूप में परिणत कर देता है। यद्यपि अग्नि और पानी में शक्ति है, फिर भी उस शक्ति से काम लेना सब कोई नही जानते। लेकिन इजीनियर उससे काम ले लेता है। इस प्रकार इजीनियर पाचों भूतो पर मालिकी करता है, लेकिन देखना यह है कि इजीनियर जो कुछ भी करता है, वह शरीर की स्थूल शक्ति से करता है या ज्ञान-शक्ति से ?

ज्ञान-शक्ति से

यदि ऐसा करने वाले इजीनियर मे से ज्ञान-शक्ति निकाल ली जावे, तो इजीनियर में क्या बाकी रहेगा ? यह कहने का अभिप्राय यह है कि हम प्रेसिडेण्ट सा. को स्थूल शरीर के रूप में ही नही देखना चाहते। किन्तु ज्ञान-शक्ति के रूप मे देखना चाहते है।

गाडी दौड़ रही है और इजीनियर उसमे शक्ति से बैठा है। फिर भी इजीनियर कहता है कि 'यह गाडी का दौडना तो मेरा एक खेल है। मै जब चाहू तब इस दौडती हुई गाडी को रोक सकता हूं। क्योंकि मेरी ज्ञान-शक्ति इस गाडी की दौड़ से बहुत बढी हुई है।

एक चीटी चल रही है और एक गाडी दौड रही है। इन दोनो मे बडा कौन है ? वैसे तो गाड़ी के नीचे नित्य ही अनेक चींटिया दब मरती होंगी फिर भी चीटी बडी है, क्योंकि चींटी चेतन और स्वतत्र है। चीटी अपनी शक्ति से एक खडे पत्थर पर भी चढ सकती है परन्तु रेल नही चढ़ सकती है। जब साधारण श्रेणी के जीव कीडों मे भी यह शक्ति है। कीडी भी गाडी से बढ़ी हुई है तो मनुष्य और मनुष्य मे भी इजीनियर की शक्ति का तो कहना ही क्या। इस प्रकार इजीनियर की शक्ति साधारण मुनष्यो से बढी हुई होती है। इसी कारण समाज ने इंजीनियर को अपना नेता चुना है।

यदि इजीनियर की शक्ति केवल रेलगाड़ी चलाने तक ही सीमित रह जावे तब तो ऐसे बहुत से इजीनियर हुए है। उनका कोई नाम भी नही लेता। यहा तो उस इजीनियर की बात है जो समाज की चलती हुई गाड़ी के लिए इस बात का विचार रखे कि इस गाडी को किधर चलाकर किस दक्षता से निकाल ले जाय, ये हेमचन्द भाई गृहस्थ समाज के प्रमुख है। यदि ये समाज-रूप गाड़ी को न सम्हाले और सोते ही रहें तो हानि के विषय मे किस की जवाबदारी होगी ? आप समाज के नेता है, समाज-रूपी गाडी के ड्राइवर है, इसलिए समाज-रूपी गाडी की जवावदारी आप पर है। इस जवाबदारी को

निभाना आपका काम है। इस गाड़ी के विषय में प्रमुख साहेव को रात-दिन चिन्ता रहती होगी। लेकिन गाडी के चलाने मे अकेला इंजीनियर कुछ भी नही कर सकता। इंजीनियर गाडी तभी चला सकता है जब पुर्जे और कोयला-पानी आदि सब सामग्री की सहायता बराबर प्राप्त हो। यदि पुर्जे न हो, कोयलेवाला कोयले न दे और पानी के लिए कुआ जवाव दे दे तो इजीनियर क्या करेगा ? इसलिए यदि समाज की इस गाडी को सुव्यवस्थित रूप से चलाना है तो सबको अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझकर उसके अनुसार कार्य करना होगा।

समाज की गाडी तभी चल सकती है जब इजीनियर अपना काम करे, पुर्जे वाला अपना काम करे और पानी कोयले वाले अपना काम करे। ऐसा होने पर ही यह समाज की गाड़ी यथास्थान यानी निश्चित ध्येय पर पहुंच सकती है। समाज के किसी भी आदमी को यह समझकर कभी निश्चिन्त नही होना चाहिए कि हमने समाज के लिए प्रमुख चुन लिया है। वे ही इजीनियर की तरह इस समाज की गाड़ी को चलावेंगे। क्योंकि समाज के प्रमुख होने के कारण प्रमुख साहेब पर तो समाज की गाड़ी चलाने का भार है ही, लेकिन प्रमुख साहेब को प्रमुख पद के लिए समाज के लोगों ने ही चुना है। इसीलिए प्रमुख साहेब को चुनने वालो पर क्या जिम्मेदारी नही है ? चुनने वालों पर भी जिम्मेदारी है। ऐसा होते हुए भी यदि कोई आदमी यह कहे, कि समाज की गाडी कही भी जावे, हमारा क्या ? तो ऐसा कहना कृतघ्नता है। प्रमुख साहेब को आप ही ने अपना प्रमुख चुना है और हाथी पर बैठा कर उनका जुलूस निकाला है। क्या आपने ऐसा प्रमुख साहेब का अपमान करने के लिए किया है ? यदि अपमान के लिए न हो, किन्तु सम्मान के लिए किया है तो फिर आप अपना कर्त्तव्य समझो।

सीता ने राम के गले मे हार डाला था। तो वह जब राम वन जाने लगे तब उनके साथ वन को गई थी या घर रही थी ? साथ वन गई थी।

इसी प्रकार आपने प्रमुख साहेब का स्वागत किया है और इनके गले मे हार डाला है। अब आपको भी सीता की तरह ककर-पत्थर की ठोकरों के समान कष्टों से डरना उचित नही है। कार्य के समय घर में सो रहने से या कष्टों से भीत हो जाने से कदापि प्रशसा नहीं होती। सीता की प्रशसा राम के गले मे हार डालने से ही नही है। किन्तु हार डालने के साथ ही राम के साथ वन जाने से है। हा, यदि राम वन को न जाते और अकेली सीता को ही वन भेजते तथा उस समय सीता वन को न जाती तब तो बात अलग थी लेकिन जब राम स्वय वन को जा रहे है तब सीता का कर्त्तव्य क्या है ? उस समय तो राम सीता को घर रहने के लिए भी कहते है। परन्तु ऐसे समय मे सीता घर रहेगी या वन को जाएगी।

सीता कहती थी, कुछ भी हो। जब राम अपना कर्त्तव्य पाल रहे हैं तब मुझे भी अपना कर्त्तव्य पालना ही चाहिए। इसी प्रकार जब समाज के प्रमुख अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे है, तब समाज का भी कर्त्तव्य प्रमुख का साथ देना है। यदि प्रमुख को प्रमुख चुन कर भी समाज प्रमुख का साथ न दे और अपनी जिम्मेवारी को भूल जावे तो जैसे समाज अपने कर्त्तव्य को ही भूल गया।

यह बात तो समाज और प्रमुख साहेब के सबध की हुई। अब मै अपने सम्बन्ध की बात कहता हू। प्रमुख साहेब ने या समाज ने साधु-सम्मेलन का और काफ्रेस का सम्बन्ध जोडा है। यदि साधु-सम्मेलन का और काफ्रेस का सम्बन्ध न जोड़ा जाता जब तो शायद इन दोनो का जो महत्त्व समझ रहे है वह महत्त्व न समझते। साधु-सम्मेलन और काफ्रेस के सम्बन्ध का आकडा इस तरह है कि साधु-सम्मेलन

मे सन्तो ने मिल कर कई ठहराव सर्वानुमति से और बहुमत से पास करके कान्फ्रेंस के प्रमुख साहेब को दिए। प्रमुख साहेब ने उन्हे समाज के सामने प्रकट किया। यद्यपि साधु-सम्मेलन की रिपोर्ट मे जल्दी आदि कई कारणो से अपूर्णता एव भूल रह गई है। फिर भी मै इस समय इस बात को गौण करके ही बोल रहा हू। मै साधु-सम्मेलन मे किसी नियम से गया होऊ लेकिन प्रमुख साहेब ने यह ठहराव पास किया कि-

"यहा हाजिर या गैरहाजिर और इन ठहरावो को मानने पर साधु-सम्मेलन के ठहराव बन्धनकारक है।"

प्रमुख साहेब ने ऐसा ठहराव तो कर दिया लेकिन हम साधु लोग प्रमुख साहेब के ठहरावों को न मानें और साधु-सम्मेलन के ठहरावों का पालन न करे तो पालन कराने की जिम्मेवारी किस पर है?

प्रमुख साहेब ने उत्तर दिया- ठहराव करने वाले पर।

अर्थात् प्रमुख साहेब पर। क्योकि प्रमुख साहेब ही कान्फ्रेंस है और कान्फ्रेंस ही प्रमुख साहेब है। इसलिए प्रमुख साहेब को यह ही मानना पड़ेगा कि हमारे ठहराव का पालन कराने की जिम्मेवारी हम पर है।

प्रमुख साहेब ने या कान्फ्रेस ने साधु-सम्मेलन के ठहराव हाजिर, गैर हाजिर आदि सभी सन्तों के लिए बन्धन कारक ठहराए। तब साधुओ का कर्त्तव्य क्या है? इस पुकार का ठहराव सघ का हुआ है। सघ के हुक्म को साधु के लिए मानना आवश्यक है या नहीं?

कभी कोई प्रश्न करे कि सध का हुक्म साधु पर भी चल सकता है? तो इसका उत्तर यह है कि इस नियम मे, कथा मे एक बात मिलती है। कथा में बताया है कि भद्रबाहु स्वामी एकान्त में योगसाधन कर रहे थे। उन्ही दिनो सघ में ऐसा विग्रह फैला कि महापुरुष के बिना उस विग्रह का निर्णय नही हो सकता था। सघ ने परामर्श करके दो साधुओ को भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा और प्रार्थना की कि आप जल्दी से पधारे। आपके पधारे बिना सघ में शाति नही हो सकती। साधु भद्रबाहु स्वामी के पास गये। उन्होने सघ की प्रार्थना के उत्तर मे कहा कि मै खाली नही हू, योगसाधन में लगा हुआ हू! मेरे आने से योगसाधन में कमी रहेगी। इसलिए मै आने में असमर्थ हू।

साधुओ ने वापिस आकर भद्रबाहु स्वामी का उत्तर सघ को सुना दिया। सघ ने साधुओ को फिर उनके पास भेजा और कहलवाया-सघ की आज्ञा बड़ी है या योग बडा है? यदि सघ की आज्ञा बडी है तो आपको शीघ्र आना चाहिए। यदि योग बडा है तो संघ का आपसे कोई सम्बन्ध नहीं है। साधुओ ने सारी बात भद्रबाहु स्वामी से कही। उसके मन मे आया कि सघ की आज्ञा बडी है, योग बड़ा नही है और संघ मे विग्रह होने देना कर्म बाधना है।

ठाणाग सूत्र मे आठ आज्ञाए देकर कहा है कि इन आज्ञाओ का पालन करने मे कभी प्रमाद नही करना। उनमें आठवी आज्ञा इस प्रकार है-

साहम्मिताणमधिकरणसि उप्पण्णासि तत्त्थ अनिस्सितो वास्सितो अमक्खागाही मज्झत्थभावभूते कहणसाहम्मिता अप्पसद्दा अप्पझझा अप्पतुमतुमा उवसामणतो ते अभुद्वियत्व भवइ।

अर्थात् जब सार्धी में कलह हो तब किसी का पक्ष न लेकर उपशान्त हो यह देखना कि न्याय किधर है। ऐसे समय मे मध्यस्थ बन यह निश्चय करना कि मै किसी का नही हूं। न्याय का हू। चाहे कोई मेरा मित्र हो या शत्रु, मै सत्य बात ही कहूंगा। इस प्रकार के भाव रख कर जो सहधर्मी का कष्ट मिटाता है, भगवान् कहते है, उसे महानिर्जरा होती है। उत्कृष्ट रस आने पर वह तीर्थकर गोल भी बाधता है। इस कार्य के करने में जितना आत्म-कल्याण हो सकता है उतना आत्म-कल्याण किसी दूसरे कार्य से नही होता।

जब सङ्घ में शान्ति कराने से महानिर्जरा होती है तो अशान्ति कराने से महापाप होगा ही। मेरी पूछ हो, इसलिए सङ्घ मे अशान्ति कराने से महाचिकने कर्म बँधते हैं।

भद्रबाहु स्वामी ने विचार किया कि मै योग साधूँ या न साधूँ, इससे तो एक ही व्यक्ति के हानि-लाभ का सम्बन्ध है। परन्तु सङ्घ के बिगड़ने पर परम्परा ही बिगड़ जाएगी। एक फल बिगड़ना दूसरी बात है और वृक्ष की जड ही बिगड जाना दूसरी बात है। मूल बिगड जाने से तो सभी फल बिगड़ जाएगे। इसलिए न्याय धर्म किधर है, यह देखकर न्याय-धर्म रूपी मूल को ही सीचना चाहिए! यदि वृक्ष की और डाले सूख गई हो, केवल एक ही डाली हरी हो तब भी वृक्ष का मूल सीचने से सारा वृक्ष पुनः हरा होना सम्भव है। परन्तु मूल काटने पर तो सारा हरा वृक्ष भी नष्ट हो जावेगा।

भद्रबाहु स्वामी सङ्घ की आज्ञा मानकर सङ्घ के पास आए और सङ्घ से क्षमा माग कर उसका काम किया।

मतलब यह है कि "सङ्घ की शक्ति जबर्दस्त है।"

इस बात पर विश्वास रखकर सङ्घ की आज्ञा मानना सभी का कर्त्तव्य है।

किसी बात से हमारा मत-भेद हो यह बात अलग है। परन्तु सत्य और यथार्थ बात के लिए यदि हम सदा तैयार नही तो फिर सङ्घ मे जाने से ही क्या? हमारा ध्येय सदा से यही है कि सङ्घ में शान्ति रहे। इतने पर भी हम यही कहते है, हम सरीखा एक व्यक्ति सङ्घ मे शामिल हो या न हो, सङ्घ में शान्ति रहे, ऐसे उपाय करते रहना उचित है।

सङ्घ की शक्ति बडी है। प्रमुख साहेब ने साधु-सम्मेलन के ठहराव सब साधुओ पर बन्धन कारक किस शक्ति से ठहराए है?

'संघ शक्ति से।'

सघ ने साधुओं पर जो प्रतिबन्ध लगाया है, साधुओ को उसे मान देना पडेगा। लेकिन हमारा कहना यह है कि यदि साधु सङ्घ के लगाए हुए प्रतिबन्ध तोडे तो सङ्घ साधुओ की खुशामद न करे। यदि सघ ने खुशामद की तो साधु सङ्घ के ठहरावो को केवल कागजी ठहराव कहेंगे और ऐसा होने पर यह होगा कि-

तू न कहे मेरी, मै न कहूँ तेरी।
पोल पाल मे चलने दे, यह मजेदार हथफेरी॥

पोल-पाल रखने से काम न चलेगा। इसलिए आप मेरी या और किसी की खुशामद मे मत पड़ो। जिसमे त्रुटि हो उसके साथ रियायत मत करो।

अन्त में मैं प्रमुख साहेब से यही कहता हू कि आप आए है और हमसे सम्मेलन सम्बन्धी बातचीत की है। हम से सम्मेलन का ठहराव टूटा है या नहीं और सम्मेलन के ठहरावो का पालन करने में हमसे कोई त्रुटि हुई है या नही, इस बात का सर्टिफिकेट आप को हमारे लिए देना होगा। हमने त्रुटि की है या नही इस बात की आप हमारी जाच करे और दूसरे की भी जाच करे। इस प्रकार जाच करने से ही संघ की आज्ञा का पालन हो सकता है और सघ की आज्ञा का पालन करने से ही कल्याण हो सकता है।

द्वितीय व्याख्यान

ता. १०-९-३३

इजीनियर की शक्ति हजारों ट्रेनों से अधिक होती है, और इसी कारण ट्रेन की जिम्मेवारी इजीनियर पर रहती है। आप लोगो ने इस समाज-रूपी गाड़ी की जिम्मेवारी प्रमुख साहेब को दी है, तो इस गाडी पर नियन्त्रण रखने एवं इसे चलाने की शक्ति भी प्रमुख साहेब को आप से मिलनी चाहिए। मै तो यह कहता हू कि इजीनियर में बहुत शक्ति होती है। लेकिन प्रमुख साहेब मेरे लिए कहते है कि 'आप मे बडी शक्ति है।' यदि प्रमुख साहेब की दृष्टि से मेरे मे बडी शक्ति है तो मैं वह शक्ति प्रमुख साहेब को देता हू। प्रमुख साहेब इस शक्ति को अपने में लेकर देखे कि यह शक्ति कैसी आनन्ददायिनी है।

अब इस समय आप लोग क्या करेंगे। केवल प्रमुख साहेब के शरीर के सत्कार में ही रहोगे या प्रमुख साहेब के बनाए हुए नियमो का भी सत्कार करोगे ? उदयपुर के श्रीसघ की तरफ से प्रमुख साहेब का स्वागत किस उद्देश्य से किया गया है ? हम साधु है। हम प्रमुख साहेब का स्वागत किस तरह करे। हमारे पास वरमाला भी नही है जो हम प्रमुख साहेब के गले में डाले। लेकिन आप लोगों ने तो प्रमुख साहेब के गले मे वरमाला डाली है और प्रमुख साहेब के सत्कार का प्रदर्शन किया है। किन्तु यह प्रदर्शन खाली तो नहीं है।

कल प्रमुख साहेब स्थूल शरीर से तो शायद आप लोगो से जुदा हो जाएगे। परन्तु स्थूल शरीर दूर जाना ही जुदाई है या जुदाई अन्त'करण से होती है ? प्रमुख साहेब का स्थूल शरीर यदि यहा से चला भी जावे तब भी अन्तःकरण मे भेद नहीं है तो जुदाई भी नही है।

आप लोगों को यह न समझना चाहिए कि प्रमुख साहेब यहा आए, हमने इनका स्वागत किया और अब यहा से वे जाते है। इसलिए हमारी जवाबदारी पूरी हो गई। अब दूसरो पर जवाबदारी है। अन्त.करण का मिलन और हिन्दुस्तानी लगन एक बार जुडने के बाद नही टूटते। प्रमुख साहेब से क्या आपने यूरोपीय लग्न सम्बन्ध जोड़ा है जो आज किया और कल टूट जावे ? ऐसा लग्न भारतीय नही करते। आर्यबाला अपने लग्न मे सच्ची प्रीति रखती है और एक बार प्रीति कर लेने के बाद फिर नही तोडती। प्रीति दूध मिश्री की तरह होनी चाहिए। इसलिए प्रमुख साहेब यहा से चले भी जावें तब भी आप लोग प्रमुख साहेब के अन्त'करण मे जो सम्वन्ध जोड चुके है, वह तोड़ना उचित न होगा।

मै अपने लिए कहता हू कि मेरे विषय की बात के लिए बाहर ही वाहर गडबड करने से, कुछ लाभ नही। वैसे तो मुझ से सच्ची बात एक बच्चा भी कह सकता है और मै मान सकता हूं। परन्तु यह नही हो सकता कि कोई कहे और मै मान ही लू। यदि इस प्रकार मानने लगू तो मैं आचार्य क्या रहा, मिट्टी का पुतला रहा। हा, यदि सच्ची वात मै न मानू तो मुझे कोई भी टोक सकता है। मै वार-वार यही

कहता हू कि मेरे विषय की जो भी वात हो, मेरे पास लाओ। मेरे पास न लाकर वाहर ही वाहर गडवड करने से चिकने कर्म वधेगे। मै यही कहता हूं, वाहरी गडवड़ करके धर्म की व्यवस्था को मत बिगाड़ो। वादशाह के रत्नखचित दुपट्टे को खीचकर चीथडे मत वनाओ। इस धर्म की वहुत महिमा है। इस धर्म का भाग्य कम है इसी से वह आपकी गोद आया है। लेकिन आपका भाग्य तो इस धर्म के मिलने से बडा ही है। गडबड करके इस धर्म के चिन्दे मत उडाओ। एक कवि कहता है-

पुरा सरसि मानसे विकचसारसाली स्खलत्,
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यात वयः।
स पल्वल जलेऽधुना मिलदनेक भेका कुले,
मराल कुल नायक! कथय रे कथ वर्तताम्॥

एक राहजस तलैया पर बैठा था। वह तलाई भी छोटी थी। पानी कम था, कीचड अधिक थी। मेढक टर्राते हुए फुदक रहे थे। एक कवि वहा आया। राजहंस को देखकर कहने लगा-

हे राजहस! तेरी यह क्या दशा आई है ? तू मानसरोवर मे रहता था। खिले हुए कमलों की पराग से सुगन्धित पानी को पीता था। मोती चुगता था। आज तू इस तलाई पर क्यो बैठा है ? तेरे भाग्य मन्द है। किन्तु हे तलाई। तेरे भाग्य तो बडे है। तेरे यहा ऐसा मेहमान आया है। तू अपने मेंढको को रोक ले। उन्हे कह कि वे इस तरह उछल-कूद न करे। वह मानसरोवर का हस समय का मारा हुआ ही तेरे यहा आया है। लेकिन तेरा भाग्य तो बड़ा ही है।

तलाई को इस प्रकार कह कर वह कवि राजहस से कहता है, हे राजहस! तू अपने पुराने दिन याद करके दु.ख मत कर। यद्यपि इस तलाई पर तुम्हें मानसरोवर-सा आनन्द न मिलेगा किन्तु जीवन-निर्वाह तो हो जाएगा। आज तुम्हे मानसरोवर का जल नहीं मिल रहा है। यदि तुम इस तलैया का जल नही पीओगे तो मर जाओगे। यदि धैर्य धारण करोगे तो मानसरोवर भी पहुच सकोगे।

यह अन्योक्ति अलकार है। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म राजहस-सा है। सिद्धान्त मे कहा है-

चइत्ता भारहं वास चक्कवट्टी मइड्डिओ,
सन्ती सन्ति करे लोए पत्तो गइ मणुत्तर॥

हे धर्मरूपी राजहस! तू जगत् पर शासन करने वाले चक्रवर्ती रूपी मानसरोवर की गोद मे रहने वाला था। बडे-बड़े चक्रवर्ती तुझे धारण करते थे और अपनी प्रतिष्ठा रखते थे। गौतमस्वामी और सुधर्मस्वामी सरीखे महापुरुषो ने तुझे धारण किया था। उस समय तुझे किसी छोटे आदमी की खुशामद नही करनी पड़ती थी; परन्तु आज वही धर्म अपने यहा आकर पडा है। अपने लोग ठहरे तलाई के समान और धर्म मानसरोवर के समान चक्रवर्ती की गोद मे रहने वाला ठहरा। आपको यह समझ कर आनन्द होना चाहिए कि हमारे यहा धर्मरूपी राजहंस आया है, परन्तु बीच में प्रकृतिरूपी मेंढक कूद-फाद कर रहे है। अपनी प्रकृति के मेढको को शान्त करो।

इसी प्रकार हे धर्म! तुम अपने पिछले दिन याद करके दु ख मत करो। गर्मी के दिनो में माली वृक्षो को लोटा-लोटा जल पिलाकर जीवित रखता है। फिर वर्षा ऋतु में खूब पानी गिर जाता है। फिर

भी वर्षा की अपेक्षा माली के जल का मूल्य अधिक है। क्योकि माली के जल ने ही जीवन रखा है। इसीलिए यह कहा जाता है कि इस वृक्ष को माली ने सीचा है और इसके फल का अधिकारी वह माली ही है। इसी प्रकार हे धर्म! तेरे को रखने वाले वर्षा के जल के समान चक्रवर्ती आज नही है। परन्तु इन्हें गर्मी के दिन समझ कर धैर्य रख! आज जिनकी गोद मे तू पडा है उन्हे लोटे का जल समझ कर सन्तोष रख! यद्यपि लोटे का जल वर्षा के जल की अपेक्षा बहुत थोडा है, फिर भी जीवन रखने के लिए इसी का सहारा है। गर्मी के दिनों मे जीवन बना रहेगा तो वर्षा ऋतु भी देखने को मिलेगी।

मित्रो! इस धर्म पर ग्रीष्म ऋतु के से दिन हैं। इसलिए इस बात का ध्यान रखो कि यह धर्म रूपी वृक्ष कुम्हला न जावे। यदि इस की रक्षा करोगे तो आप भी यशस्वी फल प्राप्त करोगे। धर्म के विषय मे न्याय की बात समझो, समझाओ और भूल मिटाओ। तलैया मे मेढको की तरह कूदा-फादी मत करो। ऐसा करने से आपका भी सम्मान न रहेगा। धर्म पर दृढ़ रहो।

छोड़ो न धर्म अपना यदि प्राण तन से निकले।
त्यागो न कर्म अपना यदि प्राण तन से निकले॥
जीना धरम को लेकर मरना धरम को लेकर।
जाना धरम को लेकर जब प्राण तन से निकले॥
आपत्तियो के भय से मुंह मोड़ना न हरगिज।
मत छोडना धरम को यदि जान तन से निकले॥
हो जाओगे अमर तुम, मरकर रहोगे जिन्दा।
हो धर्म पर निछावर यदि प्राण तन से निकले॥
जिसने नही किया कुछ, अपना सुधार जग मे।
जिन्दा रहा तो क्या है, चाहे जान तन से निकले॥
है भावना हमारी, हे दीनबन्धु वत्सल!
रहकर धरम मे कायम, यह जान तन से निकले॥

पद की कडियां कैसी भी हों, परन्तु जब बात समझाई जाती है तब अपूर्व हो जाती है। इस पद्य का अर्थ समझाने को समय नही है, इसलिए इसका अर्थ थोड़े में ही कहता हू कि अपना धर्म न छोड़ना।

इस पद में अपना धर्म न छोड़ने को तो कहा, किन्तु अपना धर्म कौन-सा है? जैन, वैष्णव, मुसलमान, ईसाई आदि सभी अपना-अपना धर्म कहते हैं। शास्त्र भी कहता है कि अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। किन्तु धर्म किसे कहना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि जिस से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि की स्थापना हो और झूठ आदि पापों का निराकरण हो, वही धर्म है। चाहे ऐसे धर्म का नाम कुछ भी हो। केवल जैन नाम धराने से ही कुछ नही होता किन्तु उसमे ऊपर वाली विशेषताए होनी चाहिए। जिस धर्म मे ये गुण है उसके लिए यदि प्राण भी देना पड़े तो बुरा नहीं है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज फरमाया करते थे कि कभी धर्म और धन दोनों मे से एक के जाने का समय आवे तब यह भावना हो कि 'धन भले ही जावे किन्तु धर्म न जावे।' ऐसे ही धर्म और प्राण जाने का समय आवे तो प्राण जाये परन्तु धर्म न जावे, यह भावना रखना। इस प्रकार की दृढता रखने से ही धर्म का पालन होता है। श्री प्रमुख साहेब से मेरा यही कहना है।

पूज्यश्री के भाषण के बाद प्रमुख साहेब ने नीचे लिखे शब्द कहे-

पूज्य महाराज, मुनिराज, बन्धुओ और बहिनो!

पूज्यश्री के जो व्याख्यान दो दिन सुने है, उसके बाद कहने की कुछ आवश्यकता नही रहती। आप बडे भाग्यवान हैं कि पूज्यश्री का चातुर्मास आपके यहां है और आप नित्य व्याख्यान सुनते है। यद्यपि मेरी इच्छा भी यहा ठहरकर व्याख्यान सुनने की है परन्तु मेरा प्रोग्राम बन चुका है, इसलिए मै नहीं रह सकता। भाग्य से अवसर मिला तो किसी दूसरे चातुर्मास मे मै पूज्यश्री के व्याख्यानो का लाभ ले सकूंगा।

मुझे अब से पहले माटुगा मे पूज्यश्री के दर्शन प्राप्त हुए थे। मै उस समय बम्बई मे केवल एक ही दिन रुका था। इसलिए पूज्यश्री की सेवा का लाभ केवल आध घन्टा ले सका। माटुगा मे जब मैं पूज्यश्री के दर्शन करके बैठा तो उन्होंने प्रश्न किया- आप पेसेजरो को इधर-उधर पहुचाने के लिए रेल सडक तो बनाते है; परन्तु ऊपर (मोक्ष) जाने के लिए सडक बनाते है या नही ? पूज्यश्री के प्रश्न के उत्तर मे मैंने उस समय क्या कहा था यह तो मुझे याद नहीं है, लेकिन मैने ऊपर जाने के लिए अब तक भी सडक नहीं बाधी है। अब मै इसके लिए प्रयत्न करता हू और इसीलिए मुझे श्रीसघ से सहायता पाने की आवश्यकता पड़ी है। यदि मुझे श्रीसघ की पूर्ण सहायता प्राप्त हुई तो शायद मै ऐसी सड़क भी बाध सकू।

पूज्यश्री ने मेरा परिचय इन्जीनियर के रूप मे कराते हुए इन्जीनियर पद के लिए बहुत बडी जिम्मेवारी बताई है। लेकिन मेरी समझ से मेरी इजीनियरी के अपेक्षा कुदरत की इजीनियरी बहुत बड़ी है। प्रकृति दिन-रात तोड़-फोड किया ही करती है। जो निरुपयोगी को बिगाडकर नया उपयोगी बनावे वह सृष्टा प्रकृति ही है। यद्यपि जैनशास्त्र और आधुनिक विज्ञान के अनुसार किसी वस्तु का नाश नही होता, केवल रूपान्तर होता है। फिर भी प्रकृति को जैसा अच्छा लगता है, वैसा होता है।

मुझे उदयपुर श्रीसघ के सम्मुख कहने के लिए अवसर मिला है, इसके लिए मै उदयपुर श्रीसघ का उपकार मानता हू। वैसे तो जहा जाना होता है उस स्थल का नाम लेना ही पड़ता है, लेकिन यदि वहा जाने के लिए सड़क बनी हुई हो तो वहा सहूलियत से पहुचा जा सकता है। ऊपर अर्थात् मोक्ष गति के लिए श्रीसघ सड़क है। लेकिन किसी भी सडक को कोई एक व्यक्ति नही बना सकता। सबके सहयोग से ही सडक बन सकती है और तभी उस सड़क पर से मुसाफिरी की जा सकती है। आप सडक को देखकर यह जान सकते है कि यह सड़क कैसे कष्ट से बनी है और एक बार कष्ट सहकर सडक बना देने से प्रवास किस प्रकार सुखदायी हुआ है। जिस प्रकार मुसाफिरी की सड़क सहयोग और कष्ट-सहन द्वारा बनती है उसी प्रकार सघ की सड़क भी सहयोग और कष्ट-सहन द्वारा ही बन सकती है। किसी से धन की, किसी से विचारो की और किसी से शारीरिक परिश्रम की सहायता प्राप्त हो, तभी सघ की सड़क बन सकती है और छोटे-बडे सभी के लिए सुखदायिनी हो सकती है।

सघ की सड़क बनाने और उसके लिए सहयोग प्राप्त करने के वास्ते ऐक्य-बल की आवश्यकता है। सड़क बनाते यदि नदी आ जावे और नदी के किनारे अप्रयत्नशील बनकर बैठ जावे तो नदी के दूसरे किनारे कदापि नही जा सकते। वहा ऐक्यबल से पुल बाधना ही पडता है, तभी पार जा सकते है। इसी प्रकार सध की सड़क को बनाते समय, नदी की तरह कोई बात आ जावे तो उसे भी ऐक्य-

बल से पुल बनाकर पार करना चाहिए। आगे, फिर कोई न समझने वाला व्यक्ति रूपी पहाड मिला तो उस समय अपना कर्त्तव्य क्या होगा ? क्या उस पहाड को देखकर चुप हो जाना चाहिए ? रेल की सड़क बनाते समय यदि कोई छोटा पहाड़ आ जाता है। तब तो चक्कर देकर भी सड़क निकाल लेते हैं। लेकिन यदि कोई बडा पहाड़ होता है और चक्कर खाकर भी सड़क नही बना सकते तो सुरग लगाकर आवश्यक मार्ग निकालना पडता है। यदि उस पहाड़ पर दया करके बैठ जावें तो सड़क नही बना सकते। इसी प्रकार सघ की सड़क बनाते समय पहाड की तरह कोई न समझने वाला व्यक्ति मिले, परन्तु वह हो छोटे पहाड की तरह, तब तो चक्कर खाकर भी सडक निकाल लेनी चाहिए। लेकिन यदि विरोध बड़े पहाड के समान हो और चक्कर लगाने पर भी मार्ग न निकल सकता हो तो सुरग लगाकर मार्ग निकालने की तरह, अपने को जितना चाहिए उतना मार्ग उस विरोध-रूपी पहाड़ मे से निकाल लेना चाहिए। ऐसा करना ही अपना कर्त्तव्य हो सकता है।

रेल की सडक तैयार करने मे सबसे पहले मिट्टी डालकर कच्ची सड़क बनाई जाती है। सघ की सडक बनाने के लिए अपन अभी इसी प्रकार की कच्ची सड़क बनाने मे लगे हुए हैं। रेल की सड़क बनाने मे पहले कच्ची सडक मिट्टी डालकर बनाई जाती है और फिर ककर डालकर उसे मजबूत किया गया जाता है। जब ककर डालने से सडक मजबूत हो जाती है तब उस पर पाटे डाले जाते हैं। इस प्रकार जब सडक ऐसी मजबूत हो जाती है कि उस पर गाड़ी धम-धम करके चले, तब भी रेल के पाटे मिट्टी मे न घुसे, तभी गाडी चल सकती है। इसी प्रकार संघ के नेता भी ऐसे दृढ़ हों कि सघ की गाड़ी उन पर कैसे जोर से दौड़े तब भी वे धंसे नही, तभी संघ की गाडी चल सकती है। सघ की गाड़ी चलने के लिए मुनि रेल के पाटे के समान है। सघ के नेता पाटों के नीचे लगी रहने वाली लकडी के समान है। इन दोनो की मजबूती पर ही सघ की गाड़ी का चलना निर्भर है।

कभी सडक भी बन गई और ट्रेन भी चल गई, लेकिन यदि सामने से दूसरी ट्रेन आ जावे, तो दोनो ट्रेने आपस में लड जाएगी, जिससे धन-जन की हानि भी सम्भव है। इस हानि से बचने के लिए चौकीदार की तरह स्टेशन मास्टर रखने पडते है। इसी प्रकार संघ की गाडी चलने के लिए सडक बन गई, फिर भी यदि विवेक से काम न लिया जावे तो काम बिगड़ जावेगा। जिस प्रकार स्टेशन-मास्टर गाडी को मार्ग बताता है उसी प्रकार अपनी गाड़ी को मार्ग बताने वाला भी रखना होगा। जहाज जब समुद्र में चक्कर लगाता है तब उसे बत्ती बताई जाती है। यद्यपि यह बत्ती जहाज को शक्ति नहीं देती, फिर भी मार्ग अवश्य बताती है। इसी प्रकार सघ की गाड़ी को मार्ग बताने वाले की भी आवश्यकता है।

सडक बन गई और गाड़ी भी चलने लगी। लेकिन यदि गाडी मे एजिन जोड़कर उससे चलने के लिए कहा जावे तो एजिन चलेगा ? बैल तो मारने से थोड़ा बहुत चल भी सकते है, परन्तु एजिन न चलेगा। एजिन तो यही कहेगा कि मुझे खाने को चाहिए। खाने को भी थोडे कोयले चाहिए। इसी प्रकार सघ की गाड़ी को खीचने वाला एजिन यह काफ्रेस है। यदि आप भी काफ्रेस को संघ की गाड़ी खींचने वाला एजिन समझते है तो इसे खाने को दीजिए। इसे भी बहुत थोड़ा खाने को चाहिए। यदि आप अपने खर्चे से बचा हुआ थोडा भी चन्दा रूपी कोयला इस काफ्रेस रूपी एजिन को न दे सकें तो यह कैसे चल सकेगा ? यह काफ्रेस किसी एक की ही संस्था नही है यह तो सभी की सस्था है।

एजिन को कोयले भी दे दिए और गाडी चल भी गई। चलने के पश्चात् अपने आप तभी रुकेगी जब या तो एजिन मे कोयले न रहे या गाडी पाटे से उतर जावे। यदि कोयले न मिलने से गाडी रुकी तो गाडी के लिए लगा हुआ पहले का सब पैसा व्यर्थ जाने देना धन्यवाद दिलाने वाली वात होगी या धिक्कार दिलाने वाली बात होगी, इसे आप ही विचारे।

कोयले मिलने के बाद यदि गाडी यह कहे कि मै दिल्ली नही जाऊगी। आगरा जाऊगी, तो गाडी से यही कहा जाएगा कि तेरा काम चलना है। चलाना तो ड्राइवर का काम है। ड्राइवर जहा ले जाना उचित समझेगा, वही ले जावेगा। ड्राइवर गाडी को वही ले जावेगा, जहा ले जाने के लिए प्रबन्धक उसे आज्ञा देंगे। इसी प्रकार सघ की गाडी का ड्राइवर प्रेसीडेण्ट है। परन्तु प्रेसीडेण्ट रूपी ड्राइवर गाडी को वहीं ले जावेगा, जहां ले जाने के लिए उसे प्रबन्ध कमिटी आज्ञा देगी। अर्थात् प्रेसीडेट काफ्रेस को चलाने वाला है फिर वह उसे उसी तरह चलावेगा जिस तरह चलाने के लिए प्रबन्ध-कमिटी प्रेसीडेट को आज्ञा देगी। प्रबन्ध-कमिटी की आज्ञा होने पर भी गाड़ी को चलाने मे ड्राइवर को सावधानी से काम लेना होगा। जैसे किसी गाडी को ऊपर चढाने के लिए प्रबन्ध-कमिटी की आज्ञा है। ड्राइवर ने गाडी चलाई और वह ऊपर चढने लगी। निश्चित स्थान केवल एक ही मील दूर रहा कि गाडी थक गई और फक-फक करने लगी। यदि उस समय ड्राइवर होशियार हो, तब तो वह गाडी को नीचे न गिरने देगा। अन्यथा गाड़ी ऊपर न जावेगी और नीचे गिर जाएगी।

गाड़ी के लिए होशियार ड्राइवर भी मिल गया लेकिन गाडी तभी सकुशल यथास्थान पहुचती है, जब डिब्बे मजबूत साकल से आपस मे जुड़े रहते है। यदि किसी चढ़ाई को पार करते समय जोडने वाली साकल टूट जावे तो आधे डिब्बे ऊपर पहुच जावेगे और आधे नीचे गिर जावेंगे। गाड़ी के पीछे गार्ड रहता है। गाड़ी के अगले ओर की जिम्मेदारी ड्राइवर पर होती है और पिछले ओर की जिम्मेदारी गार्ड की होती है। जिन डिब्बों की जजीर टूट गई है, उनको यदि गार्ड होशियार हुआ तब तो रोक लेगा, अन्यथा वे डिब्बे नीचे आते हुए उलट जावेगे। इसलिए चाहे छोटी गाड़ी भी हो, परन्तु उसमे लगे हुए डिब्बे को जोड़ने वाली जंजीर मजबूत होनी चाहिए।

गाड़ी जब चलती है तब उसमे बैठे हुए मुसाफिर सोते या खेलते रहते है, परन्तु ड्राइवर और गार्ड जागते रहते है। ड्राइवर और गार्ड के भरोसे पर ही गाड़ी के मुसाफिर निश्चित रहते है। परन्तु इन दोनों के भरोसे तभी निश्चिन्त रह सकते हैं जब सारा प्रबन्ध ठीक हो। इसी प्रकार आप इस कांफ्रेस की गाड़ी में प्रेसीडेंट के भरोसे पर निश्चिन्त होना चाहते है, तो पहले सब प्रबन्ध कर लीजिए। सब प्रबन्ध ठीक कर देने के पश्चात् ही आप प्रेसीडेट के भरोसे पर निश्चिन्त हो सकते है। सम्वत् १९५३-५८ मे रेलगाड़ी के एजिन छोटे-छोटे थे। आज के-से राक्षसी एजिन न थे। इस कारण गाड़ी कभी-कभी चलती हुई रुक भी जाती थी। ऐसे समय मे गाडी मे बैठे हुए मुसाफिर गाडी से उतरकर उसे धकेलते थे। ड्राइवर या गार्ड से यह नही कहते थे कि तुमने गाडी रोक दी या खराब कर दी। अपनी काफ्रेस भी अभी छोटे एजिन के रूप मे ही है। इस काफ्रेस की गाडी को धकेलने के लिए कभी-कभी आपको अपना स्थान छोड़कर उतरना भी पडेगा। यदि इस तकलीफ से बचना हो तो प्रबन्ध और राक्षसी एजिन की जरूरत है। राक्षसी एजिन एव कोयले आदि का प्रबन्ध तथा चौकीदार आदि की व्यवस्था करने के पश्चात् आप काफ्रेस की गाड़ी मे प्रेसीडेट के भरोसे पर निश्चित रह सकते है।

अब मैं इस बात पर प्रकाश डालता हू कि इस स्थिति मे काफ्रेस की आवश्यकता क्या है। गाड़ी आदि सब ठीक होने पर भी बिना पैसे दिए क्या आप मुसाफिरी कर सकते है ? कदाचित आप यह कहे कि गाडी के बनाने मे हमने सहायता दी है, यानी गाड़ी हमारी बनाई हुई है, तब भी आपको यही उत्तर मिलेगा कि आपको गाडी का किराया देना पडेगा। क्योंकि गाड़ी सभी लोगों ने मिलकर बनाई है और सभी लोग बिना किराया दिए मुसाफिरी करने लगें तो काम कैसे चल सकता है ? इसी प्रकार इस काफ्रेस की ट्रेन के लिए भी समझिए। काफ्रेस को यदि प्रति कुटुम्ब प्रति दिवस एक ही पाई दी जावे तब भी एक वर्ष मे डेढ़-दो लाख रुपया होता है। यदि सब लोग एक पाई रोज किराया देने लगें तो काफ्रेस का कितना काम हो!

मै यहा की शिक्षण सस्था, विद्या-भवन में गया था। वहा मैंने लडकों से गणित का यह हिसाब पूछा कि एक और एक कितने होते हैं। यही प्रश्न मैं यहा भी करता हू। साधारण आदमी तो एक और एक दो ही कहेगा लेकिन बुद्धिमान होगा वह एक और एक के बीच सम्बन्ध यानी चिह्न पर ध्यान देगा।

एक और एक के बीच में यदि बाकी का निशान होगा तो परिणाम शून्य निकलेगा। यदि जोड़ का चिह्न होगा तो एक और एक दो होगे। यदि एक और एक के बीच में गुणा का चिह्न होगा तो गुणन फल एक आवेगा और यदि भाग का चिह्न होगा तो भागफल भी एक ही आवेगा। इस प्रकार एक और एक के बीच मे किसी प्रकार का भेद रहने पर एक और एक दो से अधिक न होंगे। परन्तु यदि एक और एक के बीच का भेद निकाल दिया जावे तो एक और एक ग्यारह होंगे। यदि तीन एक और बिना भेद-भाव के होगे तो १११ हो जावेंगे तथा बिना भेद के चार एक ११११ होगे। इसी प्रकार यदि भेदरहित बीस एक हों तो कैसी बडी शक्तिशाली सख्या हो जावेगी इसे आप सरलता से समझ सकते हैं। इसलिए मै आप लोगो से यही कहूगा कि आप लोग काफ्रेंस की शक्ति बढ़ाने के लिए बीच में भेद को मिटाना सीखे। अन्यथा एक-एक होने पर भी परिणाम एक, दो या शून्य ही होगा।

घासीलालजी का पृथक्करण

पडित रत्न मुनि श्री घासीलालजी महाराज पूज्यश्री की सम्प्रदाय के प्रमुख साधु थे। पूज्यश्री ने उन्हे अपने हाथों से दीक्षा दी थी और पढ़ा-सिखाकर विद्वान् बनाया था। पूज्यश्री उनकी प्रत्येक दृष्टि से उन्नति चाहते थे। फिर भी सहज ईर्ष्या के कारण वे खिचे-से रहने लगे। कई ऐसे कार्य पूज्यश्री से बिना पूछे करने लगे जिसमे आचार्य की आज्ञा अत्यावश्यक मानी गई है। कुछ बातों मे आज्ञा का उल्लघन भी किया। पूज्यश्री का हृदय जहा करुणापूर्ण था वहा बुद्धि कठोर अनुशासन चाहती थी। घासीलालजी की यह प्रवृत्ति पूज्यश्री को अनुशासन भग के रूप मे मालूम पड़ी। उन्होंने चेतावनी दी किन्तु सन्तोषजनक परिणाम न निकला। अन्त में कार्तिक कृष्णा १ बुधवार ता. ४ अक्टूबर १९३३ को उदपुर में श्रीसघ के सामने आपने नीचे लिखा ऐलान किया।

मेरे शिष्य घासीलालजी तरावलीगढ वाले (जिनका चातुर्मास इस वर्ष सेमल ग्राम में है) ने कई वर्षो से सम्पदाय तथा मेरी आज्ञा के विरुद्ध अनेक प्रकार के कार्य आरम्भ कर दिए थे। तथापि मै उन्हें निभाता ही रहा। लेकिन दो वर्ष से वे चातुर्मास भी मेरी आज्ञा विना करने लगे है और विना आज्ञा ही दीक्षा जैसे बडे-बडे विरुद्ध कार्य भी उन्होने कर डाले है। फिर भी मैने समझा बुझाकर प्रायश्चित-विधि से शुद्ध करने के लिहाज से सम्भोग से पृथक् नहीं किया। मैने बावरा गाव (मारवाड़) से छोटे

गब्बूलालजी और मोहनलालजी इन दोनों सन्तो को लिखित पत्र देकर मेवाड भेजा और घासीलालजी को साधु-सम्मेलन के समय अजमेर आने के लिए सूचना दी। परन्तु घासीलालजी ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया और वे अजमेर नहीं आए। केवल मनोहरलालजी व तपस्वी सुन्दरलालजी, जिनको मैंने कुछ ही समय घासीलालजी के पास रहने की आज्ञा दी थी, नवदीक्षित मांगीलालजी को साथ लेकर साधु-सम्मेलन के मौके पर अजमेर मे मुझसे मिले। इन दोनो सन्तो ने उस पत्र पर हस्ताक्षर भी किए जिस पत्र मे सम्प्रदाय के सन्तो ने मुझे यह लिखकर दिया था कि अजमेर साधु-सम्मेलन मे आप जो कुछ करेगे वह हम सबको स्वीकार होगा।

अजमेर मे पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की दोनो सम्प्रदायो को एक करने के विषय मे पंच सन्तों ने भविष्य विषयक जो फैसला दिया था, उस फैसले को स्वीकार करना या नही इस विषय में मैंने मुझ सहित उपस्थित ४२ सन्तों से पृथक्-पृथक् राय ली तो सबने यही सम्मति दी कि फैसला स्वीकार कर लेना चाहिए। उस समय मनोहरलालजी एव तपस्वी सुन्दरलालजी ने भी सब सतों के समान फैसला स्वीकार कर लेने की राय दी थी। तब मैने पचो का दिया हुआ भविष्य विषयक फैसला स्वीकार कर लिया और पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के साथ ही फैसले की स्वीकृति के हस्ताक्षर किए तथा परस्पर सम्भोग किया। पश्चात् मेवाड़ के भूतपूर्व दीवान कोठारी जी सा. बलवन्तसिंहजी के द्वारा मेवाड में मुझसे मिलने का वायदा करके मनोहरलालजी और सुन्दरलालजी विहार कर गए। लेकिन मैं जब मेवाड़ में पहुंचा तो सुन्दरलालजी मेरे पास नही आए। वे देलवाड़ा ही रह गए। घासीलालजी मनोहरलालजी तथा कन्हैयालालजी मुझसे मावली गाव मे मिले।

मावली में उदयपुर के नगर सेठ नन्दलालजी और मेवाड के भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवन्तसिह सरीखे समाज-हितैषी श्रावकों ने और मैने घासीलालजी तथा मनोहरलालजी को सम्प्रदाय के नियमानुसार बर्ताव करने के लिए बहुत समझाया। परन्तु उन्होने सम्मेलन के प्रस्ताव तथा काफ्रेस द्वारा स्वीकृत पंचो के फैसले को भी मानने से इन्कार कर दिया। कई बार पूछने पर भी उन्होने मेरे सामने ऐसी कोई बात नहीं रखी जो विचारणीय हो। बल्कि मैने उनके सामने कई ऐसी बाते रखीं जो न्यायानुसार उन्हे अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिए थी। परन्तु उन्होंने एक भी बात स्वीकार नही की। तब मेरा विचार उसी समय उन्हे सम्प्रदाय एव मेरी आज्ञा से बाहर घोषित करने का था। परन्तु कोठारीजी सा. तथा नगर सेठ साहेब की प्रार्थना से मैने वह विचार कुछ दिन के लिए स्थगित रखा। आखिर घासीलालजी मुझसे चौमासे की आज्ञा मागे बिना ही मावली से चले गए।

मैं उदयपुर आया। उदयपुर से सूरजमलजी तथा मोतीलालजी (मलकापुर वाले) इन दोनों सन्तो को मैंने पत्र देकर सेमल भेजा और घासीलालजी को कहलवाया कि सम्मेलन के नियमानुसार एक स्थान पर पांच सतों से अधिक चातुर्मास न करे। आठ सन्तो में से तपस्वी सुन्दरलालजी, समीरमलजी और किसी तीसरे सन्त को मेरे पास भेज दे। लेकिन उन्होने मेरी आज्ञा की अवहेलना की और सन्तो को ऐसा उत्तर दिया, जिससे वे निराश होकर मेरे पास लौट आए। मैने यह भी सूचना कराई थी कि सम्मेलन के नियमानुसार धोवन-पानी की तपस्या अनशन के नाम से प्रसिद्ध न की जावे। परन्तु उन्होंने इस नियम को भी तोड़ दिया और धोवन-पानी की तपस्या भी प्रसिद्ध कर दी। तपस्या महोत्सव मनाने में उपदेश द्वारा भी रुकावट नहीं डाली इस प्रकार पक्खी के ८, चौमासी के १२ और सवत्सरी के २० लोगस्स

के ध्यान विषय मे साधु-सम्मेलन के ठहराव का पालन नही किया। इससे मुझे यह प्रतीत हुआ कि घासीलालजी ने मावली के पचो का फैसला और साधु-सम्मेलन के ठहरावो को नहीं पालने का जो कहा था उसे कार्य-रूप मे भी परिणत कर दिया। इतना होने पर सेठ वर्द्धमान आदि की प्रार्थना से मैने उनका 'आज बाहर' करने की घोषणा कुछ समय के लिए और स्थगित रखी।

पश्चात् सेमल से सन्देश आने पर उदयपुर के श्रावक मेघराजजी खिवसरा, पन्नालालजी धर्मावत और मोतीलाल हीगड सेमल गए। उन्होने घासीलालजी को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु घासीलालजी ने अपने विचार नही बदले। तत्पश्चात् राय साहेब सेठ मोतीलालजी मुथा, सतारा वाले तथा जौहरी अमृतलाल भाई, बम्बई वाले भी उदयपुर आए और उन्हे समझाने सेमल गए। परन्तु उनके समझाने पर भी वे नहीं समझे और कहा- हमने कमिटी के नाम से कांफ्रेंस के प्रेसीडेंट के पास एक चिट्ठी भिजवा दी है। उन्होने अमृतलाल भाई और मोतीलालजी को उक्त चिट्ठी की नकल भी दी, जिसमें लिखा था कि हमने आयन्दा के लिए पूज्यश्री की आज्ञा मगवाना भी बन्द कर दिया है, इत्यादि। वह नकल लेकर और निराश होकर मोतीलालजी और अमृतलाल भाई उदयपुर मे मुझसे मिले और नकल मुझे दिखाई। उस नकल को देखकर मुझे बहुत खेद हुआ और मेरा कर्त्तव्य हो पड़ा कि अब मैं अविलम्ब उनके लिए 'सम्प्रदाय तथा आज्ञा बाहर' की घोषणा कर दूं। लेकिन उसी समय प्रेसीडेंट हेमचन्द भाई मय डेपुटेशन के उदयपुर आए। मैंने घासीलाल जी सम्बन्धी सारी हकीकत उन्हें सुनाई। कांफ्रेंस के रेजीडेण्ट जनरल सेक्रेटरी सेठ मोतीलाल जी तथा अमृतलाल भाई ने घासीलालजी के पत्र की नकल भी अपने हस्ताक्षरो के साथ प्रेसीडेंट साहेब को दी। इस पर प्रेसीडेट साहेब ने भी मुझे यह सम्मति दी कि आप सम्मेलन के ठहराव के अनसुार उनके साथ बर्ताव कर सकते है। लेकिन रात को उदयपुर के कुछ भाइयों की प्रार्थना पर प्रेसीडेंट साहेब ने मुझसे कहा कि मै अपनी तरफ से एक चिट्ठी सेमल देता हू और घासीलालजी महाराज को समझाने की कोशिश करता हू। अतएव आप आश्विन शु. पूर्णिमा तक उनको 'आज्ञा बाहर' करने की घोषणा न करे।

मैने प्रेसीडेंट की इस प्रार्थना को मान देकर उनकी बात स्वीकार कर ली। प्रेसीडेट साहेब ने एक पत्र सेमल भेजा, वह घासीलालजी को मिल गया। उसके बाद उदयपुर के श्रावक थावरचदजी बाकणा तथा रणजीतसिह हीगड़ ने सेमल जाकर घासीलालजी को समझाने की पूरी कोशिश की। परन्तु उनका प्रयत्न भी निष्फल हुआ। इन दोनो के लौट आने पर उदयपुर से मदनसिह कावड़िया, जोरावरसिहजी भादव्या और मोहनलालजी तलेसरा सेमल गए। किन्तु घासीलालजी को समझाने में वे तीनो भी सफल न हुए। अर्थात् घासीलालजी ने किसी की कोई बात नही मानी।

काफ्रेस के प्रेसीडेट साहेब की दी हुई अवधि (आश्विन शु १५) समाप्त हो चुकी लेकिन घासीलालजी ने मेरी आज्ञा और सम्प्रदाय मे रहने सम्बन्धी कोई बात स्वीकार नही की। इसलिए निरुपाय होकर उदयपुर के श्रीसध की सम्मति प्राप्त करने के पाश्चात् मै श्रीसघ के सामने यह धोषणा करता हू कि-

(१) आज से घासीलालजी मेरी आज्ञा और सम्प्रदाय के बाहर है। इसलिए पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के समस्त सन्त उनसे सम्भोग आदि कोई व्यवहार नही करे। इस सम्प्रदाय के साथ सम्यन्ध रखने वाले सन्त-सतियां भी घासीलालजी से वन्दन सत्कार आदि परिचय नही करें।

(२) घासीलालजी के पास रहे हुए मनोहरलालजी, सुन्दरलालजी, समीरमलजी आदि भी शीघ्र मेरे पास चले आवें। उनके पास रहने की मेरी आज्ञा नहीं है। मेरी आज्ञा को न मानकर उन्हीं के पास रहने वाले मेरी आज्ञा के बाहर समझे जावेगे।

(३) चतुर्विध श्रीसंघ का भी कर्त्तव्य है कि जैन प्रकाश ता. ७-५-३३ के पृष्ठ ४५८ मे प्रकाशित ठहराव नं. ४ 'साधु सम्मेलन द्वारा निर्णीत नियमो के उपयोगी सार की कलम न. २५ के अनुसार इनके साथ बर्ताव करेंगे।

पुनश्चः- यदि घासीलालजी अपने आज पर्यन्त के कृत्यो की प्रायश्चित विधि से शुद्धि तथा सम्प्रदाय आज्ञा के आज तक के नियमों को पालना स्वीकार करके सम्प्रदाय में शामिल होना चाहे, तो नियम पूर्वक सम्प्रदाय में शामिल करने को मै हर समय तैयार हू?

उदयपुर मेवाड़

ता. ४-१०-१९३३

कार्तिक कृ १. स. १९९०

पूज्यश्री की घोषणा के अनुसार काफ्रेंस के प्रेसीडेंट की ओर से नीचे लिखी सूचना प्रकाशित हुई-

आवश्यक सूचना

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज साहेब ने अपने शिष्य घासीलालजी महाराज को अपनी सम्प्रदाय और आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने के कारण, अपनी आज्ञा के बिना जहा चाहे चातुर्मास करने से, अपनी आज्ञा के बिना दीक्षा देने से श्री साधु-सम्मेलन के नियम-जैसे-धोवन पानी की तपस्या को अनशन के नाम से प्रसिद्ध न करना, पक्खी, चौमासी और सवत्सरी के दिवस ठहराई हुई लोगस्स की सख्या, पाच साधु से अधिक एक ही जगह चातुर्मास न करना- आदि के भग करने से श्री साधु-सम्मेलन के प्रस्ताव न. ४ के अनुसार (देखो जैन प्रकाश ता. ७-५-३३ पृ. ४५८) हुक्मीचन्दजी म. साहेब की सम्प्रदाय और आज्ञा के बाहर आसोज बदी (मारवाड़ी कार्तिक बदी १) से कर दिया है। ऐसी खबर श्री साधुमार्गी जैन पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम कि जिसके प्रेसीडेंट श्री वर्द्धमान पीतलियाजी साहेब हैं, उनकी तरफ से तथा उदयपुर श्रीसघ की तरफ से लिखकर भेजा गया है। जिसके ऊपर से यह खबर हिन्द के स्थानकवासी जैन के श्री चतुर्विध-सघ को दी जाती है, जिससे कि साधु-सम्मेलन और काफ्रेंस के धाराधोरण के अनुसार व्यवहार किया जा सके।

हेमचन्द रामजी भाई मेहता

प्रमुख, श्री श्वे. स्था. जैन काफ्रेस

तेरहपंथी भाइयों का विफल प्रयास

साधु-जीवन का मुख्यतम उद्देश्य अभ्युदय साधन करना है। जगत् के जजालो का त्याग कर व्यक्ति इस लिए साधु बनता है कि वह सभी प्रकार के संभोगों से विमुक्त होकर आत्मा की चरम उन्नति

कर सके। अतएव साधु-जीवन अगीकार करने वाला अगर दुनिया से अपनी पीठ फेर ले और परकीय श्रेयस् अश्रेयस् की चिन्ता छोड कर, एकाग्र होकर अपनी ही साधना में लीन हो जाय तो वह अपना अधिक हित सम्पादन कर सकता है। इससे उसकी साधना में किसी प्रकार की अपूर्णता नही आ सकती, वरन् पूर्णता ही आएगी। फिर भी साधु अपनी आध्यात्मिक आराधना के साथ जगत् के जीवो का कल्याण करने मे भी योग देते है। इसका क्या कारण है ?

हमारी समझ में इसका प्रधान कारण यह है कि स्वभाव से परम दयालु मुनि जगत् के मूढ़ जीवों को जब अहित मार्ग मे जाते देखते है तो उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है और वे उन्हें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लाने का समुचित प्रयत्न करते हैं। शास्त्र में साधु को 'सव्वभूअप्पभूअस्स' विशेषण दिया गया है। यह सर्वभूत-आत्मभूतभाव अर्थात् समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान समझने का भाव सतों में काफी उग्र हो जाता है। गीता के शब्दों मे इसे 'आत्मौपम्यबुद्धि' कह सकते हैं। इस आत्मौपम्य बुद्धि के कारण साधु दूसरे जीवों के कल्याण साधन में प्रवृत्त होते है।

इस सहज दयालुता तथा आत्मौपम्य के कारण ही पूज्यश्री ने थली प्रान्त मे विहार किया था और धर्म मानकर घोर अधर्म मे फसे हुए तेरापथी भाइयों के उद्धार की चेष्टा की थी। मरु-भूमि का कष्टकर विहार तथा सर्दी-गर्मी, आहार-पानी आदि की असुविधाए सहने का और कोई कारण नहीं था। अपने ध्यान मौन आदि मे किचित् अन्तराय सहन करके भी आप इन भाइयों के उद्धार के लिए तैयार हुए थे। मगर अधिकाश तेरापथियो ने पूज्यश्री के इस परम पुनीत और प्रशस्त प्रयास का मूल्य नही समझा। उन्हे उचित तो यह था कि वे इस अवसर से लाभ उठाते। सत्य को सर्वोपरि समझकर, अपने आग्रह को थोड़ी देर के लिए भुलाकर अपने विवेक को आगे करते और पूज्यश्री के कथन को सुन समझकर शास्त्रो से उसका मिलान करते। मगर उन्होने विवेक का मार्ग न अपनाकर दूसरा ही मार्ग अख्तियार किया। उन्होने सत्य को गौण और कदाग्रह को प्रधान स्थान दिया उसका किचित वर्णन पहले किया जा चुका है।

पूज्यश्री जब थली से विहार कर उदयपुर पधार गये तो तेरापथी भाइयो ने एक और स्तुत्य (!) करतूत की।

पूज्यश्री ने तेरापथी सम्प्रदाय की आलोचला करने के लिए 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पा विचार' नामक दो ग्रथों का निर्माण किया था। इनमे तेरहपथियो के मान्य-ग्रन्थ 'भ्रमविध्वसन' का और उनकी अनुकम्पा की ढालो का खण्डन करके दया, दान आदि को एकान्त पाप मानने का विरोध किया था। इन ग्रंथों में शास्त्रीय विचार करने के अतिरिक्त और कोई आक्षेपजनक बात नही है। लेकिन तेरहपथी सम्प्रदाय के अनुयायी इन ग्रंथों से ऐसे कुछ घबराये जैसे आजकल लोग अणुबम से घबराते है। उन्होने वीकानेर राज्य की ओर से दोनो ग्रथ जब्त कराने के चक्र चलाने शुरू किये। इसके लिए उन्होने एडी से चोटी तक पसीना बहाया, मगर उनकी तकदीर में निराशा ही वदी थी और अंत में वही उनके पल्ले पडी। बीकानेर रियासत के तत्कालीन स्थानापन्न प्रधानमत्री ठाकुर शादूलसिहजी ने दोनो पक्षो की बात सुनकर जो न्यायचुक्त निर्णय दिया वह इस प्रकार है:-

'नकल हुक्म दफ्तर साहेव प्राइम मिनिस्टर ता. ५-७-३३ मुसीव नकल नं. ६२ ता. मुरजुआ ५-९-३३ फैसला।'

५-९-३३ मिसल मुकदमा जरिए रोवकार महकमा कौंसिल ता. २०-३-३३ दरवारे इसके कि एक किताब जिसका नाम 'चित्रमय अनुकम्पाविचार' है, वाइस टोला सम्प्रदाय की तरफ से छपाई गई है व तेरहपंथी समाज के चित्त को दुखने वाली जाहिर की गई है। सेठ फूसराज वगैरह से दर्याफ्त होवे कि यह किताब जब्त क्यो न की जावे ? और किताव 'सद्धर्ममण्डन' नामकी भी जिसके लिए ता. २०-३-३३ को भी अलग दर्याफ्त किया है, क्यों नहीं जब्त की जावे ? सीगा मुतफर्रकात माल।' मिन जुमले दूसरी किताबो के कि जिनका काबिल ऐतराज पाए जाने पर बीकानेर की सीमा के अन्दर दाखिल होना मना किया गया है, दो किताबे जिनका नाम 'चित्रमय अनुकम्पाविचार' और 'सद्धर्म मण्डनम्' है, तेरहपथियो ने पेश करके जाहिर किया है कि इनको भी जब्त किया जाना चाहिए। मगर इनकी निस्वत पूरी तहकीकात किए वगैर कोई हुक्म देना मुनासिब ख्याल न किया जाकर बाईस टोला सम्प्रदाय के मुअज्ञिज शख्सों मे से सेठ फूसराज दूगड साकिन सरदार शहर से, सेठ भैरोदान जी सेठी बीकानेर, सेठ मूलचन्दजी कोठारी साकिन चूरू और सेठ कनीराम बांठिया साकिन भीनासर से दरियाफ्त किया गया कि बतलाया जावे कि इन किताबों को क्यों न जब्त किया जावे। चुनाचे सेठ फूसराज वगैरह ने हाजिर होकर अपने जवाब के साथ-साथ किताबे 'भ्रमविध्वसनम्' और 'शिशुहित शिक्षा द्वितीय भाग' नाम की पेश की जो तेरहपथियो की ओर से छपाई हुई और जाहिर किया कि यह इन तेरहपथियो की बनाई हुई किताबो के जवाब मे हमारे पूज्यश्री महाराज ने इसलिए बनाई हैं कि दूसरी सम्प्रदाय की तरफ से जैनधर्म की मान्यता के प्रति जो झूठे आक्षेप भ्रम मे पडकर कर रहे है न करे। और 'शिशु-हितशिक्षा' और 'भ्रमविध्वसनम्' नामक पुस्तको को पढकर अपने धर्म के सम्बन्ध मे कोई भ्रम न हो जावे। इससे केवल हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध नही है। बल्कि कुल स्थानकवासी सम्प्रदाय से है। साथ ही इस जवाब के फूसराज वगैरह ने एक लिस्ट उन अपमानजनक शब्दों की तैयार करके पेश की है कि जो इन तेरहपथियो की बनाई हुई किताबों मे दर्ज है। ऐसा होते हुए भी एक सम्प्रदाय की पुस्तको का जब्त करना और दूसरो का प्रचार करना गवर्नमेण्ट बीकानेर के सहन करने योग्य नहीं है और न ही इनमें किसी के मान-हानि कारक व अश्लील शब्दो का प्रयोग किया गया है। हमने इन दोनो किताबों को देखा तो जाहिर है कि ये किताबें जिनको तेरहपथी जब्त करने की चेष्टा मे है उनकी 'भ्रमविध्वसनम्' और 'शिशुहित शिक्षा द्वितीय भाग' नामक किताबों के जवाब मे बाईस टोला सम्प्रदाय वालो की तरफ से छपाई गई है कि जिसको गवर्नमेण्ट बीकानेर के नजदीक जब्त किया जाना मुनासिब नही है। लिहाजा कागजात हाजा दाखिल दफ्तर होवे। ता. ५-९-३३

द. ठाकुर शादूलसिहजी

एक्टिग प्राइममिनिस्टर ६-९-३३

चातुर्मास के पश्चात्

उदयपुर का चौमासा समाप्त होने पर पूज्यश्री देलवाडा, नाथद्वारा, मोटागाव आदि स्थानो मे धर्मदेशना करते हुए निम्बाहेड़ा पधारे। यहा बाहर से बहुत-से दर्शनार्थी आपके दर्शन और आपके उपदेश से लाभ उठाने के लिए उपस्थित हो गये थे। अनेक राज्यकर्मचारी भी पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर आनन्दित होते थे।

अजमेर के साधु-सम्मेलन के अवसर पर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दोनों सम्प्रदायो मे एकता स्थापित हो गई थी। इस संबंध में पच मुनिराजो ने जो निर्णय दिया था उसके अनुसार पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ही दोनों वर्गो के आचार्य हो चुके थे। मगर सघ का दुर्दैव ही समझिए कि अनेक उलझनों के बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी नही रही और निम्बाहेडा में उस एकता की इतिश्री हो गई। एकता-भग के कारणों मे यहा उतरने की आवश्यकता नही है क्योकि तत्कालीन पत्रो मे सारा विवरण प्रकाशित हो चुका है।

निम्बाहेड़ा से विहार करके अनेक स्थानो को पवित्र करते हुए पूज्यश्री २३ ठाणा से जावद पधारे। भावी युवाचार्य पण्डित-प्रवर मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज भी साथ थे। यहा पूज्यश्री के व्याख्यानों में जैन, जैनेतर और राजकीय कर्मचारियों की बडी भीड रहती थी। पूज्यश्री मृत्युभोज की प्रथा के विरुद्ध समय-समय पर उपदेश दिया करते थे। मृत्युभोज करने से मृतात्मा को शांति प्राप्त होती है, यह धारणा तो मिथ्यात्त्वपूर्ण है ही; लौकिक दृष्टि से भी मृत्युभोज करने की बुराइयां असह्य हैं। मृत्युभोज के सम्बन्ध में पूज्यश्री के निम्नलिखित वाक्य माननीय हैं-

'मोसर (मृत्युभोज) का भोजन महाराक्षसी भोजन है। वह गरीबो को अधिक गरीब बनाने वाला और धनवानों को दयाहीन बनाने वाला है।'

'इस कुरीति ने अनेक गरीबों का सत्यानाश कर डाला है। धनवान् लोगों के पास पैसे की कमी नही। वे इस प्रसंग पर पैसा लुटाते है और गरीबो पर ताने कसते हैं। बेचारे गरीब जाति मे अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए धनवानो का अनुकरण करते है। जाति मे धनवानों की प्रधानता होती है और प्रतिष्ठा की कसौटी इस प्रकार की बना रखी है। पर याद रखना चाहिए, सच्चा जाति-हितैषी वह है जो अपने व्यवहार से गरीबों की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, जो अपने गरीब जाति-भाइयों की सहूलियत देखकर स्वय बर्ताव करता है, जो उनकी प्रतिष्ठा में ही अपनी प्रतिष्ठा मानता है। सच्चा जाति-हितैषी अपने बड़प्पन की रक्षा गरीबो के बडप्पन की रक्षा करने में ही मानता है।'

'मित्रो! जरा विचार करो-क्या एक-दो दिन तक भोज मे जीमने से आप मोटे-ताजे हो जाएगे ? अगर ऐसा नही है तो 'मोसर' में खर्च होने वाला धन किसी धर्मकार्य मे, जाति-भाइयों की भलाई मे, खर्च करना क्या उचित नही है ? आपके अनेक जाति भाई वृथा भटकते फिरते है। उन्हे कही से कोई सहायता नही मिलती। अगर उनकी सहायता मे आप कुछ व्यय करे तो क्या आपका धन व्यर्थ चला जायगा ? यदि मोसर करने से नाम होता है तो क्या इससे नाम न होगा ?'

'मित्रो! ससार की विषम स्थिति की ओर दृष्टि डालो। जिसके घर आप मोसर जीमने जाते है उसके घर की, बाल-बच्चो की और उसके घर की महिलाओ की स्थिति देखो तो मालूम होगा कि मोसर जीम कर कैसा राक्षसी कृत्य किया जा रहा है।'

आपके इस प्रकार के उपदेश से बहुत-से श्रोताओ पर अच्छा प्रभाव पडा। कइयो ने मोसर करना त्याग दिया और कइयो ने मोसर मे जीमने का त्याग कर दिया।

पूज्यश्री के प्रभाव से यहा की दो पार्टिया मिलकर एक हो गई। अजैनो मे भी अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

जावद से विहार करके बड़ी सादडी आदि अनेक स्थानो मे उपदेश की लोकोत्तर गगा बहाते हुए पूज्यश्री ता २६-१-३४ को कानौड पधारे। आपके पदार्पण के उपलक्ष्य मे कानौड के राजवी श्रीकेसरीसिहजी ने ढिढोरा पिटवाकर अगता पलवाया। यहा आपके चार व्याख्यान हुए। दो व्याख्यानो मे रावजी साहब पधारे और पूज्यश्री के मार्मिक व्याख्यानो से अत्यन्त प्रभावित हुए। ठाकुर अमरसिहजी, ठाकुर मानसिहजी, ठाकुर नाहरसिहजी और ठाकुर उम्मेदसिहजी ने हिंसा करने का आशिक त्याग किया। ता. २७ का विहार करके आप भिंडर पधारे। यहा से डूगरा होकर आपने जावद पधारने की इच्छा प्रकट की।

युवाचार्य पद-महोत्सव

अजमेर-सम्मेलन मे पण्डितप्रवर मुनि-श्रीगणेशीलालजी महाराज को फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा से पहले-पहल युवाचार्य-पदवी प्रदान करने का निश्चय हुआ था। पूज्यश्री सम्मेलन के निर्णय के अनुसार किसी योग्य स्थान पर और प्रशस्त मुहूर्त्त मे यह कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस समारोह के लिए जावद-श्रीसघ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना थी। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के लिए जावद भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्यश्री शिवलालजी महाराज आदि अनेक महापुरुषों का युवाचार्य-पद-महोत्सव तथा आचार्य-पद-महोत्सव बनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाले जावद नगर के गौरव को फिर ताजा करने के लिए पूज्यश्री ने यहा के श्रीसघ की प्रार्थना स्वीकार कर ली। फाल्गुन शुक्ला तृतीया पदवी-प्रदान के लिए शुभ मुहूर्त्त निश्चित किया गया।

जावद के उत्साही श्रीसघ ने भारत के सभी प्रान्तो मे आमत्रणपत्रिकाए भेजीं। सभी सन्तो और सतियों को सूचना दी गई। अपने भावी धर्म-नौका के खिवैया का युवाचार्य-पद-महोत्सव देखने और अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिए चारो तीर्थ जावद में जमा होने लगे। फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के दिन पूज्यश्री युवाचार्यजी आदि सतों के साथ जावद पधारे। सहस्रो श्रावकों और श्राविकाओ ने अपूर्व उमग और उत्साह के साथ सामने जाकर पूज्यश्री तथा युवाचार्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। दर्शन-लाभ करके अपने नेत्र सार्थक किये। महाप्रभु महावीर और जैनधर्म के जयघोष के साथ जावद नगर में प्रवेश हुआ।

उसी समय श्रीमोताजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीसुन्दर कुवरजी ठा. ४ का शुभागमन हुआ और आप भी प्रवेश के समय सम्मिलित हो गई। मुनिश्री चादमलजी महाराज (बड़े), मुनिश्री हरसचन्दजी महाराज आदि ठा. ५, श्री रगूजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीनाथाजी म. ठाणा ७ और श्रीमोताजी म. के सम्प्रदाय की महासती श्रीभूरांजी ठा. ३ से पहले ही पधार चुके थे। यह सब सत और सतियाजी भी पूज्यश्री के स्वागत मे सम्मिलित थे। इस प्रकार चारों तीर्थो के विशाल जनसमूह के साथ पूज्यश्री ने जावद में प्रवेश किया। पूज्यश्री ज्ञानमलजी चौधरी के दरीखाने में ठहरने वाले थे। आप सीधे वही पधारे। वहा आपका छोटा-सा भाषण हुआ। आपने फरमाया-

मै डेढ़ महीना पहले जावद आया था और आज फिर यहा आया हू। पहले आया तब हेमन्त ऋतु थी और अब बसन्त का आरम्भ है। हेमन्त ऋतु अपने प्रखर शीत से वृक्षो के पत्तो जला देती है।

बसन्त ऋतु आकर उन उजडे हुए वृक्षों को नवीन पल्लव प्रदान करती और द्विगुणित शोभायुक्त बना देती है। बसन्त के आगमन से जैसे वृक्षों मे नये पल्लव और अकुर उत्पन्न होते है, उसी प्रकार आप लोगो मे भी नया उत्साह उत्पन्न होगा और आप जैन शासन को उन्नत बनाने में प्रयत्नशील होंगे, ऐसा विश्वास है।

पूज्यश्री का यह सदेश और मंगल-वचन सुनकर जनता वहा से विदा हुई। कुछ देर के पश्चात् प्रवर्त्तिनी महासती श्रीआनन्दकुंवरजी महाराज ठा. ९ से पधार गई। प्रवर्त्तिनी श्रीकेसरकुवरजी महाराज भी ठा. ३ से पधार गई।

इस तरह सतो और सतियों के आगमन का ताता लगा ही रहा। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को सन्तो की सख्या ३० और सतियो की संख्या ३५ हो गई। दर्शनार्थी श्रावक भी करीब ७००० की संख्या मे एकत्र हुए। जावद श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं था। बड़ी स्फूर्ति और तत्परता के साथ आगत अतिथियो का सत्कार किया गया।

उस समय नीचे लिखे सन्त विराजमान थे।

१. जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज।

२. मुनिश्री चांदमलजी महाराज।

३. मुनिश्री हर्षचन्दजी महाराज।

४. मुनिश्री मागीलालजी महाराज।

५. मुनिश्री धूलचन्दजी महाराज।

६. मुनिश्री शान्तिलालजी महाराज।

७. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज।

८. मुनिश्री सरदारमलजी महाराज।

९. मुनिश्री हजारीमलजी महाराज।

१०. मुनिश्री पन्नालालजी महाराज।

११. मुनिश्री शोभालालजी महाराज।

१२. मुनिश्री श्रीचन्दजी महाराज।

१३. मुनिश्री मोतीलालजी महाराज।

१४. मुनिश्री वक्तावरमलजी महाराज।

१५. मुनिश्री गब्बूलालजी महाराज।

१६. मुनिश्री कपूरचन्दजी महाराज।

१७. मुनिश्री हेमराजजी महाराज।

१८. मुनिश्री हर्षचन्दजी महराज।

१९. मुनिश्री हमीरलालजी महाराज।

२०. मुनिश्री नन्दलालजी महाराज।

२१. मुनिश्री भूरालालजी महाराज।

२२. मुनिश्री जीवनमलजी महाराज।

२३. मुनिश्री जेठमलजी महाराज।

२४. मुनिश्री चांदमलजी महाराज।

२५. मुनिश्री सुभालचन्दजी महाराज।

२६. मुनिश्री घासीलालजी महाराज।

२७. मुनिश्री जवरीमलजी महाराज।

२८. मुनिश्री चतुरसिहजी महाराज।

२९. मुनिश्री अम्बालालजी महाराज।

३०. मुनिश्री मोतीलालजी महाराज।

श्रीरंगूजी महाराज की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्त्तिनी श्री आनन्दकुवरजी महाराज ठा. २५।

श्री मोतांजी महाराज की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्त्तिनी श्री केसरकुवरजी ठाना. १०। कुल सन्त-सती ६५ उपस्थित थे।

युवाचार्य का संक्षिप्त परिचय

उदयपुर मे ओसवाल कुलभूषण श्रीसाहबलालजी मारू रहते थे। आप मेवाड रियासत के प्रामाणिक कर्मचारियों में से एक थे। फौजदारी महकमे में खजाची थे। आपकी धर्मशीला धर्म पत्नी श्रीमती इन्द्राबाई की कोख से श्रावण कृष्णा ३, शनिवार सवत् १९४६ के दिन एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। जैसे श्रावण मास पृथ्वी को हरा भरा, सम्पन्न और शोभामय बना देता है उसी प्रकार उस पुत्र ने अपने माता-पिता और पारिवारिक जनों के हृदय को हरा-भरा, आनन्दमय और उल्लास से परिपूर्ण कर दिया। ग्रीष्म के ताप से तपी पृथ्वी श्रावण की वर्षा से शीतल हो जाती है उसी प्रकार पुत्ररत्न की प्राप्ति से माता-पिता की चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण होने के कारण उनका हृदय शीतल हो गया। यही पुत्र-रत्न आज साधु-रत्न है, जिसे युवाचार्य-पद पर प्रतिष्ठित करने की जावद में तैयारी हो रही है।

कौन जाने यह एक अकस्मात् था या विद्वान् ज्योतिषी की दीर्घ दृष्टि का परिणाम था कि बालक का नाम 'गणेशीलाल' रखा गया! कुछ भी हो मगर 'गणेशीलाल' नाम सार्थक सिद्ध हुआ। उस समय बालक सिर्फ नामनिक्षेप से ही 'गणेश' था, अब युवाचार्य बन कर-साधुओ के गणसमूह का ईश बनकर भावनिक्षेप से भी 'गणेश' बना।

श्रीगणेशीलालजी ने अपने बचपन में हिन्दी और अगरेजी भाषा के साथ-साथ विशेष रूप से उर्दू भाषा की शिक्षा प्राप्त की थी। चौदह वर्ष की अवस्था मे आपका विवाह हो गया और आप अपने पिताजी के साथ कचहरी का काम-काज सीखने लगे। जब आप १५ वर्ष के हुए तो अचानक ही आप

पर वज्रपात-सा हुआ। माता और पिता-दोनों स्वर्ग सिधार गए। कुछ ही दिनों बाद आपकी पत्नी ने भी अपने सास-ससुर का अनुगमन किया। इस प्रकार प्रकृति ने लगभग एक साथ ही आपको सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर दिया।

जब गणेशीलालजी का बचपन ही था, तब आप अपने पिताजी के साथ स्व. पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की सेवा में गये थे। पूज्यश्री ने उस समय दीक्षा लेने का उपदेश दिया था और आपके पिताजी से कहा था- 'यदि आप अपने बालक को सयम दिला दे तो इससे धर्म की बहुत उन्नत होगी। यह बालक बहुत होनहार है।' पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज मनुष्य को परखने में कितने कुशल थे, यह बात इस घटना से सहज ही जानी जा सकती है। मगर पूज्यश्री के यह फरमाने पर भी आपके पिताश्री ने पुत्रवात्सल्य के कारण दीक्षा न दिलाई। बल्कि संसार में अधिक जकड़ रखने के लिए आपको विवाह-बन्धन मे बाध दिया। फिर भी जिसके भाग्य में आत्मोन्नति का प्रबल योग हो उसे निमित्त मिल ही जाते है। माता-पिता और पत्नी के स्वर्गवास के पश्चात् आप सब तरह से बन्धन-मुक्त हो गए। यद्यपि आपकी एक सगी बहिन थी परन्तु पिताजी उनका विवाह पहले की कर चुके थे। आपको किसी किस्म की कौटुम्बिक चिन्ता नही थी।

सयोगवश उसी वर्ष तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज का और पूज्यश्री जवाहरलालजी म. का उदयपुर में चातुर्मास हुआ। पूज्यश्री ने आपको ससार का असार स्वरूप समझाया और संयम की उत्कृष्टता बतलाई। आपका मन ससार से विरक्त तो हो ही गया था, पूज्यश्री के उपदेश से विरक्ति और बढ़ गई। मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् सवत् १९६२ के दिन आपको मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज की नेश्राय में पूज्यश्री ने स्वय दीक्षा दी। इस प्रकार आपने सयम ग्रहण करके अपने जीवन के असली अभ्युदय के पथ पर प्रयाण किया।

मुनिव्रत धारण करने के बाद आपने अनेक थोकड़े और शास्त्र लिखे। इसके पश्चात् आप पूज्यश्री के साथ दक्षिण प्रान्त मे पधारे और वहा संस्कृत, व्याकरण, साहित्य तथा न्याय-शास्त्र आदि का विशिष्ट अध्ययन किया। आपने जिस तत्परता के साथ इन सब विषयों का अध्ययन किया, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

आप प्रायः पूज्यश्री के साथ ही विचरते रहे हैं। अतएव दिन-प्रतिदिन आपकी प्रतिभा का विकास होता गया। सवत् १९७६-७७ में जब पूज्यश्री मालक, मारवाड़ पधारे तब आपने चीचवड़ और सतारा मे चातुर्मास किये।

पूज्यश्री के प्रति आपकी भक्ति बड़ी प्रगाढ़ थी। आपने सदैव मनोयोग के साथ पूज्यश्री की सेवा की। संवत् १९८१ मे, जलगांव-चातुर्मास के समय जव पूज्यश्री के हाथ मे भयकर फोड़ा हो गया था, आपने बड़ी ही तत्परता से सेवा की। उन दिनों एक वार पूज्यश्री की अवस्था चिन्ताजनक हो गई थी। उस समय सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया, सेठ बहादुरमलजी वाठिया तथा सेठ लक्ष्मणदासजी श्री श्रीमाल आदि सम्प्रदाय के मुख्य श्रावक वहा मौजूद थे। उनकी तथा वहा उपस्थित १७ सतो की एव मुनिश्री कजोडीमल म., श्री हीरालालजी म आदि अन्यत्र विराजमान संतो की सम्मति आपने मंगवा रखी थी कि आपको युवाचार्य पदवी पदान कर दी जाय। सघ के प्रवल पुण्योदय से पूज्यश्री का स्वास्थ्य ठीक

हो गया, अतः युवाचार्य पदवी देने की शीघ्रता नहीं रही। पूज्यश्री और मुनिश्री दोनो अनेक स्थानो पर विचरते हुए उपदेशामृत की वर्षा करने लगे।

सवत् १९८३ का चातुर्मास आपने जलगाव मे व्यतीत किया। उस समय वहां महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी महाराज बीमार थे। आपने जलगांव मे उपदेश-अमृत बरसाते हुए अपने गुरुवर्य की तन-मन से अविश्रान्त सेवा की। तपस्वी महाराज चातुर्मास के पश्चात् भी अस्वस्थ रहे और फाल्गुन वदि ११ को स्वर्ग सिधार गए।

गुरुदेव के स्वर्गवास के अनन्तर आपने जलगाव से विहार किया और मालवा, मारवाड होते हुए संवत् १९८४ मे पूज्यश्री की सेवा में भीनासर पहुंचे। सवत् १९८५ मे पूज्यश्री का चौमासा सरदारशहर हुआ, जब कि आपने चूरू मे चातुर्मास करके दया-दान आदि का प्रचार किया। आपके व्याख्यानों का जनता पर खूब प्रभाव पडा। आपने संवत् १९८७ का चातुर्मास ब्यावर मे १९८८ का फलौदी मे किया। आपके सदुपदेश से माहुलियाजी में प्रतिवर्ष होने वाली सात-आठ सौ बकरो की बलि बद हो गई। आपके उपदेश क्षेत्रो में विविध प्रकार के उपकार हुए।

आप स्वभाव से सरल, भद्र और सेवाभावी हैं। अपने साथ के छोटे-से-छोटे सत को किसी प्रकार की तकलीफ हो जाय तो आप भोजन करना तक भूल जाते है। अपने शरीर की उतनी चिन्ता नही करते मगर मुनियों के लिए व्यग्र हो जाते है। मुनियों के साथ आपका व्यवहार अत्यन्त मधुर होता है मगर सयम-पालन के विषय मे अत्यन्त कठोर भी है। संयम की मर्यादा का भग होना आपको असह्य है। यों आप क्षमा के सागर है। मगर असंयम को आप तनिक भी क्षमा नही कर सकते।

अजमेर-साधु-सम्मेलन मे पंच मुनियो ने जो निर्णय दिया था उसमे एक बात यह भी थी कि 'मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को युवाचार्य बनाया जाय।' उस निर्णय में यह भी प्रतिपादन किया गया था कि निर्णय की सभी बातें फाल्गुनी पूर्णिमा से पहले ही अमल में आ जानी चाहिए।

इस निर्णय के अनुसार फाल्गुन शुक्ला तृतीया को युवाचार्य पदवी देने का निश्चय हुआ। पदवी प्रदान के समारोह के लिए एक विशाल मैदान चुना गया। वही प्रतिदिन व्याख्यान होता था। प्रतिपद् के दिन युवाचार्य का भाषण हुआ। तदनन्तर पूज्यश्री ने प्रभावशाली एव रोचक व्याख्यान फरमाया। आपने कहाः-

''जिस समय सूर्य अपनी सहस्र किरणो से प्रकाश फैला रहा हो उस समय लोगो को दीपक की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु सूर्य के अभाव मे यदि सासारिक लोग दीपक की सहायता न ले तो उनका कार्य व्यवहार सुविधापूर्वक कैसे हो सके? इसीलिए सूर्य के अभाव में दीपक की सहायता ली जाती है। सूर्य और दीपक में यह अन्तर अवश्य है कि सूर्य स्वय प्रकाशमय है उसे किसी की अपेक्षा नही रखनी पडती। उसका प्रकाश प्रशस्त है। लेकिन दीपक स्वय प्रकाशमय नही है। उसका प्रकाश सापेक्ष एवं अप्रशस्त है। सापेक्ष होने के कारण दीपक से प्रकाश लेने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसमें तेल दिया जाय और बत्ती रखी जावे और बत्ती को अग्नि लगाई जावे।

भगवान् तीर्थंकर सूर्य के समान हैं। बल्कि उनकी समता करोडो सूर्यो से भी नही हो सकती। वे केवल ज्ञानी, अन्तर्यामी, और घट-घट के भावो के जानने वाले होते है। उनका ज्ञान पूर्ण होता है।

लेकिन वर्तमान समय मे भगवान् तीर्थकर भारतवर्ष मे विद्यमान नहीं है। इसलिए उनके अभाव मे चतुर्विध-संघ के लिए आचार्यादिक ही आधार हैं। भगवान् तीर्थकर में और आचार्यादिक में वैसा ही अन्तर है, जैसा सूर्य और दीपक में है। अर्थात् एक सापेक्ष है और दूसरा निरपेक्ष। पूर्ण ज्ञानी होने के कारण भगवान् तीर्थकर को किसी की अपेक्षा नही है, न किसी की सहायता की ही आवश्यकता रहती है। लेकिन आचार्य, तीर्थकर के समान पूर्ण-ज्ञानी नहीं होते। इसलिए आचार्य को चतुर्विध-संघ की अपेक्षा रहती है। चतुर्विध-सघ की सहायता होने पर ही आचार्य चतुर्विध-सघ के आधार-रूप हो सकते है। अन्यथा जिस प्रकार तेल बत्ती रहित दीपक प्रकाश नहीं दे सकता, उसी प्रकार चतुर्विध सघ की सहायता बिना आचार्य भी आचार्य-पद की जिम्मेवारी पूरी नही कर सकते।

आचार्य का काम चतुर्विध-संघ में साश्या, वारणा धारणा और चोयणा, पचोयणा करना है। इन कामों के लिए यदि चतुर्विध-सघ सहायता न दे तो आचार्य को कठिनाई मे पड जाना पड़े तथा आचार्य पद का गौरव भी न रहे। उदाहरण के लिए गच्छा के किसी रोगी, ग्लान या तपस्वी साधु की सेवा का प्रबन्ध करना है। यदि इस कार्य में श्रमण-सघ की सहायता प्राप्त न हो तो अकेला आचार्य किस-किस सन्त की सेवा-सुश्रूषा कर सकता है? इस कार्य के लिए श्रमण-सघ का सहकार आवश्यक है। इसी प्रकार आचार्य ने किसी उद्दण्ड सन्त को उद्दण्डता करने से रोका, शिक्षा दी, या सघ-धर्म की रक्षा के लिए उसे सङ्घ से पृथक् कर दिया। सम्भव है कि अलग किया हुआ या दण्ड पाया हुआ व्यक्ति आचार्य पर अपवाद लगावे और आचार्य के विषय मे झूठी-सच्ची बाते कहकर हो-हल्ला मचावे। ऐसे समय मे यदि सघ की ओर से ऐसे अपवाद का निराकरण न किया जावे तो आचार्य-पद का गौरव न रहेगा। उस समय सङ्घ का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सत्य और न्याय को दृष्टि में रखकर उस अपवाद का निराकरण करे और आचार्य के गौरव की रक्षा करे। छद्मस्थ होने के कारण यदि आचार्य से कोई भूल हुई हो तो आचार्य को उनकी भूल सुझाकर न्याय-पथ पर लाना उचित है, लेकिन इस ओर से उपेक्षित रहना सर्वथा अनुचित है। मेरे कथन का अभिप्राय यह नही है कि थप्पड़ का बदला थप्पड़ से दिया जावे। लेकिन कायरता को क्षमा का रूप देना ठीक नहीं। झूठी और क्षणिक शाति के नाम पर असत्य एव अनुचित प्रचार होने देना धर्म और आचार्य का गौरव घटाना है।'

चादर-प्रदान-दिवस

फाल्गुन शु. ३ सम्वत् १९९० को ग्यारह बजे से १ वजे तक का समय युवाचार्य-पदवी प्रदान करने के लिए शुभ माना गया था। उस दिन प्रात:काल सात बजे दीवान वहादुर श्रीमान् सेठ मोतीलालजी मूथा के नेतृत्त्व मे एक जुलूस निकाला गया। जावद के तहसीलदार तथा दूसरे राज्याधिकारी भी उसमे उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए। बैण्ड, डका, निश्तन, कोतल घोड़े, चंवर छत्र आदि से सुसज्ज्ति होकर पाच हजार नर-नारियो के साथ जुलूस सुखदेवजी खूबचन्दजी के नोहरे से निकला। सारे शहर में घूमकर नौ वजे फिर उसी स्थान पर आ गया। मुनिराजो का दर्शन करके श्रावक-श्राविकाएं अपने स्थान पर चले गए।

दस बजे के लगभग सरकारी स्कूल का विशाल मैदान भरने लगा। आध घण्टे मे हजारो प्रेक्षक इकट्ठे हो गए और मैदान ठसाठस भर गया। साढे दस बजे सन्त-सतिया तथा युवाचार्यश्री के साथ पूज्यश्री पधारे। जनता ने जयध्वनि के साथ अपने वर्तमान तथा भावी आचार्य का स्वागत किया।

ग्यारह बजे पूज्यश्री तथा सभी सन्तों ने मिलकर नवकार मंत्र का पाठ किया और भगवान् शान्तिनाथ की प्रार्थना की। मंगलाचरण के वाद पूज्यश्री ने व्याख्यान प्रारभ किया। आपने फरमाया-

यह बात तो चतुर्विध-संघ को विदित हो चुकी है कि आज मिति फाल्गुन शुदि ३ सम्वत् १९९० का दिन परम आनन्द का और जीवन में पुनः पुनः स्मरण करने योग्य है। क्योकि आज युवाचार्य गणेशीलालजी को युवाचार्य-पद की चादर दी जाने वाली है। यह विदित होने के कारण ही चतुर्विध-संघ एकत्रित हुआ है। चादर की क्रिया करने से पूर्व मै महापुरुषो के अनुभूत प्रवचन आप लोगो को सुनाता हूं।

चतुर्विध-सङ्घ मे साधु और साध्वी पूर्ण त्यागी कहे गए हैं। श्रावक तथा श्राविका आशिक त्यागी है। इन दो पूर्ण और आशिक त्यागियो का समूह ही चतुर्विध-सङ्घ कहलाता है और यह चतुर्विध-सङ्घ ही भावतीर्थ भी है। चतुर्विध-सङ्घ में बताए गए श्रमण सङ्घ के अन्तर्गत भगवान् अरिहन्त का भी समावेश हो जाता है क्योंकि भगवान् अरिहन्त साधु से भिन्न नही है।

यह प्रश्न हो सकता है कि अरिहन्त भगवान् तो अभी साधु ही है, साधक है और इनके चार कर्म भी शेष है, लेकिन सिद्ध भगवान् के लिए साधना शेष नहीं है, वे कुलकृत्य हो चुके है तथा उनके आठों कर्म नष्ट हो चुके है। ऐसा होते हुए भी नमस्कार मंत्र मे भगवान् अरिहन्त को पहले और भगवान् सिद्ध को फिर नमस्कार क्यों किया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सिद्ध भगवान् की पहचान कराने वाले अरिहन्त भगवान ही है। उपकारी को पहले नमस्कार करना कर्त्तव्य है। इसीलिए भगवान् अरिहन्त को पहले नमस्कार किया जाता है।

कहा जा सकता है कि सिद्ध भगवान् की पहिचान कराने के कारण ही यदि अरिहन्त भगवान् को पहले नमस्कार किया जाता है तो फिर अरिहन्त को नमस्कार करने से पहले आचार्य को नमस्कार क्यो नहीं किया जाता ? जिस प्रकार सिद्ध भगवान् की पहिचान कराने वाले भगवान् हैं उसी प्रकार अरिहन्त भगवान् की पहचान कराने वाले आचार्य है। इसलिए अरिहन्त से पहले आचार्य को नमस्कार करना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों अरिहन्त भगवान् की परिषद में है। भगवान् अरिहन्त उस परिषद के नायक है। पहले सभा के नायक को ही नमस्कार किया जाता है, न कि सभासदों को। इसी कारण आचार्य से पहले भगवान् अरिहन्त को नमस्कार किया जाता है।

आचार्य, उपाध्याय, साधु वही हो सकते है जो भगवान् अरिहन्त की आज्ञा में चलते हों। जो अरिहन्त की आज्ञा के बाहर हैं वह न तो आचार्य है, न उपाध्याय और न साधु ही। किस प्रकार का आचरण करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवान् अरिहन्त की आज्ञा मे हैं, इस की व्याख्या शास्त्रो में भली-भाति की गई है। यहा भावी आचार्य का ही प्रसग है, इसलिए उपाध्याय और साधु के विषय मे कुछ न कहकर आचार्य के ही विषय में थोड़ा-सा कहता हू।

श्री स्थानाग सूत्र के तीसरे स्थान मे तीन प्रकार के आचार्य बताए गए हैं- कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। कलाचार्य और शिल्पाचार्य का यहा कोई सम्बन्ध नही है। यहा तो धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है। इसलिए धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है।

धर्माचार्य की आराधना भगवान् अरिहन्त की आराधना है। स्थानाग सूत्र के चौथे स्थान में धर्माचार्य के चार भेद बताए गए हैं- नामाचार्य, स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और भावाचार्य। भावाचार्य के लिए तो शास्त्र मे यहा तक कहा है-

'तत्थणं जे ते भावामरिया ते तित्थदरसया।'

अर्थात् जो भावाचार्य है, वह तीर्थकर के समान है।

कोई भी व्यक्ति दीक्षा लेने मात्र से ही धर्माचार्य नही हो जाता। धर्माचार्य पद चतुर्विध-संघ द्वारा सस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध-संघ मिलकर जिस व्यक्ति को धर्माचार्य-पद पर स्थापित करे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार राजा-योग्य गुणों से युक्त तथा राज्य- व्यवस्था में निपुण व्यक्ति का राज्यसिहासन पर अभिषेक किया जाता है और जिसका राज्याभिषेक हुआ है वही व्यक्ति राजा कहलाता है; प्रत्येक व्यक्ति राजा नही कहला सकता, उसी प्रकार चतुर्विध-सघ द्वारा बनाया हुआ व्यक्ति ही धर्माचार्य हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति धर्माचार्य नही हो सकता। राजनीति मे बल प्रयोग हो सकता है मगर धर्म-नीति में बलात्कार संभव नही है। यहां कोई जबर्दस्ती आचार्य नहीं बन सकता।

शास्त्रानुसार धर्माचार्य मे तीन गुणो का होना आवश्यक है। वे तीन गुण ये है- गीतार्थ, अप्रमादी और सारणा-वारणा करने वाला। अर्थात् जो सूत्रार्थ को जानने वाला हो, प्रमाद रहित हो और सघ की व्यवस्था करने वाला हो। अर्थात् संयम-मार्ग मे सिदाते हुए की रक्षा करने, उदण्ड की दण्ड आज्ञा में चलाने या गच्छा बाहर करने और सबकी साल-सम्हाल रखने वाला ही सुयोग्य आचार्य है।

आचार्य-पद देने के समय तो किसी मे ये तीनो गुण नजर आए, परन्तु आचार्य-पद पाने के पश्चात् वह व्यक्ति मान-अभिमान मे पडकर मनमानी करने लग जावे, प्रमादी बन जावे, शास्त्रस्वाध्याय करना छोड दे और सघ की उचित व्यवस्था न करे तो शास्त्र मे ऐसे व्यक्ति को आचार्य-पद से पृथक कर देने का विधान है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य-पद से पृथक् करने का विधान करतें हुए शास्त्र में तीन दृष्टान्त दिये गए है। पहला दृष्टान्त यह है-

किसी क्षेत्र मे दुष्काल पडा। पीने का पानी तथा खाने को अन्न मिलना मुश्किल हो गया। महामारी आदि रोग फैल गए। जिस प्रकार वह क्षेत्र तत्काल त्याज्य है उसी प्रकार अगीतार्थ आचार्य भी त्याज्य है।

दूसरा दृष्टान्त यह दिया गया है- कोई राजा राजसिहासन पाने के पश्चात् मद्य, मास, परस्त्री-गमन आदि दुर्व्यसनो मे पड जावे तो जिस प्रकार ऐसा राजा त्याज्य है उसी प्रकार वह आचार्य भी त्याज्य है जो आचार्य-पद पाने के पश्चात् पूजा-प्रतिष्ठा का लोभी बनकर खाने-पीने आदि के पदार्थो के धोग मे पड़ जावे और साता का इच्छुक, रस लोलुप तथा बुद्धि का अभिमानी वन जावे।

तीसरा दृष्टान्त यह दिया है- जिस प्रकार कुलधर्म को न पालने वाला, कुल के लोगों की सँभाल न रखने वाला कुलपति या गृहपति त्याज्य है उसी प्रकार न्याय-अन्याय को न समझने वाला, अपराधी को दण्ड न देने वाला और निरपराध को दण्ड देने वाला आचार्य भी ताज्य है। सघ ऐसे अयोग्य आचार्य को आचार्य-पद से पृथक् कर सकता है।

इस प्रकार का विधान करते हुए शास्त्र में यह भी कहा हे कि सघ-द्वारा आचार्य-पद से पृथक् कर दिए जाने पर भी यदि कोई व्यक्ति आचार्य-पद को न त्यागे तो उतने ही दिन का दण्ड या छेद आता है जितने दिन उसने सघ-द्वारा पृथक् कर दिए जाने पर भी आचार्य-पद नही त्यागा।

मतलब यह है कि उक्त तीन गुणो से युक्त व्यक्ति ही आचार्य वनाया जा सकता है। जिस मे ये तीन गुण नही हैं वह आचार्य नही हो सकता और कदाचित आचार्य-पद देने के समय किसी व्यक्ति में ये तीन गुण नजर आवे, लेकिन आचार्यपद देने के पश्चात् ये न रहे तो ऐसे व्यक्ति को आचार्यपद से पृथक् भी किया जा सकता है।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नर्म भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूजे की तरह हो। अर्थात् जिस प्रकार बीकानेर का मिश्री का कूंजा सिर पर मारने से तो सिर फोड़ देता और मुह मे रखने पर मुह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कठोर से कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिए मुंह मे रखी हुई मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

भगवान् महावीर ने अपना अधिकार श्री सुधर्मास्वामी को दिया था। श्री सुधर्मास्वामी के पास जम्बूस्वामी ने दीक्षा ली थी। दीक्षा लेते समय श्री जम्बूस्वामी को यह पता नहीं था कि मै सुधर्मास्वामी के पाट का अधिकारी होऊगा। लेकिन सुधर्मास्वामी की कृपा से जम्बूस्वामी गुण निधान बन कर सुधर्मास्वामी के पाट के अधिकारी बने। यह उन्हीं की चलती हुई परम्परा है। इस परम्परा मे अग्रविहारी तपोधनी और आत्मा का उत्थान करने वाले श्रीहुक्मीमुनी हुए। हुक्ममुनी जब गच्छा छोड कर निकले तब उनका अनादर भी हुआ। फिर भी वे अपने गुरु लालचन्दजी महाराज का उपकार ही मानते रहे और उनकी प्रशसा करते रहे। तप आदि कारणो से हुक्ममुनी महाराज की आत्मा मे दिव्य-शक्ति उत्पन्न हुई। उन्होंने यह नही चाहा था कि मेरे नाम से सम्प्रदाय चले। फिर भी उनके नाम से सम्प्रदाय चल रहा है। बैठा हुआ मुनि मण्डल उन्ही की तपस्या का प्रसाद है।

पूज्यश्री हुक्मीचन्द जी महाराज का इसी जावद शहर मे स्वर्गवास हुआ था। उनके पीछे श्रीशिवलालजी महाराज की पूज्य-पदवी भी इसी शहर मे हुई थी। उन्होने ३३ वर्ष तक एकात्तर तप किया था। उनका स्वर्गवास भी जावद शहर में हुआ था। पूज्यश्री शिवलालजी महाराज के पश्चात् पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज की पूज्य-पदवी भी जावद मे ही हुई थी। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज बहुत तेजस्वी और प्रभावशाली थे। उनके भक्तो में बड़े-बड़े राजा- महाराजा भी थे। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज ने इसी जावद शहर में विराजे हुए पूज्यश्री चौथमलजी महाराज को अपना युवाचार्य नियुक्त किया था और रतलाम से चादर भेजी थी। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास रतलाम मे हुआ। पूज्यश्री उदयसागर जी महाराज के बहुत समय तक विराजने से ही रतलाम नगर रत्नपुरी कहलाया। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के पश्चात् होने वाले पूज्यश्री चौथमलजी महाराज का स्वर्गवास भी रतलाम में ही हुआ था। रतलाम मे ही पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की पूज्य-पदवी हुई थी। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज से आप में से बहुत से लोग परिचित हैं। अत. उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने अपने कर-कमलो से मुझे रतलाम मे युवाचार्य पद की चादर प्रदान की थी और जयतारण मे वे स्वर्ग सिधारे थे।

कुछ काल से इस-पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की- सम्प्रदाय के दो विभाग हो गए थे। ऐसा होने के कारण से तो आप लोग परिचित ही है। गतवर्ष अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन के अवसर पर सम्प्रदाय के दोनों विभागो को एक करने के लिए मुझे और पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज को छठे पाट पर मानकर पच मुनियो ने सातवे पाट पर श्रीगणेशीलालजी को युवाचार्य बनाने का फैसला दिया।

पच मुनियों ने सातवे पाट पर गणेशीलालजी को युवाचार्य बनाने आदि का जो ठहराव दिया था, उसका समर्थन इस समाज की कान्फ्रेस ने भी किया और कान्फ्रेस के प्रेसीडेंट तथा सोलह सदस्य, इस प्रकार १७ व्यक्तियों के डेपुटेशन ने मेरी व पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज की स्वीकृति से यह ठहराव दिया कि युवाचार्य पद की चादर फाल्गुन सुदि १५ से पहले करने का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार युवाचार्य पद के लिए गणेशीलालजी का चुनाव केवल मेरे या इसी सम्प्रदाय के सघ द्वारा नही हुआ है वरन् भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध संघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज युवाचार्य पद की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

अजमेर मे पच मुनियो द्वारा दिए गए फैसले के अनुसार गणेशीलालजी को युवाचार्य पद की चादर देने के साथ खूबचन्दजी को उपाध्याय पद की चादर भी देनी चाहिए थी। इसके लिए मैंने खूबचन्द को जावद आने के लिए प्रार्थना भी की थी, लेकिन वे नही आए। यदि खूबचन्दजी आ जाते तो युवाचार्य पद की चादर देने के साथ ही उपाध्याय पद की चादर देने की क्रिया भी कर दी जाती। वे नही आए, इसलिए युवाचार्य पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।'

पूज्यश्री का व्याख्यान समाप्त होने पर मुनिश्री बड़े चादमलजी महाराज, मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज और मुनिश्री बडे पन्नालालजी महाराज (सादडी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को युवाचार्य पद की चादर देने का समर्थन किया। शेष सन्तो की ओर से मुनिश्री छोटे गव्बूलालजी महाराज ने समर्थन किया। इसी प्रकार प्रवर्त्तिनी श्रीआनदकुंवरजी महाराज तथा प्रवर्त्तिनी श्री केसरकुवरजी महाराज ने भी अनुमोदन किया।

इसके बाद बाहर से शुभकामना व सदेश के रूप मे आये हुए तार तथा पत्र पढकर सुनाए गए। उनमे नीचे लिखे नाम विशेष उल्लेखनीय है-

(१) ब्यावर- पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय मे सबसे बडे दीक्षा स्थविर मुनिश्री प्यारचन्दजी महाराज।

(२) बालोतरा- मुनिश्री मोडीलालजी महाराज और मुनिश्री बड़े गव्बूलालजी महाराज।

(३) सरसा (पजाब) तपस्वी मुनिश्री विनयचन्दजी महाराज। पजाब के स्व. पूज्यश्री श्रीचन्दजी महाराज के सन्त जो इस सम्प्रदाय की आज्ञा मे विचरते है।

(४) ब्यावर- महासती श्रीलालाजी महाराज।

(५) भीनासर- महासती श्रीराजकुवरजी महाराज।

(६) भावनगर- श्रीमान् हेमचन्द रामजी भाई मेहता, प्रेसिडेट अखिल भारतीय श्वे स्था. जैन कांफ्रेस।

(७) बम्बई- श्रीमान् डाह्यालाल मणिलाल मेहता, सम्पादक ''जैन जागृति।

(८) उदयपुर- पं. प्यारेकिशनजी कौल, मेम्बर काउसिल।

(९) जयपुर- धर्मवीर श्रीमान् सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी।

(१०) जयपुर- श्रीमान् केसरीमलजी चोरडिया।

(११) अहमदनगर- श्रीमान् बाबू कुन्दनमलजी फिरोजिया बी. ए. एल. एल. बी.

(१२) चीचवड़ (पूना) श्रीमान् रामचन्दजी पूनमचन्दजी लूकड़ अध्यक्ष श्रीफतहचन्द जैन विद्यालय चीचवड।

(१३) चींचवड़ (पूना) श्रीमान् नवलमलजी खींवराजजी पारख अधिपति, गराड़ा ट्रस्ट।

(१४) बोदवड़ (खानदेश) श्रीमान् सेठ लालचन्दजी रघुनाथदासजी।

(१५) जोधपुर- श्रीमान् सेठ लच्छीरामजी सांड़।

(१६) जोधपुर- पूज्यश्री रत्नचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का हितैषी मडल, जोधपुर।

(१७) पचकूला- प. श्रीकृष्णचन्द्रजी, सस्थापक श्रीजैनेन्द्र गुरुकुल, पंचकूला।

(१८) प्रतिभाशाली आचार्य पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज ने नीचे लिखा सन्देश भेजा-

'बड़ा ही हर्ष का विषय है कि पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के भावी आचार्य का पद शान्त, दान्त, गम्भीर, मधुर वक्ता गणेशीलालजी महाराज को दिया जा रहा है। वैरागी, प्रपच त्यागी गणेशीलालजी महाराज जैसे भावितात्मा अनगार मे आचार्य पद रूप मणि को रखकर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने शुद्ध स्वर्ण में मणि को जड़ने वाले जौहरी के समान अपनी परीक्षा-बुद्धि का परिचय दिया है। आशा है कि भावी पूज्य गणेशीलालजी महाराज अपने शुद्ध व उदार विचारो से जन-मानस को पवित्र बनाते हुए महावीर के शासन को दिपाने में समर्थ होगे।'

बाहर के सन्देश पढ़े जाने के बाद नीचे लिखे श्रीसंघ के प्रधान पुरुषो ने युवाचार्य पद प्रदान का समर्थन किया-

(१) बम्बई- श्रीमान् सेठ अमृतलाल भाई झवेरी।

(२) दक्षिण- दीवान बहादुर सेठ मोतीलालजी मूथा, सतारा।

(३) बीकानेर- श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी बांठिया, भीनासर।

(४) मद्रास- श्रीमान् सेठ ताराचन्दजी गेलड़ा

(५) मारवाड़- श्रीमान् बाबू उभयराजजी मुणोत, जोधपुर।

(६) मेवाड़- श्रीमान् नगरसेठ नन्दलालजी, उदयपुर।

(७) मालवा- श्रीहीरालालजी नांदेचा, खाचरोद।

(८) दिल्ली- श्रीमान् लाला कपूरचन्दजी जौहरी।

(९) खानदेश- श्रीमान् रावसाहब सेठ लक्ष्मणदासजी, जलगाव।

(१०) कोटा हाड़ोती- श्रीमान् सेठ वसन्तीलालजी नाहर, रामपुर।

(११) नीमच व जावद- श्रीमान् पन्नालालजी चौधरी, नीमच। इसी प्रकार अनेक श्राविकाओं ने भी समर्थन किया

चादर प्रदान

चतुर्विध-सघ का अनुमोदन हो जाने पर युवाचार्यजी, पूज्यश्री के सामने खड़े हुए। पूज्यश्री ने नन्दी सूत्र का पाठ किया और अपनी चादर उतारकर युवाचार्यश्री को ओढा दी। चादर ओढ़ाते समय दूसरे सन्तो ने भी चादर के पल्ले पकड कर अपने सहयोग का प्रदर्शन किया। सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हो गया। जनता ने जयनाद के साथ अभिनन्दन किया। पूज्यश्री ने चादर ओढ़ाकर नवकारमन्त्र सुनाया। चतुर्विध-सघ ने युवाचार्यश्री की वन्दना की। उसके बाद पूज्यश्री ने छोटा-सा प्रवचन दिया। आपने फरमाया-

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सातवें पाट पर श्री गणेशीलालजी आचार्य नियुक्त हुए है। ये मेरे युवाचार्य है। चतुर्विध-सघ का कर्त्तव्य है कि इनके वचनो को 'सद्दहामि, पत्तयामि, रोइयामि' रूप से स्वीकार करें। युवाचार्यजी का भी कर्त्तव्य है कि धर्म मार्ग में सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध-सघ को धर्ममार्ग मे प्रवृत्त करते रहे। मुझे विश्वास है कि युवाचार्यजी इस पद की जिम्मेवारी को दक्षता पूर्वक निभावेंगे। इनका नाम गण+ईश= गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है, ये उत्तरोत्तर सघ की उन्नति करेगे।

एक बात मैं और स्पष्ट कर देना उचित समझता हूं। मेरी आज्ञा से बाहर किए हुए घासीलालजी आदि ईर्ष्या-द्वेष के कारण युवाचार्यजी मे दोष बताते है, परन्तु मै अपनी जानकारी के आधार पर निश्चयपूर्वक कहता हू कि युवाचार्यजी मे कोई दोष नही है। इस पर भी मुझे किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। यदि विश्वस्त रूप से किसी भी समय यह मालूम होगा कि युवाचार्यजी में दोष है तो मै इनको उसी समय दण्ड देने के लिए तैयार हू। लेकिन द्वेषपूर्ण बात पर ध्यान देना किसी को भी उचित नही है।"

पूज्यश्री का प्रवचन समाप्त होने पर युवाचार्यजी ने नीचे लिखे अनुसार फरमाया-

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छा गमयति।
मुमुक्ष ससाराम्बुनिधितरि वत्तारय विभो।।।
महाराग द्वेषादि कलह मल हारिन्नामृतदाम्।
सुबुद्धि मह्य हे जिन! गणपते! देहि सततम्॥

मै परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे ससार का कल्याण करने वाली है। आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्त्व सौपा गया है, उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हू। मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन भर आचार्य द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तो की सेवा करता रहू। मेरी इस भावना के विरुद्ध पूज्य आचार्यश्री एव चतुर्विध-सघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सोपा है। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की पार्थना करता हूं जिसके द्वारा मे इस महान् बोझ को उठाने मे समर्थ होऊं।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तो ने हाथ लगा कर मुझे जो चादर प्रदान की है, वह चादर तन्तुओ की बनी हुई है। सस्कृत मे तन्तु का दूसरा नाम गुण है। अर्थात् यह चादर गुणमयी है। मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणो की भी प्राप्ति होगी, जिससे मै इसकी रक्षा करने मे समर्थ होऊँ। यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने मे समर्थ है, तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है। मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तो ने प्रदान की है और चतुर्विध-संघ ने इसका अनुमोदन किया है। इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध-सघ इसका रक्षक है। चतुर्विध-संघ ऐक्य-बल से इसकी रक्षा करता रहेगा तभी इस चादर का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह संघ की उन्नति करने मे भी समर्थ होगी। मै शासननायक और गुरु महाराज से यही भिक्षा मागता हू कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।

भूकम्पपीड़ितों की सहायता

उन दिनो बिहार प्रान्त मे भयंकर भूकम्प के कारण हजारो व्यक्ति बेघरबार होकर घोर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारो के प्राण चले गये थे और शायद हजारो जीवित रहते हुए भी मृत्यु का कष्ट भुगत रहे थे। वहा की दशा अत्यन्त हृदयद्रावक थी। पर दुःखकातर पूज्यश्री बिहार की इस करुणाजनक स्थिति को सुनकर बहुत क्षुब्ध थे। उत्सव के समय उसे कैसे भूल सकते थे? महापुरुष महोत्सव के समय दुखियों का करुण-क्रन्दन भूल नही सकते। समुचित अवसर पाकर पूज्यश्री ने बिहार प्रान्त की कष्ट-कथा उपस्थित श्रावको को सुनाई और उन्हें अपने कर्त्तव्य का स्मरण दिलाया। पूज्यश्री ने फरमाया-

'इस प्रकार के शुभ अवसरों पर श्रावकगण सैकड़ो जीवो को अभयदान देते है। इस समय भारत मे भूकम्प आया है और बिहार मे उसने प्रलय की याद दिला दी है। हजारों मनुष्यों के प्राण चले गये हैं और लाखों अन्न तथा वस्त्र के अभाव में कष्ट पा रहे है। मुनष्य-शरीर ईश्वर की सजीव प्रतिमा है। मनुष्य, ईश्वर का प्रतिनिधि और सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। इस कारण मनुष्य की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। भूकम्प के कारण करोड़ों की सम्पत्ति भूमि के गर्भ मे विलीन हो गई है। जो लोग मरने से बच गये हैं, वे भयकर सकट में है, आश्रयहीन है। उनकी सहायता का भार उन लोगों पर है जिन्हे इस प्रकार की आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा है। मनुष्य परस्पर सम्बन्धित है, इस पर भी आप इस प्रकारद्ध की आपत्ति का सामाना नहीं करना पड़ा। है। मनुष्य परस्पर सम्बन्धित है, इस पर भी आप जैन हैं। जैनधर्म का नअुयायी अपने–आपको कष्ट मे डालकर भी दूसरे की रक्षा और सहायता करता है। सकटग्रस्त प्राणी की रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य को कभी भूलना नही चाहिए। दूसरो की सेवा सहायता मे ही आपके सामर्थ्य और द्रव्य की सार्थकता है।

इसी समय स्व. श्रीमान् नथमलजी चोरडिया ने प्रस्तुत समारोह के उपलक्ष्य मे 'काफ्रेस भूकम्प रिलीफ फण्ड' खोलने और उसमे यथाशक्ति चन्दा देने की अपील की। परिणामस्वरूप उस थोड़े से समय में ही लगभग दो हजार रुपया एकत्र हो गया।

धन्यवाद तथा विभिन्न सन्तो और सतियों के उद्‌गारो के बाद तीन बजे सभा विसर्जित हो गई। बीकानेर से आये हुए सज्ञनो की ओर से प्रभावना बाटी गई।

कुछ दिनो बाद पूज्यश्री ने ठा. १२ से वेगू (मेवाड) की ओर तथा युवाचार्यजी ने ठा.६ से रामपुरा की ओर विहार किया। पूज्यश्री भी कदवासा, सीगोली, ढीकेन, कुकडेश्वर होते हुए रामपुरा पधार गये। मुनिश्री वडे चादमलजी म., श्री हर्षचन्दजी म. तथा युवाचार्यजी ठा.१० से वहा पहले ही विराजमान थे। यहा की जैन और जैनेतर जनता ने विशाल सख्या में उपस्थित होकर पूज्यश्री के उपदेशो से लाभ उठाया। जनता ने पूज्यश्री से चौमासा करने की प्रार्थना की। उत्तर मे आपने फरमाया- आपका क्षेत्र खाली नही रहेगा। यथावसर देखा जायगा। मेरा चातुर्मास न भी हो सका तो किसी अन्य सत को भेजने का भाव है। रतलाम और कपासन मे चातुर्मास करने के लिए भी वहा के श्रीसघो की ओर से प्रार्थनाएं की गई। पूज्यश्री ने युवाचार्यजी का रतलाम मे चौमासा निश्चित कर दिया।

यहा से विहार कर पूज्यश्री विविध स्थानों को पावन करते हुए युवाचार्यजी के साथ ठा. १० से मदसौर पधारे। यहा बाहर से बहुत से सज्जन दर्शनार्थ उपस्थित हुए। पूज्यश्री के व्याख्यानों का जैन-जैनेतर जनता को लाभ मिला। यहा से आप कपासन पधारे। कपासन के भाइयों का अतीव आग्रह टाल न सकने के कारण पूज्यश्री ने वहा चौमासा करना स्वीकार कर लिया। पूज्यश्री की इस स्वीकृति से कपासन के श्रीसघ मे आनन्द छा गया।

बयालीसवां चातुर्मास (सं. १९९१)

कपासन-श्रीसघ के पुण्योदय की सराहना करनी चाहिए कि पूज्यश्री जैसे महान् सत का उन्हे सुयोग प्राप्त हुआ। पूज्यश्री ने ठा. ९ से विक्रम सवत् १९९१ का चौमासा मेवाड़ के इस छोटे से किन्तु महत्त्वपूर्ण कस्बे में किया। प्रवर्त्तिनी श्रीकेसरकुवरजी म. ठा. ३ से तथा श्रीजसकुवरजी म. ठा.५ वही विराजमान थी।

पूज्यश्री की प्रकृष्ट प्रतिभा तथा अमृतवाणी से यहा की जनता परिचित ही थी। हजारों की सख्या मे श्रोताओ का जमघट होने लगा। बाहर से भी दर्शनार्थी श्रावकों का ताता लग गया। यहा के जैन और अन्य भाइयों ने वडे उत्साह के साथ आगन्तुक श्रावकों का स्वागत किया। सब लोगो ने सराहनीय उदारता प्रदर्शित की। आस-पास के ग्रामो से आये हुए लोगो की इतनी भीड़ होने लगी कि प्रतिदिन पचास मन आटे की पूडिया तैयार करनी पडती थी। अच्छे-अच्छे घरों के नवयुवक अपने कधे पर पानी के घडे उठाकर लाते किन्तु अतिथियो को असुविधा नही देना चाहते थे। सेवा का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में उन्होने अपना गौरव समझा।

पूज्यश्री के भक्तो मे एक बुढिया खातिन उल्लेखनीय है। उस भाग्यशालिनी वुढिया का नाम तो मालूम नही, मगर वह बहुत अधिक वृद्धा हो गई थी। फिर भी वहुत दूर से चलकर वह पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आती। चातुर्मास से पहले उसने पूज्यश्री को अपने गाव मे एक दिन ठहराया था और दार्शनार्थी जनता की सम्पूर्ण व्यवस्था की थी। विदुर के घर जाकर श्रीकृष्णजी के हर्ष का पार नही रहा था उसी प्रकार इस धर्मशीला वृद्धा के गाव में पहुँच कर और उसकी भक्ति की प्रवलता देखकर पूज्यश्री भी प्रसन्न हो गये। वृद्धा खातिन पूज्यश्री को अपना आराधनीय देव समझती थी।

चातुर्मास से पहले पूज्यश्री के शरीर मे कुछ अशान्ति उत्पन्न हो गई थी। धीरे-धीरे अशान्ति दूर हो गई और श्रावण कृष्णा ५ से आपने उपदेश आरभ कर दिया।

पर्युषण के अवसर पर खूब तपस्या हुई। संवत्सरी के दिन ७१९ पौषध हुए। समाज सुधार के कई महत्त्वपूर्ण कार्य भी हुए। वहां की जनता ने निम्नलिखित निर्णय किये:-

(१) जहां कन्या-विक्रय हुआ हो उस विवाह में भोजन न करना।

(२) मृत्युभोज में मिठाई न खाना, न बनाना। मृत्युभोज न करना या उसमें न जीमना।

(३) वर-विक्रय रोकने के लिए पहले से 'तिलक' का निश्चय न करना।

(४) भाई, भाई के विरुद्ध कचहरी में फरियाद न करे।

गोगुंदा के श्रावक श्रीयुत गणेशलालजी ने गर्म पानी के आधार पर ४३ उपवास किये। दलित जातियों के उत्थान पर नैतिक विकास के लिए पूज्यश्री बहुत जोर दिया करते थे। बहुत-से अछूत आपका व्याख्यान सुनने आया करते थे। कार्तिक महीने मे चार सौ रेगरों ने आपके उपदेश से प्रभावित होकर मदिरा और मास के सेवन का त्याग कर दिया।

यहीं श्रीयुत फूलचन्दजी वुड़ (मेवाड़) के निवासी ने दीक्षा धारण की।

राजकोट श्रीसंघ की प्रार्थना

पूज्यश्री ने अपने साधु-जीवन में विभिन्न प्रान्तो में दूर-दूर तक विहार किया था। दक्षिण-महाराष्ट्र में आपने कई चातुर्मास व्यतीत किये थे। मेवाड़, मालवा, मारवाड़ तो आपके मुख्य विहार स्थल थे ही। देहली और पजाब में भी आपका पदार्पण हो चुका था। सिर्फ गुजरात-काठियावाड़ को अभी तक पूज्यश्री के विहार का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। पूज्यश्री की भारतव्यापी कीर्त्ति अवश्य ही वहा तक जा पहुंची थी। उस कीर्ति और वाणी की तेजस्विता ने गुजरात-काठियावाड़ की धर्मप्रेमी जनता को पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए लालायित बना रखा था। धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी भी इसके लिए विशेष उत्सुक थे। अपनी जन्म भूमि मोरवी मे पूज्यश्री का एक चौमासा अवश्य कराना चाहते थे।

जिस प्रान्त ने धर्मवीर लौंकाशाह जैसे महान् सुधारक पुरुष को जन्म दिया, जिस प्रान्त मे लवजी ऋषि, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी आदि महान् संत हुए, उस प्रान्त में एक बार भी पूज्यश्री जैसे महान् पुरुष के चरण-कमल न पड़े, यह बात भला कैसे बनती?

अन्ततः श्रीदुर्लभजी भाई के साथ गुजरात-काठियावाड़ के श्रीसङ्घ के निम्नलिखित प्रमुख व्यक्ति २० अक्टूबर, १९३४ को पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए:-

(१) श्रीचुन्नीलाल नागजी बोरा, सेक्रेटरी श्रीसङ्घ

(२) राव साहब ठाकरसी भाई मकनजी घीया

(३) श्रीप्राणजीवन मोरारजी. एज्यूकेशन इस्पेक्टर, राजकोट

(४) सेठ गोपालजी लवजी मेहता

(५) सेठ गुलाबचन्दजी मेहता

(६) सेठ प्रेमजी वसनजी

(७) श्रीदुर्लभजी त्रि. जौहरी

शिष्टमण्डल के इन प्रतिष्ठित सदस्यो ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक काठियावाड़ में पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री तत्काल कोई निश्चित उत्तर न दे सके। आपने अवसर देखकर निश्चय करने के लिए कहा।

पूज्यश्री के विराजने से कपासन की अजैन जनता अत्यन्त प्रभावित हुई। ता. १९-११-३४ को एक सार्वजनिक सभा करके वहां की जनता ने पूज्यश्री के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सभा में उपस्थित लगभग २५०० जनता ने सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया।

'श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज साहब का चातुर्मास यहां (कपासन में) होने से धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ है और साथ ही अनेक प्रकार के पापों तथा दुर्व्यसनों का त्याग हुआ है, जिससे जनता को बहुत लाभ हुआ। पूज्यश्री ने कपासन की जनता का यह उपकार किया है, उसके लिए कपासन की जनता पूज्यश्री की चिरऋणी है। तथा पूज्यश्री का चातुर्मास कपासन में कराया है, इसके लिए यह सभा कपासन के जैन सङ्घ को धन्यवाद देती है।

चातुर्मास की पूर्ति के समय बाहर की करीब ५००० जनता उपस्थित थी। मार्गशीर्ष कृ. १ को पूज्यश्री ने विहार किया। पूज्यश्री की विदाई का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण रहा। सब मिलकर सात हजार नर-नारी आपकी विदाई में सम्मिलित हुए।

कपासन से पूज्यश्री ने उदयपुर की ओर विहार किया। मार्ग के छोटे-छोटे ग्रामों में आपके उपदेश का बहुत प्रभाव पड़ा। मुख्य रूप से जैनेतर जातियों ने व्याख्यान का लाभ उठाया। जासमा मे श्रीयुत अमीन जफरहुसेन ने, जो एक बड़े प्रसिद्ध शिकारी थे, जीवन भर के लिए शिकार करने का त्याग कर दिया। नाथद्वारा में लाला डूगरसिहजी ने साधु-दीक्षा अगीकार की। आप बड़े ही सरल हृदय और सेवाभावी सत है। बड़े धैर्य के साथ ठाणापति सतों की प्रेमपूर्वक सेवा कर रहे है। आपका सेवा भाव सचमुच अन्य साधुओ के लिए अनुकरणीय है। राजा खुमानसिहजी पर पूज्यश्री के उपदेशों का बहुत प्रभाव पडा। उन्होने अपने परिवार के साथ मद्य-मांस-सेवन का तथा शिकार खेलने का त्याग कर दिया। पूज्यश्री गढ़वारा पधारे। यह प्रायः चारणो की बस्ती है। नवरात्रि के दिनों मे यहा करणीजी के मन्दिर मे बलिदान होता था। पूज्यश्री के उपदेशो से वह बंद हो गया। पचास-साठ राजपूत सरदारों ने शराब, मास, जीव-हिंसा और तमाखू आदि का त्याग कर दिया। यहां से गुरड़ी होते हुए मगसिर शु. १४ को पूज्यश्री उदयपुर पधार गए।

उदयपुर की जैन-जैनेतर जनता ने आपका हार्दिक अभिनन्दन और स्वागत किया। जनता हजारो की सख्या में अगवानी के लिए सामने आई। आपके व्याख्यानों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि पं. प्यारेकिशनजी कौल (भूतपूर्व दीवान सैलाना स्टेट) मेम्बर स्टेट काउसिल, प. गोपीनाथजी ओझा, मेम्बर स्टेट काउसिल, हाकिम मोहनचन्दजी आदि उच्च श्रेणी के राज्याधिकारियो ने विशेष रूप से प्रार्थना करके चार व्याख्यान और ज्यादा करवाए। यह सब सज्जन अपनी मित्र-मण्डली को साथ लेकर व्याख्यान मे उपस्थित होते थे और पूज्यश्री की सुधास्राविणी वाणी का लाभ उठाते थे।

पूज्यश्री के उपदेश से कन्या-विक्रय, वर-विक्रय, मद्य-मास सेवन तथा परस्त्री-गमन आदि अनेक पापो का श्रोताओ ने त्याग किया। कई सज्जनो ने ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। इस अवसर पर स्थानीय जैन शिक्षण सस्था को तथा अन्य संस्थाओ को आर्थिक सहायता मिली।

पूज्यश्री पतित-पावन थे और आपकी वाणी में उग्र सयम का ऐसा तेज अन्तर्निहित रहता था कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उदयपुर के श्रोतावर्ग मे जहा रियासत के उच्च से उच्च पदाधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक जन थे, वहां उदयपुर की प्रसिद्ध वेश्या मुमताजवाई भी थी। पूज्यश्री का उपदेश सबके लिए समान हितकर था और उसे सुनने के लिए मनुष्य मात्र के लिए द्वार खुला था। इस लिहाज से पूज्यश्री किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष के नही, सभी के थे। वह जगत् की अनमोल सपदा थे और सारा जगत् उसका अपना था। मुमताजवाई ने पूज्यश्री का उपदेश सुना। उपदेश उसके अन्तर तक पहुचा और उसका जीवनव्यापी कलुष धुल गया। उस वाई ने जीवन भर के लिए वेश्या-वृत्ति का परित्याग कर दिया और मास-मदिरा के सेवन का भी त्याग कर दिया। उसके त्याग का बड़ा प्रभाव पड़ा। स्थानीय कन्या-विद्यालय की मुख्याध्यापिका ने मुमताजबाई को गले लगाया तथा बहिन कहकर उसे सम्बोधन किया। पं. प्यारेकिशनजी कौल ने उस बहिन की शुद्धि के लिए पूज्यश्री का आभार माना और मार्मिक शब्दो मे उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की। मुमताजबाई ने यह सिद्ध कर दिया कि पतित समझे जाने वाले व्यक्तियों में भी उज्ज्वल आत्मा विद्यमान रहती है। चाहिए कोई पूज्यश्री सरीखा प्रभावशाली और सहानुभूतिशील सन्त, जो उस आत्मा को जगा सके, उठा सके। दुर-दुराने वाले दूसरों की भलाई नही कर सकते।

पौषकृष्ण दशमी को पूज्यश्री ने विहार किया। पं. प्यारेकिशनजी, प. गोपीनाथजी, प. गगारामजी मोहले आदि के साथ हजारो नर-नारियों ने उमडते दिल से पूज्यश्री को विदाई दी।

उस दिन पूज्यश्री देहली दरवाजे के बाहर कोठारी बलवन्तसिंह जी साहब की बगीची मे विराजमान हुए। बगीची और आहिड़ गाव में एक-एक दिन विराजने की इच्छा होने पर भी जनता के अनिवार्य आग्रह से दोनों जगह तीन-तीन दिन ठहरना पडा। महाराज खुमानसिहजी, दक्षिण प्रान्त से आये हुए दर्शनार्थी और रेलवे-कर्मचारियों का विशेष आग्रह था, आपके उपदेश से अनेक श्रोताओ ने मास, मदिरा तथा हिंसा आदि का त्याग किया।

यहा से बबोडा और कानौड़ होते हुए आप बडीसादडी पधारे। आपके पदार्पण के उपलक्ष्य मे एक दिन अगता पलवाया गया। जैन भाइयों के अतिरिक्त यहां के राजराणा श्रीदूलहसिहजी, उनके सुपुत्र कल्याणसिहजी, ठाकुर सामन्तसिहजी तथा दीवान गणेशरामजी आदि ने व्याख्यानों का अच्छा लाभ लिया। अनेक व्यक्तियो ने हिंसा आदि पापो का परित्याग किया।

यहा से विहार करके आप छोटी सादडी, नीमच, जीरण, मन्दसौर, नगरी होते हुए फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन जावरा पधारे। उस समय युवाचार्यजी महाराज, मुनिश्री बडे चादमलजी महाराज आदि सन्त सम्मिलित हो गए थे। इस प्रकार ठा. १९ से आपने जावरा मे पदार्पण किया। यहा भी दया, त्याग प्रत्याख्यान आदि अनेक धर्म-कार्य हुए।

होली के दूसरे दिन जावरा से विहार करके आप सरसी, सेमलिया, नामली आदि होते हुए चैत्र कृष्णा ५ को ठाणा १३ से रतलाम पधारे। जनता ने सोत्साह और अपूर्व स्वागत किया। हितेच्छु श्रावक मडल की बैठक के कारण बाहर से अनेक सज्जन आए हुए थे। सभी ने इस अवसर से अच्छा लाभ उठाया।

रतलाम श्रीसघ ने अत्यन्त आग्रह के साथ इस बार रतलाम मे ही चातुर्मास व्यतीत करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने अवसर देखकर अपनी मर्यादा के अनुसार स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति से जनता के हर्ष का पार न रहा।

चैत्र शुक्ला ९ को पूज्यश्री ने झम्मुबाई तथा सम्पतबाई को दीक्षा दी।

पूज्यश्री खाचरौद पधारे। सोलह वर्ष बाद यहां आपका शुभागमन हुआ था, इस कारण जनता मे अपूर्व उत्साह था। आपके व्याख्यान प्राय' खुले बाजार में होते थे। सभी प्रकार की जनता बड़ी सख्या मे लाभ उठाती थी।

बैसाख कृष्ण ६ के दिन श्रीवीरचन्दजी की पौत्री गुलाबबाई को पूज्यश्री ने प्रवर्त्तिनी श्रीआनन्दकुंवरजी महासती की नेश्राय मे दीक्षित किया।

यहा से विहार कर आप जब बरडावदा पधारे तो महागढ़ के श्रावकों ने अपने यहां पधारने की प्रार्थना की। महागढ में बैसाख शुक्ला ७ को श्रीरतनलालजी वीराणी की दीक्षा होने वाली थी। वहां के श्रीसघ की प्रबल इच्छा थी कि दीक्षाविधि पूज्यश्री के कर-कमलो द्वारा ही सम्पन्न हो। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और महागढ़ पधारे। दीक्षाकार्य सम्पन्न करके आप ठा. ९ से नीमच और मन्दसौर पधार गये। मन्दसौर में आपके अनेक व्याख्यान हुए। तदनन्तर आप नदावला, करजू और जावरा होते हुए रतलाम पधार गये। यहा मुनिश्री श्रीचन्दजी म. ठा २ से पहले ही विराजमान थे। इस प्रकार दस ठाणा हो गए।

तयालीसवां चातुर्मास (वि. सं. १९९२)

वि. सम्वत् १९९२ का चातुर्मास पूज्यश्री ने रतलाम में व्यतीत किया। अनेक उपकार हुए। श्रीहुक्मीचन्दजी कटारिया तथा मास्टर ओकारलालजी ने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। पूज्यश्री ने सात दिन का उपवास किया। तपस्वी श्रीमागीलालजी महाराज ने महीने की तपस्या की। अन्य सन्तो ने यथायोग्य तपस्या की।

मुनियो की तपस्या के पूर पर सङ्घ द्वारा आमत्रणपत्रिकाए भेजने की प्रथा पूज्यश्री ने पसन्द नही की। यहा तक कि आपने पारणे के दिन की घोषणा तक नही की। आपने सिर्फ इतना फरमाया कि तुम किसी भी दिन त्याग-तपस्या आदि करके तपस्वी मुनियो के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकते हो। परिणामस्वरूप श्रावण शुक्ला १४ को श्रावको ने विशेष रूप से त्याग तथा तपस्या करके मुनियों के प्रति अपनी श्रद्धाजलि प्रकट की।

पंजाब केसरी पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज का स्वर्गवास

पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक वयोवृद्ध, विद्वान् और अनुभवी आचार्य थे। ता. ६ जुलाई १९३५ को आपका दुःखद स्वर्गवास हो गया। आपके पजाब केसरी का विरुद था और पजाब के स्था. जैन श्रीसघ के आप मुख्य धर्माधार थे। अतएव आपके स्वर्गवास से न केवल पजाब के वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष के स्था. जैन समाज को प्रबल आघात पहुचा।

पूज्यश्री पतित-पावन थे और आपकी वाणी मे उग्र सयम का ऐसा तेज अन्तर्निहित रहता था कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नही रहते थे। उदयपुर के श्रोतावर्ग मे जहां रियासत के उच्च से उच्च पदाधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक जन थे, वहा उदयपुर की प्रसिद्ध वेश्या मुमताजवाई भी थी। पूज्यश्री का उपदेश सबके लिए समान हितकर था और उसे सुनने के लिए मनुष्य मात्र के लिए द्वार खुला था। इस लिहाज से पूज्यश्री किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष के नही, सभी के थे। वह जगत् की अनमोल संपदा थे और सारा जगत् उसका अपना था। मुमताजवाई ने पूज्यश्री का उपदेश सुना। उपदेश उसके अन्तर तक पहुंचा और उसका जीवनव्यापी कलुष धुल गया। उस वाई ने जीवन भर के लिए वेश्या-वृत्ति का परित्याग कर दिया और मास-मदिरा के सेवन का भी त्याग कर दिया। उसके त्याग का बडा प्रभाव पड़ा। स्थानीय कन्या-विद्यालय की मुख्याध्यापिका ने मुमताजबाई को गले लगाया तथा बहिन कहकर उसे सम्वोधन किया। पं. प्यारेकिशनजी कौल ने उस बहिन की शुद्धि के लिए पूज्यश्री का आभार माना और मार्मिक शब्दो मे उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की। मुमताजबाई ने यह सिद्ध कर दिया कि पतित समझे जाने वाले व्यक्तियों मे भी उज्ज्वल आत्मा विद्यमान रहती है। चाहिए कोई पूज्यश्री सरीखा प्रभावशाली और सहानुभूतिशील सन्त, जो उस आत्मा को जगा सके, उठा सके। दुर-दुराने वाले दूसरो की भलाई नही कर सकते।

पौषकृष्ण दशमी को पूज्यश्री ने विहार किया। प. प्यारेकिशनजी, प. गोपीनाथजी, प. गगारामजी मोहले आदि के साथ हजारो नर-नारियो ने उमडते दिल से पूज्यश्री को विदाई दी।

उस दिन पूज्यश्री देहली दरवाजे के बाहर कोठारी बलवन्तसिह जी साहब की बगीची मे विराजमान हुए। बगीची और आहिड गाव में एक-एक दिन विराजने की इच्छा होने पर भी जनता के अनिवार्य आग्रह से दोनो जगह तीन-तीन दिन ठहरना पडा। महाराज खुमानसिहजी, दक्षिण प्रान्त से आये हुए दर्शनार्थी और रेलवे-कर्मचारियो का विशेष आग्रह था, आपके उपदेश से अनेक श्रोताओं ने मांस, मदिरा तथा हिंसा आदि का त्याग किया।

यहा से बबोड़ा और कानौड़ होते हुए आप बडीसादड़ी पधारे। आपके पदार्पण के उपलक्ष्य मे एक दिन अगता पलवाया गया। जैन भाइयों के अतिरिक्त यहा के राजराणा श्रीदूलहसिहजी, उनके सुपुत्र कल्याणसिहजी, ठाकुर सामन्तसिहजी तथा दीवान गणेशरामजी आदि ने व्याख्यानों का अच्छा लाभ लिया। अनेक व्यक्तियों ने हिंसा आदि पापो का परित्याग किया।

यहा से विहार करके आप छोटी सादड़ी, नीमच, जीरण, मन्दसौर, नगरी होते हुए फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन जावरा पधारे। उस समय युवाचार्यजी महाराज, मुनिश्री बड़े चादमलजी महाराज आदि सन्त सम्मिलित हो गए थे। इस प्रकार ठा. १९ से आपने जावरा मे पदार्पण किया। यहा भी दया, त्याग प्रत्याख्यान आदि अनेक धर्म-कार्य हुए।

होली के दूसरे दिन जावरा से विहार करके आप सरसी, सेमलिया, नामली आदि होते हुए चैत्र कृष्णा ५ को ठाणा १३ से रतलाम पधारे। जनता ने सोत्साह और अपूर्व स्वागत किया। हितेच्छु श्रावक मडल की बैठक के कारण बाहर से अनेक सज्जन आए हुए थे। सभी ने इस अवसर से अच्छा लाभ उठाया।

रतलाम श्रीसघ ने अत्यन्त आग्रह के साथ इस वार रतलाम में ही चातुर्मास व्यतीत करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने अवसर देखकर अपनी मर्यादा के अनुसार स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति से जनता के हर्ष का पार न रहा।

चैत्र शुक्ला ९ को पूज्यश्री ने झम्मुबाई तथा सम्पतवाई को दीक्षा दी।

पूज्यश्री खाचरौद पधारे। सोलह वर्ष वाद यहा आपका शुभागमन हुआ था, इस कारण जनता मे अपूर्व उत्साह था। आपके व्याख्यान प्राय. खुले वाजार मे होते थे। सभी प्रकार की जनता वडी संख्या मे लाभ उठाती थी।

वैसाख कृष्ण ६ के दिन श्रीवीरचन्दजी की पौत्री गुलाववाई को पूज्यश्री ने प्रवर्त्तिनी श्रीआनन्दकुंवरजी महासती की नेश्राय मे दीक्षित किया।

यहा से विहार कर आप जव वरडावदा पधारे तो महागढ के श्रावको ने अपने यहा पधारने की प्रार्थना की। महागढ मे वैसाख शुक्ला ७ को श्रीरतनलालजी वीराणी की दीक्षा होने वाली थी। वहा के श्रीसंघ की प्रवल इच्छा थी कि दीक्षाविधि पूज्यश्री के कर-कमलो द्वारा ही सम्पन्न हो। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और महागढ पधारे। दीक्षाकार्य सम्पन्न करके आप ठा. ९ से नीमच और मन्दसौर पधार गये। मन्दसौर में आपके अनेक व्याख्यान हुए। तदनन्तर आप नदावला, करजू और जावरा होते हुए रतलाम पधार गये। यहां मुनिश्री श्रीचन्दजी म ठा २ से पहले ही विराजमान थे। इस प्रकार दस ठाणा हो गए।

तयालीसवां चातुर्मास (वि. सं. १९९२)

वि. सम्वत् १९९२ का चातुर्मास पूज्यश्री ने रतलाम मे व्यतीत किया। अनेक उपकार हुए। श्रीहुक्मीचन्दजी कटारिया तथा मास्टर ओकारलालजी ने आजन्म व्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। पूज्यश्री ने सात दिन का उपवास किया। तपस्वी श्रीमागीलालजी महाराज ने महीने की तपस्या की। अन्य सन्तो ने यथायोग्य तपस्या की।

मुनियो की तपस्या के पूर पर सङ्घ द्वारा आमन्त्रणपत्रिकाए भेजने की प्रथा पूज्यश्री ने पसन्द नही की। यहा तक कि आपने पारणे के दिन की घोषणा तक नही की। आपने सिर्फ इतना फरमाया कि तुम किसी भी दिन त्याग-तपस्या आदि करके तपस्वी मुनियो के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकते हो। परिणामस्वरूप श्रावण शुक्ला १४ को श्रावको ने विशेष रूप से त्याग तथा तपस्या करके मुनियो के प्रति अपनी श्रद्धाजलि प्रकट की।

पंजाब केसरी पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज का स्वर्गवास

पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक वयोवृद्ध, विद्वान् और अनुभवी आचार्य थे। ता. ६ जुलाई १९३५ को आपका दुःखद स्वर्गवास हो गया। आपके पजाब केसरी का विरुद था और पजाब के स्था. जैन श्रीसघ के आप मुख्य धर्माधार थे। अतएव आपके स्वर्गवास से न केवल पजाब के वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष के स्था. जैन समाज को प्रबल आघात पहुचा।

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज को जब यह समाचार विदित हुआ तो आपने बहुत ही खेद प्रकट किया। स्वर्गस्थ महापुरुष की पुण्यस्मृति में ता. ८ जुलाई को व्याख्यान बद रखा गया और शोकसभा की गई।

पूज्यश्री का वह मौन-दिवस था; फिर भी आपने स्वर्गस्थ आत्मा का गुणानुवाद करते हुए फरमाया-

'महापुरुषो की मृत्यु भी समाधियुक्त होती है; इसी कारण इसे पण्डितमरण कहते है। ज्ञानी पुरुष ऐसी मृत्यु को महोत्सव मानते हैं। यह एक प्रकार से निर्वाण कल्याणक है। कायोत्सर्ग, त्याग, प्रत्याख्यान आदि के द्वारा उस समय उत्तम भावनाओं में रमण करने का शास्त्रों मे उपदेश दिया गया है। पूज्य श्रीसोहनलालजी महाराज ने भी ऐसी ही मृत्यु प्राप्त की है।

उनके उत्तराधिकारी पूज्य काशीरामजी महाराज'[1] से भी हमे पूरी आशा है कि वे दर्शन और चारित्र की उन्नति करते हुए जिन शासन को दिपाएगे।'

अल्पारंभ- महारंभ

पूज्यश्री रूढ़ियों के पक्षपाती नही थे। रूढ़ियों से चिपटे रहना विवेकहीनता या मानसिक दुर्बलता का चिह्न है। जो व्यक्ति अपने विवेक से उचित अनुचित एव कल्याण-अकल्याण का निश्चय करता है वह सिर्फ परम्परागत रूढ़ि के कारण अकल्याण को कल्याण मानने के लिए उद्यत नही हो सकता। वह अपनी विवेक बुद्धि से निर्णय करता है और आगम का बल पाकर निर्भयता के साथ अपने निर्णय की घोषणा करता है। ऐसा करते हुए वह हिचकता नही। ऐसा विवेक विभूषित पुरुष ही जगत का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। उसी को नेता कहा जा सकता है।

पूज्यश्री में मौलिक विचार करने की आश्चर्यजनक क्षमता थी। आगम उनके आदर्श थे और उनमें से मक्खन निकाल लेने मे वे बड़े ही दक्ष थे।

हिंसा-अहिंसा या महारंभ और अल्पारभ के विषय में आप विवेक और यतना को प्रधानता देते थे। मगर समाज में एक ऐसी रूढ़ि प्रचलित थी और अब भी है कि लोग दूसरे से काम कराने की अपेक्षा अपना काम आप करने में अधिक पाप मानते हैं। वे प्रत्यक्ष की अल्प हिंसा के सामने बड़ी-से-बड़ी अप्रत्यक्ष हिंसा को नगण्य समझते हैं। पूज्यश्री ने इस विषय में गभीर चिन्तन किया और अप्रत्यक्ष की घोर हिंसा को टालने का उपदेश दिया। आपने बतलाया- 'चर्खा कातने की अपेक्षा चर्बी-लगे वस्त्र पहनने मे अधिक पाप है। स्वय यतना रखकर रसोई बनाने की अपेक्षा हलवाई से पूड़ियां खरीदकर खाने में अधिक पाप है; क्योंकि हलवाई उतनी यतना नही रखता।'

इस प्रकार का बुद्धिगम्य उपदेश भी, सिर्फ रूढ़ि के विरुद्ध होने के कारण बहुत-से श्रावकों और साधुओं को जँचा नहीं। कई लोगों ने तो इस बात को लक्ष्य करके पूज्यश्री के विचारों का विरोध करने का भी प्रयास किया। ऐसे सब भाइयों को समझाने के लिए एक दिन पूज्यश्री ने निम्नलिखित व्याख्यान दिया-

---

१. खेद है कि इस समय पूज्यश्री काशीरामजी म भी विद्यमान नही है। आप भी स्वर्ग सिधार गये है। आपके उत्तराधिकारी इस समय पूज्यश्री आत्मारामजी म है, जो उत्कृष्ट विद्वान् है, शास्त्रज्ञ और अनुभवी है।

अल्पारम्भ-महारम्भ पर विवेचन

शास्त्रनीति तथा व्यवहार सभी मे विवेक को वडा माना है। विवेक के विना कोई काम अच्छा नही होता। ऐसी दशा मे धर्म में विवेक न रहने पर धर्म की दशा कैसे ठीक हो सकती है ? अविवेक के कारण धर्म की वात भी अधर्म का रूप ले लेती है विवेक से अधर्म का काम भी धर्म के रूप मे परिणत किया जा सकता है। सुबुद्धि प्रधानमन्त्री ने गन्दे पानी को भी विवेक से अच्छा वना लिया था और राजा को प्रतिवोध देकर धर्मात्मा वना लिया था। इसी तरह अविवेक से अच्छी वस्तु भी वुरी वन सकती है। प्रत्येक काम में विवेक की आवश्यकता है। धर्म में भी विवेक ही प्रधान है।

अल्पपाप और महापाप के विषय मे यहा और वाहर कई गावो के लोग मुझसे कहते है और पत्रो में भी इसकी चर्चा चलती है। इससे कई गृहस्थो ने मुझे पूछा कि आपकी मान्यता क्या है ? जैसा कि हाल मे भाई रतनलालजी नाहर, वरेली-निवासी ने कहा। इसलिए आज मै अपनी मान्यता प्रकट करता हूं।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि हलवाई के यहां से सीधी चीजें लाकर खाने में कम पाप है या घर में बनाकर खाने मे ? इसी तरह कपडे और मकान के लिए भी प्रश्न करते हैं। वे यहा तकपूछ वैठते है कि हाथ से चमड़ा चीरकर जूता वनाकर पहिनना ठीक है या सीधा खरीद कर ?

कई लोग तो मेरे विवेक विषयक विचार कथन में यह रूप देते है कि महाराज तो हाथ से रोटी बनाकर खाने का उपदेश देते है। और इस प्रकार वात विगाड़कर मुझ पर सावध उपदेश देने का दोष लगाते है। लोग पाप से वचना चाहते हैं और समाज मे सावध उपदेश देने वाले को साधु नही माना जाता। इस प्रकार के कथन का उद्देश्य तो यही हो सकता है कि लोगो का मन मेरी ओर से हट जाय। फिर भी आप लोगों का चित्त मेरी ओर से नही हट रहा है। यह पूर्वजो का प्रभाव है। फिर भी मै आप से अनुरोध करता हू कि मन में किसी प्रकार की शका न रहने दीजिए। शास्त्र मे शंका कांक्षा आदि को समकित का अतिचार माना है और इन्हे 'पयाला' शव्द देकर और व्रतो के अतिचारो की अपेक्षा वड़ा माना है।

सङ्कोच, अवकाश न मिलना, प्रकट करने की सामर्थ्य न होना आदि कारणो से चित्त मे शंका रह जाती है। किन्तु गीता मे कहा है- 'संशयात्मा विलक्ष्यति।'

श्रद्धा को सबने महत्त्व दिया है और कहा है- 'श्रद्धयमोऽय पुरुषः यो मनछद्धः स एव सः।' अर्थात् पुरुष श्रद्धामय है। जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह वन जाता है। इस प्रकार श्रद्धा को सब ने बड़ा माना है। शंका से श्रद्धा मे दोष आता है।श्रद्धा मे दोष आने के बाद कुछ नहीं बचता। इसलिए शंका मिटाते समय सङ्कोच न करना चाहिए। शंका बनी रहने पर हानि होती है।

अल्पारम्भ और महारम्भ का प्रश्न उन्ही के लिए हो सकता है जो सम्यकदृष्टि और व्रती है। मिथ्यात्वी के लिए नही हो सकता। जैसे जहां बडा कर्ज लदा हुआ है वहां छोटे कर्ज की गिनती नहीं होती। जैसे १२३५ में से बड़ी संख्या दस हजार की है। जिस पर १० हजार रुपए का कर्ज है, वहां पाच या पैतालीस के लेन-देन की बात नही होती।

जो मिथ्यावादी है उसके लिए दूसरी बात करने की आवश्यकता नही रहती। किन्तु जो सम्यकदृष्टि है उसे इस बात का विचार रखना ही चाहिए कि अल्पपाप और महापाप कहाँ कैसे होता

है ? मैं निश्चय से नही कह सकता कि यह काम अल्पपाप का है या यह महापाप का। मै तो यह कहता हू कि जहां विवेक है वहां अल्पपाप हे, जहा विवेक नही है वहा महापाप है। मैने सदा यही कहा है कि पाप की न्यूनाधिकता विवेक पर अवलम्बित है।

जो काम महारम्भ से होता है वही काम विवेक से अल्पारम्भ वाला भी हो सकता है। इसी प्रकार अल्पारम्भ वाला कार्य अविवेक के कारण महारम्भ वाला वन जाता है।

जब मेरी आयु १० वर्ष की थी उस समय की बात है। हमारे गाँव के कुछ लोगो ने गोठ करने का निश्चिय किया। उसमे मक्की के भुजिए बनाये गए। उसमे मेरे मामाजी भी सम्मिलित थे। वे धर्म का विचार रखते थे। चौविहार करते थे। नित्य प्रतिक्रमण करते थे। मेरे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा थी। माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण मै उन्हे पिता की तरह मानता था।

कुछ लोगो ने भांग के भुजिए बनाने की सोची। मामाजी ने मुझे भाग की पत्तियां लाने के लिए कहा। मै दौड़ा गया और लगभग सेर पत्तिया तोड लाया। यह पत्तिया लाते देखकर उन्होंने मुझसे कहा- "थोड़ी भांग काफी थी, इतनी पत्तिया क्यों तोड़ लाए ?" उनके हृदय मे धर्म का विचार आया और मुझे कोसने लगे। मै बच्चा था, विवेकशून्य था। इसलिए ऐसा हुआ। समझदार होता तो उतनी ही पत्तिया तोड़ता जितनी आवश्यक थीं। मामाजी ने भी पहले मुझे यह शिक्षा नहीं दी। इसलिए उस महारम्भ का कारण अविवेक हुआ। यदि वे स्वय जाते तो थोड़ी पत्तिया लाते। इसलिए उनके करने के बजाय कराने मे अधिक पाप हुआ। सेठ् व्रदभाणजी कहते थे कि जब मैं शौच गया तो नौकर से पानी लाने के लिए कहा। वह लीलन फूलन आदि रौंदता हुआ गया और जल्दी से अनछना पानी भर लाया। यह अधिक पाप किसको हुआ ? क्या इस पाप की जिम्मेवारी कराने वाले पर भी नहीं है ? यदि सेठजी स्वयं पानी भरने जाते और विवेक से काम लेते तो कितना आरम्भ टाल सकते थे। उन्होंने नौकर को भेजा इसलिए क्या सेठजी को पाप नही हुआ ? इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वय करने की अपेक्षा कराने में अधिक पाप हो सकता है। यदि किसी भाई के मन मे शका हो तो वह जिज्ञासु-वृत्ति से पूछ सकता है।

इस धर्म के उत्पादक क्षत्रिय थे। उन्होंने बड़े-बड़े राज्य किए थे। उदायन सोलह देशों का राजा था। फिर भी वह अल्पारम्भी था या महारम्भी ? इतना बड़ा राज्य होने पर भी विवेक के कारण वह अल्पारम्भी बना रहा। भगवान् ने विवेक में धर्म बताया है। यदि विवेक मे धर्म न होता तो यह धर्म क्षत्रियो के पालने योग्य न रहता। विवेक रखकर एक राजा बडे-से-बड़े राज्य को चला सकता है और अल्पारम्भी बना रह सकता है।

कभी करने में ज्यादा पाप होता है, कभी कराने में और कभी अनुमोदन मे। विवेक न रखने पर जितना अनुमोदना मे पाप हो जाता है उतना करने और कराने में नहीं होता।

एक राजा के सामने ऐसा अपराधी आया जो फासी का अधिकारी था। राजा सोचने लगा कि मैं इसके प्राण नही लेना चाहता, किन्तु यदि दण्ड न दिया गया तो न्याय का उल्घन होगा और अव्यवस्था फैल जायगी। न्याय की रक्षा के लिए राजा ने बडे सकोच के साथ उसे फासी का हुक्म दे दिया। फासी लगाने वाले उस अपराधी को ले चले और सोचने लगे इस प्रकार दूसरो के प्राण लेने का काम बहुत

बुरा है। लेकिन राजाज्ञा माननी ही पडेगी। वे अपनी विवशता और लाचारी पर पश्चात्ताप कर रहे थे। इस प्रकार सोचते हुए वे अपराधी को फांसी के स्थान पर ले गए।

वधस्थान पर एक और आदमी खड़ा था। वह उस व्यक्ति को फांसी चढते देखकर वडा खुश हुआ और मन ही मन अनुमोदना करने लगा।

राजा और जल्लाद काम करने पर भी मन मे अच्छे विचार होने के कारण अल्पारम्भी है। वह व्यक्ति कुछ न करने पर भी अपराधी है। इस प्रकार अनुमोदना से भी महारम्भ हो सकता है। इन सव मे विवेक ही प्रधान है।

फांसी लगाने की जगह पर और लोग भी थे। कुछ लोगों को उस पर दया आ रही थी और वे सोच रहे थे, यदि इसने पाप न किया होता तो ऐसा परिणाम क्यों होता? हमे पाप से वचना चाहिए। कुछ लोग खुश हो रहे थे। वे उसकी मृत्यु पर हर्ष मना रहे थे। इन दोनो विचार वाले दर्शको मे महापापी कौन और अल्पपापी कौन हे?

मै यह नही कहता कि करने से ही पाप होता हे या कराने से ही होता हे। मे तो सिर्फ यह कहता हूँ, जहा अविवेक है, वहा महापाप है। जहां विवेक है, वहां अल्पपाप है।

एक और उदाहरण लीजिए। एक डाक्टर चीर-फाड का काम जानता है। लेकिन वह कहता है कि मुझे घृणा आती है, इसलिए मै ऑपरेशन नही करता। वह अनाडी कम्पाउडर से ऑपरेशन करने के लिए कहता है। ऐसी दशा में उस डाक्टर को स्वय करने की अपेक्षा कराने मे अधिक पाप है। एक डाक्टर स्वयं ऑपरेशन करना नही जानता, वह यदि जानने वाले से कहता है कि तुम ऑपरेशन कर दो तो इस कराने मे अल्पपाप है। कराना दोनों जगह समान होने पर भी एक जगह अल्पपाप है दूसरी जगह महापाप। स्वयं न जाननेवाला यदि जानने वाले को रोक कर स्वयं ऑपरेशन करता है तो ऐसा करना महापाप है। ऐसे आदमी का किया हुआ ऑपरेशन यदि सफल भी हो जाय तो भी सरकार उसे अपराधी मानेगी। पहले डाक्टर के काराने पर महापाप लगा, दूसरे के कराने पर अल्पपाप। तीसरे के करने पर भी महापाप। तीनों का अन्तर विवेक पर निर्भर है। इस प्रकार धर्म मे विवेक की परम आवश्यकता है।

एक और उदाहरण है। एक बहिन विवेकवाली है और दूसरी विवेकशून्य। विवेकवाली बहिन सोचती है कि रोटी बनाने में पाप है किन्तु अपना तथा परिवार वालो का पेट भरना ही पड़ता है। इसलिए वह विवेकशून्य बाई को रसोई के कार्य में लगा देती है। असावधानी के कारण उसे आग लग गई और उसकी मृत्यु हो गई। उसके मरने पर विवेकशील बहिन क्या यह सोच सकती है कि मैं पाप से बच गई? वह सोचेगी यदि मैं स्वयं कार्य करती तो इतना अनर्थ न होता। इस प्रकार कराने मे अधिक पाप हुआ। यदि विवेकशून्य बहिन स्वय करने बैठ जाती है और विवेक वाली बहिन को नही करने देती तो उस करने मे अधिक पाप है।

स्वयं करने की अपेक्षा कराने और अनुमोदन करने में एक दूसरी दृष्टि से भी अधिक पाप है। स्वयं हाथ से कार्य करने पर कोई कितना भी करे, फिर भी मर्यादित रहेगा। कराने पर लाखों-करोड़ों व्यक्तियो से कहा जा सकता है। करने मे दो ही हाथ रह सकते है। कराने मे लाखों-करोड़ों हाथ लग

सकते है। करने का समय भी मर्यादित ही होगा। कराने में अपरिमित समय रह सकता है। करने का क्षेत्र भी मर्यादित ही होगा। कराने के क्षेत्र में कोई मर्यादा नहीं है। इस तरह करने में द्रव्य, क्षेत्र और काल तीनों मर्यादित रहते है। कराने में सभी विस्तृत हो जाते है। इस प्रकार स्वयं करने या कराने के लिए व्यक्ति आदि साधनो की आवश्यकता होती है। किन्तु घर वैठे ही सारे ससार के कार्यों का अनुमोदन किया जा सकता है। व्यक्ति ने आवश्यकता के लिए महल वनवाया किन्तु उसकी सराहना नही की। देखने वाले ने उसकी बडी सराहना की। तो महल बनाने वाला अल्पपापी रहा और अनुमोदन करने वाला महापापी।

विलायती कपडा यहां नही बनता, किन्तु यहां बैठे ही उसका अनुमोदन हो सकता है। विज्ञापन देखकर कह सकते हो कि यह कपड़ा बहुत बढिया है। यह हमें मिल जाता तो कितना अच्छा होता। इस प्रकार विलायत मे होने वाली हिंसा का यहा बैठे अनुमोदन हो जाता है। इस प्रकार अनुमोदन के द्रव्य, क्षेत्र और काल करने एवं कराने से बहुत अधिक है। अनुमोदन का पाप ऐसा है कि बिना कुछ किए ही महारम्भ हो जाता है।

भगवती सूत्र के २४वें शतक मे तन्दुल मत्स्य की कथा आई है। वह बड़े मगरमच्छ की पलकों पर रहता है और इतना छोटा होता है कि किसी जीव को नहीं मार सकता। फिर भी वह मर कर सातवें नरक मे जाता है। इसका कारण अनुमोदन या विचार है। बड़े मगर के मुंह में घुसती हुई और निःश्वास के साथ निकलती हुई मछलियों को जब वह देखता है तो सोचता है यह मत्स्य बड़ा मूर्ख है जो इतनी मछलियों को वापिस जाने देता है। मैं होता तो एक भी मछली को न निकलने देता। इसी प्रकार हिंसामय अनुमोदन से वह सातवें नरक मे जाता है। करने या कराने की उसमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है।

पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज एक स्तवन फर्माया करते थे-

जीवड़ा मत मेलो रे मो मन मोकलो, मन मोकलड़े रे ह्मण।
जिण हीज नयाणेरे निरखे सुन्दरी तिनहीज बेनड़ जाण॥
पुण्य तणे परिणामे विचरतां मोटी निपजेरे हाम। जीवड़ा।

एक व्यक्ति जिन आखो से अपनी बहिन को देखता है, उन्हीं आंखों से पत्नी को देखता है, किन्तु दोनो दृष्टियो में महान् अन्तर है। आंखें किसी को बहिन या स्त्री नहीं बनातीं। यह सारा काम मन का है। जो स्त्रिया कामी पुरुष को विलासिनिया दिखाई देती हैं वे ही महापुरुष के पास पहुचने पर बहनें बन जाती है। मन से पाप भी होता है और पुण्य भी। ''मन एव मनुष्याणां कारण बन्धमो क्षयोः।''

कोई कह सकता है कि जैनशास्त्रों में तो मन, वचन और काय तीनों को कर्मबन्ध का कारण माना है। यह ठीक है, किन्तु मन पर बहुत कुछ निर्भर है। बहिन और स्त्री दोनो को देखना समान होने पर भी मन के कारण पुण्य और पाप बन जाता है। बिल्ली अपने बच्चों को जब एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना चाहती है तो मुह में दबा कर ले जाती है। इसी प्रकार वह चूहों को भी ले जाती है। आप चूहे को छुड़ाने के लिए दौड़ते है किन्तु बच्चों को नही छुड़ाते। इसका कारण यही है कि दोनो जगह बिल्ली की भावना मे फरक है। एक जगह हिंसा की भावना है दूसरी जगह प्रेम की। बिल्ली सब चूहो को नही मार सकती पर वह सब की बैरिन मानी जाती है। इसका कारण यही है कि उसके मन में सभी चूहो के विनाश की भावना समाई हुई है। अतः मन ही पाप का प्रधान कारण है।

मै सच्ची प्ररूपणा कर रहा हूँ। इसमे मुझे किसी प्रकार का भय नही है। चाहे ऐसा करने में प्राण चले जावे। सत्य के लिए प्राण देने से वढकर खुशी का अवसर मेरे लिए क्या हो सकता है? मै कोई नई बात नही कह रहा हूं। शास्त्र और परम्परा के अनुसार ही कह रहा हूं। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज तथा उदयसागरजी महाराज भी ऐसा ही फर्माते थे। लेकिन आज यह कहा जा रहा है कि मै पूर्वजो के विरुद्ध प्ररूपणा कर रहा हू। कहने वालों का मुंह नहीं पकडा जा सकता, किन्तु आप लोगों को सत्य का निर्णय कर लेना चाहिए। मन में किसी प्रकार की शका नही रखनी चाहिए।

यह प्रश्न हो सकता है कि यदि कराने वाला और जिससे कराया जाय दोनो विवेकी हों तो कार्य को स्वय न करके दूसरे से कराने में क्या हानि है? उस दशा मे तो कराने मे ज्यादा पाप न होगा? इसका उत्तर यह है कि विवेक की अपेक्षा से तो कराने में अधिक पाप नही है। किंतु यदि कराने का द्रव्य, क्षेत्र और काल अधिक होवे तो ज्यादा पाप लग सकता है। इस विषय मे विवेक तथा मन के भावो से अधिक जाना जा सकता है।

एक और प्रश्न होता है कि सामायिक में करने और कराने का ही त्याग किया जाता है। जब अनुमोदन में पाप ज्यादा है तो उसका त्याग क्यों नही किया जाता! वडे पाप का त्याग तो पहले करना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि अनुमोदना का त्याग करने की शक्ति नहीं होती। इसलिए उसका त्याग नही कराया जाता। प्रत्येक कार्य शक्ति के अनुसार ही करना ठीक होता है। एक जगह छोटी और वडी कई प्रकार की मोगरी पड़ी हुई है। छोटा वालक वड़ी मोगरी नही उठा सकता, इसलिए उसे छोटी मोगरी उठाने के लिए कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वड़ी मोगरिया छोटी मोगरिया हो गईं और छोटी बडी। भगवान् ने शक्ति देखकर त्याग कराने का विधान किया है। उन्होने श्रावक मे इतनी ही शक्ति देखी कि वह करने और कराने का ही त्याग कर सकता हे, अनुमोदना का नही। तदनुसार करने और कराने के त्याग का ही विधान है। इसका अर्थ यह नही कि करने और कराने के पाप से अनुमोदना का पाप छोटा है। आप गृहस्थ होने के कारण अनुमोदना के पाप से वच भी नही सकते। जिस समय आप सामायिक मे बैठते हैं उस समय स्वयं करने और कराने का त्याग तो करके बैठते है किन्तु घर, दुकान, कारखाने आदि मे जो काम हो रहा है उसका त्याग नही करते। इसलिए अनुमोदन तो हो ही जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के ५वें अध्ययन की २०वीं गाथा मे बताया है कि सब श्रावक एक तरफ हो जाय और एक साधु दूसरी तरफ, तो उनमे साधु ही बडा है। इसका कारण यही है कि साधु के अनुमोदना का भी त्याग होता है। श्रावक के करने और कराने का त्याग होने पर भी अनुमोदन का त्याग नही होता। इसलिए अनुमोदना का पाप बड़ा है।

(भाद्रपद शु. ३ सम्वत् १९९२)

रतलाम मे पूज्यश्री के विराजने से बहुत उपकार हुआ। दो सज्जनो ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। इसी प्रकार परस्त्री गमन, मादक वस्तुओ के तथा चर्बी वाले वस्त्र, रेशमी वस्त्र, आदि के भी बहुत से त्याग हुए। दया, पोषा उपवास आदि बडी सख्या में हुए। साधु और श्रावकों ने विविध प्रकार की तपस्या की। गोगुदा वाले श्रावक गणेशमलजी ने ४५ तथा कानोड वाले श्रावक माणकचन्दजी ने २२ उपवास एक साथ किए। अन्य छोटी-मोटी तपस्याएं भी हुई।

युवाचार्यश्री को अधिकार प्रदान

पाठक यह जान ही चुके है कि पूज्यश्री ने जावद मे मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था; किन्तु सम्प्रदाय की देखरेख और व्यवस्था का भार अब तक आप स्वय सँभालते थे। कुछ दिनों के पश्चात् पूज्यश्री ने विचार किया- 'अपनी मौजूदगी मे ही युवाचार्यजी को साम्प्रदायिक व्यवस्था का भार सौंप देने सें अनेक लाभ होंगे। प्रथम तो मै निश्चित होकर एकाग्र भाव से आत्मसाधना मे लीन हो सकूगा, दूसरे युवाचार्यजी को विशेष अनुभव हो जाएगा और आगे चलकर उन्हे सुविधा रहेगी।

इस प्रकार विचार करके आश्विन कृष्णा ११, सोमवार, ता. २३ सितम्बर १९३५ को आचार्यश्री ने व्याख्यान मे उक्त विचार की घोषणा कर दी और युवाचार्य को अधिकार पत्र प्रदान कर दिया। आपने फर्माया:-

मैं दक्षिण मे, पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज से दूर था। लेकिन पूज्यश्री ने, न मालूम मेरे हृदय को कैसे जाना ? उन्होने कौन जाने क्या अनुभव किया ? उदयपुर मे उन्होने सम्प्रदाय का भार मुझे सौपना तय कर लिया। मै दूर दक्षिण में था और वे उदयपुर में थे। सम्प्रदाय का भार मेरे ऊपर रखना साधारण बात नहीं थी। यह उनके विशाल अनुभव और विचारशीलता की हद है। पूज्यश्री को विश्वास था कि मै जो कुछ कहूगा उसे वह (पूज्यश्री जवाहलाल जी म.) अवश्य मान लेगा। इसी विश्वास के आधार पर रतलाम में सब तैयारी कर ली गई। मै पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुआ। मैंने लिखित प्रार्थना की कि मुझ पर भार डालने पर भी सारा कार्य आपको ही करना होगा। पूज्यश्री ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मैं यह पद स्वीकार करने को विवश हो गया। कुछ समय तक पूज्यश्री कार्य सभालते रहे। तत्पश्चात् एक दिन उन्होंने फर्माया-'अब चौमासे नियत करने आदि का कार्य तुम्हीं करो। मेरा चौमासा भी तुम्हीं निश्चित करो। जब तुम मेरा भी चौमासा निश्चित करोगे तो मैं प्रत्येक कार्य के लिए सबसे यही कहूगा कि सब कुछ जवाहरलालजी जाने।' पूज्यश्री ने यह फर्माया सही मगर मै ऐसा न कर सका। पूज्यश्री की विद्यमानता में मै अपने हाथ मे सब कार्य न ले सका। यह किसे मालूम था कि मुझे उत्तरदायित्व सौंपने के कुछ ही समय बाद पूज्यश्री स्वर्ग सिधार जाएगे ? पूज्यश्री जयतारण में स्वर्ग पधार गये। उस समय मैं वहा मौजूद न था। अचानक सम्प्रदाय का समस्त भार मेरे माथे आ पड़ा। मै तब अनुभव करने लगा कि अगर पूज्यश्री की मौजूदगी में ही मै कार्य करने लगा होता तो यह अचानक आया हुआ भार मुझे दुस्सह न जान पड़ता।

इसी अनुभव को लेकर मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि जो अवसर मिला है उसका उचित उपयोग कर लिया जाय। तदनुसार सम्प्रदाय का कार्यभार, जैसे-दण्ड-प्रायश्चित देना, चौमासे निश्चित करना, सम्प्रदाय के अन्य कार्यो को संभालना आदि, मैं युवाचार्य गणेशीलालजी को सौपता हूॅ।

कई भाइयो का खयाल है कि मै व्याख्यान देना बद करके मौन ग्रहण कर लूगा। लेकिन सम्प्रदाय का भार सौपने और व्याख्यान देने के कार्य का ऐसा कोई सबध नहीं है। यह कार्य अलग है। मै सम्प्द्राय के कार्य का भार युवाचार्यजी को सौप रहा हूँ।

युवाचार्यजी को सम्प्रदाय के कार्य का भार सौंपने के सवंध में मैने जो पत्र लिखा है, वह इस प्रकार है। (पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री जौहरीमलजी महाराज ने पढ़कर सुनाया)।

अधिकारपत्र

सम्प्रदाय के आज्ञावर्त्ती सन्तश्री वडे प्यारचंदजी महाराज आदि सव सन्तों, रंगूजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी आनन्दकुंवरजी आदि आज्ञावर्ती सतियां, मोताजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी केसरकुंवरजी, महतावकुंवरजी, आदि उनकी सव सतियां, एवं खेतांजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी राजकुवरजी आदि उनकी सव सतियां, इसी तरह पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छ सव श्रावको और श्राविकाओं से मेरी यह सूचना है कि-

(१) अखिल भारतवर्षीय श्रीसंघ और मैने श्रीगणेशीलालजी को सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर स्थापित कर ही दिया है।

(२) अव मै अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हू कि मेरे पर जो सम्प्रदाय की जिम्मेवारी है; अर्थात् सारणा वारणा करना, सव सन्त व सतियों को आज्ञा में चलाना, सम्प्रदाय-सम्बन्धी कार्यो की योजना करना एव सम्प्रदाय सम्वन्धी नियमों का पालन करने के लिए संघ को प्रेरित करना आदि यह सव कार्यभार अव मैं युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी के ऊपर रखता हूँ। अत. आप चतुर्विध-संघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख, पूछ-ताछ, आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मै आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्हीं को देता हूँ। केवल मेरी सेवा में जिन्हे उचित समझूगा, उन सन्तों को अपने पास रखूंगा और उन सन्तों पर मेरी देख-रेख रहेगी।

(३) आप श्रीसंघ ने मेरी आणा, धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है वैसा ही युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी का भी रखेंगे, यह मेरे को पूर्ण विश्वास है। युचाचार्य श्रीगणेशीलालजी भी श्रीसंघ के विश्वास-पात्र हैं। अतएव श्रीसघ ने उन्हे युवाचार्य-पद प्रदान किया है। इसलिए इस विषय में मुझको विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

(४) युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजो के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्रीसघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्रीसंघ सन्तुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवंत महावीर स्वामी, एवं शासन श्रेयस्कर श्रीमान् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावो के तपोमय तेज प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशीलालजी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यशः शरीर की रक्षा करते हुए शोभा बढ़ावेगे, ऐसा मेरा ही नहीं श्रीसंघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

काठियावाड़ की प्रार्थना

एक लम्बे अर्से से गुजरात और काठियावाड़ की धर्मप्रिय जनता पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए उत्कंठित थी। काठियावाड़ प्रज्ञान्त के कतिपय प्रधान श्रावकों ने कपासन-चातुर्मास के

समय वहां आकर पूज्यश्री से काठियावाड पधारने की प्रार्थना की। रतलाम मे फिर १५ प्रमुख सज्जनो का एक शिष्टमंडल उपस्थित हुआ। मोरवी, जूनागढ, गड्ढा, अमरेली आदि के श्रीसघो ने तारो और पत्रों द्वारा शिष्टमंडल की प्रार्थना में सहकार दिया। अहमदावाद श्रीसघ और वहां विराजे हुए मुनिमडल ने भी उस ओर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। इस सबल और व्यापक आग्रह को टालना पूज्यश्री के लिए कठिन हो गया। शरीर वृद्ध था और काठियावाड का कष्टकर लम्बा प्रवास करना था।

पूज्यश्री ने युवाचार्यजी से परामर्श किया और द्रव्य, क्षेत्र, काल-भाव के अनुसार उत्तर देने का आश्वासन दिया।

श्रीहेमचन्द भाई का आगमन

उन्हीं दिनो श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस का प्रचार करते हुए उसके अध्यक्ष श्री हेमचन्द रामजी भाई मेहता ता. १६ अक्टूबर १९३५ को रतलाम पधारे। उस समय श्रावकों और साधुओ का पारस्परिक सम्वन्ध प्रकट करते हुए पूज्यश्री ने व्याख्यान मे फर्माया·-

भगवान् महावीर स्वामी ने श्रावको को साधुओ के लिए 'अम्मा-पिया' बतलाया है। इस प्रकार प्रभु ने हम साधुओ को श्रावकों की गोद में रखा है। आपकी गोद मे रखते समय भगवान् ने यह लिहाज नही किया कि साधु महाव्रत-धारी और श्रावक अणुव्रत-धारी ही होता है। उन्होंने सिर्फ यह ध्यान रखा कि जिस प्रकार माता-पिता पुत्र का पालन करते है, उसी प्रकार श्रावक सघ का पालन करता है, अतएव वह साधु के लिए भी माता-पिता के समान है। भगवान का तो यह फर्मान है। अब आप श्रावक लोग हम साधुओं सुधारोगे या बिगाड़ोगे ? हमारी भूल की उपेक्षा करके हमें फिर भूल करने के लिए प्रोत्साहन देना हमें बिगाड़ना है। एक बार आदत बिगड़ने के बाद फिर सुधार होना सरल नही रहता।'

यही बात पूज्यश्री ने नाना दृष्टान्त आदि देकर बड़ी सुन्दरता के साथ समझाई और श्रावकवर्ग को अपने उत्तरदायित्व का भान कराया।

रतलाम-नरेश का आगमन

रतलाम के महाराजा कई बार पूज्यश्री के परिचय मे आ चुके थे। वे पूज्यश्री की ओजस्विनी वाणी, प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट सयम आदि गुणो से परिचित थे। पूज्यश्री पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। पूज्यश्री जिन दिनों थली-प्रान्त में विचरते थे, रतलाम-नरेश उनके विषय में अकसर पूछते रहते थे। रतलाम मे चातुर्मास होने के संवाद से उन्हे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

कार्तिक शुक्ला नवमी, ता. ५ नवम्बर १९३५ को रतलाम-नरेश पूज्यश्री के दर्शनार्थ एव उपदेश-श्रवण के लिए पधारे। महाराजकुमार, मेजर शिवजी साहेब, कमिश्नर, डाक्टर आदि रियासत के प्राय· सभी उच्च पदाधिकारी भी उस दिन वहा मौजूद थे। पूज्यश्री ने राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध एव कर्त्तव्य पर बड़ा ही प्रभावशाली उपदेश दिया। रतलाम-नरेश उत्कठा के साथ पूज्यश्री के मुखचन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करते रहे। जब उपदेश समाप्त हुआ तो पुन· सेवा मे उपस्थित होने की इच्छा प्रदर्शित करते हुए गये। जाते समय नरेश का मुखमडल ऐसा प्रसन्न था मानो उन्होने कोई अनमोल और दुर्लभ वस्तु पाई हो!

और जनता ? जनता की प्रसन्नता का पार न था। जहां-तहां 'धन्य-धन्य' की ध्वनि गूज रही थी। ऐसे समर्थ और प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक अगर कुछ अधिक होते तो प्रजा और राजा के बीच जो गहरी खाई पड़ गई है वह न पडी होती। अवांछनीय संघर्ष का यह अवसर न आया होता! राजा अपने को प्रजा का सेवक समझता और प्रजा, राजा को अपना संरक्षक समझती! दोनो का सम्मिलित स्वार्थ होता। एक का सुख दूसरे का सुख और एक का दुख दूसरे का दुख होता! प्राचीन भारतवर्ष की परम्परा-रूपी स्वच्छ चादर मे जो अनेक मैले धब्बे लग गये है वे न लगे होते! मगर इस विशाल देश में एक निस्पृह उपदेशक जो कर सकता है, उससे कही बहुत अधिक पूज्यश्री ने कर दिखाया। उन्होने नरेशो के नेत्र खोले, प्रजा को प्रतिबोध दिया और दोनो में नीति और धर्म को प्रतिष्ठित करने का प्रशस्त प्रयास किया।

बीकानेर की विनति

इसी अवसर पर बीकानेर-श्रीसंघ के प्रमुख श्रावक पूज्यश्री से बीकानेर की ओर पधारने की प्रार्थना करने आये। पूज्यश्री के समक्ष काठियावाड़ का प्रश्न उपस्थित था। अतएव पूज्यश्री ने उत्तर में फर्माया- 'यदि मै काठियावाड़ न गया तो बीकानेर फरसे बिना कही की विनति स्वीकार नही करूंगा।'

विहार

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री ठा. १० से सैलाना पधारे। वहां आपके तीन-चार व्याख्यान हुए। जनता तथा राज्याधिकारियों की प्रार्थना स्वीकार करके मृगशिर कृष्णा ७ को आपका एक विशिष्ट व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर नवमी को सैलाना-नरेश ने व्याख्यान सुनने की अभिलाषा प्रकट की। मगर अष्टमी की रात्रि को अचानक पूज्यश्री के कान में दर्द हो उठा अतः दूसरे दिन आपका व्याख्यान न हो सका। दो-तीन दिनो तक इलाज करने के पश्चात् भी दर्द कम नहीं हुआ। अतएव छोटे ग्रामो में घूमने का कार्यक्रम स्थगित करके आप अमावस्या को रतलाम पधार गये।

कुछ दिनो पश्चात् युवाचार्यश्री भी पूज्यश्री की सेवा मे पधार गये। इलाज तथा सयम से पूज्यश्री के कान का दर्द कुछ कम हो गया। पौष शुक्ला दशमी को आप ठा. १४ से जावरा की ओर पधार गये।

कुछ दिन जावरा विराजकर पूज्यश्री निम्बाहेडा, चितौड़, भीलवाड़ा, आसीन, गुलाबपुरा, विजयनगर, बदनौर आदि स्थानो को पवित्र करते हुए चैत्र कृ. १४ को ब्यावर पधारे।

दो आचार्यों का सम्मिलन

पूज्यश्री हस्तीमल महाराज ने मारवाड मे विचरते हुए पूज्यश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। तदनुसार अजमेर की ओर आपका विहार भी हो चुका था। पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज चैत्र शुक्ला ५ मंगलवार को प्रातःकाल जेठाणा पधार गये। उसी दिन सायकाल पूज्यश्री भी युवाचार्यजी के साथ ११ ठाणो से जेठाणा पधारे।

दोनो आचार्य प्रेम और वात्सल्य के साथ परस्पर मिले। दो दिन एक ही जगह व्याख्यान हुआ। दोनो आचार्यो का एक ही स्थान पर विराजमान होने का सवाद पाकर जोधपुर, अजमेर, मालवा,

मेवाड, मारवाड, काठियावाड आदि से सैकडों श्रावक दर्शनार्थ आ पहुँचे। जोधपुर और अजमेर के श्रीसंघ ने अपने-अपने यहां दोनों आचार्यो से इकट्ठा चातुर्मास करने की प्रार्थना की। उधर काठियावाड की ओर से चुन्नीलाल नागजी वोरा राजकोट-निवासी ने काठियावाड की ओर पदार्पण करने की प्रार्थना की। ब्यावर, बीकानेर और चित्तौड के श्रीसंघों ने भी आग्रह किया।

ऐसे प्रसंग बडे विकट होते है। सदय हृदय किसे निराश करे ? और औदारिक शरीर से एक साथ अनेक जगह पहुचे भी कैसे ? अतएव पूज्यश्री ने युवाचार्यजी तथा प्रधान श्रावको के साथ इस विषय पर विचार-विमर्श किया। अन्त मे काठियावाड़ की ओर पधारना निश्चित हुआ। पूज्यश्री ने ता. २९-३-३६ को निम्नलिलिखित अभिप्राय व्यक्त किया:-

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अनुकूलता हो और हम दोनो को साथ रहने का अवसर मिले, यह हम दोनो चाहते है। परन्तु पूज्य हस्तीमलजी ने जयपुर फरसने की वहा के श्रीसघ को आशा बधाई है, अतएव उन्हें जयपुर पधारना होगा, हम दोनो के मिलाप से आनन्द हुआ है। प्रेम की वृद्धि हुई। आशा है यह प्रेम भविष्य मे बढता ही रहेगा।

मैने बीकानेर-श्रीसघ को यह वचन दिया है कि काठियावाड न गया तो बीकानेर फरसे बिना अन्यत्र चौमासे की स्वीकृति देने का भाव नहीं है। अतएव बीकानेर जाऊँ तो अजमेर भी पहुचने का समय नहीं है और न इतनी शारीरिक शक्ति ही शेष है। काठियावाड़ी भाइयों का बहुत समय से तीव्र आग्रह है और इनके कथन से मालूम होता है कि उधर जाने से विशेष उपकार होगा। मुख्य मुनियो और श्रावको के साथ विचार-विनिमय करने के बाद मै कहता हूं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार छूट रखकर, काई साम्प्रदायिक मामला हो और बीच में रुकावट आ पड़े तो बात अलग, वर्ना सुखे-समाधे राजकोट-चातुर्मास के लिए काठियावाड़ की ओर विहार करने का भाव है। रुकावट का कारण उपस्थित होने पर राजकोट-श्रीसघ को सूचना दी जाय तो वह उदारतापूर्वक मुझे छुट्टी दे दे।'

काठियावाड़ को लक्ष्य करके पूज्यश्री, युवाचार्यजी के साथ ब्यावर पधार गए। ब्यावर से पाली की ओर विहार हुआ। वैसाख कृष्णा ६ को पूज्यश्री १६ ठाणें से पाली पधार गये। एकादशी को वहा से विहार किया और सांड़ेराव पधारे। यहा वह युवाचार्यजी आदि संत साथ रहे। इसके बाद युवाचार्यजी ने सादड़ी तथा मेवाड़ की ओर विहार किया और पूज्यश्री ने, प. मुनि श्रीसिरेमलजी महाराज आदि ने ठा. ९ से काठियावाड़ की ओर प्रस्थान किया।

गुजरात के प्रांगण में

गुजरात और काठियावाड़ की जैन जनता पूज्यश्री की ऐसी प्रतिक्षा कर रही थी जैसे पपीहा मेघ की प्रतीक्षा करता है। भले ही पूज्यश्री प्रथम ही बार इस प्रान्त में पदार्पण कर रहे थे मगर आपकी कीर्ति तो भारतवर्ष के कौने-कौने में व्याप चुकी थी। आपके यश के सौरभ से कौन प्रात वंचित रहा था ? आपके असाधारण तेज की प्रखर किरणावली सभी दिशाओं को आलोकित कर चुकी थी। यही कारण था कि ज्यो ही आपने गुजरात की सीमा मे प्रवेश किया कि उस प्रान्त के श्रद्धाशील और भावुक भक्त श्रावक आपके दर्शनों के लिए उमड पडे। यहां की सुबोध जनता को देखकर पूज्यश्री को भी विशेष हर्ष हुआ। सुयोग्य पात्र पाकर उपदेशक को हर्ष होना स्वाभविक था। इस प्रदेश मे आकर पूज्यश्री ने जनता की सुविधा के लिए गुजराती भाषा मे उपदेश देना आरंभ किया।

वैसाख शुक्ला १५ को आप पालनपुर पधारे। उधर अहमदावाद की ओर से मुनिश्री बड़े चादमलजी महाराज तथा मुनि श्रीगव्बूलालजी महाराज ठा. ५ पधार गये। ज्येष्ठ कृष्णा ९ तक पालनपुर विराजमान रहकर मेहसाणा होते हुए आचार्य महाराज वीरमगाम पधारे।

काठियावाड़ में

पूज्यश्री जब वीरमगाम पधारे तो वहा की जनता मे अपूर्व उत्साह का वातावरण फैल गया। जनता ने बडी दूर तक सामने जाकर पूज्यश्री का स्वागत किया और चिरकाल से हृदय मे जो भावना रही हुई थी उसे सफल किया। सेठ हठी भाई सौभाग्यचद की धर्मशाला में पूज्यश्री का प्रवचन हुआ। मूर्तिपूजक जैन तथा जैनेतर भाई भी पर्याप्त संख्या मे उपस्थित हुए। अहमदावाद के सेठ मणि भाई जैसिह भाई आदि प्रमुख गृहस्थ एवं राजकोट के प्रतिनिधि भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

ता. ३१-५-३६ को वीरमगाम से विहार करके पूज्यश्री ता. ४-६-३६ को सायकाल वढ़वाण शहर में पधारे। शहर तथा छावनी की जनता विपुल-संख्या मे पूज्यश्री के स्वागतार्थ दूर तक सामने गई। दूसरे दिन महाजनवाडी मे विशाल जनसमूह के समक्ष पूज्यश्री का प्रवचन हुआ। पूज्यश्री ने परमात्मा की महिमा भावमयी वाणी में समझाई और जीवनोपयोगी विषयो पर व्याख्यान फरमाया।

इस व्याख्यान में राजकोट-सघ तथा युवक-सङ्घ के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। मध्याह्न में युवक-सङ्घ के प्रतिनिधि पूज्यश्री की सेवा में आये। उस समय जैन समाज की परिस्थिति, उपदेश के विषय, प्रजा और राजा का अस्तित्व, युवको का कर्त्तव्य इत्यादि विषयो पर वार्त्तालाप हुआ। राजकोट में होने वाली काठियावाड जैन-युवक-परिषद् के विषय में भी चर्चा हुई।

बढ़वाण शहर मे दूसरा व्याख्यान फरमाया आप वढ़वाण कैंट पधार गये। यहा राजकोट से आई बहुसख्यक जनता भी मौजूद भी। पूज्यश्री से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने की प्रार्थना करने के लिए वोटाद तथा लाठी आदि सङ्घों के प्रतिनिधि भी यहा उपस्थित हुए। रविवार को बढवाण छावनी मे उपदेश फरमाकर पूज्यश्री मूली, चोटीला आदि होते हुए ता. १७-६-३६ को राजकोट पधार गये।

सांसारिक स्वार्थो के आधार पर जगत् मे जितने भी वर्ग खड़े है, पूज्यश्री उन सबसे ऊंचे उठे हुए महापुरुष थे। वे किसी एक वर्ग के नही थे फिर भी, और शायद इसीलिए सभी वर्ग के थे। वे सभी को समान दृष्टि से देखते थे और इसलिए सभी वर्ग उन्हें समान श्रद्धा-भाव से झुकते थे। राजा-प्रजा, अमीर-गरीब आदि का कोई भी भेद-भाव उनके लिए नही था। अतएव इस विहार में भी चोटीला आदि के साहबान ने भी पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण का लाभ लिया। मूली के ठाकुर साहब श्री हरिश्चन्द्रसिंहजी, कुमार सुरेन्द्रसिहजी तथा जयेन्द्रसिंह जी एवं वहां के दीवान साहब आदि ने उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की।

राजकोट-प्रवेश

ता. १७-६-३६ के शुभ मुहूर्त मे पूज्यश्री ने राजकोट में पदार्पण किया। [illegible] असीम उल्लास का प्रसार था। वनवास की अवधि समाप्त करके रामचन्द्रजी [illegible] में आये होंगे और अयोध्यावासियो के हृदय मे जो आनन्द उमडा होगा, राजकोट के [illegible] को देखकर उसकी कल्पना साकार-सी हो उठती थी। जिधर देखो उधर [illegible] होती थी।

नारी, बालक और बालिकाएं उमंगों से उडते हुए, कतार-सी बाधे उसी ओर बढे चले जाते थे, जिस ओर से पूज्यश्री का आगमन होता था। बहुत-से लोग मीलो तक पूज्यश्री के सामने पहुचे।

नयेगांव से राजकोट आते-आते तो एक लम्बा जुलूस बन गया। इम्पीरियल बैक के सामने पहले से ही हजारो स्त्री-पुरुप एकत्र थे। पूज्यश्री जैसे ही वहां पधारे कि एक विशाल जनसमूह और उमड पडा।

जैन बालाश्रम मे पहुचकर पूज्यश्री ने एक सक्षिप्त व्याख्यान देते हुए कहा-'आज मै जो उत्साह देख रहा हूं, आशा है उसे आप लोग स्थायी बनाये रखेगे।

सङ्घ के मंत्री रायसाहब मणिलाल शाह ने पूज्यश्री का उपकार माना। तत्पश्चात् स्थानीय युवको की ओर से जैन-युवक-सङ्घ के मन्त्री श्री जटाशङ्कर मेहता ने पूज्यश्री का स्वागत किया तथा उनकी प्रभावक व्याख्यान शैली और समाज को जगाने की भावना की सराहना की।

प्रत्युत्तर देते हुए पूज्यश्री ने कहा- 'महाप्रभु महावीर के आदेशानुसार उपदेश देना हमारा मार्ग है। उसी में समाज तथा राष्ट्र की उन्नति का समावेश हो जाना है।'

इसके पश्चात् पूज्यश्री ने तीन दिन मौन और उपवास मे व्यतीत किये। पण्डित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने व्याख्यान फरमाया।

ता. २२ जून को स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की स्वर्ग तिथि मनाई गई। तत्पश्चात् पूज्यश्री शहर में पधारे। जनता ने एक लम्बा और व्यवस्थित जुलूस का रूप धारण कर पूज्यश्री का स्वागत किया। जैनशाला तथा बालाश्रम आदि के बालक एक-सी पोशाक पहनकर सम्मिलित हुए, इस कारण जुलूस अधिक भव्य दिखाई देने लगा। शहर के मुख्य-मुख्य स्थानो में होता हुआ जुलूस महाजनवाड़ी में पहुचा। चातुर्मास में पूज्यश्री उसी स्थान में ठहरने वाले थे।

चवालीसवां चातुर्मास (संवत् १९९३)

संवत् १९९३ का चातुर्मास पूज्यश्री ने राजकोट में व्यतीत किया। पूज्यश्री दशाश्रीमाली महाजनो की भोजनशाला के विशाल भवन में विराजमान हुए थे। ३० ठाणों से महासतिया भी राजकोट मे विराजती थीं। जैनेतर हिन्दू भाइयों के अतिरिकत अनेक मुस्लिम भाइयों ने भी पूज्यश्री के उपदेश का अच्छा लाभ उठाया।

राजकोट-दरबार श्री वीरबालाजी साहब, स्टेट और एजेसी के छोटे-बडे अधिकारी तथा बाहर से आये मेहमानो ने भी पूज्यश्री का वचनामृत पान करके लाभ उठाया। बाहर के बहुत से गृहस्थ, मकान किराये पर लेकर चातुर्मास भर पूज्यश्री की सेवा मे रहे और सतवाणी-श्रवण तथा समागम से अपने जीवन की कृतार्थता साधने लगे।

प्रातःकाल साढे सात बजे पण्डित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज गुजराती भाषा मे व्याख्यान फरमाते थे। नवयुवकों को धर्म की ओर प्रवृत्त करने मे उनकी बडी लगन थी। आठ बजते ही पूज्यश्री व्याख्यान-मण्डप मे पधारते। उस समय वहा के वातावरण में सहसा स्फूर्ति समा जाती। पूज्यश्री भी गुजराती मे ही व्याख्यान फरमाते थे। प्रतिदिन प्रारम्भ मे आप प्रार्थना करते, प्रार्थना पर हृदयस्पर्शी

विवेचना करते, तत्पश्चात् शास्त्र वांचते और अन्तिम समय मे कथा सुनाते थे। पूज्यश्री ने जव सती जसमा की कथा सुनाई तो श्रोताओ की आँखो से आँसू वहने लगे। जसमा का गुजरात के इतिहास मे अमर नाम है। उसका चरित्र उदात्त, तेजस्वी और आदर्श है। सती जसमा वडी भाग्यवती निकली कि पूज्यश्री जैसे वक्ता उसे मिले! उन्होने सती जसमा का चरित्र भी अमर वना दिया। जनता पर उसका वडा प्रभाव पडा। इसी प्रकार शील के अग्रदूत सेठ सुदर्शन की कथा भी अत्यन्त भावपूर्ण, हृदय को हिला देने वाले, और आत्मस्पर्शी शव्दो मे आपने सुनाई। कोई भी कथा पूज्यश्री की वाणी का सहयोग पाकर निहाल हो जाती थी! पूज्यश्री के व्याख्यानो मे धर्म और व्यवहार का अपूर्व सामजस्य होता था। जैसे मानव-जीवन अखड है- उसे धर्म और व्यवहार के क्षेत्र मे वाटा नही जा सकता, आत्मा के दो विभाग नहीं हो सकते, उसी प्रकार जीवन को समुन्नत वनाने के लिए अखण्ड रूप से धर्म और व्यवहार के समन्वय की आवश्यकता है। व्यवहार धर्मशून्य और धर्म व्यवहारहीन होगा तो उससे आत्मा का उत्थान होना सभव नही है। मगर इस मर्म को वहुत कम लोग समझ पाते है। उपदेशक भी बहुत से इस तथ्य से अनभिज्ञ है। यही कारण है कि व्यावहारिक जीवन मे धर्म का अभाव देखा जाता है और अनेक लोग व्यवहार से विमुख होकर धर्म की साधना का प्रयत्न करते है। मगर यह कल्याण का मार्ग नही। पूज्यश्री ने धर्म और व्यवहार का सम्वन्ध स्थापित करके [illegible] को सजीव और व्यवहार को सयत वनाने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया। यही कारण था कि [illegible] व्याख्यानों मे राष्ट्रीयता के अंगभूत तत्त्वो का भी समावेश वडी सुन्दरता के साथ होता [illegible] यथासमय कुरीति-निवारण, मनुष्य-कर्त्तव्य, कन्या-विक्रय, वर-विक्रय, वाल-वृद्ध-[illegible] पीछे रोना आदि-आदि व्यावहारिक समझे जाने वाले विषयो पर भी प्रभावशा[illegible] आपके उपदेश से बहुतो ने बीड़ी-सिगरेट पीना छोड दिया। अस्पृश्यता निवार[illegible] जोर देते थे और अस्पृश्यता को जैन-धर्म से विरुद्ध समझते थे।

पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. का स्वर्गवास

ता. १४-९-३६ को धूलिया में पूज्यश्री अमोलकऋषि जी महाराज का स्वर्गवास हो गया। यह संवाद जब पूज्यश्री के पास पहुंचा तो आपको अत्यन्त खेद हुआ। राजकोट श्रीसघ मे शोक छा गया। उनकी स्मृति में व्याख्यान बन्द रखा गया और चार 'लोगस्स' का ध्यान किया गया। उसी समय जीव-दया के निमित्त चन्दा इकट्ठा किया गया। पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज के स्वर्गवास से जैन–संघ मे जो कमी हुई है, इसके लिए पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने व्याख्यान मे दुःख प्रकट किया।

महात्मा गांधी से भेंट

पूज्यश्री जब राजकोट मे विराजमान थे, तब २९ अक्टूबर को महात्मा गांधी भी कार्यवश राजकोट आये। पूज्यश्री की उपदेश शैली से, उत्कृष्ट और उदार विचारो तथा उनकी उच्च श्रेणी की संयमपरायणता से महात्माजी पहले ही परिचित थे। अहमदाबाद से रवाना होते समय ही आपको मालूम हो गया था कि पूज्यश्री राजकोट में विराजमान है और उसी समय आपने पूज्यश्री से भेट करने का विचार भी कर लिया था।

महात्माजी का इधर-उधर निकलना बड़ा कठिन होता है। जनता को मालूम हो जाय कि गांधीजी अमुक समय, अमुक जगह जाने वाले हैं तो वहा हजारो की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इसी भय से गाधीजी ने अपना इरादा किसी पर प्रकट नहीं किया। जिस दिन राजकोट से विदा होने वाले थे उस दिन संध्या से कुछ पहले ही आपने पूज्यश्री के पास आने का समय कहला दिया। तदनुसार गाधीजी आ पहुंचे। जनता को पता नही चल सका, अतएव बडी शान्ति से दोनों महापुरुष मिले।

गाधीजीने कहा- जब मैं अहमदाबाद से रवाना हुआ, तभी से आप से मिलने की इच्छा थी। मै राजकोट आऊँ और आप से बिना मिले चला जाऊँ, यह सभव ही नही था। मेरी इच्छा तो आपके उपदेश में आने की थी, मगर लोग व्याख्यान सुनने नही देते। क्या किया जाय ?

इस प्रकार प्रारम्भिक वार्त्तालाप के बाद पूज्यश्री ने फरमाया- 'देखिए, यह सामने घड़ी टँगी है। इसकी दोनों सुइयां चल रही है, यह बात तो सभी जानते है, पर सुइयों को चलाने वाली मशीनरी इसके भीतर है। उसे कितने लोग जानते है? असल चीज तो मशीनरी ही हैं।

गांधीजी ने सौम्य मुस्कराहट में उत्तर दिया।

इसी प्रकार की कुछ और बातचीत के बाद गाधीजी रवाना हो गए।

आगामी चौमासे के लिए विनतियां

पूज्यश्री के चातुर्मास का सारे काठियावाड़ प्रान्त पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। वहा की जनता ने पूज्यश्री के विषय में जो प्रशसात्मक बातें सुनी थी, वे सब उन्हे हीनोक्तिया प्रतीत हुई। पूज्यश्री के अगाध सिद्धान्तज्ञान, द्रव्य, क्षेत्र-काल-भाव को परखने का अद्भुत कौशल, चमत्कारपूर्ण वक्तृत्व शैली, विशाल प्रकृतिपर्यवेक्षण आदि गुणों के कारण आपका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि सारा काठियावाड आपके समागम के लिए उत्कठित हो उठा। राजकोट का यह चातुर्मास समाप्त भी न होने पाया था कि जगह-जगह के भाई आगामी चातुर्मास की प्रार्थना करने लगे। मोरबी, पोरबंदर और जामनगर के

श्रीसंघों ने भी चौमासे के लिए प्रार्थना की। यह प्रार्थना अत्यन्त भावमय, आग्रहपूर्ण और उत्साहप्रेरक थी। उसमें कहा गया था-

'यह दास आपकी सेवा में आज अपने हृदय की बहुत दिनों की अभिलाषा को प्रार्थना के रूप में प्रकट कर रहा है। इस प्रयत्न मे धृष्टता और उद्दण्डता भी संभव है, लेकिन जिस प्रकार पुत्र अपने श्रद्धाभाजन पिता से कुछ चाहने की धृष्टता और उद्दण्डता करता है, मेरी धृष्टता और उद्दण्डता भी उसी सीमा की है; इसलिए सर्वथा क्षम्य है।'

'इस दास को उन स्वर्गीय पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज की सेवा का भी सुयोग प्राप्त है, जिनका जैन-ससार चिर ऋणी है। आचार्यश्री के गुणो, आचार्यश्री की प्रतिभा और शास्त्र-कुशलता से प्रायः सभी लोग परिचित है। ऐसे आचार्यश्री की सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। ......लेकिन दुर्भाग्यवश मेरी यह अभिलाषा- जो मै आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूँ- अपूर्ण ही रही। आचार्यश्री ने श्रीमान् को जब युवाचार्य-पद दिया और वे साम्प्रदायिक कार्य मे आंशिक मुक्त हुए, उस समय मेरी भावना थी कि अब थोड़े ही काल में अनुनय-विनय-पूर्वक मैं आचार्यश्री को जलगाव ले आऊँगा और आचार्यश्री की वृद्धावस्था में अन्त तक सेवा का लाभ लूँगा। मै अपनी इस भावना को प्रकट भी नहीं कर सका और आचार्यश्री असमय मे ही स्वर्ग सिधार गए।............'

'श्रीमान् का शरीर अब वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ है। श्रीमान् ने सम्प्रदाय का कार्यभार तक विद्वान एवं सुयोग्य युवाचार्य श्री १००८ श्रीगणेशीलालजी महाराज को सौंप दिया है। साम्प्रदायिक कार्य से अब आप श्रीमान् बहुत कुछ निवृत्त है। वृद्धत्व भी पहले की तरह उग्र विहार करने से रोकता है। श्रीमान् का शरीर अब किसी एक स्थान पर रहकर शान्ति चाहता है। इसलिए मै निवेदन करता हूं कि श्रीमान् जलगाव पधार पर सदा के लिए वही विराजे।

जलगांव मे श्रीमान् के विराजने से मेरे श्रावक भाइयो को भी सब प्रकार से सुभीता रहेगा। जलगांव भारत के मध्य मे है। इसलिए पजाब और मद्रास तथा कलकता और सिध के लोगों को समान दूर पड़ेगा।'

अन्त में मेरा यही निवेदन है कि आप श्रीमान् वृद्ध हुए हैं और मैं भी वृद्ध हुआ हूं। इसलिए आप जलगाव में विराजकर मुझको तथा अन्य दक्षिण-निवासियो को अपनी सेवा का लाभ देने की कृपा कीजिए। आपके द्वारा उत्तर भारत का बहुत उपकार हुआ है, अब दक्षिण भारत को भी पावन कीजिए।'

रावसाहब की प्रार्थना लम्बी थी। उसके कतिपय अश ही यहां उद्धृत किये गये है। इस प्रार्थना से उनकी मनोभावना और पूज्यश्री की सेवा की उत्कंठा टपकी पड़ती है। आपने पूज्यश्री से साहित्योद्धार के कार्य के लिए भी प्रार्थना की थी और उसमें आवश्यक रकम लगाने का भी विचार प्रकट किया था।

यह सब प्रार्थनाए सुनकर पूज्यश्री ने ४-१०-३६ को व्याख्यान मे निम्नलिखित उत्तर फर्माया:-

मेरे समक्ष मोरवी, पोरबंदर और जामनगर के श्रीसघ की विनति आई है। एक विनति सेठ लक्ष्मणदासजी जलगांव वालों की है। वह विनति विवेक से भरी है कि जब मैं काठियावाड छोड़ूँ तब जलगांव ठहरू और शास्त्रो का उद्धार करू। उनकी प्रार्थना की शक्ति ऐसी है कि वह जिसे चाहे, अपनी

ओर खीच सकती है। धनवान् तो बहुत है किन्तु धन का सदुपयोग करने की उदारता रखने वाले कम होगे। सेठजी ने शास्त्रीय कार्य के लिए जो उदारता दिखाई है वह कार्य चाहे कभी भी हो, और मै अपने को उसके लिए समर्थ भी नहीं मानता, लेकिन इन्होने तो विनति करके पुण्य कमा ही लिया और अपने साथ अपने उत्तराधिकारी को खडा करके बता दिया कि यह मेरा पुत्र केवल मेरे धन का उत्तराधिकारी नही है किन्तु मेरे धर्म का भी उत्तराधिकारी है। सेठजी ने तो इस तरह उदारता दिखाई। आपको भी इसका अनुमोदन तो करना ही चाहिए।

समाज की स्थिति उसके साहित्य से ही है। मैने एक पुस्तक मे पढ़ा था- हमारा और चाहे सब-कुछ चला जाए लेकिन यदि हमारा साहित्य बचा रहेगा तो हम सब-कुछ कर सकते है। वास्तव मे जिस समाज का साहित्य अच्छा है वही समाज उन्नत हो सकता है। इसलिए आप अनुमोदन करके तो सुकृत उपार्जन कर ही सकते है।

इन सब विनतियों का उत्तर देने से पहले मैने अपने सतो और खास-खास श्रावकों से परामर्श किया। सभी की यह सम्मति है कि अभी एक वर्ष और काठियावाड मे विचरना ठीक होगा। यह सम्मति होने पर भी मुझे अपनी आत्मा से विचार करना है। आगामी चौमासा कहा किया जाय, यह तो अभी कह ही नही सकता, लेकिन एक वर्ष काठियावाड मे ही विचरने की बात निश्चित रूप से कहना भी कठिन है। अतएव यही कहता हू कि यदि मेरा एक वर्ष या कम-ज्यादा काठियावाड मे रहना हुआ तब मै दूसरी रीति से विहार करूंगा और यदि जाना हुआ तो सबकी प्रेमभरी प्रार्थना मेरे ध्यान में है और सेठ लक्ष्मणदासजी की प्रार्थना भी ध्यान मे रहेगी। द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव के अनुसार जैसा अवसर होगा, किया जायगा।

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बीकानेर-श्रीसघ ने भी प्रार्थना की, किन्तु उसे भी कोई निश्चित उत्तर नही मिल सका।

सरदार पटेल का आगमन

ता. १३ अक्टूबर को तीन बजे सरदार वल्लभभाई पटेल पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधारे। सरदार का आगमन सुनकर दूसरी जनता भी बडी संख्या में एकत्रित हो गई। उन दिनो गाधी-सप्ताह चल रहा था। अतएव आगत जनता को पूज्यश्री ने गाधी सप्ताह के सबंध मे अपना संदेश दिया- महात्मा गाधी के मौखिक यशोगान मात्र से गाधी-सप्ताह नही मनाया जाता, परन्तु महात्माजी ने जिस खादी को अपनाकर देश को समृद्ध बनाने का सुन्दर उपाय खोज निकाला है और गरीबों के भरण-पोषण का द्वार खोल दिया है, उसे अपनाने से ही सच्चा गाधी-सप्ताह मनाया जा सकता है। ऐसा करने से महारभ से बचाव होता है, इसलिए धर्म की भी आराधना होती है। इस प्रकार कहते हुए आपने देश-सेवा और धर्म-सेवा का समन्वय करते हुए सक्षिप्त कितु सारगर्भित भाषण दिया।[1]

सरदार पटेल ने जनता को सबोधन करते हुए कहा- 'आप लोग धन्य है, जिन्हें ऐसे महात्मा मिले हैं, जिन्हे नित्य ऐसे व्याख्यान सुनने को मिलते है। मगर यह सुनना तभी सफल है जब उपदेशो को जीवन मे उतारा जाय।' इत्यादि संक्षिप्त भाषण करने के पश्चात् सरदार पटेल ने पूज्यश्री से विदाई ली।

१.भाषणो के लिए 'जवाहर-ज्योति' देखिए।

कार्तिक शुक्ला चतुर्थी के दिन पूज्यश्री की जयन्ती थी। अत्यन्त उत्साह और प्रगाढ श्रद्धा के साथ सघ ने जयन्ती-समारोह मनाया। उसी दिन श्रीसूयगडागसूत्र के प्रकाशन का निश्चय किया गया, जो पूज्यश्री की देखरेख मे पं अम्बिकादत्तजी ने तैयार किया था। इसके निमित्त सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ छगनमलजी मूथा बलुदा, श्रीचुन्नीलाल नागजी वोरा आदि सज्जनो ने अच्छी रकमे प्रदान कीं।

चातुर्मास के पश्चात्

राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास पूर्ण हुआ और पूज्यश्री ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को विहार कर दिया। आप सदर मे पधारे। अष्टमी तक आप यहा विराजे। राजकोट दशाश्रीमाली वोर्डिग के कार्यकर्त्ताओ के अनुरोध पर आपका एक व्याख्यान छात्रालय मे हुआ। पोरवन्दर के भाई लक्ष्मीदासजी ने ५००) रु. तथा श्रीचुन्नीलाल नागजी वोरा ने १००) छात्रावास को भेट किये। पूज्यश्री ने काठियावाड निराश्रित वालाश्रम का भी निरीक्षण किया। वहुत-से अजैन विद्वान् पूज्यश्री के परिचय मे आये।

सदर से जब आपका विहार हुआ तो करीव १० हजार जनता आपको पहुचाने आई। विहार करके कोठारिया पधारे। राजकोट की जनता यहा भी हजारो की सख्या मे उपस्थित हुई। पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। राजकोट श्रीसघ ने सारे कोठारिया ग्राम को प्रीति-भोज दिया, यहा तक कि ग्राम के सब पशुओ को भी मिठाई आदि खिलाई गई। यहा वृक्षों की सघन छाया में पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। राजकोट तथा अन्य स्थानो से आये यात्रियो की मोटरों, तागो आदि का ताता-सा लग गया। सारा मार्ग सवारियो से व्याप्त हो गया। जनता की भक्ति अपूर्व थी और विदाई की वेला वह और प्रवल हो उठी थी। कोठारिया के ठाकुर साहब ने व्याख्यान का लाभ उठाया और पूज्यश्री के प्रति अत्यन्त श्रद्धा प्रकट की।

कोठारिया से विहार करके मार्ग के ग्रामो मे एक-एक दिन रुकते हुए पूज्यश्री गोंडल पधारे। यहा सिर्फ एक सप्ताह ही रुकने का कार्यक्रम था मगर श्रीसघ के अनिवार्य आग्रह से बारह दिन रुकना पडा। सभी प्रकार की जनता ने आपके उपदेशो से लाभ उठाया। दो विशिष्ट व्याख्यान भी हुए।

गोडल से वीरपुर पधारे। यद्यपि आप दो ही दिन वीरपुर मे ठहरे मगर वीरपुर-नरेश ने इतने समय में ही पूज्यश्री के समागम से अच्छा लाभ लिया। पूज्यश्री के उपदेश से आपके ऊपर गो-सेवा विषयक अच्छा प्रभाव पडा और वह प्रभाव सिर्फ हृदय की भावना मे ही नही रहा। उन्होंने उसे कार्यान्वित भी किया।

वीरपुर से विहार कर एक दिन पीठडिया विराजकर जेतपुर पधार गए। जेतपुर में पूज्यश्री का अभिनन्दन करने के लिए पाच हजार नर-नारी एकत्रित थे। गोडल सम्प्रदाय के मुनिश्री पुरुषोत्तमजी महाराज तथा मुनिश्री प्राणलालजी महाराज आदि साधु तथा साध्विया धारेश्वर तक आपके सामने पधारे। पूज्यश्री जेतपुर मे दो सप्ताह विराजे। पहले-पहल तो व्याख्यान मे जैनो की बहुतायत होती थी, धीरे-धीरे अजैनो की सख्या इतनी बढी कि जैनों से भी अधिक हो गई। शास्त्रीय विषयों के साथ पूज्यश्री कुरीति-निवारण पर भी सुन्दर प्रवचन करते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी कुरीतियां समाप्त हो गई। चार सज्जनो ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। और भी अनेक व्रत-नियम ग्रहण किये

गये। मुनि श्रीप्राणलालजी म और अन्य संतो एवं सतियों ने खूब प्रेम-वात्सल्य प्रकट किया, जो प्रशंसनीय कहा जा सकता है। पूज्यश्री ने भी साधु-सम्मेलन ओर कान्फ्रेस के नियमो के पालन, संघवल तथा साधुओं के कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला। भावनगर-जनरल-कमेटी से लौटकर काफ्रेंस के अनेक सदस्य पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। साधु-सम्मेलन और काफ्रेस के विपय मे वार्त्तालाप हुआ।

जेतपुर की एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। अस्पृश्य कहलाने वाले भाइयो के विषय में पूज्यश्री का मन्तव्य पहले ही दिया जा चुका है। यहां अस्पृश्य भाई भी आपका उपदेश श्रवण करने आये। उन्हे व्याख्यान-पीठ से काफी दूर विठलाया गया। पूज्यश्री को यह व्यवहार अन्यायपूर्ण प्रतीत हुआ। उन्होने श्रावको को प्रभावशाली शव्दो मे उपदेश दिया। नतीजा यह हुआ कि दूसरे दिन उन्हे आगे बैठने को स्थान दिया गया। अस्पृश्य जाति की महिलाएँ भी उपदेश-श्रवण के लिए उपस्थित हुई थी। पूज्यश्री के उपदेश से अस्पृश्य भाइयों और उनकी महिलाओ ने मास-मदिरा का त्याग किया।

जेतपुर मे अमृत वर्षा करके पूज्यश्री जेतलसर और धोराजी होते हुए ता. २०-१-३७ को मध्याह्न के समय जूनागढ़ पधारे। आपके साथ रावसाहव टाकरसी भाई घीया भी थे, जिन्होंने काठियावाड़ प्रवास मे पूज्यश्री के साथ ही पैदल भ्रमण करने का निश्चय किया था और उसे पूरा भी किया।

यहा के भाइयो, बहिनों और बालको ने तीन मील तक सामने आकर पूज्यश्री का स्वागत किया। पूज्यश्री स्थानकवासी जैन-सघ के स्थान में उतरे थे। उसी के विशाल मैदान मे व्याख्यान मण्डप बना था। पूज्यश्री का उपदेश सुनने के लिए जैनो के अतिरिक्त सैकड़ो हिन्दू-मुस्लिम भाई उपस्थित होते थे। अनेक विद्वानों ने भी लाभ उठाया। पूज्यश्री की सरल और हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओ का हृदय इतना आकर्षित कर लिया था कि प्रतिदिन श्रोताओ की संख्या बढ़ती जाती थी। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, वीरता, आधुनिक विज्ञान और जडवाद, इन्द्रियो और आत्मा की भिन्नता, आत्मा की अनन्त शक्ति आदि गभीर विषयो पर पूज्यश्री ने ऐसी सुगम और सुन्दर भाषा में विवेचन किया कि जनता मत्रमुग्ध-सी हो गई।

पूज्यश्री के उपदेश से प्रेरित होकर यहा के स्थानकवासी श्रीसघ ने मृत्यु हो जाने पर रोने-पीटने की रिवाज में सुधार करने का प्रस्ताव किया। काठियावाड़ स्थानकवासी जैन-समाज के सगठन और सुधार के लिए सात गृहस्थों की एक समिति बनाई गई। अन्य श्रीसघो से भी इसी प्रकार की समितिया बनाने की अपील की गई।

मध्याह्न और रात्रि के समय पूज्यश्री धार्मिक विषयों पर चर्चा-वार्त्ता; शंका-समाधान किया करते थे। उस समय भी जैनेतर विद्वान् राज्याधिकारी और मुस्लिम भाई उपस्थित होते और पूज्यश्री की अनुभव भरी विवेचनाओं से लाभ उठाते थे। पूज्यश्री के उच्चतर तप-त्याग तथा विद्वत्ता पर जैन और जैनेतर समान भाव से मुग्ध थे। इस प्रकार जूनागढ़ मे धार्मिक भावना का एक नवीन गढ खडा करके पूज्यश्री ने विहार किया। बहुसख्यक जनता आपको विदाई देने आई।

प्रासवा, खडिया, बिलखा, मेदरड़ा, वेरावल, मागरौल, राजवाड आदि स्थानो मे विचरते हुए आप फाल्गुन शुक्ला ६ को पोरबदर पधारे । बिलखा दरबार ने पूज्यश्री के उपदेश से प्रभावित होकर

रियासत मे हिंसाबन्दी का ऐलान किया। * मेदरडा में पूज्यश्री आलिधा दरबार श्री अमरामोका के दरबारगढ मे ठहरे थे और भोजनशाला मे बनाये गये पडाल मे आपका उपदेश होता था। आसपास के करीब पच्चीस ग्रामों के लोग आपका उपदेश सुनने इकट्ठे होते थे। दरबार श्रीनाजावाला वगैरह भी उपदेश श्रवण करके हर्षित हुए। प्रजा, राज्याधिकारी, हिन्दू, मुसलमान आदि सभी भाई उपदेशों से लाभ उठाते थे। आपका एक व्याख्यान बालमंदिर में भी हुआ। सेठ नथुभाई मूलजी की अध्यक्षता में पोरबन्दर का शिष्टमंडल पूज्यश्री से पोरबंदर पधारने की प्रार्थना करने आया। वेरावल में पूज्यश्री का एक व्याख्यान हरिजन-निवास में हुआ। अनेक हरिजनो ने मास-मदिरा का त्यागकर अपना जीवन सुधारा।

पोरबंदर में पूज्यश्री के स्वागत के लिए सैकडों स्त्री-पुरुष माधवपुर तक गए। पूज्यश्री जब ओडगर गांव में पधारे तो लगभग ४०० व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित हो गए। दूर-दूर से आपका भावमय स्वागत करने आये हुए भावुक नर-नारियो का समूह इकट्ठा था। वह दृश्य अतिशय भव्य और अपूर्व प्रतीत होता था।

पोरबन्दर रियासत के मत्री श्रीप्रतापसिहजी भी पूज्यश्री के दर्शन और स्वागत के लिए सामने गए। पूज्यश्री के पदार्पण के समय ऐसा लगता था मानो कोई बड़ा-सा धार्मिक मेला भरा हो! आपके उपदेश दशाश्रीमाली महाजनवाडी में होते थे। यहां के दीवान श्रीत्रिभुवनदास जे. राजा तथा राज्यरत्न सेठ भाणजी लवजी, राज्यरत्न सेठ मंचरशाह हीरजी भाई वाड़िया आदि की पूज्यश्री के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। स्थानीय संघपति सेठ नथुभाई मूलजी ने आपका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया। गोंडल

---

* प्रतिलिपि इस प्रकार है:–

मोहर	Naj Manzil,
बिलखा दरबार	Bilkha (Kathiawar)

बी. स्टे. ओ. ओ न. २७

ओफीस आर्डर

अमारा स्वस्थानमा दारु तथा शीकारनो प्रतिबध छे। अने ते माटे कायदाओ अस्तित्त्वमा छे।

अहीना प्रजाजनो अने अमारी विनती तथा आग्रहने मान आपी विद्वद्वर्य पूज्य स्वामी श्रीजवाहरलालजी महाराज पधारता ते ओश्रीना उपदेशनो लाभ प्रजाजनोए संपूर्ण रीते लीधेल छे। तेओश्रीना अही पधारवाना मानमा आज रोज एम ठरावावामा आवे छे के अमारा राज्यमां दरशाल महावीर जयन्तीना रोज एकादशी तथा अमावस्या माफक अगतो पालवो। दुधवाला प्राणीओनी कायम माटे अमारी मंजूरी सीवाय नीकाश करवी नहीं।

आ ओफीस ओर्डरनी खबर लागता वलगताओ तरफ आपनी अने एक नकल पूज्यपाद महाराज श्रीजवाहरलालजी महाराज तरफ सादर मोकलवी। बीलखा ता. ५–२–१९३७

(Sd.) Rawatvala

बीलखा दरबार

सम्प्रदाय की सतियों ने भी पूज्यश्री के प्रति बहुत भक्ति प्रकट की। श्रीसघ मे उत्साह का पूर आ गया। अहिंसा, गो-सेवा, मानव-दया आदि विषयो पर आपके प्रभावशाली व्याख्यान हुए।

ता. २-४-३७ को पोरबंदर के राणासाहब श्रीनटवरसिहजी, दीवान साहब, उच्च राज्याधिकारी तथा समस्त गण-मान्य व्यक्ति पूज्यश्री के उपदेश मे सम्मिलित हुए। पूज्यश्री के समागम से राणा साहब अत्यन्त प्रभावित हुए। आपने पूज्यश्री से यहीं चौमासा करने की प्रार्थना की और सब प्रकार के समुचित सहयोग का आश्वासन दिया। मगर पूज्यश्री उस प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। यहां मागरोल, राजकोट, जूनागढ, अमरेली, मोरवी, जेतपुर आदि से आये हुए दर्शनार्थियो की भीड लगी। जो साधक पूज्यश्री की अमी-वाणी का रसास्वादन कर चुके थे और जिन्होंने उनकी तप-तेज से विराजमान मुखमुद्रा की भव्यता का पान किया था। उन्हे पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण की उत्कठा व्यग्र कर देती थी। उस अलौकिक विभूति को विस्मरण कर देना सहज बात नही थी। ऐसे महान् सत का समागम प्रबल पुण्ययोग से मिलता है। जब वह सुलभ हो तो कौन अपने को धन्य नही बनाना चाहेगा?

श्री पट्टाभी सीतारामय्या का आगमन

डाक्टर पट्टाभी सीतारामय्या भारतीय राजनीतिक संग्राम के एक प्रसिद्ध लड़वैया हैं। विद्वान् धाराप्रवाद वक्ता और गभीर विचारक है। जिन दिनो पूज्यश्री पोरबदर में विराजमान थे। आप भी वहा आये। पूज्यश्री की पुण्य-प्रशस्ति कहा-कहा नही पहुच चुकी थी? आपने पूज्यश्री की प्रशसा सुनी तो दर्शनार्थ आये।

पूज्यश्री से मिलकर और वार्तालाप करके डाक्टर पट्टाभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। खादी के विषय मे आपने जनता के समक्ष संक्षिप्त भाषण भी किया।

पूज्यश्री की सेवा मे मोरबी तथा जूनागढ़ से चातुर्मास की प्रार्थना करने के लिए प्रतिनिध मडल आये थे। आपने मोरबी वालो को यह वचन दिया था कि अवसर होता तो मोरबी स्पर्श किये बिना अन्य स्थान की चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जायगी। मगर तारीख ८-४-३७ के दिन पोरबंदर श्रीसघ ने चौमासे के लिए बहुत जोरदार प्रार्थना की। वहा के दीवान साहब भी प्रार्थना मे सम्मिलित थे। उन्होंने भी बहुत आग्रह किया। मगर पूज्यश्री मोरबी वालो को जो वचन दे चुके थे वह टल नहीं सकता था। अतएव उस समय चौमासे के विषय में कोई निर्णय न हो सका।

ता. १५-४-३७ को पोरबंदर की महारानी साहिबा पूज्यश्री का उपदेश सुनने आई। आपने भी चौमासे के लिए विनति की।

मासकल्प विराजकर चैत्र शुक्ला ६ को पूज्यश्री ने जामनगर की ओर विहार किया। शतश नर-नारियो ने दुख:पूर्ण हृदय से पूज्यश्री को विदाई दी। विदाई का दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण था। महात्मा गांधी की इस जन्मभूमि मे इस महापुरुष के पदार्पण से बहुत उपकार हुए।

चैत्री पूर्णिमा को पूज्यश्री भाणवड़ पधारे। यहा हरिजन भाइयो ने भी व्याख्यान का लाभ उठाया। अन्य जनता ने उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। वहा से विहार कर जाम जोधपुर, धाफा, मोटी, पानेली, भायावदर होते हुए अक्षय तृतीया के दिन आप उपलेटा पधारे। पूज्यश्री के पधारने से छोटे-से-छोटे गाव मे भी उत्साह और उमग का प्रवाह बह जाता था। पानेली के तालाब मे पानी कम रह

गया था। अतः जीव-दया पर पूज्यश्री का संयत भापण हुआ। वहा के दयाप्रेमी सज्जनो ने मछलियो के लिये पानी और गौओ के लिए घास की समुचित और शक्य व्यवस्था की। दोनो कार्यो के लिए अच्छा फण्ड इकट्ठा हो गया। जाम जोधपुर मे श्री गोवर्धनदास मोरारजी वकील की अध्यक्षता में एक डेपुटेशन पूज्यश्री से जामनगर पधारने की प्रार्थना करने के लिए आया। पूज्यश्री ने सुखे-समाधे जामनगर पहुचने का आश्वासन दिया। सेठ नथुभाई मूलजी तथा सेठ लक्ष्मीदास पीताम्वर के साथ सौ आदमी आपके दर्शनार्थ आये। धाफा मे वहुत-से गरासी भी पूज्यश्री का उपदेश सुनने आये। उन्होंने मांस ओर मदिरा का त्याग किया। सभी स्थानो पर पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया गया।

उपलेटा से कालावाड के रास्ते जामनगर की ओर विहार हुआ। खण्टेरा गाव में अचानक आपके दाएं पैर मे वात का प्रकोप हो गया। तकलीफ इतनी वढ गई कि विहार होना कठिन हो गया। साथ के सत अपने कष्टो की चिन्ता न करके आपको डोली मे विठलाकर जामनगर तक लाए।

जामनगर के श्रीसघ मे भी अपूर्व उत्साह था। नगर से दो मील दूर सामने जाकर श्रीसघ ने पूज्यश्री का स्वागत किया। उपचार करने से पैर का दर्द कम हो गया। जामनगर श्रीसघ ने चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया। अन्य स्थानो से भी प्रार्थनाएँ की गई। किन्तु मोरवी फरसने का वचन दिया जा चुका था, अतएव किसी प्रकार का निर्णय न हो सका।

अब चातुर्मास का समय समीप आ चुका था। अतएव जल्दी मोरवी पहुचने की इच्छा से पूज्यश्री ने १६ जून को जामनगर से विहार कर दिया। अभी आप तीन मील ही चले थे कि पैर में फिर दर्द बढ़ गया। फिर भी विहार जारी रहा। पांच मील पहुचते-पहुचते पैर सूज गया और चलना कठिन हो गया। साथ के सतो ने पूज्यश्री को डोली मे मोरवी तक ले चलने का विचार किया। किन्तु जामनगर श्रीसघ और अनुभवी श्रावकों ने इस अवस्था में आगे बढना वांछनीय न समझा। डाक्टर प्राणजीवनदास ने बतलाया कि देर तक इसी प्रकार रुकने से बीमारी वढ जाने का खतरा है। अन्ततः मोरवी श्रीसघ को तार दिया गया। वहा से धर्मवीर श्रीदुर्लभजी आदि पाच गृहस्थ आ पहुचे। वर्षा आरम्भ हो चुकी थी और मार्ग की कठिनाई बेहद बढ गई थी। सारी परिस्थिति पर विचार करने के बाद अन्त में यही विचार किया गया कि इस चातुर्मास में पूज्यश्री जामनगर ही विराजे।

यहां यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि पोरबंदर-नरेश ने पूज्यश्री से पोरबंदर में चौमासा करने की अत्यन्त आग्रहपूर्ण विनति की थी। पूज्यश्री ने जब मोरबी-श्रीसंघ को दिये वचन की बात कही तो नरेश ने मोरबी की स्वीकृति मगा लेने की कोशिश की। उन्होने समझा कि मोरबी का श्रीसंघ इतनी बात तो मान ही जायगा। मगर मोरबी-संघ पूज्यश्री के दर्शन के लिए कितना व्यग्र और उत्कठित था! चिरकाल से पूज्यश्री के दर्शन की अभिलाषा-रूपी अकुर को वह प्राणों की तरह से-रहा था। अंकुर जब फल देने को तैयार हुआ तो पोरबदर-नरेश ने उसे हस्तगत कर लेने की चेष्टा की! मोरबी संघ और तो सब कुछ त्याग सकता था मगर यह त्याग उसके लिए असभव बन गया। उसने स्वीकृति नहीं दी और पूज्यश्री ने अपना वचन निबाहने के लिए मोरबी की ओर प्रस्थान किया। किन्तु एकाएक पैर मे दर्द उठ आने से पूज्यश्री मोरबी न पहुच सके। इस आकस्मिक घटना से मोरबी-संघ को कितना सख्त आघात पहुचा होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। जामनगर के महाराज के पिताश्री दाजी बापू साहब ने पहले ही चातुर्मास की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की थी। मगर वह उस समय स्वीकृत नहीं हुई थी।

इस घटना से अनायास ही उनका मनोरथ पूर्ण हो गया। इस से उन्हे असीम आनन्द हुआ। एक ही घटना लोगों की विभिन्न भावना के अनुसार कितना विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करती है।

ता. २१-६-३६ को नौ बजे पूज्यश्री डोली में जामनगर पधार गए। सब से आगे संत पूज्यश्री को डोली में उठाये जा रहे थे और पीछे सैकड़ो स्त्री-पुरुष चल रहे थे। उस समय नामदार जामसाहब विलायत मे थे। उनके पिता श्री दाजी बापू प्रातःकाल पांच मील चलकर पूज्यश्री के पास आये और धर्मोपदेश सुनकर प्रसन्न हुए।

पैर के दर्द कारण पूज्यश्री शिष्य मण्डली के साथ बेडी दरवाजे के बाहर दडिया बिल्डिंग में ठहरे थे। व्याख्यान फरमाने के लिए पण्डित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज नगर मे पधारते थे और लौकागच्छ के उपाश्रय मे आपका मधुर व्याख्यान होता था। पूज्यश्री के स्वास्थ्य मे पैर-दर्द के अतिरिक्त और कोई खास खराबी नही थी। आषाढ़ शुक्ला तृतीया को पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की जयन्ती होने के कारण आप शहर मे पधार गए। जयन्ती के दिन करीब सौ पौषधव्रत हुए। उसी दिन से आपने व्याख्यान फरमाना आरम्भ कर दिया।

पैंतालीसवां चातुर्मास

(स. १९९४)

मोरबी न पहुच सकने के कारण स. १९९४ का चातुर्मास पूज्यश्री ने जामनगर में किया। पूज्यश्री के विराजने से सघ मे खूब धर्म-जागृति हुई। बाहर के दर्शनार्थी भी बड़ी सख्या में आने लगे। आषाढ़ी चौमासी पक्खी के दिन ३५० पौषध हुए। तीन हजार नर-नारियो ने आपका व्याख्यान सुना। अत्यन्त उपकार हुआ।

ता. १५-८-३७ को जाम साहब के पिताजी, महाराज श्रीजधानसिहजी साहब, खानबहादुर दीवान सा. मेहरवानजी पेस्तनजी तथा राज्य के अन्याय अधिकारी और नगर के गण्य-मान्य प्रतिष्ठित लोग पूज्यश्री का उपदेश सुनने के लिए उपस्थित हुए। व्याख्यान-भवन में तिल धरने की जगह न रही। जैनेतर भाई तथा मुसलमान सज्जन भी बडी संख्या में आये थे। पूज्यश्री ने जब वचनामृत की वर्षा आरभ की तो श्रोताओं के श्रोत्र, अन्तःकरण और आत्मा में शीतलता व्याप गई। सब पर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ा।

ता. २९-८-३७ को जन्माष्टमी थी। उस अवसर पर आपके लौकागच्छ के उपाश्रय में 'कृष्ण जीवन' पर विशिष्ट व्याख्यान हुआ। व्याख्यान मे जाम साहब के पिताश्री, दीवान साहब, पोलिटिकल सेक्रेटरी, राज-परिवार, राज्याधिकारी और अन्य जैन-जैनेतर श्रोता मौजूद थे। करीब अढाई हजार श्रोताओ की भीड़ थी। व्याख्यान-भवन खचाखच भरा था। फिर भी अत्यन्त शांति थी। तीन घटे तक पूज्यश्री का व्याख्यान चलता रहा। श्रीकृष्णजी की जीवनी पर आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया। जन्म से लेकर अन्तिम समय तक की उनकी प्रवृत्तियो का रहस्य खोलकर समझाया। ऐसा लगता था मानो पूज्यश्री ने कृष्ण-जीवनी का आपरेशन करके उसका अग-अग सामने रखकर दिखला दिया हो! पूज्यश्री के व्याख्यान के पश्चात् स्थानीय वकील श्रीगोवर्धनदास भाई ने पूज्यश्री के पवित्र जीवन का श्रोताओ को परिचय दिया। तत्पश्चात् पोलिटिकल सेक्रेटरी श्रीद्वारिकादास सरथा ने भी कृष्णजीवन पर भाषण

दिया। पूज्यश्री के उदार विचारों का तथा आकर्षक एवं सारगर्भित व्याख्यान का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा।

संवत्सरी के दिन बहुत प्रातःकाल ही व्याख्यान-भवन भर गया। उस दिन मेघ जल-वर्षा कर रहे थे। कौन जाने वे पर्युषण महापर्व का स्वागत कर रहे थे या पूज्यश्री की अमृत-वर्षा की प्रतिस्पर्धा करने को तैयार हुए थे। कुछ भी हो, जनता को जल-वर्षा से सतोष नही हुआ और वे पूज्यश्री द्वारा होने वाली अमृत-वर्षा की लालसा से खिचे आए। पूज्यश्री ने धर्मप्राण लौकाशाह, पूज्यश्री लवजी स्वामी, पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज, पूज्यश्री धर्मसिहजी महाराज आदि के जीवन पर प्रकाश डाला और उनके द्वारा हुए धर्मोद्धार का वर्णन किया। इसके पश्चात् कांफ्रेस के निर्णयानुसार २० लोगस्स का ध्यान करने की याद दिलाई।

पर्युषण में अनेक प्रकार के तप-त्याग हुए। पूज्यश्री ने छह उपवास स्वयं किये। मुनिश्री फूलचन्दजी महाराज ने १८ का थोक किया। सोलह वर्षीय बालक बाबूलाल चुन्नीलाल नागनिया ने आठ उपवास किये! ता. १०-९-३७ को दोनों का पारणा हुआ। जलगाव के सेठ लक्ष्मणदासजी ने और भीनासर (बीकानेर) के सेठ बहादुरमलजी तथा सेठ चम्पामलजी साहब बाठिया ने अपने-अपने स्थानों पर स्थिरवास करने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री के पैर का दर्द अभी तक बिलकुल ठीक नहीं हुआ था। दर्शनार्थ श्रीहेमचन्द भाई मेहता, दीवान बहादुर सेठ मोतीलालजी मूथा, सेठ वर्धमानजी सा. पीतलिया, उदयपुर के भूतपूर्व दीवान ए. ए. कोठारी श्रीबलवन्तसिहजी आदि प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित हुए थे। मारवाड, मेवाड, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण आदि सभी प्रान्तों से अनेक सद्‌गृहस्थ भी आये थे।

ता. २६-९-३७ को पूज्यश्री का 'अहिंसा और समाजसेवा' विषय पर प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। इस दिन भी उच्च पदाधिकारी, वकील, डाक्टर तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे।

ता. ४-१०-३७ को श्री ठक्कर बापा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने पूज्यश्री के दर्शन किये। आधा घटे तक पूज्यश्री से हरिजनोद्धार संबधी वार्त्तालाप करके बहुत प्रसन्न हुए।

ता. १४-१०-३७ को श्री हरखचद मूलजी एव ता. १९-१०-३७ को श्रीरतनसी कानजी पुनातर वकील ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया।

(गाधी-जयन्ती के दिन श्रीनारायणदास गाधी राजकोट से जामनगर आये थे) उन्हें ५५१) रु. सार्वजनिक हित के लिए भेंट किये गये। स्थानीय अस्पताल को, अपाहिजों को तथा घाटकोपर जीवदया खाते को भी आर्थिक सहायता प्रदान की गई।

समाज मे फैली हुई कुरीतिया जीवन को ऐसा गदला बनाये हुए है कि उनके कारण वास्तविक धार्मिकता पनपने नहीं पाती। जीवन की तह मे कुरीतियां चट्टान की भांति जमी हैं, जिन पर धर्म का अकुर बढ नही सकता। जब तक इस चट्टान को उखाड कर न फैक दिया जाय तब तक धर्म-वृद्धि के लिये किये जाने वाले प्रयत्न प्रायः निरर्थक-से हो जाते हैं। पूज्यश्री इस तथ्य को भली-भाति समझते थे और इसी कारण वे सर्वत्र कुरीतियों के विरुद्ध उपदेश दिया करते थे। मृत्यु के बाद रोने-पीटने की प्रथा घोर आर्त्तध्यान रूप है। राजकोट-चातुर्मास से ही पूज्यश्री ने इसके विरुद्ध उपदेश देना आरभ कर

दिया था। राजकोट-संघ ने प्रस्ताव करके उसे बन्द भी कर दिया था। जेतपुर-सघ ने भी राजकोट का अनुकरण किया था। अव जामनगर-सघ ने भी इसी प्रकार का प्रस्ताव किया। इस प्रकार पूज्यश्री के उपदेश से यह रूढ़ि लगभग खत्म-सी हो गई।

ता. १७-११-३७ को धर्मप्राण लौकाशाह की जयन्ती थी। पूज्यश्री ने श्रीलौकाशाह के जीवन पर प्रकाश डालते हुए, निंदा, क्लेश आदि दुर्गुणो का त्याग करके एकता साधने का उपदेश दिया। करीव २०० पौषध उस दिन हुए।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

सूर्य-किरण-चिकित्सा के विशेपज्ञ डाक्टर प्राणजीवन मेहता जामनगर के चीफ मेडिकल आफिसर थे। पूज्यश्री पर उनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति हो गई थी। उन्होने अपने सूर्यगृह मे पूज्यश्री का उपचार आरभ किया। पूज्यश्री के विनीत संत आपको सूर्यगृह तक उठाकर ले जाते थे। दो मास तक उपचार चला। इस उपचार से पूज्यश्री को धीरे-धीरे कुछ लाभ हुआ।

यद्यपि आप साधारणतया चल-फिर सकते थे परन्तु लम्बे विहार का सामर्थ्य अभी तक नहीं आया था। परीक्षा करने के लिए पूज्यश्री ने एक दिन पाच-छह मील का भ्रमण किया। भ्रमण से कुछ दर्द मालूम हुआ। डाक्टर ने कुछ दिन और विश्राम कर इलाज कराने की सम्मति दी। अतएव चातुर्मास के पश्चात् भी पूज्यश्री को कुछ दिन और ठहरना पड़ा।

बीकानेर-श्रीसघ की ओर से सेठ चदनमलजी बाठिया और सेठ सतीदासजी तातेड़ ने पूज्यश्री से बीकानेर पधारने की विनति की। पूज्यश्री ने फरमाया- 'द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए मारवाड़ फरसने का भाव है।'

धीरे-धीरे पैर का दर्द कुछ ठीक हो गया और पूज्यश्री ने विहार करने का निश्चय कर लिया।

जवाहर-जयन्ती

कार्तिक शुक्ला ३ को पूज्यश्री का जन्म-दिवस था। उस दिन प. र. मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ने एक घटे तक पूज्यश्री के जीवन पर बड़े ही श्रद्धापूर्ण और सुन्दर शब्दो में प्रकाश डाला। फिर डा. प्राणजीवन मेहता, श्रीगोवर्धन भाई वकील आदि भाइयो ने अपने उद्गार प्रकट किये।

जैन और जैनेतर भाइयो ने आपके गुणो की मुक्तकठ से प्रशंसा की और चातुर्मास मे उपदेश देकर कृतार्थ करने के लिए आभार माना। जब सब लोग अपने-अपने उद्गार प्रकट कर चुके, तब पूज्यश्री ने फर्माया-

मैंने इतना समय दक्षिण, मालवा, मेवाड़ और मारवाड में बिताया। मै दिल्ली की तरफ भी गया था। मगर गुजरात-काठियावाड़ बाकी था। इस प्रदेश में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज पधारे थे और यहा की धर्म-श्रद्धा और सरलता के विषय मे मैने बहुत कुछ सुना था। अतएव यहा की जनता के लिए मुझे आकर्षण था।

पहले तो मेरा विचार बीकानेर की ओर जाने का था, मगर आप लोगो का आग्रह बहुत प्रबल हुआ। सूरजमलजी, श्रीमल्लजी, वक्तावरमलजी आदि सतों ने भी मुझे इस ओर आने के लिए बहुत

उत्साहित किया। कहा-'जीवन का कोई भरोसा नहीं अतः श्रावको का आग्रह पूरा करना चाहिए। ....मै काठियावाड आ गया।

आप सबने अभी जो कहा है, उस पर विचार करते हुए मुझे बैठे-बैठे खयाल आ गया। उपनिषद् मे एक वाक्य है-

यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया पालनीयानि।

गुरु, शिष्य से कहता है- हे शिष्य! मुझमें जो सुचरित्र हो, उसी की तू उपासना कर। मुझ मे जो बात प्रपंच भरी जान पड़े उसे तू मत ग्रहण करना।

यही बात मैं तुमसे कहा हूं। आप लोगो ने मेरी प्रशंसा में जो कुछ कहा है, वह मेरे लिए भार स्वरूप है। वास्तव मे मुझे भाषा का भी पूरा ज्ञान नहीं। गुरु चरणो के प्रताप से जो वस्तु मुझे विरासत में मिली है, वही तुम्हे सुनाता हू और उसी के द्वारा सब के अन्तःकरण को सतुष्ट करने का प्रयत्न करता हूं। वह बात सुनाने मे मुझे भूल होती हो या जिसे आपकी आत्मा स्वीकार न करे, उसे आप न मानो। जिसे आपकी आत्मा स्वीकार करे, उसी को मानो।

मै अपनी उम्र के ६२ वर्ष पूर्ण करके त्रेसठवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हू। हालांकि मेरी इच्छा यह थी कि मैं सदैव अपनी आत्मा के कल्याण करने मे ही लगा रहा हू। और किसी भी दूसरे प्रपच मे न पड़ू। मगर नही कहा जा सकता, वह सुअवसर कब प्राप्त होगा! फिर भी मेरी भावना तो यही रहती है। मेरे विषय मे आपने जो कुछ कहा है, उसे सुनकर मुझे अभिमान नहीं करना चाहिए। मुझे यह विचार करना चाहिए कि मुझमे जो गुण बतलाये गये हैं, वे अभी तक मुझ में नही आए हैं और उन्हें प्राप्त करने का मुझे प्रयत्न करना है। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि मुझे सद्बुद्धि प्राप्त हो और सद्भावना की वृद्धि करके स्व-पर का कल्याण साधन करू।

मैं तुम्हारे समक्ष जो कुछ कहता हू, उसे विचार कर ग्रहण करो। ठीक हो सो ग्रहण करो, ठीक न हो उसे छोड़ दो। मैंने अपने गुरु के समीप जो प्राप्त किया है, उसका यथावत् पालन करने मे अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नही हुई। मुझमें अभी तक बहुत-सी अपूर्णताए है। जैसे हंस मोती चुगता है वैसे आप मेरे कथन मे से अच्छी बातें चुन लो और ग्रहण करो। समुद्र मे लहरे तो बहुत आती है मगर सभी लहरों में मोती नहीं आते। लेकिन मोती चुगने वाला हस लहरो मे से मोती चुन ही लेता है।......

डाक्टर प्राणजीवन मेहता

इस चातुर्मास मे तथा उससे पहले और बाद में भी डाक्टर प्राणजीवन मेहता की पूज्यश्री के प्रति सराहनीय सेवा रही। डाक्टर मेहता सूर्य-किरण-चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं और जामनगर रियासत के चीफ मेडिकल ऑफिसर है। आपने तीव्र लगन और सच्चे सेवा-भाव से पूज्यश्री की चिकित्सा की। पूज्यश्री जब तक जामनगर के आसपास विचरते रहे, आप प्रतिदिन मोटरकार से सेवा में पहुंचते रहे और पूज्यश्री के स्वास्थ्य की देखभाल करते रहे। उन्ही के परिश्रम, लगन और सत सेवा से पूज्यश्री को स्वास्थ्य लाभ हुआ। उनके हृदय मे पूज्यश्री के प्रति असीम श्रद्धा और अपार भक्ति है।

जामनगर से विहार

ता २४-१२-३७ को पूज्यश्री ने विहार करने का अंतिम रूप से निश्चय कर लिया था। अत्यन्त सर्दी होने पर भी प्रातःकाल से ही सैकडो स्त्री-पुरुष लौकागच्छ के उपाश्रय मे एकत्र हो गए। उपाश्रय खचाखच भर गया। ९ बजे पूज्यश्री ने विहार किया। भक्तिपूर्ण हृदय से जनता ने दूर तक साथ चलकर विदाई दी। पूज्यश्री ने विदाई-सन्देश देते हुए फर्माया-जैसे सुगन्धित फूल अपनी सुगन्ध अधिकाधिक फैलाता है, उसी प्रकार मैने सात महीनो मे जो उपदेश दिया है, उसकी सुगन्ध आप लोग फैलाना। बालको को जैसे व्यावहारिक शिक्षा देते हो उसी प्रकार धार्मिक शिक्षा भी अवश्य देना। उगते हुए बालक रूपी पौधो पर उपदेश रूपी जल अवश्य सीचना। अगर आप ऐसा करेगे और हम सुनेगे तो हमारा हृदय प्रफुल्लित होगा।

श्रीयुत मानसिह मगलजी मेहता ने कहा-श्रीमान् का किसी कारण मन दुखा हो या सघ की ओर से कोई त्रुटि हुई हो तो हम क्षमाप्रार्थी है। आप क्षमा के सागर है। क्षमा प्रदान कीजिए।

पूज्यश्री ने प्रतिदिन घंटा, आधा घटा, बीस मिनट, दस या पांच मिनट तक भगवान् महावीर के नाम का जाप करने का उपदेश दिया। बहुत-से भाइयों और बहिनो ने यह नियम अगीकार किया। तब पूज्यश्री ने कहा-'प्रस्थान के समय यही हमारा पाथेय है।'

पूज्यश्री उसी दिन हपा पहुच गए। वहां से विहार करके अलीपावाड़ा पहुचे। यहा ता. २६-१२-३७ को जामनगर सघ स्पेशियल ट्रेन से दर्शनार्थ आया। विशाल मैदान मे पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। आपने राम-वनवास और भरत के दु:ख का रोमांचकारी वर्णन किया। जामनगर के वकील गोवर्धनदासजी मुरारजी ने सघ की ओर से हुई त्रुटियों के लिए क्षमाचायना की। वह दृश्य बड़ा ही करुण था। प्रत्येक व्यक्ति की आखों में आसू छलछला आए। पूज्यश्री अब जामनगर से दूर होते जा रहे थे और इस कारण जामनगर की जनता का विषाद उग्र से उग्रतर होता जा रहा था। अन्त में पूज्यश्री ने सत्य के विषय में एक कथा कहकर व्याख्यान समाप्त किया। जनता ने उस दिन प्रीतिभोज किया, जिसमे १५०० व्यक्ति सम्मिलित हुए। पूज्यश्री ने ध्रोल के रास्ते मोरबी की ओर विहार किया।

मोरबी में पदार्पण

माघ कृष्ण ६, ता. २१-१-३८ को प्रात.काल १० बजे पूज्यश्री मोरबी पधार गए। मोरबी की जनता पूज्यश्री के दर्शन के लिए चिरकाल से उत्कठित थी। श्रीदुर्लभजी भाई झवेरी तो कई वर्षो से अपनी जन्मभूमि में आपको लाने के लिए प्रयत्नशील थे। अचानक पैर-दर्द के कारण आपका चौमासा मोरबी में न हो सका और मोरबी को बड़ी निराशा हुई। मगर निराशा के बाद की आशा, उत्सुकता और प्रतीक्षा का आनन्द अद्भुत ही होता है।

जामनगर से विहार करके पूज्यश्री जब बालभा पधारे तब मोरबी के मुखिया श्रावक पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और मोरबी पधारने की प्रार्थना की। उसके बाद तो मोरबी के धर्म प्रेमी लोगो का आगमन होता ही रहा। ता. २०-१-३८ को चार बजे पूज्यश्री शनाला पधारे। उस समय से तो सैंकडो लोग दर्शनार्थ आने लगे। रात को नौ बजे तक तांता लगा रहा। ता. २१-१-३८ को बहुत सुबह ही लोगो ने शनाला की तरफ जाना आरम्भ कर दिया। शतश कण्ठो से निकलने वाले जयघोष के साथ

ही पूज्यश्री ने मोरबी की ओर प्रस्थान किया। मोरवी पहुचते-पहुचते भीड वेशुमार हो गई। स्वागत मे उत्साहपूर्वक भाग लिया। दृश्य बड़ा ही भावमय, सात्विक और सुन्दर रहा!

पूज्यश्री भोजनशाला के विशाल भवन मे उतरे। प्रातःकाल ८॥ वजे से ९ वजे तक मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज व्याख्यान बाचते और फिर १० बजे तक पूज्यश्री पीयूष-वर्षा करते। सारी भोजनशाला श्रोताओं से खचाखच भर जाती, फिर भी खूब शांति रहती। बाहर से अनेक सज्जन पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए।

ता. २३-१-३८ को कांफ्रेंस के अध्यक्ष श्री हेमचन्द भाई आए। उसी दिन धर्मवीर सेठ दुर्लभजी भाई ने तथा अन्य तीन सज्जनों ने सपत्नीक-व्रत अंगीकार किया। चार जोड़ों के साथ ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करने की यह घटना मोरबी मे पहली ही थी। श्रीहेमचन्द भाई ने चारों सज्जनो को दुशाले और चारों बहिनो को साड़ियां भेंटकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् पूज्यश्री ने ब्रह्मचर्य की महिमा पर सुन्दर और मननीय प्रवचन किया और बतलाया कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य नही पाल सकते उन्हे एक पत्नीव्रत का पालन अवश्य करना चाहिए। पूज्यश्री ने अपने जीवन मे ब्रह्मचर्य की अलौकिक महिमा का चमत्कार साक्षात् अनुभव किया था। यही कारण था कि आप अत्यन्त तेजस्वी वाणी मे, अधिकारपूर्ण शैली से ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रतिपादन किया करते थे। आप अकसर फर्माया करते थे-'अखंड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है।'

इस व्रतग्रहण के प्रसंग पर श्रीदुर्लभजी भाई झवेरी ने विधि संस्थाओ को २५०४) रुपये का दान दिया।

मोरबी-नरेश का आगमनः जौहरी जी का दान

ता. ५-१-३८ को प्रातःकाल मोरबी के नामदार महाराज साहब पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधारे। महाराज साहब अभी बीमारी से उठे थे और आपका शरीर काफी कमजोर था; मगर पूज्यश्री का आगमन सुन अपने- आपको रोक नही सके। चिरकालीन आशा फलवती हुई। वे पूज्यश्री के दर्शन करके बडे प्रसन्न हुए। जब आप पधारे तो उस समय राज्याधिकारी और जनता विशाल सख्या में उपस्थित थी। उस समय धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी ने कहा- महाराजा साहब मोरबी में कलाभवन स्थापित करना चाहते है। इस सबध मे बडौदा से पूछताछ भी की गई थी। इसी बीच महाराजा साहब की तबीयत खराब हो गई और वह योजना अभी तक यो ही रही है। अब महाराजा साहब स्वस्थ होकर यहां पधारे है। हम उनके दीर्घजीवन के लिए प्रार्थना करते है। कलाभवन के लिए मैंने भाजपुर में तथा उसके पीछे वाली अपनी दस हजार फुट जमीन पट्टे लिख दी है। अब उस ज़मीन मे भवन बनवाने के लिए पाँच हजार रुपया भी भेट करता हूं। कुल मिलाकर आपने १५०००) रु. का दान दिया।

रविवार के रोज मोरबी-श्रीसघ ने पूज्यश्री से चातुर्मास की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया- 'मेरे पूर्ववर्त्ती आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने काठियावाड़ मे दो चातुर्मास किये थे। मै भी दो चातुर्मास कर चुका हू। फिर भी सङ्घ की विनति मेरे ध्यान में है।

बीकानेर का सङ्घ भी चातुर्मास की प्रार्थना करने आया। मगर साम्प्रदायिक नियम के अनुसार होलिका से पहले चातुर्मास का निर्णय नहीं हो सकता था।

पूज्यश्री उत्तमचन्द्रजी महाराज का मिलाप

दरियापुरी सम्प्रदाय के पूज्यश्री उत्तमचन्द्रजी महाराज वृद्ध होने पर भी आपसे मिलने के लिए पधारे। श्रीसङ्घ ने सामने जाकर उनका हार्दिक स्वागत किया। दोनों पूज्यो का सस्नेह समागम हर्ष बरसाने वाला था। पूज्यश्री के सतों ने नवागत् आचार्यश्री का स्वागत और सम्मान किया। दोनो आचार्य हार्दिक उमंग के साथ मिले। श्रीसङ्घ के श्रेयस के लिए बातचीत की। साधु-सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार दोनो के सम्मिलित व्याख्यान के लिए प्रार्थना की गई। किन्तु दरियापुरी सम्प्रदाय के आचार्यश्री ने फरमाया- 'हम सुनने आये हे,सुनाने के लिए नही आये। हमे पूज्यश्री से मारवाड़, मालवा, मेवाड और दक्षिण आदि के अनुभव जानने हैं।'

प्रात:काल और मध्याह्न मे दोनो पूज्य वार्तालाप करके स्नेह एवं हर्ष की वृद्धि करते थे। श्रावक-समाज भी यह देखकर अपना साम्प्रदायिक दायरा भूल रहा था।

सोमवार के दिन मोरवी-महाराजा फिर उपदेश-श्रवण करने उपस्थित हुए। पौन घण्टा बैठने के बाद आपने पूज्यश्री से निवेदन किया- 'गत वर्ष का चौमासा आकस्मिक बीमारी के कारण यहा नही हो सका। इस वर्ष हमे अवश्य लाभ मिलना चाहिए। धर्म के प्रताप से अच्छे कार्य होगे।

सोमवार ता. २७-२-३८ को महाराजा साहब फिर तीसरी बार पधारे। इस बार आपने एक घटे तक उपदेशामृत का पान किया। जैनशाला तथा कन्याशाला के बालको को आपने पारितोषिक वितरण किया।

मोरबी-नरेश जब चौथी बार उपदेश सुनने आये तो आप भी मोरबी-संङ्घ द्वारा चातुर्मास के लिए की गई पुन. प्रार्थना मे सम्मिलित हुए। मकान, उतारा आदि सभी प्रकार की राजकीय सहायता के लिए आपने सघ को वचन दिया। समवसरण सरीखे इस अवर्णनीय प्रसंग पर पूज्यश्री ने मोरबी महाराजा की धर्म-भावना और सत-समागम की अभिलाषा का अभिनदन किया; किन्तु सम्मेलन के नियमानुसार चातुर्मास के विषय में कोई वचन नहीं दिया।

इधर मोरबी महाराजा तथा वहा की धर्मप्रिय जनता पूज्यश्री के चातुर्मास के लिए प्रयत्नशील थी और उधर अन्य स्थानों के विवेकशील श्रावक भी सावधान हो गए थे। चातुर्मास का समय सन्निकट आ रहा था और लोग सोचते थे कि पहले चेतने वाला जीतेगा। तदनुसार काठियावाड़ मे सर्वत्र चौमासा कराने की हलचल आरभ होने लगी। मगर गुजरात कब पीछे रहने वाला था? वहां के केन्द्रस्थान अहमदाबाद में भी चातुर्मास-चर्चा आरभ हो गई। इसी सिलसिले में ता. ३०-१-३८ के 'स्थानकवासी जैन' पत्र के सम्पादक ने एक टिप्पणी इस प्रकार लिखी-

परमपूज्य जैनाचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज सा. नी व्याख्यान श्रेणी काठियावाड़नी भूमि ने पावनकर्त्ता बनी छै। एटलुज नहिं पण काठियावाडनी जनताए शक्तिना प्रमाणमा स्वलक्ष्मीनो सद्व्यय करी पोताना गुरुदेवोनु उचित सन्मान कर्यु छे। स्थले-स्थले धर्मभक्ति, परोपकार, साहित्यविकास, चारित्रविकास आदि गुणोनी वृद्धि थई छे अने ए रीते प्रस्तुत जैन मुनिओनो काठियावाड़नो प्रवास उभयने माटे कल्याणप्रद नीवड्यो छे। जो के तेओश्रीए हज्र तो काठियावाडनो एक भाग स्पर्श्यो छे अने भावनगर तरफनो बीजो भाग स्पर्शवोबाकी छे। साथे-साथे पूज्यश्री शरीरिक स्थितिबराबर न होवा थी मारवाड

तरफना,स्वधर्मी उदार भक्तो पूज्यश्रीनु कायमी निवास पोताना प्रदेश मे तात्कालिक करावना इच्छे छे, ज्यारे बीजी तरफ काठियावाड़ नो जे भाग पूज्यश्री नी व्याख्यान वाणी थी वचित छे ते भाग ते ओ श्री नो लाभ लेवा उत्कट इच्छा धरावे छो।

आजे स्थानकवासी जैनो नु कार्य प्रदेश अने धर्म श्रद्धा केटलेक अंशे उज्जड जेवा बनी गया छो, तेवे प्रसंगे विद्वान् कार्यदक्ष मुनि महाराजना बोधनी अत्यन्त आवश्यकता छे। आथी अमे इच्छीए छीए के पूज्यश्री काठियावाड ना बीजा भागना घणा खरा क्षेत्रो स्पर्शी ल्ये, तो उने श्री ने अहमदाबाद पधारता घणो समय-यतीत थई जाय ते स्वाभाविक छे अते पछी चातुर्मास के कायमी निवास माटे मारवाड तरफ पडोची शयाम पण नहीं अने ए रीते स्थिति साधारण रीते विचारात्मक बने। आथी अमे अमदाबादनी धर्म प्रेमी जनता जेओ पूज्यश्री ने शेषकाल माटे पधारवानो आमन्त्रण मूकी चुकी छे, एटलुं ज नही पण थोडा ज दिवसो यां रूबरू आमन्त्रण करवा माटे एक डेपुटेशन मोरबी मुकामे जनार थे, ते ओ ने अमे विनत्ति करीर के पूज्यश्रीनुआ चातुर्मास पोताने आगणे (अमदाबाद) मां थाय एवा प्रयत्नो करे अने ए रीते अमदाबाद की समस्त स्था. जैन प्रजा ने पूज्यश्री की अद्भुत वाणी नो लाभ मली शके। साथे-साथे अन्य स्थलो मा पण ते ओ श्री ठीक ठीक समय सुधी रोकाई ने अन्य क्षेत्रो मां धर्म ना सुदृढ सस्कारो रेडी शके।..............

अहमदाबाद का शिष्टमंडल

पूज्यश्री से अहमदाबाद मे चौमासा करने की विनति करने के लिए गुजरात के अन्य संघों क भी प्रतिनिधित्व करने वाला एक शिष्ट मण्डल ता. ७-२-३८ को पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हु पूज्यश्री के व्याख्यान के अनन्तर श्रीदुर्लभजी भाई ने शिष्टमण्डल का स्वागत करते हुए कहा- गुजरात का पाटनगर है और व्यापार का प्रधान केन्द्र है। किन्तु स्थानकवासी लौंकाशाह द्वारा किये गये क्रियोद्दार का आदि स्थान होने के कारण उसे और है। सूत्रों का टब्बा लिखने की प्रथा चलाने वाले पूज्यश्री धर्मसिहजी महार का यह पवित्र धाम है। श्रीधर्मदासजी, और श्रीलवजी ऋषि जैसे आद्य प्रचार आरभ किया था और सैकड़ो वर्ष पहले पैदल विहार करके जगाई थी। आज भी काश्मीर के मुख्य नगर जम्मू में साधुओं के मेहता और दुनिया के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गांधी की मे पूज्यश्री अवश्य नई प्रेरणा प्राप्त करेगे और उसक

इसके बाद एक एम. डी. डाक्टर का

विदाई थई उघाडपगेर चाली नीकल्या ते दृश्य नजर आगल तर्या करे छे, जाणे के पूज्य महाराज आपण संसारीनो राग छोडी मुक्तिना मार्गे प्रमाण करी रह्या होय! पूज्य महाराज श्रीना आहार-विहारनो वारीक अवलोकन करवानो प्रसंग आ वखते मल्यो, साधुदशामा शरीरने शु कष्ट होसे-होसे देवाय तेनो ख्याल आव्यो, दु.खता पगे, उघाडा पगे चालीने विहार करवो, भिक्षा मागी समयनुं माप जालवी जे मले तेपर आहारनो आधार! कोई वेला न पण मले!

रहेवाना स्थाननी अगवडता, टाढ, तडका, मच्छर विगेरे जीवातनो परिपह, कोई साधन नहिं, कोईनी माया नहिं, आ तो देहनी परम अजब जीतज गणाय। देहने जे आटलो कावूमा राखीशके तेने देह तावेदार वने छे, जे देहने फुलावी-फुलावी ने पोसे छे ते देहनो तावेदार छे, देह नौकर बने तो आत्मा मुक्त वने छे, देह धणी थाम छे तो आत्मा एटलोज वधु वधाय छे।'

शिष्टमण्डल की ओर से श्रीचन्दूलाल अचरजलाल शाह ने पूज्यश्री से अहमदावाद पधारने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री ने उत्तर दिया- 'नामदार मोरवी महाराज साहेव तथा मोरबी-सङ्घ की प्रार्थना होने पर भी शारीरिक कारणो से मै आगे वढने की इच्छा रखता हू। साम्प्रदायिक मर्यादानुसार होली से पहले चातुर्मास के विषय में निर्णय नही किया जा सकता। फिर भी शेष काल के लिए अहमदाबाद फरसने की भावना है।'

शिष्ट-मंडल के उत्सुक सदस्य पूज्यश्री के इस आश्वासन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। अहमदाबाद की जनता पूज्यश्री के चातुर्मास के लिए बहुत उत्कठित थी। इस उत्तर से सभी को सान्त्वना मिली।

पूज्यश्री बुधवार को मोरबी से विहार करना चाहते थे किन्तु मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज तथा श्रीमोतीलालजी महाराज की अस्वस्थता के कारण आपको कुछ दिन और ठहरना पडा। अन्ततः ता. २६-२-३८ के दिन तीन संतो को मोरबी छोड़कर पूज्यश्री ने विहार कर दिया। सनाला, लज्ञाई, टकारा होते हुए फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को आप बाकानेर पधार गए। लज्ञाई गाव में मोरबी-नरेश आपके दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए पधारे और चौमासा मोरबी मे न हो सकने की सम्भावना पर खेद-खिन्न हुए। कुछ दिनों बाद पीछे रहे तीनों सन्त मुनिराज भी बाकानेर पधार गए।

जहा कही पूज्यश्री पधारे वहां व्याख्यान मे श्रोताओ की क्षेत्र की मर्यादा के अनुसार, अपूर्व भीड इकट्ठी होती थी। यह घटना तो एक सामान्य बात बन गई थी। तदनुसार बांकानेर मे भी बेशुमार भीड इकट्ठी होती थी। चातुर्मास का समय होने के कारण अहमदाबाद और मोरबी आदि के अगुवा श्रावक उपस्थित थे। पूज्यश्री ने अहमदाबाद फरसने की स्वीकृति पहले ही दे दी थी, इस बार सुखे-समाधे चौमासा करने की भी स्वीकृति दे दी।

स्थानीय युवकमण्डली की प्रार्थना पर पूज्यश्री ने 'समाज-व्यवस्था' विषय पर विशिष्ट व्याख्यान दिया। जैनेतर जनता भी बहुत बड़ी सख्या में उपस्थित थी। ता. १४-३-३८ को जब बाकानेर-नरेश पूज्यश्री का उपदेश सुनने के लिए अपने तीनों कुमारों और अमात्यवर्ग के साथ पधारे तो पूज्यश्री ने 'अहिंसा और राजधर्म' पर डेढ घण्टा तक अपूर्व वाणी-धारा प्रवाहित की। उपदेश के बाद महाराज साहब ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की और इस सुअवसर की प्राप्ति के लिए अपने-आपको धन्य समझा।

फिर राजकोट में

कुछ दिनो तक बाकानेर विराजकर पूज्यश्री राजकोट पधारे। पूज्यश्री की महिमा से यहा की जनता भली-भाति परिचित हो चुकी थी, अतएव जब आप दोवारा राजकोट पधारे तो नगर मे उत्साह और उल्लास फैल गया। आपके साथ इस बार बोटाद सम्प्रदाय के वयोवृद्ध मुनि माणिकचन्द्रजी महाराज तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के वयोवृद्ध आचार्य पूज्यश्री उत्तमचन्द्रजी महाराज भी थे। तीनो महापुरुषो का राजकोट मे आना ऐसा मालूम होता था मानो, ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्न-त्रय का आगमन हुआ हो! तीनों महानुभाव जब व्याख्यान मडप मे विराजते तो अपूर्व शोभा मालूम होती, जैसे त्रिवेणी-सगम हुआ हो! प्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यानामृत का पान करने के लिए जनता आतुर रहती थी। जैन और जैनेतर सभी लाभ उठाते थे। पर्युषण पर्व जैसा आनन्द-मङ्गल छा रहा था। पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश का लाभ उठाने के लिए कोठारिया एव सरदारगढ के दरबार तथा मोरबी-नरेश के भाई कुमार रणजीतसिंह जी दो बार आए और दोनो बार प्रसन्नता प्रकट करके विदा हुए।

मोरबी-महाराजा की प्रार्थना

बाकानेर में अहमदाबाद के शिष्टमडल को अहमदाबाद-चातुर्मास का आश्वासन पूज्यश्री दे चुके थे। आपने अपने विहार का क्रम भी इसी के अुनसार निश्चित किया था। जब पूज्यश्री राजकोट पधारे तो डाक्टर प्राणजीवन मेहता पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। जब उन्हे पता चला कि पूज्यश्री अहमदाबाद पधार रहे है तो उन्होंने मनसुखभाई को एक पत्र लिखा। ता. २६ को मोरबी के महाराजा साहब तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जन मोरबी मे चौमासा करने की प्रार्थना के लिए आ पहुचे। पूज्यश्री ने कहा-'मै अहमदाबाद श्रीसङ्घ को आश्वासन दे चुका हूँ। अब सङ्घ की बात मानने के लिए बाध्य हूँ। उसके बाद मोरबी-नरेश ने जो विनति की उसकी विगत इस प्रकार है.-

ता. २६-३-३८ शनिवार को सायकाल, साढे चार बजे नामदार मोरबी-नरेश पूज्यश्री के दर्शन के लिए दशाश्रीमाली वणिक् भोजनशाला के भवन में पधारे। उनके साथ मोरबी स्टेट रेलवे के ट्राफिक सुपरिंटेडेंट श्रीमनसुखलाल भाई भी थे। मोटर से उतरते ही वे वणिक दवाखाने के हाल मे प्रविष्ट हुए। श्रीसङ्घ के अग्रगण्य व्यक्तियो ने आपका स्वागत किया। तदनन्तर आप पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए। पूज्यश्री से सुख-साता की पृच्छा करने के पश्चात् नरेश ने कहा-मनसुखलाल ने मुझे कहा कि 'पूज्यश्री का यह चातुर्मास अहमदाबाद मे होगा और चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् पूज्यश्री मोरबी पधारेंगे। तब मैंने कहा- 'यह कैसे हो सकता है ? अहमदाबाद जाने के बाद मोरबी पधारना तो उलटी गङ्गा बहाना है। मारवाड़ जाते समय तो अहमदाबाद बीच में आएगा ही। अतएव यह चातुर्मास पूरा करके मारवाड़ जाते समय अहमदाबाद जाना सीधी-सादी बात है।'

मैने मनसुखभाई से फिर कहा- 'तुमने भी खूब कही! मालूम होता है, तुमने काल को जीत लिया है। मुझे भी भीम की तरह घोषणा करनी पड़ेगी कि मैंने काल को जीत लिया है! आगामी चातुर्मास तक कितनी घटनाए घटेंगी, इसका क्या पता है!' अतएव इस वर्ष का चौमासा तो मोरबी मे ही होना चाहिए। ऐसी सीधी-सादी बात मे किसी को हठ नहीं होना चाहिए। अहमदाबाद के भाई हठ करें तो आप कह दीजिएगा कि मोरबी के ठाकुर आये और मुझे ले गए मै क्या करता।'

'दूसरी बात यह है कि अहमदाबाद जाने के बाद फिर मोरवी बुलाने का कष्ट मै आपको नही देना चाहता। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यह आगामी चातुर्मास मोरवी में कीजिए और फिर अहमदाबाद जाइए। अहमदाबाद के भाइयो को कहलाने आदि के विषय में जो कुछ करना हो वह अपनी रीति के अनुसार कर लीजिए।'

इसके बाद उठते समय मोरवी-महाराज ने हँसते हुए कहा- 'अब मै मानता हूँ कि अगला चातुर्मास मोरबी मे ही होगा। मैं तो पक्का करके जाता हूँ। इस पर भी आप नही आएँगे तो मानूगा कि आपके विचार ढीले है।'

महाराजा साहब ने मागलिक सुना और पूज्यश्री ने फरमाया-'आपकी विनति मेरे ध्यान में रहेगी और यथावसर देखा जायगा।'

पूज्यश्री उलझन में

सांसारिक वैभव को निस्सार समझकर तज देने वाले अकिचन अनगार भिक्षु की दृष्टि में राजा-रक समान है। सिर्फ राजा होने के कारण कोई पुरुष उनके लिए महिमाशाली नही बन जाता और रक होने के कारण उपेक्षणीय नही हो जाता। फिर भी श्रद्धालु की श्रद्धा और भक्त का भक्तिभाव उन्हे आकर्षित किये बिना नही रहता। मोरबी-नरेश ने जिस अविचल विश्वास के साथ मोरबी मे चौमासा करने की बात कही, उसने पूज्यश्री के मृदु अन्तःकरण को स्पर्श कर लिया। मोरबी-नरेश की भावना को ठेस पहुचाना पूज्यश्री को उचित प्रतीत नही हुआ।

मोरबी की ओर आकर्षित होने का दूसरा कारण भी हो सकता है। आपके पूर्ववर्त्ती आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने मोरबी मे चौमासा किया था और आप उन्हीं के चरण-चिह्नो पर चलना चाहते थे। मोरबी-चातुर्मास का पहले निश्चय हो गया था, लेकिन आकस्मिक बीमारी के कारण उसमे परिवर्तन हो गया। यह परिवर्त्तन यद्यपि मोरबी-सघ की स्वीकृति से ही किया गया था तथापि मोरबी-सघ को यह परिवर्त्तन अभीष्ट नहीं था। इस परिवर्त्तन के कारण उसे दुःख हुआ था। पूज्यश्री यह अनुभव करते थे और इस कारण इस सघ के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति थी।

तीसरा कारण धार्मिक प्रचार सबधी हो सकता है। पूज्यश्री की क्षत्रिय वश के प्रति गौरवपूर्ण भावना थी। आपके यह विचार ध्यान देने योग्य है-

'एक समय ऐसा था जब क्षत्रियो ने अपने धर्म का पालन करके ससार को इस प्रकार प्रकाशित कर दिया था, जैसे सूर्य अपने प्रखर प्रताप से विश्व को आलोकित कर देता है। बडे-बडे राजों-महाराजों ने और ऋषि-महर्षियो ने धर्म के तेज को धारण करके पाप के अधकार को विलीन-सा कर दिया था। उन तेजस्वी पुरुषों की जीवन-कथाआज भी हमे उनके पदानुसरण के लिए प्रेरित और उत्साहित करती है। प्राचीन काल में क्षत्रियो ने अपना क्षात्र-धर्म किस प्रकार दिखाया था, इसका उल्लेख इतिहास के पन्नो पर सुवर्ण-वर्णो से हुआ है।'

'वीर क्षत्रिय वश ने अपने कर्त्तव्य मे रत रहकर, न केवल अपने ही वश को, वरन् चारो आश्रमो को देदीप्यमान कर दिया था। शास्त्रो मे इस कथन के पोषक बहुत-से उल्लेख मौजूद है। जैनियो के देवाधिदेव तीर्थकरों ने क्षत्रिय वश में ही जन्म लिया था। क्षात्र-तेज के बिना धर्म प्रकाशित नही होता।

धर्म को प्रकाशित करने के लिए वीर क्षत्रियो ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।'

'बहादुर क्षत्रिय जिस प्रकार अन्य अन्यायो को सहन नही कर सकते थे, उसी प्रकार रमणियो के आर्त्तनाद को भी सुन नही सकते थे। वे स्त्रियो की गोद मे पड़ा रहना पसन्द नही करते थे।'

'मित्रो! तुम-ओसवाल भाई-पहले वीर क्षत्रिय थे। तुम्हारे विचारों में वनियापन बाद मे आया है। अपने इन बनियापन के विचारो को हृदय से निकाल दो। ¨ ¨तुम्हारे शरीर में शुद्ध क्षत्रिय-रक्त दौड़ रहा है। उठो! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा?'

मोरबी-महाराजा साधारण क्षत्रिय नहीं, एक नरेश है। उन्हे धर्म का प्रतिबोध देने से प्रजा का विशेष कल्याण होने की सभावना थी।

सभवतः इन्ही सब कारणो से पूज्यश्री का झुकाव मोरबी की ओर हो गया तो क्या आश्चर्य है? मगर यह सब होते हुए भी अहमदाबाद-संघ के प्रति वे वचनबद्ध हो चुके थे। कुछ भी हो मगर साधु अपने विचार से मुकर नही सकते। जब तक अहमदाबाद के श्रीसङ्घ की स्वीकृति न मिल जाय तब तक पूज्यश्री अहमदाबाद जाने के लिए बाध्य है। पूज्यश्री के सामने यही उलझन उपस्थित थी।

चातुर्मास के निश्चय में परिवर्त्तन

पूज्यश्री ने समाज के अनुभवी और प्रमुख व्यक्तियो से परामर्श किया। यह निर्णय हुआ कि अहमदाबाद श्रीसङ्घ के सामने सारी परिस्थिति रख दी जाय और उसी से अतिम निर्णय करा लिया जाय। इस निश्चय के अनुसार सात सज्जनों का एक डेप्यूटेशन अहमदाबाद गया, जिसमे धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई, रा. ब. मणिलाल वनमालीदास, राय साहब ठाकरसी भाई आदि मोरबी और राजकोट के प्रमुख व्यक्ति थे।

मुलाकात के बाद ९॥ बजे सारगपुर दौलतखाने के उपाश्रय में एक आम सभा का आयोजन किया गया। उस समय श्रीकालीदास जसकरण झवेरी ने कहा -

दो वर्षो से पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज काठियावाड़ की भूमि को पवित्र कर रहे हैं। मुझे एक अवसर पर रतलाम जाना पड़ा। वहा पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर मुझे लगा कि आपके व्याख्यान समय के अनुसार और उच्च कोटि के हैं। इसलिए मैने उस समय उन्हें गुजरात पधारने की प्रार्थना की। काठियावाडी भाइयों के आग्रह से उन्होने राजकोट तथा जामनगर मे चातुर्मास किये। इसी बीच मुझे समाचार मिला कि पूज्यश्री इसके बाद बांकानेर पधार जायेगे। उस समय मैंने सोचा-उनका सीधे पधार जाना ठीक नही है। वे गुजरात में पधारे तो ठीक रहे। यह बात मैंने दूसरे भाइयों से कही। उसके बाद डाक्टर पी. पी. सेठ के सभापतित्व मे एक सभा की गई और चौमासा कराने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् १५-१७ भाइयों का डेप्यूटेशन मोरबी गया। उसमे मारवाड़ी भाई भी सम्मिलित थे। हम मोरबी मे पूज्यश्री से मिले, विनति की। उसमे श्रीदुर्लभजी भाई ने भी हमारी तरफ से वकालत की। अहमदाबाद को मुनि श्रीधर्मसिहजी का धाम बताया। उससे पूज्यश्री का मन आकृष्ट हुआ। उसके बाद हम फिर बाकानेर गए। उस समय भी राजकोट तथा बाकानेर के भाइयों ने हमें आश्वासन दिया। श्रीचिमनलाल भाई वकील और श्रीगुलाबचद सधाणी वही रुक गए और निश्चय करके आए कि पूज्यश्री जेठ में यहाँ पधारेगे और चातुर्मास यही करेगे। हम लोग उतरे तथा व्यवस्था सबन्धी बातो का विचार करने लगे। पूज्यश्री राजकोट

पधारे। ता. २६ को मोरवी-नरेश पधारे और उन्होने अपने नगर मे चातुर्मास करने की पूज्यश्री से प्रार्थना की। इस संवध में विशष विवरण हमें डेप्यूटेशन के सभ्यो से सुनने को मिलेगा।'

तत्पश्चात् राजकोट के श्रीमणिलाल भाई ने राजकोट मे डाक्टर प्राणजीवन मेहता से आने से लेकर सारी हकीकत सुनाई। इसके वाद कहा-स्व. पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज को मोरवी के स्वर्गस्थ नरेश श्री सर वाधजी साहेब ने पधारने की विनति की थी। उन्ही की प्रेरणा से मोरबी मे स्थानकवासी कान्फरेस हुई थी। राजा लोगों की विनति का हमारे सामने यह पहला उदाहरण है। इससे धर्म का लाभ होने की आशा है। अहमदावाद मारवाड के रास्ते मे आता है, इसलिए उसे तो लाभ मिलेगा ही। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मोरवी की विनति मजूर करे।

इसके वाद श्रीदुर्लभजी भाई ने कहा- अहमदावाद लौकाशाह की जन्मभूमि है। क्रियोद्धार का महाधाम है। स्था. सङ्घ की गद्दी का गाव है। स्था जैन धर्म पालने वाली पाच लाख जनता अहमदाबाद की ऋणी है। हम मोरवी सङ्घ की तरफ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते है कि मोरबी मे चातुर्मास के लिए स्वीकृति दीजिए। भविष्य का अधिकार कायम रखते हुए मोरबी चातुर्मास से अपनी महासभा का भी हित होने की सम्भावना है। धर्म का भी उद्योत होगा। इन सारी हित-दृष्टियो को सामने रखकर मै आपसे कहता हू।

इसके बाद श्री पी. एन. शाह ने आचार्यश्री की प्रशसा तथा डेप्यूटेशन का सत्कार करते हुए विनति मान लेने की अपील की।

इसके बाद श्रीत्रिकमलाल वकील ने कहा- मेरा आग्रह था कि पूज्यश्री का चातुर्मास यहॉ हो तो अच्छा। किन्तु सारी बात जानने के बाद मै अपना विचार मोरबी के लिए प्रकट करता हू। जो विरुद्ध हो वे यहॉ बोल सकते है। किसी ने विरुद्ध मत नही बताया। मोरबी की विनति मजूर हो गई।

डेप्यूटेशन ने वापिस आकर अहमदाबार श्रीसङ्घ का निर्णय बताया।तदनुसार पूज्यश्री नेमोरबी चातुर्मास का निश्चय कर लिया।

जैन गुरुकुल पाठशाला की स्थापना

पूज्यश्री समाज मे विद्या के प्रचार पर बहुत जोर दिया करते थे। उन्हीं के सदुपदेश से चातुर्मास के समय राजकोट में 'श्रीमहावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटी' को पुनर्जीवन दिया गया था और धार्मिक साहित्य के प्रचार के निमित्त ८०००) रुपये एकत्र हो गये थे।

इस बार श्रीमहावीर जयन्ती के दिन गुजरात-काठियावाड में धार्मिक शिक्षा के प्रचार के हेतु श्रीजैन गुरुकुल-पाठशाला स्थापित करने का निश्चय हुआ। उत्साह के साथ धनवानो ने धनदान दिया। निश्चय के बाद ही अठारह हजार रुपये इकट्ठे हो गए। महिला-समाज ने भी अच्छी रकमे देकर अपना सहयोग प्रदर्शित कर दिया।

पूज्यश्री तीन सप्ताह राजकोट मे रुके। इस अर्से मे सात भाइयों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। इनमे से राजकोट सघ के मत्री ए. मणिलाल बनमालीशाह ने ५००) रुपया शुभ कार्यो मे तथा मेहता वनमाली धरमसी ने १०००) रुपया गुरुकुल को भेट देने की घोषणा की। सामाजिक रिवाज

के अनुसार सातो भाइयो को पोशाक भेट की गई। श्रीचुन्नीलाल भाई नागजी वोरा की धर्मपत्नी श्रीसाकली बहिन ने सबको चादी के प्याले भेट किए।

वैसाख कृष्णा द्वितीया के दिन पूज्यश्री ने सरधार की ओर विहार किया। वहां से विछिया होते हुए वोटाद पधारे। वोटाद मे काठियावाड़ जैन गुरुकुल पाठशाला की व्यवस्था के लिए एक मीटिग हुई, जिसमे काठियावाड के मुख्य-मुख्य सभी स्थलो के प्रमुख सज्जन एकत्र हुए। उसी समय लीवडी-श्रीसघ ने पूज्यश्री से लीबड़ी पधारने की प्रार्थना की। किन्तु समयाभाव के कारण वह स्वीकृत न हो सकी। यहा एक बात रह गई है और वह यह कि पूज्यश्री जब वोटाद पधार रहे थे उस समय सापला-ठाकुर साहव के गद्दी पर विराजने का सस्कार हो रहा था। इस प्रसग पर वहुत-से ठाकुर साहव वहां उपस्थित हुए थे। जव उन्हे पता चला कि पूज्यश्री उधर होकर पधार रहे है तो कई ठाकुर साहब पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और अत्यन्त आग्रह के साथ आपको सापला ले गए। वहा पूज्यश्री का महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। वीरपुर के दरबार भी वहा उपस्थित थे। इन सब नरेशो का भक्तिभाव देखकर पूज्यश्री बहुत प्रभावित हुए।

पूज्यश्री जब चोटीला होते हुए थान पधारे तो थाने के थानेदार ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और अनेक त्याग-प्रत्याख्यान हुए। छोटे-छोटे ग्रामो मे भी पूज्यश्री के प्रति परम भक्ति थी। यहा बहुत से जागीरदार आपके दर्शनार्थ आए और आपके उपदेश से कइयो ने बीडी-शराब तथा पर-स्त्री-गमन का त्याग किया।

इस प्रकार जगह-जगह धर्मोपदेश करते हुए तथा अनेक जनो को सन्मार्ग पर लगाते हुए पूज्यश्री आषाढ कृष्णा १४ को मोरबी पधारे। कुछ दिनों तक आप नगर के बाहर विराजमान रहे। आषाढ शुक्ला ३ के दिन आपने नगर मे प्रवेश किया। मोरबी की जनता ने चातुर्मास के लिए बहुत परिश्रम किया था। अनेक कठिनाइयों के बाद अपने श्रम को सार्थक होते देख वहां की जनता हर्ष-विभोर हो रही थी। राजा और प्रजा मे सर्वत्र उत्साह ही उत्साह नजर आता था। अत्यन्त भक्ति, श्रद्धा और सद्भावना के साथ जनता ने पूज्यश्री का स्वागत किया। मोरबी-नरेश भी पधारे बहुत देर तक वार्त्तालाप की।

छयालीसवां चातुर्मास

(स. १९९५)

श्री श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की जन्म-भूमि मोरबी मे पूज्यश्री ने सं. १९९५ का चातुर्मास किया। पूज्यश्री दशाश्रीमाली-भोजनशाला के विशाल भवन मे ठहरे थे, किन्तु व्याख्यान मे इतनी भीड़ इकट्ठी होती थी कि वह भवन भी तग पडता था। अतएव विशेष अवसरो पर अन्य स्थानों में व्याख्यान का आयोजन करना पडता था।

पूज्यश्री के चातुर्मास के सबध में वहा के नगरसेठ श्रीयुत वीकमचंद अमृतलाल ने समाचार पत्रों मे निम्नलिखित विज्ञप्ति प्रकाशित की-

मोरबीनुं आदर्श चातुर्मास

प्रसिद्ध पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजना काठियावाड़ प्रवासे अनेते ओश्रीना समयोचित व्याख्यानोए श्रोताओ पर आदर्श असर करी छे काठियावाडी मुनिओ माटे मार्गदर्शन, सिंचन करेल छे जेने पोषवा-पालवानु काम हवे कालजी थी तो ए बी बहेली तके पागलशे।

धार्मिक, सामाजिक अने व्यावहारिक विटंबनाओनो तेओश्रीए सचोट, अहिंसक उपायो सूचवी श्रद्धा दृढ करी छे. बनी शके तेटलो लाभ लुटी लेवो जोइए, वृद्ध शरीरे पण सिंहनी पेठे गर्जना करता ए आचार्यश्रीनी अमृतवाणी हृदय सोंसरी उत्तरी जाय छे, दर्शने आववा माटे सवार अने साझनी गाडी अनुकूल छे, रातनी गाडीमां मुश्केली रहे छे, मोरवी श्रीसंघे स्वागत समितिओ नीमी छे।

राजकोट की स्पेशियल ट्रेन

ता. ५-८-३८ को राजकोट से लगभग ४०० व्यक्ति स्पेशियल ट्रेन द्वारा पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। मोरवी के प्रमुख श्रावक तथा वोर्डिंग के विद्यार्थी उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। सभी आगत और स्वागतार्थ उपस्थित जनसमूह नगरकीर्तन करता हुआ पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुआ। वह दृश्य कितना सुहावना, कितना भव्य, कितना प्रेरक और मनोहर रहा होगा! इस दृश्य के निर्माता और दर्शक दोनो ही धन्य है और इन सबसे बढकर धन्य है पूज्यश्री की उज्ज्वल आत्मा, जिसने जनता मे एक नवीन स्फूर्ति भर दी!

राजकोट-संघ ने मोरबी-सघ को प्रीतिभोज दिया। ४००० व्यक्ति सम्मिलित हुए।

व्याख्यान में महाराजा और राजकुमार

मोरबी-महाराजा साहब, पूज्यश्री का उपदेश सुनने अकसर आते ही रहते थे। उन्होने जिस उत्साह के साथ चातुर्मास करवाया था उसी उत्साह के साथ सेवा का भी लाभ ले रहे थे। इस बार वे सापला के ठाकुर साहब और वीरपुर के पाटवी राजकुमार को साथ लाए। मोरबी के पाटवी राजकुमार तथा अन्य राजकुमार व्याख्यान मे आते रहते थे। इनके अतिरिक्त राजकीय अतिथि, अधिकारी और अन्य राजवर्गीय सज्ज्न भी पूज्यश्री के उपदेशो से लाभ उठाते थे। वीरपुर-नरेश तो व्याख्यान सुनने के निमित्त ही आए थे। यह सब दृश्य देखकर जैनधर्म के प्राचीन क्षत्रिय युग की याद आ जाती थी, जब भारतवर्ष के राजा-महाराजा और सम्राट् अनगारों के चरणों मे मस्तक झुकाकर धर्म की विजय-घोषणा करते थे!

जोधपुर, बीकानेर, ब्यावर, अजमेर, राजनांदगाव आदि दूर-दूर के प्रदेशो से भी सैकडो दर्शनार्थी आते थे। राजकोट-गुरुकुल के विद्यार्थी भी पूज्यश्री का अशीर्वाद लेने आये थे। सघ की ओर से सब के स्वागत की समुचित व्यवस्था थी। मोरबी की जैन-जैनेतर प्रजा स्वागत मे समान रूप से भाग लेती थी। भोजनशाला का भवन व्याख्यान के लिए छोटा पडने लगा तो दरबारगढ में व्याख्यान की व्यवस्था की गई। मकान और मोटरों आदि की सुविधाएं राज्य की ओर से प्रस्तुत थी।

जूए की बन्दी

जन्माष्टमी के अवसर पर बहुत-से मारवाडी और गुजराती भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। जन्माष्टमी के दिन पूज्यश्री का व्याख्यान दरबारगढ़ के चौक मे हुआ। हिन्दू, मुसलमान, आदि सभी जातियों के लोग विशाल सख्या मे उपस्थित थे। मोरबी-नरेश और राज्याधिकारी भी आए थे। पूज्यश्री ने कृष्ण के चरित पर बडा ही ओजस्वी और मार्मिक भाषण दिया। आपने जन्माष्टमी के दिन खेले जाने वाले जूए की असरकारक शब्दो में निन्दा की।

इस व्याख्यान का फल यह हुआ कि मोरबी के नामदार महाराजा साहव ने कानून वना कर जूए को बंद कर दिया। जूए के ठेके से हजारो रुपया वार्षिक की आमदनी रियासत को होती थी। महाराजा साहब ने इस हानि की परवाह न की और प्रजा के नैतिक विकास को ही अधिक मूल्यवान् माना।

डा. प्राणजीवन मेहता का सत्कार

आश्विन कृष्णा ११-१२ को हितेच्छु श्रावक मडल, रतलाम का सत्तरहवां वार्षिक अधिवेशन हुआ। समाज के प्रमुख व्यक्ति इस अधिवेशन मे सम्मिलित हुए। अधिवेशन मे दूसरी कार्रवाई के साथ जामनगर मे पूज्यश्री की सेवा करने वाले धर्म-प्रेमी डा. प्राणजीवन मेहता को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया गया।

डाक्टर साहब ने अभिनन्दन पत्र के उत्तर मे कहा-'मण्डल ने अभिनन्दन पत्र देने का निश्चय किया और श्रीदुर्लभजी भाई ने मुझे स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। किन्तु मेरे खयाल से ऐसा कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। पूज्यश्री के पैर मे दर्द हुआ। यह उनके असातावेदनीय का उदय था, लेकिन मुझे तो प्रत्येक दृष्टि से लाभ ही हुआ। पाश्चात्य सस्कारों के दोष से जैनधर्म और साधुओं पर आस्था बहुत कम थी। पूज्यश्री के सम्पर्क मे आने पर, सेवा के लाभ के साथ ही मुझे तत्त्व-ज्ञान की खूबिया समझने का अवसर मिला। मैने जो उपचार किया सो अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। इसमें विशेषता कुछ नहीं थी। फिर भी आपने मेरी सेवा की कद्र की, इसके लिए मै आपका आभार मानता हूं।'

इसके पश्चात् आपने तत्त्व-ज्ञान सबधी अपना एक लेख पढ़ा जो मननीय और रोचक था।

आश्विन शुक्ला १,२,३ को काठियावाड़ के दशा श्रीमाली भाइयों का जातीय सम्मेलन हुआ। समस्त काठियावाड़ के सैकडो प्रतिनिधि उपस्थित हुए। सभी ने पूज्यश्री के दर्शन किये, उपदेश सुना और जाति सुधार का सन्मार्ग पूज्यश्री के ससर्ग से प्राप्त किया।

श्रीफूलचद्रजी महाराज ने मासखमण तय किया।

मोरबी मे भावनगर, बीकानेर तथा बगडी के सङ्घ पूज्यश्री से अपने-अपने क्षेत्रो में पधारने की प्रार्थना करने आये।

कार्तिक शुक्ला ४ पूज्यश्री का जन्म दिन था। उस दिन मोरबी के नामदार महाराजा ने अपनी आन्तरिक प्रेरणा से दीन-हीन, गरीब लोगो को भोजन-दान दिया। पशुओ को भी उस दिन विशिष्ट भोजन दिया गया। इस प्रकार महाराजा साहब ने पूज्यश्री के प्रति अपनी आन्तरिक भक्ति का परिचय दिया।

मोरबी-चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्यश्री ने बांकानेर की ओर विहार किया। मोरबी-नरेश तथा हजारों नर-नारियों ने दु खपूर्ण हृदय से आपको विदाई दी। हजारो आदमी आपको दूर तक पहुँचाने गए। बहुत-से लोग तो सनाला ग्राम तक भी साथ-साथ गए। विदाई का दृश्य अत्यन्त करुणापूर्ण और भावमय था।

बीच के ग्रामो को पवित्र करते हुए आप बाकानेर पधारे। यहाँ राजकोट पधारने की प्रार्थना करने सघ आया। तदनुसार आप राजकोट पधारे।

काठियावाड़ जैन गुरुकुल में

राजकोट श्रीसघ की प्रार्थना से ता. ४-१२-३८ को पूज्यश्री ने अपने चरणकमलों से गुरुकुल को पवित्र किया। राजकोट की भावुक जनता विशाल सख्या मे उपस्थित थी। शहर से दूर होने पर भी लगभग ८०० नर-नारी गुरुकुल भूमि मे उपस्थित थे। सवसे पहले गुरुकुल के एक छात्र ने मधुर कण्ठ से प्रार्थना-गायन किया। इसके वाद गुरुकुल के प्रिसिपल श्रीअमृतलाल सवचन्द गोपाणी एम. ए ने प्रासगिक प्रवचन किया। आपने कहा-

जिस महापुरुष के समयोचित उपदेश से प्रेरित होकर समाज नेताओ ने गुरुकुल जैसी सर्वोच्च सस्था स्थापित की है, उस महापुरुष के चरणकमलो से हमारी इस संस्था को पवित्र होते देखकर हमें अपूर्व हर्ष हो रहा है। प्रत्येक धर्म ने अपनी संस्कृति, तद्गत मौलिकतत्त्व-ज्ञान और क्रिया-काण्ड को सुरक्षित रखने के अनेक प्रकार से अनेक प्रयत्न किए है। अब भी सभी प्रयत्न कर रहे है। सस्कृति को जीवित रखने के प्रबल साधनो मे साहित्य, सघ ओर सस्था, इन तीनो का मुख्य स्थान है। प्राचीन समय मे नालन्दा विश्व-विद्यालय तथा तक्षशिला विश्व-विद्यालय ने अपनी सस्कृति फैलाने मे प्रबल सहयोग किया था। ऐतिहासिक सत्य खोजा जाय तो 'सस्था' नाम का अग उपर्युक्त तीन अगो मे भी विशेष बल वाला है, ऐसा हम कह सकते है। क्योकि इस मे सेवा का आदर्श सुरक्षित रखने के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के सुन्दर समन्वय की ओर व्यवहार्य ध्यान देने का पूरा अवकाश है। ऐसी सस्था मे से आदर्श से ओत-प्रोत एक विभूति निकल जाय तो भी कम नही है। ऐसी एक ही विभूति गुरुकुल जैसी अनेक आदर्श सस्थाए स्थान-स्थान पर स्थापित कर देगी। वह अनेक विभूतियों को उत्पन्न करेगी तथा जगदुद्धारक, अहिसा-प्रधान, तथा विश्व-सस्कृति बनने योग्य जैन सस्कृति का साम्राज्य स्थापित कर देगी।

वक्तव्य के बाद विद्दवर्य मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने ब्रह्मचारियो की सस्कृत, अर्धमागधी तथा धार्मिक विषयो की परीक्षा ली। चार महीने के अल्प समय मे गुरुकुल की प्रगति देखकर हर्ष प्रकट किया। पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने प्रसगोचित प्रवचन करते हुए छात्रो को उपयोगी उपदेश दिया। उस समय गुरुकुल को करीब ४००) रु. भेंट मिला।

दो उल्लेखनीय प्रसंग

राजकोट में यो तो बहुत-से भाई पूज्यश्री के समागम के लिए आते-जाते रहते थे, मगर इनमें दो प्रसग यहा उल्लेखनीय है-

एक दिन अहमदाबाद के करोड़पति-परिवार की सदस्या श्रीमती मृदुला बेन पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुई। पूज्यश्री की उदार और प्रभावक वाणी सुनकर उन्होने कहा-

साधुओ के विषय में मेरा अनुभव बडा कटुक है। मेरा खयाल था कि साधु हमारे समाज के कलक है। पर आज पूज्यश्री का उपदेश सुनकर मुझे लगा कि मेरा खयाल भ्रमपूर्ण था। सब धान बाईस पसेरी नही होते- सभी साधु एक सरीखे नही है। मेरा भ्रम दूर करने के लिए मै पूज्य महाराज की बड़ी आभारी हू।

एक बोहरा सज्जन थे-गांधीजी के कट्टर भक्त। गांधीजी के प्रति उन्हें प्रगाढ श्रद्धा थी। गांधीजी के सिवाय उनकी निगाह मे और कोई संत पुरुष था ही नहीं। अचानक वे अपने एक मित्र से मिलने के लिए राजकोट आये। उनके यह मित्र पूज्यश्री के व्याख्यानो का अमृत चख चुके थे। प्रायः प्रतिदिन वे व्याख्यान सुनने आते थे। उन्होने अपने मेहमान मित्र से पूज्यश्री की प्रशसा की और व्याख्यान सुनने के लिए कहा।

मगर वह गाधी-अद्वैतवादी थे। कहने लगे- मै गाधीजी को छोड़ और किसी को साधु ही नहीं समझता और न किसी का उपदेश सुनता हू। मुझे माफ करो। मै नहीं चलूगा।

मेजबान अपने मेहमान का रुख देखकर, उनकी उचित व्यवस्था करके व्याख्यान सुनने चले गये। लौटकर जब घर पहुचे तो व्याख्यान की अपने मेहमान के सामने तारीफ करने लगे। मगर कट्टर मेहमान का मन आकर्षित नही हुआ।

दूसरे दिन भी बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी वह बोहरा भाई व्याख्यान सुनने नहीं गया। लेकिन मेजबान से नहीं रहा गया। उसे एक दिन का नागा सहन नही हुआ। वह फिर अकेला व्याख्यान सुनने चला गया।

जब वह अकेला घर पर रह गया तो उसने सोचा- मै थोड़े ही दिनों के लिए अपने मित्र से मिलने आया हू। मेरा मित्र मुझे छोडकर व्याख्यान सुनने चला जाता है। वह मुझे छोड सकता है मगर व्याख्यान सुनना नही छोड़ सकता! ऐसी क्या विशेषता है उस साधु में?

इस प्रकार विचारो की तरगो में बोहरा भाई डूबता-उतराता था कि उसी समय व्याख्यान सुनकर उसका मित्र लौट आया। आज उसका मित्र और दिनों से अधिक प्रसन्न था। आते ही बोला-भाई, मैंने तुम्हे मनाया था कि चलो व्याख्यान सुनने, मगर तुम नही माने। चलते तो आखे खुल जाती! कितना सरस और सुन्दर उपदेश था! कल तुम्हे साथ ले चले बिना नही रहूगा।

आखिर तीसरे दिन वह बोहरा सज्जन अपने मित्र के साथ व्याख्यान सुनने को राजी हो गए। पूज्यश्री के उपदेश मे पहुचे। पूज्यश्री की दिल हिला देने वाली मार्मिक वाणी सुनकर गाधी-भक्त बोहरा चकित रह गया। बडी उत्कठा के साथ उसने सम्पूर्ण उपदेश सुना। जब पूज्यश्री का उपदेश समाप्त हो चुका और अन्य श्रोता उठ-उठकर जाने लगे तो वह पूज्यश्री के समीप आया। कहने लगा-महाराज, मै बड़े घाटे मे आ गया! तीन दिन से राजकोट में हू और आज ही उपदेश सुन पाया। दो दिन मेरे वृथा चले गये। अब इस घाटे की पूर्ति करनी होगी। और वह इस तरह कि आप मेरे साथ भावनगर पधारें। भावनगर की जनता को आपका लाभ दिलवाऊंगा और मैं भी लाभ लूगा। तब मेरा घाटा पूरा होगा।

पूज्यश्री ने हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहा-'मौका होगा तो देखा जायगा।'

बोहरा-मौका ही मौका है। कल प्रात काल की ट्रेन से मै जा रहा हू। आप भी साथ ही पधारिये। वहा अपकी समस्त आवश्यक व्यवस्था हो जायगी। किसी किस्म का खयाल मत कीजिए।

पास मे खडे एक श्रावक भाई बीच में ही बोले- महाराज तो ट्रेन में नही चलते, पैदल ही भ्रमण करते हैं।

वोहरा भाई इस प्रकार चकित रह गये, मानो किसी ने ठग लिया हो। फिर भी उन्होंने कहा- तो फिर पैदल ही सही। मगर एक वार भावनगर पधारना ही पडेगा। आप सरीखे सत वडे भाग्य से मिलते हैं। मैं अच्छी तकदीर लेकर आया था कि आप के दर्शन हो गए।

पूज्यश्री ने फिर वही उत्तर दिया। वोहरा सज्जन भक्ति से गद्‌गद् होकर लौट गये।

राजकोट का सत्याग्रह

पूज्यश्री जव राजकोट पधारे तव राजकोट का प्रसिद्ध सत्याग्रह चालू था। प्रजा में असतोष की ज्वाला धधक रही थी। सैकड़ों प्रजा-सेवक जेल में ठूसे जा रहे थे और उन्हे नाना प्रकार के कष्ट दिये जा रहे थे। राजा और प्रजा का यह संघर्ष घोर अशान्ति का कारण वना हुआ था।

पूज्यश्री ने उस समय शान्त और त्यागमय जीवन विताने की प्रेरणा की। साथ ही जब तक सत्याग्रही भाई-बहिन कारावास की यातनाएँ भोग रहे है तव तक पक्वान्न खाने, ब्रह्मचर्य पालने आदि के नियम रखने का अनुरोध किया। जैन और जैनेतर जनता ने आपके उपदेश को आदेश की तरह पालन किया।

पूज्यश्री ने सत्याग्रह के अवसर पर जनता को यह उपदेश दिया है, इसे पढ़-सुनकर साधारण बुद्धि वाला कह सकता है कि इन बातों से सत्याग्रह का क्या सबध है ? मगर सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया जाय तो इनका भारी महत्त्व मालूम होगा। गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र मे सर्व प्रथम अहिंसा का प्रयोग किया, मगर पूज्यश्री के तो समग्र जीवन की साधना अहिंसा ही थी। उन्होंने अहिंसा की बारीकियो को, अहिंसा के तेज को, अहिंसा की अमोघता को न केवल समझा ही था, वरन् अपने प्रत्येक व्यवहार मे उसका अनुसरण किया था। यही कारण है कि वे अहिंसात्मक उपायों द्वारा ही सत्याग्रह मे योग देने की प्रेरणा कर सकते थे। उन्होने तप-त्याग का जो उपदेश दिया है, इससे सत्याग्रह के प्रति सहयोग की भावना और सत्याग्रहियों के साथ सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है। और प्रजा की सहानुभूति ही सत्याग्रही का सर्वोत्तम बल है। इस प्रकार प्रजा के मानस मे सत्याग्रह और सत्याग्रहियो के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके पूज्यश्री ने सत्याग्रहियों को बलवान् और सत्याग्रह को प्रभावशाली बनाने का महत्त्वपूर्ण, कौशलपूर्ण, और व्यवहार्य उपाय खोज निकाला है। पूज्यश्री ने यह उपदेश देकर साधारण राजनीतिज्ञ की बुद्धि से भी परे की राजनीतिपटुता प्रकट की है। यह उनकी प्रतिभाशालिता का प्रमाण है।

सत्याग्रह के विषय मे पूज्यश्री की धारणा मनन करने योग्य है। आपके यह शब्द कितने प्रभावशाली हैं -

'सत्याग्रह के बल की तुलना कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्यशक्ति तो क्या, देवशक्ति भी हार मान जाती है। कामदेव श्रावक पर देवता ने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर केवल सत्योपार्जित आत्मबल से ही उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया।

प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी सत्याग्रह का महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है। प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नही मानी। इस कारण उस पर कितने ही अत्याचार किये गए, लेकिन अन्त मे सत्याग्रह के सामने अत्याचारी पिता को ही परास्त होना पड़ा।

भगवान् महावीर ने सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ऊपर कर लिया था। इससे वे चण्ड कौशिक ऐसे विषधर सर्प के स्थान पर, लोगो के मना करने पर भी निर्भयतापूर्वक चले गए।'

जिस प्रकार धर्म-सिद्धान्त के लिए मनुष्य को असहयोग करना आवश्यक है, उसी प्रकार लौकिक नीतिमय व्यवहारो मे राज्यशासन की ओर से अन्याय मिलता हो तो ऐसी दशा मे राज्य-भक्ति युक्त सविनय असहकार-असहयोग करना प्रजा का मुख्य धर्म है। वह प्रजा नपुसक है जो चुपचाप अन्याय को सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नही करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती परन्तु उस राजा के नाश का भी कारण बनती है, जिसकी वह प्रजा है। जिस प्रजा में अन्याय के प्रतिकार का सामर्थ्य नही है, उसे कम-से-कम इतना तो प्रकट कर ही देना चाहिए कि अमुक कानून या कार्य हमें हितकर नही है और हम उसे नापसंद करते है।'

अन्याय के प्रति असहयोग न करने से बड़ा भारी अनर्थ हो जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए महाभारत के युद्ध पर ही दृष्टि डालिए। अगर भीष्म और द्रोण आदि महारथियो ने कौरवों से असहयोग कर दिया होता तो इतना भीषण रक्तपात न होता और इस देश के अध.पतन का आरभ भी न होता। अन्याय से असहयोग न करने के कारण रक्त की नदियाँ बही और देश को इतनी भीषण क्षति पहुँची की सदियाँ व्यतीत हो जाने पर भी वह सभल न सका।'

राजकोट के सत्याग्रह मे पूज्यश्री का धर्मोपेत योगदान बहुत सहायक रहा। पूज्यश्री के उपदेश के कारण सर्वसाधारण जनता मे उसका मान और भी अधिक बढ गया।

मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को राजकोट से विहार करके पूज्यश्री चोटीला आदि स्थानों की जनता को धर्म का अमृतपान कराते हुए माघ कृष्णा १४ को राणपुर पधारे। यहाँ भावनगर, लींबडी आदि अनेक सघो ने विनति की किन्तु आपने शीघ्र अहमदाबाद पधारने का विचार प्रकट किया। धुंधुका होते हुए आप सुदामडा पधारे। यहाँ दो भाइयो ने ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। सेजकपुर में आपके उपदेश से श्रावकों का पारस्परिक वैमनस्य हट गया।

पूज्यश्री ने वृद्धावस्था और अस्वस्थता होने पर भी काठियावाड मे सं. १९९३ में ४१७ मील का और स. ९४ में ३२८ मील का लबा प्रवास किया और धर्म की अपूर्व प्रभावना की। तत्पश्चात् आप गुजरात पधारे।

अहमदाबाद में पदार्पण

ता. १७-२-३९ को पूज्यश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ.अहमदाबाद पधारने वाले थे। आपके आगमन की सूचना एक पत्रिका द्वारा नगर में फैला दी गई थी। आपके स्वागत के लिए नगर में अपूर्व उत्साह नजर आ रहा था। हजारो नर-नारी प्रात काल ही एलिस ब्रिज की ओर चले जा रहे थे। विक्टोरिया गार्डन से जुलूस बनाकर पूज्यश्री को नगर मे लाने का निश्चय किया गया था। अतएव सब को विक्टोरिया गार्डन के पास रोक लिया गया। कुछ आगेवान व्यक्ति मोटरो से प्रीतमनगर, पालडी और सरखेज तक पहुच गए।

लगभग साढ़े आठ बजे पूज्यश्री विक्टोरिया गार्डन के पास पधारे। पूज्यश्री के जयनाद से आकाश गूज उठा और जनता जुलूस के रूप में परिणत हो गई थी। सबसे आगे राष्ट्रीय ध्वजा लिए र

जैन बोर्डिंग के विद्यार्थी चल रहे थे। उनके पीछे छोटे-छोटे बालको का समूह था। बालको के हाथ मे आदर्श वाक्य सुशोभित हो रहे थे। भगवान् महावीर तथा पूज्यश्री की जयध्वनि से बीच-बीच मे दिशाए गूंज उठती थीं। उनके पीछे पूज्यश्री अन्य मुनियो के साथ अपनी गंभीर एवं तेजोमय मुखमुद्रा के साथ चल रहे थे। पीछे श्रीसंघ के आगेवान नेता थे। सब के पीछे महिलामण्डल था। महिलाए मागलिक गीत गाती हुई उत्साह के साथ चल रही थी।

जुलूस नगर के प्रधान भागों से होता हुआ घीकांटा रोड पर आ पहुँचा। फिर दिल्ली दरवाजे से निकल कर माधवपुरा में समाप्त हुआ। वहीं पूज्यश्री ठहरने वाले थे। समस्त नर-नारियो के बैठ जाने पर पूज्यश्री ने मंगलप्रार्थना की। और फिर पन्द्रह मिनिट भाषण दिया। अन्त मे सब लोग विदा हुए। दूसरे सम्प्रदाय के संतो और सतियों ने भी आपके स्वागत मे स्नेहपूर्वक भाग लिया था। दरियापुरी सम्प्रदाय के सतों के साथ, जो वहाँ मौजूद थे, पारस्परिक वात्सल्य रहा।

पूज्यश्री माधवपुरा मे ठहरे थे किन्तु व्याख्यान देने के लिए जैन बोर्डिंग के समीप, एम. बाड़ीलाल के नवीन विशाल भवन मे पधारते थे। प्रथम तो अहमदाबाद नगर ही काफी बडा है और फिर वहा पूज्यश्री जैसे महान् प्रभावक महापुरुष का पधारना हुआ। ऐसी स्थिति मे भीड़ का क्या ठिकाना था! मूर्तिपूजक भाई तथा जैनेतर बन्धु भी बडी सख्या मे उपस्थित होते थे। व्याख्यान के अन्त में लोग तमाखू, बीडी, चाय आदि का त्याग करते थे। बाहर के दर्शनार्थियो की भीड रहती थी। फिर भी अहमदाबाद श्रीसघ उत्साह के साथ सबका स्वागत करता था।

विविध विषयों पर पूज्यश्री का प्रवचन होता था। आपके प्रवचन श्रोताओं के अन्त.करण पर गहरी छाप लगा देते थे। अपूर्व भक्ति और अद्भुत श्रद्धा का वातावरण था।

अहमदाबाद मे पूज्यश्री का चातुर्मास कराने के लिए वहा की जनता बहुत अर्से से प्रयत्नशील और उत्सुक थी। शेष काल के लिए पधारने पर वहा के श्रावको ने फिर प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया- 'सम्प्रदाय के नियमानुसार द्रव्य,क्षेत्र, काल, भाव अनुकूल होगा तो इस वर्ष चातुर्मास अहमदाबाद मे करने का भाव है।

पूज्यश्री की इस स्वीकृति से जनता के हर्ष का पार न रहा। पूज्यश्री विहार करके, नगर के बाहर एलिसब्रिज मे श्रीत्रीमकलाल वकील की कोठी मे विराजे।

फिर विहार

एलिसब्रिज से पूज्यश्री ने ठा. ६ से विहार किया। अस्वास्थ्य के कारण शेष सत अहमदाबाद में ही रह गए। अहमदाबाद से आप अनुक्रम से आकर बड़ौदा पधारे। मारवाड से आकर दो सतो के मिल जाने के कारण आप ८ ठाणा हो गए।

पूज्यश्री पहली बार ही बड़ौदा पधारे थे। यहा स्थानकवासी जैनो की सख्या बहुत अधिक नही है। किन्तु आपकी व्यापक कीर्ति और व्याख्यानशैली से प्रभावित होकर श्रोताओ की विशाल सख्या इकट्ठी हो जाती थी। वहा की विद्वान् जनता पर भी पूज्यश्री का अच्छा प्रभाव पडा। यहा आप करीब १५-२० दिन ठहर कर क्रमशः विचरते हुए वीसलपुर पधारे। स्थान छोटा था और इस कारण अधिक धूमधाम नहीं रहती थी। पूज्यश्री को यह स्थान शान्तिकारक प्रतीत हुआ। आप यहा आठ दिन ठहरे।

गाव वालों के मानों भाग्य खुल गये। उन्होने अतीव विनम्रता के साथ पूज्यश्री की सेवा की। वीसलपुर से मौरैया साणन्द होते हुए फिर एलिसब्रिज पधारे और श्रीत्रीकमलाल वकील की कोठी मे विराजमान हुए। आषाढ शुक्ला सप्तमी को नगर में प्रवेश किया।

२५ मई से घोर तपस्वी श्रीकेसरीमलजी महाराज ने तपस्या आरभ कर दी। पूज्यश्री ने भी पांच उपवास किए। आषाढ़ शु. ९ को आपका पारणा हुआ।

सैंतालीसवां चातुर्मास (१९९६)

संवत् १९९६ का चातुर्मास पूज्यश्री ने ठा. १० से अहमदाबाद मे किया। अहमदाबाद व्यावहारिक दृष्टि से व्यापार का बड़ा केन्द्र है। वस्त्र व्यवसाय का तो भारत में वह सर्वप्रधान केन्द्र है। मगर उसका विशिष्ट महत्त्व तो इस बात में है कि वह अनेक महापुरुषों की तपोभूमि और कर्मभूमि है।

अहमदाबाद में पूज्यश्री कुछ अस्वस्थ रहने लगे। बीच-बीच मे उपवास, वेला आदि तप करने से कुछ लाभ हुआ और तपस्या के बल पर आप अपने स्वास्थ्य को टिकाए रहे, फिर भी सुस्ती और कमजोरी बढ़ती गई। इस कारण वैद्य की सलाह से आपने व्याख्यान देना बद कर दिया। विश्रान्ति लेना आवश्यक हो गया।

तपस्वी मुनि श्रीकेसरीमलजी महाराज ने ६७ उपवास गर्म जल के आधार पर किए। श्रावणी पूर्णिमा के दिन आपने पारणा किया। पक्खी के दिन आपकी तपस्या का पूर था। उस दिन के व्याख्यान मे अढाई हजार से भी अधिक जनता थी। अनेक व्रत-नियम लिए गये और करीब दो हजार रुपये जीव-दया के निमित्त इकट्ठे हुए। बाहर से बहुत से दर्शनार्थी आये।

कुछ दिनों बाद औषधोपचार से पूज्यश्री का स्वास्थ्य सुधर गया और आप फिर व्याख्यान फरमाने लगे। पर्युषण से पहले ही आपके व्याख्यान आरभ हो गए थे, अत. अत्यन्त उत्साह और आनद के साथ पर्युषण पर्व व्यतीत हुआ। सवत्सरी के दिन आपने लगातार दो घंटा तक व्याख्यान दिया। हजारों नर-नारी उपस्थित थे। बहुत लोगों ने तप और धर्मध्यान किया। पूज्यश्री के निर्देशानुसार सभी श्रावकों ने काफ्रेस के नियम का पालन करते हुए एक प्रतिक्रमण तथा २० लोगस्स का ध्यान किया। प्रतिक्रमण कराने मे 'स्थानकवासी जैन' के सम्पादक श्रीजीवनलाल भाई संघवी ने मुख्य भाग लिया।

कुछ दिनों बाद पूज्यश्री की दाहिनी जांघ मे गाठ हो गई और आप फिर अस्वस्थ हो गए। व्याख्यान बद कर देना पडा किन्तु स्वस्थ होने पर फिर व्याख्यान आरभ हो गया।

पूज्यश्री की जन्म-भूमि थादला से शाहजी श्रीजोरावरसिहजी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। २१ सितम्बर को उन्होने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया और चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् थांदला की ओर पधारने की प्रार्थना की। इससे पहले भी थादला के भाइयो ने वहा पधारने की प्रार्थना की थी। रतलाम-चातुर्मास में पूज्यश्री ने आश्वासन भी दिया था कि रतलाम से सीधा काठियावाड़ जाना होगा तो थांदला फरसने का भाव है। किन्तु उस समय आप मारवाड़ की ओर पधार गए और वहीं से सीधे काठियावाड की ओर। आपको थांदला गये ३२ वर्ष हो चुके थे। यद्यपि जन्मभूमि होने के कारण थांदला की याद आपको बहुत प्रिय थी, तथापि अस्वास्थ्य के कारण आप वहां पहुंचने का वचन न दे सके जोधपुर से करीब १५०-२०० श्रावक-श्राविकाएं आपके दर्शनार्थ आए।

आश्विन कृष्णा १२ को गांधी जयन्ती के दिन पूज्यश्री ने चर्बी लगे वस्त्रो के त्याग, वर्गगत ऊच-नीच के भेद-भाव का त्याग, नौकरों के साथ सद्व्यवहार आदि विषयों पर विवेचन करते हुए अहिंसा का सच्चा स्वरूप बतलाया और उसके पालन की प्रेरणा की।

कार्तिक वदि मे पूज्यश्री फिर अस्वस्थ हो गए। जुकाम, खांसी, बुखार तथा गले में दर्द हो गया। बहुत दिनों से जघा के पिछले भाग मे एक मसा था। उसमें से खून आने लगा। दुर्बलता बढने लगी। औषध-सेवन से कुछ उपद्रव शान्त तो हुए किन्तु पहले जैसी अवस्था नही आई।

बीच-बीच की अस्वस्थता ने यह चौमासा कुछ फीका-सा कर दिया। पूज्यश्री मे अब पहले जैसा उत्साह, वह गंभीर गर्जना और वह विशिष्ट शक्ति न रह गई। प्रतीत होने लगा कि अब पूज्यश्री के वह दिन समीप आ रहे है, जब विश्राम और स्थिरवास आवश्यक हो जाता है।

घाटकोपर श्रीसघ ने पूज्यश्री को ठाणापति के रूप मे घाटकोपर मे विराजने के लिए अहमदाबाद आकर प्रार्थना की। आगत दर्शनार्थी भाइयो के स्वागत के लिए ८० हजार के वचन भी वहाँ मिल चुके थे किन्तु जामनगर चातुर्मास के समय पूज्यश्री बीकानेर-श्रीसङ्घ को मारवाड़ ती तरफ विहार करने का आश्वासन दे चुके थे। तदनुसार चौमासा पूर्ण होते ही मारवाड की ओर आने का विचार था। मालवा की धर्मप्रेमी जनता को भी इससे बड़ी निराशा हुई। उनकी अभिलाषा थी कि पूज्यश्री मालवा-मेवाड होते हुए मारवाड पधारे। रतलाम, खाचरौद और थांदला आदि मालवा के श्रीसङ्घो ने बहुत आग्रह किया किन्तु पूज्यश्री इतना चक्कर काटकर मारवाड तक पहुँचने मे अशक्त प्रतीत होते थे। रतलाम-श्रीसङ्घ ने चाहा कि अगर आप मारवाड न पधार सके तो रतलाम में ही स्थिरवास करें। वहा सब प्रकार उन्हे शान्ति मिलेगी। मगर पूज्यश्री ने उस समय कोई निश्चित उत्तर नही दिया।

अहमदाबाद से मारवाड़

मगसिर बदी १ को पूज्यश्री ने अहमदाबाद से विहार किया। हजारो नर-नारी आपको श्रद्धा के साथ विदाई देने आए। माधवपुरा से विहार करके आप जमालपुर दरवाजे के बाहर पधारे। यहाँ से एलिसब्रिज होते हुए ता. २-१२-३९ को ८ ठाणो से वीसलपुर पधारे।

वीसलपुर का जल-वायु अनुकूल होने के कारण वहाँ आपका स्वास्थ्य कुछ ठीक रहा। सङ्घ ने बहुत भक्ति की। २० दिन वहाँ विराजकर ता. २२ दिसम्बर को कलोल की ओर विहार किया। १५ दिन कलोल में विराजमान रहे और फिर महसाणा की ओर पधारे। तदनन्तर सिद्धपुर, ऊम्मा और फिर पालनपुर पधार गए।

शतावधानी प. र. मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज पूज्यश्री से मिलना चाहते थे और मारवाड से उग्र विहार करके पधार रहे थे। उनकी प्रतीक्षा मे पूज्यश्री पालनपुर विराजे रहे। ता. १०-२-४० को शतावधानीजी ने सम्मेलन-समिति के विषय मे बातचीत की। उस समय राजकोट, अहमदाबाद, रतलाम, उदयपुर तथा अजमेर आदि अनेक स्थानों के भाई उपस्थित थे। घाटकोपर में होने वाली साधु-सम्मेलन-समिति के सदस्य भी मौजूद थे। शतावधानीजी ने पूज्यश्री से उनकी बनाई हुई 'वर्द्धमानसघ' की योजना ली और उसके आधार पर घाटकोपर मे एक नई योजना बनाई। इस प्रकार विचार-विनिमय के बाद ता. १८-२-४० को शतावधानीजी ने सिद्धपुर की ओर विहार किया। ता. २३-२-४० को पूज्यश्री मारवाड की ओर पधारे।

अनेक स्थानों को पावन करते हुए पूज्यश्री फाल्गुन शुक्ला १ को सादड़ी (मारवाड) पधार गए। फाल्गुन शुक्ला १३ को युवाचार्यश्री भी पूज्यश्री की सेवा मे सादडी पधारे। धर्म का ठाठ लगा रहा।

सादडी से विहार हुआ और चैत्र कृ ७ को आप ठा. ९ से राणावास पधारे।दो दिन यहाँ विराजे। देवगढ से १५० श्रावक-श्राविकाएँ आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। एक श्रावक ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया। यहा से विहार करके सिरियारी, सारण होते हुए पूज्यश्री बगडी पधार गए। युवाचार्यश्री पहले दिन प्रातःकाल ही बगडी पधार चुके थे।

बगडी के सुप्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचंदजी धाडीवाल, उनकी धर्मपत्नी सौ. श्रीमती लक्ष्मीबाई तथा समस्त श्रीसङ्घ की उत्कट अभिलाषा थी कि पूज्यश्री का एक चौमासा बगडी मे होना चाहिए। कई बार प्रार्थना की गई थी। पूज्यश्री ने मारवाड की ओर पधारने पर बगडी फरसने का आश्वासन भी दिया था। तदनुसार आप बगडी पधारे।

बगड़ी पधारने पर श्रीसङ्घ ने और वहाँ के कुवर साहब ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। पूज्यश्री ने अत्यन्त आग्रह देख अपनी मर्यादा के अनुसार चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी।

ब्यावर में

पूज्यश्री जब सादड़ी विराजमान थे, ब्यावर के कई श्रावको ने पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर ब्यावर पधारने की आग्रहभरी प्रार्थना की थी। ब्यावर में मण्डल का अधिवेशन होने वाला था और साम्प्रदायिक विषयो पर अन्य मुनियों के साथ विचार-विनिमय भी करना था। अत· पूज्यश्री ने ब्यावर पधारने की स्वीकृति दे दी थी। तदनुसार ता. १२-४-४० को आप १७ ठाणो से ब्यावर पधारे। युवाचार्यश्री साथ ही थे। लगभग २००० नर-नारियों ने दूर तक सामने जाकर पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। पूज्यश्री ने जय-घोषो के साथ ब्यावर मे प्रवेश किया।

पूज्यश्री के पधारने से आसपास विचरने वाले सत भी ब्यावर पधार गए। २९ साधु एकत्रित हो गए। ७३ सतियां भी वहा पधार गई। इनके अतिरिक्त श्रीनन्दकुवरजी महाराज तथा पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज के सम्प्रदाय की सतिया भी वहीं विराजमान थी।

इतने संतो और महासतियो के एकत्र दर्शन करने के निमित्त बाहर की जनता का आना स्वाभाविक ही था। तिस पर पूज्यश्री लम्बे अर्से बाद गुजरात-काठियावाड की तरफ से पधारे थे और इस प्रात की जनता आपके दर्शनो की प्यासी थी। सैकडों भाई बाहर से आए। बीकानेर और भीनासर के भक्त दर्शनार्थी अधिक सख्या मे थे। उस समय ब्यावर का क्या कहना! वह एक तीर्थ-धाम-प्रतीत होता था। बडी उमग, असीम उत्साह और उत्कृष्ट धर्मप्रेम देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठता था। अब की बार विशेषता यह थी कि सभी सम्प्रदायों के श्रावक समान भाव से व्याख्यान मे आते थे। झगड़े की झोपड़ी ने शान्ति-कुटी का रूप धारण कर लिया था। करीब ५ हजार जनता व्याख्यान में उपस्थित होती थी।

युवाचार्यश्री ही प्राय· व्याख्यान फरमाते थे और कभी-कभी पंडित-मुनिश्री [illegible] महाराज भी। पूज्यश्री के मुखारविद से निकलने वाली वाणी सुनने की लोगों की उत्कट अभिलाषा थी। उसके बिना लोगों के हृदय मे एक प्रकार की असतुष्टि-सी रहती थी। किन्तु [illegible] के कारण [illegible]

व्याख्यान न फरमा सके। महावीर जयन्ती के दिन अत्यन्त आग्रह होने से पूज्यश्री ने व्याख्यान आरभ किया किन्तु आप प्रार्थना भी पूरी न कर सके और व्याख्यान स्थगित करना पडा।

मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज के व्याख्यानो से व्यावर का युवक-समाज बहुत प्रभावित हुआ। आपका व्याख्यान सामयिक और सरस होता था। निरन्तर पूज्यश्री की सेवा मे रहने से उनके विचारों मे पूज्यश्री के विचारों की छाप दिखाई देने लगी थी। ता १४ को जनता के आग्रह से आपने व्याख्यान फरमाया। श्रोता बहुत प्रभावित हुए। दूसरे दिन व्याख्यान का स्थान खचाखच भर गया। आपने सादगी, देशभक्ति, धर्मप्रेम आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला। नवयुवक-समाज आपके व्याख्यानो के लिए उत्कठित रहने लगा।

अजमेर के प्रसिद्ध सेठ गाढमलजी लोढा ने ब्यावर आकर पूज्यश्री से अजमेर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री, युवाचार्यश्री के साथ ता. ९-५-४० को अजमेर पधारे। आपके पधारने से अजमेर मे काफी धर्मजागृति हुई। ता. १० को अक्षय-तृतीया के दिन, युवाचार्यश्री ने भगवान् ऋषभदेव के पारणा का सरस वर्णन करते हुए भगवान् के जीवन पर प्रभावक प्रकाश डाला। ता ११-५-४० को युवाचार्यश्री ने वृद्ध-विवाह की हानिया बतलाते हुए हृदयस्पर्शी व्याख्यान फरमाया। बहुत-से भाइयों ने ४० वर्ष से अधिक उम्र वाले की शादी मे सम्मिलित न होने और बाइयो ने गदे गीत न गाने की प्रतिज्ञा की। पूज्यश्री शेष काल अजमेर विराजे। उदयपुर, बीकानेर, टोंक, ब्यावर आदि नगरो के बहुत-से दर्शनार्थी भाई पूज्यश्री की सेवा में आए।

ता.१०-६-४० को अजमेर से विहार करके ब्यावर और फिर नीमाज पधारे।यहा लोगो में पार्टी–बन्दी हो रही थी। पूज्यश्री केउपदेश से वैमनस्य हट गया और प्रेम की प्रतिष्ठा हुई। श्रीचांदमलजी फूलपगर ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। यहा से विहार कर आप आषाढ़ शु. १ ता. ५-७-४० को ठा. ७ से बगड़ी पधारे। श्रीसघ ने अत्यन्त समारोह के साथ स्वागत किया और अपनी उत्कृष्ट भक्तिभावना प्रकट की।

अड़तालीसवां चातुर्मास (सं. १९९७)

वि. सं. १९९७ का चातुर्मास पूज्यश्री ने ठा. ८ से बगडी में किया। यहा आपका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया। कभी-कभी व्याख्यान भी फर्माने लगे। नित्य का व्याख्यान मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज फर्माते थे

प्रवर्त्तिनी महासती श्रीकेसरकुवरजी महाराज ने ठा. १० से तथा प्र. श्रीआनन्दकुवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती कालीजी महाराज ने भी ठा. ४ से बगडी में चातुर्मास-किया था। मुनि श्रीसूरजमलजी महाराज ने एकातर तप किया और महासती श्रीकालीजी ने १३ का थोक किया। पूज्यश्री के उपदेश और ब्यावर के खीवराजजी छाजेड़ के प्रयत्न से यहा के कसाई कासिमखा ने जीव-हिंसा का त्याग कर दिया। श्रावण और भाद्रपद महीनो में खूब तपस्या हुई। एक बाई ने १५ का थोक किया श्रीलालचन्दजी देवडा ने परिपूर्ण पौषध के साथ अठाई की। एक ३१ वर्ष के जवान मोची भाई ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया और श्रद्धा ग्रहण की। १० और

५ की तपस्या तो बहुतो ने की। काफी तपस्या हुई। अठाई, वेला, तेला, पचरंगिया थोक आदि भाइयों और बहिनो ने करके अपने कर्मो की निर्जरा की। खूब धर्मध्यान हुआ। पूज्यश्री का स्वास्थ्य साधारण तौर से ठीक रहा। पर्युषण के दिनो में आधा घटा तक प्रवचन करते रहे। चातुर्मास के अत मे चार सज्जनों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अगीकार किया।

कार्तिक शुक्ला चतुर्थी के दिन यहा समारोह और उत्साह के साथ श्रीजवाहर-जयन्ती मनाई गई। प. र. मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ने पूज्यश्री के प्रभावक चरित्र पर प्रकाश डाला और आपकी गुणगाथा गाई। अन्य भाइयो ने भी पूज्यश्री को श्रद्धाजलि अर्पित की। वहा के उत्साही भाइयो ने इस उपलक्ष्य मे 'जवाहर-ज्योति' (हिन्दी) प्रकाशित करने का निश्चय किया। बाद मे यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

बगड़ी का चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री ने विहार किया। एक सप्ताह सेवाज और १०-१२ दिन सोजतरोड ठहर कर सोजत सिटी पधार गए। यहा अन्य सतों के पधार जाने से कुल संत ठा. १७ हो गए।

जब पूज्यश्री चौमासे मे बगडी विराजते थे, उन्ही दिनो मोरबी की ओर भयकर अकाल पड़ा था। इस अकाल के समय मोरबी-नरेश ने किसानों को बैल आदि देकर तथा कुए खुदवाकर सराहनीय कार्य किया। हजारो-मनुष्यों को मरने से बचा लिया। मोरबी-नरेश ने श्रीविनयचद भाई जौहरी के साथ सदेश भेजा- यह सब पूज्यश्री का ही प्रताप है कि मुझमे दुखियो के प्रति दया-भाव उत्पन्न हुआ है।

सौ. सेठानी लक्ष्मीबाईजी

बगडी-चातुर्मास के लिए वहां के सघ की प्रार्थना तो थी ही, मगर वहां के अग्रगण्य श्रावक सेठ लक्ष्मीचदजी धारीवाल का विशेष आग्रह था और कहना चाहिए कि सेठ साहब की अपेक्षा भी उनकी धर्मशीला और पतिपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाई का और भी अधिक आग्रह था।

सेठानी लक्ष्मीबाईजी पहले तेरापथी सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी। एक बार तेरहपथी पूज्यश्री कालूरामजी स्वामी बगड़ी मे आये। सेठानीजी पढ़ी-लिखी और समझदार महिला है। आपने कालूरामजी स्वामी से अनेक प्रश्न किये, जिनमें एक प्रश्न यह भी था कि-अगर कोई दुराचारी पुरुष किसी शीलवती महिला का शील भग करके अपनी पाशविक वृत्ति को तृप्त करना चाहता है और वह महिला शील की रक्षा के लिए पास के लोगो से सहायता की याचना करती है। कहती है-'भाइयो! तुम मेरे भाई और पिता के तुल्य हो। मेरे शील की रक्षा करो। दुराचारी पुरुष समझाने-बुझाने से नही मानता। ऐसी स्थिति में अगर कोई दयालु धर्मप्रेमी उसे धक्का देकर अलग कर देता है तो उस शील के रक्षक पुरुष को धर्म होगा या पाप लगेगा?'

महिलाओ के जीवन से सबंध रखने के कारण यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था और कोई भी विवेकवती महिला इसका समाधान चाहे बिना सतुष्ट नही हो सकती। प्रश्न के उत्तर मे कालूरामजी स्वामी बोले-'दुराचारी पुरुष को अलग हटा देने वाले को भोगान्तराया कर्म लगता है।'

सेठानीजी ने कहा- महिला शीलवती है। उसे भोग करने की लेश-मात्र भी आकांक्षा नही है। दुराचारी पुरुष वलात्कार करने की चेष्टा कर रहा है। ऐसी स्थिति मे शील की रक्षा मे सहायता देने वाला भोगान्तराय कर्म का वंध कैसे करेगा?'

कालूरामजी ने कहा- महिला की इच्छा नही है तो न सही, पुरुष की तो इच्छा है!

जव यह प्रश्नोत्तर हो रहे थे तो करीव १००-१५० साधु वहा एकत्र हो गए। सेठानीजी ने कहा-'जिस मत मे शील की रक्षा करना भी पाप वतलाया जाता है, वह मत कम-से-कम महिला समाज के लिए तो ग्राह्य नहीं हो सकता।' इतना कहकर वे वहा से चली आई और तभी से उन्होने तेरापंथ त्याग दिया।

श्रीमती लक्ष्मीवाई विवेकशीला और धर्मनिष्ठा है। समाज मे ऐसी महिलाओं की वड़ी आवश्यकता है। इस चातुर्मास मे आपने वडे ही उत्साह से धर्म-सेवन किया।

❑

चौथा अध्याय

जीवन की संध्या

काठियावाड़-प्रवास के पश्चात् ही पूज्यश्री के जीवन की सध्या का आरंभ होता है। दीक्षा लेने के कुछ ही दिनो बाद आप सूर्य के समान चमकने लगे। दक्षिण, मारवाड, मेवाड़, मालवा, पूर्वीय पंजाब तथा देहली प्रान्त को आपने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से प्रभावित किया। थली के रजकणों पर भी आपने अपनी अमर छाप लगा दी। रेत के नीरस टीलो को दान-दया के अमृत-जल से सीच डाला। रेगिस्तान को हरे-भरे उद्यान के रूप मे परिणत कर दिया।

काठियावाड़ पधार कर पूज्यश्री ने जैन धर्म का जो गौरव बढाया, वह न केवल स्थानकवासी इतिहास में बल्कि जैन समाज के इतिहास मे भी अमर रहेगा। मंत्र-तत्र तथा ऐसी ही अन्य कार्रवाइयो से दूर रहकर सिर्फ शुद्ध आध्यात्मिकता और वाग्वैभव के द्वारा नरेशों के हृदय में धर्म का बीज बोने वाले महानुभाव विरले ही हुए है। समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो भी ऐसे महात्मा उगलियो पर गिनने योग्य ही मिलेंगे। पूज्यश्री ऐसे ही महान् पुरुषो मे से एक थे।

राजा, रंक, विद्वान्, साधारण गृहस्थ, वैज्ञानिक और अध्यात्मवादी, शिक्षा संस्कार से सस्कृत और रूढ़िप्रिय वृद्ध सभी आपके उज्ज्वल और तेजोमय व्यक्तित्व से प्रभावित थे।

खादी, मादक-द्रव्य-निषेध, अस्पृश्यता निवारण, गो-रक्षा, कुरीति-निवारण आदि विषयों पर भी आपने धार्मिक दृष्टिकोण से सुन्दर-से-सुन्दर और प्रभावशाली-से-प्रभावशाली अनेक प्रवचन किये और धार्मिकता के साथ उनका समन्वय किया। यह देखकर उनकी सिद्धान्त-ज्ञान कुशलता का पता चलता है और साथ ही उनकी दूरदर्शिता और व्यवहार पटुता की प्रतीति हुए बिना नही रहती।

जो लोग साम्प्रदायिकता को देश का अभिशाप समझते है, उन्हें पूज्यश्री ने अपने जीवन व्यवहार से और अपने प्रवचनों से करारा उत्तर दिया है। एक रूढि चुस्त सम्प्रदाय का आचार्य होने पर भी इतने उदार विचार रखने वाला महात्मा शायद ही दूसरा कही मिल सकता है। पूज्यश्री की साम्प्रदायिकता विशालता की विरोधिनी नही थी। उन्होंने अपने जीवन व्यवहार द्वारा प्रकट कर दिया था कि कोई भी व्यक्ति सम्प्रदाय विशेष के प्रति पूरी तरह चफादार रहते हुए भी विश्व-हित और विश्व-प्रेम की ओर किस प्रकार अग्रसर हो सकता है! उनके अब तक के प्रवचनो का बारीक निगाह से और विवेचनात्मक बुद्धि से अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट प्रतीत होने लगती है।

इन सब कारणो से पूज्यश्री अपने जीवन को सफल बनाने में तो समर्थ हुए ही, साथ ही अनगिनत लोगों को भी सुमार्ग सुझा सके। काठियावाड के नरेशो के हृदय मे भी धर्म की महिमा अंकित करने में वे समर्थ हुए। मगर अत्यन्त विषाद के साथ लिखना पड़ता है कि इस समय पूज्यश्री का शरीर शनैः शनैः क्षीण होने लग गया था।

जामनगर की बीमारी के बाद पूज्यश्री उत्तरोत्तर अशक्त होते गए। मोरवी मे भी कई बार व्याख्यान बंद करना पडा। अहमदाबाद की जनता को पूज्यश्री से तथा पूज्यश्री को अहमदाबाद की जनता से कुछ आशाएं थीं। किन्तु अहमदाबाद आने तक अनेक शारीरिक उपद्रव उठ खडे हुए। बीमारी ने धर दबाया।

यो तो साधुओ का जीवन संयममय ही होता है किन्तु पूज्यश्री अपने भोजन-पान मे बेहद सयमी थे। जलगाव मे हाथ के आपरेशन के बाद आपने अन्न का सेवन लगभग छोड़ दिया था। प्राय. दूध और शाक पर ही रहते थे। जामनगर के बाद वह परहेज और बढ़ गया। अपने परहेज के कारण ही आप अहमदाबाद में अपना स्वास्थ्य संभाल सके।

रोगो के साथ वृद्धावस्था अथवा वृद्धावस्था के साथ रोग प्रबल वेग से आक्रमण करने लगे थे। पूज्यश्री अपने जीवन के तिरेसठ वर्ष व्यतीत कर चुके थे। जनता जान गई थी कि आप अधिक विहार नहीं कर सकेगे।

बगडी छोटा गाव है। यद्यपि वहा स्थानकवासी सम्प्रदाय की जनसख्या काफी है और गाव के लिहाज से सम्पत्तिशाली लोग भी बहुत बड़ी सख्या मे हैं तथापि जनसख्या की दृष्टि से बगडी छोटा गाव है। पूज्यश्री के यौवन-काल के लिए स्थान इतना उपयुक्त न था। वहां आपकी शक्तियो का पूरी तरह उपयोग नही हो सकता था। मगर अब ऐसा ही स्थान उपयुक्त था जहा अधिक भीडभडक्का न हो, जल-वायु अच्छा हो और शन्तिपूर्वक समय बिताया जा सके। इन दृष्टियों से बगड़ी स्थान उपयुक्त रहा।

बीकानेर की ओर

पूज्यश्री के लिए अब स्थिरवास का समय आ गया था। इसके लिए भीनासर, बीकानेर, अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर और जलगाव आदि से बहुत आग्रह था। मगर भीनासर-बीकानेर की जनता चिरकाल से प्रार्थना कर रही थी। भीनासर-बीकानेर का अहोभाग्य था कि पूज्यश्री ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली तदनुसार उस ओर विहार कर दिया।

सोजत सिटी से आप जयतारण पधारे। वहा जोधपुर का एक डेप्युटेशन पूज्यश्री से जोधपुर पधारने की प्रार्थना करने आया। श्रीजसवन्तराजजी मेहता, ट्रिब्यूट सुपरिंटेडेंट, जैन समाज की ओर से तथा श्री उमरावसिह जी कोंसिल सेक्रेटरी तथा पुष्टिकर समाज के नेता श्रीटल्लूजी तथा श्रीज्वालाप्रसादजी जैनेतर समाज की ओर से नेतृत्त्व कर रहे थे। शेष सभी जोधपुर के प्रतिष्ठित और गण्यमान्य सज्जन थे। इन आगत सज्जनों ने शेष काल तक जोधपुर पधार कर विराजने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया—'मेरा शरीर अस्वस्थ है। चौमासे से पहले बीकानेर पहुचने का वचन दिया जा चुका है। जोधपुर होकर बीकानेर पहुचने मे समय ज्यादा लगेगा। इस अवस्था मे गर्मी मे मुझ से विहार होना कठिन है। अतएव अब जोधपुर ले जाने का आग्रह आप न करें। मेरी स्थिति का खयाल कीजिए।'

बलुंदा में अस्वस्थता

जोधपुर के सज्जन वापस लौट गए और पूज्यश्री विहार करके बलुदा पधारे। हाथों में और जांघ मे फुसियाँ निकलने के कारण आप फिर अस्वस्थ हो गए। कुछ दिनो के लिए विहार स्थगित कर देना पड़ा। अजमेर के सुप्रसिद्ध डाक्टर सूरजनारायणजी ने पूज्यश्री के शरीर की परीक्षा की और विहार कम करने की सलाह दी। पूज्यश्री के रुकने के कारण बलुदा मे आसपास के सैकड़ों दर्शनार्थी आने लगे। बलुंदा के प्रसिद्ध दानवीर, उदार हृदय सेठ छगनमलजी साहेब मूथा ने पूज्यश्री की सब प्रकार से सभव सेवा बजाई, आगत अतिथियो का हार्दिक स्वागत किया। सव प्रकार की सुविधाएँ दी और अच्छा धर्मप्रेम प्रकट किया।

कुछ दिन बलुदा विराजकर, स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर मेड़ता होते हुए माघ शुक्ला ८ को कुचेरा पधारे। कुचेरा से नागौर, गोगोलाव और फिर नोखामडी पधार गए। नोखामडी में कुछ तेरापथी भाई शका-समाधान के लिए आए। सात बहिनों ने दया-दान विरोधी श्रद्धा त्याग कर पूज्यश्री को अपना गुरु स्वीकार किया। पूज्यश्री के आगमन के उपलक्ष्य में यहाँ 'श्रीजैन जवाहर लाइब्रेरी' की स्थापना हुई।

नोखा से विहार करके पूज्यश्री सूरपुरा, देशनोक होते हुए उदयरामसर पधारे। कुछ लोग देवी के मन्दिर में बकरे की बलि चढ़ाने के लिए तैयार खड़े थे। युवाचार्यश्री ने मौके पर पहुंच कर उन्हे ऐसी सुन्दरता से समझाया कि उन्होंने बकरे को अभयदान दे दिया। वे लोग दूसरे दिन उपदेश सुनने आये। यहा त्याग-प्रत्याख्यान अच्छे हुए।

उदयरामसर से पूज्यश्री भीनासर पधारे। भीनासर का बांठिया-परिवार स्थानकवासी समाज मे समाज और धर्म की सेवा करने के लिए प्रख्यात है। पूज्यश्री के पधारने पर इस परिवार का तथा अन्य भाइयो का उत्साह अनुपम था। कुछ दिनों भीनासर विराजकर आप बीकानेर पधारे।

बीकानेर की जनता भी बहुत दिनो से चातक की तरह पूज्यश्री की प्रतीक्षा कर रही थी। उदयरामसर और भीनासर मे ही सैकडो दर्शनार्थी आने लगे थे। जिस दिन पूज्यश्री ने भीनासर से विहार किया, हजारों श्रावक और श्राविकाए सामने आई। श्रावकों के जयघोष और श्राविकाओं के मंगल गीतो के साथ पूज्यश्री ने ठा. १८ से बीकानेर में पदार्पण किया। पूज्यश्री पहले तो बीकानेर के प्रसिद्ध दानवीर और शिक्षाप्रेमी सेठ अगरचंदजी भैरोंदानजी की कोटड़ी में विराजे थे किन्तु गर्मी अधिक होने के कारण आप श्रीडागाजी की कोटडी में पधार गए। फिर भी कभी-कभी आप इच्छानुसार दिन को सेठियाजी की कोटड़ी मे और रात को डागाजी की कोटड़ी मे विराजते थे। व्याख्यान युवाचार्यश्री फरमाते थे।

बीकानेर बडा नगर होने के कारण गर्मी अधिक थी। सफाई की व्यवस्था भी उतनी अच्छी नहीं थी। उधर भीनासर के बाठिया-परिवार की तथा समस्त श्रीसङ्घ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना थी। अतएव पूज्यश्री ने भीनासर में चातुर्मास करने के भाव प्रकट किए। साथ ही आपने यह भी फरमाया कि मै अपनी सुविधा के अनुसार बीकानेर, गंगाशहर और भीनासर में से कही भी रह सकता हू।

युवाचार्यश्री की इच्छा पूज्यश्री की सेवा मे रहने की थी; मगर सरदारशहर-सङ्घ के सत्याग्रह से पूज्यश्री के आदेशानुसार उन्हें सरदारशहर मे चौमासा करना पड़ा। पूज्यश्री के साथ प. मुनिश्री

श्रीमल्लजी महाराज तथा प मुनिश्री जौहरीमलजी महाराज थे। आषाढ शुक्ला सप्तमी को पूज्यश्री चातुर्मास के लिए भीनासर पधार गए।

उनचासवां चातुर्मास (सं. १९९८)

सवत् १९९८ का चातुर्मास पूज्यश्री ने भीनासर मे किया। भीनासर वीकानेर का उपनगर है। अतएव बीकानेर से प्रतिदिन सैकडों श्रावक दर्शन और व्याख्यान श्रवण के हेतु आते थे। मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज और मुनिश्री जौहरीमलजी महाराज व्याख्यान फरमाते थे। पूज्यश्री व्याख्यान भवन मे पधारते थे और विराजमान भी रहते थे, मगर अशक्ति के कारण व्याख्यान नही फरमाते थे।

महासती श्रीकालीजी महाराज ने ठा. ७ तथा श्रीसुन्दरकुवरजी ने ठा. ५ से भीनासर मे ही चातुर्मास किया।

पूज्यश्री के विराजने से वीकानेर, गगाशहर तथा भीनासर के श्रावको और श्राविकाओ मे धर्मोत्साह छा गया। सब ने यथाशक्ति खूब धर्म-ध्यान किया। मुनि श्रीकेशूलालजी म. ने पचरगी की तपस्या की। ब्यावर से करीब १२५ श्रावक-श्राविकाओ का जत्था आया और उसने पूज्यश्री से ब्यावर पधारने की विनति की।

आसोज शुक्ला मे हितेच्छु श्रावकमंडल की बैठक हुई। बबई, सतारा, रतलाम आदि के प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित हुए। जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़ को ६००) रुपये की सहायता प्राप्त हुई।

श्री जवाहर किरणावली का प्रकाशन

जिस भीनासर मे अनेक बार पूज्यश्री की गभीर गर्जना सुनाई पढी थी, वही भीनासर आज पूज्यश्री की वाणी से वचित था। सन् १९२७ में पूज्यश्री का चातुर्मास भीनासर मे था। उस समय के अनेक व्याख्यान अत्यन्त गंभीर और प्रभावशाली थे। यह देखकर वहा के अग्रगण्य उत्साही श्रीमान् सेठ चम्पालालजी बाठिया के हृदय मे यह विचार आया कि पूज्यश्री के वर्त्तमान व्याख्यानों के अभाव में पहले के व्याख्यान क्यो न प्रकाशित किये जाए? कोई भी शुभ विचार आना चाहिए, फिर बाठियाजी उसे अमल में लाने के लिए कसर नही रखते। तदनुसार आपने उसी समय रतलाम, हितेच्छु श्रावक मडल से आज्ञा मगवाई और प. श्रीशोभाचन्द्रजी भारिल्ल न्यायतीर्थ को व्याख्यानों के सम्पादन का कार्य सौप दिया। वे व्याख्यान 'श्रीजवाहर किरणावली' के रूप में प्रकाशित हुए। यह किरणावली अभी तक चालू है।

श्रीजवाहर जयन्ती

सन्त पुरुष विश्व की अनमोल निधि है। सन्त पुरुष को 'निधि' कहना ठीक जचता नही किन्तु उनकी महिमा प्रकट करने योग्य और कोई उपयुक्त शब्द भी तो हमारे पास नही है। जिस निधि के लिए दुनिया मरी जाती है, लोग क्रूर-से-क्रूर कर्म करते नही हिचकते, अपने प्राप्त सुखो का, यहा तक कि प्राणों का भी उत्सर्ग कर देते है, उसी निधि को सहज भाव से ठुकरा देने वाले सत महात्मा को 'निधि' कहना कहां तक उचित होगा?

सत की महिमा का किन शब्दों द्वारा वर्णन किया जाय? सत पुरुष ससार के अकारण बन्धु है, निस्पृह सेवक हैं, मनुष्य की आकृति में मनुष्यता का बीज बोने वाले कुशल माली है, नीति और

धर्म के महान् शिक्षक है, लोकोत्तर पथ के प्रदर्शक है। ससार के कल्याण के लिए रत रहते है। कौन-सा ऐसा भीषण-से-भीषण कष्ट है, जिसे वे जगत् के उद्धार के लिए सहन करने को तैयार नही रहते!

जगत् को उनकी देन असाधारण है। सत पुरुषों के चरणो के प्रताप से ही जगत् स्थिर है। ससार की घोर अशाति मे अगर कही शान्ति का आभास होता है तो उसका सम्पूर्ण श्रेय उन महान् सतों को ही है, जिन्होंने मनुष्य की मनुष्यता को कायम रखने का अश्रान्त श्रम किया है। सत पुरुष समय-समय पर हमारा पथ-प्रदर्शन न करते तो मनुष्य-समाज दुनिया के पशुओं की ही एक श्रेणी मे खडा होता! अतएव कहा जा सकता है कि मनुष्य का निर्माता कोई भी हो, मगर मनुष्यता का निर्माता तो सत ही है।

कहते है, सत पुरुष ससार से विरक्त होता है। वह दुनिया की ओर पीठ फेर लेता है। मगर इससे क्या? उसकी विरक्ति ही तो हमारे लिए अमोल वरदान है। महाकवि हरिचद भट्टारक के शब्द बडे सुन्दर हैं-

पराङ् मुखोऽप्येष परोपकार व्यापारभारक्षम एव साधु.।
किं दत्तपृष्ठेऽपि गरिष्ठधात्री प्रोद्धार कर्म प्रवणो न कूर्म.?॥

साधु पुरुष विमुख होकर भी परोपकार का भार सहन करने मे समर्थ होता है। पुराणों के अनुसार कछुवा ने यद्यपि पृथ्वी की ओर पीठ कर रखी है, वह पृथ्वी से विमुख है, फिर भी क्या वह भारी से भारी धरती को ऊपर नही उठाए है? उसी की पीठ पर धरती टिकी है!

यह महाकवि की कल्पना है! इसमे सत के स्वभाव का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन किया है।

इस प्रकार संसार का अपार उपकार करने वाले सतों का ऋण कैसे चुकाया जा सकता है? सारे ससार का वैभव एकत्र करके उनके चरणो में अर्पित करने की चेष्टा की जाय तो वे हमारी इस बाल-चेष्टा पर कदाचित् मुस्करा देगे! वैभव की उन्हे चाहना नही। उन्होंने ठुकरा दिया है। पूजा-प्रतिष्ठा का उन्हें लोभ नहीं। फिर उनके उपकारो से उऋण होने का क्या उपाय है? वास्तव में कोई उपाय नही कि हम उनसे बेबाक हो सके। मगर बहुत कुछ लेते ही लेते जाना और देना कुछ भी नही, यह दीवालिया की स्थिति स्वीकार करना भले आदमी को नही सोहता। अतएव हम उनके असीम उपकारों के बदले मे अपनी आन्तरिक श्रद्धा-भक्ति प्रकट करके और कृतज्ञताज्ञापन करके ही अपना कर्त्तव्य पालन कर सकते हैं।

पूज्यश्री जैसे महान् सत ने आधी शताब्दी पर्यन्त भारत के विभिन्न भागो मे पैदल-भ्रमण करके जो अनिर्वचनीय उपकार किये थे, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से, उनके अतिम जीवनकाल मे पूज्यश्री की जयन्ती और दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मनाने का निर्णय किया गया। बीकानेर-भीनासर का श्रीसघ और विशेषत. इसके आयोजनकर्त्ता सेठ चम्पालालजी बाठिया इस सूझ के लिए बधाई के पात्र है।

पूज्यश्री की जयन्ती

कार्तिक शु. चतुर्थी ता. २४-१०-४१ को भीनासर में पूज्यश्री का जन्मदिवस मनाया गया। सेठ चम्पालालजी बाठिया के बगीचे के विशाल भवन में भीनासर, गगाशहर और बीकानेर के श्रावक-श्राविका विशाल सख्या मे उपस्थित थे। प्रात:काल सवा आठ बजे प. मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने व्याख्यान

आरम्भ किया। आपने पूज्यश्री के जन्मस्थान, बाल्यकाल, दीक्षा आदि का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दो में विवेक किया। इसके बाद बाठिया कन्या-पाठशाला की बालिकाओ ने मधुर शब्दों मे पूज्यश्री का अभिनन्दन गीत गाया। वह इस प्रकार था-

सेवो सेवा रे भविजन मन से पूज्य जवाहलाल॥
सेवो भक्ति-भाव से भाई, भवभय भजन हारी।
कर्म महारिपु मेटन, भेटन शिव सुख जगतप्रतिपाल।। सेवो.॥
परम् तपस्वी उग्र विहारी, ज्ञान भानु साकार।
पाखण्डी मद मर्दन गुरुवर, कर्म महारिपु काल।। सेवो.॥
देश मालवा गाव थादला, नाथीबाई मात।
सोलह वर्ष मे भए मुनीवर, जीवराज के लाल।। सेवो.॥
दूर-दूर विचरे अब ठाए, भीनासर चौमास।
नरनारी नगर त्रयवासी, पाए मगल माल।। सेवो.॥
कन्याशाला की बालाए, करती यह अभिलाष।
युग-युग जीवे पूज्य जवाहर, मुनिमन मान मराल।। सेवो.॥

इसके बाद प. घेवरचन्दजी बांठिया 'वीरपुत्र' न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्तशास्त्री का भाषण हुआ। जिसमे आपने बताया कि पूज्यश्री के उपदेशो के प्रभाव से घाटकोपर मे जीव-दया खाते की स्थापना हुई। जहा प्रतिवर्ष हजारो पशु मृत्यु के फन्दे से छुडाए जाते है। राजकोट मे आप ही के प्रभाव से 'जैन गुरुकुल पाठशाला' की स्थापना हुई। भीनासर-गगाशहर और बीकानेर के श्रीसघो ने मिलकर 'श्रीसाधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था' की स्थापना की। जिसमे एक लाख से अधिक कोष है। इसकी तरफ से नोखा गांव, नोखा मडी, सारूडा, भोजास, ऊदासर, रासीसर आदि स्थानो में पाठशालाए चल रही है। अन्त मे आपने हितकारिणी सस्था के सदस्यो से प्रेरणा की कि पूज्यश्री का जीवन-चरित्र प्रकाशित होना चाहिए। इसके बाद बाबू केसरीचन्दजी सेठिया ने अपनी कविता सुनाई। बाबू खेमचन्दजी सेठिया, सूरजमलजी बछावत, नेमिचन्दजी बछावत, श्यामलालजी जैन एम. ए., इन्द्रचन्दजी शास्त्री शास्त्राचार्य न्यायतीर्थ, वेदान्तवारिधि एम. ए. के भाषण हुए। प. मुनिश्री जवरीमलजी महाराज ने पूज्यश्री के जीवन पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि ध्यान और प्रभु प्रार्थना मे कितनी शक्ति रही हुई है। इन्ही दोनो बातो से पूज्यश्री का सारा जीवन ओत-प्रोत है।

सेठ चम्पालालजी बाठिया ने जन्मदिवस के उपलक्ष्य में जीव-दया के लिए दान करने की अपील की। उसी समय २३१५) रु. की रकम लिखी गई। उसे धाटकोपर जीव-दया खाते में भेज दिया गया।

बीकानेर श्रीसंघ की ओर से श्रीभानमलजी दसाणी ने पूज्यश्री से बीकानेर पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया कि चातुर्मास के बाद सुखे-समाधे बीकानेर पहुचने के भाव है। अन्त मे बालिकाओ ने एक गायन और गाया और पूज्य श्री के जयनाद के साथ सभा विसर्जित हुई।

भीनासर में पूज्यश्री के विराजने से बहुत धर्मध्यान हुआ। अनेक सस्थाओ को सहायता प्राप्त हुई। चातुर्मास पूर्ण होने पर, १०-११-४१ को पूज्यश्री बीकानरे पधार गए।

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

मार्गशीर्ष शु. २ ता. १८ फरवरी १९४२ को पूज्यश्री अपनी दीक्षा का पचासवां वर्ष पूरा करके इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। उसके लिए 'श्री इन्द्र' ने जैन प्रकाश ता. १-११-४१ में नीचे लिखी विज्ञप्ति प्रकाशित की।

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का दीक्षा स्वर्ण महोत्सव

मार्गशीर्ष शु २ तदनुसार ता. १८ फरवरी रविवार को पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज साहेब अपनी दीक्षा का पचासवा वर्ष पूरा करके इक्यावनवे वर्ष मे प्रवेश कर रहे है। अपनी इस लम्बी साधना में उन्होंने आत्महित और समाजहित के लिए जो कुछ किया है उससे स्थानकवासी समाज भली-भाति परिचित है। आचार्यश्री के कठोर सयम की गाथा भारतवर्ष के कोने-कोने मे गाई जाती है। उनकी ओजस्विनी वाणी ने जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय मे घर कर लिया है। उनके उपदेश वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओ को सुलझाने मे मार्ग प्रदर्शन का काम कर रहे है। उनका जीवन, उनकी चर्या और उनका प्रत्येक क्षण महान् आदर्श और शिक्षाओं से भरा है।

जिस व्यक्ति ने आचार्यश्री के एक बार दर्शन किए है या व्याख्यान सुना है वह अच्छी तरह जानता है कि आचार्यश्री की वाणी में कैसा जादू है। अदम्य उत्साह, प्रखर प्रतिभा, गम्भीर तर्कशक्ति और मोहिनी वाणी को लेकर आपने जगह-जगह अहिसा धर्म का प्रचार किया। भयङ्कर कष्ट और महान् कठिनाइयो का सामना करके आपने सच्चे धर्म को बताया और पाखण्डियो का किला तोड डाला।

मारवाड, मेवाड़, मालवा, मध्यप्रान्त, गुजरात, काठियावाड, बम्बई, महाराष्ट्र आदि दूर-दूर के प्रान्त आपके उपदेशामृत का पान कर चुके है। पूज्यश्री के आगमन पर अपनी प्रसन्नता दिखाने के लिए स्थानीय श्रीसघो ने ऐसे कार्य किए हैं जिनका समाज को ऊँचा उठाने में बहुत बडा हाथ है। घाटकोपर जीव-दया फण्ड, श्रीश्वेताम्बर साधु मार्गी जैन हितकारिणी सस्था बीकानेर, राजकोट गुरुकुल आदि सस्थाएं आप ही के उपदेशों का फल है।

महात्मा गान्धी, मालवीयजी, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल आदि देश के महान् नेताओं ने आपका व्याख्यान सुनकर परम सन्तोष प्रकट किया है। जैनेतर जनता के सामने जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप रखकर आपने बड़े-बड़े विद्वानो को प्रभावित किया है और स्याद्वाद का मस्तक ऊँचा किया है।

अहिंसा, खादी-प्रचार आदि कर्त्तव्यों का राष्ट्रीय और धार्मिक दृष्टि से पूर्ण समर्थन करके आपने धर्म और राजनीति के कार्यक्षेत्र को एक बनाने में महान् उद्योग किया है।

स्थानकवासी समाज, जैन जाति और अखिल भारतवर्ष आपके इन कार्यो के लिए सदा ऋणी रहेगा।

उनके इस उपकार के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करना और इस स्वर्णमहोत्सव [illegible] प्रकट करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है।

स्थानकवासी समाज को तो उस दिन कोई ऐसा कार्य करके [illegible] की स्मृति अमर हो जाय और साथ मे उनके उपदेश कार्यरूप मे [illegible]

त्याग की आवश्यकता है किन्तु त्याग के विना किसी महापुरुष का उत्सव मनाया भी तो नही जा सकता। रतलाम, उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, ब्यावर, बीकानेर, वम्वई, सतारा, मद्रास आदि सभी नगरो के श्रीसघ यदि किसी फण्ड की स्थापना करके उसे समाजोन्नति के किसी उपयोगी कार्य मे लगावे तो समाज का भविष्य शीघ्र उज्ज्वल वन सकता है।

स्थानकवासी समाज सव तरह से सम्पन्न है। अगर चाहे तो प्रत्येक श्रीसघ लाखो का चन्दा कर सकता है और एक ही दिन मे विद्यापीठ ही नही विश्वविद्यालय की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार के परमप्रतापी आचार्य की दीक्षा का स्वर्णमहोत्वस सदिया वीतने पर भाग्य से ही प्राप्त होता है। ऐसा अपूर्व अवसर स्थानकवासी समाज तथा प्रत्येक श्रीसंघ को न चूकना चाहिए और कुछ ठोस कार्य करके दिखाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य से ही आचार्यश्री के प्रति अपनी भक्ति का ठीक-ठीक प्रदर्शन हो सकता है।

आशा है, स्थानकवासी समाज के अग्रणी इस वात पर ध्यान देगे और उस दिन कोई स्थायी कार्य करके आचार्यश्री के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा प्रकट करेगे।

इस पर हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम के मत्री श्रीबालचन्दजी श्री श्रीमाल ने तथा दूसरे सज्ञनो ने अपने-अपने विचार प्रकट किए। परिणाम स्वरूप महोत्सव के दिन भारतवर्ष मे अनेक स्थानों पर पूज्यश्री की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई और विविध प्रकार के शुभ कार्य हुए। नीचे लिखे स्थानो की कार्रवाई उल्लेखनीय है -

जैन गुरुकुल ब्यावर

ता. २०-११-४१ की रात्रि को ८ बजे परमप्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की पचास वर्ष जैसे सुदीर्घ समय तक सयम साधना की स्वर्णजयन्ती मनाने के उपलक्ष्य मे गुरुकुल परिवार की एक सभा गुरुकुल के कुलपति श्रीसरदारमलजी सा. छाजेड के सभापतित्व मे की गई।

प्रारम्भ में गुरुकुल के अधिष्ठाता श्रीधीरजलाल भाई ने पूज्यश्री के प्रभावोत्पादक साधक जीवन का परिचय देते हुए सारगर्भित व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् प. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, श्रीशान्तिलाल व. सेठ प. दुग्धनारायणजी शास्त्री, श्रीमुल्कराजजी लिग्गा B. A , L.L B तथा श्रीमुनीन्द्र कुमार जैन इत्यादि ने पूज्यश्री के गुणगान करते हुए जीवन पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुए -

प्रस्ताव १.- जैन समाज के ज्योतिर्धर, जैन-सस्कृति के प्राण रक्षक और प्रचारक परमप्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की पचास वर्ष जैसे सुदीर्घ समय तक सयम साधना के उपलक्ष्य मे 'ब्यावर जैन गुरुकुल' का परिवार हार्दिक प्रमोद अभिव्यक्त करता है और शासन देव से प्रार्थना करता है कि पूज्यश्री चिरकाल तक ससार को मार्ग प्रदर्शित करते रहे।

प्रस्ताव २ - पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश सार्वजनिक, मौलिक, शास्त्रीय रहस्यो से परिपूर्ण और युग के अनुकूल है। उन मे आध्यात्म, धर्म और राष्ट्रीयता का असाधारण सगीत है। ऐसे लोकोपयोगी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिए यह सभा श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम,

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर, श्री जैन ज्ञानोदय सोसायटी राजकोट तथा अन्य महानुभावो से अनुराध करती है।

प्रस्ताव ३:- यह सभा ऐसे महान् प्रभावक आचार्य और धर्मोपदेशक के जीवन चरित्र तथा अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन उनकी स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष्य में उपयोगी समझती है और रतलाम हितेच्छु श्रावक मण्डल से आग्रह करती है कि शीघ्र ही पूज्यश्री का जीवन प्रस्तुत किया जाये।

प्रस्ताव ४:- यह सभा जैन समाज की महान् विभूति, पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के पचास वर्ष जैसे सुदीर्घकालीन साधक जीवन की स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष्य मे कोई जीवन्त स्मारक रखने के लिए समाज से साग्रह अनुरोध करती है और समाज के कर्णधारों से प्रार्थना करती है कि इस शुभ अवसर पर कोई महान् कार्य अवश्य हाथ मे उठावें और उसे सफलीभूत बनावें।

प्रस्ताव ५:- उक्त प्रस्ताव रतलाम, बीकानेर, राजकोट तथा अखबारो मे भेजे जावें।

उक्त प्रस्ताव होने के बाद सभापतिजी का पूज्यश्री के जीवन पर सारगर्भित भाषण हुआ। इसी प्रकार जोधपुर, फलौदी आदि बहुत-से स्थानो मे महोत्सव मनाया गया।

घुटने में दर्द

बीकानेर मे पूज्यश्री के घुटने में दर्द फिर आरम्भ हो गया। वृद्धावस्था और दुर्बलता के कारण औषधियों ने अपना प्रभाव कम कर दिया। बाहर आना-जाना स्थगित हो गया। दिनोदिन कमजोरी बढ़ती गई और शारीरिक स्थिति बिगड़ती चली गई। प्रिंस विजयसिहजी मेमोरियल हॉस्पिटल बीकानेर के मेडिकल ऑफिसर प्रसिद्ध डाक्टर वेनगार्टन ने चिकित्सा प्रारम्भ की।

कुछ दिनो बाद थली प्रान्त से युवाचार्यश्री, पूज्यश्री की सेवा मे पधार गए। कुछ दिन सेवा करके आपने झञ्झू आदि ग्रामों को फरसने के लिए विहार किया।

बीकानेर की गर्मी सहन न होने के कारण पूज्यश्री फिर भीनासर पधारे और श्रीबांठियाजी के विशाल मकान मे ठहरे।

पक्षाघात का आक्रमण

घुटने का दर्द तथा अशक्ति आदि ने पहले ही पूज्यश्री को घेर लिया था। डाक्टरो के इलाज का कोई विशेष प्रभाव नही दिखाई देता था। ऐसी स्थिति मे एक नई व्याधि और आ गई।

जेठ शुक्ला पूर्णिमा, ता. ३०-५-४२ के दिन पूज्यश्री प्रतिदिन की भाति स्वाध्याय करने बैठे। उस समय तक कोई विशेष बात नही थी। जब आप स्वाध्याय करके उठने लगे तो आधे अंग मे कुछ शिथिलता प्रतीत हुई। आप सहारा लेकर उठे और शौच पधारे। तदनन्तर अधिक शिथिलता प्रतीत होने लगी। सेठ चम्पालालजी बाठिया ने उसी समय डाक्टर बुलवाया और शरीर की परीक्षा करवाई। पूज्यश्री के दाहिने अगों मे पक्षाघात का आक्रमण हो गया था।

देशनोक मे विराजमान युवाचार्यश्री को सूचना दी गई और आप दो-तीन दिनों मे ही भीनासर आ पहुँचे।

डॉ. वेनगार्टन की चिकित्सा आरम्भ हुई।

क्षमा का आदान-प्रदान

'विश्व के समस्त प्राणियो पर निर्वैरभाव रखना और विश्वमैत्री की भावना विकसित करना क्षमापणा का महान् आदर्श और उद्देश्य है। मनुष्य के साथ मनुष्य का संवध अधिक रहता है, अतएव मनुष्य-मनुष्य में कलुषता की अधिक सम्भावना है। अतएव मनुष्यो के प्रति निर्वैरवृत्ति धारण करने के लिए सर्वप्रथम अपने घर के लोगों के साथ, अगर उनके द्वारा कलुषता उत्पन्न हुई हो तो क्षमा का आदान-प्रदान करके विश्वमैत्री का शुभ समारभ करना चाहिए।

क्षमा का आदान-प्रदान करने से चित्त में प्रसन्नता होती है। चित्त की प्रसन्नता से भाव की विशुद्धि होती है।'

'क्षमाधर्म की आराधना करने वाला सम्यग्दृष्टि इस बात का विचार नही करता कि दूसरे मुझसे क्षमायाचना करते हैं या नहीं ? इस बात का विचार किये विना ही वह अपनी ओर से विनम्रभाव से प्रेरित होकर क्षमा की प्रार्थना करता है। इस विषय मे वृहत्कल्पसूत्र के शब्द स्मरणीय हैं। 'जो उवसम्मइ तस्स अरित्थ आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्शि आराहणा' अर्थात् जिसके साथ तुम्हारी तकरार हुई है वह तुम्हारा आदर करे या न करे। उसकी इच्छा हो तो बदन करे, इच्छा न हो तो बदन न करे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ भोजन करे, इच्छा न हो तो भोजन न करे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ रहे, इच्छा न हो तो न रहे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे प्रति उपशान्त हो, इच्छा न हो तो उपशान्त न हो। तुम उसके इन कृत्यो को मत देखो। तुम अपने अपराध के लिए क्षमा माग लो और उसके अपराधो को अपनी ओर से क्षमा कर दो।'

जिन महापुरुष ने अपने अनुयायियों को इस प्रकार क्षमाधर्म का उपदेश दिया और उनके अन्त. करण को निष्कषाय बनाने का उपाय बताया, वह स्वय उसका व्यवहार किये बिना कैसे रह सकता था ? पूज्यश्री ऐसे उपदेशक थे जो किसी भी सद्वृत्ति को अपने जीवन में व्यवहृत करते थे और फिर दूसरों को उपदेश देते थे। उनका समस्त उपदेश उनके जीवन व्यवहार में ओतप्रोत था। इसी कारण उनके उपदेश की प्रभावकता बहुत बढ गई थी।

पूज्यश्री के शरीर पर जब विविध व्याधियो का हमला होने लगा और शरीर उनका सामना करने मे असमर्थ प्रतीत होने लगा और लम्बे जीवन की सम्भावना न रही तब आपने प्राणी मात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा। कौन जाने, कब, क्या स्थिति हो ? क्षमायाचना का सुअवसर मिले या न मिले ? अतएव पहले ही अपना हृदय पूर्णरूप से विशुद्ध रखना उचित है। इस प्रकार विचार करके पूज्यश्री ने ता. १८-६-४२ के दिन नीचे लिखे आशय के उद्गार प्रकट किए:-

(१) साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ से मै अपने अपराधो के लिए अन्तःकरण पूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

(२) मेरा शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन-शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है। इस बात का कोई भरोसा नही है कि इस भौतिक शरीर को छोड़कर प्राणपखेरू कब उड़ जाये। ऐसी दशा मे जब तक ज्ञान-शक्ति विद्यमान है, भले-बुरे की पहचान है तब तक ससार के सभी प्राणियो से, विशेषतया चतुर्विध श्रीसघ से क्षमा-याचना करके शुद्ध हो लेना चाहता हूँ। मेरी आप सभी से विनम्र प्रार्थना है कि आप भी शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा प्रदान करे।

(३) मेरी अवस्था ६७ वर्ष की है। दीक्षा लिए पचास वर्ष से अधिक हो गए हैं। इस समय में मेरा चतुर्विध सघ से विशेष सम्पर्क रहा है। स. १९७५ से श्रीसङ्घ ने तथा पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज साहेब ने सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे निर्बल कन्धो पर रख दिया था। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के समान प्रतापी महापुरुष के आसन पर बैठते हुए मुझे अपनी कमजोरियों का अनुभव हुआ था, फिर भी गुरु महाराज तथा श्रीसघ की आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझकर मैने उस आसन को ग्रहण कर लिया। इसके बाद शासन की व्यवस्था के लिए मैने समयोचित बहुत-से परिवर्तन और परिवर्द्धन शास्त्रानुसार किए है। सम्भव है उनमें से कुछ बातें किसी को गलत या बुरी लगी हो। मै उनके लिए सभी से क्षमा मांगता हूँ।

(४) मैं साधुवर्ग का विशेष क्षमाप्रार्थी हूँ। उनके साथ मेरा गुरु और शिष्य के रूप में, शासक और शास्य के रूप में, सेव्य और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकारो से घनिष्ठ सबध रहा है। मैंने शासनोन्नति के लिए ज्ञान, दशर्न और चारित्र की रक्षा के लिए, सगठनवृद्धि के लिए शास्त्रानुमोदित कई नियमोपनियम बनाए हैं, जिन्हे मुनियो ने सदा वरदान की तरह स्वीकार किया है। फिर भी यदि मेरे किसी बर्ताव के कारण किसी मुनि के हृदय में चोट लगी हो, उन्हे किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो मै उसके लिए बार-बार क्षमा-याचना करता हूँ। मेरी आत्मा की शांति और निर्मलता के लिए वे मुझे क्षमा प्रदान करे। इसी तरह जो मेरे द्वारा क्षमा के उत्सुक हैं उन्हें मै भी अन्त'करणपूर्वक क्षमा प्रदान करता हूँ। मैने अपनी आत्मा को स्वच्छ एव निर्वेर बना लिया है।

(५) अपनी सम्प्रदाय का संचालन करने और सामाजिक व्यवस्था करने के लिए मुझे दूसरी सम्प्रदाय के आचार्य तथा बहुत से स्थविर मुनियो के सम्पर्क में आना पड़ा है। किसी-किसी बात पर मुझे उनका विरोध भी करना पड़ा है। उस समय बहुत सम्भव है, मुझसे कोई अनुचित या अविनय-युक्त व्यवहार हो गया हो। मै अपने उस व्यवहार के लिए उन सभी से क्षमा माँगता हूँ। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर वे सभी आचार्य तथा स्थविर मुनि मुझे क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

(६) मैं जिस बात को हृदय से सत्य मानता हूँ उसी का उपदेश देता रहा हूँ। बहुत-से व्यक्तियो से मेरा सैद्धान्तिक मत-भेद भी रहा है। सत्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से उनके साथ चर्चा वार्ता करने का प्रसंग भी बहुत बार आया है। यदि उस समय मेरे द्वारा किसी प्रकार प्रतिपक्षियों का मन दुखा हो, उन्हे मेरी कोई बात बुरी लगी हो तो उसके लिए मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ। मेरा उसके साथ केवल विचार-भेद ही रहा है। वैयक्तिक रूप में मैने उन्हें अपना मित्र समझा है। और अब भी समझ रहा हूँ। आशा है वे मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

(७) मैने जो व्याख्यान दिए है उनमे से मण्डल ने कई-कई चातुर्मासों के व्याख्यानों का संग्रह कराया है। इस विषय मे मेरा कहना है कि जिस समय जो-जो मैने कहा है वह जैन आगमो और निर्ग्रन्थ प्रवचनो को दृष्टि मे रखकर ही कहा है। यह बात दूसरी है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार विचारों में भी परिवर्तन होता रहा है। फिर भी मै छद्‌मस्थ हूँ। मुझसे भूल हो सकती है। मैं सत्य का गवेषक हूँ। सभी को सत्य ही मानना चाहिए। असत्य के लिए मेरा आग्रह नहीं है। मुझे अपनी बात की अपेक्षा सत्य अधिक प्रिय है।

(८) मेरी शरीरिक अशक्ति के वाद और पहले जो साधु मेरी सेवा मे रहे है, उन्होने मेरी सेवा करने मे कुछ भी वाकी नही रहने दिया। अपने कष्टों को भूलकर वे प्रत्येक समय प्रत्येक प्रकार से मेरी सेवा में तत्पर रहे है। स्वय सरदी, गरमी एव भूख-प्यास के परीपहो को सह कर भी उन्होने मेरी सेवा का ध्यान रखा है। इसके लिए मै उनकी सेवा का हार्दिक अनुमोदन करता हूँ। उनके द्वारा की गई सेवा का आदर्श नवदीक्षितो के लिए मार्गदर्शक वनेगा।

(९) लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैने साम्प्रदायिक शासन का भार युवाचार्यश्री गणेशीलालजी को सौप रखा है। उन्होने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे है, वह आपके समक्ष है। मुझे इस वात का परम सन्तोष है कि युवाचार्यश्री गणेशीलालजी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर दिया है। और कार्य अच्छी तरह सभाल लिया है। साथ मे इस वात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति तथा आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य-प्राणियो का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

(१०)सज्जनो! जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। ससार मे जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहता है। यह शरीर तो एक प्रकार का चोगा है। जिसे प्राणि स्वय माता के गर्भ मे तैयार करता है और पुराना होने पर छोड़ देता है। पुराने चोगे को छोड़कर नए-नए चोगे पहिनते जाना जीवन के साथ अनादि काल से लगा हुआ है। इसमे हर्ष या विषाद की कोई बात नही है। हर्ष की बात तो हमारे लिए तब होगी जब इस चोगे को इस रूप मे छोडेंगे कि फिर नया न धारण करना पडे। वास्तव में नवीन चोगे का धारण करना ही बन्धन है और उसे उतारना छुटकारा है। जब यह चोगा हमेशा के लिए छूट जाएगा वही मोक्ष है। अतः यह चोगा छूटने पर भी आत्म-समाधि कायम रहे, यही मेरी भावना है।

(११)अन्त मे मैं यही चाहता हूँ कि मैने संसार त्याग करके भगवती दीक्षा स्वीकार की है। उसकी आराधना में जो प्रयत्न अब तक किया है उसमे मेरी शारीरिक या मानसिक स्थिति कैसी भी रहे, भंग न हो। उसमे प्रतिदिन वृद्धि हो और मै आराधक बना रहूँ।

पूज्यश्री के यह उद्‌गार व्याख्यान मे सुनाए गए। श्रोताओं के हृदय गद्‌गद्‌ हो उठे। अनेक आखों ने अश्रु बहाकर उनका अभिनन्दन किया। व्याख्यान-सभा मे अनोखी शान्ति छा गई। विषाद फैल गया। महान् सत की इस सात्विक वाक्यावली में उनके जीवन की साधना का सार था। उन्होंने क्षमायाचना करके जो आदर्श और उपदेश उपस्थित किया, वह उनके समस्त उपदेशों का कलश कहा जा सकता है। इस परोक्ष उपदेश मे जो शक्ति है, वह किसका हृदय नही हिला देती ?

जीवन साधना की परीक्षा

पूज्यश्री ने अपने जीवन के अनमोल पचास वर्षो में जो परम उच्च साधना की थी, उसका एकमात्र लक्ष्य आत्मशुद्धि था। अमर आत्मा के लिए आपने नाशवान् शरीर की ममता त्याग दी थी। आपने कहा था -

'अनादिकाल से जड का चेतन के साथ ससर्ग हो रहा है। जब तक चैतन्य के साथ जड के रहने का सिलसिला जारी है तब तक आत्मा के दु.ख का भी सिलसिला जारी रहेगा। जिस दिन जड़-चेतन के ससर्ग का सिलसिला समाप्त हो जायेगा, उसी दिन दु:ख भी समाप्त हो जायेगा और एकान्त सुख प्रकट हो जायेगा'।

पूज्यश्री ने इस ससर्ग के सिलसिले को खत्म करने में ही अपना जीवन लगा दिया। उन्होने शरीर और आत्मा का भेद पहचान लिया था। इस पहचान को आपने इन शब्दो मे घोषित भी किया था·-

जो तुम्हारा है, वह तुमसे कभी अलग नही हो सकता। जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नही है। पर पदार्थो मे आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है। इस भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टो से पीडित है। अगर 'मै' और 'मेरी' मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन में एक प्रकार की अलौकिक 'लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शाति का उदय होगा'।

इस प्रकार पूज्यश्री ने आत्मा और शरीर आदि बाह्य वस्तुओं के भेद को समझा और समझाया था।

विद्यार्थी वर्ष भर पढ़ता है और अन्त मे उसकी परीक्षा ली जाती है। पढाई विद्यार्थी की साधना है। परीक्षा देकर वह अपनी साधना की सफलता से सतोष मानता है। जिसकी जितनी उत्कट साधना होती है, उसकी परीक्षा भी उतनी ही कठोर ली जाती है। जिसकी साधना ही कठोर न होगी, उसकी परीक्षा कठोर क्या ली जायेगी! इस नियम के अनुसार पूज्यश्री की परीक्षा प्रकृति ले रही थी। उनकी साधना बड़ी लम्बी और कठोर थी, अतएव परीक्षा भी लम्बी और कठोर हुई।

जहरी फोड़ा (Carbuncle)

लकवा की शिकायत पूरी तरह दूर भी नही हो पाई थी कि कमर के पीछे बाई ओर कार्बकल फोडा उठ आया। फोडे के कारण दुस्सह वेदना थी और इसी कारण बुखार भी हो आया था। फोड़ा भयकर रूप धारण कर रहा था। सभी को विश्वास हो गया कि अब आचार्य महाराज का अतिम समय सन्निकट आ गया।

बीकानेर के चीफ सर्जन डॉ. एलन पूज्यश्री को देखने आए। उनकी सम्मति थी कि फोड़े का आपरेशन न किया गया तो पूज्यश्री का बचना असभव है। साथ ही आपरेशन करने मे भी आधी जोखिम है।

चीफ मेडिकल आफीसर को जब दूसरी बार पूज्यश्री को देखने के लिए बुलाया गया तो उसने आश्चर्य के साथ कहा- ओह! आचार्य अब तक जीवित है! दवा नहीं, ईश्वर ही उनकी रक्षा कर रहा है। बीमारी की ऐसी स्थिति मे साधारण मनुष्य बच नहीं सकता था!

अन्त मे फोडा बिना आपरेशन किये ही फूट गया। दुस्सह वेदना होने पर भी पूज्यश्री अत्यन्त शान्तभाव से सब कुछ सहन कर रहे थे। 'आत्मा जगत् के एक दु·ख को दूर करने के प्रयास मे दूसरे अनेक दु.खो का शिकार बन जाता है। वह इस मूल तथ्य की ओर नही देखता कि- मै जिन कष्टो को

दूर करने के लिए व्यग्र हो रहा हूँ, उन कष्टों का उद्गम स्थान कहाँ है ? वह कष्ट क्यों और कहा से आए है ? और वे कष्ट किस प्रकार विनष्ट किये जा सकते है ?' यह वाक्य जिसके मुख से निकले थे वह महात्मा भला शारीरिक कष्ट आने पर कैसे व्याकुल हो सकते थे ? उनकी सहनशक्ति और शान्ति अद्भुत थी, आश्चर्यजनक थी।

संघ के सौभाग्य से १०-१५ दिन वाद फोडे मे कुछ सुधार दिखाई दिया। गगाशहर स्टेट हॉस्पिटल के डाक्टर श्री अविनाशचन्द्र प्रतिदिन आकर फोडे मे से मवाद निकाल देते थे और मरहमपट्टी कर जाते थे।

छह महीने मे फोडा विलकुल साफ हो गया किन्तु फोडे के दिनों में लगतार लेटे रहने से पूज्यश्री के बाएँ अगों मे इतनी कमजोरी आ गई कि उठना-वैठना कठिन हो गया। यह अशक्ति अन्त तक बनी रही।

ता. २५-७-४२ को राजकोट के डाक्टर रा सा. लल्लू भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। उन्होने पूज्यश्री के इलाज की सराहना की और स्वस्थ हो जाने की आशा प्रकट की।

पचासवाँ चातुर्मास (सं. १९९९)

बीमारी के कारण पूज्यश्री ने सवत् १९९९ का चातुर्मास भी भीनासर मे ही किया। युवाचार्य महाराज भी साथ थे और प. मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज तो काठियावाड़ प्रवास और उसके बाद बराबर पूज्यश्री की सेवा में ही थे। कुल १९ ठाणा थे।

पूज्यश्री के फोड़े मे लाभ होते देख बीकानेर-श्रीसघ के अत्याग्रह से भाद्रपद कृष्णा ३ को युवाचार्यश्री बीकानेर पधार गए।

सेवा की सराहना

पूज्यश्री के दर्शनार्थ यों तो प्रतिवर्ष सैकडो-हजारो दर्शनार्थी आया करते थे किन्तु इस वर्ष बहुत बड़ी सख्या मे दर्शनार्थी आए। लोगों को प्रतीत होने लगा था कि सभवत· यह दर्शन आपके अन्तिम होंगे। अत दूर-दूर से दर्शनार्थियो की भीड़ लग गई। बाठिया बन्धु तथा भीनासर-गगाशहर संघ सभी अतिथियों का उत्साहपूर्वक स्वागत कर रहा था। पूज्यश्री की रुग्णावस्था मे बाठिया-परिवार ने तथा श्रीसघ ने जो सेवा बजाई वह अत्यन्त सराहनीय थी।

ता. २९ दिसम्बर १९४२ को भीनासर मे हितेच्छुश्रावक मडल की बैठक हुई। स्थानीय सदस्यो के अतिरिक्त बाहर से भी अनेक सज्जन पधारे। बैठक मे बाठिया बधुओ और चिकित्सको के सबध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ -

'श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यवर्य १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहब के शरीर मे इस वर्ष भयंकर पीडा हो गई थी, जिससे आपके जीवन विषयक आशका हो गई थी। किन्तु सघ के प्रबल पुण्योदय से श्रीमान् के शरीर मे शान्ति हो गई और फोडा बिलकुल साफ हो गया। इसके लिए मडल की यह सभा अपना अहोभाग्य मानती है और अत्यन्त हर्ष व्यक्त करती है। परन्तु फिर भी शरीर मे कमजोरी बढ़ती जा रही है। इसके लिए यही कामना करती है कि पूज्यश्री का स्वास्थ्य शीघ्र ही सुधरे। साथ ही पूज्यश्री की पीड़ा के समय मे डाक्टर अविनाशचन्द्रजी ने पूज्यश्री की जो महती सेवा बजाई है, इसलिए मडल उनकी सेवाओ को लक्ष्य मे लेकर उनको अभिनन्दनपत्र देने का प्रस्ताव ठहराता है।

इसी तरह बीकानेर, गङ्गाशहर, भीनासर के सघ ने एव श्रीमान् सेठ कनीरामजी, बादरमलजी तथा चम्पालालजी साहब बांठिया ने विशेष रूप से पूज्यश्री की महती सेवा बजाई व बजा रहे है, उसके लिए यह मडल आपका अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता है तथा डाक्टर साहब श्रीमान् वेन गार्टन, पी. एम. ओ., डॉ. सूरजनारायण जी आसोपा, वैद्य रामनारायणजी महन्त, स्वामी केवलरामजी, पं. भैरवदत्तजी आसोपा एव प. रामरत्नजी ने भी बहुत सेवा बजाई है। इतना ही नहीं वैद्यवर्यो ने फीस भी नही ली। इसलिए मडल इन सब का आभार मानता है।'

दो दीक्षाएँ

चौमासे के अनन्तर मार्गशीर्ष कृ. ४ को श्रीईश्वरचदजी सुराणा देशनोक-निवासी और श्रीनेमीचदजी सेठिया गंगाशहर (बीकानेर) निवासी की भीनासर मे दीक्षाएँ हुई। श्रीईश्वरचदजी सरदारशहर में ही दीक्षा लेने का विचार कर रहे थे किन्तु माताजी की बीमारी के कारण विलम्ब हो गया। माताजी का स्वर्गवास होने के अनन्तर आपने बडे भाई की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की। श्रीनेमीचदजी ने पहले सपत्नीक शीलव्रत खघ लिया और अपनी रुग्ण पत्नी की अम्लान-भाव से अच्छी सेवा की। कुछ समय पश्चात् पत्नी का देहान्त हो जाने पर आप दीक्षित हुए।

आप (नेमीचदजी सेठिया) अन्यत्र गोद गये थे। वहाँ प्रकृति न मिलने के कारण आप दिशावर चले गये और वहा कमाने लगे और इस प्रकार स्वावलम्बन का जीवन बिताने लगे। कुछ समय पश्चात् आप दिशावर से लौट आये। और आपके हृदय मे वैराग्य भाव जागृत हो गये। आपकी सोजायत माता की ओर से जो जेवर आपकी शादी मे चढ़ाया गया था वह सब वापिस उन्हें सभलाकर उनके चित्त को सतुष्ट कर दिया। फिर उनसे दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर उत्कट वैराग्य के साथ दीक्षा धारण की। आपका दीक्षा-महोत्सव सुप्रसिद्ध दा. वी. सेठ भैरोदानजी सेठिया के दूसरे पुत्र श्रीयुत पानमलजी सेठिया की ओर से समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

उक्त दोनो वैरागियो को पूज्यश्री ने 'करेमि भते' का प्रत्याख्यान कराया।

पंजाबकेसरी की अभिलाषा अपूर्ण रही

पूज्यश्री की अस्वस्थता के समाचार सुनकर पजाबकेसरी पूज्यश्री काशीरामजी महाराज ने आपसे मिलने की इच्छा प्रकट की। आप जोधपुर मे चौमासा पूर्ण करके पीपाड़ तक पधारे, मगर अचानक छाती में दर्द हो आने के कारण आगे विहार न कर सके। अतएव आपने अपने शिष्य कविवर मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी महाराज को पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की सेवा मे भेजा। पजाब-सम्प्रदाय के छह सत पजाब की ओर से पधार गए। पूज्यश्री के सत और श्रावक उनके स्वागतार्थ सामने गए। दोनों सम्प्रदायो में संतों ने खूब प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा। सम्मिलित व्याख्यान होता था। कुछ दिन तक पूज्यश्री की सेवा में विराजकर पंजाबी सत विहार कर गए।

सूर्यास्त का समय

वज्र की बन जा लेखिनी! नही तो पूज्यश्री के अतिम जीवन का चित्र तू अकित न कर सकेगी। और हृदय! तू पाषाण की भाँति कठोर हो जा। अरे हाथ! तू थर्राता क्यों है?

जिस उत्तरोत्तर उमग के साथ ओर उछलते हुए उत्साह की तरंगो पर चढकर, तुम सबने मिलकर एक महापुरुष की शाब्दिक आकृति खडी की हे वह उमग भग हो गई और वह उत्साह समाप्त हो गया है। चित्रकार ने जो चित्र वडी श्रद्धा के साथ अकित किया था और जिस पर उसे वडा अभिमान था, अब उसी चित्रकार को अपने चित्र के विनाश का भी चित्र अकित करना पडेगा! हाय विडम्बना!

कर्त्तव्य कितना कठोर है! मगर उसे करना पडेगा। मन से, वेमन से, चाहे हँसते हुए, चाहे रोते हुए। वह अधूरा नही रहेगा।

फोडा ठीक हो जाने के वाद पूज्यश्री का स्वास्थ्य कुछ ठीक हो चला था। उस समय कोई खास बीमारी नही रही थी, यद्यपि बाया पैर वेकार हो गया था। सव सम्भव उपाय किये, वाठिया-बन्धुओ ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया, मगर कोई उपाय और प्रयत्न कारगर न हुआ। जौलाई १९४३ के आरम्भ मे पूज्यश्री की गर्दन पर भयानक फोड़ा निकल आया। शरीर के दूसरे भागो पर भी उसी प्रकार के छोटे-छोटे फोडे उठ आये। डाक्टरो ने बहुत प्रयत्न किया मगर कोई लाभ होता नजर न आया। डाक्टर अपने करने योग्य कार्य ही करते थे और शेष ड्रेसिंग आदि कार्य उनके शिष्यगण साधु ही करते थे। अन्त मे डाक्टर निराश हो गए।

उसी समय भारत के कोने-कोने मे तार द्वारा पूज्यश्री के चिन्ताजनक स्वास्थ्य के समाचार भेज दिये गए। अनेक स्थानो के अग्रणी श्रावक उपस्थित हो गए। का. अ. भा. श्वे स्था. जैन कान्फ्रेस की ओर से निम्न तार आया:-

Conference, praying shashandev long lıve pujyashrı May thıs Jawahar remaın ever shınıng Secretarıes

कान्फ्रेंस पूज्यश्री की दीर्घायु के लिए शासनदेव से प्रार्थना करती है। यह 'जवाहर' सदा चमकता रहे यही कामना है।

आषाढ शुक्ला अष्टमी ता. १०-७-४३ को पूज्यश्री की दशा अधिक निराशाजनक हो गई। युवाचार्यश्री ने पूज्यश्री के कथनानुसार अन्य मुनियों एवं श्रीसघ की अनुमति से पौने बारह बजे तिविहार सथारा करा दिया।

उस समय प्रशस्त भावना उनके सौम्य, शान्त और सात्विक चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। उनके मुखमण्डल पर एक अलौकिक आभा, अपूर्व ज्योति चमक रही थी।

युवाचार्य ने दूसरी बार एक बजे करीब चौविहार सथारा करा दिया। उसी दिन पाच बजे जवाहर रूपी भास्कर आत्मा ने दुर्बल शरीर बधन त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर दिया।

पूज्यश्री लगभग एक वर्ष पहले ही अपने समग्र साधु जीवन की आलेचना कर चुके थे। सिर्फ बीमारी की अवस्था में औषध आदि विषयक जो दोष लगे थे, उन्ही की आलेचना करना शेष था। आषाढ शुक्ला सप्तमी की रात्रि को लगभग ग्यारह बजे पूज्यश्री की नाडी मे कुछ गडबड देखकर युवाचार्य ने आप से वहा उपस्थित सब सन्तो के सामने आलोचना करने का निवेदन किया। पूज्यश्री ने दोषो की आलोचना की। तत्पश्चात् युवाचार्यश्री ने स्वय ही प्रायश्चित्त लेने के लिए कहा! तब पूज्यश्री ने फरमाया- क्या नवीन दीक्षा ले लू ? युवाचार्यश्री ने कहा- नवीन दीक्षा के योग्य कोई दोष तो आपको लगा नही

है। सिर्फ उत्तर गुणो मे साधारण दोष लगे है। उसके लिए यथोचित प्रायश्चित्त ले लीजिए। तब पूज्यश्री ने फरमाया- तुम्ही प्रायश्चित्त दे दो। अन्त मे छह महीने का छेद लेकर अपनी आत्मशुद्धि की। उसी समय प्रात.काल तक के लिए सागारी अनशन भी धारण कर लिया।

अन्तिम दर्शन

प्राण निकलते समय पूज्यश्री के मुख-मण्डल पर दिव्य शान्ति विराज रही थी। वेदना का विषाद कही लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं था। ऐसा जान पडता था, जैसे जीवन-सग्राम में सफलता पाने के बाद वीर योद्धा सन्तोषपूर्वक विदाई ले रहा हो।

पूज्यश्री ने अन्त तक शाति का सेवन किया। घोर कष्ट के नाजुक प्रसग पर भी उनकी आत्मा में पूर्ण समाधि रही। उनका समग्र जीवन आदर्श रहा और उनकी मृत्यु भी आदर्श रही। जीवन-व्यापिनी सयम-साधना की परीक्षा मे वे पूर्ण रूप से सफल हुए। उन्होने पडितमरण प्राप्त किया। उनका जीवन मनुष्य मात्र के लिए एक महान् कल्याणमय उपदेश था और उनकी मृत्यु एक आदर्श सन्देश दे गई।

जिन भाग्यशालियो ने पूज्यश्री की अन्तिम समय की छबि देखी, उनके नेत्रो मे वह सदा के लिए समा गई। कितनी सोमता! कितनी भव्यता। कैसी शान्ति! कैसी समाधि! निहारने वाले निहाल हो गए!

शोक-सागर लहराने लगा

पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह सारे भारतवर्ष में फैल गया। शोक के बादलो से आसू बरसने लगे। धरती और आकाश सभी रोने लगे। प्रकृति अपना हृदय न सभाल सकी। उसने भी आसू गिराकर उस दिव्य आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाजलि प्रकट की!

बीकानेर, गगाशहर, भीनासर, उदयरामसर आदि आसपास के स्थानों के तथा बाहर से आए हुए सहस्रो श्रावक हृदय को किसी प्रकार थामकर आते और पूज्यश्री के निष्प्राण शरीर का दर्शन करके, अश्रुधारा की श्रद्धाजलि भेट करते हुए चले जाते थे। भीनासर और बीकानेर के श्रीसघ को ऐसा लगा मानों उसने समूचे सघ की अनमोल धरोहर खो दी हो।

बालक-वृद्ध, नर-नारी, अमीर-गरीब, साक्षर-निरक्षर सभी के चेहरे पर अपूर्व गहरा विषाद दिखाई देता था। अकारण जगबन्धु का वियोग हृदय में ऐसा चुभ रहा था, मानों किसी अत्यन्त स्नेहपात्र आत्मीय जन का वियोग हो गया हो! पूज्यश्री के वियोग से जैनो ने अपना जवाहर खोया, सन्तों ने सिरताज खोया, धर्म ने आधार खोया, पण्डितो ने पथ-प्रदर्शक खोया, पथभ्रष्ट पथिको ने प्रकाशस्तंभ खोया, ज्ञान के पिपासुओ ने अमृत का स्रोत खोया।

देवताओ ने एक महात्मा को अपने बीच पाकर कौन जाने, किस श्रद्धा के साथ उसका स्वागत किया है। काश, हमारी दृष्टि वहां तक पहुच पाती!

श्मशान-यात्रा

भीनासर के सेठ चम्पालालजी बाठिया की पूज्यश्री के प्रति अनुपम भक्ति थी। पूज्यश्री जब तक भीनासर मे विराजमान रहे, आपने समस्त घरू काम-काज से छुटकारा लिया और अनन्य भाव से उन्ही की सेवा मे तल्लीन रहे। न दिन गिना, न रात। तन-मन-धन की तनिक भी परवाह नही की। पूज्यश्री

की चिकित्सा मे उन्होंने कोई बात उठा न रखी। फिर भी जब पूज्यश्री की हालत निरन्तर गिरती ही चली गई तो उन्होंने एक वर्ष पहले ही चांदी का एक सुन्दर विमान बनवाकर तैयार करा लिया।

पूज्यश्री की श्मशान-यात्रा के लिए आषाढ शुक्ला ९ का प्रातःकाल निश्चित किया गया था। सूर्योदय के साथ-साथ हजारो की भीड भीनासर मे एकत्र होने लगी। सर्वप्रथम युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी महाराज को चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष आचार्य पद की चादर ओढाने की क्रिया विधि-पूर्वक की गई।

निश्चित समय पर पूज्यश्री का शव स्वर्ण मडित रजत-विमान में विराजमान किया गया। पूज्यश्री के जयनाद के साथ श्मशान का जुलूस रवाना हुआ। आगे-आगे पूज्यश्री के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए राज्य की ओर से भेजे हुए नगाड़ा, निशान और बैड थे। उनके पीछे पूज्यश्री के यशोगीत गाती हुई भजन मंडलिया चल रही थी। उसके बाद पूज्यश्री का विमान था। विमान के पीछे महिलाएँ गीत गाती हुई चल रही थी और फिर पुरुषो का विशाल समूह था। सबसे पीछे उछाल करने के लिए ऊँटो पर सवार चल रहे थे। श्रावको की पूज्यश्री के प्रति इतनी अधिक भक्ति थी कि करीब बीस हजार रुपया उछाला गया। धरती रुपयों से बिछ गई। कई एक मेहतरो के हिस्से मे १००-१२५ रुपये आए।

थोडी-थोड़ी देर मे विशाल जन-समूह पूज्यश्री का जयघोष करता था। आकाश गूज उठता था।

भीनासर और गगाशहर में घूमता हुआ जूलूस १२ बजे श्मशान मे पहुचा। चन्दन, घी, कपूर, खोपरा आदि सुगधित पदार्थों से विमान-सहित पूज्यश्री का अग्नि सस्कार किया गया।

बीकानेर में आषाढ़ महीने मे घोर गर्मी रहती है और धूप इतनी तेज कि चार कदम चलना कठिन हो जाता है। मगर आज एक प्रकृतिविजयी महात्मा पुरुष की श्मशानयात्रा थी, अतएव प्रकृति ने अपना रूप पलट लिया। श्मशान यात्रा आरंभ होने से पहले, प्रात काल ६ बजे ही उसने करीब आधा इच जल की वर्षा की और पृथ्वी शीतल हो गई। श्मशानयात्रा जब तक जारी रही तब तक मेघो ने सूर्य के आड़े आकर धूप को रोके रखा। अलबत्ता जब पूज्यश्री के शव का चितारोहण किया गया तब मेघ हट गए और धूप चमकने लगी। सतो की महिमा अपार है। प्रकृति भी उनकी तेजस्विता का लोहा मानती है।

राज्य का सम्मान

पूज्यश्री के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए राज्य ने डका, निशान, लवाजमा आदि तो भेजा ही, साथ ही पूज्यश्री के शोक में आषाढ शुक्ला नवमी को राज्य भर मे छुट्टी भी घोषित की। सारे राज्य के स्कूल, कॉलेज तथा आफिस बंद रखे गये। इसी प्रकार बाजार, कसाईखाने, भट्ठियाँ भी बद रखने की आज्ञा जारी की गई।

शोक सभाएं

पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह सारे भारतवर्ष मे फैल गया। इससे सारे जैन समाज मे शोक का समुद्र उमड आया। पूज्यश्री के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए स्थान-स्थान पर सभाए हुई। बाजार बन्द रखे गए और दूसरे प्रकारों से भक्ति एव श्रद्धा प्रकट की गई।

स्वर्गवास के समाचारों के बाद फिर दूसरा तार आया.-

Conference extremely sorry to hear sad demise of Pujyashri and prays Almighty for eternal peace to his soul Irreparable loss to gain Community.

अर्थात् पूज्यश्री के दुःखद अवसान को सुनकर कान्फ्रेस को अत्यन्त दुःख हुआ। उनकी आत्मा की अनन्त शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना है। उस महान् जवाहर के वियोग से जैन समाज को ऐसी हानि हुई है जिसकी पूर्ति नही हो सकती।

बम्बई मे पूज्यश्री के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए १२ तारीख को शेयर बाजार, दाणाबन्दर, बीया बाजार आदि बन्द रहे। इसी प्रकार कान्फ्रेंस आफिस, रत्न-चिन्ता मणि स्कूल, तथा सूर्यकान्त प्रेस आदि भी बन्द रहे।

बम्बई में विशाल शोक सभा

बम्बई मे पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार मिलते ही वहाँ के श्रीसघ ने शोक सभा का समय निश्चित कर समाचार पत्रो तथा हैण्डबिलो द्वारा सारे नगर मे घोषणा कर दी। तदनुसार ता. १३-७-४३ को नप्पू हाल, माटुगा में शोक सभा की गई। सभा का आयोजन अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस, श्री स्थानकवासी जैन सकल सघ, बम्बई तथा रत्न-चिन्तामणि स्थानकवासी जैन मित्र मण्डल की तरफ से सम्मिलित रूप में किया गया था। शोक सभा मे आत्मार्थी मुनिश्री मोहन ऋषिजी महाराज, प. विनय ऋषिजी महाराज, विदुषी महासती श्री उज्ज्वल कुँवरजी महाराज आदि ठा. ९ से उपस्थित थे। बम्बई तथा उपनगरों के भाई-बहिन भी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। संघ के प्रमुख श्रीयुत वेलजी भाई नप्पू बी. ए. एल. एल. बी. ने प्रमुख का स्थान ग्रहण किया था।

सर्वप्रथम प. मुनिश्री विनयऋषिजी महाराज ने सद्गत पूज्यश्री के प्रति श्रद्धाजलि प्रकट करते हुए उनकी विद्वत्ता व राष्ट्रीयता का वर्णन किया। अन्त मे आपने कहा- "उनके व्यक्तित्व की मेरे हृदय पर जो गहरी छाप पडी है, वह यह है कि अपने समाज मे धुरन्धर आचार्य है और होंगे, लेकिन ऐसे आचार्य विरले ही होगे। पूर्वाचार्यो ने अपना समग्र-जीवन साहित्य-सेवा और प्रदर्शन के खण्डन-मण्डन मे लगाया है, जबकि पूज्यश्री का सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा, जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार और प्राणिमात्र की रक्षा के उपदेश के पीछे खर्च हुआ है। उनका उपदेश हृदय की गहराई से निकलता था"।

इसके बाद आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी महाराज ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धाजलि प्रकट करते हुए कहा- "पूज्यश्री द्रव्यमरण से मृत्यु पाने पर भी भाव जीवन से जीवित ही है। थोड़े घटो पहले वे अपने जितने दूर थे, अब उतने ही निकट है। यह शोक सभा नही किन्तु शान्ति सभा है। पूज्यश्री २०वी सदी के अजोड़ आचार्य थे। भारत के लिए गांधीजी जितने उपकारक है उतने ही पूज्यश्री जैन समाज के लिए उपयोगी थे। खादी, गो-पालन, गृह-उद्योग और अल्पारम्भ महारम्भ के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश डालकर उन्होंने समाज को दिव्यचक्षु का जो दान दिया है उसके लिए समाज उनका खास ऋणी रहेगा। जब दया और धर्म के नाम पर महा आरम्भ-जन्य उत्सव, सवर के स्थान पर आस्रव, वैराग्य के स्थान पर विलास, त्याग के स्थान पर भोग का समाज में बोलबाला था तब पूज्यश्री ने अल्पारम्भ और महारम्भ की व्याख्या समाज को समझाकर उसे पवित्रता के पुनीत पथ पर प्रयाण करने का मार्ग प्रदर्शित किया। पूज्यश्री के साहित्य द्वारा समाज को नवचैतन्य मिला है। भविष्य की प्रजा को भी इस साहित्यरूपी नसीहत से प्रेरणा मिलती रहेगी"।

तत्पश्चात् महासती श्रीउज्ज्वलकुँवरजी महाराज ने श्रद्धांजलि अर्पित की। आपने मार्मिक शब्दों में कहा-"पूज्यश्री के स्वर्गवास से जैन-समाज का सूर्य अस्त हो गया। इससे आन्तर-सृष्टि मे अन्धकार छा गया है। जहाँ सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नही पहुँच सकता ऐसे अज्ञान तिमिराच्छादित हृदय पटलो को पूज्यश्री ने प्रकाशित किया था। दीर्घजीवन में विशेषता नहीं है। महत्त्व तो आदर्श जीवन का है। पूज्यश्री का जीवन आदर्श था। जिस प्रकार यात्रा के जल, स्थल और आकाश तीन मार्ग है और उनमे आकाश मार्ग सर्वोत्कृष्ट है, इसी प्रकार जीवन यात्रा के भी तीन मार्ग है- आधिभौतिक, आधिदैविक एव आध्यात्मिक। अध्यात्मिक मार्ग सर्वोत्तम है। पूज्यश्री ने अपनी जीवन यात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की। इसीलिए वे पूजे जा रहे है और पूजे जाएँगे! समाज का दुर्भाग्य तो यह है कि वह महापुरुषो के लिए फांफां मारता है। मगर जब महापुरुष मिल जाता है तो उसे पचा नही पाता। जैन समाज को महापुरुषों का पचाना सीखना होगा"।

पश्चात् कान्फ्रेस के मानद मत्री श्रीयुत चिमनलाल पोपटलाल शाह ने अन्त.करण से शोक प्रदर्शित करते हए नीचे लिखा शोक प्रस्ताव उपस्थित किया –

"श्री अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस, श्री श्वे. स्था. जैन सकल-सघ बम्बई और र. चिं. जैन मित्र मडल बम्बई की तरफ से बुलाई गई यह आम सभा पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब के दुखद एव आकस्मिक स्वर्गवास के प्रति अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। पूज्यश्री जैन सिद्धान्तो के प्रकाण्ड विद्वान्, अहिंसा और सत्य के प्रखर प्रचारक एव जीव-दया, ग्रामोद्योग, खादी आदि राष्ट्रोद्धारक प्रवृत्तियो के हिमायती थे। ऐसे सयमी, चारित्रवान् और विद्वान् धर्मनायक के स्वर्गवास से जैन समाज ने तो सचमुच 'जवाहर' खोया है। जैनेतर जनता को भी विश्वप्रेम, सत्य और सयम के निष्परिग्रही प्रचारक की अनिवार्य क्षति पहुँची है। ऐसा यह सभा मानती है। यह सभा पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज साहेब और उनके शिष्य-मडल तथा चतुर्विध स्थानकवासी जैन श्रीसघ के दुख मे अपनी हार्दिक सम्वेदना प्रकट करती है और स्वर्गस्थ पवित्रात्मा को चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो, ऐसी भी शासनदेव से अन्त करणपूर्वक प्रार्थना करती है"।

इसके बाद पूज्यश्री के जीवित स्मारक रूप घाटकोपर जीवदया खाते की स्थापना मे पूज्यश्री की प्रेरणा तथा उनके उपदेश का वर्णन करते हुए सहायता की अपील की गई। श्रीयुत गिरधरलाल भाई दफ्तरी के प्रयास से ४३००) की रकमे लिखी गई।

श्रीयुत खीमचन्द भाई वोरा ने प्रस्ताव का समर्थन किया। इसके बाद श्री हीराणी ने अपनी कविताए सुनाई। पूज्यश्री की आत्मशान्ति के लिए ४ लोगस्स का ध्यान किया। मागलिक प्रवचन के बाद सभा की कार्रवाई पूर्ण हुई।

इसी प्रकार घाटकोपर तथा दूसरे स्थानो मे भी शोकसभाएं हुई। नीचे लिखे स्थानो पर पूज्यश्री के लिए शोक सभा होने के समाचार मिले -

१. अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस, बम्बई।
२. श्री श्वे. स्थानकवासी जैन सङ्घ, बम्बई।
३. श्री रत्नचिन्तामणि स्था. जैन मित्र-मडल, बम्बई।

४. श्री श्वे. स्था जैन सङ्घ, घाटकोपर।
५. श्री सार्वजनिक जीवदया खाता, घाटकोपर।
६. प. रत्नचन्द्रजी जैन कन्या पाठशाला, घाटकोपर।
७. श्री स्थानकवासी जैन-समाज सङ्घ, राजकोट।
८. दी ग्रेन मर्चेण्ट एसोसिएशन, बम्बई।
९. दी क्लोथ मार्केट एसोसिएशन, इन्दौर।
१०. सराफा बाजार, इन्दौर।
११. श्री स्थानकवासी जैन सङ्घ, इन्दौर।
१२. श्री स्थानकवासी जैन सङ्घ, ब्यावर।
१३. श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम।
१४. श्री धर्मदास जैन मित्र-मडल, खाचरोद।
१५. श्री स्था. जैन बालचर सङ्घ, सादडी।
१६. श्री स्था. जैन सङ्घ, जमुनिया।
१७. श्री श्वे. साधुमार्गी शि. सस्था, उदयपुर।
१८. श्री वर्द्धमान सेवाश्रम, उदयपुर।
१९. श्री जैन सभा, अमृतसर।
२०. श्री स्थानकवासी सङ्घ, बड़ी सादड़ी।
२१. श्री श्वे. स्थानकवासी सङ्घ, सादडी।
२२. श्री जवाहर मित्र-मडल, मन्दसोर।
२३. श्री श्वे. स्था. जैन वीर-मडल, केकडी।
२४. श्री जवाहर शोक सभा, बादेवड।
२५. श्री जवाहर शोक सभा, सीगापेसमल।
२६. श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर।
२७. श्री तिलोकरत्न स्था. जैन परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी।
२८. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, पाथर्डी।
२९. श्री अमोल जैन सिद्धान्त शाला, पाथर्डी।
३०. श्री जाटर सभा, वीले पारले।
३१. श्री स्थानकवासी जैन सङ्घ, मालेगाव।
३२. श्री जैन बोर्डिङ्ग स्कूल, कुचेरा।
३३. श्री का शि ओसवाल बोर्डिङ्ग, जलगाव।
३४. श्री स्थानकवासी जैन सङ्घ, लुधियाना।
३५. श्री स्था. जैन जवाहर हि. श्रा. मण्डल, उदयपुर।
३६. श्री जैन श्वे. स्था. सघ, कोटा।

३७. श्री शान्ति जैन पाठशाला, पाली।
३८. श्री जैनोदय प्रिटिग प्रेस, रतलाम।
३९. श्री स्था. जैन श्रीसङ्घ, नीमच।
४०. श्री स्था. जैन श्रीसङ्घ, अहमदनगर।
४१. श्री स्था. जैन श्रीसङ्घ, चित्तौडगढ।
४२. श्री जैन सभा, जम्मू।
४३. श्री महावीर जैन स्कूल, जम्मू।
४४. श्री विजय जैन स्कूल, कानोड।
४५. श्री सारा वाजार, कानोड।
४६. श्री सारा वाजार मालेगाव।
४७. श्री श्री जैनसङ्घ, जोधपुर।

इनके अतिरिक्त और बहुत से नगरो और ग्रामो मे शोक सभाए की गई।

श्री जवाहर विद्यापीठ की स्थापना

आषाढ़ शुक्ला १० को प्रात.काल ९ बजे बीकानेर, गगाशहर और भीनासर के चतुर्विध सघ की सम्मिलित शोक-सभा हुई। पूज्यश्री के प्रति अपनी श्रद्धाजलि प्रकट करने के बाद श्रीमान् लहरचदजी सेठिया ने अपील की। आपने कहा- 'स्वर्गस्थ पूज्यश्री के प्रति वास्तविक और स्थायी श्रद्धाभाव व्यक्त करने के लिए आवश्यक है कि एक अच्छा स्मारक फंड कायम किया जाय और उसके द्वारा समाज-हित का कोई अच्छा कार्य किया जाय।' कई वक्ताओं ने इसका समर्थन किया। पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने भी अपनी मर्यादा के अनुसार, सघ के हित मे यथाशक्ति सहयोग देने की सूचना दी। पश्चात् अपील करने वाले लहरचद जी सेठिया ने सेठिया-बधुओ की ओर से ११०००) रुपये भेंट करने का वचन दिया। उसी समय बांठिया-बधुओ ने भी ११०००) रुपये देने की घोषणा की। उसी समय चदा एक लाख के लगभग पहुँच गया।

स्व. पूज्यश्री शिक्षा के प्रबल हिमायती थे और धार्मिक शिक्षा पर बहुत जोर दिया करते थे। अतएव आपकी स्मृति में शिक्षा-संस्था की स्थापना करना उचित समझा गया। तदनुसार भीनासर मे 'श्रीजवाहर विद्यापीठ' के नाम से एक सस्था स्थापित की गई है। यह सस्था अभी प्रारभिक रूप मे है-शैशवकाल में है। सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया के अतिथिगृह मे अभी चल रही है। आशा है भीनासर-बीकानेर-गगाशहर का सम्पन्न श्रीसङ्घ उसे विशाल और विराट रूप प्रदान करेगा।

❑

पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहिब

के प्रति

मुनियों, राजा-महाराजाओं

तथा

प्रतिष्ठित व्यक्तियों

की

श्रद्धाञ्जलियां

परिशिष्ट नं. 1

मुनियो की श्रद्धाञ्जलिया

राजन्य वर्ग की श्रद्धाञ्जलिया

प्रतिष्ठित व्यक्तियो की श्रद्धाञ्जलिया

पद्य मे श्रद्धाञ्जलिया

परिशिष्ट नं. 2

जवाहर विचार–बिन्दु

परिशिष्ट नं. 3

जयतारण शास्त्रार्थ

पूज्यश्री के प्रति मुनियों की श्रद्धाञ्जलियां

१— प्रभावक पूज्यश्री

(ऋषि सम्प्रदाय के आचार्य पं. रत्न पूज्यश्री आनन्द ऋषि जी महाराज)

शास्त्रविशारद, जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साधुमार्गी समाज में जवाहर के समान चमक रहे है। आपकी व्याख्यान शक्ति बड़ी ओजस्विनी है। यद्यपि पूज्यश्री के साथ रहने का विशेष सौभाग्य नही मिला, फिर भी अजमेर मुनि सम्मेलन के अवसर पर आपके दर्शन हुए थे और वाणी सुनने का शुभ प्रसंग भी प्राप्त हुआ। वे दिन मुझे याद आते है।

श्रमण सस्कृति की तरफ पूज्यश्री का लक्ष्य होने से लोगो के ऊपर अच्छी छाप पड़ती है, क्योंकि विद्वान् और क्रियावान् दोनो बातें क्वचित् ही मिलती है। यही कारण है कि पूज्यश्री ने काठियावाड की तरफ विहार करके कानजी मुनि (सोनगढ वाले) के पजे में फँसने वाले अज्ञान श्रावक–श्राविकाओ को शुद्ध श्रद्धा मे कायम किया। इसी तरह जिस स्थली–प्रदेश मे श्री ऋषि सम्प्रदाय के ज्योति· शास्त्र विशारद, पडित मुनि श्री दौलत ऋषिजी महाराज ने जाने के लिए प्रस्थान किया था, और जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज ने भी धर्म प्रचार करने की भावना से विहार किया था, परन्तु वे इष्टसिद्धि नही कर सके, उसी स्थली–प्रदेश मे पूज्यश्री ने तप सयम मे सुदृढ रहते हुए अपनी विद्वान् शिष्य मडली के साथ हिम्मत से जाकर चूरू, सरदार शहर आदि स्थानो में जहाँ तेरहपंथी समाज का विशेष प्राबल्य है, जो एक प्रकार के दुर्ग है, उन में प्रविष्ट होकर शुद्ध स्थानकवासी धर्म का प्रचार किया। उस प्रदेश के जैनेत्तर लोग जैन धर्म के रहस्य को नही जानते थे, उनके दिल पर भी प्रकाश डाला। यह कुछ साधारण बात नही है।

पूज्यश्रीजी ने साहित्यिक सेवा भी उत्कृष्ट रीति से की है। जो कि व्याख्यान-सग्रह मे से श्रावक का अहिसाव्रत, सत्यव्रत आदि बारह व्रतो पर स्पष्टीकरण हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम ने प्रकाशित किया है। उससे लोगो के अन्त करण मे धर्म भावना सुदृढ़ होती है। राजकोट व्याख्यान सग्रह, जामनगर व्याख्यान सग्रह, श्री सूयगडाग सूत्र का सविवेचन भाषान्तर आदि प्रयास विशेष प्रशसनीय हैं।

तेरहपथी समाज की तरफ से अनुकम्पा की ढाले नामक पुस्तक छपी है। भ्रमविध्वसन नामक ग्रथ जयाचार्य जी (जीतमलजी) विरचित है। उस ग्रन्थ मे दया, दान, विनय रूप गुणरत्नों का खण्डन करने के लिए कुयुक्तिया लगाकर जनता की ऑखो मे धूल फैकने का काम किया है। उसमे अज्ञान जनता का फँस जाना स्वाभाविक है। गुरुगम से रहित पढ़े लिखे व्यक्ति भी उस के चक्कर में

है। ऐसे अज्ञान और सज्ञान लोगो की दया, दान, विनय की ओर प्रवृत्ति कराने के लिए सचोट शास्त्रीय प्रमाण देकर उनकी कुयुक्तियाँ बताते हुए, शुद्ध धर्म की श्रद्धा बढाने के लिए 'सद्धर्म मण्डन' नामक बृहत् पुस्तक की रचना की है। उसी प्रकार अनुकपा विचार नामक पुस्तक भी दया भगवती की स्थापना करने के लिए उसी भाषा मे तैयार की। पूज्यश्री का यह कार्य भी आदर्श और अद्वितीय है।

इस कार्य के करने से जैन धर्म और स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का मुख उज्ज्वल हुआ है ऐसा कहने मे कोई अतिशयोक्ति नही है।

पूज्यश्री जी के समान धुरंधर, विद्वान्, प्रतिभासपन्न वक्तृत्व शक्ति धारक, सुपरिश्रमी और सुलेखक जवाहर अपने समाज मे अनेक उत्पन्न होकर जैन धर्म की उन्नति करे, ऐसी शुभाकाक्षा रखता हूँ।

२—पूज्य—परिचय

(पूज्यश्री रत्नचन्द्र जी महाराज की संप्रदाय के आचार्य पंडितप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज)

आज हमारे सामने तीर्थकर या वैसे अन्य कोई अतिशय ज्ञानी नही है जो सुनिश्चित रूप से धर्म का स्वरूप समझावे और मतभेद या शकाओ का निरसन कर सके। मात्र एक धर्माचार्य ही आज ससार के पथ प्रदर्शक रहे है और यह आचार्य पद ही ऐसा है जो तीर्थकर के अभाव में भी चतुर्विध सघ का धर्ममार्ग के उद्बोधन व सचालन आदि के द्वारा नेतृत्व कर सकता है। इसीलिए धार्मिक मर्यादाओं में योग्य परिवर्तन का अधिकार भी शास्त्रकार ने इन के हाथ मे दिया है। इन आचार्यो के बहुमत से स्वीकृत नियमावली जीत व्यवहार समझी गई है। इस से निश्चित है कि शास्त्र का सत्यरूप ससार को दिखाने वाले धर्माचार्य ही है। मगर इस उल्लेख से पाठक यह नही समझ बैठें कि धर्माचार्य नामधारी सभी मे यह शक्ति होती है। क्योंकि योग्य धर्माचार्य ससार के तारक हैं वैसे अयोग्य धर्माचार्य ससार के मारक भी होते है। अतएव योग्य धर्माचार्य का संयोग प्राप्त करने के लिए पहले उनके योग्यता सूचक गुणो का परिचय करना आवश्यक है। शास्त्र में इन्द्रिय सयम आदि धर्माचार्य के ३६ गुण बताए हैं, जो प्राय प्रसिद्ध है। किन्तु दशा श्रुतस्कन्ध की चतुर्थ दशा मे उनका सक्षेप ८ दशाओ में मिलता है। जैसे- १ आचार विशुद्धि, २ शास्त्रो का विशिष्ट और तलस्पर्शी वाचन, ३ स्थिर सहनन और पूर्णेन्द्रियता ४ वचन की मधुरता तथा आदेयता आदि, ५ अस्खलित वाचना व मूल अर्थ की निर्वाहकता, ६ ग्रहण एव धारणा मति की विशिष्टता, ७ शास्त्रार्थ में द्रव्य, क्षेत्र व शक्ति की अनुकूलता से प्रयोग करना, ८ समय के अनुसार साधुओ के सयम निर्वाहार्थ साधन सग्रह की कुशलता। इन आठ विशेषताओ के साथ निर्दोष चारित्र धर्म का पालन करना एव आश्रित सघ को ज्ञान क्रिया में प्रोत्साहित करते रहना यह आचार्य की खास विशेषता है।

मुझे आज जिन पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज का परिचय देने का प्रसग मिला है, उन मे पाठकों को इन विशेषताओ का अधिकाश दर्शन हो सकता है। आप धीर-वीर और प्रभावक तथा प्रचीनता का न्याय युक्ति से शोधन करने वाले हैं। आपकी उपदेश शैली स्था. समाज में आदर्श समझी जाती है। आपके प्रवचन क्रान्तिकारी एव सुधारणा के विचार को लिए रहते है। इन उपदेशो ने जिस सम्प्रदाय के आप आचार्य है उस में ही नही किन्तु स्था. समाज में क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी है।

आज से ३०-३५ वर्ष पूर्व जो साधु-साध्वियो का पण्डित से शिक्षण लेना अधिकांश सम्प्रदायों मे (खासकर आपकी सम्प्रदाय मे) निषिद्ध समझा जाता था, विरोध का सामना करके भी आपने उस प्रथा को आवश्यकतानुसार स्वीकार किया और आज जब प्रत्येक साधु-साध्वी पण्डित प्रथा को अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे और उनके लिए गृहस्थो से चन्दा इकट्ठा करके फ़ड बनाने लगे तब उसके दुरुपयोग की आशका होते ही अपनी सम्प्रदाय मे उसका प्रतिबन्ध करके आपने अपवाद रूप से ही उसको अपनाने की छूट रखी है। यह पूज्यश्री की समयज्ञता है। इसके सिवाय चारित्र रक्षण की बाह्य मर्यादाओं में भी निर्भीकता से आपने कई परिवर्तन किए हैं। स्था. समाज की विशाल शक्ति संगठित रूप में आकर जगत को अपना अनुपम कार्य दिखा सके, इसके लिए मुनि-सम्मेलन अजमेर के खास मुनियो के समक्ष "वर्धमान सघ" की एक योजना भी रखी। किन्तु उस समय अनुकूल भूमिका के अभाव से वह योजना कार्य रूप मे नही आ सकी। अस्तु, जैसा समाज का भाग्य। उपरोक्त घटनाओं से आपकी प्रभावशालिता व उदार वृत्ति ज्ञात होती है। बुद्धिपूर्वक स्वीकृत तत्त्व के आग्रह में जैसे आप दृढ थे वैसे प्रेमानुराग मे आग्रह त्यागी अतिशय मृदु भी थे। सम्मेलन के सामान्य परिचय के सिवाय मेरा पूज्यश्री से दो ही बार समागम हुआ है। प्रथम सम्मेलन के पूर्व लीरी गाव मे और दूसरा जेठाने में। उस समय के वे प्रेमल प्रसग आज भी स्मृति चिह्न बनाए हुए है। विहार के समय तो आपने प्रीति की अतिशयता कर दिखाई। प्रीत्यर्थ या मेरे आचार्यपद के सम्मानार्थ मुझे मागलिक सुनाने को फरमाया जो प्रेमावेश के बिना छोटे मुँह से बडी बात सुनना होता। मैने भी आपके अनुरोध से मौन खोलकर काठियावाड़ से पुनरावर्तन की कुशल कामना करते हुए मागलिक सुनाया। उस समय आपकी भावुकता व श्रद्धा का दृश्य दर्शनीय था। साम्प्रदायिक झंझटो को भी आत्मरमण में बाधक समझ कर पूज्यश्री ने कई वर्षो से अपना अधिकार युवाचार्य जी को दे दिया है। अपनी मौजूदगी में ही युवाचार्य जी सघ-सचालन का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर ले और अपने को आत्मरमण में विशेष लाभ मिले इस दृष्टि से आपका यह कार्य भी आदर्श व दूरदर्शिता पूर्ण है। इस प्रकार आपकी विशेषताओ का सक्षिप्त परिचय है। विशेष परिचय पाठको को जीवन चरित्र से मिलेगा ही। शास्त्र मे कहा है कि:-

जह दीवो दीवसय, पइप्पए जसो दीवो।
दीवसमा आयरिया, दिव्वति पर च दीवति॥

अर्थात-आचार्य दीपक के समान है। जैसे दीप सैकडों दीपकों को जलाता है और खुद भी प्रकाशित रहता है, ऐसे दीप के समान आचार्य स्वय ज्ञान आदि गुणों से दीपते और उपदेश दान आदि से दूसरों को भी दीपाते है। अन्त में यही सदिच्छा है कि आप दीर्घायु लाभ करे और "वर्धमान गच्छ" जैसी योजना से समाज का दृढ़ हित साधने में यशस्वी बने।

३—एक महान् ज्योतिर्धर

(जैनाचार्य पूज्यश्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज)

किसी का नाम अच्छा होता है काम नही और किसी का काम अच्छा होता है, नाम नही। अच्छा नाम और अच्छा काम किसी विरली आत्मा को ही मिलता है। हमारे सौभाग्य से पूज्य श्रीजवाहरलाल जी महाराज को दोनो प्राप्त हुए हैं। "जवाहर" कितना सुन्दर, सरस एव महत्त्वसूचक नाम है। और काम! वह तो आज जैन ससार के प्रत्येक स्त्री, पुरुष के समक्ष सूर्य के समान प्रकाशमान है।

पूज्यश्री के जीवन का हर पहलू उज्ज्वल है। उनका ज्ञान ऊँचा है, उनका दर्शन ऊँचा है, उनका चरित्र ऊँचा है, अतएव उनका रत्नत्रय ऊँचा है। उनके जीवन का प्रत्येक प्रगति-विन्दु ऊँचा है।

पूज्यश्री का साहित्य "जीवन साहित्य" है। उसने सुप्त-समाज मे जागरण पैदा किया है। साधुधर्म और गृहस्थ-धर्म के पृथक्करण मे वास्तविक मार्ग का प्रदर्शन किया है। वर्तमान वीसवी शताब्दी मे, जैन आचार विचारों का महत्त्व यदि किसी ने नवीन दृष्टिकोण से ससार के सामने रखा है और साथ ही पुरातन संस्कृति का भी संरक्षण किया है तो वह पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज है। उन्हे जितना भूतकाल का पता है उतना ही वर्तमान काल का पता है और इन सव से बढ़कर पता है भविष्य काल का। अतएव आप समाज की प्रत्येक परिस्थिति का एक चतुर वैद्य की भाँति निदान करते हुए हमारे सामने उस परिस्थिति के उपचार और परिचालन का आदर्श उपस्थित करते है। वर्तमान जैन समाज के पूज्यश्री बहुत बडे आध्यात्मिक वैद्य है, जिनकी चिकित्सा-प्रणाली अमोघ है। जिनके अहिंसा और सत्य के प्रयोगो से हजारो दुष्कर्म दूषित आत्माएं आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त कर चुकी है।

पूज्यश्री का भक्तियोग बहुत ऊँची कोटि का है। व्याख्यान देने से पूर्व प्रार्थना के रूप मे जब गद्गद् हृदय से चौबीसी गान करते है तो साक्षात् मूर्तिमान भक्ति-रस सामने उपस्थित हो जाता है। कट्टर से कट्टर नास्तिक हृदय भी एक बार भक्ति से झूम उठता है। और जब प्रार्थना पर विवेचनात्मक प्रवचन होता है तब शान्त रस का समुद्र ठाठे मारने लगता है। जीवन की उलझी हुई गुत्थियो का गहन जाल एक-एक करके सुलझने लगता है। श्रोताओं के अन्तर्हृदय से अविश्वास एव मिथ्याविश्वास का चिरकाल लग्न पाप मल बाहर बह निकलता है।

पूज्यश्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय हमे 'सद्धर्ममडन' से मिलता है। तेरा पथ समाज की युक्तियो का जाल बहुत विकट माना जाता है। अच्छे-अच्छे दिग्गज विद्वान् भी कभी-कभी उनके कुतर्को मे उलझ जाते है, परन्तु पूज्यश्री की प्रखर प्रतिभा के समक्ष 'भ्रमविध्वसन' की एक भी युक्ति सुरक्षित नही रह सकी। 'भ्रमविध्वसन' पर सद्धर्ममडन वह घातक चोट है जिसकी चिकित्सा के लिए तेरापथ समाज के पास कोई औषधि नही है।

जिनभद्रगणि का विशेषावश्यक भाष्य बहुत दुरूह माना जाता है। किन्तु पूज्यश्री का उस पर कितना अधिकार है, यह चरखी दादरी (जिद स्टेट) मे देखा जब आप शिष्यो को पढाते हुए उस पर मौलिक विवेचन करते थे तो जटिल से जटिल फक्किकाओ को सहज ही मे सुलझा डालते थे। आपका आगम ज्ञान भी बहुत उच्च कोटि का है। इसका पता पाठको को आपके तत्त्वावधान मे सम्पादित होने वाले सूत्रकृताङ्ग के अनुपम सस्करण से मिलता है।

पूज्यश्री की कौनसी विशेषताएँ वर्णन की जाये और कौनसी नही- यह चुनाव ही अटपटा जान पड़ता है। आपके महान् जीवन की प्रत्येक विशेषता अक्षरो का रूप लेना चाहती है, परन्तु महान् आत्माओं के सम्बन्ध मे ऐसा कभी नहीं हो सका है। पूज्यश्री वर्तमान जैन संसार के महापुरुष है, अत उनका महान् जीवन कलम के नीचे न अब आ सकता है और न कभी आ सकेगा। यह तो आपके महान् व्यक्तित्व के प्रति साधारण-सा हार्दिक भावना का परिचय मात्र है। आज आपकी ६२ वी जन्मजयन्ती के अवसर पर जैन जाति के प्रत्येक हृदय मे मगल सकल्प है कि 'पूज्यश्री युग-युग चिरजीवी रहे'।

४—स्थानकवासी सम्प्रदायनो सितारो

(मुनिश्री प्राणलाल जी महाराज)

विश्व मा जेओ आत्माना दरेक गुणोने सम्पूर्ण खीलावी वीतराग ना स्वरूप बनी गया छे तेओ सम्पूर्ण गुणी याने अविकारी गुणवन्त आत्मा परमात्मा स्वरूप गणाया छे।ए सिवायना दरेक आत्मा अपूर्ण गणाय छे। चालु वर्तमान काल मा आ भारतवर्ष नो दरेक मानवी पण अपूर्ण गणाय छे छता जे मानवो सिद्धपद् प्राप्त करवाना लक्ष्य बिन्दुए साधक दशामा आत्मगुणोनो विकास करी रह्या छे तेवा अनेक साधको वर्तमान मा विद्यमान छे। ते साधक वर्गमाना पूज्यश्री पण आपणी दृष्टिए एक उत्तम कोटिना साधक गणाय छे। आ सुसाधक पूज्यश्रीए पोतानी आत्म-साधना उपरान्त अनेक आत्माने साधक दशा तरफ लाववानो सारो प्रयत्न कर्यो छे।

पूज्यश्री महान् पुण्यशाली अने प्रभावशाली छे एम ज्यारे तेओना समागम मा जेतपुर स्थाने महापुरुष शास्त्रज्ञ पुरुषोत्तम जी स्वामीनी साथ मा हुँ अने अन्य अमारा सन्तो आव्या हता त्यारे जोवायुं हतु। तदुपरान्त पूज्यश्री स्वशास्त्र अने परशास्त्र मा पण घणाज कुशल छे एम चौद दिनना टुक समागम मा समज्यु छे।

पूज्यश्री नी व्याख्यान शैली पण उत्तम अने सुरसवाई थई जैन अने जैनेतर समाजने आकर्ष्या, ते सारी लाभदायक नीबडी छे।

विसेष शु लखु। पूज्यश्री स्थानकवासी समाजना एक सारा जोतरूप गणाया छे।

५—बोटाद सम्प्रदाय के आचार्य तरणतारण आत्मार्थी पूज्य मुनिश्री माणेकचन्दजी महाराज

प्रसिद्ध वक्ता, जैन शासन दिवाकर परम पूज्य महाराज श्री जवाहरलालजी महाराज श्रीए स. १९९३ मा काठियावाड जेवी पवित्र भूमि मा तेओए पधारी राजकोट मुकामे प्रथम चोमासु कर्यु। अने एवा विशाल प्रदेश मा स्थले-स्थले विचरी जैन तेमज जैनेतर उपरान्त राजा महाराजाओं ने पोतानी अमूल्य अने सदुपदेशनी मीठी लहाण करी 'दयाधर्म' नी जगत जनो ना हृदय पट पर घणी छाप पाडी जे उपकार कर्यो छे ते अवर्णनीय छे।

स १९९४ मा अमे शेषकाल राजकोट हता ते बखते पू. म. श्री जवाहरलाल जी म. श्री नो अमोने समागम थयो। अने तेमनी अमूल्य वाणीनो लाभ पण अमोने मल्यो अने ते बखते 'गुरुकुल' जेवी जे उत्तम संस्था अस्तित्व मा आवी ते पण पू.म श्रीजवाहरलालजी महाराज श्री ना सदुपदेश ने ज आभारी छे। अमोने तेओनी साथे खूबज प्रेम बधायेल छे।

६—वादिमानमर्दन, शास्त्रार्थ विजयी, अजमेर साधु सम्मेलन के शान्तिरक्षक महास्थविर गणि श्री उदयचंदजी महाराज

नि सन्देह पूज्यश्री जवाहरलालजी इस समय के आचार्यो मे एक श्रेष्ठ और माननीय आचार्य है जिनके उपदेश से श्री जैन सघ मे बहुत-सी उन्नति हुई है और इस समय जैन साहित्य मे जो सुन्दर-सुन्दर पुस्तके उपलब्ध हो रही है उनका सारा यश इन्ही पूज्यश्री को है।

७—आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज का युगप्रधानत्व

(लेखक—साहित्य रत्न, जैन धर्म दिवाकर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज तथा कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचंद जी महाराज)

आज भारत के एक कोने में, मरुभूमि के सुन्दर नगर भीनासर मे जैन संस्कृति का एक महान् उज्ज्वल, समुज्ज्वल, अत्युज्ज्वल प्रकाशमान 'प्रतीक' विराजमान है। आजकल कितनी लेखनियां उन के उपकारो के गुरुभार से लदी हुई कागज के पथ पर दौड़ रही होगी, और उस सत्पुरुष के चरणो मे अपनी-अपनी भावभरी श्रद्धाजलियां अर्पण कर रही होगी! लेखक होने के नाते अपनी लेखनी को भी कुछ लिखने का अभ्यास है, अतः यह क्यो चुप बैठे। यह भी चल पड़ी है, मगल भावनामय मोतियो की लड़ियां अक्षरों के रूप मे अर्पण करने के लिए।

एक उपमा है। वर्षा की सुहावनी ऋतु हो। मेघाच्छन्न सुनील नभ से नन्ही-नन्ही जल-कणिकाएं गिर रही हो। फलस्वरूप भूतल पर नानाविध वृक्षावलियो से परिमण्डित उपवन की शोभा को चार चांद लग रहे हो। चारो ओर रंग-बिरंगे फूलो की भीनी-भीनी सुगन्ध हवा के घोडे पर चढ कर सुदूर देश की यात्रा को जा रही हो। भृङ्गावलियाँ मधुर झनकार के साथ विदाई दे रही हो। भला कौन वह सहृदय सज्जन होगा, जो उपवन की प्रस्तुत मनमोहक सुषमा को देखने के लिए लालायित न हो। यह साधारण-सा उपमान है और उपमेय? वह तो उपमान से अनन्त, अनन्त, अनन्तगुणा बढ़-चढ़ कर है। विद्या एव चारित्र से संपन्न, दीर्घदर्शी, अनुभवी, देशकालज्ञ, श्रमणसघ के एक मात्र आधार स्तम्भ, दूरातिदूर देशो में अनेकान्त की जयपताका फहराने वाले कर्तव्य के पथ पर आचार्य पद जैसे महान् गौरव-मय पद को पूर्णतया चरितार्थ करने वाले, उत्सर्ग एव अपवाद मार्ग की जटिलतम गुत्थियो को सहज ही सुलझाने वाले आचार्य देव की अद्वितीय महिमा एव सुषमा को जानकर कौन प्रसन्न न हो? और कौन होगा वह महाअभागा जो अपने इस भांति परमोपकारी सत्पुरुषो का गुण कीर्तन न करना चाहे।[1] "वाग्जन्य वैफल्यमसह्यशल्यं, गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्"।

महामहनीय आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज उन महापुरुषों में से है जिन्होंने अपने जीवन की अमर ज्योति जला कर जैन संस्कृति के महान् प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर दिया है। आप जिधर भी गए उधर ही ज्ञान दीपक का प्रकाश फैलाते गए, जनता के बुझे हुए हृदय दीपकों में ज्ञान प्रकाश का संचार करते हुए और शास्त्रोक्त "दीवसमा आयरिया" के सिद्धान्त को पूर्ण सत्य के रूप में चमकाते गए। साधारण चन्द्र, सूर्य, तारा आदि का महत्त्व अपने चमकने में ही है, किन्तु दीपक तथा आचार्य का महत्त्व अपने-सा प्रकाश स्वसबन्धित दूसरो में उतारने के लिए है। आचार्य-श्री ने अपने महान् व्यक्तित्व की छाया मे युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी आदि वे महान् सन्त तैयार किए है, जो भविष्य मे अधिकाधिक उद्भासित होते जाएगे। आचार्य के जीवन का महत्त्व अपने निर्माण करने तक ही सीमित नही है, प्रत्युत उसके जीवन की सफलता पार्श्वचरो के जीवननिर्माण तक है, इस दिशामें आचार्य-श्री जी की सफलता शतप्रतिशत अभिनन्दनीय है।

---

१. अधिक गुणों वाली वस्तु को देखकर मौन रहना वाणी और जन्म को व्यर्थ खोना है। यह बात हृदय मे असह्य काटे के समान चुभती है।

आपकी भाषण शैली बड़ी ही चमत्कृति पूर्ण है। जिस किसी भी विषय को उठाते है, आदि से अन्त तक उसे ऐसा चित्रित करते है कि जनता मत्रमुग्ध हो जाती है। चार-चार, पाच-पाच हजार जनता के मध्य आप का गभीर स्वर गरजता रहता है, और बिना किसी शोरोगुल के श्रोता दत्तचित्त-से एकटक ध्यान लगाए सुनते रहते है। बडी से बडी परिषद् पर आप कुछ ही क्षणों में नियन्त्रण कर लेते है। आप के श्रीमुख से वाणी का वह अखण्ड प्रवाह प्रवाहित होता है कि बिना किसी विराम के, बिना किसी परिवर्तन के, बिना किसी खेद के, बिना किसी अरुचि के, निरन्तर अधिकाधिक ओजस्वी, गम्भीर, रहस्यमय एव प्रभावोत्पादक होता जाता है। व्याख्यान मे कही पर भी भाव और भाषा का सामंजस्य टूटने नहीं पाता। प्राचीन कथानको के वर्णन का ढ़ग, आपका ऐसा अनुपम एव सुरुचि पूर्ण है कि हजार-हजार वर्षो के जीर्ण-शीर्ण कथानको में नव जीवन पैदा हो जाता है। आप की विचार-धारा आध्यात्मिक, तीक्ष्ण, सूक्ष्म एव गभीर होती है। सहसा किसी व्यक्ति का साहस नहीं पडता कि आपके विचारों की गुरुता को किसी प्रकार हलका कर सके, या उसे छिन्न-भिन्न कर सके। आपका कल्पनाशील मस्तिष्क विचारो की इतनी अच्छी ऊर्वरा भूमि है कि प्रत्येक व्याख्यान मे नए से नए विचार, नए से नया आदर्श, नए से नया सकल्प उपस्थित करती है।

आप की साहित्य-सेवा भी कुछ कम श्लाघनीय नही है। श्रावक के बारह व्रतो का आपने जिस सुन्दर और अद्यतन शैली से वर्णन किया है, उस ने जैन आचार प्रणाली के महत्त्व को आकाश की भूमिका पर चढा दिया है। अहिंसा और सत्य आदि का हृदयस्पर्शी मर्मभरा वर्णन प्रत्येक भावुक हृदय को गद्गद् कर देने वाला है। आप की वर्णन पद्धति इतनी सचोट होती है कि पढ़ने वाला सहसा आप के चरणो में श्रद्धा अर्पण कर देता है। 'धर्मव्याख्या' मे तो आपने कमाल ही कर दिखाया है। स्थानागसूत्र के सक्षिप्त नाममात्र दस धर्मो को लेकर आपने वह अनुपम व्याख्या की है कि जो युग-युग तक ग्राम, नगर, राष्ट्र और सघ आदि के गौरव को अक्षुण्ण रख सकेगी। धर्म के साथ राष्ट्र को और राष्ट्र के साथ धर्म को छूते रहने की आप जैसी अनूठी कला विरल ही किसी सौभाग्यशाली सत्पुरुष को मिलती है। आप के हाथो यदि आगमो की टीका का निर्माण होता तो क्या ही अच्छा होता! भूत और वर्तमान का मेल बैठाने में आप जैसा सिद्धहस्त और कौन मिलेगा ?

एक आप की सब से बढ़ कर अमर कृति और है। वह है "सद्धर्ममडन" । तेरा पथ सप्रदाय के आचार्य श्री जीतमल जी ने 'भ्रम विध्वसन' नामक ग्रथ मे जैनधर्म के अहिंसा, दया, दान आदि सिद्धान्तो को बहुत विकृत रूप मे उपस्थित किया है। आगमों के पाठों को तोड़-मरोड़ कर ऐसा विकृत बना दिया है कि सहृदय पाठक सहसा जैन धर्म से घृणा करने लगता है। आज तक भ्रमविध्वसन के कुतर्को का इतना अच्छा स्पष्ट, अकाट्य सयुक्तिक उत्तर नही दिया गया था जैसा कि आपने सद्धर्ममडन में दिया है।

आगम पाठो एव युक्तियो को लेकर वह अभेद्य दुर्ग निर्माण किया गया है, जो युगयुगान्तर तक विपक्षियो की कुतर्कवाहिनी के लिये अजेय, सर्वथा अजेय बना रहेगा। सद्धर्ममडन की प्रत्येक पक्ति आप के गभीर आगमाभ्यास का प्रमाण है। कही-कही तो आप इतनी सूक्ष्मता मे उतर गए हैं कि बडे-बड़े तर्क शास्त्री भी जहाँ पहुँच कर हतप्रभ हो जाते है। आप केवल सद्धर्ममण्डन लिख कर ही सन्तुष्ट न हुए, प्रत्युत थली मे जाकर तेरापंथ समाज से साक्षात् शास्त्रीय टक्करे भी लीं। धर्मजिज्ञासु जनता जो मिथ्या प्रपच मे फँसी उलझ रही थी, आपके सत्यसमर्थक प्रचण्ड व्याख्यानो के प्रकाश से उद्बुद्ध हो

उठी और शीघ्र ही दया-दान रूप सत्य धर्म पर आरूढ हो गई। जानने वाले जानते हे कि तेरापथ समाज का सगठन कितना दृढ होता है, उनके विरोध मे प्रचार करने वालो को किन रोमहर्पण कठिनाइयो का सामना करना होता है। किन्तु आपके अदम्य साहस ने आपत्तियो की कोई परवाह न की। दृढ़ता से कर्तव्यपथ पर अग्रसर होकर माया का जाल एक वार छिन्न-भिन्न कर ही तो दिया। आप का यह कार्य जैन इतिहास के उन सुनहरे पृष्ठो मे से है, जो शत-शत वर्पो तक अध्ययन का प्रिय विपय वने रहेगे तथा समय-समय पर सम्यग्ज्ञान का विमल प्रकाश देते रहेगे।

मानव जीवन के उत्थान के दो पहलू है- विचार और आचार। विचार के विना आचार निष्प्राण रहता है और आचार के विना विचार। दोनो का समतुलन सौभाग्य से इनी गिनी आत्माओं मे ही दृष्टिगोचर होता है। हर्ष है कि पूज्यश्री दोनो ही पहलुओं से उन्नत हैं। आपके आचार और विचार दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं। आपकी आचार सम्बन्धी कडक काफी ख्यातिप्राप्त है। जब से आपने आचार्यपद का गुरुतर भार सभाला है, आज तक आप कर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहे है। आगम मे संयमसमाचारी, तपसमाचारी, गणसमाचारी आदि जितनी भी समाचारियो का उल्लेख आया है, आप ने सभी के महत्त्व को यथास्थान सुरक्षित रक्खा है। अपनी शासन सबन्धी कठोर नीति के कारण आप के मार्ग में बाधाए भी कुछ कम उपस्थित नही हुई। किन्तु सव विघ्नबाधाओ को कुचलते हुए, सब की खरी-खोटी सुनते हुए, निर्भय निष्कप गजगति से अपने कर्तव्य पथ पर दृढता से बढते ही गए। दशवैकालिक सूत्र के "अणासए जो उ सहिज्ज कंटए, वईमए कन्नसरे सपुज्जो" के कथनानुसार सच्चे शब्दो मे आप पूज्यपद के अधिकारी हुए।

आप का विहार क्षेत्र अत्यधिक विशाल है। आपने अपने पर्यटक जीवन में मारवाड, मेवाड़, मालवा, गुजरात, पजाब प्रान्त आदि दूर-दूर तक के प्रदेशो मे भ्रमण करके जैन सस्कृति का विशुद्ध रूप जनता के समक्ष उपस्थित किया है और भगवान महावीर के शासन का गौरवगान गुजाया है। जहॉ आप के पास साधारण से साधारण जनता पहुँची है, वहॉ देश के धुरधर अधिनायक महात्मा गॉधी जैसे नेता भी श्रद्धा और स्नेह का अर्घ्य लिए पहुँचे है। आज के युग मे गॉधी जी का महान् व्यक्तित्व भारत की सीमाओ को लॉघ कर दूर-दूर फैला हुआ है। राष्ट्र के इस महान् नेता का आप जैसे सन्तों की सेवा में पहुँचना वस्तुत. श्रमण सस्कृति के लिए महान् गौरव की बात है।

आपका महान् व्यक्तित्व अनेकानेक चमत्कारो से भरा पड़ा है। जीवन का बहुमुखी होना ही युगप्रधानत्व के महान् गौरव का प्रतीक है। आचार्यश्री सभी के आदरास्पद हैं। जैन सस्कृति की महान् विभूति हैं। उनकी सेवा मे श्रद्धाजलि अर्पण करना प्रत्येक सहयोगी का कर्तव्य है। इसी कर्तव्य के नाते उपरोक्त पंक्तिया लिखी गई है। हम समझते है कि आचार्यश्री की महत्ता इन अक्षरों मे आबद्ध नही हो सकती, फिर भी भाषण और लेखन मनुष्य के आन्तरिक भावो के परिचय का आंशिक किन्तु अनन्य संकेत है। हृदय का पूर्ण चित्रण इसमे नही हो सकता।

आचार्यश्री के जैन सघ पर महान् उपकार है, उन्हे स्मृतिपथ मे लाकर पजाब प्रान्त के सुदूर प्रदेश में अवस्थित हमारा हृदय अतीव पुलकित है, हर्षित है, आनन्दित है। *'चिरजीव महाभाग'*।

आचार्यश्री के प्रति हम क्या मगल कामना करे! उनका महान् उत्कृष्ट जीवन ही मगलमय है। जिसके लिए भगवान महावीर स्वामी ने भगवती सूत्र मे कथन किया है -

आयरिय उवज्झाएण भते ? सविसयसि गण अगिलाए सगिण्हमाणे अगिलाए उवगिण्हमाणे कतिहिंभवग्गहणेहि सिज्झति जाव अत करेति ? गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झति, अत्थेगतिए दोच्चेण भवग्गहणेणं सिज्झति, तच्च पुण भवग्गहणं णातिक्कमति।

(भगवती श.५,उ.६ सू.२११)

'शुद्ध भावना से गच्छ की सार-सँभाल रखने वाला आचार्य तीसरे भव मे तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है। इससे बढकर जीवन की सफलता के सम्बन्ध में और कौनसा मगल प्रमाण हो सकता है ? परन्तु संक्षेप मे संपूर्ण जैन समाज की हार्दिक भावनाओं के साथ हम भी अन्त. हृदय से भावना करते है कि आचार्यश्री की जैन संसार मे अभी बड़ी आवश्यकता है। उन जैसा अनुभवी, कार्यदक्ष एव प्रौढ विचार आचार्य मिलना कठिन है। जैन संसार को आपकी पवित्र छत्रछाया चिरकाल तक मिलती रहे और उससे जैन समाज की दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक सर्वाङ्गीण उन्नति होती रहे। 'कि जीवन दोषविवर्जितं यत्।'

८—एकज आचार्य

(योगनिष्ठ मुनिश्री त्रिलोकचन्द जी महाराज)

साधु पणु लेवु साव सहेलुं छे, परन्तु साधुताना आदर्श ने पहुचवु अने तेने परिपूर्ण जिन्दगी सुधी पालवु ते बहुज विकट छे। सिद्धान्तवादी पुरुषोज आपणा जीवन मा मार्गदर्शक थई शके छे। एवा पुरुषो मां ना एक पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने हु पोते मानु छुं।

तेओ श्रीनो अने मारो समागम बहु लाम्बो नथी। अमदाबाद माधवपुरा मा हु एमना दर्शन ना माटे हासोल गाम थी आवेलो। बे कलाक एकान्त बेठेला। योगविषय नी जिज्ञासा जाणी मने बहु आनन्द थयो। साठ थी सित्तेर वर्ष नी दीक्षा पर्याय होवा छता मनोनिग्रह करवानी अने कराववानी अशमात्र पण तमन्ना रहेती नथी। त्यारे तेओ श्रीए निर्विकल्प स्थितिमा रही शकाय याने मनोनिग्रह करी शकाय ए वस्तु नी चर्चा मारी साथे करी हती। हू तेओ श्रीने पूर्ण सतोष आपी शक्यो के नहीं ते तेओ श्री कही शके। परन्तु निर्विकल्प स्थितिनी प्राप्ति माटे एकात मा रहेवु होय तो पण तेओ श्रीए पोतानी तैयारी बतावी।

आपणा साधुसमाज मा द्रव्यानुयोगनो अभ्यास घणाज ओछा प्रमाण मा होय छे। कथानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग ए त्रण योग करता द्रव्यानुयोग जैन आगमनी इमारत उठावी शके छे। षट्द्रव्यो नु ज्ञान ए सूत्रधारी ने तेनां शास्त्रो मा श्रुतकेवली गणाव्या छे। मने जे जे द्रव्यानुयोगना ज्ञाताओ मल्या छे अने चर्चाओ थई छे तेमाना केटलाकोए द्रव्योनुयोगना ज्ञाता तरीके पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने गणावी मुक्तकठे बखाण कर्या छे।

पचमकाल नी व्यापकता तो सर्व स्थले ओछावत्ता प्रमाण मां देखाय छे। एथी संघाडा-सघाडा वच्चे भाग्येज ऐक्य जोई शकाय छे। कोई महान् पुण्य नो उदय होय तो एक गच्छ ना आचार्य नी आज्ञाए एक गच्छ वर्ती शके छे। आवा तमाम गच्छ अगर संघाड़ा ना आचार्य मली ने पोताना नियामक तरीके एकज आचार्य ने निमवानो प्रसग उपस्थित थाय तो हुतो पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ना तरफ अगुली निर्देश करी शकु।

९—जैन समाजना क्रान्तिकार आचार्य

(आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषि जी महाराज)

जेम दारूडियो राजपंथ त्यजीने कटक पथ स्वीकारे छे ने राजपथ बतावनार ने मूर्ख माने छे तेज स्थिति सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र मां अनुभवाय छे ने तेमां जो कंई सुधारनुं आशामय किरण देखातुं होय तो वर्तमानना आपणा परम प्रतापी धर्माचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराजनोज प्रताप छे। तेओ श्रीए समाज तथा सम्प्रदायना खुशामदखोरी नो खुशवोमय पुष्प पंथ त्यजीने नग्न सत्यमय कंटकमय पथ पोताना प्रयाण माटे आदर्यो ने तेमां तेओ श्रीने सफलता मली चुकी छे, वरी चुकी छे। तेओश्रीनु जीवन कथन सफलता ने वरेल छे।

धार्मिक तथा सामाजिक नियमोमा व्यापक अधाधुधी श्रीजीए अनुभवी। तेमनो अन्तरात्मा जैन शासन ना श्रावको ना दयामय जीवन जोई ने ककली उठ्यो। सावद्य जीवन, धधा, व्यवसाय , खानपान, वस्त्राभूषण आदि नो निर्णय ने निर्वद्य ने सावद्य, अल्पारभ ने महारभ, ने महारभ ने अल्पारभनी मान्यतानो प्रचार आ प्रमाणे व्यापक अनर्थ जोई श्रीजीए पोतानी प्रखर व्याख्यान धारा द्वारा समाज पर प्रकाश फेक्यो, जे प्रकाश ने समाज जोई न शकी। जेम घुवड सूर्यना प्रकाश ने न जीखी शके तेम श्रीजीना ज्ञान प्रकाश ने न जीखी शकी ने जेम घुवड सूर्यना प्रकाश ने अधकार माने छे तेम श्रीजीना उपदेशने सावद्य-पापमय मानवा लाग्या ने ते माटे जैनत्व थी अज्ञ ने सम्प्रदायाध साधु तथा श्रावकोए यदवा तदवा आलाप करवो शुरू कर्यो छता ते बाल जीवो ना प्रलाप पर ध्यान न आपतां सत्य जैन धर्मनु स्परूप समजाव्युं ने तेनो असर समाजना मोटा भाग पर पड़ी पण सम्प्रदायाधो नी अज्ञ समाज पूर्ववत् वर्तमान मा पण घुवड़ दृष्टि ने लीधे कायम छे। ते बाल वर्ग श्रीजी ने अपमानित करवा अनेक प्रयत्नो कर्या, पण जेम सूर्य सामे घुवड पोतानी शक्ति प्रमाणे लाखो प्रयत्न करवा छता सूर्यना एक किरण ने पण दाबी शकतो नथी, तेम सम्प्रदायान्धो निष्फल थया ने तेमनी निष्फलता अज्ञानता जेमनीतेम तेमनी बाल दशा ने लीधे कायम छे।

वर्तमान मा बीसमी सदी मा लोकाशाहना जमाना करता पण समाजनी सविशेष करुणापात्र ने विज्ञान ने लीधे यन्त्रवादी महारभी प्रवृत्ति अनुभवाई, जेथी श्रीजीए समाज मां अल्पारभ ने महारभनी व्याख्या नो बोध आपवो शुरू कर्यो।

समाजनी बाल समजना नमूना

श्रावक लीलोतरी वेची न शके पण विलायती दवा निर्भयता थी वेची शके ने तेमा पोतानु सन्मान समजे छे ने लीलोतरी वेचनार ने पापी ने दयापात्र माने छे, पोताने धर्मात्मा मानी सतोष वेदे छे। धान्य नो वेपार न थाय पण मोतीनो व्यापार थई शके।

मीठु या माटी न बेचाय पण विलायती टाल, विलायती नलिया तथा चीनी ना कप रकाबी आदि वेची शकाय, माटीना वासण न बेचाय पण धातुना वेचाय ने माटीना वासण करता धातुना वासण वेचवा मा ओछु पाप।

माटीना कोड़ीया न वेचाय बिजली ना दीवा वेची शकाय, गेस ना दीवा बेची शकाय, दूध न वेचाय पण बेजीटेबल घी बेची शकाय, लाकड़ा न वेचाय, बास ना पखा न वेचाय, पण कोलसा वेचाय,

पण बिजली ना पखा वेचाय, बास न वेचाय पण लोढ़ा ना गडर वेचाय। फूल न वेचाय पण अतर वेचाय, कपास न वेचाय पण चरबी ना तथा रेशम ना वस्त्र निष्पाप मानी निर्भयता थी वेचाय, घाणी न चलावाय पण तेल नी मील खोलाय, चर्खा नो धधो न कराय, मील खोली शकाय, गाडा न चलावाय न वेचाय पण मोटर वेचाय तथा चलावाय।

आदि व्यापार ना विषय माँ अधाधुंध महारंभ ने अल्पारभ ने महारभ, आवी समाजनी विपरीत समज माटे श्रीजीए प्रकाश पाड्यो ने समाज ने सम्यक् पथ बताव्यो के गृह उद्योग करता यत्रवाद मा सविशेष आरभ ने महापाप छे। जीवनोपयोगी वस्तुओ सिवायना तमाम अन्य विलासी श्रृगारो ने सोखना पदार्थो आत्मानु पतन करे छे। तेवा पदार्थो नो व्यापारी पोताना एक ना स्वार्थ माटे करोड़ो नु पतन करे छे। यत्रवाद थी लाखो मानव तथा करोड़ो पशुओ नी हिसा थाय छे, मील मालेक तेना वस्त्र वेचनार, खरीदनार, पहेरनार, सीवनार, धोनार ने खानार तमाम यत्रवादना महा पाप ने पोषण आपे छे। गृह उद्योग ते आर्य धधो छे, यन्त्रवादी साधनो ते अनार्य छे।

व्यापार नी आवक ने विलासी साधनो नो विनाश थतो होवा थी अध परम्पराए श्रीजीनो उपदेश सावद्य मान्यो ने ते माटे अनेक मिथ्या दलीलो ने कुतर्को करवा लाग्या। छता श्रीजी पोताना सत्य सिद्धान्त माटे आज सुधी अचल रह्या छे ने रहवा माटे, सर्व ने बोध आपे छे।

धर्मने नामे पण व्यापक अंधाधुंधी जोईने श्रीजी नो आत्मा विचार मग्न बन्यो, क्यां प्रभुनो अहिंसा, सयम, सादगी ने रसना विजय नो मार्ग अने कया दया पालवा ना निमित्ते रात्रे तथा दिवसे कदोई नी भट्टिओ चलाववी ने विविध प्रकारनी नवी-नवी मीठाइओ मगाववी ने दया ना त्याग तप व्रत मा ठांसी-ठासी ने खावानो रिवाज। रसना ने वश थई ने विशेष खावानो स्वभाव ने पाचन न थवाथी शरीर मा अनेक प्रकार ना रोगो नी उत्पत्ति तथा मनुष्यो ने अजीर्णना ने दस्त लागवनाना रोगनी गदकी अनुभवी,जेथी श्रीजीए दयाना व्रत या सादु भोजन करवानो उपदेश आप्यो ने कदोई ना त्यानी अयत्नामय मीठाईओ खरीदवाना महा पाप थी बचवा माटे समाज ने उपदेश आप्यो छे। दर्शनार्थे आवनार माटे पण विविध प्रकार नी मीठाइओ बनवा लागी तो तेनो पण विरोध कर्यो ने सादा भोजन थी सतोष मानवानो बोध आप्यो। आ उपदेश थी रसना लोलुपी रोषे भराया पण श्रीजीए पोतानो उपदेश प्रवाह चालु राख्यो ने समाज ने महारभ ना पापमाथी बचावी समाज पर परम उपकार करेल छे।

बाल लग्न, वृद्ध लग्न, कन्या विक्रय, वर विक्रय, लग्न तथा मरण पाछल थता जमणवारो आ प्रथा बध करवा माटे पण श्रीजीए पोतानो उपदेश प्रवाह वड़े वडावी समाज पर महान उपकार कर्यो छे।

नाना काची उमर ना बलद या घोडा गाडी ने जोड्या होय ने तेमा बेसनार मानव दयालु न गणी शकाय तेम बाल लग्न मा भाग लेनार तो सविशेष दया, करुणा तथा मानवताहीन मानी शकाय। आवा प्रकारनी अकाट्य दलीलो थी समाज वस्तु स्वरूप समजती थई ने पूज्यश्री ना प्रवचन नी परम प्रशसक बनी।

आनद तथा कामदेव आदि श्रावको ४० हजार, ६० हजार ने ८० हजार सुधी गायो राखता हता, तेथी पशुओनी हिसा थती न होती, खेती ने पोषण मलतु। दुष्काल आदि नो भय न होतो त्यारे वर्तमान

नो श्रावक समाज गोपालन ने खेती करवा मा पाप मानवा लाग्यो ने वाजारू घी खावा मा ने व्याज नो धधो करी पोतानु पेट भरवा मां पोतानु जीवन पाप रहित ने धार्मिक मानना लाग्यो, आवी समाज नो विपरीत माटे पण पूज्यश्री ने प्रकाश नाखवानी फरज पडी ।काची समज ने काची आकवाली समाज श्रीजीनो उपदेश पाचन न करी शकी, ने उपदेश नो विरोध थवा लाग्यो, छता श्रीजी सत्य सिद्धान्त मा परम दृढ रहया ने।

मुंवई ना कसाईखाना नो अनुभव श्री जी ने थयो ।नित्य हजारो पशुओ दूध माटे कपाता अनुभव्या आ प्रत्यक्ष देखाव थी वजारू दूध तो लोही करता विशेष पवित्र नज मानी शकाय तेवा दृढ निश्चय मा वृद्धि थई ने मुंबई नी जनता ने बजारू दूध पीवानु परम पाप समजाव्यु। पशुओ प्रति पोतानी फरज समझावी जेथी त्याना विचारशील श्रावकोए कसाई खाने कपाता पशु अटके ने जनता ने अहिंसक शुद्ध दूध मले एवी योजना विचारी ने ते प्रमाणे श्रावकोए गोरक्षक सस्था नी स्थापना करी, जेना प्रतापे हजारो कतलखाना मा कपाता पशुओनी रक्षा थई ने नित्य हजारो मानवोने शुद्ध अहिंसक दूध मली रहेल छे।

समाज पण बजारू दूध ने हिंसक दूध मानवा लागी ने पशुओनी प्रतिपालना करी, अहिंसाधर्म नी आराधना करवा लागी।

ब्याजखाउ व्यापारीओ ने समजाव्यु के ब्याजना लोभे वेपारीओ कसाई आदि ने पण पैसा धीर छे ने कीड़ी मकोडा नी दया पालनार पोताना पैसा थी ब्याजना लोभे कसाई ना धधा ने उत्तेजन आपे छे, ते धधो परम पापनो छे।

कापड़ना वेपारी ने रुपीया व्याजे आपनार पण चरवीवाला तथा रेशमना पापमय व्यापार ने उत्तेजन आपे छे ने ते व्याजखाउ पण ते पापनो भागीदार बने छे।

ब्याजनो धधो या सट्टा नो धधो तेने समाज पवित्र ने पापरहित मानती हती पण ते धधा सविशेष पापमय समजावी ते धधाना पाप थी बचावी श्रीजी समाज नी महान् रक्षा करी शक्या छे।

बैकमा ब्याजे रुपीया आपनार ना रुपीया बैक तोप, बदूक, मशीनगन ने बोम्ब गोला बनाववाना कारखाना ने विशेष व्याजे आपे छे ने तेज बोम्ब गोला तथा बदूक नी गोलीओ बैक मा ब्याजे मूकनारनी छाती मां बागे छे तो मरण पामे छे। तेना रुपीया बैक मा रही जाय छे।

मुसलमानो मां ब्याज लेवानी प्रथा नथी। त्यारे साहूकारो ब्याज वसूल करवा माटे कचेरी मा दावा करे छे ने गरीब ना घर, खेतर तथा पशु आदिनु निर्दयता थी लीलाम करावे छे।

कसाई मछलीमार या अन्य पापना धधा करनार ने पोतानी एज दुकान नु पाप लागे छे त्यारे ब्याजखाऊ वेपारी ब्याज वसूल करवा माटे तमाम कसाइयो तथा अन्य पाप ना व्यापारीओनी दुकान नी चिन्ता करे छे। कसाई नी दुकान सारी पेठे चाले तोज तेने ब्याज टाइम पर मली शके, कसाई एकज दुकान चलावे छे त्यारे ब्याजखाउ सेकडो कसाइओनी दुकानो चलावे छे। कसाई ने पोताना धधा माटे पश्चात्ताप थाय छे त्यारे ब्याजखाउ ने पश्चात्ताप ने बदले विशेष ब्याज मलवा थी प्रमोद अनुभवाय छे।

पूर्वना साहूकारो कुवा, वावडी ,धर्मशाला, औषधालय ने सदाव्रतो माटे प्रतिवर्षे लाखो रुपीया दानमा खरचता हता त्यारे वर्तमान नो ब्याजखाउ व्यापारी मक्खीचूस बनी ब्याज द्वारा पाई पाई भेगी करी पोतानी पाप परपरा मा वृद्धि करे छे।

जेना हाथ पग न चलता होय तेवा लुला, लगड़ा, आधला, बहेरा ने मुगा माणसो व्यापार न करी शके तो तेवा आपत्ति काल समजी ने ब्याज थी, विधवा, अनाथ, स्त्री, वृद्ध पोतानु पेट भरी शके छे।

कोड़ी,पाई तथा पैसा थी जुगार रमनार सरकार नी सजाने पात्र थाय छे त्यारे नित्य सट्टा मा लाखो नी हार जीत करवा छता सरकार पोते तेने सन्मान आपे छे ने ते साहूकार मनाय छे आ थी विशेष आश्चर्य अन्य शु होई शके ?

चामडा नो व्यापारी तथा घी नो व्यापारी बन्ने नफा नी आशा राखे छे। सुकाल थाय तो पशु न मरे या पशु मा रोग फेलवा न पामे तोज चामडु मोघु थाय ने ते नफो मली शके छे त्यारे घी वाला ने दुष्काल पडे या पशु मा रोग फेलाय तोज घी मोंघु थये नफो मली शके छे बन्ने नी भावना पर आधार छे।

धान्यना व्यापारी पण नफा नी आशाए व्यापार करे छे ने दुष्काल पड़े तेज वर्ष तेमने माटे सारू गणाय छे।प्रजा मा रोग चारो वधे त्यारे डाक्टर कमावानी ऋतु माने छे। प्रजा मा क्लेश वधे त्यारे वकील कमावानी ऋतु माने छे।

लडाई मा तमाम पदार्थो ना भावो बमणा त्रणगणा थवा थी व्यापारी प्रसन्न थाय छे ने लड़ाई बंध थवा थी भावो घटी गया थी व्यापारी खेद नो अनुभव करे छे।लडाई जल्दी पूरी थाये तेवी भावना लड़नार राजाओ नी होय छे त्यारे व्यापारीओ लड़ाई विशेष लबाय तो विशेष लाभ मले तेवी भावना राखे छे जेथी लडनार राजाओ करता पण व्यापारी तंदुल मच्छवत् विशेष मलीन भावना भावी पाप उपार्जन करे छे।

आवा प्रकार नी पूज्य श्री नी सचोट दलील थी श्रोताओ ना मन पर शीघ्र असर थवा पामे छे छता केटलाक मताग्रही पोतानी मिथ्या समज ने सत्य मानी तेवी समज नी स्थापना तथा प्ररूपणा करे छे ने पाप परपरा मा वृद्धि करे छे।

समाज नी समज नो प्रवाह अधपरपरा नो छे छता प्रवाह ने भेदी ने श्रीजीए समाज समीप सत्य तत्त्व मूकी ने समाज पर परम उपकार कर्यो छे।

धार्मिक विकृतिओ माटे पण श्रीजीए पूर्ण प्रकाश पाडेल छे।

दयाकरो ने लीलोतरी न खाय पण मेवा मीठाई खावामा पाप न माने।

आठम चौदस लीलोतरी न खाय पण झूठ बोलवाना या गरीब ने ठगवाना विशेष ब्याज या नफो न लेवाना त्याग न करी शके।

पर्वना दिवसे स्नान करवा मां पाप माने पण तेवु पाप चरवी ना, रेशमना आभूषण पहेरवा मा न माने।

दलवा खाडवा भरडवाना त्याग करे पण ते दिवसे रसास्वाद माटे विविध प्रकार नी वानीओ वनाववाना त्याग न करे।

रात्रि भोजन ना त्याग करे पण सीनेमा रात्रे जोवा न जवु तेवा त्याग भाग्येज करे।

एक वखतना जमवाना या आयवीलना त्याग करनार घणा छे, पण व्यापारादि मा मात्र एकज भाव बोलनार अल्प छे ने व्यापार मा असत्य वोलवा मां पाप मानवा मा भाग्येज आवे छे।

उपवास करवो सरल अनुभवाय छे, पण चाय, कपना त्याग करवा माटे ध्यान अपातुं नथी।

नवकारसी या पोरसी करवानो रीवाज छे पण तेटला समय माटे सत्य या क्षमामय जीवन माटे भाग्येज ध्यान अपाय छे।

काचु पाणी पीवाना त्याग कराय छे, पण गरीबो पासे थी विशेष व्याज या विशेष नफो लेवा मा भाग्येज पाप मानवामा आवे छे।

आदि त्याग प्रत्याख्यान माटे ध्यान अपाय छे पण व्यापार मां सत्य नीति न्याय नो प्रमाणिकपणानो व्यवहार राखवा माटे भाग्येज लक्ष आपवा मा आवे छे। आ विपय पर प्रकाश पाडी ने श्रीजीए समाज ना व्यापार तथा व्यवहार मां सत्य नीति ने न्यायमय जीवन वीतावबा माटे समाज ने सत्यबोध आपी जागृत करी छे।

धर्मना सत्य स्वरूप ना बोध ना अभावे धर्मना नामे मानव ज्या त्या फाफा मारतो अनुभवाय छे ने पोताने धर्मात्मा मानवानो ढोंग करे छे ने जगत पासे थी धर्मात्मा नु प्रमाण पत्र मैलववा यत्न सेवे छे।

मोती नो व्यापार करे छे ने माछलाने ममरा नाखे छे।

रेशम नो व्यापार करे छे ने गरणा नी प्रभावना करे छे।

मील चलावे छे ने शरीर पर खादी धारण करे छे।

सघ जमाडे ने गरीबो ने मजूरी आपवा मा करकसर करे,अन्याय करे।

रोज सामायिक करे ने बजार मा एक पैसा माटे क्लेश झगड़ा ने गाला गाली करे।

रोज व्याख्यान साभले पण वचननो सयम न राखी शके ।प्रतिक्रमण नित्य करे पण प्रमाणिकतानु पालन न करी शके।

खानपान ना द्रव्यो नी मर्यादा करे पण द्रव्य कमावानी मर्यादा न करे।

पौषध करे ने पारणुं करी ने कचेरी मा झूठो दावो माडे।

हजारोनु दान आपे ने गरीबो थी लेवाय तेटलुं विशेष ब्याज ने विशेष नफो ले।व्यापार मा असत्य अनीति करे ने बारह व्रत नी पुस्तक छपावी प्रभावना करे।

पृथ्वी, पाणी, वनस्पति, नारकी, देवता, पशु तथा पक्षी साथे खमत खामणा करे पण मनुष्यो साथे वैर राखे।

आवा प्रकार ना सगवड़ीया नियमो ने धर्म ना नियमो मानी समाज धर्म ने मोक्ष मार्ग मानती हती त्यारे श्रीजीए सत्य व्रत नियम ने प्रत्याख्यान नु स्वरूप समजावी सत्य वस्तु स्वरूप समाजावा माटे समाज ने नवीन प्रेरणा आपी छे।

वर्तमान मा श्रावको ना जीवन मा जेवी अधाधुधी जोवामा आवे छे तेथी विशेष दयापात्र स्थिति सादु समाजनी श्रीजी अनुभवी। शिष्य ना लोभी साधु आर्याओ योग्यता नो विचार कर्या सिवाय जेवा तेवाने या वेचाता छोकरा–छोकरी ने लेवरावीने दीक्षा आपवा लाग्या तेथी साधु समाज मा शिथिलाचार ने शासन तथा जैनागम विरोधी प्रवृत्ति श्रीजीए अनुभवी।साधु सस्थानी पामर ने पतित दशा जोई श्रीजीए

शासन नी उन्नति माटे सविशेष जागृत थवा ने अयोग्य दीक्षाओ अटकाववा माटे आचार्य सिवाय कोईए पोताना शिष्यो न बनाववा, नवा शिष्यो मात्र आचार्यनी नेश्राय मा करवा। आ नियमनु पालन थाय तो गमे तेवा जेवातेवा ने अयोग्य दीक्षा आपे छे ते अटकी जाय। आ पवित्र आशये अयोग्य दीक्षा पर प्रतिबध मूक्यो।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो नी भिन्न-भिन्न मान्यता ने समाचारी जोई ऐक्यता माटे सगठन माटे, अजमेर सम्मेलन समये यत्न सेव्यो छता ते योजना अमल मा न आवी शकी ने निरकुशता नो पवन बधवा लाग्यो।

साधु साध्विओ वेचाता शिष्यो लेवा माटे, पंडित राखवा माटे,पुस्तको छपाववा माटे पोताना मंडल तथा समिति ने धनवान बनाववा माटे, पोताना नाम नी संस्थाओ खोलाववा माटे ,पोताना फोटू पडाववा माटे, तेना ब्लोक बनाववा ने प्रचार करवा माटे साथे मुनीमो, पण्डितो राखवा लग्या छे ने तेमनी द्वारा अनेक बहाना तले द्रव्य स्वहस्ते नही पण पर हस्ते लेवा लाग्या। पुस्तको छपाववी ग्राहको बनाववा, वेचवी पैसा एकत्र करवा ने पुनः छपाववी आवी साधु समाज नी प्रवृति थी श्रीजीए वीर सघ या ब्रह्मचारी वर्ग नी मध्यम योजना विचारी जेथी साधु धर्म चरित्र धर्म नी मश्करी थवा न पामे। ते योजना हजीसुधी मूर्त स्वरूप मा आवी नथी, ने साधुता ने नामे असाधुता, दभ ने पाखड अनुभवाय छे, जेथी श्रीजीए सविशेष प्रकाश पाड़ी निवृत्ति धारण करी ने एकान्त आत्म साधना ना मार्ग ग्रहण करवानी पोता नी भावना सफल करी छे।

साधु संस्था मा पण्डित प्रथा नो पवन वधवा लाग्यो ने ते माटे महाव्रत नी मर्यादा ने मूकी ने केटलाक साधुओ गामोगाम फरी हजारो रुपीया एकत्र करवा लाग्या। पंडितोना स्थायीत्व माटे पाप परपरा बधवा लागी ने साधुओ पंडितोना गुलाम बनी तेमनी खुशामद करवा लाग्या ने तेमनी प्रसन्नता माटे यत्न सेववा लाग्या। पण्डितो पासे पुस्तको लखावी पोताने नामे छपाववा लाग्या। पोताना यशोगान पडितो पासे लखावी छपाववा लाग्या। साहित्य छपाववा माटे तथा शिक्षण ना बहाने पंडित प्रथा नो प्रचार वधवा लाग्यो। अजैन पडितोना संसर्ग थी साधु-साध्विओं मां शिथिलाचार वधतो श्रीजी ना साभलवामा आव्यो। पडितो पासे आर्याओ पण भणवा लागी ने जैनागमनो आदर्श नष्ट थतो अनुभव्यो जे थी श्रीजीए पोतानी सप्रदाय मा पगारदार पडितो न राखवानो नियम कर्यो ने पडित प्रथाना पाप थी पोतानी संप्रदाय ने बचावी। समाज समीप संयम मार्ग नो आदर्श राखी महान् उपकार करेल छे।

मेरूथी अनन्त उच्च ने समुद्र थी अनन्त विशाल जैन धर्म मा पण अस्पृश्यता नो प्रवेश थवा पाम्यो हतो ते अस्पृश्यता ना कलक ने दूर करवा माटे श्रीजीए पोतानी उपदेश धारा द्वारा प्रकाश पाड्यो ने पोताना व्याख्यान मा हरिजनो ने आवा माटे व्याख्यान साभलवा ने चर्चा करवा माटे सहर्ष धर्मस्थानना वध दरवाजा उघाडा कराव्या। ने पोतानी विशालता नो सर्व प्रथम परिचय आप्यो जेना परिणामे वर्तमान मा केटलाक गामोमा हरिजनो व्याख्यान श्रवण करे छे। सामाजिक पौषध आदि धार्मिक क्रियाओ करे छे। केटलाक श्रावको हरिजनो ने पौताने त्या नौकर राख्या छे। केटलाक श्रावको हरिजन आश्रमो चलावे छे ने तन, मन ने धन थी तेमने मदद करे छे।

पूज्यश्रीए जे सम्प्रदाय ना आचार्य छे ते सम्प्रदायना श्रावको सविशेष पणे रूढिना पुजारी हता तेमनी सख्या पण घणी मोटी संख्या मा छे ने तेओनो मोटो भाग श्रीमन्त छे छता समाज नी खुशामद कर्या सिवाय पोताना तत्त्वचिन्तवन ने मनन मां जे सत्य अनुभव्युं तेनी प्ररुपणा करी। ते माटे स्व सम्प्रदाय

तथा पर सम्प्रदाय ना चारे तीर्थना अनेक विरोधो हिम्मत करी ने झील्या, पचाव्या ने पोतानी निर्भयता मां वृद्धि करी। समाज सामे सत्यताना प्रकाश किरणो फेकी, समाज ने अज्ञानान्धकार माथी काडी प्रकाशना पंथना पथिक तरीके बनावा पोताना जीवन नी सफलता करी चुक्या छे। जे माटे समस्त समाज तेमनी परम ऋणी छे।

हाथे दलवाना, खांडवाना, भरडवाना, रांधवाना, चर्खो चलाववाना वणववाना आदिना त्याग रूढी चुस्तो करावावा लाग्या जेथी बकरी काढ़ता ऊंट पेसवा जेवो अनर्थ वधतो श्रीजीए अनुभव्यो। हाथे दलवाना त्याग थई आटानी मीलो ने उत्तेजन मलवा लाग्युं जेमा पाप वहेवारनो पार नही ते उपरान्त धान्य ना सत्वनो नाश ने शरीर मां रोगो नी उत्पत्ति आदि अनर्थो ने महारभनी उत्तेजना जोई श्रीजीए अल्पारंभनी व्याख्या समजावी।

चर्खाना त्याग करावावा थी मीलोनी उत्पत्ति बधवा लागी ने मीलो द्वारा मानवो नो शोषण ने पशुओ नी हिंसा थवा लागी जेथी अल्पारंभी खादी नी पवित्रता श्रीजीए समजावी।

गोपालन ने खेती ना पण रूढी चुस्तो त्याग करावावा लाग्या. जेथी गोधन नो नाश, खेती नो नाश, आर्य धर्म नो नाश ने कसाईखाना ने उत्तेजना आदि पापथी बचाववा सत्योपदेश फरमायो ने रूढी चुस्तो द्वारा समाज नी चक्षुओ पर महारंभ ना महापाप ना पाटा बाधवामा आव्या हता। ते महापापना पाटा करुणाभावे श्रीजीए छोड़ाव्या, ने समाज ने अल्पारभ महारभ गृहउद्योग ने यत्रवाद आदि नी व्याख्या समजावी ज्ञानचक्षु नु दान आपी समाज पर महान् उपकार कर्यो छे। छता केटलाक रूढ़ी चुस्तो पोतानी आँखे महारभ ने यत्रवादना पापना पाटा बाँधी रहे छे। ने समाज ने बंधावी रहेल छे। जेथी पाटा बाधनार तथा बधावनार उभय महाअज्ञानना खाड़ा मा पड़ी ने सम्यक् ज्ञान थई अनन्त काल माटे विमुख बनी दुर्लभ बोधी बनी रहेल छे।

श्रीजीना परम उपासको ने शास्त्र ना ज्ञाता श्रीमंत श्रावको श्रीजीना दर्शनार्थे या व्याख्यान मा रेशम ना कोट, रेशमना खमीस, रेशमना धोतीया ने गला मां मोती ना हार पेहरी ने आवता। आवा श्रृङ्गारी वस्त्राभूषण थी श्रीजीनो आत्मा ककली उठ्यो, स्त्री समाजना वस्त्राभूषण ने श्रृङ्गार तो मर्यादा नी हद बाहर हतो छ्ता श्रीजीना पवित्र सदुपदेश ना परिणामे श्रीजीना अनुयायी श्रावक ने श्राविका वर्ग परम शुद्ध-पवित्र खादी धारक बन्या ने पवित्र सादगी प्रधान खादी धारण करवा थी आभूषणो नो मोह पण स्वाभाविक घटी गयो ने समाजमा सादगी ने संयम नी वृद्धि थवा लागी।

वर्तमान मा जैन समाज मा गौपालन, खादी स्वावलबी जीवन ने सादगी मय जीवन नी समाजमां प्रवृत्ति जोवामा आवती होय तो ते श्रीजीना प्रवचननोज पुण्य प्रभाव छे।

वर्तमान मा रूढ़ी चुस्त साधुओ खादी पहेरवा मा विशेष पाप माने छे ने दलील करे छे के तेने घोवा मा पाणी ना जीवो नी हिसा थाय छे आवी दलील करनारो ने भान नथी होतु के मीलना कपडा मा तो चरबी नुं महापाप लागे छे। ते महापाप ने भूली ने कुतर्को करी पोते विपरीत पथे गमन करे छे। ने समाज ने पाप पथ ना पथिक बनावे छे।

सद्भाग्ये श्रीजीना सदुपदेश ने श्रावको समजवा लाग्या ने ते प्रमाणे पोताना जीवन मा शक्य सुधारा माटे पण यत्न सेवे छे।

जेम मासाहार दोष रहित मले तो पण मुनिराज या श्रावक पोताना प्राणना भोगे पण न वापरी शके। तेवी रीते चरबी वाला कपड़ा दोष रहित मलता होय तो पण महाव्रतधारी मुनिराज या श्रावक ते नज वापरी शके। जेम खान पान मां वनस्पत्याहार नो आग्रह राखवा मा आवे छे तेवी रीते वस्त्रो माटे पण शुद्ध खादी नो आग्रह राखे तोज श्रावक या साधु पोताना अहिंसा व्रतनो पालन करी सके छे। अन्यथा तेमने अहिंसानु ज्ञान नथी ने जो तेमने ज्ञान होय तो ते पोताना व्रत केवी रीते पाली शके ने व्रतधारी तरीके नो वेष केवी रीते धारण करी शके। अनेकानेक प्रकार नी समाज नी मिथ्या समज पर श्रीजी प्रकाश पाडी महान् उपकार करेल छे। सूर्यना सामे धूल नाखनार पोतानी आंखमाज धूल नाखे छे तेज स्थिति विरोधी रूढी चुस्तो नी थवा पामी छे। तेवाने पण सद्‌बुद्धि नी प्राप्ति माटे श्रीजीनी भावना ने प्रार्थना चालुज छे।

प्रभु महावीर ना शासन तथा वीतराग धर्मना सत्य प्रचार माटे श्रीजीए मारवाड़ नी रेताल भूमि मा ने गुजरात तथा काठियावाड मा उग्र विहार करी सत्य धर्मनो ध्वज फरकाव्यो।

गमे ते धर्मवाला साथे धार्मिक चर्चा करवानो प्रसंग उपस्थित थाय त्यारे गमे तेवा वादी ने पोताना कुशाग्र बुद्धि थी निरुत्तर करी देवानी प्राकृतिक बक्षीस श्रीजीनी छे। जेथी समस्त जैन समाज माटे गौरवनो विषय छे।

व्याख्यान शैली पण अलौकिक छे। तेमना जेवा वक्ता जैन समाज मा तो नही पण भारतवर्ष मा आगली ना टेरवे गणी शकाय जेटली सख्या मा भाग्येज हशे। जेथी वर्तमान पत्र ना सम्पादक श्री मेघाणीए श्रीजी माटे खास एडीटोरियल लेख लख्यो के भारतवर्ष मा एक नही पण बे जवाहर छे। एक राष्ट्र नेता छे त्यारे बीजा धर्मनेता छे। श्रीजीनी व्याख्यान शैली थी प्रो. राममूर्ति, मदनमोहन मालवीय जी ने लोकमान्य तिलक आदि प्रसन्न थया हता ने महात्मा गांधी जी पण श्रीजीनी सुवास थी आकर्षाई समागम माटे आव्या हता।

पूज्यश्री ना व्याख्यान नो विशाल सग्रह समाज पासे छे। ते लोक भोग्य ने सर्व माटे समान उपयोगी छे। साधु साध्वी गण पोताना व्याख्यान मा आ सग्रहनो उपयोग करे तो ते समाज माटे विशेष उपकारी नीवडशे ने स्व. तत्त्वज्ञ बा. मो. शाह नी पूज्यश्री ना व्याख्यान माटे नी जे भावना हती ते सफल थवा पामशे।

आ लेखक मां जे कई अल्प प्रमाण मा सत्य समज होय तो ते श्रीजीना साहित्य ने समागम नो ज प्रताप छे।

१०—पूज्यश्री की निखालसता

(गोंडल सम्प्रदाय के पण्डितरत्न मुनि श्री पुरुषोत्तम जी महाराज)

अजमेर मा साधु सम्मेलन थयुं त्यारे त्या मारी हाजरी न हती, परतु हूँ पालणपुर मां ते वखते हतो। त्यां रही हु सम्मेलन मा शी शी प्रवृत्ति थई तेथी वाकेफ रहेलो। पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराजे लाउड स्पीकर ऊपर प्रवचन न कर्यु। तेमज तेओ सम्मेलन मां कोई नी शोर मा न दवाता पोताना मन्तव्य मा मक्कम रह्या। ए बे वावतो थी मारा अन्तः करण मा ते श्रीना माटे छाप पडी अने पालणपुर व्याख्यान मा उपर्युक्त माहिती मलता नी साथेज त्या ना अग्रगण्य श्रावको हीराभाई, जीवा भाई भणसाली आदि समक्ष मारा मुख मा थी उद्‌गारो नीकली पडया के "शावास जवाहर"।

राजकोट संघ ना आगेवानो पूज्यश्री ने चातुर्मास नी वीनती करवा त्रण वखत मारवाड तरफ गयेल। ते त्रणे बखत मारी सम्मति थी गयेल अने मे पण हार्दिक सम्मति आपेली अने पूज्य श्री कठियावाड मां पधारवाना छे ए समाचारने हर्षपूर्वक वधावी लीधा हता।

काठियावाड़ मां त्रण चातुर्मास करी तेओ श्रीए पोतानी प्रतिभाशाली, व्याख्यान शैली गुजराती भाषा ऊपर नो काबू अने समाज ने योग्य रस्ते दोरवानी शक्ति वड़े तेओए काठियावाड़ नी जैन अजैन जनता ऊपर जे प्रभाव पाड्यो छे अने जैन-शासन नी उन्नति मां जे प्रशसनीय फालो आप्यो छे ए वधु जोई ने जाणी ने मने खूबज आह्लाद उत्पन्न थयो छे।

राजकोट मा तेओ श्रीए चातुर्मास कर्यु त्यार थी तेओ श्री ने मलवानी मारा हृदय मा घणी उत्कण्ठा हती। अने राजकोट चातुर्मास पूर्ण थया पछी तेओ श्री जेतपुर पधार्या त्या तेओ श्री ना दर्शन नो लाभ मेलवी हुं घणोज आनन्द पाम्यो। तेओ श्रीनी साथे शास्त्रीय चर्चा मा पण मने बहु रस उपजतो। विविध प्रकारना प्रश्नो में तेमने पूछेला, तेना तेओ श्रीए शास्त्री शैली अने टीकाने आधारे यथा शक्ति खुलासा कर्या। आ चर्चा दरमियान "हु आचार्य छु के ज्ञानी छु" एवु वलण जरा पण जोवा मा न आव्यु। ऐ तेमनी निखालसता अने निरभिमानताए मारा हृदय ऊपर सुन्दर छाप पाडी।

पूज्यश्री नो अमारा ऊपर नो अगाध प्रेम भूलाय तेम नथी।

११—उज्ज्वल रत्न

(पूज्यश्री जयमल जी महाराज की सम्प्रदाय के पण्डितप्रवर मुनि श्री मिश्रीमल्ल जी महाराज, न्याय—काव्यतीर्थ)

यद्यपि पूज्य श्री के साथ मेरा विशेष और गहरा परिचय नहीं रहा फिर भी ऐसी बात नहीं है कि उनके तेजस्वी जीवन से मै अनभिज्ञ होऊँ।

पूज्यश्री के जीवन की महत्ता बहुत व्यापक है। आपके जीवन इतिवृत्त से आपके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का अच्छा परिचय मिलता है और व्यक्तित्व ही जीवन है। व्यक्तित्वहीन जीवन किस काम का! वह तो निरा पामरपन है।

पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज अपने समाज के उज्वल रत्न हैं। आपके अध्ययन में गम्भीरता है, भावों मे विशदता है, विचारो मे विशालता है। यही नहीं आपका वक्तृत्व भी प्रभावशाली, विशुद्ध, व्यापक और युगानुसारी है। भाषा में सरलता, सयतता और अलकृति है। शैली प्रवाहमयी, रसोद्भिन्न और प्रौढ है।

पूज्यश्री के ससर्ग मे आने के दो प्रसंग मुझे खूब याद हैं। पहले प्रसग पर मेरे श्रद्धेय गुरु पूज्यश्री जोरावरमलजी महाराज भी विद्यमान थे। मेरे गुरु महाराज भी अपनी समाज के एक माने हुए मनीषी, मुनि, महात्मा थे। जैन शास्त्रो के समझाने मे आप अगाध पाण्डित्य रखते थे।

जब पूज्यश्री ब्यावर का चौमासा पूर्ण करके बीकानेर की ओर विहार करते हुए कुचेरा पधारे उस समय मेरे गुरु महाराज भी वही विराज रहे थे। यह घटना सन् छब्बीस की है। आप के और मेरे गुरु महाराज के बीच बहुत अच्छा व्यवहार था। दोनों आचार्य बडे प्रेम के साथ मिला करते थे। वह सुन्दर दृश्य अब भी मेरे नेत्रों के सामने ज्यो का त्यों है। दोनों आचार्य सूर्य निकलने के बाद जगल मे

पधारते और बहुत लम्बे समय तक प्रेमभीनी सात्विक चर्चा किया करते ।

दूसरी बार भी आप का सम्मेलन कुचेरा मे ही हुआ। यह घटना सन् चालीस की है, जब आप बगडी चातुर्मास के बाद वहा पधारे थे। संयोगवश उस समय भी मेरे वर्तमान पूज्य गुरु महाराज अर्थात् मेरे पूज्य बड़े गुरु भ्राता शान्तस्वभावी प्रवर्तक मुनि श्री हजारीमलजी महाराज भी वहा विराजमान थे। आप भी एक उदार,आदर्श, प्रकृत्या भद्र और पवित्र मुनि महाराज हैं। इस बार भी दोनों महानुभावो मे कितना प्रेम रहा यह लिखा नही जा सकता। वास्तव में वह प्रेम अपार था।

यद्यपि दोनो प्रेम प्रसगो पर मै आप से यथेष्ट लाभ न ले सका, क्योकि पहली बार मै नव दीक्षित और अल्पवयस्क था और दूसरी बार आप वय. परिपाक और शारीरिक अस्वस्थता के कारण अधिकतर मौन रहते थे। फिर भी जितना आप से परिचय हुआ, उस से मुझे अधिक आनन्द का ही अनुभव हुआ है और उन के व्यक्तित्व की छाप हृदय पर अकित हुई है।

पूज्य श्री के विचारो और व्यवहार की उदारता प्रकट करने के लिए इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि आप को और आपकी सम्प्रदाय के दूसरे सन्त मुनिराजो को मैंने अपने गुरु महाराज से सद्भावना और प्रेमपूर्वक पेश आते देखा है।

मै अपने समाज का अहोभाग्य समझता हूँ कि जिस में आप सरीखे पूज्यपाद सन्त मुनिराज है।

आज अगर समाज में साम्प्रदायिकता की वज्रभित्तियाँ खड़ी न होती तो मेरा खयाल है पूज्यश्री सरीखे परमपुनीत मुनिराजो के सम्पर्क से अपना यह समाज अपने अतीत गौरव को प्राप्त करने मे बहुत बढ़ गया होता।

१२—जैनाचार्य पू.श्री जवाहरलालजी म.सा.की जीवन झांकी

(प्रवर्तिनी महासतीजी श्री उज्ज्वल कंवरजी)

जैनाचार्य जैसे महान् विचारक एव विवेचक सन्तपुरुष के लिए कुछ कहना मेरे लिए जितना सद्भाग्य पूर्ण है, उतना ही मुश्किल भी, क्योकि उनके घनिष्ट परिचय में आने का मुझे अवसर ही नही मिला! परन्तु सूर्य को दूर से देखने वाला कोई भी व्यक्ति यह तो कह सकता है कि सूर्य पृथ्वी पर प्रकाश फैलाने वाला ज्योतिपुंज है, वैसे ही मुझे भी कहना चाहिए कि वे एक धर्म प्रवर्तक है ।

विद्वानो का यह वाक्य "I come like light in the world" भावार्थः- मै जगत मे प्रकाश की तरह आता हूँ,। धर्म (सत्य) प्रवर्तको ही के लिए है।इतना होने पर भी वास्तव में देखे तो धर्मप्रवर्तको का रास्ता हमेशा सरल, साफ नहीं होता। उन्हे प्रचंड विरोधो का सामना करते हुए प्रगति करनी पडती है। सच कहे तो सर्वसाधारण लोग सत्य-प्रकाश को समझ भी नही पाते हैं। वे तो अज्ञान अंधकार मे चाहे जिसके पीछे घूमते रहते है। यही कारण है कि आम जनता का मानसिक और आत्मिक विकास बहुत ही कम हो पाता है। इस वास्ते कह सकते है कि सामान्य लोगो के हृदय उल्लू के नेत्रो की तरह ज्ञानयुक्त प्रकाश को ग्रहण करने मे असमर्थ रहते है। उल्लू अपने नेत्रो की कमजोरी न समझते हुए सूर्य-प्रकाश को चाहे बुरा कहे या नही, परन्तु साधारण लोग तो अपने हृदय की दुर्वलता नहीं पहचान कर सत्य-प्रकाश को ही बुरा वताते है।

अन्याय, दुराग्रह और प्रमाद (आलस्य) के पहलुओ को सर्व सामान्य लोग आज भक्षक के बदले रक्षक मान बैठे हैं। इस कारण आज के सत्यप्रवर्तको के कंधो पर लोगो के इन मोह जालो को चीरने की दुगुनी जिम्मेवारी आई हुई है। क्योकि इन मोहजाल के पडदो को चीरे विना उनके दिलो-दिमाग सत्य-प्रकाश को ग्रहण नहीं कर सकेगे।

पूज्यश्री के जीवन की विशेषताएं भी ऐसी ही है। उनके भी जीवन का अधिक भाग (ऊपर लिखे अज्ञानियो की गैरसमझ दूर करके सत्य-प्रकाश उनके दिलो-दिमाग मे पहुँचाते हुए) अनेक विरोधो एव विरोधियो का सामना करने मे व्यतीत हुआ, कहा जा सकता है। इस वास्ते वे आज न केवल जैन पथ प्रदर्शक के नाते से, वल्कि मानवीय उदारता के मार्गदर्शक की भांति चमक रहे हैं और यह चमक हर प्रवर्तक को अनेक खडतर विरोधो का मुकाविला करने पर ही मिल सकती है।

वर्तमान युग मे वैज्ञानिक शोधो के फलस्वरूप उसकी यशस्विता विमान, रेडियो और वायरलेस जैसे साधनो के रूप मे हम प्रत्यक्ष देख सकते है। ये सव धीरज, लगन, विवेक और साहस के परिणाम है, इतने पर भी वैज्ञानिको के सहारे से तो हम हजारो मील दूर की बाते ही देख और सुन सकते है, परन्तु पूज्यश्री ज़ैसे वैज्ञानिको के सहारे से हम विना किसी साधन के केवल अपने हृदय रूपी यत्र का उपयोग करके विश्व भर की भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें देख, सुन और बता भी सकते है। इतना ही नही चाहें तो हम अपना आत्मिक विकास साध कर अमरता को भी प्राप्त कर सकते हैं। अब पाठक स्वयं बतावे कि कौनसा वैज्ञानिक कल्याणकारी एव महान है ? इस तरह स्वय पूज्यश्री भी वर्तमान समाज में जैन समाज का गौरव बढ़ाने वाले वैज्ञानिक हैं। इनकी वाणी हमें महारम्भ (यत्रवाद) की सत्यानाशी प्रवृत्ति से बचा कर अल्पारभ (गृह उद्योग) की प्रवृत्ति की ओर ले जाने वाली है। इसलिए स्तुत्य है।

इस तरह की विवेचना के बाद हर व्यक्ति जान सकता है कि मनुष्य जीवन की महत्ता उसकी भौतिक विजय पर ही नहीं, किन्तु उसके आत्मिक सत्य की शोध पर आश्रित है। इसलिए वास्तविक तौर पर आत्मिक सत्य ही मनुष्य को हर जगह चिर शाति दे सकता है। वैसे ही इतिहास में भी उन्ही के नाम सुवर्णाक्षरों में लिखे रहते हैं, जिन्होने आत्मिक विजय पाई है।

इसलिए कह सकते हैं कि समय शूरवीरों को भुला सकता है, परन्तु सत्पुरुषों को नही। सत्पुरुषो को भुलाना उसके सामर्थ्य से बाहर है। पराक्रमी पुरुष प्रजा के शरीर पर राज्य कर सकता है न कि हृदय पर। जनता के हृदय सम्राट् तो सन्त महात्मा ही हो सकते हैं।

पराक्रमियो की पाशविक शक्ति अपने भय द्वारा लोगो से अपने सामने अपनी आज्ञा आज भी मनवा सकती है। परन्तु 'गाय बछडे' की भाति अपने पीछे लोगो को रखने वाली तो सत्पुरुषों की दैवी शक्ति और उनकी विश्वप्रेम की भावना ही है। हम आज 'जैन जवाहर' का इस हेतु अनुसरण कर सकते है कि उनके सहारे से अपने भक्त हृदय को विकसित कर उनके साथ आत्मविकास कर सके।

❑

राजा-रईसों आदि की श्रद्धाजलियां

१३—महाराजा साहेब श्री लाखाधिराज बहादुर एस. बी. ई., के .ई. एस. आई., एल.एल. डी., मोरवी नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय ना प्रतिभाशाली धर्मनायक जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराजश्री जेवा वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध सतनु राजकोट मा स. १९९२ नुं चातुर्मास थता, मोरवी मा तेमज काठियावाडना अन्य स्थलो मा तेमनी यशकीर्ति फेलाता, आवा महानुभावनुं चातुर्मास मोरवी मा थाय तो अमारी जैन अने जैनेतर प्रजा तेमना सदुपदेश नो लाभ लई कृतार्थ बने एवी भावना थी अमारा शहेरना अग्रेसरो मारफत मोरबीना चातुर्मास माटे अमे पू. महाराजश्री ने विनती करेली, जे तेओ श्रीए सहर्ष स्वीकारी स. १९९३ नु चातुर्मास मोरवी मां पसार कर्यु

मोरवी नी अमारी स्थानकवासी जैन प्रजाए जे उत्साह, खत अने प्रेमभरी लागणी थी पूज्यश्री नु स्वागत कर्यु, तेमज बहारना सेकड़ो मेमानो ना अतिशय सत्कार माटे अमारी जैन प्रजाए जे जेहमत उठावी हती, तेनी अत्रे नोंध लेवामां अमने सतोष थाय छे।

पू महाराजश्री ना चातुर्मास दरम्यान तेओश्रीना प्रवचन नो तेमज अगत परिचय नो लाभ लेवाना अपने घणा प्रसगो मल्या हता। पू. श्री ना व्याख्यान मा जैन धर्म नी व्यापकता, सस्कारिता अने उदारता ने व्यक्त करता, जैन तत्व विषयक मधुर व्याख्यानो अमे सांभलेला। तेनी अमारा ऊपर ऊंडी छाप पडी छे।

पू श्री ना दरेक व्याख्यानो मा प्रार्थना ने महत्व नु स्थान मलतु। जीवन ने सार्थक अने प्रभुमय बनाववामा प्रभु प्रार्थना एक अमोघ साधन छे, अने ए कारणे पूज्यश्री प्रार्थना उपर हृदय स्पर्शी विचारो द्वारा सचोट उपदेश आपता अने प्रभु भक्ति तरफ जनता नु लक्ष खेचता।

पूज्य महाराज श्री नी तलस्पर्शी विद्वत्ता, समन्वय शैली अने कोई ने पण कडवु न लागे छता हितकर सत्य उच्चारवानी सादी छता भव्य पद्धति थी अमने घणोज सतोष थयो हतो।

पूज्य महाराजश्री दीर्घायु भोगवे, धर्मशास्त्र नी उन्नति ना कार्यो करता रहे अने एमना देदीप्यमान पकाश थी भारतवर्षी कल्याण साधे एज अमारी भावना छे।

१४—श्रीमान् ठाकुर श्री दीपसिंहजी साहेब वीरपुर नरेश

श्रीमान् जैनाचार्य महाराज श्री जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे विक्रम संवत् १९९२ थी १९९५ सुधी काठियावाडमां विहार करता हता ते दरम्यान मने युवराज अने राजकर्ता तरीके तेमने वीरपुर, राजकोट, सायला अने मोरबी मा मलवानो प्रसंग मल्यो हतो। जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे स. १९९२ ना अरसा मां पहेला वीरपुर पधार्या त्यारे संयोगवशात् हूँ राजना काम प्रसंगे बाहरगाम गयेलो। पाछल थी पूज्य पिताश्री हमीरसिंह जी साहेब तेमने मलवा पधार्या। तेमने मली पोते बहुज खुशी थया अने तेमना ज्ञाननो तथा तेमना प्रवचन नो लाभ पोताना युवराज ने मले एटला खातर एक दिवस आग्रह करी वीरपुर मां वधारे रोक्या अने मने तुरत वीरपुर मां बोलावी महाराज साथे मिलाप कराव्यो। महाराजनु प्रवचन पांच मिनट साभलताज मारा मननी अदर छाप पड़ी के "यथा नाम तथा गुण" प्रमाणे जवाहलालजी महाराज नुं जेवुं नाम एवाज पोते भारतवर्ष ना एक जवाहीर छे, एवी जातनी मने ऊँडी छाप पडी अने तेमनु प्रवचन खूब सांभल्यु। छता एटला थई मने सतोष नही थवाथी में ऊपर लख्या स्थलोए अनेक बखत पोताने मलवानो प्रसंग उपस्थित करी बखतो बखत हुँ तेमना प्रवचन मा राजा अने प्रजा ने पोत पोताना कर्तव्य नो बोध आपता सांभली बहु आनद मेलवतो अने ते कोई दिवस भुलाय तेम नथी। एटलुज नही पण तेमना प्रवचन नो बखतो बखत लाभ लेवा ज्यां महाराजश्री विहार करता होय त्यां जई साभलवानी तीव्र इच्छा थती अने हजी थाय छे पण महाराजश्री काठियावाड़ मा विहार करता हता ए दरम्यान मा ज पूज्य पिताश्री नो स्वर्गवास थता राजनो बोझो शिर ऊपर आवी पडतां सांसारिक उपाधि ने लई जवाहरलाल जी महाराज ना दर्शन नो लाभ वधारे उठावी शक्यो नथी जे माटे घणो दिलगीर छु।

प्रभु पासे मारी एवी प्रार्थना छे के परमात्मा तेमने तदुरुस्ती साथे लाबु आयुष्य आपे अने तेमना ज्ञाननो लाभ भारतवर्षनी जनता लीए अने जीवन मां तेमनो बोध उतारी जीवन ने उज्ज्वल बनावे।

१५—हिज हाईनेस महाराणा राजा साहेब बहादुर श्री बांकानेर नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय ना जैनाचार्य पूज्य श्रीमान जवाहरलाल जी महाराज श्रीनु बांकानेर पधारवु थयु ते बखते तेओ श्रीना प्रवचनो साभलवानो लाभ अमने प्राप्त थयो हतो। पूज्यश्रीना व्याख्यान घणा सुदर अने आकर्षक हता। तेओश्रीना उत्तम चारित्र नी, सरल मायालु स्वभाव नी अने ऊँचा ज्ञाननी अमारा ऊपर ऊंडी छाप पड़ी छे। पूज्यश्री दीर्घायु भोगवे अने पतित अवस्थाने पामता जीवने पोताना ज्ञाननो लाभ आपे एज अमारी भावना छे।

१६—श्रीमान् ठाकुर साहेब श्री मूली नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदायना पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराजनु राजकोट चातुर्मास थएलु ते बखते राजकोट जता एक दिवस माटे अहीं तेओनु पधारवु थएलु, ज्यारे अमोने तेओश्रीनो फकत एकज व्याख्यान सांभलवानो प्रसंग प्राप्त थएल हतो।

पूज्य महाराज श्रीए व्याख्यान मा जैन धर्म मा समाएला केटलाक पवित्र तत्वोनी सारी समजावट करवा उपरान्त शुद्ध चारित्र साथे प्रभु भक्ति करवा थी थता महान लाभो अने मनुष्य जिदगीनु सार्थक्य ए बहुज सुन्दर रीते समजावेलु हतु।

पोते वयोवृद्ध छता, धर्मना फेलाववा खातर घणो परिश्रम वेठे छे। तेओनी बोध आपवानी एवी तो असाधारण शैली छे के जैन अने जैन सिवायना बधा सांभलनाराओ ने तेओश्री तरफ पूज्यभाव उत्पन्न थाय।

टुंक बखतना परिचय मां पण तेओश्री ना ज्ञान अने विद्वत्ता माटे अमोने घणीज खुशी उत्पन्न थयेल छे।

१७—श्री मातदेव राणा साहब, पोरबन्दर

परम कृपालु, परमपूज्य, जैनाचार्य, सन्तशिरोमणि श्री जवाहरलाल जी महाराज श्रीना पवित्र चरण कमलनी सेवा मां.-

पोरबंदर थी लखी चरण रज सेवक मातदेव राणा ना सविनय [illegible] स्वीकारशो जी। लखवा विनंती ए के आप श्री अत्रे पोरबंदर पधारी पोरबंदर नी प्रजा ने [illegible] कल्याण माटे जे सद्बोध रूपी अमृत रसनुं पान कराव्युं छे ते कदी पण भुलाय तेम नथी। आप श्री ना [illegible] उपदेश, आप श्रीनुं अति सादुं जीवन, उच्च चारित्र, शुद्ध अहिंसा पालन आदि उच्च सद्गुणो सदा याद आव्या करे छे। आप श्रीना उदार दिल ना परिणामे कोई पण जात के धर्म नो भेदभाव राख्या सिवाय समभावे विशाल दृष्टि थी आप श्रीए प्राणिमात्र नुं कल्याण केम थाय ए भावना थी जे उपदेश आप्यो छे ए खरेखर अमूल्य अने प्रशंसा पात्र छे। महाराज श्री! आप श्री ना जीवन ने धन्य छे। आप श्री ना सदुपदेश मुजब जो अमे वर्ती शकीए तो जरूर अमे मानव जीवन नी सार्थकता करी शकीए।

आप श्री ना उपेशनां वचनो हृदयना ऊंडापण थी निकलतां। ए हतो शुद्ध आत्मा नो आवाज अने तेथीज श्रोता जनो पर तेनी सचोट छाप पड़ती। संत पुरुषो पोतानी प्रशंसाना लोभी न ज होय छता गुणवान् विभूति ना सत्य गुणगान करवा मां पण एक प्रकार नो आनन्द छे। एटले आप श्री ने प्रिय लगाडवा मां आ शब्दो नथी पण जे सद्गुणो आप श्री मां जोया ए स्वामाविक बोलाई जाय या पत्र मां लखाइ जाय तो कदाच आप श्रीने प्रिय न लागे तो क्षमा करशो जी। सतो ते खुशामद प्रिय होता नथी।

एटले आ खुशामद ना शब्दो नथी पण अनुभवनी सत्य हकीकत छे। अने ते स्वामाविक लखाइ जाय छे।

१४–श्रीमान् ठाकुर श्री दीपसिंहजी साहेब वीरपुर नरेश

श्रीमान् जैनाचार्य महाराज श्री जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे विक्रम संवत् १९९२ थी १९९५ सुधी काठियावाडमां विहार करता हता ते दरम्यान मने युवराज अने राजकर्ता तरीके तेमने वीरपुर, राजकोट, सायला अने मोरवी मा मलवानो प्रसंग मल्यो हतो। जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे स. १९९२ ना अरसा मां पहेला वीरपुर पधार्या त्यारे संयोगवशात् हूँ राजना काम प्रसंगे बाहरगाम गयेलो। पाछल थी पूज्य पिताश्री हमीरसिह जी साहेब तेमने मलवा पधार्या। तेमने मली पोते बहुज खुशी थया अने तेमना ज्ञाननो तथा तेमना प्रवचन नो लाभ पोताना युवराज ने मले एटला खातर एक दिवस आग्रह करी वीरपुर मां वधारे रोक्या अने मने तुरत वीरपुर मा बोलावी महाराज साथे मिलाप कराव्यो। महाराजनु प्रवचन पाच मिनट साभलताज मारा मनमी अदर छाप पडी के "यथा नाम तथा गुण:" प्रमाणे जवाहलालजी महाराज नु जेवु नाम एवाज पोते भारतवर्ष ना एक जवाहीर छे, एवी जातनी मने ऊँडी छाप पड़ी अने तेमनु प्रवचन खूब साभल्युं। छता एटला थई मने संतोष नही थवाथी मे ऊपर लख्या स्थलोए अनेक वखत पोताने मलवानो प्रसंग उपस्थित करी वखतो वखत हुँ तेमना प्रवचन मा राजा अने प्रजा ने पोत पोताना कर्तव्य नो बोध आपता सांभली बहु आनद मेलवतो अने ते कोई दिवस भुलाय तेम नथी। एटलुंज नही पण तेमना प्रवचन नो बखतो बखत लाभ लेवा ज्या महाराजश्री विहार करता होय त्या जई साभलवानी तीव्र इच्छा थती अने हजी थाय छे पण महाराजश्री काठियावाड़ मा विहार करता हता ए दरम्यान मा ज पूज्य पिताश्री नो स्वर्गवास थतां राजनो बोझो शिर ऊपर आवी पड़ता सासारिक उपाधि ने लई जवाहरलाल जी महाराज ना दर्शन नो लाभ वधारे उठावी शक्यो नथी जे माटे घणो दिलगीर छुं।

प्रभु पासे मारी एवी प्रार्थना छे के परमात्मा तेमने तदुरुस्ती साथे लाबु आयुष्य आपे अने तेमना ज्ञाननो लाभ भारतवर्षनी जनता लीए अने जीवन मा तेमनो बोध उतारी जीवन ने उज्ज्वल बनावे।

१५–हिज हाईनेस महाराणा राजा साहेब बहादुर श्री बांकानेर नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय ना जैनाचार्य पूज्य श्रीमान जवाहरलाल जी महाराज श्रीनु बांकानेर पधारवु थयु ते बखते तेओ श्रीना प्रवचनो साभलवानो लाभ अमने प्राप्त थयो हतो। पूज्यश्रीना व्याख्यान घणा सुदर अने आकर्षक हता। तेओश्रीना उत्तम चारित्र नी, सरल मायालु स्वभाव नी अने ऊँचा ज्ञाननी अमारा ऊपर ऊंडी छाप पड़ी छे। पूज्यश्री दीर्घायु भोगवे अने पतित अवस्थाने पामता जीवने पोताना ज्ञाननो लाभ आपे एज अमारी भावना छे।

१६–श्रीमान् ठाकुर साहेब श्री मूली नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदायना पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराजनुं राजकोट चातुर्मास थएलु ते बखते राजकोट जता एक दिवस माटे अही तेओनु पधारवु थएलु, ज्यारे अमोने तेओश्रीनो फकत एकज व्याख्यान सांभलवानो प्रसंग प्राप्त थएल हतो।

पूज्य महाराज श्रीए व्याख्यान मां जैन धर्म मां समाएला केटलाक पवित्र तत्वोनी सारी समजावट करवा उपरान्त शुद्ध चारित्र साथे प्रभु भक्ति करवा थी थता महान लाभो अने मनुष्य जिदगीनु सार्थक्य ए बहुज सुन्दर रीते समजावेलु हतु।

I wish him a long and successful carrier as a spiritual Guru and guide to the Jain fraternity

हिन्दी—अनुवाद

"जब मैं बीकानेर मे प्रधान मन्त्री था उस समय स्वामी गुरु जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान सुनने का दुर्लभ अवसर एव लाभ प्राप्त हुआ था। स्वामी जवाहरलालजी मे महान दार्शनिक तत्वो को ऐसी सरल भाषा मे प्रकट करने की कला है जिसे साधारण जनता भी आसानी से समझ सकती है। देश के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो मे रहे हुए सत्य के प्रति आपके उदार सहानुभूतिपूर्ण विचार है। विवाद अथवा चर्चावाले विषय को सहनशीलता एवं न्याय के साथ प्रकट करने का आपका ढग वहुत प्रशसनीय है।

जैन समाज के पथ-प्रदर्शक तथा आध्यात्मिक गुरु के रूप में मै उनके दीर्घ एव सफल जीवन की कामना करता हूँ"।

१६—दीवान वहादुर, दीवान विशनदासजी **kt.** जम्मू

I had the honour of paying my homage to the most venerable Jain muni Shree Maharaj Jawaharlalji During my visit to Ajmer. In the course of several interviews which His Holiness permitted me to hold with him there. I was much impressed by his vast Knowledge of Jain Shastras.

जब मैं अजमेर गया हुआ था, मुझे जैन मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने का लाभ प्राप्त हुआ था। पूज्यश्री के साथ वार्तालाप करने के जो थोड़े से अवसर प्राप्त हुए उनमे उनके जैनशास्त्र सम्बन्धी विशाल ज्ञान का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा।

२०—श्री त्रिभुवनदास जे. राजा, चीफ मिनिस्टर, रतलाम

I came in contact with the gifted teacher when he was on a religious tour and paid a visit to Porbandar in 1937 April-May on his way to Morvi to spend the Chaturmasa at the latter place. I attended his many of soul-stirring lectures at Porbandar and the lay public both Jain and non-jain were so keen to persuade Pujyashri to stay on at Porbandar During the ensuing rainy season that I was literally compelled to make an open and public Appeal to him His Highness the Maharaja Rana Sahib Shri Natwarsinghji Bahadur K.C.S.I of Porbandar and other members of the Raj family, state Officials and gentry, learned Brahmins, Sirdars and Jagirdars, Orthodox Vaishnavas, even musalmans, flocked in thousands to hear Pujyashri's learned discourses and almost every one male and female, audience felt personally ennobled by his direct appeal to live and let other live, a life of Peace and Piety and Non-Violence Maharaj Shri Jawaharlalji is not only a great orator but a great soul whose human sympathies

extend for beyond the narrow pole of Jain asceticism or dogma. I wish there were more religious teachers in India of the type of Pujya Shri so that there would be no communal bitterness. I have personally felt myself a betterman after having come in contact with him and the influence that his spiritual megnatism has exerted on me would not be wiped off

I called on Pujyashri again while he was indisposed at Jamnagar and another happy audience with him.

सन् १९३७ का एप्रिल-मई महीना था। पूज्यश्री का चातुर्मास मोरवी में तय हो चुका था। धर्म प्रचार करते हुए आप पोरबन्दर पधारे। उसी समय मुझे इस प्रतिभाशाली धर्मशिक्षक का परिचय हुआ। मैने पोरबन्दर में आपके कई व्याख्यान सुने जो आत्मा मे हलचल पैदा कर देते थे। आगामी चातुर्मास मे पूज्यश्री को पोरबन्दर ठहराने के लिए जैन एवं जैनेतर जनता इतनी उत्कण्ठित थी कि मुझे सर्वसाधारण की ओर से खुले रूप में प्रार्थना करने के लिए वस्तुत बाध्य होना पडा। पूज्यश्री के विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनने के लिए हिज हाईनेस महाराजा राणासाहेब श्री नटवरसिंहजी बहादुर के सी.एस.आई. पोरबन्दर नरेश, राज परिवार, राज्याधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक, विद्वान् ब्राह्मण, सरदार और जागीरदार, कट्टर वैष्णव, यहा तक कि मुसलमान तक हजारो की सख्या मे आते थे। जीना और जीने देना एव शान्ति, पवित्रता तथा अहिंसामय जीवन के लिए जब आप साक्षात् देशना देते थे तो प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने व्यक्तित्व को ऊचा उठा हुआ पाता था। महाराजश्री जवाहरलालजी महान् उपदेशक ही नही किन्तु महान् आत्मा है। आपकी सहानुभूति जैन साधु सस्था या सिद्धान्तो तक ही सीमित नही है किन्तु उनके बाहर भी दूर तक फैली हुई है। मेरी कामना है कि भारतवर्ष में पूज्यश्री के समान बहुत-से धर्मोपदेशक हो जिससे साम्प्रदायिक कटुता दूर हो जावे। आपके परिचय में आने के बाद से मै अपने व्यक्तित्व को कुछ उन्नत अनुभव कर रहा हूँ। आपके आध्यात्मिक आकर्षण ने मुझ पर जो असर डाला है वह कभी मिट नही सकता।

जामनगर मे जब पूज्यश्री अस्वस्थ थे, मुझे मिलने का फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस समय के वार्तालाप से भी मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

२१—श्री जे.एल. जोवनपुत्र, चीफ मिनिस्टर सचिन स्टेट

I had the privilege to hear three sermons of this learned Swamiji when he had kindly camped at Rajkot in 1938-39. India is still a land of saints and Jawahar lalji Maharaj is one of the eminent jewels in the galaxy. His attitude towards life's noble mission is robust and cheerful. He possess in a pre-eminent degree the most outstanding qualities of an Acharya and his sermons balanced with fitting anecdotes full of worldly wisdom go deep into the mind of his hearers Truth is one and indivisible, but so long as there appears the veil of Maya or ignorance, the preachings of such Sadhus help to clear the

way of the Sadhakas. While every soul (Jivatma) is on its evolutionary path to liberation and catches so much of the preachings of such Sadhus for which they have "Adhikar" the benevolent associations of such Sadhus with the public do not fail to do some good to every one of them. They are like trees that give shelter to all who resort to them and like rivers that purify the land they traverse. They come on earth to help and guide the souls that have developed and need nourishment Every sermon of Jawaharlalji Maharaj was full of not only of his Masterly groop of the Jain Philosophy, but replete with his deep study of comparative philosaphy of other Darshanas.

विद्वान स्वामी जी (जवाहरलालजी महाराज) सन् १९३८-३९ मे जब राजकोट विराजमान थे उस समय मुझे उनके तीन व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतवर्ष अभी तक सतभूमि है और जवाहरलाल जी महाराज उस सतमाला के प्रधान रत्नो मे से हैं। जीवन के महान् उद्देश्य के प्रति उनका रुख दृढ और आनन्दपूर्ण है। उनमे एक आचार्य की मुख्यतम विशेषताए अत्यधिक मात्रा मे विद्यमान है। दुनियावी सूझ से परिपूर्ण छोटे-छोटे चुटकलो वाले उनके व्याख्यान श्रोताओ के हृदय में गहरे उतर जाते हैं। सत्य एक तथा अविभाज्य है। किन्तु जब तक माया या अविद्या का परदा रहता है, ऐसे साधुओं के उपदेश साधकों के मार्ग को स्पष्ट करने मे सहायता करते है। जब कि प्रत्येक जीवात्मा अपनी मुक्ति के लिए विकास के पथ पर चल रहा है और ऐसे साधुओ के उपदेशों को ग्रहण करता है जिन के लिए उनका अधिकार है, जनता का ऐसे साधुओ के साथ उपयोगी सत्सग प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ न कुछ लाभ अवश्य करता है। वे वृक्षो के समान है जो पास आने वाले को आश्रय देते है और उन नदियो के समान हैं जो जहाँ-जहाँ प्रवाहित होती हैं उस क्षेत्र को पवित्र बना देती है। वे उन आत्माओं को सहायता पहुँचाने तथा पथप्रदर्शन करने आते है जिन्होने मार्ग प्राप्त कर लिया है और उस पर चलने के लिए शक्ति चाहते है। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का प्रत्येक व्याख्यान उनके जैन दर्शन पर पूरे अधिकार के साथ-साथ दूसरे दर्शनों के भी गहरे तथा तुलनात्मक पाडित्य से परिपूर्ण होता है।

२२—राव साहेब अमृतलाल टी. महेता, बी.ए.एल.एल.बी., भूतपूर्व दीवान पोरबन्दर, लीमडी और धर्मपुर स्टेट

I had the good fortune to attend several lectures of the highly revered Jain Acharya pujya maharaj shri Jawaharlalji in Morvi as well as Rajkot. My admiration for him is not due to only his being Jain Ascetic but to his being a preacher of moral principals common to most religious.

I was very much impressed by his learning, earnestness, eloquence and morvellous lucidity of expression and ex-position. His strong desire for the welfare of his flock often prompted him to take a deep interest in their social life and entitled him and endeered him to them to be called their guide, philosopher and friend

मोरवी तथा राजकोट में परमपूज्यश्री जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के कुछ व्याख्यान सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। केवल जैन साधु होने के नाते ही नही किन्तु सर्वधर्म साधारण नैतिक नियमों के उपदेशक होने के कारण भी वे मेरी प्रशंसा के विषय हैं।

उनकी विद्वत्ता, भावप्रवणता, वाग्धारा एवं व्याख्यान तथा अभिव्यंजना की सरसता ने बहुत प्रभावित किया है। अपने अनुयायियों के हित की तीव्र भावना से प्रेरित होकर वे सामाजिक कार्यो मे बड़ी रुचि लेते हैं। इसीलिए वे लोग आपको अपना नेता, धर्माचार्य तथा मित्र मानते हैं जिसके कि आप पूर्ण अधिकारी है।

२३—राव साहेब माणेक लाल सी. पटेल, रिटायर्ड डिपुटी पोलिटिकल एजेंट

W.I.S. Agency

I had occsion to listen to some of his (Pujya Shri Jawahar lal ji's) sermons during the first satyagraha Compaign of the year 1938 when I was member of the State Executive Council. He was then on a tour in Kathiawar and came down to Rajkot from Jamnagar with a view to bring about peace between the Rajkot State and its people. He had religious ceremonies performed, delivered sermons and used all his persuasive powers and influence to bring about peace which was attained when his camp was actually at Rajkot. His sermons preached constructive peace and contentment in a spirit of duty and bore the impress of a disciplined life with a broad minded universal morality aceptable to all creeds and communities. I wish the Maharaj Shri a long life in his useful humanitarian mission in the disturbed times of brutal wars through which the earth is passing at the present moment.

१९३८ में राजकोट के प्रथम सत्याग्रह संग्राम के समय मुझे आपके (पूज्यश्री के) कुछ व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय मै स्टेट एक्सीक्यूटिव काउंसिल का सदस्य था। पूज्यश्री उन दिनो काठियावाड़ में विचरते हुए राजकोट राज्य तथा प्रजा मे शान्ति स्थापित करने के लिए जामनगर से पधारे थे। आपने धार्मिक अनुष्ठान करवाए, व्याख्यान दिए और शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी सारी प्रवर्तक शक्तियो तथा प्रभाव का प्रयोग किया। परिणाम स्वरूप उनके राजकोट मे विराजते समय ही शान्ति हो गई। वे अपने व्याख्यानो में रचनात्मक शान्ति तथा सन्तोष को कर्तव्य समझने का उपदेश देते थे। वे हृदयविशालता से भरी हुई सार्वजनीन नैतिकता के साथ-साथ जीवन के अनुशासन पर जोर देते थे। उनमे उदार हृदयता से परिपूर्ण सार्वजनीन नैतिकता तथा अनुशासित जीवन की छाप रहती थी। जव कि पृथ्वी दानवी युद्धो के इस क्षुब्ध वातावरण मे से गुज़र रही है, मानवतापूर्ण कार्यो के लिए मैं महाराजश्री के दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

24–श्री वैकुण्ठप्रसाद जोशीपुरा सेक्रेटरी टू दी दीवान पोरवन्दर

I cherish the happiest recollections of the visit of revered Jain Acharya Shri Jawaharlal ji maharaj to Porbandar during his tour in Kathiawar about five years ago. Brief as was his stay at Porbandar, it proved to be of lasting benefit to the hundreds of citizens who attended his inspiring discourses every morning among whom I was privilaged to be one, one whose admiration of the Preceptor has perhaps been second to none. HIs versatile exposition of the highest principle of "Ahinsa" as applied to daily life and his powerful exortation to envolve all that is best in human life evoked spontaneous response and created around him spiritual atmosphere in which one is roused to the consciousness of the frailities to which man is prove and at the same time of the infinite strength he is capable of exerting to overcome them. My devout feelings go forth to the distinguished Jain Acharya Shri Maharaj and I consider it may great good fortune to have had the opportunity of paying him my humble and respectful tribute.

पाच साल पहले काठियावाड़ मे भ्रमण करते हुए जब जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज पोरबन्दर पधारे, उस समय की आनन्ददायक स्मृतिया मेरे हृदय पर अकित है। पोरबन्दर मे आपका विराजना अल्प समय के लिए ही हुआ था फिर भी सैकड़ो लोगों ने आपके प्रेरणा से भरे हुए उपदेश सुने और स्थायी लाभ उठाया। प्रतिदिन सुबह व्याख्यान सुनने वाले भाग्यशालियो मे से मै भी एक था किन्तु उस उपदेशक के प्रशंसको में मेरा स्थान सभवतया किसी से पीछे नहीं था। दैनिक जीवन में आचरण करने योग्य अहिंसा के उच्चतम सिद्धान्त पर आपकी भावमयी वाग्धारा तथा मानव जीवन में रही हुई श्रेष्ठ बातो को प्रोत्साहित करने वाले आपके प्रेरक शब्द तत्काल असर करते थे। चारो तरफ एक ऐसा आध्यात्मिक वातावरण बन जाता था जिससे आत्मा मानवीय प्रलोभनों की तुच्छता समझकर ऊचा उठ जाता था। साथ ही वह अपनी अनन्त शक्ति का अनुभव करने लगता था जिससे अपने को उन्हे जीतने के प्रयत्न के लिए पूर्ण समर्थ मानने लगता था। असामान्य जैनाचार्य श्रीजीमहाराज के प्रति मेरी भक्ति भावना रखता हुआ मै इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ कि उनके प्रति श्रद्धाजलि प्रकट करने का अवसर मिला।

25–श्री द्वारकाप्रसाद एल. सरय्या, बी.ए.एल–एल.बी., पोलिटिकल सेक्रेटरी, नवानगर स्टेट

I first attended his discourse on the life of Lord Shri Krishna on Shravan Vad 8th in that year I was struck by the great spirit of toleration shown by him in his remarks about Lord Shri Krishna whom I revere and adore sincerely being a Vaishnav muself.

There is no mention in Sanatani Shastras about the near relationship of Lord Shri Krishna with the great Jain Tirthankar Shri

Neminath ji. which he explained at great lenght. I was charmed with his nice performance and so greatly attracted that I then made it a point to attend as many of his discourses as possible consistently with my other duties. I remember to have not only attended several of his discourses but also found pleasure in seeking his company, whenever it suited me to do so. His lectures were charactinized by a high pitch of learning and erudition. HIs eloquence was so impresssive and attactive that many non-jain like myself took pleasure in listening to him.

I may be pardoned if I mention that he even once paid a visit to my humble habitation. It so happened that the late Modi Shamji Shivijı who was a great philanethropist was my next door neighbour. He invited the Maharaj Shri once to his place. I was then at home and on my request the Maharaj Shri immediately came to my house and not only honoured me by a visit, but accepted some milk from my house. It so happened that my cows were being milked at the time and following the Jain Principle of सूजतो आहार of the spontenous gift, he was pleased to accept it from me. I think it is the theory of कर्म or action, that every man is responsible not only for his own actions but also for thing done for him. That is, if certain things are done not by you, but for you by others, you cannot escape your responsibility for such things. I think this सूजतो आहार means the acceptence gifts not intended for the recipient It creates no responsibility for the individual enjoying its benefit. This is how I understand this principle and I believe in accepting this gift of milk from my cows, being sponteneous and not originally meant for the Maharaj Shri, was acceptable to him. What I want to convey by this incident is that, his spirit of toleration was so great as not to make any distinction between a Jain adn non-Jain. In his eyes all were equal and this spirit of true generasity adorns his life I take this opportunity of paying my humle but sincere homage to Maharaji Shri Jawaharlal ji by this short note of mine which I hope will be acceptable to him like my milk.

उस वर्ष की श्रावण वदी अष्टमी के दिन मैने पहले-पहल भगवान् कृष्ण के जीवन पर उनका व्याख्यान सुना। मै स्वय वैष्णव हू और भगवान् कृष्ण का भक्त तथा पुजारी हूं। मुनिश्री ने श्री कृष्ण का वर्णन करते हुए जो सहिष्णुता की भावना बताई मै उससे चकित रह गया। भगवान् श्री कृष्ण और महान् जैन तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ जी के निकट सम्बन्ध की बात सनातनी शास्त्रो में नहीं है। इस कथा का उन्होने बडे विस्तार के साथ वर्णन किया। मै उनके सुन्दर भाषण पर मुग्ध हो गया और इतना अधिक आकृष्ट हो गया कि मैंने अपने दूसरे कार्यो के साथ-साथ उनके यथा सम्भव अधिक से अधिक भाषण

सुनने का निश्चय कर लिया। मुझे स्मरण है कि मैंने उनके भाषण ही नहीं सुने किन्तु सुविधानुसार सत्सग भी किया। उनके भाषण शिक्षा और पांडित्य के उच्च आदर्श से भरे होते थे। उनका भाषण प्रभावशाली तथा आकर्षक था कि मेरे सरीखे बहुत-से अजैन भी उसे सुन कर प्रसन्न होते थे।

इस बात का निर्देश करते हुए मै क्षमा चाहता हूँ कि उन्होंने मेरे तुच्छ निवास स्थान पर भी पदार्पण किया था। बात यह थी कि प्रसिद्ध दानी स्वर्गीय मोदी शामजी शिवजी मेरे पडोसी थे। मुझ से दूसरा उन के घर का द्वार था। उन्होंने एक बार महाराजश्री को अपने घर पर निमंत्रित किया। मै उस समय घर पर ही था। मेरी प्रार्थना को महाराजश्री ने शीघ्र स्वीकार कर लिया और मुझे आपने पदार्पण द्वारा ही सम्मानित नही किया किन्तु मेरे घर से थोड़ा-सा दूध अङ्गीकार किया। मेरी गौएं उसी समय दुही जा रही थी और 'सूजतो आहार' के सिद्धान्तानुसार उस स्वत. सिद्ध भेट को उन्होने स्वीकार कर लिया। मेरे खयाल मे यह कर्मवाद का सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने द्वारा किए गए कार्यो के लिए ही नही किन्तु उन बातो के लिए भी उत्तरदायी है जो उस के लिए की जाती है। तात्पर्य यह है कि कुछ वस्तुए आप नहीं करते, किन्तु आपके लिए दूसरे करते है। ऐसी वस्तुओं के उत्तरदायित्व से आप नही बच सकते। मेरी दृष्टि में सूजतो आहार का अर्थ है ऐसी वस्तु को स्वीकार करना जिसमे ग्रहीता का निमित्त न हो। इस प्रकार से उपभोग करने वाला व्यक्ति उस वस्तु के उत्तरदायित्व से बच जाता है। मैंने इस सिद्धान्त को इसी रूप मे समझा है।

यही बात मेरी गौओ का दूध स्वीकार करने में भी मैंने समझी है, क्योकि वह दूध स्वाभाविक रूप से दुहा जा रहा था महाराज श्री के निमित्त से नही, इसीलिए वह उनके लिए स्वीकरणीय हुआ। इस घटना से मै यह कहना चाहता हूँ कि उन में सर्वधर्म सहिष्णुता,की भावना इतनी बढ़ी हुई है कि वे जैन और अजैन में कोई भेद नहीं डालते। उन की दृष्टि मे सभी समान है। यह सच्ची उदारता उन के जीवन को अलकृत करती है। मै इस छोटे लेख द्वारा महाराज श्री जवाहरलालजी के प्रति नम्र और श्रद्धापूर्ण भक्ति अर्पित करता हूँ। आशा है, मेरे दूध की तरह वे इसे भी स्वीकार करेंगे।

२६—एक मुस्लीम ना हृदयोद्गार

(ले. जनाब अब्दुल गफुर नूरमहम्मद बलोच, कामदार मटियाणा स्टेट जूनागढ़)

पूज्यपाद धर्मात्मा सुप्रसिद्ध जैनाचार्य गुरुवर महाराज श्रीजवाहरलालजी नुं जीवन-चरित्र लखाय छे एम मारा साभलवामा आवता ते सापडेली अमूल्य तके मारा जेवा एक मुस्लीम श्रोता ने तेओ श्री नी वाणि-श्रवण अने वांचन तेमज अनुभव थी थयेल धर्म भावनाए उत्पन्न करेली मानबुद्धिना आवेशे ते पूज्य महात्मा निसबते बे शब्दो लखवा प्रेरायो छु।

तेओ श्री पोतानी जन्मभूमि मारवाड़ दूर देश थी बिहार करी वि. स. १९९२ मा काठियावाड मां पधारी आप्रान्तनी जनता ने दर्शन नो लाभ आपवा उपरान्त राजकोट, जामनगर अने मोरबी मा स. १९९२ थी १९९४ सुधीत्रण चोमासा करी जे धर्मोपदेश आपी लाखो श्रोताजनो ना मलीन आत्माओ ने पावन कर्या छे तेमज पावन थवाना नेक पवित्र रस्ते चडाव्या छे ते महान उपकार काठियावाड नी धर्मनिष्ठ प्रजा सेंकडो वर्ष नही भूलवा साथे तेओश्रीए आपेला ज्ञानसागर रूपी व्याख्यानो ऊपर थी भविष्यनी प्रजापण बोध ग्रहण करती रही पावन थती रहेशे. अने तेओ पूज्य

महात्मा नी वार्षिक जन्म तिथि उजववाना के ते निमित्ते कई धर्मनीम करवानो हमेशने माटे योग्य प्रबन्ध करी ते ऋषिवर नु सस्मरण ताजु राखता रही जन समाज अने विशेषे करीने जैन समाज ऊपर करेला उपकार नुं यत्किचित् ऋण अदा करता रहेशे एम मानु छु.

ज्यारे पूज्य महर्षि विहार करता-करता जूनागढ़ पधारेला त्यारे अकिकरने दर्शन नो लाभ मारा परम पूज्य परमोपकारी वडील भ्राता के पिता जे कहू तेओ मा. मे. वकील मुरब्बी जेठालाल भाई प्रागजी रूपाणी ना अहर्निश समागम ना प्रतापे मेलववा हू भाग्यशाली थयो हतो. अने महाराज श्री ना व्याख्यानो तथा धर्म चर्चा साभलवा नो अमूल्य लाभ मल्यो हतो. ए सन्त समागम तेमज धर्मना महान् सैद्धान्तिक व्याख्यानो नी मारा अन्त करण ऊपर थयेली विजलीक असर थी मारा हृदय मा थी अन्धकार रूपी मलीनतानो नाश थवा साथे प्रकाशरूपी धर्मभावना जो जागृत थई होय तो ते वन्दनीय पूज्य तपस्वी जवाहरलालजी महाराज श्री नी धन्यवाणि नो ज प्रताप मानी रह्यो छु.

तेओश्रीए पोताना अलौकिक ज्ञान सागरमा थी मधुरवाणी रूपी आपेला व्याख्यानो ना तय्यार थयेला पुस्तको नो हूं ग्राहक हतो. ते बधा पुस्तको खरीद करी तेना वाचन मनन नो पूरतो लाभ मे लीधो छे, ए वाचन मनन थी मारो आत्मा रगाई जवा साथे मारा भविष्यना बाकी रहेला जीवन ने दया, नीति, सत्कर्म, अहिंसा, दान, धर्म विगैराना सत्यमार्गे दोरनारा तरीके हमेश ने माटे सहायभूत बनशे। ए बोध ने हू मारा जीवनमी ज्ञान नौका तरीके मानु छु.

जैन धर्म ना महान् आचार्य पूज्य जवाहरलालजी महाराज पोताना उपदेश व आचरण द्वारा लोको पर जे महान् उपकार करे छे ते काई ओछो उपकार नथी। पण तेओ पोते उपकार करेलो नहि मानता पोताना आत्म-कल्याणार्थे करी रहेला माने छे। परन्तु तेओ श्री ना महाज्ञान प्रतापे लाखो मनुष्यो ना आत्मकल्याण थया छे थाय छे अने थशे। ए बात जन समाज भूली शकशे नहीं, खरेखर तेओ श्री जगद्गुरु सम छे.

महात्मा श्री पोते जैन धर्म ना आचार्य महापडित छे अने महान् उपदेशक छे, परन्तु पोताना व्याख्यान मा सर्वधर्म मा थी बोधिक दाखला दृष्टान्तो आपी सर्वधर्म नु सरखापणु बतावनी श्रोता जनो मां दुनियाना सर्वेधर्मो प्रत्ये मानबुद्धि उत्पन्न करावे छे, कोई पण धर्म नी निदा करवी के सांभलवी तेमा पाप माने छे अने मनावे छे। तेओ श्री कुरान शरीफ, गीता, रामायण, भागवत, बाईबल आदि ग्रन्थों नो अभ्यास करी वाकेफी मेलवी चुका छे। तेओश्री लाबु आयुष्य भोगवे एम इच्छु छु।

२७ – राव वहादुर मोहनलाल पोपट भाई,

भू. पू. सदस्य स्टेट कांउसिल, रतलाम

सन् १९३५ मे श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे रतलाम में प्राप्त हुआ था। उस समय पूज्यश्री के व्याख्यानो का लाभ मैने पूरे चार मास तक लिया था तथा आपकी यथेष्ट सेवा भी की थी। पूज्यश्री की भव्य एव प्रभावान्वित मुख-मुद्रा का मेरे अन्तस्तल पर जो प्रभाव पडा था वह शब्दो द्वारा नहीं कहा जा सकता। आपके मुखकमल से वह शान्तिस्रोत प्रवाहित होता है, जिसमे अवगाहन करके मानवमात्र कृतकृत्य हो जाता है। जब आपके दर्शनमात्र से मानव अपना अहोभाग्य समझता है, तब हार्दिक उद्गारो के साथ प्रवाहित होने वाली आपकी सात्विक वाग्धारा से

मनुष्य कितना प्रभावित हो सकता है यह स्वत· कल्पनागम्य है। इसका अनुभव जब में श्रीमान् रतलाम नरेश के साथ चातुर्मास मे गया था, तब हुआ था।

श्रीमान् रतलाम नरेश ने आपका व्याख्यान सुनने के लिए आधा घटा निश्चित किया था, किन्तु जब पूज्यश्री ने योग्य राजा, प्रजा एवं योग्य अधिकारियों के कर्तव्याकर्तव्यो की तात्विक मीमासा प्रारम्भ की तब आधे घंटे के बजाय दो घंटे का समय व्यतीत हो जाने पर भी श्रीमान् रतलाम नरेश की व्याख्यान श्रवण करने की पिपासा शान्त नही हुई। व्याख्यान की सर्वप्रियता का इससे बढकर और उदाहरण क्या दिया जा सकता है। आपके व्याख्यानो में जैनदर्शन के साथ अन्य दर्शनो की तुलनात्मक प्रक्रिया और साथ ही सर्वधर्म-समन्वय की जो पद्धति दृष्टिगोचर होती है वह बड़ी ही चित्ताकर्षक है। किसी भी गूढातिगूढ विषय को सर्वसाधारणगम्य भाषा में समझाना तो आपकी व्याख्यान शैली की खास विशेषता है।

जब पूज्यश्री प्रभु प्रार्थना करते हैं तब आपकी तन्मयता के साथ सारा श्रोतृ मण्डल भी तन्मय हो जाता है। आपकी अलौकिक प्रार्थना शैली से भक्त एवं भगवान के अनन्यतम सम्बन्ध का मानो प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करा देने का सामर्थ्य आपकी प्रार्थना मे विद्यमान-सा प्रतीत होता है। संक्षेप मे कहा जाये तो एक सुयोग्य प्रतिभाशाली वक्ता में जो गुण होने चाहिए, वे सब गुण पूज्यश्री में पूर्णतया विद्यमान हैं।

पूज्यश्री भारतीय महापुरुषो में अग्रगण्य है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एव सम्यक् चरित्र रूप रत्नत्रय का पूर्ण सामञ्जस्य आपके जीवन में ओतप्रोत दिखाई देता है। आप केवल जैन समाज के लिए ही नही बल्कि सारे भारतवर्ष के लिए आदर्श स्वरूप एव पथप्रदर्शक हैं। पूज्यश्री 'जवाहर' नाम वाले यथार्थ में भारत के जवाहर है।

अन्य शब्दो मे कहा जाय तो पूज्यश्री अहिंसा और सत्य के महान् प्रचारक, श्रमण सस्कृति के जाज्वल्यमान रत्न, धर्म और कर्म मार्ग के अप्रतिम प्रकाशक, मोक्ष मार्ग के अद्वितीय प्रसाधक, तत्त्वज्ञान के अपूर्व व्याख्याता एव जैनधर्म के प्रबल प्रचारक हैं। आप जैसे आदर्श मुनिराज के जीवन-चरित्र के प्रकाशन की कमी का दीर्घकाल से अनुभव किया जा रहा था परन्तु बडे हर्ष की बात है कि उस कमी को पूरा करने का श्री 'जवाहर-जीवन-चरित्र-समिति' भीनासर ने निश्चय किया है।

अन्त में मेरी शासनदेव से यही विनम्र अभ्यर्थना है कि पूज्यश्री दीर्घायु हों एव देश, समाज और राष्ट्र के पथप्रदर्शन में सदैव अग्रगण्य रहे।

२८—श्रीयुत काजी ए. अख्तर, जागीरदार, जूनागढ़ स्टेट

The late Swami Dayanand was an ideal monotheis, whom the fertile soil of our Kathiawar had produced and who wrought a mighty change to the Hindu hierarchy by his gigantic reformation Of such a class of reformers and preachers comes Maharaj Shree Jawaharlal ji as very learned preacher and a great missionary of the Sthankwasi cult It is a privilege to write something about such a sainty

personage who is deeply revered not only by the votaries of his own faith but has a large circle of admirers outside it, and as such an admirer I have been asked to give here a reminiscence of my personal contract with him some six years ago.

It was in the year 1936 that I came in contact with this great man who during his missionary perigrimations came down to Junagarh by travelling on foot from a long distance to give benefit of his learned discourse to his co-religionists. After incessant anxieties and worries of this worldly life one finds great comfort and solace in the company of learned sages and leaders of spiritual thought Such an opportunity was apporded to me by my valuable friednt Jethalal Bhai Rupani through whose kind courtesy I had the pleasure of meeting this Jainacharya who deeply impressed me with his simple habits, polite manners, tolerant spirit and friendly behaviour. His learned discourses had won the hearts of many of his visitors while in his Company everybody felt as ease as if they were sitting with a friend and chatting with him on different topics. There was no air of pretentions sanctity about the Maharaj nor any sort of lugubrious sobriety, but a calm screne and well composed propriety which marked the high and noble mind in this great savant I had a little chat with him on different religious topics and the satisfactory answers to my querries on certain pertinent inter-religious points made me to think of the man as a compromising theosophist rather than a garrulous controversialist.

I was much interested in his talks or rather popular lectures which he delivered to a large audience including men, women and members of other sects and creeds. I attended those sermons for three consecutive days and was much benifitted by his moral and religious precepts which represente the gist and essence of all the true religions. His delivery and power of speech in hindi and even in Gujarati which he spoke with same ease were remarkable and the audience heard him with rapt attention. He did not confine himself to any particular topic but spoke on different aspects of religion and commented on the ethical and spiritual teaching of great sages of yore in a masterly fashion. He mostly dwelt on the intricacies of human life,its miseries and troubles and showed the way how to get out of this tangle by means ascetic practices and austere habits through which a higher plane of spiritual life could be reached. His philosophical analysis of the subjects he dealt with, was not only non-technical and free from scientific terminology, but it was so clear cut, expressive and prectical that it went home to the hearts of his

hearers. The parables and stories which he related by way of illustration were not only amusing but were informing and instructive and left indelible impression on the minds of his audience. Mostly he dilated upon the present day degradation and demoralization and in a lighter vein he used to under rate the irreligiosity and the corrupt ingenuity of the so called religious-minded people. He was disigned to expose the rack hypocracy of the so called religious heads and their priestly importunity and the shameless treachery with which they were sucking the life blood of their own community During the course of his speeches he dwelt on certain reforms to be introduced among the followers of his sect by sheer forces of arguments supported by the authority of the Jain Shashtras which greatly appealed to his audience and once I remember that during the course of his speech the ladies impressed by his admonition resolved on the spot to forsake the undesirable custom of wailing and lamenting over the dead by making a public demonstration His arguments were so convincing that one felt an urgency of prompt and immediate action.

The Maharaj Shree is not only a scholar of his own religion but he seems to have studied the teachings of other religions His theosophical observation of different religions have inspired in him fellow feeling, sympathy, love and regard towards the followers of other faiths and creeds a tolerant spirit lacking in the present day teachers, much less in the reformers and politicians of the day. He preached for tolerance and inter-religious amity which the sores need of the our. I wish there were many preachers of Maharaj Shree Jawahralal ji's type who could alone bring about harmonious relations among the followers of different creeds. Had there been many jawaharlal, the task of national unity could have been easier

In the end I pray that the Maharaj Shree may be spared a long life to fulfill his laudabel mission of binding people in the sacred tie of religion and leading them on the path of heavenly bliss and enternal happiness

स्वर्गीय स्वामी दयानन्द आदर्श एकेश्वरवादी थे। उन्हे काठियावाड की उपजाऊ भूमि ने जन्म दिया था। अपने विशाल सुधार द्वारा हिन्दू रूढ़िवाद मे उन्होंने शक्तिशाली परिवर्तन किया। महाराज श्री जवाहरलालजी ऐसे ही सुधारक तथा उपदेशको की श्रेणी मे आते है। वे उच्च श्रेणी के विद्वान्, उपदेशक तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् प्रचारक है। ऐसे सन्त पुरुष के लिए कुछ लिखना सौभाग्य की बात है। वे भक्तिपूर्वक अपनी सम्प्रदाय के अनुयायियो द्वारा ही नही पूजे जाते किन्तु उस के बाहर भी आप के प्रशसक बडी संख्या में है। एक ऐसा प्रशसक होने के कारण ही मुझे कहा गया है कि आप के साथ छह साल पहले मेरा जो वैयक्तिक परिचय हुआ है, उस के सस्मरण लिखू।

इस महापुरुष के परिचय में मै सन् १९३६ में आया था। स्थानकवासी समाज को अपने विद्वत्ता पूर्ण भाषणो का लाभ देते हुए, धर्म प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर विचरते हुए आप पैदल विहार कर के बड़ी दूर से जूनागढ़ पधारे थे। सासारिक जीवन की अविरत झंझटो और चिन्ताओं के बाद प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक विचारों वाले नेता तथा विद्वान् मुनियो के सत्सग मे बड़ी शान्ति तथा सुख प्राप्त होते हैं। मेरे परम मित्र जेठालाल भाई रूपाणी ने मुझे एक ऐसा ही अवसर प्रदान किया। उन्ही की भद्रता के कारण मुझे उपरोक्त आचार्यश्री के दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। आपकी सादगी, नम्र व्यवहार,सहनशीलता तथा सौहार्द्र ने मुझे एकदम प्रभावित कर लिया। आपका विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप श्रोताओ के हृदय को हर लेता है। आपका सत्संग करते समय प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे वह अपने किसी मित्र के साथ बैठा हो और विभिन्न विषयों पर बातचीत कर रहा हो। आप मे न तो पवित्रता के दिखावे की झलक है और न उदासी से भरी हुई गभीरता है। शान्त, स्वस्थ,सयत तथा शुद्ध आचार का औचित्य आप सरीखे ज्ञानी मुनि के उच्च तथा विशाल मस्तिष्क का परिचय देता है। कुछ धार्मिक विषयो पर मैने आप से सक्षिप्त वार्तालाप किया। धर्मो के पारस्परिक व्यवहार के विषय मे मैंने जो प्रश्न पूछे, आपने उन का सन्तोषजनक समाधान किया। उस से मेरे मन मे आया कि आप एकता के प्रेमी तथा ईश्वरी सत्य का आदर करने वाले महापुरुष है। कलहपूर्ण विचार आप को पसन्द नही हैं।

मुझे आप के वार्तालाप तथा सार्वजनिक भाषणो में बड़ी रुचि थी। वे भाषण ऐसी सभा मे हुए थे जिस मे स्त्री-पुरुष तथा दूसरे धर्मो और सप्रदायो के अनुयायी भी बड़ी सख्या में थे। मैने उन उपदेशो को लगातार तीन दिन तक सुना। आप के नैतिक तथा धार्मिक उपदेशो ने सभी धर्मो का साराश तथा निचोड निकाल कर रख दिया गया था। हिन्दी तथा गुजराती, जिसे वे सरलता से वोल सकते थे, मे आप के भाषण की शैली तथा शक्ति आश्चर्यजनक थी। जनता उसे पूरे ध्यान से सुना करती थी। आप किसी एक विषय मे ही सीमित नहीं रहते थे किन्तु धर्म के विविध पहलुओ पर भाषण दिया करते थे। प्राचीन आचार्यो के नैतिक तथा आध्यात्मिक उपदेशो पर पाडित्यपूर्ण व्याख्यान किया करते थे। मानव जीवन की उलझनों तथा उन से होने वाले कष्टों और झझटों पर आप बहुत अधिक बोला करते थे। साथ मे यह भी बताया करते थे कि तपस्या तथा सयमी जीवन द्वारा इस जजाल से कैसे निकला जा सकता है और आध्यात्मिक जीवन की उच्च श्रेणी को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी विषय का दार्शनिक विवेचन करते समय आप पारिभाषिक तथा वैज्ञानिक शब्दो से बहुत दूर रहते थे। आप का प्रतिपादन इतना स्पष्ट, प्रभावशाली तथा व्यावहारिक होता था कि वह श्रोताओ के हृदय मे सीधा उतर जाता था। उदाहरण के रूप मे जो चुटकले तथा कहानिया सुनाते थे, वे केवल मनोरजक ही नही किन्तु ज्ञान और शिक्षा से भी पूर्ण होती थी। जनता के हृदय पर उनका स्थायी असर होता था। आधुनिक अवनति तथा नैतिक पतन पर भी आप बहुत बोलते थे। धर्मात्मा कहलाने वाले व्यक्तियो के विकृतज्ञान तथा उनमे वास्तविक धर्म के अभाव की आप बहुत निन्दा किया करते थे। धर्मनेता कहलाने वाले व्यक्तियो का घोर पाखण्ड, धर्म की ओट मे होने वाली नीचता तथा लज्जापूर्ण धोखेबाजी जिसके द्वारा वे समाज के जीवनरक्त को चूस रहे है, आदि का भी वे स्पष्ट चित्र खीचा करते थे। अपने व्याख्यानो मे आपने स्थानकवासी समाज के

hearers The parables and stories which he related by way of illustration were not only amusing but were informing and instructive and left indelible impression on the minds of his audience Mostly he dilated upon the present day degradation and demoralization and in a lighter vein he used to under rate the irreligiosity and the corrupt ingenuity of the so called religious-minded people. He was disigned to expose the rack hypocracy of the so called religious heads and their priestly importunity and the shameless treachery with which they were sucking the life blood of their own community. During the course of his speeches he dwelt on certain reforms to be introduced among the followers of his sect by sheer forces of arguments supported by the authority of the Jain Shashtras which greatly appealed to his audience and once I remember that during the course of his speech the ladies impressed by his admonition resolved on the spot to forsake the undesirable custom of wailing and lamenting over the dead by making a public demonstration His arguments were so convincing that one felt an urgency of prompt and immediate action.

The Maharaj Shree is not only a scholar of his own religion but he seems to have studied the teachings of other religions His theosophical observation of different religions have inspired in him fellow feeling, sympathy, love and regard towards the followers of other faiths and creeds a tolerant spirit lacking in the present day teachers, much less in the reformers and politicians of the day. He preached for tolerance and inter-religious amity which the sores need of the our. I wish there were many preachers of Maharaj Shree Jawahralal ji's type who could alone bring about harmonious relations among the followers of different creeds. Had there been many jawaharlal, the task of national unity could have been easier

In the end I pray that the Maharaj Shree may be spared a long life to fulfill his laudabel mission of binding people in the sacred tie of religion and leading them on the path of heavenly bliss and enternal happiness

स्वर्गीय स्वामी दयानन्द आदर्श एकेश्वरवादी थे। उन्हे काठियावाड की उपजाऊ भूमि ने जन्म दिया था। अपने विशाल सुधार द्वारा हिन्दू रूढिवाद मे उन्होने शक्तिशाली परिवर्तन किया। महाराज श्री जवाहरलालजी ऐसे ही सुधारक तथा उपदेशको की श्रेणी मे आते है। वे उच्च श्रेणी के विद्वान्, उपदेशक तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् प्रचारक है। ऐसे सन्त पुरुष के लिए कुछ लिखना सौभाग्य की बात है। वे भक्तिपूर्वक अपनी सम्प्रदाय के अनुयायियो द्वारा ही नही पूजे जाते किन्तु उस के बाहर भी आप के प्रशसक बड़ी सख्या में है। एक ऐसा प्रशसक होने के कारण ही मुझे कहा गया है कि आप के साथ छह साल पहले मेरा जो वैयक्तिक परिचय हुआ है, उस के सस्मरण लिखू।

इस महापुरुष के परिचय में मैं सन् १९३६ में आया था। स्थानकवासी समाज को अपने विद्वत्ता पूर्ण भाषणो का लाभ देते हुए, धर्म प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर विचरते हुए आप पैदल विहार कर के बड़ी दूर से जूनागढ़ पधारे थे। सांसारिक जीवन की अविरत झंझटो और चिन्ताओ के बाद प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक विचारों वाले नेता तथा विद्वान् मुनियो के सत्संग मे वडी शान्ति तथा सुख प्राप्त होते हैं। मेरे परम मित्र जेठालाल भाई रूपाणी ने मुझे एक ऐसा ही अवसर प्रदान किया। उन्हीं की भद्रता के कारण मुझे उपरोक्त आचार्यश्री के दर्शनो का लाभ प्राप्त हुआ। आपकी सादगी, नम्र व्यवहार,सहनशीलता तथा सौहार्द्र ने मुझे एकदम प्रभावित कर लिया। आपका विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप श्रोताओ के हृदय को हर लेता है। आपका सत्संग करते समय प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे वह अपने किसी मित्र के साथ बैठा हो और विभिन्न विषयो पर बातचीत कर रहा हो। आप में न तो पवित्रता के दिखावे की झलक है और न उदासी से भरी हुई गभीरता है। शान्त, स्वस्थ,सयत तथा शुद्ध आचार का औचित्य आप सरीखे ज्ञानी मुनि के उच्च तथा विशाल मस्तिष्क का परिचय देता है। कुछ धार्मिक विषयो पर मैंने आप से संक्षिप्त वार्तालाप किया। धर्मो के पारस्परिक व्यवहार के विषय मे मैंने जो प्रश्न पूछे, आपने उन का सन्तोषजनक समाधान किया। उस से मेरे मन मे आया कि आप एकता के प्रेमी तथा ईश्वरी सत्य का आदर करने वाले महापुरुष है। कलहपूर्ण विचार आप को पसन्द नही हैं।

मुझे आप के वार्तालाप तथा सार्वजनिक भाषणो में बडी रुचि थी। वे भाषण ऐसी सभा मे हुए थे जिस मे स्त्री-पुरुष तथा दूसरे धर्मो और सप्रदायों के अनुयायी भी बडी सख्या में थे। मैने उन उपदेशो को लगातार तीन दिन तक सुना। आप के नैतिक तथा धार्मिक उपदेशो ने सभी धर्मो का साराश तथा निचोड निकाल कर रख दिया गया था। हिन्दी तथा गुजराती, जिसे वे सरलता से बोल सकते थे, मे आप के भाषण की शैली तथा शक्ति आश्चर्यजनक थी। जनता उसे पूरे ध्यान से सुना करती थी। आप किसी एक विषय मे ही सीमित नहीं रहते थे किन्तु धर्म के विविध पहलुओ पर भाषण दिया करते थे। प्राचीन आचार्यो के नैतिक तथा आध्यात्मिक उपदेशो पर पाडित्यपूर्ण व्याख्यान किया करते थे। मानव जीवन की उलझनो तथा उन से होने वाले कष्टों और झझटों पर आप बहुत अधिक बोला करते थे। साथ मे यह भी बताया करते थे कि तपस्या तथा सयमी जीवन द्वारा इस जजाल से कैसे निकला जा सकता है और आध्यात्मिक जीवन की उच्च श्रेणी को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी विषय का दार्शनिक विवेचन करते समय आप पारिभाषिक तथा वैज्ञानिक शब्दो से बहुत दूर रहते थे। आप का प्रतिपादन इतना स्पष्ट, प्रभावशाली तथा व्यावहारिक होता था कि वह श्रोताओ के हृदय मे सीधा उतर जाता था। उदाहरण के रूप मे जो चुटकले तथा कहानिया सुनाते थे, वे केवल मनोरंजक ही नही किन्तु ज्ञान और शिक्षा से भी पूर्ण होती थी। जनता के हृदय पर उनका स्थायी असर होता था। आधुनिक अवनति तथा नैतिक पतन पर भी आप बहुत बोलते थे। धर्मात्मा कहलाने वाले व्यक्तियो के विकृतज्ञान तथा उनमे वास्तविक धर्म के अभाव की आप बहुत निन्दा किया करते थे। धर्मनेता कहलाने वाले व्यक्तियो का घोर पाखण्ड, धर्म की ओट मे होने वाली नीचता तथा लज्जापूर्ण धोखेबाजी जिसके द्वारा वे समाज के जीवनरक्त को चूस रहे हैं, आदि का भी वे स्पष्ट चित्र खीचा करते थे। अपने व्याख्यानों मे आपने स्थानकवासी समाज के

लिए कई सुधार भी पेश किए। शास्त्रो के प्रमाण तथा युक्तिवल से उनका ऐसा समर्थन किया कि वे जनता को वहुत अच्छे लगे। मुझे याद है कि आपकी उपदेशपूर्ण फटकार से प्रभावित होकर स्त्रियों ने उसी समय मृत व्यक्ति के लिए सार्वजनिक प्रदर्शन करते हुए रोने-पीटने की प्रथा को छोड दिया। आपकी युक्तियाँ इतनी असरकारक होती है कि प्रत्येक व्यक्ति उस वात को उसी समय कार्यरूप में परिणत करने की नितान्त आवश्यकता अनुभव करने लगता है।

महाराजश्री अपने धर्म के ही विद्वान नहीं हैं किन्तु आपने दूसरे धर्मो के सिद्धान्तो का भी अध्ययन किया है। धर्म ग्रन्थों के इस तुलनात्मक अध्ययन के कारण ही आपकी सभी धर्मो के प्रति सद्भावना है। आप विविध धर्मो मे ईश्वरीय सत्य को देखते है। इसी कारण आप में अन्य धर्मो के अनुयायियो के प्रति मित्रता, सहानुभूति, प्रेम तथा सद्भावना जागृत हुई है। वर्तमान धर्मोपदेशको में यह सहनशीलता नही पाई जाती। सुधारकों और राजनीतिज्ञो मे तो यह और भी कम है। आप सहनशीलता तथा धर्मो मे पारस्परिक मित्रता पर बहुत जोर देते थे। आजकल की यह सब से बड़ी आवश्यकता है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि महाराजश्री जवाहरलालजी सरीखे बहुत-से उपदेशक हो। ऐसे उपदेशक ही धार्मिक सम्प्रदायों में मधुर सबन्ध स्थापित कर सकते है। यदि अनेक जवाहरलाल होते तो राष्ट्रीय एकता का कार्य सरल बन जाता।

अन्त में मै प्रार्थना करता हूँ कि महाराज श्री चिरजीवी हों और जनता को धर्म के पवित्र बन्धन मे बाधने तथा उसे स्वर्गीय आनन्द और अनन्त सुख का पथ-प्रदर्शन करने के अपने महान् उद्देश्य को पूरा करें।

२९—सौराष्ट्र द्वारे स्वागत

(श्री कालीदास नागरदास शाह, एम.ए.,एज्युकेशनल ऑफिसर, बढ़वाण स्टेट)

परमप्रतापी जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजना दर्शननो तथा व्याख्याननो अनुपम लाभ बढ़वाण शहेरना श्री स्थानकवासी जैन सघ ने सवत् १९९२ ना जेठ मास मा मलेल हतो।

श्री सौराष्ट्र ना द्वार रूपी श्री वर्धमानपुरी मा पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज नो प्रवेश थयो त्यारे तेओश्रीना स्वागत माटे तथा दर्शन माटे जैन समाज मा जे आनन्द अने उत्साह उभराई रह्या हता ते अवर्चनीय हता। आखा काठियावाड़ ना जे शहेरो तथा गामडोना सघोने आ बाबत ना खबर अगाउ पडेल हता। ते ते सघोना सख्याबन्ध पुरुषों अने स्त्रियो पूज्य साहेब ना दर्शन माटे आवी पहोंच्या हता। हजारो नी सख्या मा पूज्यश्रीनु स्वागत घणा हर्ष थी करवामा आव्यु हतु। बढवाण शहेर ना बाहरना भाग मा श्री हाजीपुरा मां आवेल श्री महाजन नी विशाल धर्मशाला मां पूज्य साहेब तथा तेमनी साथे पधारेल अनेक शिष्योने उतारवा मा आवेल हता, व्याख्यानो पण तेज स्थले राखवा मां आवेल हता।

श्री महावीर प्रभुना समय मा जेम जैन तथा जैनेतर पुरूषो अने स्त्रियो प्रवचन साभलवा माटे हजारो ना टोला मा जतां हता तेम बढवाण शहेर मा पण जाति अने धर्मनो भेद जाण्या सिवाय सैकडो स्त्री पुरुषो व्याख्यान नो लाभ लेवा माटे आवता हता। पूज्यश्रीना आगमन थी खरेखर स्थानकवासी धर्मनो घणो उद्योत थयो हतो। अने हालना समय मा श्री स्थानकवासी सघो मा एक

या बीजा कारणे जे छिन्न-भिन्नता थयेल हती तथा श्री महावीर प्रभुना फरमावेल सिद्धान्तो प्रमाणे वर्तन करवानुं शिथिल थई गयुँ हतुं, ते समये पूज्य साहेबनु आगमन एक महान् धर्मप्रचारक, धर्मोत्तेजक तरीके उपयोगी थई पड़ेल हतुं। तेओ साहेबनुं जैनधर्मनु ऊंडु अने तलस्पर्शी ज्ञान दरेक सिद्धान्त ने सरल रीते समजाववानी शक्ति, अति प्रशसनीय वक्तृत्वशैली वगेरे गुणो थी श्रोताओ ना हृदय मा अतर ना प्रेम अने उत्साह ना झरणा सजीवन थया हतां, अने तीव्र गति थी वहेता हता।

आवा कठिन काल मां पाचमां आरामां पण चोथा आरानी स्थितिनु चित्र खडुं करनार आ महान् आचार्य प्रति एक-एक व्यक्ति नो प्रेम अने पूज्य भाव उभराई जता हता। तेओ साहेब नी सरलता, निर्व्याजता, सस्कारिता, राष्ट्रप्रेम देदीप्यमान थई विद्युत नी माफक दरेकने असर करता हता। जैन धर्मना ऊँडा ऊँडा तात्विक रहस्यो सादा दाखला दलील थी तेओ साहेब एवी सरस रीते समजावता अने एवी सचोट रीते असर करता के ते असर मन ना तथा हृदय ना ऊँडा ऊँडा क्षेत्र मां सचोट रीते प्रसरती हती। अने तेथी ते समय ना काठियावाड मा ववायेल बीजो मां बहु सुन्दर वृक्षो फली फूली नीकलेल छे।

राजकोट, जामनगर, मोरवी वगेरे स्थले पूज्य साहेब चातुर्मास पधारवा कृपा करेल हती, जेना फल रूपे राजकोट मा जैनगुरुकुल नी उत्पत्ति थयेल छे। ए सस्था आजे सारी प्रगति करी रहेल छे।

तेओ साहेब ना काठियावाड ना प्रवास दरम्यान घणा वेर भेद भूली गया हतां। अने धर्म प्रेम तथा मानव प्रेम मा मानव दयाना मोजाओ ससाररूपी दरिया मां उछली रहेल हता।

आजे विद्वानो अने तेवा साधुमार्गी उच्चतम रहेणी करणी वाला साधुजीओ मां तेमनी मुख्य गणत्री छे। तेओ सरलहृदयी, उच्चतम ज्ञानी, अने बोलवानी अनुपम छटा तथा उपदेशक तरीके एक महान् विजेता काठियावाड़ मा निवड्या छे, एम सौ कोइए कह्या वगेर चाले तेम न थी।

३०—पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज

(ले.श्री गौरीशंकर दफ्तरी एल.सी.ई. सुपरिण्टेण्डिग इंजिनीयर, बम्बई।)

सने १९२३-२४ ना चौमासां मा ज्यारे महाराजश्री घाटकोपर मा विराजता हता त्यारे हुं दसेक माइल दूर थाणा मां एक्जीक्यूटिव इंजिनीयर हतो। त्यारे महाराज श्री ना व्याख्यान माटे अवार नवार घाटकोपर जतो। ते प्रसंगे तेओश्रीना व्याख्यान, तेमनी बात समजाववानी छटा, तेमना ऊँच चारित्र वगेरेनी मारा ऊपर घणीज ऊँडी छाप पड़ी हती। ते वर्षमाना तेमना प्रयासोने अगेज घाटकोपर गोशाला सस्था हयाती मां आवी अने हाल पण ते संस्था जे उमदु काम करी रहेल छे तेनो झाझो यश पूज्य महाराज श्री जवाहरलालजीनेज आपवो घटे छे।

सने १९३७ मां म्हारा भाईना लग्न प्रसगे हुं जामनगर डाक्टर प्राणजीवन म्हेता ने त्यां गयेल, त्यारे पू. महाराज श्रीनुं त्यां चोमासु होई म्हारे त्रणेक रोज नो मेलाप थएल। ते दिवसो मा महाराजश्री साथे एक प्रश्न चर्चायेल अने तेओश्री तेनो करेल खुलासो आजे पण तादृश खड़ो थाय छे। सवाल ए हतो के जमानाने अगे आपणा साधु मुनिराजोए पण पोतानी रहेणी करणी मा फेरफार करवो न घटे के? हालनु घोरण पूज्य लोकाशाए सैकाओ पूर्व घडयु त्यार बाद काल मा घणा घणा पलटा

आवी गया। खास करीने छेला ३०-४० वर्ष मा थएल अजब शोधो अने सुधारा ना जमाना मा वर्षो पहेला नु बधाएल घोरण नीभाववुं अशक्य ज वनतु चाल्यु छे।

पूज्य महाराज श्री नो जवाव हतो के जवाव बे भागो मा वेहचवो जोडए। (१) एक तो चालु व्रतधारी साधुओ के जूना घोरण मुजव व्रतो आदरी वेठा छे-जेवा के पोताने अने तेमना शिष्यो विगेरे-तेवाओ ने माटे तो तेमनी फरज एज छे के तेमणे लीधेला व्रतो सागोपांग पार उतारवा अने तेमा व्रतभग नो दोष क्याय आववा देवो नही।

(२) बीजो भाग रहया भविष्य ना धर्म उजालनाराओ जेओ व्रतधारी थया नथी। तेवाओ जरूर सारा अने विद्वान श्रावको नुं एक मंडल रची तेमा चर्चा अने विचारनी आपले करता कांई-जमाना ने बध बेस्तु घोरण नीपजावी काढे-मोटे भागे पूज्य महाराज नो आग्रह " श्रावकनु घोरण जमाना ने बध बेस्तु गोठववामा अने ते प्रमाणे आचार मा मूकवा मां आवे ते तरफ नो हतो। ऊँचा चारित्रधारी श्रावको पण धर्मप्रचारक थई शके छे। अने आगम मा साधुपणा ना जूना रिवाज तेमने कडक अगर काल ने नहीं बध बेसता लागता होय तो तेओ पोता ने माटे जरूर बीजु सारु अने बध बेस्तुं घोरण नीपजावी शके छे। आ बात अंगत पसन्दगी नापसदगी नी नही रहेता साम्प्रदायिक निर्णय अने घोरण नी बनवी जोइए।

पू. महाराज श्री आपणा स्थानकवासी गच्छ मा एक घणा अग्रगण्य मुनि छे। पोतानी चारित्र-चुस्तता, ऊँडा ज्ञान, समजाववानी शैली, उदार विचार, गभीर वाणी वगेरे अनेक ऊँचा गुणो थी आपणी जनतानी तेओ श्रीए घणी अमूल्य सेवा वर्षो सुधी बजावी छे। अने तेथी ते श्रीनो आपणा सर्वे ऊपर महा उपकार थयो छे। प्रभु तेमने दीर्घायुष्य आपे एम प्रार्थना।

३१—दानवीर खां साहेब होरमशाह कुंवरजी चौधरी, (एक पारसी सज्जन)
(काठियावाड़ अनाथालय तथा चौधरी हाई स्कूल के भवन निर्मात, राजकोट)

पूज्य महाराज श्रीजवाहरलालजी नु गुणगान करवु ते पण जे आत्माए तेमना आत्मा नु अवलोकन कर्यु तेना थीज बनी शके।

मारे प्रथम थीज कहेवु जोइए के मने एमनो अगत परिचय नो लाभ लेवा बहुत थोडी तक मली छे, एटले-तेमना व्याख्यान जे मैं साभल्या छे ते उपरज हु बे शब्दो कही शकु छु।

तेमनी विद्वत्ता, पोताना परमात्मानी कृपा थी तेमना हृदय मा जे प्रज्ञा रूपे उद्‌भवेल छे ते तेमणे पोताना जीवन मा उतारी छे। एटले एवा व्याख्यान करनारानी वाणी जनता ना आत्मा ऊपर शिक्षा रूपे असरकारक थाय, ए एक खरा सिद्धान्त नी बात छे।

एमना व्याख्यान मां थी जे बे मारा ऊपर सचोट असर करी छे ते ब्रह्मचर्य अने भक्तिमार्ग नो महिमा छे।

आ रीते पूज्य महाराज श्रीए पोतानां 'जवाहरलाल' नाम ना खरा गुण प्रमाणे जनता ने ब्रह्मचर्य अने मुक्ति मार्ग ऊपर जे अति अमूल्य व्याख्यान आप्या छे ते सांभलनाराओ माथी जेओए पोताना जीवन मा उतार्या हशे, तेओ ज तेनो लाभ पामी पूज्य महाराज श्रीना व्याख्यान नी खरी कदर करशे अने गुण गाता रहेशे।

बीजी तेमना व्याख्यान नी खूबी मने जणाई हती ते तेमनी जिंदगीपर्यन्त ना शुद्ध चारित्र ने परिणामे तेमनी समझाववानी शैली,ऊच विचार अने गम्भीर वाणी हता।

आ रीते पूज्य महाराज श्री पोताना जवाहीर ना नाम प्रमाणे गुणो धरावता होई ने तेमणे जनता नी जे अमूल्य सेवा बजावी छे, ते तेमना तरफ थी एक महान् उपकार तरीके स्वीकारवाने आपणने हर्ष थाय छे।

तेमनो वियोग आपणने निराश करे ए स्वाभाविक होवा थी जनता मा थी घणा आत्माओ तेमनी साथे पगे चाली ने लाम्बे साथ आपी छुटा पड्या हता, जे हदयना प्रेमनी भावना वगर बनी शकतु नथी।

महाराज श्री जैन समाज नुं जवाहर छे एम कहेवामां आवे छे, पण तेय कहेवा मां कांई अपूर्णता मने देखाय छे। ते ए छे के ते एक जैन धर्म ना जवाहर करता 'सर्वधर्मो नु जवाहीर' तरीके गणवा ने लायक छे, केमके तेमणे विश्वधर्म ने ध्यान मा राखीनेज सघला व्याख्यानो जनता ने समजाव्या छे। ते थी तेओ जैनोनी साथे बीजी सर्व जनता ने प्रिय थई पड्या छे।

परमात्मा तेमनु दरेक रीते रक्षण करो, देहना अन्त सुधी पूरतु आरोग्य भोगवो, अने जेने परिणामे पोता थी बनतो लाभ जनता ने आपता रहे एवी सहृदयनी भावना, अने प्रार्थना साथे।

एक पुण्य स्मरण

राजरत्न सेठ मंचरशाह हीरजी भाई वाडिया, पोरबन्दर

पाचेक वर्ष ए पुण्यस्मरण ने फोराए वही गया परन्तु मानसदेशे ए सदा जीवन्त रहेशे। पोरबन्दर मा प्रतिदिन प्राकृटना दोरा फूटे अने ज्ञान तरस्या मुमुक्षुओ मा प्राणने पगला माणेक चौकनी उत्तरे स्थानिक दशा श्रीमाली वाणिआनी महाजनवाडी नी पगधार पर पडता घड़ीआल ना नव ने टणकारे जडवाद डूब्यां जगत ने आध्यात्मिकता ना आदेश आपवा तप्या तरणि ना तापने टालवा, जर ने जजाल सरजी माया छायडी मा भूलेला जीवन नी साची केडी दर्शाववा उत्तरीय ओढ़ेला प्रचड कायधारी, शान्ति ने अहिंसा नी साक्षात् सौम्य मूर्ति शा एक साधुराज पधारता अने जरा शा उन्नत आसने विराजता त्यारे तो उल्टेली मानवमेदिनी लली लली नमती तोये न नम्याना ओरता सेवती। एवो एमनो अप्रतिम पुण्य परिमल म्हेक हतो। पोताना प्रिय अने पथ्य प्रवचन नो प्रारम्भ प्रार्थना थी आदरता ने जाणे जुग-जुग नो जोगन्दर सर्वधर्म समभावनी आराधना ने आराधतो न होय एवी आत्म प्रतीति थती। एना नयनो तपप्रभानी पुण्य प्रोज्वलता थी प्रकाशता, ललाटे तत्वचिन्तन नी रेखाओ दोराती, ने ज्ञानभारे नमता पोपचा मा थी अभ्यास ने अनुभवना अमी आपोआप ढलता। एमना सौम्य ने साधु जीवन ना प्रेरणा बोल कै कै ने 'निद्रा' मां थी लवड़ दई ने जगाडता। एतो शोधी दाखवता हता जीवन मा, जगतमा ने जिदगानी मां हटाई गयेला जवाहीरो ने। हता ए जैन आचार्य, परन्तु समत्व ने सत्याग्रह भावे थया हता जनो ना आचार्य, उद्बोधता श्री महावीरना मोंघाभूला उपदेश मन्त्रो परन्तु पारकाना गुणधर्म ने परभागवानी ने नाणवानी महानुभाविता एमने सहज वरी हतो। ए महानुभाव महाराज ते जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज। जनता ने एओश्री नो केवल त्रीस

दिवसनो ज लाभ मल्यो, परन्तु त्रीस वर्षे पण न पचे एवी ए आत्म औषधि हती। पुण्य होय, पुरुषार्थ-होय तो पचे।

शास्त्रो ने शोधे, सत्वसग्रही आचारी उद्बोधे ने आचरावे एवा ए अहिंसा ना आचार्य छे। एमनी अहिंसा ने भावना विशाल ने विस्तृत छे। व्यावहारिक जीवन मा जीवो सीखी शकाय एवी छे। एक अथवा अन्य प्रकारे हिंसामा डूबेली जनता ने एमनुं अहिंसा दर्शन आध्यात्मिकता नु वातावरण उभु करे छे। ने ते साथे पोताने सदा अपूर्व मानता मानव मा केवी ने कटेली अमाप आत्मशक्ति सदुपयोग साधे तो वसेल छे तेनु आत्मदर्शन थाय छे। आवा एक तपस्वीना सद्बोध श्रवण नो सुयोग मने जे सापडेलो अने सघलु मारु आ जीवन-धन रहेशे- आत्म-सागरना मोघामूला मोती ने मूलवंता आवडे तो ए संतो नी सात्विक भूमिका जवाय।

सतनी ए पुण्य प्रोज्वल सात्विकता ने मारा सदाना सहस्रधा वदन हो।

३३—मेहता तेजसिंह जी कोठारी, बी.ए.एल.एल.बी., कलेक्टर, उदयपुर

श्रीमद् जैनाचार्य पूज्य श्री १०८ श्री श्री जवाहरलाल जी महाराज बाईस संप्रदाय व जैन समाज मे ही नही किन्तु संसार की इनी गिनी उच्चकोटि की महान् आत्माओं में से एक महान् आत्मा, जीती जागती तपश्चर्या की सजीव मूर्ति एव धर्म की एक महान् विभूति है।

चरित्र गठन, तपबल, आदर्शधर्म दृढ़ता, सयमशीलता, शास्त्र-निपुणता एव विद्वत्ता आपके प्रवचन श्रवण के पहले ही प्रथम दर्शन मात्र से दर्शक को हृदयगम होकर उसे प्रभावित कर देती है। यदि ऐसे सौ पचास महात्मा भी इस समय विद्यमान होकर देशसेवा, समाजसेवा एव धर्मप्रसार मे अपना सर्वस्व लगादें तो गृह, समाज एव राष्ट्र का महान् उद्धार होकर उन्नत दशा की प्राप्ति अवश्यमेव सुलभ हो सकती है।

मुझे आपके दर्शनों का एव सत्सग का शुभ अवसर मेरे पूज्य स्व. पितामह के पुण्यप्रताप से प्राय. प्राप्त हुआ करता था और लगभग मेरे बालकाल से (अबसे पाच वर्ष पीछे तक जब तक पूज्य पितामह आरोग्य थे व अब भी) अब तक करीब तीस वर्ष का समय हो जाता है-आपके तपोबल, दर्शन, श्रवण एवं मनन से दिनो दिन मेरी भावना आपके सद्गुणों की ओर बढती रही है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, त्याग एव तपश्चर्या आपके व आपके धर्म के तीव्र सद्गुण है।

आपकी विशेष प्रशंसा करना मेरे जैसे अल्पज्ञ एव सामान्य व्यक्ति के लिए सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य होगा, किन्तु आपके प्रति श्रद्धा एवम भक्ति ने मेरे मनमन्दिर में स्थान क्यों किया और उसका मूल कारण क्या था इसको यदि प्रकट न किया जाय तो मै अपने आपको कर्तव्यशून्य एवं कृतघ्न मानने को बाध्य हो जाता हूँ। अब इस विषय मे दो शब्द नीचे कहना चाहता हूँ।

मै ऊपर कह चुका हूँ कि ऐसे महात्मा की सेवा का महान् लाभ प्राप्त होना केवल मात्र मेरे पूज्य पितामह स्व. कोठारी जी साहब बलवन्त सिह जी भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड की पहली कृपा का कारण था। मेरी ५ वर्ष की आयु मे मेरी माता का स्वर्गवास हो गया तब से पूज्य पितामह ने मुझे अपने पास ही रख लालन पालन किया। मेरे शिशु काल से यौवन काल तक जब तक मुझे पूज्य पितामह की सेवा का लाभ एव सौभाग्य मेरे भाग्य में बदा रहा एव उनका कृपा रूपी छत्र

मेरे मस्तक पर सुशोभित रहा, लगातार पितामह की सेवा मे मेरे बराबर साथ रहने से पूज्यश्री की सेवा का सौभाग्य भी प्राय: प्रतिवर्ष मुझे मिलता ही रहा और उन्ही पूज्य पितामह की कृपा का फल है कि उन्ही संस्कारो के कारण अब भी पूज्यश्री की सेवा का लाभ लेने की सद्भावना बनी हुई है।

पूज्य पितामह अन्धविश्वासी एवं वेशपुजारी न थे वे विचारशील एव सत्यमार्गी व्यक्ति थे। यो तो जैन समाज में मुख्यत. बाईस सम्प्रदाय के साधुओ के प्रति उनके विचार श्रद्धायुक्त एव भक्ति को लिए हुए न थे, यही नही बल्कि विरोधी भाव को लिए हुए कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उन्हे इन साधुओ के प्रति प्रेम न था बल्कि यहाँ तक अमान्यता थी कि १९८५ के वर्ष हमारे घर मे पितामह की विमाता ने जेन साधुओं का चातुर्मास करवाया तो भरे चातुर्मास में कारण विशेष पर उन्होने उन्हे घर से निकलवा दिया था।

सयोगवश १९५३ वि के वर्ष स्व. पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ तब आपका भी स्व. पूज्यश्री से समागम हुआ। पितामह ने संथारा व स्वहत्या करने में क्या अन्तर है, मैले कुचैले कपड़े की क्या आवश्यकता है इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रश्न स्व. पूज्यश्री से किये और उन सब ही प्रश्नो का सतोषजनक उत्तर मिलने व जैन धर्म के विशेषतः हृदयगम होने पर आपकी विरोधी भावना मिटकर यकायक इस धर्म के प्रति उच्च भावना एव श्रद्धा बढने लगी और तब से लेकर अन्त समय तक आप पूज्यश्री की सेवा का लाभ बराबर उठाते रहे और हमेशा के लिये अनन्य भक्त बन गये। इतना होने पर भी जिस विषय मे आपको शका रह जाती, खुले दिल पूज्य श्री से प्रश्न कर शंका समाधान करते थे। हाँ मे हाँ मिलाना व अन्धविश्वासी बन हाथ जोड़े रहना यह पितामह के स्वभाव से परे था, पूज्य पितामह को महाराणा साहब की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ और स्व. म.सा.फतहसिंह जी जैसे न्यायशील, नीतिनिपुण, धर्मनिष्ठ नरेश के दीर्घकाल तक मुख्य मन्त्री रहे। आप अपने विचारो के धनी एव चरित्र के मानी थे। ससार के सुख व दु:ख दोनो का आपको अनुभव था। जो आप से परिचित हुआ वह प्रभावित हुए बिना नही रहा। ऐसे योग्य अनुभवशील वयोवृद्ध मत्री को दोनो पूज्यश्री के तपोबल ने क्योकर अपनी ओर आकर्षित किया, इस विषय मे क्या ही अच्छा होता यदि पूज्य पितामह द्वारा उनके जीवन काल में उनकी सम्मति के दो शब्द लेखनी द्वारा पृष्ठ में अवतीर्ण हो जाते किन्तु सचमुच दु:ख का विषय है कि इस देश मे प्राय· इतिहास एव ऐतिहासिक सामग्री की ओर लोगों की धारणा व लक्ष्य बहुत ही कम रहता है। पूज्यश्री जैसे महापुरुष ने हजारो ही उपकार किये और कई एक को धर्ममार्ग दिग्दर्शन कराया होगा किन्तु इनके शुभ कार्यो का संग्रह, जो भावी जनसमुदाय को भी कल्याणकारक एव सन्मार्गदर्शक बन सके, करने की ओर अब तक उद्योग नही किया गया। फिर भी किसी कदर यह जान कर सतोष एव हर्ष होता है कि पूज्यश्री के जीवन चरित्र की सामग्री तैयार की जा रही है। ऐसे समय मे पितामह के विद्यमान नही होने से उनकी लिखित सम्मति प्राप्त नही है, किन्तु मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि स्व पूज्यश्री एवम् वर्तमान् पूज्यश्री के प्रति पूज्य स्व. पितामह के विचार उच्च एवं श्रद्धा युक्त थे और अन्त समय तक वे पूज्यश्री के अनन्य भक्त रहे है। इन दोनों महापुरुषो के आदर्श चरित्र, धर्मतप एव सयम के बल ने पितामह को प्रभावित किया और वे नित्य

इनके सत्समागम के लिए तृषित ही रहे। पूज्यश्री के दर्शन, श्रवण एवं मनन से पूज्य पितामह ने धार्मिक तत्वो का मनन कर वहुत कुछ लाभ उठाया। और आत्मोन्नति मे साधक वनाया था।

मेरे दो शव्द प्रकट करने से पितामह के विचारों का रूप किसी अंश मे भी यहां परिणित हो सका है तो मै अपने को कृतकृत्य मानता हुआ परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सन्मार्गदर्शी महात्मा को आगे वाले कई वर्पो के लिए चिरायु करे और एक वट की अनेक शाखा तुल्य ऐसे महापुरुष से अनेक महापुरुष वन जाये व साथ ही पूज्यश्री के युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज आदि सन्त समुदाय पूज्य श्री के गुणों का अनुकरण करते हुए स्व. आत्मा एव पर आत्मा के कल्याणदायक एवं हितकर सिद्ध हो।

❑

प्रतिष्ठित पुरुषों की श्रद्धाञ्जलियां

जैन शासन की वर्तमान परिस्थिति और परम प्रभावशाली आचार्य श्री जवाहरलालजी म. जैसे मुनिवरों की आवश्यकता

३४—डॉ. प्राणजीवन माणिकचन्द मेहता, एम. डी. M.S., F.C.P.S.

चीफ मेडीकल ऑफिसर, नवानगर स्टेट

महाराज श्री जवाहरलालजी तत्त्वज्ञानोपदेश और अपने विशुद्ध चारित्र द्वारा [illegible] जैन चतुर्विध सघ की उत्कृष्ट सेवा कर रहे है। भक्त गुरु की प्रशसा करे, यह प्रेम और विनय की [illegible] प्रथा है। उसके द्वारा कहे गए प्रशंसावचन यथार्थ है या अयथार्थ यह जानने के लिए [illegible] की आवश्यकता होती है। जब इस दृष्टि से गुरु की श्रेष्ठता सिद्ध होगी तभी वे जगत् [illegible] जाएगे।

जैन तत्वज्ञान विश्व का अनुपम तत्वज्ञान है। जैन साधु सस्था कठोर चारित्र [illegible] पर टिकी हुई है। नवयुग मे श्रावक-सस्था धर्मरहित होती जा रही है। [illegible] जाज्वल्यमान रखने वाले उच्च चारित्रवान् साधु ही है। अपना चारित्र [illegible] जनता को धर्मोपदेश देने वाले, विश्वप्रेम की भावना पैदा करके [illegible] देश कालानुकूल व्याख्यान देने वाले साधु ही जैनधर्म के [illegible]

ऐसे परम प्रभावशाली महाराज श्रीजवाहरलालजी [illegible]
वि. स. १९९३ के शेषकाल में एक मास [illegible]
समय आपके दाहिने घुटने मे शोथ के कारण [illegible]
यहा से पाच मील 'हाया' नामक गांव में [illegible]
की जनता का भाग्य खुल गया। [illegible]
जामनगर में ही चातुर्मास हुआ। [illegible]
लाया गया। उस मुनीश्वर के [illegible]
समय मे सोलेरियम के [illegible]
आपने पैदल विहार किया।

एक बार उनसे प्रार्थना की गई कि विद्युच्चिकित्सा से तत्काल आराम हो जायगा। धार्मिक बाधा के कारण पूज्यश्री ने उसे स्वीकार नही किया।

महाराजश्री की हम कितनी प्रशंसा करे? प्रतिभाशाली देह, मधुर वाणी, तेजस्वी मुखारविन्द, गद्यपद्य दृष्टान्त तथा शास्त्रीय प्रमाणो से भरपूर प्रवचन। केवल जैन जनता के लिए ही नही किन्तु जामनगर की अन्य जनता के लिए भी महाराजश्री का प्रवचन रुचिकर तथा आकर्षक था। न किसी की निन्दा न किसी के प्रति बुरे विचार, विवाद मे भी उदार और उदात्त भावना आदि अनेक गुणो से आकृष्ट होकर अनेक विद्वान् मध्याह्न और सध्या समय पूज्यश्री के पास धर्मचर्चा के लिए आते थे।

काठियावाड को दो वर्ष के बदले तीन वर्ष महाराजश्री के सदुपदेश का लाभ मिला। यदि पांव मे दरद न होता तो दो वर्षो मे ही अपना सकल्प पूरा करके पूज्यश्री दूसरी जगह पधार जाते।

महाराज श्रीजवाहरलालजी पचम आरे में जैनधर्म के आभूषण रूप है। जैनधर्म की ज्योति प्रकाशित रखने के लिए आपने यावज्जीवन उच्चतम चारित्र का पालन किया है। लोकोपयोगी पद्धति से जनता को उपदेश दिया है। सहस्रो जीवो को सन्मार्गगामी भी वनाकर स्वकीय साधुजीवन दीप्त किया है।

उस मुनि को मेरी अनन्तानन्त वन्दना हो।

३५–श्रीरतिलाल थेला भाई मेहता, एज़्यूकेशनल इन्स्पेक्टर, राजकोट स्टेट

From a few of the sermons I attended, however, I could see, as everybody else, that the Maharaj Shree adopted his teachings and methods in such a way as to suit all conditions of modern life He expounded the spiritual truths in a simple and lucid, yet vigorous and impressive manner, which appealed not only to the inellect but also to the hearts of large congregation of men and women of all classes, Jains of course, preponderating, who, one and all, though they could ill afford to miss the sermon ever for a day

The precepts of Maharaj Shree suited men and women of all castes, creeds and communities, and in all circumstances of life, be they philosophers or simple folk-a peculiar aspect which was the secret of his success as an ideal Guru He stressed the doctrine of Universal love and brotherhood and warned the Jain Devotees against internal dissentions asking them to realise that self seeking had no place in the higher ideal of humanity.

What charmed the hearers most, was the fact that he invariably prefaced his discourses by prayers, explaining their efficacy as an aid to meditation and elevation of the mind

He showed in the course of his narratives, how a house holder (गृहस्थी) can best discharge his duties as such, by a strict observance of the religions vows and abandonment of last, hatred, unity and other foes of mankind, as running after earthly pleasures only tend to shorter the happiness and peace of mind

In conclusion it would be no exaggeration to say that the education of the soul under such a worthy Acharya as the Maharaja Shree can alone elevate our minds to the highest perfection our life would be worth living only if we know ourselves and what we live for.

This was all the essence of the Maharaj Shree's teachings as I understand it

मैने महाराजश्री के थोडे से व्याख्यान सुने। उन से मालूम पडा कि आप के उपदेश तथा भाषण ऐसे ढाचे मे ढले होते है जिस से वर्तमान जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी बन सके। आप के व्याख्यान सुन कर प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जान सकता है। आप आध्यात्मिक सत्यों को सरल तथा सुगम किन्तु ओजस्वी एवं प्रभावशाली ढग से प्रकट करते थे। आप के भाषण विद्वानो को ही नही सुहाते किन्तु सभी श्रेणियो के स्त्री-पुरुष उन्हे हृदय से पसन्द करते हैं। जैनियो की सख्या नि·सन्देह बहुत अधिक रहती है। वे तो एक दिन के लिए भी आपके व्याख्यान को नहीं चूकना चाहते।

महाराजश्री के उपदेश सभी जाति, पन्थ, समाज तथा जीवन की अवस्थाओं के लिए उपयोगी होते है। बडे-बड़े दार्शनिक और साधारण गृहस्थ आप के व्याख्यानो से समान लाभ उठाते हैं। यह विशेषता आदर्श गुरु की सफलता का रहस्य है। विश्वप्रेम तथा बन्धुत्व के सिद्धान्त पर आप बहुत जोर देते थे। जैनधर्म के अनुयायियों को आन्तरिक कलह से दूर रहने का उपदेश देते थे तथा कहते थे कि मानवता के उच्च आदर्श में स्वार्थ-साधना का कोई स्थान नहीं है।

वे अपने सभी व्याख्यान ईश्वर की स्तुतियो से प्रारम्भ करते थे। इस के बाद प्रार्थना का महत्त्व बताते हुए कहते थे कि आत्मचिन्तन तथा मानसिक उन्नति के लिए यह समर्थ साधन है। यह बात सभी श्रोताओ को मोह लेती थी।

कथानको के आख्यान में आप ने बताया कि गृहस्थ अपने कर्त्तव्यो को उत्तम रूप से कैसे पाल सकता है। धार्मिक व्रतों का कठोर पालन, राग, द्वेष, अहकार तथा मानव जीवन के दूसरे शत्रुओं का त्याग श्रावक को ऊँचा उठा सकता है। भौतिक सुखो के पीछे दौड़ना मानसिक शान्ति तथा आनन्द को नष्ट कर देता है।

अन्त मे यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी कि ऐसे आचार्यो की सेवा में आत्मशिक्षा प्राप्त करके ही हमारा मस्तिष्क ऊँचा उठ सकता है तथा पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। हमारा जीवन तभी सफल है जब हम अपने को पहिचानें तथा यह जानें कि हमारे जीने का क्या प्रयोजन है।

मैने जहाँ तक समझा है पूज्यश्री के उपदेशो का यही सार है।

३६—डॉ. ए.सी. दास, एम.डी. (U.S.A.), बंबई

I had a great fortune to meet Pujaya Shree Jawaharlalji Maharaj (a Jain Sadhu) twice or thrice at Jalgaon and Ratlam. I had also occasion to listen to his discourses on spiritual subjects. which has convinced me that he is a great apostle of self renunciation and realisation of truth, which is the only path of peaceful salvation in human lives.

जलगाँव और रतलाम मे पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के दर्शन करने का मुझे दो बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। है। आध्यात्मिक विषयो पर उन के व्याख्यान सुनने का भी अवसर मुझे मिला है। इस से मेरी धारणा बन गई है कि आप आत्म त्याग और सत्य की खोज के महान् प्रचारक है। मानव जीवन में शान्ति और दु:खों से छुटकारे का यही एक मार्ग है।

३७—डॉ. एस.आर. मुलगावकर, एफ.आर.सी.एस., बम्बई

My memory goes back to the year 1923 when I saw Pujya Maharaj Jawaharlalji at Jalgaon, when he had a septic infection in the hand. As it is well known such infections are very painful and one of the things that was impressed on my mind was the fortitude with which he bore the pain. There were many of his followers and among them my friend, the late M/s Amrit lal Rai Chand Javeri, Those were all Sthanakwasis, who are a division of Shvetambari Jains. The Pujya Maharaj, who was then about 47 years old, bore his infliction with great patience and almost cheerfully The thing that impressed me most as I have said was his fortitude and great patience.

मुझे वे दिन याद आ रहे है जब १९२३ मे मैने पूज्य जवाहरलाल जी महाराज के जलगाव मे दर्शन किए थे। उस समय उन के हाथ मे जहरीला फोडा हो गया था। यह बात सभी जानते हैं कि ऐसे फोडे भयङ्कर कष्ट देने वाले होते है। जिन बातो ने मुझे प्रभावित किया उन में से एक उनकी सहनशीलता है जिसके द्वारा उन्होने कष्ट को सहा (बिना क्लोरोफार्म सूंघे ऑपरेशन करवाया था)। उस समय उन के बहुत-से अनुयायी उपस्थित थे और उन मे मेरे मित्र स्व. सेठ अमृतलाल रायचन्द्र झवेरी भी थे। वे सभी स्थानकवासी थे, जो कि श्वेताम्बर जैनो का एक फिरका है। पूज्य महाराज ने, जो उस समय ४७ वर्ष के थे, उस कष्ट को धैर्य और सर्वथा प्रसन्न रह कर सह लिया। जैसा मै पहले कह चुका हू मुझ पर सब से अधिक प्रभाव डालने वाली बात पूज्यश्री की सहनशीलता और महान् धैर्य है।

३८—श्री इन्द्रनाथ जी मोदी बी.ए., एल.एल.बी., जोधपुर

I consider it a privilege to have this opportunity of offering my humble tribute of devotion to His Holiness Maharaj Shree Jawaharlal ji. It was about twelve years ago that I had the esteemed opportunity of sitting at the feet of Guru Maharaj during his Chaturmasa in Jodhpur. His remarkable personality and, greater still, his reasoned exposition fo the jain religion, his fearless out-look on the many burning problems of modern life and more than all the magnificient catholicity of his teachings was little short of a revelation to me To my mind today as it was, is vivid the picture of heat broken Jodhpur at the departure of His Holiness from our midst, and if I am permitted to say so, few religious personalities have created greater impression on my little self then that of the great Maharaj His Holiness is without

doubt the pride of the Jain wherever they may be and occupies a highly honoured place wherever religious and ethical thought and culture shine in their true light. It is my earnest hope and prayer that the Guru Maharaj may bespared long to help, heal the gaping wounds of the erring humanity irrespective of caste or creed

पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के प्रति भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि प्रकट करने का अवसर प्राप्त होना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। बारह वर्ष पहिले गुरु महाराज का चातुर्मास जब जोधपुर में हुआ था, उस समय मुझे उनकी चरणसेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आपका असाधारण व्यक्तित्व और उससे भी बढ़कर जैनधर्म के सिद्धान्तों का युक्तियुक्त प्रतिपादन आधुनिक जीवन की ज्वलन्त समस्याओं पर निर्भय विचार और सब से अधिक स्वर्गीय विश्वप्रेम से परिपूर्ण आपके उपदेश मेरे लिए ईश्वरीय सत्य के समान थे। पूज्यश्री के विदा होते समय जोधपुर को जो हार्दिक दुःख हुआ उसका चित्र मेरे हृदय मे अब भी स्पष्ट रूप से अकित है। पूज्यश्री का मुझ पर जो प्रभाव पड़ा ऐसा किसी दूसरे धार्मिक नेता का नही पड़ा। निसन्देह पूज्यश्री सभी जैनों के गौरव है चाहे वे कही भी रहते हो। जहाँ भी धार्मिक एव नैतिक विचार तथा सस्कृति अपने वास्तविक प्रकाश मे चमक रहे है वहाँ पूज्यश्री का बहुत ऊँचा तथा सम्मानित स्थान है। मेरी हार्दिक कामना है कि गुरु महाराज दीर्घ काल तक जीवित रहे तथा जाति और पन्थ की पर्वाह न करते हुए गलत रास्ते पर चलती हुई जनता के बढते हुए घावो को भरने में सहायता करे।

३९—श्री शंभूनाथ जी मोदी, सेशन जज, उपाध्यक्ष साधुमार्गी जैन सभा, जोधपुर

मुझे जोधपुर के चातुर्मास के समय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी म.सा. के उपदेशप्रद व्याख्यान श्रवण का सुखद सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यश्री की विद्वत्ता, व्याख्यान, गम्भीरता, विवेचन शक्ति की पटुता, सैद्धान्तिक तात्विक रहस्योद्घाटन की दक्षता ही उनकी मुख्य विशेषताएँ है। आप श्री के व्याख्यानो मे एक ऐसी चमत्कारान्विता शक्ति की प्रधानता रहती है जो जैन व जैनेतर सभी जनसमुदाय के हृदयपट पर समान रूप से धार्मिक प्रभाव अकित करती है।

आप श्रीमान् के प्रकाण्ड पांडित्य से केवल जैन विद्वान् ही मुग्ध नही हुए है अपितु जैनेतर जनता भी पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित हुई है। पूज्यश्री की इस गौरवगाथा पर हमें व हमारे समाज को नाज है, साथ ही शासननायक से प्रार्थना करते है कि पूज्यश्री दीर्घायुष्य होकर जैन जनता को विशेष कर्तव्य-ज्ञान कराने मे सहायक सिद्ध हो।

४०—डाक्टर मोहनलाल एच. शाह **M.B.B.S. (Bom) D.T.M. (Zia) z.U. (Wien)**

प्रतापी पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज नी अस्वस्थावस्था बखते जलगॉव मा त्रण मास जेटलो लाम्बो बखत सेवा करवानो अलभ्य लाभ मने मत्यो हतो।

पूज्य श्री नो पोताना मन ऊपर नो काबू, देह पर नी अममत्व, प्राणिमात्र प्रत्येनो उभरातो अनुकम्पाभाव अद्भुत अनुभव्यो। एमनो अने एमनी साथे ना मुनिमडल नो त्याग, सयम, शान्ति, ज्ञानरमणता, अने चरित्रशीलताए मारा ऊपर अद्भुत जादू कर्यू। अर्हन्नीति ऊपर ना एमना व्याख्यानोए मारा मन ऊपर घणीज ऊडी असर कीधी हती। आ समय मारा जीवन माटे परम सुख अने शातिमय हतो। जीवन मा आवी धन्य पलो थोड़ी पण मले तो स्वर्गीय सुख अनुभवाय एम मने लागे छे।

समाज धर्म अने देशना उत्कर्ष माटे एमनी लागणी तीव्र हती। प्रभु एमने दीर्घायुपी बनावो अने एमनी मधुर वाणी थी समाज तथा धर्म ने वधु अने वधु उत्कर्षमय बनावे एवी प्रार्थना थी विरमु छु।

41 –पूज्यश्री के सम्बन्ध में

श्री पी. एल. चुडगर बार एट. ला., राजकोट

1. It gives me very great pleasure and I esteem it is very rare privilege indeed to have got this opportunity of contributing my humble tribute to the venerable Shree Jawaharlal ji Maharaj for his profound scholarship, his deep study of Jain philosophy along with the comparative study of Jain religions of the world and the clear exposition of the principles of the religion in their practical Application to the daily life of the community.

2. Shree jawaharalal ji's great fame had preceded his visit to Western India and particularly to Kathiawar and tens of thousands of Jains all over this side of the country were very eager to have his Darshan and to hear him and learn at his feet the cardinal principles of the Jain religious philosophy.

3. He very kindly honoured us with his visit in the year 1936-37 and gave the benefit of his learning to tens of thousands of Jain and inumerable followers of other faiths in the principle cities and towns of Kathiawar such as Rajkot, Junagarh Morvi and Porbandar etc

4. I was one of the fortunate persons who attended some of his lectures which proved to be the great inspiration of my life.

5. He delivered five lectures in the Rajkot civil Station Connought Hall, in each one of which, the Hall was full to sufocation and the lectures were attended not only by the Jains, but by other Hindus, Moslems, Parsis, Christains etc. The resounding thundering voice and his inimitable eloquence won the admiration of all and inspired every body with the greatness of the Sthanakwasi jain religion and the Philosophy of life as expounded by him Each lectuere created an eagerness to hear more and more from him, and the appetite became simply voracious

6. Every day left with the firm impression that he was as indeed a great teacher of mankind, a profound scholar, a reformer and above all a great patriot.

7 If Shree jawaharlal ji Maharaj was free to travel by vehicles and if he was permitted to tour all over the world, I have no doubt that he would have easily won over millions of peoples all over the world and converted to be followers, of the Jain religion.

8. Shree Jawaharlal ji Maharaj is one of those great men who not only elevate the moral and spiritual life of men but bring into being ideas and forces that control and regulate in a great measure, the ordinary day to day life of peoples and permanently affected their out look and their ideas He left everlasting and inefficable influence when he goes and creates a wonderful spiritual atmosphere and he shows the light to thousands struggling in darkness for it.

9. I may sum up Shree jawaharlal ji's greatness in the words of Thomas Carlyle "Great men are the fire pillars in this dark pilgrimage of mankind. They stand as heavenly signs, everliving witnesses of what has been prophetic tokens of what still may be revealed, embodical possibilities of human nature".

10. May he be spared long and may his mental and physical strength be maintained throughout his life so as to enable him to continue his great mission for the moral and spiritual uplift of mankind.

१. पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज की विशाल विद्वत्ता, संसार के महान धर्मो के तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ जैन दर्शन का तलस्पर्शी ज्ञान, समाज के दैनिक जीवन में व्यावहारिक उपयोग बताते हुए धार्मिक सिद्धान्तो का विशद विवेचन आदि बातो के लिए अपनी विनम्र श्रद्धाजलि प्रकट करने का अवसर प्राप्त होना मेरे लिए अलभ्य लाभ है।

२. पश्चिमी भारत और विशेषतया काठियावाड़ में पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के पधारने से पहले ही उनका यश फैल चुका था। इस प्रदेश के हजारो जैन उनका दर्शन करने, व्याख्यान सुनने और उनकी चरणसेवा से जैनधर्म के मूल सिद्धान्तो को सीखने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे।

३.सन् १९३६-३७ मे आपने परम कृपा करके अपने पदार्पण द्वारा हमें सम्मानित किया और राजकोट, जामनगर, मोर्वी, पोरबन्दर आदि काठियावाड़ के प्रधान नगरो में हजारो जैन तथा अनगिनत अन्य मतावलम्बियों को अपनी विद्वत्ता का लाभ दिया।

४. मैं उन भाग्यशाली व्यक्तियो मे से था, जिन्होंने उनके कुछ व्याख्यान सुने थे। अगर मैं कहू कि उनके व्याख्यान मेरे जीवन में सब से अधिक प्रभाव करने वाले हुए तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नही है।

५. उन्होने राजकोट सिविल स्टेशन के कनाट हाल मे पाँच व्याख्यान दिये थे। प्रत्येक व्याख्यान मे सारा भवन ठसाठस भर जाता था। आपका व्याख्यान सुनने जैन ही नही, किन्तु दूसरे हिन्दू, मुसलमान पारसी और क्रिश्चियन आदि भी आते थे। आपकी प्रतिध्वनित गरजती हुई वाणी तथा अनुकरणातीत वाग्मिता सभी की प्रशसा को प्राप्त कर लेती थी तथा स्थानकवासी जैनधर्म तथा उनके कहे गए जीवन-सिद्धान्तो की महानता से उन्हे प्रभावित कर लेती थी। प्रत्येक व्याख्यान उनसे अधिकाधिक सुनने की उत्सुकता पैदा करता था और सुनने की भूख बढती थी।

६. उठने से पहले प्रत्येक व्यक्ति मे यह दृढ विश्वास जम जाता था कि वे वास्तव मे मानवता के महान् उपदेशक, गम्भीर विद्वान, सुधारक तथा सब से ऊपर महान् देशभक्त है।

७. यदि जवाहरलाल जी महाराज गाडी से मुसाफिरी करने मे स्वतन्त्र होते और उन्हे समस्त संसार की यात्रा के लिए अनुमति मिल जाती तो इसमे सन्देह नही है कि वे संसार मे करोडो व्यक्तियो को अपना भक्त तथा जैनधर्म का अनुयायी बना लेते।

८. श्री जवाहरलाल जी महाराज उन महापुरुषो मे से है, जो जनता के आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन को ही ऊँचा उठाने की कोशिश नहीं करते, किन्तु उन विचार तथा शक्तियो को भी अस्तित्व मे लाने की कोशिश करते है, जिन से एक बडे परिमाण मे जनता का साधारण दैनिक जीवन नियन्त्रित तथा नियमित होता है और जो उनके दृष्टिकोण तथा विचारों पर स्थायी असर डालते है। वे जहाँ जाते है वही अपना स्थायी तथा कभी नही मिटने वाला असर डाल देते है, वहाँ एक आश्चर्यपूर्ण आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देते है और उन हजारो व्यक्तियो को आलोक प्रदान करते हैं, जो इसके लिए अँधेरे में झगड रहे है।

९. टॉमस कार्लाइल के शब्दो मे मै श्री जवाहरलाल जी महाराज का उपसहार करता हूँ- "मानवसमाज की अंधकारपूर्ण यात्रा मे महापुरुष अग्निस्तम्भ है। वे नक्षत्रों के समान चमकते रहते हैं, बीती हुई घटनाओं के सनातन साक्षी है, भविष्य में प्रकट होने वाली बातो के लिए भविष्यसूचक चिह्न है तथा मानवप्रकृति की मूर्तिमती सभावनाएँ हैं।"

१०. वे चिरकाल तक बने रहें तथा उनकी बौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति आजीवन काम देती रहे, जिससे वे मानवसमाज की आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति के अपने लक्ष्य को जारी रख सके।

42—श्रेष्ठ ज्ञान और चरित्र के धनी

(श्री मणिलाल एच.उदानी. एम.ए.,एल.एल.बी. एडवोकेट, राजकोट)

I had the good Luck of knowing Jainacharya pujya Shree Jawaharlalji, when he happened to pass his monsoon sojourn at Rajkot in the year 1936. I heard from the city that an orthodox Jain Saint has come to Rajkot in the Bhojanshala and was giving his lectures which were very valuable. I inquired from different directions and heard that he was very particular in rites & rituals according to the Jain Sutra, was keeping anti-granted dress and that many Persons who were orthodox Jains were collecting round him every day for religious discussions.

It came into my mind then not to lose the opportunity of paying a visit to him and coming into his contact So I went to his place one afternoon and saw him. On seeing the very face of pujya Maharaj Shree and his brilliant forehead his deep and peaceful discussions, I could immediately find that he was a person of sound knowledge. His very physiognomy impressed upon me and inspired respect for him

Then I went to his lecture. A number of Sadhus were sitting on different benches with pujya Maharaj Shree in the middle. He commenced with a manglacharan (introductory song) with a tingling voice and in a chorus and then pujya Maharaj Shree caught one sentence from it and went on preaching for an hour and a half on one word. He never looked up into any of the books which is usually done by other sadhus. His brain was like an ocean from which all the waves of thought were coming out with all their force. In the lecture, he was preaching sound principles of Jainism, comparing them with other religions, taking out the substance of all and giving out the cream of all his vast reading to the public and I found that even if a man were to attend, understand, grasp and digest one lecture it was sufficient for him to get the right knowledge and to acquire Samkit (true knowledge). He was illustrating every philosophical text with illustrations from the Jain Sutras which were also at the tip of his tongue. It was in the same style that lord Mahavir was preaching Jain principles in the samavsaran. He concluded his lecture with blessings and benedictions to the audience. Having found that pujya Maharaj Shree was an ocean of right knowledge I made up my ming then not to miss any of his lectures, although it was difficult for me to spare time in the morning and to go to such a long distance every day. But the value of his lecture was thousand times more precious the

problems. He gave the instance of Bhishampitamah & explained how people of India were strong in the past and passionate thoughts and waste of energy. He gave the instance of Sati Anjana & impressed upon the audience that it was absolutely necessary for every man and woman to own benefit that every man should be devoted to his wife and every woman should be devoted to her husband. If the generation is getting weaker, every day, it is due to bad company and their own actions of thinking.

One day he gave a very useful lecture upon the present condition of the society and he explained so nicely the necessity of complete union in the family, in the country, and in all the societies. People should do away with all sorts of jealousy and evil thoughts for each other, should regard every creature as a soul, should maintain divine love towards each other and should see how he can be useful to the society and to the humanity in general. On the New Year's day people put on new clothes and go to their friends and relatives for offering their best wishes but on the very next day they put quarrels and so all such false show is absolutely unnecessary and there should complete Harmony and feelings for all, pujya Maharaj Shree said 'disiples of shri Mahaveer should visit of helpless and distressed and if they can be he Jpfulin the houses removing their miseries, that would be their real duty on the Diwali holiday. On this day, we have to think why our situation in the world is so much lowered, and by what means and ways we can elevate the status of our people. Put the principle of Lord Mahavir into the depths of your heart and see what are the defects and self examination will make you completely perfect. He explained with complete scientific treatment. How by religion alone, one can make oneself happy, acquire Nirvan and can become useful to society and the present miserable condition of the people will then come to an end.'

I went to several of his lectures and I must say that they were very instructive and coming out from masterly brain and on all the subjects, Pujya Maharaj Shree had complete knowledge and was up to date. He was always punctual in each and every programme and I found him working for the whole-day at this advanced age. Everybody who came to him was received respectfully and I found that sometimes youngmen coming to him for jokes were also appeased and passified with the coolness of replies of Maharaj Shree and they went away ashamed of their own behaviour.

When Maharaj Shree went for bringing his food, he was very particular that everything was served with perfect obedience to Jain

time and so I went to his lectures practically every day during his stay at Rajkot.

In the other lactures I could find various distinguishing features, although orthodox in stayle & dress, I could find that in his knowlege, he was upto date, with the present educated persons who very rarely attend the jain temples, would find from his lactures anything and everything about religious, socal, moral, intellectual & prectical lessons of life, If a man were to follow his directions, he can move in the fashionable society with perfect ease and comfort; can aquire wealth name and fame and still remain a true Jain who would be honoured in every society and who can still conqur his karmas & acquire salvation One day when he was talking of the educated persons, he distinguished independence from insolence with a masterly hand; and convinced that Everybody should have independence of thinking but it should be-in perfect harmony with the prenciples of religion and with complete respect to the leaders. It should not be self conceitad and insolent which is always due to want of thorough knowledge he impressed very well on different occasions upon the necessity of complete obedience to the parents and respecting their experienced mind. He said that real education consists in acquaring knowledge and in putting it into practice by a correct understanding of the various phases of life and how to become useful to society:

One day he gave preaching on the subject of birth-control; and it was a very important subject & his lecture was also very valuable. In these fashionable times when the value of Brahmacharya, its masterly results are totally forgotten and when men and women forget their real manners of living and go about openly in the publications, send for advertisement of birth-control appliances, Pujya Maharaj Shree's lecture was a marvelous lesson. He started with the stavan of lord Neminath and showed the instance of his great Brahamcharya. He said that the world was a garden and all the living beings were different trees in it. Man is a mango tree. They do not know how to keep the mango tree sweet and fertile. People have no control over the tongue. They have no control over the other organs and thus they create children, make themselves miserable and come into trouble. If they have to preserve Brahmchaya, power, knewledge, position strenth and religion would all come automatically. He gave many instances of greatmen, who by preserving their strength, left an immortal name in the world. He said "man has to understand whether passion is the enemy of men or whrther creation is the enemy. This is to understand by the right sanse and there would be a solution to

problems He gave the instance of Bhishampitamah & explained how people of India were strong in the past and passionate thoughts and waste of energy. He gave the instance of Sati Anjana & impressed upon the audience that it was absolutely necessary for every man and woman to own benefit that every man should be devoted to his wife and every woman should be devoted to her husband. If the generation is getting weaker, every day, it is due to bad company and their own actions of thinking.

One day he gave a very useful lecture upon the present condition of the society and he explained so nicely the necessity of complete union in the family, in the country, and in all the societies. People should do away with all sorts of jealousy and evil thoughts for each other, should regard every creature as a soul, should maintain divine love towards each other and should see how he can be useful to the society and to the humanity in general. On the New Year's day people put on new clothes and go to their friends and relatives for offering their best wishes but on the very next day they put quarrels and so all such false show is absolutely unnecessary and there should complete Harmony and feelings for all, pujya Maharaj Shree said 'disiples of shri Mahaveer should visit of helpless and distressed and if they can be he Jpfulin the houses removing their miseries, that would be their real duty on the Diwali holiday On this day, we have to think why our situation in the world is so much lowered, and by what means and ways we can elevate the status of our people. Put the principle of Lord Mahavir into the depths of your heart and see what are the defects and self examination will make you completely perfect. He explained with complete scientific treatment How by religion alone, one can make oneself happy, acquire Nirvan and can become useful to society and the present miserable condition of the people will then come to an end.'

I went to several of his lectures and I must say that they were very instructive and coming out from masterly brain and on all the subjects, Pujya Maharaj Shree had complete knowledge and was up to date. He was always punctual in each and every programme and I found him working for the whole-day at this advanced age. Everybody who came to him was received respectfully and I found that sometimes youngmen coming to him for jokes were also appeased and passified with the coolness of replies of Maharaj Shree and they went away ashamed of their own behaviour.

When Maharaj Shree went for bringing his food, he was very particular that everything was served with perfect obedience to Jain

rituals and he was always regular in every respect. He had a number of disciples, who are all trained under his own direct care and they were also remaining busy with the work that was allotted to them.

Pujya Maharaj Shree is a person of very high character very great knowledge and experience, sound intellect, and sharp memory and he was devoting all his time to make his life useful to the society. He has done a great obligation upon the people of Kathiawar by coming to Rajkot and giving us the blessings of his very high preachings. His life is extremely pious and beneficial to all. Many of his lectures are printed and it is a very useful accumulation of excellent thoughts.

I went to Morvi also and I found that he had impressed so highly upon the people of Morvi by his very high preachings. He could give the best of thoughts and the substance of philosophy in a very simple and impressive language and the orthodox as well as the refined classes had both very much to learn from him His gospel of non-violence and peace and not injuring the feelings of anybody was also very impressive and I mush say in a word that I could see in Pujya Maharaj Shree all the traits of highest knowledge, highest cheracter, simplest living and highest thinking. I found myself very fortunate to have come to know him and to have the pleasure of hearing his valuable lectures which have benefitted me so much. He is a very useful asset in the Jain Community and has done valuable work throughout his life and I do not think any word would be sufficient for expressing our gratitude to him for all this valuable service

In conference matters, Pujya Maharaj Shree is also taking keen interest, giving all practical directions and was giving spirit to the leaders of the different provinces. He was perfect in everything and by his experience could guide even the minds of the best of the leaders

I wish and pray that his great and masterly soul may always remain healthy. He mey continue to give his valuable preachings to the community and may be able to improve the present condition of the Jains and that he may have a healthy long-life which is always useful and serviceable to every body.

जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने सन् १९३६ का चातुर्मास राजकोट में किया था। उसी समय मुझे उनके परिचय में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैने सुना कि एक साम्प्रदायिक जैन महात्मा राजकोट की भोजनशाला में पधारे है। उनके व्याख्यान बडे महत्त्वपूर्ण है। विविध उपायो से पूछताछ करके मैंने जान लिया कि वे जैन शास्त्रानुसार क्रियाकाड का पालन करने मे बहुत सावधान है किन्तु रूढि की परवाह नहीं करते। बहुत से रूढिवादी जैन प्रतिदिन उनके पास जाकर चर्चावार्ता करते हैं।

उस समय मेरे मन में आया कि उनके दर्शन और परिचय मे आने के इस अवसर को न खोना चाहिए। एक दिन सायकाल मै उनके स्थान पर गया और दर्शन किए। पूज्य महाराजश्री की मुखाकृति, दीप्त-भाल तथा गभीर एवं शान्त चर्चावार्ता को देखते ही मे समझ गया कि वे ठोस विद्वान् है। उनकी आकृति ने ही मुझे बहुत प्रभावित कर लिया और मेरे हृदय में उनके प्रति सम्मान पैदा कर दिया। यह हमारा प्रथम मिलन था। एक विद्वान् पण्डित सस्कृत मे लिखी हुई दर्शनशास्त्र की पुस्तक उन्हे सुना रहे थे और वे प्रत्यके श्लोक को वडी रुचि के साथ समझ रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि इस अवस्था मे भी महाराजश्री एक विद्यार्थी के समान संस्कृत पढ रहे है। वे जैन और वेदान्त दर्शन की तुलना कर रहे थे तथा जैन दर्शन के रहस्य तथा उसकी सत्यता का सूक्ष्म निरूपण कर रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पडा कि वे सभी जैन आगमो के पूर्ण ज्ञाता है और मागधी भाषा के भी अच्छे पण्डित है। पण्डितजी का वाचन समाप्त हो जाने के वाद मैंने चर्चा प्रारम्भ की। पूज्यश्री ने जो विशाल ज्ञान प्राप्त करके पचा लिया है उसका पता मुझे कुछ प्रश्नो के वाद लगा। हमने जैनदर्शन के अनुसार आत्मतत्त्व पर चर्चा की। पूज्यश्री ने उसकी सर्वागीण तथा सुन्दर व्याख्या की। मुझे उससे पूर्ण सन्तोष हो गया। उन्होने बताया कि किस प्रकार आत्मा और पुद्गल दो भिन्न वस्तुएँ है, किस प्रकार वे कर्मो की रस्सी से जुडी हुई है तथा जन्म और पुनर्जन्म का कारण वनी हुई है। तत्त्वो को समझाने का ढग तथा अधिकारपूर्ण वार्तालाप उनके विशाल ज्ञान तथा महान् अनुभव को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त थे। प्रथम दर्शन से ही मैं मानने लगा कि वे जैन महात्माओ मे एक रत्न है। ऐसे महापुरुष के उपदेश समाज को बहुत उपयोगी होगे।

इसके बाद मैं उनके व्याख्यान मे गया। कई साधु भिन्न-भिन्न आसनो पर बैठे हुए थे। पूज्यश्री सबके मध्य मे थे। पूज्यश्री ने कापती हुई वाणी मे मंगलाचरण किया, अपने गीत का ध्रुवपद गाया और उसी मे से एक शब्द लेकर डेढ़ घटे तक बोलते रहे। जैसा कि दूसरे साधु साधारणतया किया करते है, पूज्यश्री ने एक बार भी किताब मे नही देखा। उनका मस्तिष्क एक समुद्र के समान मालूम पड़ता था जिसमे से विचारो की तरगे अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उठ रही थी। उस व्याख्यान मे वे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तो का उपदेश दे रहे थे, उनकी दूसरे धर्मो के साथ तुलना कर रहे थे, जनता को उन सभी का निचोड़ कर तथा अपने विशाल अध्ययन का मक्खन निकालकर दे रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पडा कि यदि कोई व्यक्ति उनके एक व्याख्यान को भी सुन ले, समझ ले, ग्रहण कर ले और पचा ले तो वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। अपने उपदेशो के साथ-साथ वे जैन शास्त्रो के उद्धरण देते जाते थे, जो कि उनके जिह्वाग्र पर स्थित थे। भगवान् महावीर इसी प्रकार समवसरण मे जैन सिद्धातो का उपदेश दिया करते थे। जनता के लिए शुभकामना तथा आशीर्वाद के साथ उन्होने अपना व्याख्यान समाप्त किया। यद्यपि प्रतिदिन सुबह समय निकालना और इतनी दूर जाना मेरे लिए कठिन था फिर भी जब मैने यह जान लिया कि पूज्यश्री यथार्थ ज्ञान के समुद्र है तो निश्चय कर लिया कि उनके किसी भी व्याख्यान को न चूकूंगा। उनके व्याख्यानो का मूल्य मेरे समय से हजार गुना अधिक था। जब तक वे राजकोट में ठहरे, मै प्रतिदिन व्याख्यान में जाता रहा।

दूसरे व्याख्यानो मे कई प्रकार की असाधारण विशेषताएँ मालूम पड़ी। यद्यपि उनका ढग और वेशभूषा पुरानी थी किन्तु उनमें भरा हुआ ज्ञान पूर्णतया सामयिक तथा वर्तमान जनता के उपयोग का था। मेरा विश्वास है कि वर्तमान शिक्षित व्यक्ति, जो जैन मन्दिरो मे बहुत कम जाते हैं, उनके उपदेशो से धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक तथा व्यावहारिक सभी प्रकार की जीवनोपयोगी शिक्षाएँ प्राप्त

कर सकते हैं। यदि मनुष्य उनके उपदेशानुसार चले तो वह वर्तमान सभ्य समाज मे सुख और सरलता के साथ उठ-बैठ सकता है, धन,यश तथा नाम कमा सकता है और फिर भी सच्चा जैन वना रह सकता है। प्रत्येक समाज मे उसका आदर भी होगा और साथ ही कर्मो का क्षय करके वह मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। एक दिन वे शिक्षित व्यक्तियो के साथ वार्तालाप कर रहे थे। उस समय उन्होने अधिकारपूर्ण ढग से स्वतन्त्रता को धृष्टता से अलग करके समझाया। सुनने वाले अच्छी तरह मान गए कि वर्तमान सन्तति धृष्टता और स्वतन्त्रता का सम्मिश्रण कर रही है और इसीलिए जीवन मे विफल हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति को विचार करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए किन्तु धर्म के मूल सिद्धान्तो के साथ पूरी संगति और नेताओ के प्रति आदर होना आवश्यक है। स्वतन्त्रता का अर्थ आत्म वञ्चना या मिथ्या दर्प नही है। इसके विपरीत धृष्टता हमेशा पूरे ज्ञान की कमी से होती है। माता-पिता की आज्ञा का पालन तथा उनके अनुभवी मस्तिष्क के प्रति आदरभाव होने की आवश्यकता पर उन्होंने कई अवसरो पर उपदेश दिया और इस बात को जनता के हृदय में बैठा दिया। उनका कथन है कि ज्ञान को प्राप्त करना तथा जीवन के विविध पहलुओ को ठीक-ठीक समझकर और समाज के लिए उपयोगी बनने के उपायों को सीख कर उन्हे जीवन मे उतारना ही सच्ची शिक्षा है।

एक दिन उन्होंने सन्तति नियमन पर व्याख्यान दिया। जिस प्रकार विषय महत्त्वपूर्ण था, उसी प्रकार पूज्यश्री का व्याख्यान भी मननीय था। फैशन के इन दिनों मे, जब कि ब्रह्मचर्य की कीमत और उसके अचूक परिणाम सर्वथा भुला दिए गए है, स्त्रियाँ और पुरुष जीवन के वास्तविक तरीकों को भूलकर अपने विचारो का खुल्लमखुल्ला प्रचार करतें है, सन्तति नियमन के विज्ञापन देखते है और कृत्रिम साधनो को काम मे लाते है, ऐसे समय मे पूज्यश्री का उपदेश अत्यधिक शिक्षाप्रद था। उन्होने अपना व्याख्यान भगवान् नेमिनाथ के स्तवन के साथ प्रारम्भ किया और उनके उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का उदाहरण पेश किया। उन्होने कहा कि ससार एक उद्यान है और इसमें रहने वाले सभी प्राणी विविध प्रकार के वृक्ष है। मनुष्य आम्र वृक्ष है। लोग यह नही जानते कि इस वृक्ष को मीठा और हरा-भरा कैसे रक्खा जाये ? रसनेन्द्रिय उनके वश में नही होती। इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियो पर भी नियन्त्रण नही होता। बच्चे पैदा होते हैं और दुख एव आपत्तियाँ खडी हो जाती है। यदि वे ब्रह्मचर्य का पालन करे तो शक्ति, ज्ञान, सम्मान, बल और धर्म सभी स्वय आ जायेंगे। उन्होंने बहुत-से महापुरुषों के उदाहरण दिए जिन्होंने वीर्य की रक्षा करके संसार मे अमर नाम प्राप्त किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य को विवेकपूर्वक समझना चाहिए कि उसका शत्रु काम है या सन्तान ? यदि इस बात को ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो उपरोक्त समस्या अपने आप सुलझ जाये। भीष्म पितामह का उदाहरण देते हुए आपने बताया कि प्राचीन समय में लोग कितने बलवान् होते थे और आजकल वीर्यनाश और गन्दे विचारो के कारण कितने निर्बल हो गए हैं! सती अजना का उदाहरण देकर आपने श्रोताओ के चित्त में बैठा दिया कि पत्नी को अपने पति मे अनुरक्त रहना चाहिए और पति को अपनी पत्नी मे अनुरक्त रहना चाहिए। इससे स्त्री और पुरुष का लाभ है। सन्तान के प्रतिदिन निर्बल होने का कारण बुरी संगति और बुरे विचार ही है।

एक दिन आपने समाज की वर्तमान दशा पर सारगर्भित भाषण दिया। परिवार, देश तथा सभी समाजो मे पूर्ण एकता की आवश्यकता का आपने बहुत सुन्दर प्रतिपादन किया। जनता को पारस्परिक ईर्ष्या और बुरे विचार छोड देना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा के समान समझना चाहिए।

परस्पर पवित्र प्रेम वढाकर समाज और मानवमात्र के लिए उपयोगी वनने का प्रयत्न करना चाहिए। नए वर्ष के दिन लोग नए कपडे पहनते है। अपने मित्रो और सम्बन्धियो से मिलने जाते है और अपनी शुभ कामना प्रकट करते है। किन्तु दूसरे ही दिन झगडा खड़ा कर लेते हैं। ऐसी दशा मे मिथ्या प्रदर्शन से कोई लाभ नही है। सभी के प्रति एकता और प्रेम की भावना वास्तविक होनी चाहिए। महावीर-निर्वाण के दिन पूज्यश्री ने कहा कि महावीर के अनुयायियो को दुखी और असहायो के घर जाना चाहिए। यदि वे उनके कष्टो को दूर करने मे कुछ भी सहायक हो सके तो दीवाली के त्यौहार की सच्ची आराधना होगी। आज हमे सोचना चाहिए कि ससार मे हमारी दशा इतनी गिरी हुई क्यो है, किन साधनो तथा उपायों से हमारे समाज का स्तर ऊँचा किया जा सकता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्त को हृदय में उतारो और अपनी कमियो पर विचार करो। आत्मपरीक्षा तुम्हे पूर्ण वना देगी। आपने सर्वथा वैज्ञानिक ढंग से बताया कि किस प्रकार केवल धर्माराधना से मनुष्य आनन्द प्राप्त कर सकता है, निर्वाण हासिल कर सकता है और समाज के लिए भी उपयोगी वन सकता है। उस समय संसार की वर्तमान अशान्ति का अन्त हो जाएगा।

मै उनके बहुत से व्याख्यानो में गया। यह कहना पडेगा कि वे सभी शिक्षा से भरे हुए होते थे। वे एक अनुभवी तथा परिपक्व मस्तिष्क की उपज थे। सभी विषयो पर पूज्यश्री का ज्ञान सर्वाङ्गीण और बिलकुल सामयिक था। वे अपने प्रत्येक कार्यक्रम के लिए समय के पूरे पाबद थे। वृद्धावस्था मे भी सारा दिन काम मे लगे रहते थे। वे अपने पास आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करते थे। मैने कई बार देखा कि नवयुवक जो उनका मजाक उडाने के लिए आते थे वे भी पूज्यश्री के शातिपूर्ण उत्तरो से शान्त तथा सन्तुष्ट होकर अपने व्यवहार के लिए शर्मिन्दा होते हुए लौटते थे।

जब महाराजश्री आहार के लिए जाते तो इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि प्रत्येक वस्तु जैन शास्त्रानुसार शुद्ध प्राप्त हो रही है। वे प्रत्येक बात मे सदा नियमित रहते थे। उनके साथ कुछ शिष्य भी थे। वे सभी उनकी साक्षात् देखरेख तथा चारित्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। वे पूज्यश्री द्वारा बताए कार्यो मे व्यस्त रहते थे।

पूज्यश्री का चारित्र बहुत ऊँचा है। ज्ञान तथा अनुभव अति विशाल है। बुद्धि स्वस्थ तथा प्रगाढ़ है, स्मरण शक्ति तीव्र है। उन्होने अपना सारा समय व जीवन को समाज के लिए उपयोगी बनाने में लगा दिया है। राजकोट पधारकर और अपने उत्तम उपदेशो का वरदान देकर आपने काठियावाड पर महान् उपकार किया है। आपका जीवन परम पवित्र और सभी के लिए कल्याणप्रद है। आपके बहुत-से व्याख्यान छप चुके है। वे श्रेष्ठ विचारों के उपयोगी सग्रह हैं।

मै मोरवी भी गया था। वहाँ भी अपने श्रेष्ठ भाषणो द्वारा आपने जनता को प्रभावित कर लिया था। उत्तम से उत्तम विचार और दर्शनशास्त्र के रहस्यो को वे सरल और प्रभावशाली भाषा में समझा सकते है। पुराने और सुधरे हुए विचारों वाले सभी उनसे बहुत कुछ सीख सकते है। आपका अहिंसा, शान्ति और दूसरे के मन को न दुखाने का सदेश भी बहुत प्रभावोत्पादक था। एक शब्द मे कहा जाय तो पूज्यश्री में श्रेष्ठ ज्ञान, श्रेष्ठ चारित्र तथा सादा जीवन और श्रेष्ठ विचार के सभी गुण विद्यमान है। मै इस बात के लिए अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि आपके परिचय मे आने तथा अमूल्य व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। उन व्याख्यानो से मुझे बहुत लाभ हुआ है। आप जैन समाज के अत्युपयोगी

रत है। आपने सारा जीवन उपयोगी कार्यो मे लगा दिया है। आपकी अमूल्य सेवाओ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हमारे पास शब्द नही है।

कांफ्रें स के मामलों मे भी पूज्यश्री वहुत रुचि लेते रहे है। वे विभिन्न प्रान्तो के नेताओ को व्यावहारिक आदेश देते थे और सभी के मार्ग-प्रदर्शक थे। वे प्रत्येक वात मे पूर्ण थे और अनुभव द्वारा सर्वश्रेष्ठ नेताओ के मस्तिष्क को भी सचालित कर सकते थे।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है और साथ ही ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी महान् आत्मा सदा स्वस्थ बनी रहे। वे अपने अमूल्य उपदेश समाज को सुनाते रहे जिससे जैन समाज की वर्तमान दशा सुधरे। उन्हे और दीर्घ जीवन प्राप्त हो जो कि सदा से प्रत्येक व्यक्ति की सेवा और उपयोग मे लगा हुआ है।

४३—श्रीमूलजी पुण्यस्मरण भाई सोलंकी, राजकोट

श्री जवाहरलालजी म. मोरवी हता। सन् १९३८ ना चातुर्मास दरम्यान मने तेमनो प्रथम परिचय थयो। आ समये मोरवी शहर दूर-दूर देश थी आवता जैन स्त्री पुरुषो अने वालको थी उभरातु। ते एक महान् यात्रा ना परमधाम समु बनी रह्यु हतु। कोई एक व्यक्ति ना दर्शनार्थे आटली मोटी मानव मेदिनी में आ पहेला कदी जोई न हती। ए मात्र मानव मेदिनी नहिं परन्तु भावभीना अने कल्याणकाक्षी लोको नो प्रेम नो सतत चालतो स्रोत हतो।

तेमना प्रथम दर्शन कर्या ते पहेला तेमने विषे जाण्यु हतु के श्री जवाहरलालजी एक प्रखर विद्वान, सम्पूर्ण चारित्रवान् अने महान् आत्मनिष्ट व्यक्ति छे। मारा प्रथम परिचयेज तेमना विषे मे जे साभल्यु हतु तेनी प्रतीति थई। त्यार पछी तो वखतो बखत तेना व्याख्यानमा जतो अने व्याख्यान ना समय बहार पण तेमना सत्सग नो लाभ लेतो। तेमना व्याख्यानोनी मारा ऊपर शुं असर थएली तेनी नोंध हु मारी रोजनीशि मां राखतो। ते रोजनीशिमाथी केटलाक अवतरणो आ साथे मोकलुं छुं। ते अवतरणो थी आप समजी शकशो के ते बखते श्री जवाहरलालजी प्रत्ये मारो शुं भाव हतो।

शुद्ध खादी ना बनेला मात्र बे चीवर थी ढकाएलुं तेमनु जरा-जर्जरित स्थूल शरीर व्याख्यान माटे आसनबद्ध थतुं त्यारे तेमनामां साचा धार्मिक जीवननी प्रभा; निर्भयता अने आत्मविश्वास थी उत्पन्न थती कार्यशक्ति, नरवरता ते वखते तेमना प्रसन्न मुख नेत्रवान् दर्शन थी तेमना प्रत्ये जनसमूह पूज्य भावथी आकर्षातो।

तेमना व्याख्याननी शैली शान्त छता असरकारक हती। तेमना व्याख्यान साभलनार भाग्येज कोई व्यक्ति हशे के जेने ते व्याख्यान सांभल्या पछी पोताना जीवननी धर्मशिथिलताथी दु.ख थतुं न होय। तेमना व्याख्यानो सामान्य जन समाज माटे करवामां आवता होई तेमा जैन तत्वज्ञान नी झीणी छणावट आवती नही। परन्तु भगवान बुद्ध तथा महावीरे लोको ने नैतिक जीवनना उत्कर्ष माटे जे बोधपद्धति ग्रहण करेली तेज पद्धति स्वामीजी नी पण हती। सामान्य जनता ने माटे तत्वज्ञान नी सूक्ष्म चर्चा साधारण रीते शुष्क बने छे।

पोताने जे सत्य लाग्यु ते कहेवामा पोताना सघाडा नी के श्रोताजनमानी कोई व्यक्ति नी तेमना मा परवाह न हती। साचा साधु जीवनी तेमनी निर्भयताने छाजे तेवी विवेक मर्यादा ते कदी भूलता नही। घणी बखत मोरवी सघना केटलाक अटपटा प्रश्न ऊपर ते छुट थी बोलता त्यारे सघनी कहेवाती

speaches are learned, pratical and inspiring, because, I believe, Muniji does not give advice which he does not practice or desire to practice.

Ist August 1939.

Yesterday morning I had been to the lecture of Muni Jawaharlal ji. More I hear him, more I feel his sincerety. He is a man who can flare up revolutions, but unfortunately his audience is too plaint for that, His speach was telling and inspiring.

6th August, 1938.

In the morning I had been to the Upasharaya. More I hear Swami Jawaharlal ji. More I admire him. He is a fearless speaker.

मेरी डायरी के उद्धरण

२२ जुलाई १९३८

प्रात:काल प्रसिद्ध जैन मुनि स्वामी जवाहरलालजी का व्याख्यान सुनने के लिए मै उपाश्रय मे गया। एक अच्छे वक्ता और विद्वान के रूप मे उनकी प्रसिद्धि मै सुन चुका था, इसलिए मै विशेष उत्सुक था। इसके साथ-साथ उनके लिए यह भी प्रसिद्ध था कि वे अपनी धारणाओं को कार्यरूप मे परिणत करते है। जब मैं व्याख्यान सुनने गया तो उन्हे वैसा ही पाया जैसी प्रसिद्धि थी। जैन साधुओं की साधारण विशेषताएँ उनमें विद्यमान है, किन्तु उनमे एक उच्च आत्मा का अनुभव किया जा सकता है। उनके शब्द वास्तव में उत्तेजना से भरे है।

३० जुलाई १९३८

कल सुबह मैं जैन मुनि जवाहरलालजी का व्याख्यान सुनने गया था। मुझे मुनिजी मे एक सच्ची और निर्मल आत्मा दिखाई देती है। उनके भाषण विद्वत्तापूर्ण, व्यावहारिक और प्रभावशाली होते है। क्योकि मेरे खयाल मे मुनिजी किसी ऐसी बात का उपदेश नही देते जिसे वे स्वय आचरण मे नही लाते या लाना पसन्द नहीं करते।

१ अगस्त १९३८

कल सुबह मै मुनि जवाहरलालजी का व्याख्यान सुनने गया था। मैं जितना सुनता हूँ उनमे उतना ही यथार्थता का अधिक अनुभव होता जा रहा है। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो क्रान्ति फूंक सकते है, किन्तु दुर्भाग्य से आपके श्रोता इस बात के लिए बहुत शान्त है। उनकी वाणी प्रेरणा और उत्तेजना से भरी होती थी।

६ अगस्त १९३८

सुबह मैं उपाश्रय में गया था। स्वामी जवाहरलालजी को मैं जितना सुनता हूँ उतनी अधिक प्रशसा करता हूँ। वे एक निर्भय वक्ता हैं।

४४– आदर्श उपदेशक

श्री वीरचन्द पानाचन्द शाह, महामंत्री श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई

पूज्य महाराज श्री ना हूँ जे थोडा परिचय मा आव्यो छुं तेनी मारा मन ऊपर घणीज ऊडी छाप पड़ी छे। मने बे प्रसंग सहज याद आवे छे!

एक वखते तेओ श्री पासे हूँ वैठो हतो। एक बहन आव्या। गुरु श्री ने विनति करी के 'महाराज श्री, मने सत्य (बोलवा) नी प्रतिज्ञा सेवरावो।

महाराज श्री खूब शान्तिपूर्वक ते वहेन ने कह्यु के "वहन' खाद्य वस्तुओं नी बाधा लेवी; सामायक प्रतिक्रमण ना नियम लेवा; आयंबील, उपवास विगेरे तपश्चर्या करवी अने देहदमन करवुं ते घणुं दुष्कर छे। अने मनोनिग्रह तो तेथी पण वधारे दुष्कर छे। तमारो सत्य वोलवा आचरवा माटे आग्रह हशे परन्तु आ ऊंपरानु वातावरण तम ने ज्यारे तमारी प्रतिज्ञा पालवा मा प्रतिकूल जणाशे त्यारे तमने कोई कोई वार खेद थशे। हमणा थोडे समय तमे वातावरण जोता रहो अने तेने सुधारता रहो। आ प्रश्न ऊपर हजु बधारे मंथन करजो अने पछी निर्णय पर आवजो"।

ते बहेने मक्कम मनथी अने सरल भावे एटलुंज कह्यु - "महाराज श्री, मे विचार करी जोयो छे, मात्र कोइक वार भूल थई जाय छे प्रतिज्ञा मने वधारे जागृत राखशे। आप प्रतिज्ञा सेवरावी अने ते पालवानुं मने बल मले तेवी आशीर्वाद आपो"।

पूज्य महाराज श्रीए योग्य समजण आप्या पछी बाधा आपी। आपणे आथी उल्टुं घणी बार जोइए छीए। पात्र नी पूरी शक्ति जोया सिवाय, साधुवर्ग तेमने प्रतिज्ञा लेवडाववा मा बहु तत्पर होय छे। तेओ अति उत्तम आशय थी प्रेरायला होय छे के प्रतिज्ञा अने व्रतो माणसना जीवन ने उच्च क्क्षाए लाववामा मदद रूप थाय छे। ते बात साची छे। छता योग्यायोग्य नो विचार तो करवो जोइए। केटलाक बाधा लेनारा भाई बहेनो समाज निन्दा ने कारणे अने केटलाक शरमथी परन्तु अनिच्छाए हा पाडे छे अने तेथी तेवा माणसो पाछल थई प्रतिज्ञा न पाली शके तो तेओ ऊँचे आववाने बदले नीचे जाय छे। अने प्रतिज्ञा प्रत्ये बधारे उदासीन बने छे। पूज्यश्रीए सामे थी प्रतिज्ञा लेवा आवनार व्यक्ति ने वधी वस्तुस्थिति समजावी ने पछी योग्य निर्णय करवा जणाव्यु। तेओश्री नी आ रीत प्रत्ये मने घणुज मान थयूं।

एक बीजो प्रसंग-श्री अखिल हिंद हरिजन सेवक संघ वाला श्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर जेओने 'ठक्कर बापा' ना अति परिचित नामे ओलखीए छीए, तेओए राजकोट खाते आव्या छे-एवी पूज्य गुरुदेव ने खबर पड़ी। तेओ हमेशा साधु जीवन नी मर्यादा मा रहीने पोतानु जीवन गाले छे। छतां देशोदय अने समाजोद्धारना कार्यो मा शुद्ध प्रवृत्ति करनाराओ तथा आत्म–भोग आपनाराओ प्रत्ये तेमना हृदय मा आदर अने सहानुभूति हता। तेओए तेमने मलवानी इच्छा व्यक्त करी, अने अमे ते बात श्री ठक्करबापा ने करी। ते ओ राजी थया अने अतिव्यवसायी अने पोताना कार्यक्रम ने अति चुस्तपणे वलगी रहेनारा तरीके तेमने वधा ओलखे छे। तेओ समय नो योग्य प्रबन्ध करी महाराज श्री ना दर्शने जैन उपाश्रय मा आव्या।

महाराज श्रीए तेओ ने उद्देशी ने कह्यु के "अमारा श्रावक समुदायना थोड़ा आगेवानो आ प्रसंगे अही हाजर छे। तो आप हरिजनो, भीलो विगेरे पछात कोमोनी बच्चे जे काम करो छो ते विषे अने तमारा

अनुभव विषे बे शब्दो कहो"। श्री ठक्कर बापाए अति नम्रता भावे जणाव्युं के "महाराजश्री ! हूँ तो आपना दर्शने आव्यो छु। आप अमने काईक वाणी संभलावो"। परन्तु पूज्य महाराज श्री ना आग्रह थी तेओ थोडुं बोल्या अने पछी महाराज श्री ए हरिबल मच्छीमार, मेतारज मुनि वगेरे नु जीवन प्रथम केटलु पतित हतुं ? पछी तेमनो केवी रीते उद्धार थयो ? ते बधुं सविस्तर समजाव्युं। जेन साधुओए भूतकाल मा पतितोनी केवी रीते सेवा करी छे, तेना दृष्टान्तो आप्या। जेन शास्त्र मां 'अस्पृश्यता' विषयनुं मन्तव्य शुं छे, ते पण स्पष्ट शब्दो मा कह्यु। तेओए जणाव्यु के वर्ण धर्म, ज्ञातिभेद अने अस्पृश्यता ने जैन धर्म मां स्थान नथी परन्तु काले करीने हिन्दुधर्म अने जैनधर्मनी परस्पर एक बीजाना ऊपर घणी असर थई छे, वगेरे वधु सूक्ष्मरीते समजाव्यु। ते थी अमे जोयु ठक्कर बापा ने बहु सतोप थयो हशे। अमे बहार नीकल्या त्यारे ठक्कर बापा मात्र एटलु बोलेला के "महाराज श्री मां साम्प्रदायिकतानी संकुचितना नथी, के एवो कोई जातनो आग्रह नथी। ए जोइने मने बहु आनद थाय छे। आवा पवित्र आत्माओ समाजने घणी सेवा आपी रह्या छे।

आ बे प्रसंगो उपरान्त महाराजश्री साथे मारे एकाद बे मुद्दा ऊपर चर्चा थई हती। आपणे जैनो अत्यारे जे प्रकार नी जीवदया पालीए छीए अने जे रीते जीवरक्षा करीए छीए आ सबधे ते ओ श्री नु मन्तव्य पूछयु हतु। महाराज श्री शास्त्र आज्ञाओने मान्य राखी आ मुद्दा ऊपर एटली वधी सुन्दर तलस्पर्शी मीमासा करी के सनातन अने सुधारक विचारवाला बन्नेने-तेमना मोटा भागने मान्य रही शके। बन्नेने तेओश्रीनो उपदेश ग्राह्य जणाता, तेओ श्री ए एक वस्तु बहु स्पष्ट करी अने कया भूल थाय छे ते जणाव्यु, " साधु जीवन नी अमुक मर्यादाओ छे परन्तु "विशेषनु विशेष फल" एवा खयालो मा साधु जीवन नी मर्यादाओ ने श्रावक जीवन साथे मेलवी आमा थी केटलोक गोटालो वधी वस्तुस्थिति ने जोई तपासी काले काले मिश्रित थई गयेली वस्तुओ नु सम्मार्जन करवु जोईए"।

आ प्रश्न तेओ श्री सप्तनय विगेरे वधी दृष्टीए चर्च्यो हतो जेना उपर घणुं लखी शकाय। परन्तु मे तो पूज्य गुरुदेवना टुका परिचयनी नोध करी छे।

पूज्य महाराज श्री सवत १९९४ ना विहार दरम्यान समढीआ थी पसार थता तेओ श्रीए 'श्रीग्राम सुधारणा समिति' नी मुलाकात लीधी हती। परन्तु ए समये हु अने मारा पत्नी विगेरे मलाया अने जावानी मुसाफरी ऊपर गया हता। ऐटले ए समये अमारी गैरहाजरी मा अमारी श्री सार्वजनिक होस्पिटल ना डॉक्टर श्री मणिलाल शाह एम.बी.बी.एस. तथा श्रीरामजी भाई विगेरेए तेमनो सत्कार कार्यो हतो अने सस्था विषेनो तेओश्री ने परिचय आप्यो हतो। महाराजश्रीए पोतानो सतोष व्यक्त कार्यो हतो अने शिष्य समुदाय साथे तेओश्रीए पछी आटकोट विहार कर्यो हतो।

पूज्य महाराज श्री काठियावाड मा ज्या-ज्या विचर्या छे त्या त्या अने जैनेतरो ऊपर तेमना पवित्र जीवन नी अने उपदेस शैली, जेमा हमेशा मिष्ट, प्रिय अने हितकारी वाणी नो उपयोग थतो रह्यो हतो तेनी घणी ऊँडी असर थई छे। एम मे अनुभव्यु छे।

पूज्य महाराज श्री नो शिष्यवर्ग गुरुदेवनी उत्तम प्रणालिका ने चालु राखवा शक्तिमान थाओ एवी हार्दिक नम्र प्रार्थना साथे विरमु छु।

४५— अगणित—वन्दन

रायसाहेव डाक्टर लल्लूभाई सी. शाह, लल्लूभाई विल्डिंग, राजकोट

राजकोट चातुर्मास माटे मारवाड तरफ थी विहार करता करता पूज्य श्री चोटीला मुकामे पधार्या (राजकोट थी ३० माइल दूर) ते वखते हु मारा कुटुव साथे मोटर मा चोटीला पूज्य श्री ना दर्शनार्थे गयो। सौथी प्रथम चोटीला गामे में तेमना दर्शन कर्या। व्याख्यान मां गाम ना प्रमाण मां माणस घणुं हतु। पूज्यश्रीए व्याख्यान नो विषय पण वहु सुंदर पसद कर्यो। भगवान श्री रामचन्द्र जीना जीवन मा ना केटलाक प्रसगो ऊपरनुं पूज्य श्री ए घणी सारी सुदर अने सरल गुजराती भाषा मा असर कारक व्याख्यान आप्यु। (तेमनी मातृभाषा गुजराती नही होवा छतां तेमनो गुजराती भाषा ऊपरनो काबू अजब हतो।) शु भगवान श्रीरामचन्द्रजी चा बीड़ी पीता हता ? ज्यारे तमो तेना भक्तो चा बीड़ीना व्यसन राखो ते केटलु शरम भरेलुं कहेवाय ? आ सचोट उपदेश थी घणा लोकोए ते वखते चा तेमज बीड़ी नहीं पीवानी बाधाओ लीधेला।

आ तो चोटीला गाम पूरती प्रस्तावना करी। हवे पूज्यश्री राजकोट पधार्या। राजकोट नी जैन प्रजाए घणी मोटी संख्यामा राजकोट थी अमुक माइल सुधी सामे जइने घणो भावभीनो सतकार कर्यो। चातुर्मास दरम्यान पूज्यश्रीए श्री अनाथी मुनि नो अधिकार (सनाथ–अनाथ) घणीज सुंदर, सचोट, विद्वत्ताभरी अने सांभलनारी प्रखदा ने असर करे अने छाप पाडी शके तेवी सादी-सीधी अने सरल गुजराती भाषा मा आवो अधिकार समझावेलो ते भूली शकाय तेम नथी (पुस्तक रूपे सनाथ अनाथ निर्णय प्रकट थयो छे)। सार्वजनिक उपदेश खातर हर रविवारे तेमना व्याख्यानो जुदा जुदा विषय ऊपर राखवामा आव्या हता, जे साभलवा माटे जैनेतर वर्ग मोटी संख्या मा आवतो अने लाभ मेलवतो। आ व्याख्यानोनु जुदु पुस्तक श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटीए 'श्री जवाहर ज्योति' ना नाम थी प्रकट करेल छे। उपरान्त तेमना हमेश ना व्याख्यानो पण पुस्तक रूपे 'श्री जवाहर व्याख्यान संग्रह' भा. १/२ श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटीए प्रगट करेल छे।

व्याख्यानमा प्रखदा घणीज मोटी सख्यामा भराती। अने व्याख्यान शैली एवी सुदर हती के साभल्याज करवानु मन थाय। तेमनी व्याख्याननी शरूआत प्रार्थना थी थती। प्रार्थना मा श्री चौबीस तीर्थंकर प्रभुनी सरनि राखवा मा आवी हती। प्रार्थना वखते वधा सतो साथे गाता गाता पूज्य श्री एक तार थई जता। व्याख्यान पूरू थवाना पहेला थोडो टाइम श्रीसुदर्शन चरित्र नो अधिकार समझावतां, जेनु पण काव्य-रूप मा 'श्री सुदर्शन चरित्र' नाम थी पुस्तक प्रगट थयेल छे।

पूज्य श्री नो अभ्यास एकलो जैन धर्मना सूत्रो पूरतो न होतो। श्री गीताजीना दरेक अध्ययन तेमने कंठस्थ हता। व्याख्यान मा गीताजी ना श्लोको तथा वेद, कुरान तेमज वाइविल मां थी पण समय अनुसार दृष्टांतो आपता। ते थी पूज्यश्री ने जैनधर्म उपरान्त बीजा धार्मिक ग्रंथों नो अभ्यास घणो सारो होवो जोइए, एम श्रोताओ ने लाग्या विना रहे नही।

एक अति महत्व नो प्रसग ए हतो के ज्यारे अत्ते सत्याग्रह नी चलवल चालती हती अने अशान्तिनु वातावरण हतु ते प्रसगे पूज्य श्री फकत शेष काल माटे श्री बाकानेर थी (राजकोट थी ३० माइल) राजकोट नी जैन जनता ना खास आग्रह थी अत्रे पधारेला। ते प्रसंगे तेमने विचार आव्यो के जो एक अठवाडीआ सुधी श्री शान्तिनाथ प्रभु नो जाप अखड रात अने दिवस सतत चालू रहे तो जरूर राजकोट

मा शान्ति थाय। तेमनी इच्छा ने मान आपीने श्री शान्तिनाथ प्रभु नो जाप अखड रात अने दिवस आठ दिवस सुधी चालू राख्यो हतो। अने आश्चर्य साथे राजकोट नी लडत नुं समाधान थयु अने शान्ति थई जवाथी तेओ श्री ना श्रद्धापूर्वक ना कथन माटे अमो तेमना ऋणी छीए।

मारा ऊपर तेमनो घणोज उपकार छे। मारी मादगी वखते पूज्यश्री सीडी ऊपर चडी शकता न होता छता मने संगलीक संभलाववा माटे पूज्य श्री वारंवार मारा घरे पधारता! मगलीक तथा आत्मिक औषध रूपी धार्मिक उपदेश थी मने अत्यन्त शाता उपजती अने मारू मादगीनु दर्द भुलाई जतु ते खातर हु तेम नो सदानो ऋणी छुं।

आवा सत महात्माओ ना पगला थी अने तेमनी सुवाणी अने सु उपदेश थी जैनधर्म नो वावरो फरकी रह्यो छे।

एक छेल्लो हमणा नोज प्रसग। पूज्यश्री नी भीनासर (वीकानेर) गामे थी घणी सखत मादगी ना समाचार अत्रे आव्या। मारे डाक्टरो नी मीटीग ने अगे ते अरसा मा दील्ही जवानु हतु। दील्ही जवानी तारीख मोडी हती। छता पण पूज्य श्री नी मादगी साभली ने हुं तुरत अत्रे थी वीकानेर गयो। ते वखते तेमनी सेवा करवानो जे लाभ मने मल्यो ते माटे हु मारी जात ने घणी भाग्यशाली मानु छु। तेमनी मादगी घणीज भयकर हती अने तेमने दर्द पण घणु असह्य हतु, छता तेमनी शान्ति अने समभाव आश्चर्य पमाडे तेवा हता। दील्ही थी मारे बनारस (मारा दीकरानी त्या बनारसी कापड नी दुकान छे) जवानो विचार हतो, परन्तु पूज्य श्री नी मांदगी नी स्थिति चिताजनक हती जे थी मीटीग नु काम पूरू थये हु तरतज पाछो बीकानेर गयो। पूज्य श्री नी तबीयत सुधारा ऊपर जोई, अने तेम नी सेवानो विशेष लाभ मल्यो।

ते वखते त्याना श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी बाठिया, स्व. सेठ श्री अमृतलाल रायचन्द झवेरी ना पत्नी ग. स्व. बेन केसरबाई नी तथा अन्य गृहस्थो नी तथा त्या ना डॉक्टर श्री अविनाश जेओ पूज्यश्रीनी सारवार करता हता ते बधानी सेवा जोइने मने घणोज आनन्द थयो। पूज्यश्री पासे तेओ बधा उभे पासे हाजर रहेता हता।

श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी बाठिया ना समागम मा हु पहेल वहेला आ प्रसगे आव्यो। मारा भीनासर पहोच्या पछीना बीजेज दिवसे पूज्य श्री नी मादगी छणीज भयकर अने अति वेदना वाली हती। तेनु आ दु:ख जोइने श्रीमान् सेठ चपालाल जी बाठीयाए मने जणाव्यु के पूज्यश्री ने कोईपण रीते वहेलो आराम थाय अने जेम बने तेम दर्द ताकीदे ओछु करी शकाय तेम तमो ने लागतु होय अने ते माटे कोई पण मुबई ना मोटा डॉक्टर ने बोलाववानी जरूर लागती होय तो गमे ते खर्च ना भोगे तमो बोलावी शको छो। आ सांभली ने पूज्य श्री तरफ नी तेमनी आवी महान् भक्ति जोई मने घणोज हर्ष थयो। श्रीमान् सेठ चंपालाल जी बाठिया नी पूज्य श्री प्रत्येनी केटली बधी अजब भक्ति छे तेनो वाचनारने आ ऊपर थी खयाल आवशे। बे दिवस तबीयत तपास्या बाद तबीयत मा सारो सुधारो जोवा थी बहारगाम थी डॉक्टर ने बोलाववा नी जरूर मने लागी नहीं।

राजकोट थी ज्यारे पूज्यश्री विहार कर्यो त्यारे शहेर नी बाहर वीदाई-वाणी साभलता श्रोताओ नी चक्षुओ अश्रु भीनी थएली, एवुं मानीने के हवे आ सत महात्मा नी अमृत वाणी ना प्रसादी राजकोट मा मलवानी नथी। पूज्यश्री बधा सतो साथे आगल अने आगल विहार करता रह्या अने तेमना पवित्र चरणरज नी प्रसादी पामता उदास भावे प्रखदा वीखरवा लागी।

आवा सत महात्मा ने मारा अगणित वदन हो।

४६— दो-पत्र

प्रसिद्ध देशभक्त श्रीमान् सेठ पूनमचन्द जी रांका

वेलोर जेल १४-१०-४२

जवाहर ज्योति नाम की पुस्तक इस बार जेल में पढ़ने का अनायास ही मौका मिल गया। मघा की कथा मे सारा निचोड़ आगया। आप की राष्ट्रवृत्ति विद्वत्ता त्याग आदि से परिचित हूँ। इसी भावना से आप की याद बनी रहती है। मैने अनेक सतो के दर्शन किये। राष्ट्रवृत्ति में आप की रुचि विशेष देखी। ऋषि सप्रदाय के मुनिश्री मोहन ऋषि जी की वृत्ति भी ठीक देखी। भगवान् महावीर के तत्त्वों के प्रचार तथा आचार का यही समय है। अहिसा, सत्य का संसार पर असर होकर रहेगा पर उस के लिए त्याग आदि भी जरूरी है। गतवर्ष नागपुर जेल में स्व. से. जमनालालजी बजाज आदि साथ थे। वे आप से जलगाव में मिले थे। एक दिन आप के सबन्ध मे हम दोनों की बात हुई कि कभी मौका मिला तो दर्शन करने चलेगे। ऐसा सोचा गया पर उनकी इच्छा सफल नही हुई। एक दिन आगे पीछे सभी को इसी रास्ते पर जाना है। कृपा रखें। प्रत्यक्ष में मैने आप की सेवा की नही और भविष्य मे भी होगी नही। यह होते हुए भी परस्पर का प्रेम अंत तक रहेगा। दोनो का मार्ग एक ही है।

पूज्यश्री को राष्ट्र के दृष्टिकोण से देखा और समझा। मैने उनको जो कुछ समझा वह ठीक है या नही, इसलिए महात्मा भगवान्दीन जी तथा स्व.सेठ जमनालालजी बजाज को पूज्यश्री से मिलाया। हम तीनो का एक मत रहा। वह इस स्थल (जेल) मे लिखने में उपयोगी नहीं होगा। पूज्यश्री ने अपने जीवन का सदुपयोग ही किया पर शिष्य और श्रावकों में उन से उपयोग लेने वाले नही निकले। वर्तमान परिस्थिति भगवान् का मार्ग दीपाने की है पर पूज्य श्री का २-३ वर्ष से शारीरिक रोग से लाचार हो जाने से विशेष उपयोग न होना स्वाभाविक है। फिर भी पूज्यश्री को ऐसे समय में भक्तों की तो क्या, शिष्य गणों को प्रेरणा करके उन की परीक्षा ले लेनी चाहिए। २-३ भी मिल जाएगे तो पूज्यश्री की आयु, त्याग, तपश्चर्या का उपयोग हो जाएगा। पूज्यश्री का भी यह अंतिम समय है। जो कुछ सचय किया है वह भगवान् के अहिंसा, सत्य मे होम दें। उस का उनके पीछे समाज को कुछ भी तो उपयोग होगा।

४७—पूज्यश्री संबंधी मेरे संस्मरण

(ले.धर्मभूषण, दानवीर सेठ भैरोंदानजी सेठिया, बीकानेर)

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति मेरी जो सहज स्वाभाविक श्रद्धा सदा से रही है और उनके उच्च आचार विचारों से प्रभावित होने के कारण जो उत्तरोत्तर वृद्धि गत होती रही है उसी की प्रेरणा ने मुझे यहाँ अपने मनोभाव सक्षेप मे व्यक्त करने को प्रेरित किया है। उनके जीवन की मीमासा, आलोचना, अथवा विश्लेषण करने की मेरी स्थिति नही है। यह कार्य तो विद्वद्वरो की लेखनी से ही सुसपन्न होता है। एक पूज्य आचार्य के प्रति एक श्रद्धालु श्रावक की दृष्टि से ही मैंने उन्हें देखा है और उसके बाद तटस्थ होकर जब तब उस पर विचार किया है, उसी का साराश मै यहा दे रहा हूँ।

पूज्यश्री का मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है। युवा तपस्वी की उग्र तेजस्विता मैने उनके चेहरे पर देखी थी, वही धीरे-धीरे सौम्य, स्निग्ध शाति मे कैसे परिवर्तित हो गई ? यह मै जब आज सोचता हूँ

तो हृदय पुलकित हो उठता है। मुझे लगता है कि उन्होंने जीवन के इस परम सत्य को किस अच्छी तरह अवगत कर लिया था कि मानव जीवन कुशा की नोक पर रखी हुई ओस की उस बूद की तरह है जो क्षण भर मे अपने अस्तित्व से रहित हो जायेगी। इसीलिए काया के मोह को उन्होने छोड दिया था। असह्य वेदना को कितनी दृढना और कितने धैर्य के साथ उन्होने सहन किया था! इस बीच मुझे जब जब उनके दर्शनों का सुअवसर मिला था, मैने कभी उनके मुख पर व्यथा या वेदना के चिह्न नही देखे, उनकी जिह्वा से कभी सिसकना नही सुना। हम आप सब को विदित है कि Carbuncle (जहरी फोडे)मे कैसी असह्य वेदना मनुष्य को होती है। उसकी यत्रणा के साथ बडे-बडे धैर्यशालियो का धैर्य छूट जाता है। वे छट-पटाते हुए देखे जाते है। पर पूज्यश्री ने जैसे उस वेदना पर विजय प्राप्त कर ली हो, इस प्रकार परम शांति से उसकी घोर पीड़ा को समभावपूर्वक सहन किया। मैने ही क्या, किसी ने भी उनके मुँह से उफ् तक न सुनी। शायद वे इस आस्था से सदा बलवान् रहे कि वेदना से जीव कभी अजीव नही हो सकता। कर्मो के ऋण को चुकाने पर ही जीव मुक्ति पा सकता है।

अपने जीवन के अतिम समय मे बीकानेर व भीनासर मे पूज्यश्री ने लगभग तीन वर्ष तक स्थिर वास किया था। इस बीच वे कुछ दिन पारखजी की बगीची में, कुछ दिन डागाजी की बगीची मे, कुछ दिन ऊन प्रेस में और फिर बाद मे अन्त समय तक भीनासर मे थे। मुझे इस बीच अनेक बार आपके दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके व्यक्तित्व मे जो विशेष प्रकार का आकर्षण था उससे लोग सहज ही आपकी ओर खिचते थे। आपके चेहरे पर महर्षियो का शीतल, सौम्य तेज इस काल में मैंने सदा विराजमान देखा। उसी प्रकार आपकी वाणी मे अपूर्व सयम और विशुद्ध निर्मल भावना का प्रसार पाया। ऐसा प्रतीत होता था कि मन, वचन और काया के अन्तरबाह्य दोनो को उन्होने परिशुद्ध कर लिया है। ऐसी परिशुद्धि जीवन में तभी सम्भव हो सकती है जब तपश्चर्या और साधना की चरम प्राप्ति के कठोर और कष्टकर मार्ग पर चल कर उसकी मंजिल पूरी कर ली गई हो एव कषायो पर विजय प्राप्त कर ली गई हो। ऐसा सुयोग और सद्भाव बड़े-बडे महात्माओ और योगनिष्ठ भाग्यशालियो को ही प्राप्त होता है। मनोभावो और परिणामो की अत्यन्त निर्मलता बिना कौन इसे पा सका है ? मुझे यह देख कर सदा ही सतोष हुआ कि चतुर्विध सघ के शीर्ष पर विराजमान हमारे धर्माचार्यश्री मे वही देवोपम ज्योति झलमला रही थी। जिस आदर्श की स्थापना के लिए वे पूज्य पद पर आरूढ़ हुए थे, जिनवरों के उस आदर्श को उन्होने चरितार्थ करके दिखा दिया था। समाज की आत्मा ने उसे अवश्य ही ग्रहण किया होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पूज्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ से जिन शब्दो मे क्षमा-याचना एव क्षमादान किया था वे बार-बार याद करने योग्य हैं। आपने फरमाया था:-

''मेरा शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है, इस बात का कोई भरोसा नहीं कि इस भौतिक शरीर को छोड कर प्राणपखेरू कब उड जाय ? ऐसी दशा मे जब तक ज्ञानशक्ति है, भले-बुरे की पहचान है तब तक ससार के सभी प्राणियो से तथा विशेषतया चतुर्विध श्रीसघ से क्षमायाचना करके शुद्ध हो लेना चाहता हूँ, मेरी आप सभी से विनम्र प्रार्थना है कि आप भी शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा प्रदान करे। ....इसी तरह जो मेरे द्वारा क्षमा पाने के उत्सुक है उन्हे मै भी अन्तःकरणपूर्वक क्षमा प्रदान करता हूँ। मैने अपनी आत्मा को स्वच्छ एव निर्वैर बना लिया है''।

यह केवल कथन मात्र नही था। जिन्होने अन्तिम समय में उनके दर्शन किये है उन्हे इस बात का अनुभव होगा कि ये शब्द उनकी आत्मा के अन्तरतम प्रदेश से निकले हुए स्वाभाविक उद्‌गार थे। ससार के व्यवहार के प्रति उन्हें समदृष्टि रखने की अवस्था प्राप्त हो गई थी। जीवन-व्यापी साधना की परम सिद्धि पर उन्होने अधिकार कर लिया था। यदि ऐसा न होता तो क्या उनके चेहरे पर वह परम शान्ति रह पाती जिसका अखण्ड साम्राज्य अन्त समय तक अक्षुण्ण रहा। उन्होने इसी समाधि की अवस्था मे वैर-विरोध, यशकीर्ति, रागद्वेष सब से तटस्थ होकर पण्डितमरण पूर्वक शान्ति की अमर गोद में शयन किया। उनका सारा जीवन ही इस परिणाम की प्राप्ति मे निरत रहा। बीच-बीच में जो कई ऐसे स्थल आये हो जहाँ शासन के उत्तरदायित्व के लिए या सत्य की स्थापना के लिए उन्हे कठोर होना पड़ा हो, ये उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्शों में मुख्य नही हो सकते, क्योकि आखिर उन्होने ऐसे प्रसङ्गो के लिए भी क्षमायाचना कर ली थी, उनके प्रति किसी तरह का आग्रह नही दिखाया था प्रत्युत अपनी आत्मा को निर्वैर बना कर समस्त प्राणियो के साथ मैत्री भाव स्थापित किया था। किसी के साथ किसी प्रकार के वैर-विरोध को शेष नही रखा था। तब आज उनके जीवन से आलोक की किरणे बटोरते समय हमे क्या अधिकार है कि हम उन्हे स्थान दे ? हमारे लिए क्यो न उनके चारित्र का वही परमोज्ज्वल शात और सयत रूप पथप्रदर्शन का काम करे- वही जो उनके महिमाशाली जीवन का सार तत्त्व था।

४८— पूज्यश्री का हृदयस्पर्शी उपदेश

श्रीयुत पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, ब्यावर

जीवन को ऊचा उठाने के लिए प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो पखो की आवश्यकता है। जिस पखी का एक पंख उखड जायेगा वह अगर अनन्त और असीम आकाश में विचरण करने की इच्छा करेगा तो परिणाम एक ही होगा-अध.पतन। यही बात जीवन के सबंध मे है। जीवन में एकान्त निवृत्ति निरी अकर्मण्यता है और एकात प्रवृत्ति चित्त की चपलता है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषो ने कहा है-

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्त॥

अर्थात्- अशुभ से निवृत होना और शुभ मे प्रवृत्ति करना ही सम्यक्‌चारित्र समझना चाहिए। और चारित्र ही धर्म है इसलिए इस कथन को सामने रखकर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि धर्म प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप है। 'अहिंसा' निवृत्ति भेद है पर उसकी साधना विश्वमैत्री और 'समभावना' को जागृत करने रूप प्रवृत्ति से होती है। इसी से अहिंसा व्यवहार्य बनती है। किन्तु हमे प्राय. जीवघात न करना सिखाया जाता है पर जीवघात न करके उसके बदले करना क्या चाहिये ? इस उपदेश की ओर उपेक्षा बताई जाती है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेशो ने इस त्रुटि को पूर्ण किया था। उन्होने धर्म को व्यवहार्य, सर्वागीण और प्रवर्त्तक-रूप देने की सफल चेष्टा की थी। अपने प्रभावशाली प्रवचनो द्वारा उन्होने शास्त्रों का जो नवनीत जनता के समक्ष रखा, निस्सदेह उसमे सजीवनी शक्ति है। उनके विचारों की उदारता ऐसी ही थी जैसे एक मार्मिक विद्वान जैनाचार्य की होनी चाहिये।

आचार्यश्री की वाणी में युगदर्शन की छाप थी। समाज मे फैले हुए धर्म संवधी अनेक मिथ्या विचारो का निराकरण था। फिर भी वे प्रमाणाभूत शास्त्रो से इच मात्र भी इधर-उधर नही होते थे।

उनमे समन्वय करने की अद्भुत क्षमता थी। वे प्रत्येक शव्दावली की आत्मा को पकडते थे और इतने गहरे जाकर चिन्तन करते थे कि वहा गीता और जैनागम एकमेक से मालूम होने लगते थे।

गृहस्थ जीवन को अत्यन्त विकृत देखकर कभी-कभी आचार्यश्री तिलमिला उठते थे और कहते थे-'मित्रो! जी चाहता है, लज्जा का पर्दा फाडकर सव वाते साफ-साफ कह दूँ। नैतिक जीवन की विशुद्धि हुए विना धार्मिक जीवन का गठन नही हो सकता, पर लोग नीति की नही, धर्म की ही वात सुनना चाहते हैं, आचार्य श्री उन्हे साफ-साफ कहते थे- "लाचारी है मित्रो! नीति की वात तुम्हे सुननी होगी। इसके विना धर्म की साधना नही हो सकती"। और वे नीति पर इतना ही भार देते थे जितना धर्म पर।

आचार्य के प्रवचन ध्यानपूर्वक पढने पर विद्वान् पाठक यह स्वीकार किये विना नही रह सकते कि व्यवहार्य धर्म की ऐसी सुन्दर, उदार और सगत व्याख्या करने वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति अत्यन्त विरल होते है। आचार्यश्री अपने व्याख्येय विषय को प्रभावशाली वनाने के लिए और कभी-कभी गूढ विषय को सुगम वनाने के लिए कथा का आश्रय लेते थे। कथा कहने की उनकी शैली निराली थी। साधारण से साधारण कथानक मे वे जान डाल देते थे। उसमें जादू-सा चमत्कार आ जाता था। उन्होने अपनी सुन्दरतर शैली, प्रतिभामयी भावुकता एव विशाल अनुभव की सहायता से कितने ही कथा-पात्रो को भाग्यवान् वना दिया है। वे प्राय. पुराणो और इतिहास मे वर्णित कथाओ का ही प्रवचन करते थे पर अनेक बार सुनी हुई कथा भी उनके मुख से एकदम मौलिक और अश्रुतपूर्व-सी जान पड़ती थी।

आचार्यश्री के उपदेश की गहराई और प्रभावोत्पादकता का प्रधान कारण था- उनके आचरण की उच्चता। वे उच्च श्रेणी के आचारनिष्ठ महात्मा थे।

आचार्यश्री के प्रवचनो का उद्देष्य न तो अपना वक्तृत्व कौशल प्रकट करना था और न विद्वता का प्रदर्शन करना ही, यद्यपि उनके प्रवचनों से उक्त दोनो विशेषताएं स्वय झलकती हैं। श्रोताओं के जीवन को धार्मिक एव नैतिक दृष्टि से ऊचा उठाना ही उनके प्रवचनों का उद्देश्य था। यही कारण है कि वे बार-बार उन बातों पर प्रकाश डालते हुए नज़र आते थे जो जीवन की नीव के समान है। इतना ही नही, उनके एक ही प्रवचन मे अनेक जीवनोपयोगी विषयों पर भी प्रकाश पड़ता था। उनका यह कार्य उस शिक्षक के समान था जो अबोध बालक को एक ही पाठ का कई बार अभ्यास कराकर ऊँचे दर्जे के लिए तैयार करता है।

४९—गुरुदेव!

(श्री बालेश्वरदयालजी, संस्थापक एवं संचालक, डूंगरपुर विद्यापीठ)

मै तुलसीदास नहीं जो अपने राम के प्रति श्रद्धा प्रकट कर सकूँ, अर्जुन जितनी प्रतिभा नही जो योगिराज कृष्ण का शिष्य कहला सकूँ, स्वर्गीय महादेव भाई की भाति शान्त एव क्रियाशील भी नहीं, जिन्होंने अपने चरित्र नायक गाधी की जीवन सफलता के लिए अपनी अपनी श्रद्धा और भाव की भेट चढ़ा दी, मै गुरुदत्त विद्यार्थी भी नही जिसने स्वामी दयानन्द के जीवन को अपने हृदय पर अकित कर लिया, बड़ी देर यही विचारमन्थन रहा कि क्या मै इतना योग्य हूँ कि पूज्यश्री के जीवन के प्रति यथार्थ श्रद्धाभाव का परिचय दे सकूँ। अन्त को चचल मन ने इस विचार-विनिमय पर विजय पाई।

पूज्यश्री के दर्शन के अवसर मुझे बहुत कम मिले है, मैं जब-जब उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ मुझे वे एक ही आशय का प्रश्न पूछते-कहिये भीलो की क्या हालत है ? इस वर्ष उनकी फसल कैसी है ? प्रश्न एकसा ही होता परन्तु उत्तर में मुझे सदैव नवीनता का अनुभव होता, ठीक उसी भाति जैसे कि सूर्य प्रति दिन एक-सा ही उगता है, परन्तु प्रत्येक दूसरे दिन उसमे नवीन स्फूर्ति, नव्य जीवन एव नया ही सदेश रहता है।

मेरे कल्पित किले के नायक ! भीलो के आतरिक जीवन के प्रति आपकी इतनी लागणी देखकर हे गुरुदेव! कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि सयोगवश इस महाविभूति की शक्ति कोई भील-सेवा की दिशा मे प्रयुक्त कर देता तो अधोगति की इस मौजूदा अवस्था मे भील जनता न दिखाई देती प्रत्युत लाखों भीलो का यह इलाका रचनात्मक सेवा का एक आदर्श उपस्थित करता, जो भारत के अन्य प्रान्तो के सेवकों के कष्टसहन और त्याग मे पथ-प्रदर्शन का काम देता।

कल्पना बडी सुन्दर और सुखद है कि पूज्यश्री इस सेवा क्षेत्र के आचार्य होते और लेखक उनकी उद्देश्यपूर्ति में एक छोटे-से सेवक का स्थान सम्हालता । विदेश की कलुषित सभ्यता के जो काटे आज सरल और सौम्य भावपूर्ण देहाती भील जनता मे घर कर गये हैं वे न होते.........और होता एक प्राचीन समाज का अर्वाचीन चित्र जिसे देख हिन्दुस्थान तो क्या बिजली की चकाचौध वाला जगत चकित हो उठता। परन्तु....... .ऐसा होता कैसे!!! आपको तो लाखो ही नही वरन् कोटि-कोटि जनता मे वीर वाणी का सुरसरि-स्रोत बहाना था।

करोडों के उद्धारक को लाखो मे सीमित कर रखने की मेरी कल्पना कोरी विचार कृपणता ही सही परन्तु भाव भीनी होने से क्षम्य है।

गरीब की गुदड़ी के लाल

नारकी जीवनलीला के क्षेत्र मे नर कंकाल और भूखे नगे भीलो के डूंगरों (पर्वतों) मे कही कोई जवाहर भी हाथ लग जायेगा। यह किसे कल्पना थी ?

अज्ञान-तिमिर मे चलने वाली डूगर प्रदेश की जनता ने "अन्धे के हाथ बटेर" की भांति जवाहर की ज्योति पाई। इस अलौकिक देन के लिये मै प्रकृति और परमात्मा का आभारी हूॅ। महान आत्माए धनवानो के महलों मे भी जन्म ले सकती है और गरीबो की झौपडियो मे भी। इस बात की एक नई पुष्टि आपके गौरवशाली जन्म से मिलती है। प्राय· निर्धनता और तपस्या का वातावरण ऐसे महापुरूषो के शुभागमन के लिये अधिक अनुकूल होता है। आपका एक साधारण कुल मे पैदा होना इन सब बातो का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

क्रान्तिकारी धर्मगरु

महापुरुषो के अस्त्र-शस्त्र तथा प्रयोग भी भिन्न-भिन्न होते है। कोई तीर, तलवार, बन्दूक और तोपो की विध्वसक गर्जना से विरोधियो के गर्व को चूर करता है, तो कोई क्षमा का चोगा पहन साधु रूप में अपनी विवेकपूर्ण वाणी और लेखनी से सिह-गर्जना करता है, कोई सशस्त्र क्रान्ति करता है तो कोई शास्त्र-संगत क्रान्ति कर प्रेमावतार वन जाता है और शत्रुओ को शिष्य बनाता है। अहकार.अनीति, वृथाडम्बर और पाखण्ड के वातावरण मे पली भ्रष्टोन्मुख कपि-सन्तति को आपने धर्म

की मूल बातो का वास्तविक अर्थ दिया, आपके भाषणो पर से लिखी गई अनेक पुस्तको मे से धर्मव्याख्या एक छोटी-सी पुस्तक भी जैनधर्म की व्यापकता को निर्विवाद वनाने के लिये पर्याप्त है।

भारत के विविध स्थानो मे पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक घूम फिर कर कुमार्ग गामियो को प्रबल तर्क, अद्‌भुत् युक्तियो से परास्त कर गम्भीर विचार-पूर्ण कई ग्रन्थो की रचना की। आस्तिकता, दया और सुधार का नया स्रोत बहाया।

गीता के गायक गुरुदेव!

प्राचीन ऋषियो की भाति जब आप गीता के गुह्य उपदेशो की व्याख्या करने बैठते है तो एक ही वाणी से अवस्थानुकूल भिन्न-भिन्न अर्थो की सृष्टि होने लगती है, वयोवृद्ध उसे निवृत्ति का उपदेश मान सन्तुष्ट दिखाई देता है और युवा हृदय उसी उपदेश को प्रवृत्ति मार्ग का प्रेरक मान कर्मवीर की भाति तरगों में बहता हुआ नव-चैतन्य प्राप्त करता है। यह केवल अनुभवगम्य है जिनका आनन्द केवल उन्ही को मिला है जिन्होंने गुरुवाणी का लाभ लिया हो।

हे विशालबुद्धि तपस्वी, दार्शनिक गुरुदेव! आपको मेरा त्रिकाल वन्दन!

५०—आचार्य श्री जवाहरलालजी के कुछ संस्मरण

(श्री मणिलाल सी. पारेख, राजकोट)

Some Years ago when Acharya Shri Jawaharlalji Maharaj was here, I had the opportunity to hear a few of his sermons and I must say that I was deeply impressed by them. I found in these sermons a quality which is not often present in the (व्याख्यान) vyakhyans as they are called by the Jains It was not the matter so much as the manner in which Acharya Shri presented whatever he had to say that constituted the charm and the attraction of his sermons These came not from his intellect but from his heart which was full of sympathy and love for the congregation Not that the matter was not very important and of a high quality, but the manner was of the essence thereof. He speaks from a deep experience of religious life and because of this he created an atmosphere which was very helpful to his hearers

The most important part of his sermons lay in the fact that he began them with prayers and a short sermon on the meaning of these prayers and the place of prayerfulness in life This put his lectures on a different level altogether, making them sermons in the true sense of the term From my boybood I have heard a number of Jain SadEus giving their (व्याख्यान) Vyakhyanas, but I have never known any who gave such prominence to prayer This puts a new spirit in the sermon proper that Shri Jawaharlalji gives. The atmosphere is surcharged with devotion and the congregation is decidedly better prepared to receive the teaching given in the (व्याख्यान) Vyakhyana proper.

As for the (व्याख्यान) Vyakhyana, it was always full of sound moral and religious teachng This was, however, of a practical kind and speculation had a small place in it

So far I have said something about the matter and the manner of the sermons of Acharya Shri Jawaharlalji. These I noticed when I saw him first But there is something more which I must mention here I came to know the Maharajshri personaly better when he came to the Rajkot civil station after some months stay in the city proper I had two intimate talks with him about things concerning spiritual life and it was these which revealed to me that he is true Sadhu. We talked about the way in which peace could be obtained and when I told him what my personal experience was in regard to this matter, he agreed with me and told me that he too had the same experience To be more explicit, I told him to start with that since I believed in God, the secret of religious life lay in being smaller and smaller, less and less, and that it was this alone which gave real peace to me He replied to this by saying that he himself had found this to be true in his own case, that it was only when he thought of himself, not as a big person or a great Sadhu or a leader or a Guru, but as an ordinary man, one among the others, that he had peace of mind He aded that when he ceased to think in this way, the disturbance in mind began My feeling is that he said this last in reference to his position as one of the most important leaders of the Jain Sadhus

Whatever this be, I found in the course of these too short but extremly intime personal talks that he is a true Sadhu and when I say this I am paying him a great tribute I found in him the most important qualities, according to my own idea of the Sadhu life viz. Simplicity of soul, humility of heart and sincerity He has certainly the qualities usually expected in a Jain Sadhu, but the ones mentioned above are the basic qualities and also the crown and fulfilment of the ordinary virtues of Sadhu life It is these which prevent a man and much more a Sadhu from becoming a prey to pride, which is always ready to attack and take possession of those who would follow the higher path Pride, especially in its subtler form is the greatest enemy of those who are apt to think themselves as Sadhu, and as such superior to laymen or the Shrawaks, and it is still more so of those who attain to a high position among the Sadhus Both in the East and the West, a number of Saints have said that it is easy to renounce the world, both (कचन और कामिनी) the Kanchan and Kamini, wealth and woman, but that the hardest thing to renounce is pride. Because of this one must have true humility in one's heart and the roots of this must go deep into one's

soul. I am glad to say that I found something of this humility in Acharya Shri Jawaharlalji and it was this which evoked true love and respect for him in my heart. I have seen a number of deeply religiousmen and women of various comunities such as the Jains, the Brahmans, the Christians, the Hindus etc., etc and I place Shri Jawaharlalji among the very few who have impressed me the most for their truly Sadhu life.

This is what it should be, especially in a congregation numbering hundreds of people and containing all sorts of men and women and even boys and girls. In such congregations the teaching should be such as sustains the interest of all throughout, a matter in which Shri Jawaharlalji Mharaj's sermons never failed. The teaching was full of illustrations of all kinds drawn from jain scriptures and other books and also from the scriptures of other religiouns and even from ordinary life. From the way in which shri Jawaharlalji Maharaj dealt with various subjects, it seemed to me that he is not only extremely tolearant towards all religions but has a positive, friendly and reverent attitude towards them This too is but proper and it adds to his spiritual stature While drinking deeply from the fountains of Jain Scriptures, he has drawn much inspiration from such gret scriptures as the Gita, the Upanishads and the Bhagvata. Even the Bible and the Kuran are not alien to him and he is ready to receive inspiration from them. In this also I fould him a class by hemself among the jain Sadhus, especially when we look to his age and early surroundings. His power of impressing the congregation also lay in the fact that he is fully alive to what is going on in the world to-day, in his close acquaintance with our prresent political, economic and social problems. He knows the besetting temptations and the sins of our people to-day and has sound advice to give as to how we should avoid these. All this makes his sermons truly vital.

In addition to this, I found in these sermons as orginal quality which I have noticed in few jain preachers. This Comes from shree Jawaharlalji's deep thinking on various subjects and from talents which he has been endowed with from his birth There is a touch of poetry in this originality which also must be mentioned. Had he thought it proper to devote himself to leterary work, I am sure he could have earned a good name for himself in the literary world. But he has wisely chosen to be a Sadhu and his occupation is certainly higher than that of a literary man

The qualities mentioned above have with them another which may be partly the cause and partly the effect thereof This is no other

than what is called child-likeness, one of the greatest qualities a human being can have When some children were brought to Jesus christ by their mothers to be blest by him. his disciples would not allow them to come near him, thinking that thereby his dignity would suffer. Seeing this he said to the disciples, "Let them come for such is the Kingdom of heaven made". The innocence. the sense of wonder, the teachableness etc. are the qualities of children and I found in Maharaj Shri Jawaharlalji some of these. He is alive to the fact that Knowledge is infinite and that it can be had in all directions, provided one does not close the doors of one's soul bu stupid bigotry. I found in him this openness of soul, this readiness to learn and appreciate other people's points of view and even to assimilate whatever may be good in them.

I had a concrete proof of this not only in my talks with him but in the following incident, which is indeed remarkable. I presented him two small books of mine before leaving him finally. one of these was (जीवन-वेद) Jeewan Veda by the great Bengali religious teacher Brahmarshi Keshub Chander Sen. It is a kind of his autobiography and is in many ways a most remarkable production. After leaving this book with him, I went to hear him the next day in the open meeting and my surprise can only be imagined when he gave us a talk on prarthana, prayer, which is indeed a favourite sadhan with him, but which was in the present case suggested to him by the very first chapter of (जीवन-वेद) the jeewan veda He had read it and even based his sermon on it, of course he treated the subject from his own point of view, but his appreciation of the other was visible throughout. He did a similar thing again the next day when he gave his talk on the Sense of Sin, which formed the second chapter of the book. An incident of this kind shows the magnanimity of his mind as nothing else can.

I believe very soon after this he left Rajkot, perhaps the next day, and when we went to see him off, there was a large crowd of people, all of whom were extremly sorry to part with him After having bade him good-bye to them all amidst scenes of sorrow and pain, when his eyes fell on me while passing by me he said to me "we are carrying with us your boklets "

After having such experience with him. I must say that things of this kind are not done by ordinary men. I may also add that, taken all in all. Acharya shri jawaharlalji is a Sandhu, in the truest sense of the term.

कुछ वर्ष पहले जब आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज यहाँ विराज रहे थे, मुझे उनकी वक्तृताए सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। निस्सन्देह उनका मुझ पर गहरा असर पडा। मुझे उन मे एक ऐसी विशेषता मालूम पडी जो जैनो द्वारा व्याख्यान शब्द से कहे जाने वाले उपदेशो मे प्राय नही होती। आचार्यश्री के उपदेशो मे जो बात आकर्षण और प्रभाव को पैदा करती है वह उन का कथनीय विषय नही किन्तु उसे जनता के सामने रखने की शैली है। वे उपदेश उन के मस्तिष्क से नही किन्तु उस हृदय से निकलते है जो श्रोतृसमाज के प्रति सहानुभूति और प्रेम से पूर्ण है। यह बात नही है कि उनका विषय महत्वपूर्ण और ऊँचे दर्जे का नही होता किन्तु प्रभाव का वास्तविक रहस्य उनकी शैली है। वे अपने धार्मिक जीवन के गहरे अनुभव के आधार पर बोलते है। इस कारण एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते है जो श्रोतृवर्ग के लिए बडा सहायक है।

उनके उपदेशो का सब से अधिक महत्त्व इस बात मे है कि वे उन्हे प्रार्थनाओ के साथ प्रारम्भ करते है। उस के बाद प्रार्थनाओ के अर्थ तथा जीवन मे प्रार्थना के स्थान पर छोटा-सा भाषण देते है। यह बात उनके व्याख्यानो को एक दूसरे स्तर पर पहुँचा देती है। वे उस समय सच्चे अर्थ मे धर्मोपदेशक बन जाते है। मैने अपने बचपन से बहुत-से जैन साधुओ के व्याख्यान सुने है किन्तु प्रार्थना को इतना महत्व देने वाला कोई नही मिला। जवाहरलाल जी महाराज के उपदेशों मे यह बात नई जान डाल देती है। सारा वातावरण भक्ति मे परिणत हो जाता है और जनता असली व्याख्यान को सुनने के लिए अधिक तैयार हो जाती है।

आप का व्याख्यान नीति और धर्म के ठोस उपदेशो से भरा होता है। वह सारा का सारा व्यावहारिक होता है। थोथी सैद्धान्तिक बाते उसमें कम रहती है। उपदेश ऐसा ही होना चाहिए विशेष रूप से ऐसी सभा मे जहाँ सैकडो की सख्या मे स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाए आदि सभी प्रकार की जनता हो। ऐसी सभा मे ऐसा व्याख्यान होना चाहिए जिसमे सभी के काम की बाते हो। श्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश इस बात मे कभी नही चूकते। उनके व्याख्यान विविध प्रकार के दृष्टान्तो से भरे होते हैं, जिन्हे वे जैन आगम तथा दूसरे ग्रन्थो के साथ-साथ इतर सम्प्रदायो के धार्मिक ग्रन्थो तथा सामान्य जीवन से उद्धृत करते हैं। श्री जवाहरलाल जी महाराज भिन्न-भिन्न विषयो की जिस रूप से चर्चा करते हैं उन से मालूम होता है कि दूसरे धर्मो के प्रति वे अत्यधिक सहनशील ही नही है किन्तु विध्यात्मक मित्रता तथा सम्मान का भाव रखते है। यह बात भी उन की विशेषता है और उनके आध्यात्मिक पद को ऊँचा करती है। जैन वाङ्मय के गहरे अध्ययन के साथ-साथ गीता, उपनिषद् आदि भागवत सरीखे महान ग्रन्थों से भी उन्हे महती प्रेरणा मिली है। बाइबिल और कुरान से भी वे अपरिचित नही है और उनसे भी आध्यात्मिक प्रेरणा लेने को तैयार है। इस बात के लिए भी जैन साधुओ मे आप अपनी श्रेणी के एक ही है, विशेषतया जब हम उनके समय और आस-पास के वातावरण को देखते हैं। उनमे जनता को प्रभावित करने की जो शक्ति है उसका एक कारण यह भी है कि वे ससार की सामयिक हलचल मे पूर्ण जागरूक रहते है। वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ से वे पूर्ण परिचित है। आधुनिक जनता को जो प्रलोभन और पाप घेरे हुए है वे उन्हे जानते हैं तथा उन्हे दूर करने के लिए निर्दोष परामर्श देते है। ये सभी बाते उनके उपदेशो को सजीव बना देती है।

इनके साथ-साथ आपके उपदेशो मे मुझे एक मौलिक विशेषता दिखाई दी है जो दूसरे जैन उपदेशको मे नही देखी गई। यह विशेषता श्री जवाहरलाल जी महाराज मे विभिन्न विषयो पर किए जाने वाले गंभीर विचार तथा जन्मसिद्ध स्वाभाविक प्रतिभा के कारण आई है। उनकी इस मौलिकता के साथ कवित्व का भी उल्लेखनीय सम्मिश्रण है। यदि वे अपना जीवन साहित्यिक क्षेत्र मे लगाते तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि वे साहित्यिक ससार मे अच्छा नाम पैदा करते। किन्तु उन्होने समझ बूझ कर साधु बनना पसन्द किया है और उन का कार्य क्षेत्र एक साहित्यिक से नि.सन्देह बहुत ऊँचा है।

अभी तक मैने आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज द्वारा दिये गए उपदेशो के प्रतिपाद्य विषय और उनकी शैली के विषय में कहा है। जब मैने उनके पहले-पहल दर्शन किए तभी इन बातों की ओर मेरा ध्यान गया था। किन्तु इन से भी अधिक कुछ और बाते है जिनका उल्लेख अवश्य करना चाहिए। महाराज श्री कुछ महीने राजकोट नगर मे विराजने के बाद जब राजकोट सिविल स्टेशन पर आए उसी समय मुझे उनके व्यक्तिगत परिचय का अधिक लाभ मिला। आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले विषयो पर मेरा उन से दो बार घनिष्ठ वार्तालाप हुआ। उसी समय बात स्पष्ट हुई कि वे एक सच्चे साधु है। हमने शान्ति के मार्ग पर वार्तालाप किया था। जब मैने इस विषय मे अपने विचार उनके सामने रक्खे तो वे सहमत हो गए और कहने लगे, मेरा भी यही अनुभव है। मैने उनसे कहा-मै ईश्वर में विश्वास करता हूँ। इसलिए मानता हूँ कि धार्मिक जीवन का रहस्य यही है कि मनुष्य अपने को छोटे से छोटा अनुभव करता जाये। इसी अनुभव ने मुझे वास्तविक शान्ति प्रदान की है।

उन्होने उत्तर दिया-''मुझे अपने जीवन मे भी यही बात सत्य प्रतीत हुई है। जब मैं अपने-आपको एक बड़ा आदमी, बड़ा साधु, नेता या गुरु न समझ कर साधारण व्यक्ति समझता हूँ, अपने को दूसरे साधारण प्राणियो मे से ही एक मानता हूँ उस समय मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। जब मै इस प्रकार सोचना बन्द कर देता हूँ, मस्तिष्क क्षुब्ध हो उठता है''।

मेरा विचार है, यह अन्तिम बात उन्होने जैन सम्प्रदाय के नेता के रूप मे अपने ऊँचे पद को ध्यान मे रख कर कही थी।

जो कुछ भी हो, इन दो छोटे किन्तु अन्तरङ्ग वार्तालापों के सिलसिले मे मुझे मालूम हो गया कि वे एक सच्चे साधु है। ऐसा कहकर मै उनके प्रति अपनी महान श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रहा हूँ। आत्मा की सरलता, हृदय की नम्रता तथा निष्कपटता आदि जो विशेषताएँ मेरे विचार से एक साधु मे महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं वे मुझे उनमें प्रतीत हुईं। निःसन्देह, जैन साधु मे साधारणतया जो विशेषताएँ होनी चाहिए वे सभी उन मे विद्यमान है, किन्तु मैंने जो विशेषताएँ ऊपर बताई हैं वे साधु जीवन का आधार है तथा उनके लिए आवश्यक साधारण गुणो मे मूर्धन्य तथा उन्हे पूर्ण करने वाली है। यही विशेषताएँ साधारण व्यक्ति, विशेषतया साधु को अभिमान के आक्रमण से बचाती है,जो कि ऊँचे मार्ग मे चलने वालो पर आक्रमण करने तथा अधिकार जमाने के लिए सदा तैयार रहता है। अपने को श्रावको से बडा तथा साधु समझने वाले व्यक्तियो का अभिमान, विशेषतया अपनी सूक्ष्म अवस्था मे, सब से बड़ा शत्रु है।

साधुओ मे भी ऊँचे पद को प्राप्त करने वालों के लिए तो यह और भी घातक है। पूर्वीय और पश्चिमीय बहुत से साधुओ ने कहा है कि कचन और कामिनी को छोडना आसान है किन्तु अभिमान को छोड़ना कठिन है। अभिमान को छोडने के लिए हृदय में सच्ची नम्रता होनी चाहिए और इस की जडे आत्मा

मे गहरी उतरनी चाहिए। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज मे यह नम्रता मुझे किसी हद तक मिली और इसी ने मेरे हृदय मे उनके प्रति सच्चे प्रेम और आदर को जन्म दिया। जैन, ब्राह्मण, क्रिश्चियन, हिन्दू आदि जातियो के धर्म मे गहरे उतरे हुए वहुत से स्त्री और पुरुषों के मैने दर्शन किए है, उन मे जिन्होने अपने सच्चे साधु जीवन के द्वारा मुझ पर प्रभाव डाला है उन थोडे से इने गिने महापुरुषो के साथ श्री जवाहरलाल जी महाराज के लिए मेरे हृदय मे स्थान है।

ऊपर बताई गई विशेषताओं के अतिरिक्त एक और विशेषता है जो कि कार्य और कारण दोनो रूप से विभक्त है। वह है उनकी बालक-सी सरलता। यह मानवजीवन की सबसे बड़ी विशेषताओ मे से है। ईसामसीह का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए जब कुछ माताएँ अपने बच्चो को लेकर उनके पास आई तो उनके शिष्यों ने बालको को पास न आने दिया। वे सोचने लगे कि इससे ईसामसीह का माहात्म्य घट जायेगा। यह देख कर ईसामसीह ने अपने शिष्यो से कहा-बच्चो को आने दो। इन्ही के द्वारा स्वर्ग का साम्राज्य बनता है। भोलापन, आश्चर्यान्वित बुद्धि, ग्रहणशीलता आदि बालको के गुण है। इनमे से कुछ मुझे जवाहरलालजी महाराज मे भी प्राप्त हुए। वे इस बात को अच्छी तरह जानते है कि ज्ञान अनन्त है और वह सभी दिशाओ से प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि मूर्खतापूर्ण धर्मान्धता के द्वारा व्यक्ति अपनी आत्मा के द्वार बन्द न करे। आत्मा का यह खुलापन, दूसरे व्यक्तियों के दृष्टिकोण को समझने, उनका आदर करने तथा उनमे रहे हुए अच्छेपन को अपनाने की तत्परता पूज्यश्री मे मुझे स्पष्ट प्रतीत हुई है।

उनके साथ की गई बातचीत ही नही किन्तु एक घटना के रूप मे मेरे पास इस बात के लिए ठोस प्रमाण है। यह घटना वास्तव मे उल्लेखनीय है:-

अन्तिम विदा से पहले मैने उन्हे दो छोटी-छोटी पुस्तके दी। उनमे से एक का नाम था 'जीवन वेद' जो कि बगाली धर्मोपदेशक ब्रह्मर्षि केशवचन्द्र सेन द्वारा लिखी गई थी। यह एक प्रकार से उनकी आत्म-कथा है और कई बातो के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। वह किताब उनके पास छोडने के बाद दूसरे दिन मैं उनका जाहिर व्याख्यान सुनने गया। जब उन्होंने प्रार्थना, जिसे वे अपने जीवन का साधन मानते है, पर व्याख्यान दिया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसमे 'जीवन वेद' के पहले अध्याय की बहुत-सी बाते थीं। उन्होने उसे पढ़ा था और अपने उपदेश को उसी के आधार पर दिया था। नि सन्देह उन्होने विषय की चर्चा अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही की थी किन्तु 'जीवन वेद, के प्रति उनका आदर सारे व्याख्यान मे प्रतीत होता था। यही बात दूसरे दिन भी हुई जब उन्होने 'पाप की बुद्धि' पर व्याख्यान दिया। यह पुस्तक का दूसरा अध्याय था। यह घटना उनके हृदय की विशालता को प्रकट करती है, जिसके बिना यह हो ही नही सकता।

इस घटना के बाद बहुत शीघ्र सम्भवतया दूसरे ही दिन उन्होने राजकोट छोड़ दिया। जब हम उन्हे पहुँचाने गये तो वहॉ बहुत भीड इकट्ठी हुई थी। उनके वियोग से सभी बहुत दुखी थे। शोक और दुःख के उस दृश्य मे सब को अन्तिम मगलाचरण सुनाने के बाद मेरे पास से निकलते समय जब उनकी दृष्टि मुझ पर पडी तो कहा-आपकी पुस्तकें हम अपने साथ ले जा रहे है।

उनके विषय मे इस प्रकार का अनुभव प्राप्त करके मै कहूँगा कि ऐसी बाते साधारण व्यक्ति नही कर सकता। सभी बातो को लिया जाय तो हमे कहना पडेगा कि श्री जवाहारलालजी महाराज साधु शब्द के सच्चे अर्थ में साधु है।

५१ — श्रद्धांजलि

बा. मस्तराम जैनी, एम.ए.. एल.एल.बी., अमृतसर

It was in the summer of, most probably. 1932, that I had Darshans of His Holiness at Delhi Baradari, Chandni Chowk, where I had gone, with the Punjab batch, to attend a meeting of the All India Sthanakwasi Sadhu Sammelan, which was held a year after at Ajmer Before I had heard a good deal about the austerity learning and diction of His Holiness discourses, which made an impression on the hearts of his audience, At Delhi what struck me the most was the disciplined and spontaneous divotion of the Shrawak Sangh that he enjoyed, as over a thousand people were sitting spell bound, while he was delivering his discourse in the morning, in a lucid manner in which he was placing, will find and intricate philosophical principles before his audience It was really a treat to hear him, and I consider myself lucky indeed that I was afforded an opportunity of being present there In that discourse I remember what a fine tribute he paid to his late-Holiness Acharya Shiromani Shri Pujya Sohanlalji Maharaj for his piety, learning and austerity, and who can deny the worth of such a tribute when paid by one great man to another equally great, for merit and worth alone can recognise and apperciate what merit and worth means and where it lies.

Just on the eve of the Ajmer Sadhu Sammelan, at Beawar, I had his darshan again along with Rai Sahab Tekchand Ji and lala Rattanchandji of Amritsar. As it is a open secret, he could not easily reconcile himself with the holding of the Sammelan and the final Sanction attaching to its decisions, till some preliminary doubts were resolved and removed But once this was over, he was a whole hearted supporter of the Sammelan. As soon as we entered, he was having a talk with the late Seth Gadhmalji Lodha, of Ajmer. He immediately had a talk with us regarding the sammelan, and what impressed me was the ready and quick manner in which he was catching our points, and vast and comprehensive out look that he was bringing to bear on the problems discussed, and at once appreciating the point of view other than his own. I had so far the experience of people leading a life of specialisation seclusion having a great natural difficulty to understand other points of view, [illegible] meeting was really a pleasant and [illegible] for me

occasion, and I noticed what command he had over the hearts of the largest member of men and women present in the whole concourse, and the utmost devotion that was shown to him It is not wonder that with this devotion and discipline on the one side, and the deep insight, knowledge, piety, austerity, lofty idealism, save and well balanced views and a comprehensive out look on the other is a combination, which, though luckily, is a very rare one indeed, but is nevertheless capable of producing results most fruitful and abiding

I along with others, join in paying my humble tribute to the qualities of head and heart of His Holiness and pray that he be spared for more time, in full possession of his physical and mental powers to guide the destinies of the Jain Samaj.

सम्भवतया १९३२ की गरमी मे जब पूज्यश्री चादनी चौक देहली की बारादरी में ठहरे हुए थे, मैने आपके दर्शन किए। मै उस समय अखिल भारतीय स्थानकवासी साधु सम्मेलन की एक बैठक मे सम्मिलित होने के लिए पजाबी दल के साथ गया था। सम्मेलन का अधिवेशन एक साल बाद अजमेर मे हुआ था। पूज्यश्री के कठोर सयम, विद्वत्ता और श्रोताओं के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाली आप की भाषण-शैली के विषय मे मैने पहले सुन रखा था। देहली में जिस बात ने मुझे सब से अधिक प्रभावित किया वह थी श्रावक सघ की आपके प्रति स्वाभाविक तथा अनुशासनपूर्ण भक्ति। प्रात· काल जिस समय आप भाषण दे रहे थे, हजारो व्यक्ति मत्र-मुग्ध से बैठे थे। अत्यन्त सूक्ष्म तथा उलझे हुए दार्शनिक सिद्धान्तो को श्रोताओं के सामने आप बड़ी प्राजल भाषा और सुगम शैली में रख रहे थे। वास्तव मे आपका भाषण सुनना एक दुर्लभ वस्तु है। उस समय उपस्थित होने का अवसर मिलने के लिए मै अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। मुझे स्मरण है कि उस समय स्वर्गस्थ आचार्यशिरोमणि पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के प्रति उनकी पवित्रता, विद्वत्ता, संयम के लिए श्रद्धाजलि समर्पित की थी। जब एक महापुरुष अपने ही समान दूसरे के प्रति श्रद्धाजलि समर्पित करता है तो उसके महत्व के विषय मे किसी को सदेह नहीं हो सकता। क्योकि गुण और योग्यता किसे कहते है और वे कहाँ रहते है, इस बात की पहिचान और कदर गुण और योग्यता ही कर सकते है।

अजमेर साधु-सम्मेलन के कुछ ही पहले मैंने ब्यावर में आप के फिर दर्शन किए। उस समय रायसाहेब लाला टेकचन्द जी और अमृतसर के लाला रतनचन्द जी मेरे साथ थे। यह एक सर्वविदित रहस्य है कि पूज्य श्री साधु-सम्मेलन करने और उसके निश्चयो को मानने के लिए तब तक तैयार नहीं थे जब तक कि उन की प्रारम्भिक शङ्काए समाधान द्वारा दूर न कर दी गई। किन्तु एक बार शङ्काए दूर होने पर वे सम्मेलन का हार्दिक समर्थन करने लगे। जिस समय हम अन्दर गए, आप स्व. सेठ गाढमलजी लोढा अजमेर से बात कर रहे थे। आपने तुरन्त हमारे साथ सम्मेलन के विषय मे बातचीत आरम्भ कर दी। जिस शीघ्रता और तत्परता के साथ वे हमारे विचारो को समझ रहे थे, विवादग्रस्त समस्याओ के लिए वे जिस विशाल तथा व्यापक दृष्टिकोण को अपना रहे थे और विरोधी दृष्टिकोणो का जिस प्रकार स्वागत कर रहे थे, इन सब का मुझ पर बहुत असर पडा। मुझे अब तक ऐसे व्यक्तियों का अनुभव हुआ था जो या तो अपने विचारो को बहुत महत्व देते है या सर्वथा अलग हो जाते है। दूसरे के दृष्टिकोण को समझना भी उन के लिए स्वभावत कठिन होता

है उस का आदर करना तो दूर की बात है। यह मुलाकात मेरे लिए वास्तव में आनन्द और आदरणीय आश्चर्य से भरी थी।

अजमेर मे साधु सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ। यह बात स्वयं अपना ऐतिहासिक महत्व रखती है। किन्तु उस मे भी सब से अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली घटना थी सम्मेलन का प्रारम्भ करते समय दिया गया आपका भाषण। सम्मेलन में बहुत बड़ी जनसख्या थी। सभी स्त्री और पुरुषो के हृदय पर आपका प्रभुत्व और आपके प्रति सभी की अत्यन्त भक्ति मुझे उसी समय देखने को मिली। इसमें कोई आश्चर्य नही कि एक ओर इस प्रकार की भक्ति और अनुशासन तथा दूसरी ओर गम्भीर सूक्ष्म दृष्टि, ज्ञान, पवित्रता, तपस्या, उच्च आदर्श, सुसगत और समतुल विचार तथा व्यापक दृष्टिकोण एक ऐसा मेल है जो भाग्य से बहुत ही विरले महापुरुषों में उपलब्ध होता है। ऐसा मेल बहुत ही लाभदायक तथा स्थायी कार्य कर सकता है।

पूज्यश्री के हृदय और मस्तिष्क की विशेषताओ के लिए दूसरों के साथ मैं भी अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी शारीरिक मानसिक शक्तियो को अक्षुण्ण रखते, हुए चिरकाल तक जीवित रहे और जैन समाज के सिद्धान्तों के लिए मार्ग प्रदर्शन करते रहें।

५२— जैन समाजनुं जवाहर

ले. प्रो. केशवलाल हिंमतराय कामदार एम.ए. बड़ोदा

मै अनेक जैन साधु साध्वीओनो समागम कर्यो छे, तेमा श्री जवाहरलाल जी महाराज ने हूँ उच्च कोटिमा मूकुं छु। मने स्थानकवासी, मूर्तिपूजक अने दिगम्बरी साधुओनो थोडो घणो परिचय छे। तेमनी पासे थी मे अनेक बार बोध लीधो छे। तेमा ना घणाओ साथे मारो सपर्क गाढ छे एम पण हु कही शकुं। ए वधा मडलमा मने श्री जवाहरलाल जी महाराज उच्च कोटिना साधु लाग्या छे।

बोटाद मुकामे अमे त्रण चार दिवस रोकाया हता। त्यारे मने पूज्य महाराजना व्याख्यानो साभलवानो लाभ मल्यो हतो। महाराज श्री व्याख्यान शरू करता ते अगाड़ी हमेशां तेओ एकाद तीर्थंकरनुं स्तवन करता हता। ए स्तवन अत्यन्त भाववाही हतु। ते ते स्तवन नो अर्थ तेओ अमने सुन्दर रीते समजावता हता। वृद्ध उमरे पण तेमनो आवाज सैकड़ो नर नारीओना समुदाय ने छेड़े सुधी जई शकतो। महाराज श्री ना व्याख्यानो श्रोताजनोना स्वभाव ने अनुकूल पडे तेवा हतां। तेमां न्याय, विद्वत्ता, करुणारस, बोध, लोककथा, फिलसुफी, वगेरे बधां तत्वो आवता। नरी फिलसुफी सामान्य श्रोताजनोने स्पर्शी शकती नथी। नर्यो न्याय सामान्य श्रोताजनोना मगजमां बेसी शकतो नथी। नरी विद्वत्ता लूखी लागे छे। महाराज श्रीना व्याख्यानो मा बधा तत्वो नो समावेश थतो हतो ते थी अमने तेमा घणो रस पडतो अने अमारा ऊपर तेनी सचोट असर पड़ती। एवा तेमना व्याख्यानो ना सग्रहो राजकोट निवासी तेमना प्रशंसको तरफ थी अने तेमा पण मारा मित्र भाई श्री चुन्नीलाल नागजी वोराना प्रयास थी बहार पडेला छे, जे वाचको ने मली शके छे। अनेक कुटुम्बो आ संग्रहोने वाचीने चारित्रशील अने विनयशील बन्या छे।

महाराज श्री जवाहरलाल जी वृद्ध उमरे पण नवीन विचारो धरावे छे। एटले के तेओ सर्व स्वभावना समुदाय ने अनुकूल नीवड्या छे। तेओ सम्प्रदाये स्थानकवासी साधु छे, पण तेमना मा कशो दुराग्रह नथी। अलवत्त, स्थानकवासी सप्रदायनी साधुत्वभावना ने अवलबी ने तेओ रहे छे, ते खरू छे।

तेओ बीजा मत मतान्तर प्रत्ये उदार दृष्टि धरावे छे। शास्त्रो नो अर्थ तेओ नवीन दृष्टि ने अनुकूल पडे तेवी रीते करी शके छे। तेना पालन मा तेओ कशी शिथिलता चलावता नथी। पोताना प्रशसको द्रव्य संग्रह करी जैन समाज नी व्यावहारिक उन्नतिमा तेने उपयोग करे ते प्रत्ये तेओ एकदम उदासीनता सेवे छे। स्थानकवासी सप्रदायनी संघ व्यवस्थामां जैन दृष्टि सचवाई रहे तेटलु तेओ इच्छे छे। तेमने पक्षापक्षी जरा पण गमती नथी, जो के स्थानकवासी दृष्टि थी कोई साधु नु वर्तन विरुद्ध जाय तो ते तेमने अनुकूल आवतुं नथी।

महाराज श्री जवाहरलालजीनो पोताना शिष्यसमूह मोटो छे। ते समूहमा योग्य व्यक्तिओ ने तेओ अनुकूल शिक्षण आपवा हमेशा तत्परता धरावता रह्या छे। तेम ना शिष्यो मा केटलाएकोनु सस्कृत साहित्यनुं ज्ञान मने उच्चकोटिनु लागेलु। वडोदरा मुकामे तेओ पधार्या हता त्यारे तेमना एक शिष्य ने हु प्राच्य विद्यालमांय लई गएलो, त्यारे मने तेनो, खास अनुभव थएलो।

पूज्यश्री जवाहरलालजी ना चातुर्मासो बधा जैन समुदाय ने अवलबे छे। तेओ एकज देशमा के विभागमा रह्या नथी। तेमणे जैनोने मोटे भागे बोध्या छे। पोते जैन साधु छे ते बात तेओ भूली जता नथी। जैन साधुओ जैनेत्तर समाज ने बोधे ते वरजनीय छे, पण केटलीक वार कोइ कोइ जैन साधुओ फकत जैनेतर समाजनेज सेवे छे अने जैन वेश धारे छे छता जैनेतर दृष्टि थी जीवन चर्चा करे छे अने लोकोनो प्रेम मेलववा प्रयत्न करे छे। श्री जवाहरलाल जी महाराज आवा विचित्र स्वभाव थी दूर रह्या छे, अने छता तेओ जैनोने जेटला प्रिय छे तेटलाज जैनेतरो ने पण प्रिय छे।

५३– महाराजश्री के साथ कुछ घड़ियां

कुमारी सविता बेन मणिलाल पारेख, बी.ए. राजकोट C.S.

In the year 1939 Maharajshri Jawaharlalji with his disciples benefited the Rajkot public by his arrival in Rajkot. Rajkot was thus made a sacred place.

But this fact I realized only a few days before the Maharajshri's departure from Rajkot to other places; and so far I was quite unfortunate because I could not take full advantage of the religious knowledge of the holy-minded Saint

I was made to respect him and was attracted to talk to him by his instructions in holy knowledge to the Rajkot public and especially the Jains. I heard him in Hindi too and that made me pay my respects to him more and more.

First I shall deal with his (व्याख्यान) "Vyakhyans" and the impressions they left upon my mind.

The thing which impressed me the most is that he is a nationalist saint. He aspires after the 'Kalyan' of Bharat and Bhartiya He asks and preaches the people to follow Gandhiji, the great national leader of India, in Ahimsa and Khadi especially He gives much importance

to Gandhiji's constructive programme. His meetings, here, in Rajkot, with Gandhiji and Vallabhbhai Patel shows that he is really a nationalist Saint That he is a nationalist Saint is a truism; but at the same time he can never even think of injuring the Britishers' interests, which show his greatness Britishers and other nations are in no way his enemies; they are brethern to him and he aspires after their 'Kalyan' too

Another great thing in him is his philosophy. Much can be said about it Prayer and the Prayed one are the most important elements of his philosophy These are the centres around which the whole of his philosophy revolves He says that the prayer should be 'Nishkama' which is one of the greatest preachings of the Gita; he says that the prayer should be made for the welfare of all people. He gives very great importance to the peace of mind; and he always says that prayers is the only way to make our life happy and peaceful.

In the few hours which I passed with him, I found him to be the very soul of virtue.

His kindness attracts the people to him the most. He treats all individuals equally. He was talking to me as he used to talk with what we call big people, even though I was very young at that time and almost a child He can become childlike with children and can thus make them happy At the same time one must say that he is so influential that he can impress upon even great men.

He is a socialist so far as his treatment of different sorts of people is concerned. And so, we may call him, a spiritual socialist He does not cease talking to a child even if a great man comes.

I have not come in close contact with Gandhiji, but from what I have known about him, I have concluded that Maharajshri Jawaharlalji and Mahatma Gandhiji, are exactely alike in certain spheres. He is a Gandhi of Jainism.

सन् १९३९ मे महाराज श्री जवाहरलाल जी ने अपने शिष्यो सहित राजकोट पधार कर यहाँ की जनता को लाभ दिया। उन के पधारने से राजकोट तीर्थस्थान बन गया।

किन्तु मैने इस तथ्य को महाराजश्री के विहार से कुछ ही दिन पहले पहिचाना। उस पवित्र हृदय सन्त के धार्मिक ज्ञान से इतने दिन लाभ न उठा सकने के लिए मैं अपने को हतभाग्य मानती हूँ।

राजकोट की साधारण जनता तथा विशेषतया जैन समाज में उनके पवित्र ज्ञान की प्रसिद्धि ने मेरे हृदय में उनके प्रति आदर तथा बातचीत करने की इच्छा पैदा की। मैंने उन्हे हिन्दी में भाषण करते हुए सुना जिससे मेरी श्रद्धा उन के प्रति और वढ गई।

पहले मैं उन के व्याख्यान तथा मेरे हृदय पर उन के प्रभाव का जिक्र करुगी।

सब से अधिक जिस बात ने मुझ पर असर किया वह यह है कि वे एक राष्ट्रीय विचारो के सन्त है। वे भारत और भारतीयो के कल्याण की आकाक्षा करते है। वे जनता को विशेपतया अहिसा और खादी के लिए महान् राष्ट्रीय नेता गाधी जी का अनुसरण करने के लिए कहते है तथा उपदेश भी देते है। वे गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को वहुत महत्व देते है। राजकोट में गाधी जी और वल्लभ भाई पटेल के साथ उन की जो मुलाकात हुई थी, उस से स्पष्ट मालूम पडता है कि वे राष्ट्रीय सन्त है। राष्ट्रीय सन्त होने के साथ साथ यह भी सत्य है कि वे ब्रिटेन निवासियो के स्वार्थो पर आघात करने की कभी इच्छा भी नहीं करते। यह बात उन की महानता को प्रकट करती है। ब्रिटिश निवासी या दूसरे राष्ट्र उन के शत्रु नही है। वे उन के भाई है, और वे उन के भी कल्याण की कामना करते है।

उन में दूसरी बड़ी बात उन के दार्शनिक विचार है। इस विषय मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। उन के दार्शनिक विचारो मे प्रार्थना और जिस की प्रार्थना की जाय, ये दोनो महत्वपूर्ण तत्व है। ये वह हैं जिन के चारों तरफ उन के विचार घूमते है। वे कहते है कि प्रार्थना निष्काम होनी चाहिए जो कि गीता का सब से बड़ा सिद्धान्त है। वे कहते है कि प्रार्थना सर्वसाधारण के कल्याणार्थ होनी चाहिए। मन की शान्ति को वे बहुत महत्व देते हैं और कहते हैं कि प्रार्थना ही एक ऐसा मार्ग है जो हमारे जीवन को आनन्दमय और शान्तिपूर्ण बना सकता है।

थोड़ी सी घड़ियॉ ही मैने उनके साथ बिताई। उन से मालूम पडा कि वे धर्म की आत्मा हैं।

उन की दयालुता जनता को उन की ओर विशेष आकृष्ट करती है। वे सभी के साथ समान बर्ताव रखते हैं। यद्यपि मैं उस समय बहुत छोटी थी और बिल्कुल बच्ची थी फिर भी मेरे साथ उन का बर्ताव ऐसा ही था जैसा कि वे बडे कहे जाने वाले व्यक्तियो से करते थे। वे बच्चो के साथ बच्चे बन जाते है और इस प्रकार उन्हें प्रसन्न कर देते है। इसके साथ यह भी कहना पड़ेगा कि वे इतने प्रभावशाली है कि बड़े-बड़े व्यक्तियों को भी प्रभावित कर सकते है।

भिन्न–भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के साथ उन का जो बर्ताव है उस से वे समाजवादी मालूम पडते है। हम उन्हे आध्यात्मिक समाजवादी कह सकते है। किसी बड़े आदमी के आने पर भी वे बालक से बातचीत करना बन्द नहीं करते।

मैं गाधी जी के घनिष्ठ परिचय मे नहीं आई हूँ किन्तु उन के विषय मे मैं जितना जानती हूँ उसके आधार से कह सकती हूॅ कि महाराज श्री जवाहरलाल जी और महात्मा गाधी जी बहुत-सी बातो मे समान हैं। वे जैन समाज के गाधी हैं।

५४– अनुभवोद्‌गार

ले. श्री जयचन्द ब्हेचर झवेरी वकील, जूनागढ़

टुंक वखत मा तेओ श्रीए मारा अन्तःकरण पर जे सुन्दर छाप पाडी छे अने तेओ श्री माटे मने जे मान तथा प्रेम अने सद्‌भावना प्रकट्या छे तेनो खरो चितार शब्दों द्वारा हु आपी शकु तेम नथी। परन्तु तेओ श्री प्रत्येनी मारी सद्‌भावना व्यक्त करी आत्मसन्तोष मेलववा खातर हु मारा अनुभवोद्‌गार अति सक्षेप मा व्यक्त करूं छु।

श्रोत्रिय अने ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु', गुरुर्देवो महेश्वर'।
गुरुरेव पर ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्म रूप छे, विष्णु रूप छे, गुरु महेश्वर (महादेव) रूप छे, गुरुराज परब्रह्म छे, माटे श्री गुरु ने नमस्कार हो।

गुरु गोविन्द दोनुं खडे, किसके लागूं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय॥

पूज्यपाद महाराज श्री जैनधर्म ना एक महान् आचार्य होवा उपरान्त अन्य सम्प्रदायवालाओ ने पण पोताना सदुपदेश द्वारा धर्म नु खरूं रहस्य समजावी पावन करे छे। अने आथी करी अन्य सम्प्रदाय वाला घणा माणसो पण तेओ श्री प्रत्ये गुरु-भावना राखी तेओ श्री ने परम वंदनीय माने छे। तेओ श्री सद्गुरु होवा साथे श्रोत्रिय (शास्त्र विशारद) अने ब्रह्मनिष्ठ (परमात्मा परायण) छे। जैन समाज ने आवा सद्गुरु सहेजे प्राप्त छे। तेमने हुं परमभाग्यशाली मानुं छुं।

प्रखर वक्ता

पूज्यपाद महाराज श्री वयोवृद्ध अने अति प्रभावशाली छे। शान्त, गंभीर, अने सौम्य मुद्रा वाला, प्रसन्न वदन छे। आथी करी पोताना व्याख्यान थी श्रोता पर सारी छाप पाड़े छे। तेओ श्री नी व्याख्यान करवानी पद्धति, हलक अने वाक्यपटुता एवा तो कोई अजब छे के व्याख्यान वखते श्रोताओ ने तन्मय बनावी दे छे। तेओश्रीनी मातृभाषा मारवाड़ी होवा छता गुजराती भाषा पर पण सारो काबू धरावे छे।

समर्थ ज्ञानी

महाराजश्रीनु ज्ञान पण कोई अजब ज छे। तेओश्रीना व्याख्यान मा हरवख्त प्रसंग ने अनुसरतां हृदयस्पर्शी सुन्दर दृष्टान्तो आवे छे। आथी तेओश्रीनु बहु श्रुतपणुं जणाई आवे छे। व्यावहारिक अने शास्त्रीय अनेक सुन्दर आख्यायिकाओथी श्रोताओना मन रंजन करी शके छे। एटलु ज नहि पण कोई दिव्य शक्ति थी श्रोताओ ने पोता प्रत्ये गुरु भावना वालां बनावी तेओ श्री ना वधु व्याख्यान साभलवा सौ कोई ने परम उत्सुक बनावे छे।

पूर्ण-त्यागी

कोई कविए कह्यु छे के -

"त्याग अने वैराग्य विण ज्ञान न शोभे लगार"

गमे तेवुं ज्ञान अने चाहे तेवु वक्तृत्व होय छता पण जो त्याग के वैराग्यवृत्ति न होय तो ज्ञान के वक्तृत्व शोभतु नथी। महाराज श्री तो 'आचार· प्रथमो धर्म' माननार छे अने कहे छे ते सहस्र गणुं अनुसरणा करी लोकोने पोताना दाखला थी सन्मार्गे चालनारा छे। पूज्यपाद महाराज श्री ने मारा स्नेही वकील बधु जेठालाल भाई प्रागजी रूपाणीए एक नानु सरखुं उपवस्त्र व्होरी पावन करवा विनती करेली। परन्तु पोताने हाल तो जरूर नथी एम प्रसन्न वदने कही ते उपवस्त्र पण लीधेलु नहि।

में पोते एक पुस्तक वांचवा माटे महाराज श्री ने आपेलुं। विदाय थती वखते ते पुस्तक मने पाछुं आपवा मांड्युं त्यारे मारा थी सहेज भावे बोलायुं के आप आ पुस्तक राखो। जवाव मा जणाव्यु के अमारे अमारो भार मुसाफरी मा जातेज उपाडवो जोइए एटले विना कारण आ भार लेवो नथी। पुस्तक मने पाछु आपेलुं।

महाराज श्री फरता फरता एक वखत पूज्यपाद महाराज श्रीनाथ शर्म्मा ना विलखाना आनन्दाश्रम मां पधारेला। ज्या तेमने दूध के कई फलाहार व्होरवा विनती करवा मां आवेली। जेना जवाब मां तेओ श्री ए जणावेलु के नियत स्थल विना तेमज नियत समय विना पोता थी आहार पाणी लई शकाय नहिं।

कहो आवा अद्‌भुत त्याग अने वैराग्यशील महात्मा ने कोण पोताना मस्तक न नमावे! आचार अने विचार नी एकता दाखवनार सत महानुभाव नो ज्वलन्त दाखलो महाराजश्री वतावी आपे छे। अने कहेणी रहेणा एक बतावनार विरला पैकी ना एक छे।

कहेणी मिसरी खाड है, करणी कच्चा लोह।
कहेणी रहेणी एक होय, ऐसा विरला कोय॥

अति नियमित अने सतत उद्योगी

महाराजश्री समय पालनमा पण पूर्ण आग्रही छे। सवारथी साज सुधीना तमाम नियत कर्मो शरीर वृद्ध छता नियमसर अने समयसर करवा आग्रह राखी करे छे अने अति नियमितता जालवे छे। तेमज क्षण पण नकामी जवा देता नथी। स्वांध्याय पण कर्या करे छे अने शिष्यो ने अध्यापन पण कराव्या करे छे।

मनुष्य बनावनार

व्यवहार सुधर्या विना परमार्थ सुधरतो नथी। महाराज श्री ना उपदेशनु मुख्य लक्ष्य मनुष्यो ने मनुष्य बनावानु छे। एटले मनुष्यो पोतानो व्यवहार सुधारी परमार्थ ने पथे चले ए उद्देश्य ने प्रधानपणे जालवी उपदेश आपे छे।

'धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना.'

आकृतिए मनुष्य रूपे देखाता छता जो धर्म थी रहित होय तो पशु समान गणाय। ब्राह्मण कुल मा जन्मवाथी नहिं पण उपनयन सस्कार थी ब्राह्मण थवाय छे।

जन्मना जायते शूद्रः सस्काराद् द्विज उच्यते।

मनुष्य योनि मा जन्म ग्रहण करवा थी नहि पण मनुष्य ना गुण ग्रहण करनार मनुष्य बने छे। महाराज श्री असत्य, कुसम्प, रागद्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, विश्वासघात, दगो, फटको, चौर वृत्ति वगेरा पशु भावो त्यजी सत्य, सम्प वगैरा सद्‌गुणो पालवा उपदेश आपी धर्म नु खरूरहस्य समजावी धर्म भावना जागृत करावी, पशुवृत्ति तजावी मनुष्याकारे देखाता मनुष्यो ने खरा मनुष्य एटले धर्म सस्कार वाला बनावे छे।

समाज सुधारक

महाराज श्री दुर्व्यन तजवा अने समाजना सडा काढ़वा नो पण सद्बोध आप्या करे छे। चा, तमाखू, बीडी,भांग, दारु, मद्य, मास, परस्त्री गमन, जुआ, चोरी आदि अनेक दुर्व्यसनो तजवा अने रोवु कूटवु, खोटा नात वरा, बाललग्न, वृद्धलग्न, कन्या विक्रय वगेरा अनेक कढगा रीति रिवाजो तजवा व्याख्यान मा आग्रहपूर्वक भलामण करे छे अने चमत्कारी ढगे प्रतिज्ञा करावे छे।

सर्वधर्म समभाव

महाराजश्री श्रेय नो सर्व शास्त्र मा सामान्य रीते प्रतिपादन करेल पथ एटले सामान्य धर्म ना मूल तत्त्वो बहुज युक्ति प्रयुक्ति थी समजावी बधा धर्मनी एकता प्रतिपादन करे छे। अने 'राम कहौ रहेमान कहो' एवा वाक्य थी शुरू थतुं पद अजब प्रेमाई भावे ललकारी बधा धर्मनी एकता सिद्ध करी विश्व बंधुत्व नो पाठ भणावी अन्य धर्म पंथ के सम्प्रदाय वाला ने पोता प्रत्ये मान, प्रेम अने गुरु भावना वाला करी दे छे।

कुटुम्ब धर्मे वैष्णव होवा छता जैन धर्म प्रत्ये मने मान तथा प्रेम तो हता ज, परन्तु महाराज श्री ना सत्समागम पछी तेमां घणो वधारो थयो छे।

५५– समाज सुधारक अने राष्ट्रप्रेमी

ले. श्री जटाशंकर माणेकलाल मेहता, मंत्री जैन युवक संघ, राजकोट

प्रथम परिचय – स्थानकवासी जैन कॉन्फरंसना बीकानेर नी पासेना भीनासर नामना गामडा मा पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज विराजता हता। तेमना दर्शनार्थे हु दर रोज सवार मां जतो अने तेमना व्याख्यान नो लाभ मेलवतो। आ व्याख्यानो मां मे पहेली ज वखत जैन साधु ने सचोट रीते अने धर्मशास्त्रो ना अनुमोदनो टाकी ने सामाजिक सुधारणा नो उपदेश आपता जोया। एमनो उपदेश मुख्यत्वे वरविक्रय, कन्या विक्रय नी रूढीनो विरोध, व्यापार धधा नी प्रामाणिकता, बाललग्न सामे विरोध, रेशम ना उपयोग सामे सख्त विरोध, अस्पृश्यता निवारण, सादु जीवन, खर्चाल न्यात वरा अने सामाजिक प्रसगो मा सुधारा नी आवश्यकता वगेरे ना सम्बन्ध मा हतो। तेओ श्री एम पण कहेता 'ज्या सुधी मनुष्य मानव धर्म समज्यो नथी अने एनु सामाजिक जीवन शुद्ध नथी, त्या सुधी आध्यात्मिक जीवन गालववानो ते अधिकारी थतो नथी;'।

आ साभली मने सतोष थयो, तेमां पण खास करी ने पूज्य महाराज श्री आ सामाजिक सुधारणा नी आवश्यकता पर धर्मशास्त्र नी छाप मारता अने 'ज्या सुधी माणस मा ए प्रकार ना दोष रह्या होय त्या सुधी ए जैन कहेवाँ ने लायक नथी' एवुं मन्तव्य स्पष्ट रीते जाहेर करता, ते साभली ने मने वधु आनन्द थयो। आ महापुरुषना दर्शन थी मारी जात ने कृतकृत्य थयेली मानतो, अने जे आशय थी हु आटले दूर सुधी घसडाई आव्यो हतो, ते एक नही तो बीजे प्रकारे परिपूर्ण थयेलो जोइने मारूं मन तृप्त थयु।

बीजी मुलाकातः- आ बात ने आठ नव वर्ष वीती गया। अमे काठियावाड जैन युवक परिषद नु प्रथम अधिवेशन बोलववानो निर्णय कर्यो हतो। आज अरसा मा पूज्य श्री नु स्वागत करवा हु अने मारा मित्रो वढ़वाण गया। जवा मा अमारो ए पण आशय हतो के परिषद् ना अधिवेशन वखते पूज्य श्री ना विचारो थी अमने अमारा काम मा सहायता मलशे के विरोध।

विचारोनी उदारता

अमे महाराज श्री नी मुलाकात लीधी, अनेक सामाजिक प्रश्नों नी मुक्त रीते चर्चा करी। एमना विचारो अमने बधाने गम्या, जो के विधवा विवाह अने लग्न विच्छेदना विचारो सामे एमनो विरोध हतो। ते तेमणे स्पष्ट रीते जाहेर कर्यो। परन्तु तेओ श्री एकंदरे अमारी प्रवृत्तिओ थी खुश थया हता। अने परिषद् ना अधिवेशन ने आवकार आप्यो हतो। आ तेमना विचारो नी उदारता अने खेलदिल स्वभाव नो नमूनो हतो।

अधिवेशन वखते नवी गप उडी के पूज्य महाराज श्री नो आ अधिवेशन सामे विरोध छे। तरत अमे एमनी सेवा मां पहोच्या अने हकीकत सांभली ने एमने खरेखर नवाई लागी। बीजी सवारे व्याख्यान मां तेमणे जाहेर कर्यु के 'जुवान वर्ग ना अमुक उद्दाम विचारो साथे हु सहमत न होवा छतां नवजुवानो नी प्रवृत्तियो अने एमना विचारो जाणी ने मने आनन्द थयो छे। एमनी परिषद् सामे मारे कोई जातनो विरोध नथी। जेमने एमना विचार भूल भरेला लागता होय, तेमनी फरज परिषद् मा हाजरी आपी एमनी भूल दर्शाववानी अने पोतानु मतव्य रजु करवानी छे।

राष्ट्रीय प्रेम

मारा परिचित एक बहेन ने हुं घणा समय थी खादी पहेरवा समजावी रह्यो हतो पण हु सफल न थयो। परन्तु आचार्य महाराज ना उपदेश थी अने खादी मा अहिंसा नु पालन होवानु तेओ श्रीए कारण दर्शाव्या थी आ बहेने आजीवन खादी परिधान नु व्रत अगीकार कर्यु हतु। राष्ट्रीय भावना मा महाराज श्री नी प्रगतिशीलता में राजकोट सत्याग्रह नी लडत वखते निहाली हती। जुगार विरोधक लड़त मा जेल जइ आव्या पछी पूज्य महाराज श्रीए मने एमनी समक्ष बोलावी ने अभिनन्दन आप्या हता।

राजकोट सत्याग्रह वखते जेल मा पण मने समचार मल्या हता के आ प्रजाकीय लडत प्रत्ये पूज्य महाराज श्री नी सहानुभूति छे। अने तेओ श्री जोरशोर् थी खादी प्रचार अने स्वदेशी नी भावनाने उत्तेजन आपी रह्या छे। लड़त चालु होवा थी आ मंथनकाले सघ जमण न करवा तेमणे आगेवानो ने आपेली सलाह सफल निवडी हती।

समाधान थता राजद्वारी केदीओ ने मुक्ता करवा मा आव्या। तेमनो सरघस ज्यारे पूज्य महाराज श्री ना निवासस्थान पासे थी पसार थतुं हतु त्यारे महाराज श्री बहार पधार्या, जेल गएला सत्याग्रहीओ नु सन्मान कर्यु अने प्रजा ने अतर ना आशीर्वाद आप्या। आ दृश्ये मारा हृदय ऊपर घणी मोटी असर करी हती।

महात्मा जी साथे मुलाकात

राजकोट मा पूज्य महात्मा गाधी जी नु तेमना काका श्री खुशालचन्द भाई नी मादगी ने कारणे पधारवु थयु। ते वखते महात्मा जी अने पू. आचार्य महाराज नी मुलाकात नो प्रसग खरेखर हृदयगम हतो। महाराज श्री ने म. गाधी जी अने तेमना सिद्धान्तो प्रत्ये घणु ऊचु मान हतु। ए हु आ मुलाकात वखते ज जाणी शक्यो।

आज नो आपणे साधु समाज पूज्य श्री जवाहरलाल जी म ना जीवन मा थी काइ प्रेरणा मेलवशे तो तेओ देश अने समाज नु घणुं कल्याण साधी शकशे।

स्टेट जेल
राजकोट १२-११-४२

५६— प्रभावक वाणी और विचार

लेखक ला. रतनचन्द जी तथा राय सा. टेकचन्द जी जैन

We had the good fortune of paying our respects to His Holiness on several occasion. First of all we had his Darshana at Delhi, where we were rightly struct to note his devotion to Shree Jain Dharma and force fo his character and strict discipline The way of his speech and expression of his thoughts was so powerful that it pierced right through the hearts of his hearers who were just convinced of the doctrines preached by His Holiness.

Afterwards during the tour of the All India jain Deputation Convened for inviting the acharyas and prominent munis of different sampradayas of india to attend the All India sadhu Mahasammelan to be held at Ajmer We visited Jodhpur and made our request to His Holliness. He was not at first favourably inclined to join the deliberations of the Sammelan as he was doubtful about the ultimate result. But on discussion and pursuation he was pleased to give way and thus proved his high sense of responsibility and showed that he was always amiable to reason and right

At Ajmer we came in contact with His Holiness almost everyday and had continued opportunities to notice his force of character, straight-forwardness and willingness to do justice to all but not to yield haphazardly to any one. In our opinion His Holiness is a symbol of a true Monk, devoted to right path and wedded to firm convictions of righteousness and piety.

At all times we noted how sincely he was revered and held in esteem by all who happened to see him. Lala Rattan Chand ji had also another occassion of his Darshans at Morvi in 1938, where even His Highness the Maharaja of Morvi regularly attended and heard his sermons and discourses. He was accompanied by lala Moti Lal, Lala Hans Raj of Amritsar and Lala Muni Lal of Lahore These gentlemen also got a very high impression about His Holiness as anyone who heard him once wished to hear him again and again.

पूज्य श्री के दर्शन करने का हमे कई वार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पहले पहल हमने आपके देहली मे दर्शन किये थे। जैनधर्म के प्रति आपकी श्रद्धा, चरित्र-वल और आपके कठोर अनुशासन को देख कर हम चकित हो उठे। आपकी वाणी और विचारो को व्यक्त करने का ढग इतना प्रभावशाली

था कि वह श्रोताओ के हृदय मे सीधा उतर जाता था। आपके उपदेश श्रोताओ के हृदय मे जम जाते थे।

अजमेर मे होने वाले अखिल भारतीय साधु सम्मेलन मे सम्मिलित होने की प्रार्थना करने के लिए सभी आचार्यो और प्रमुख मुनियो के पास समस्त भारत के चुने हुए व्यक्तियो का एक जैन शिष्ट-मण्डल गया था। उस समय भी हमने पूज्य श्री के दर्शन किये थे। हम आपसे जोधपुर मे मिले और सम्मिलित होने की प्रार्थना की। प्रारम्भ मे उन्हे सम्मेलन की बात पसन्द नही आई। आपको उसके अन्तिम परिणाम के विषय में सन्देह था। किन्तु विचार-विनिमय और लगातार प्रार्थना करने पर वे हमारी बात मान गए। अपने उत्तरदायित्व का आप को कितना भान है, यह बात इससे सिद्ध हो जाती है। आपने यह भी बता दिया कि युक्ति और सत्य के सामने आप सदा झुकने को तैयार है।

अजमेर मे प्रायः प्रतिदिन हम पूज्य श्री के परिचय मे आते थे। आपके चरित्र-बल, स्पष्टवादिता, सभी के प्रति न्याय करने की अभिलाषा तथा बिना सोचे विचारे किसी की न मानना आदि गुण देखने के हमे बहुत से अवसर प्राप्त हुए। हमारी राय में पूज्य श्री सच्चे साधुत्व के प्रतीक है, सत्य मार्ग में लीन है तथा सत्य और पवित्रता पर दृढ विश्वास रखते है।

हमने इस बात को हमेशा ध्यान से देखा कि जो व्यक्ति आपके दर्शन करने आते है वे किस प्रकार हृदय से आपका सम्मान करते है। १९३९ मे लाला रतनचन्द जी ने आपके दर्शन मोरवी मे भी किये थे। मोरवीं नरेश भी आपके भाषणो मे आया करते थे और उन्हे अच्छी तरह सुनते थे। लाला रतनचन्दजी के साथ अमृतसर के लाला मोती लाल और लाला हसराज तथा लाहौर के लाला मुन्नीलाल भी थे। इन सज्ञनो के भी पूज्यश्री के विषय मे बहुत ऊँचे विचार है। आपकी वाणी को जो एक बार सुन लेता था वह बार–बार सुनने की इच्छा करता था।

५७– जीवन कला का दिव्य-दान

ले. शान्तिलाल वनमाली सेट, जैन गुरुकुल, ब्यावर

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज एक साधक महात्मा है। उन्होने अपने जीवन का बहुत बडा भाग 'आत्म-साधना और जन-कल्याण-साधना' रूप धर्मकला की उपासना करने में व्यतीत किया है। ५१ वर्ष जितनी सुदीर्घ सयमी-जीवन की सतत 'साधना' ने उनको धर्म-जीवन के कुशल कलाकार और 'स्थविर' कर्णधार-धर्मनायक बना दिया है। सच्चा स्थविर-धर्मनायक कैसा होना चाहिए इसके विषय में ठीक ही कहा गया है कि -

न तेन वयो सो होति येनस्स फलित सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोधजिण्णो 'ति बुच्चति॥
यम्हिसच्च च धम्मो च अहिसा सजमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो सो थेरोत्ति पवुच्चति॥

-धम्मपद

अर्थात् जिनके मस्तक के बाल पक गये है अथवा जो वयोवृद्ध हो गये है उन्हे 'स्थविर' नही कह सकते। उन्हें तो 'मोघजीर्ण' ही कह सकते है। सच्चे स्थविर धर्मनायक तो वे ही है जिनके हृदय मे अहिसा, सयम, सत्य, दम-तप इत्यादि धर्मगुणो का वास हो और जो दोष रहित और धीर-वीर हो।

खुद के जीवन को सफल बनाना और दूसरो का जीवन-निर्माण करना-इन दोनो मे काफी अन्तर है। जगत मे आत्म-साधना और आत्म-ध्यान करनेवाले और उसी मे तल्लीन रहने वाले निवर्त्तक साधु-पुरुष कम नही है लेकिन शास्त्रविहित निवृत्ति धर्म के आचार-नियमो का यथाविधि पालन करने के साथ-साथ जन-समाज का जीवन-निर्माण करना, जन को ज्ञान और चरित्र का शक्ति-दान देकर 'जैन' बनाना और मानव-समाज को सद्धर्म का मर्म शास्त्र-रीति तथा विज्ञान-नीति के द्वारा युक्ति प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर धर्मनिष्ठ बनाना-आदि धर्ममूलक सत्प्रवृत्तियॉ करने वाले साधु पुरुष-महात्मा विरले ही होते है। ऐसे विरले महापुरुषो में पूज्यश्री का स्थान अपूर्व और अद्वितीय है।

बबई के सुप्रसिद्ध गुजराती दैनिक पत्र 'जन्मभूमि' साहित्य-विभाग के सपादक ने 'कलम अने किताब' नामक स्तभ मे पूज्यश्री की 'जीवन-कला' पर (पूज्यश्री के व्याख्यानों के आधार पर इन पक्तियों के लेखक द्वारा सपादित 'धर्म अने धर्मनायक' नामक पुस्तक की) समालोचना करते हुए थोडा-सा प्रकाश इस प्रकार डाला है-

''धर्माचार्यो पर ऐसा आरोप-आक्षेप किया जाता है कि उन्होने प्राचीन शास्त्रग्रथों को संकीर्ण अर्थो मे कैद कर रक्खा है। आज एक जैनाचार्य ने अपने आदि पुरुषो की धर्मवाणी को उदार रूप देकर बधनमुक्त कर दिया है। जिस सरलता से दधिमथन नवनीत को उपरितल पर ला देता है उसी सरलता को इस विद्वान् आचार्यश्री ने शास्त्र-दोहन और शास्त्र-मथन की 'कला' के रूप में रख दिया है। उन्होने शास्त्र-अर्थ को मोडा-तोडा नही है, न किसी प्रकार की खींचातानी ही की है। उन्होने तो प्राचीन जैन-ग्रन्थो को नवयुग के नूतन मानव-धर्मो के स्वर वाहक बना दिये हैं। यह उनकी प्रतिभा का द्योतक है।

वर्तमान जीवन को महत्त्व देकर जिन आचार्यश्री ने प्राचीन धर्मबोध को पुनर्जीवित किया है उन्हें हम सच्चे समय-धर्मी-युगप्रधान के नाम से सबोधित करेंगे और सच्चा समयधर्म-युगधर्म सनातनधर्म से भिन्न नही है यह भी हम साथ मे कहेगे''।

पूज्यश्री के जीवन-परिचय मे एक बार भी आने वाले और उनकी धर्मवाणी सुननेवाले उक्त उल्लेख से पूर्ण सहमत होगे, ऐसा मुझे विश्वास है। उक्त उल्लेख से पूज्यश्री ने जैनधर्म को, शास्त्रमर्यादाओ को ध्यान मे रखते हुए युगधर्म का रूप देकर और उसे विश्व-शान्ति का सन्देश वाहक बनाकर समाज और राष्ट्र में नवजीवन का सचार किया है और इस प्रकार श्रमण-सस्कृति का समुत्थान करने में अपनी जीवन कला का दिव्य दान दिया है-इस बात का सामान्य प्रतिभास मिलता है।

पूज्यश्री को अपने उत्तरदायित्व का पूरा भान है। उन्होंने अपनी सारी जीवन-शक्ति सद्धर्म के प्रचार मे और मुख्यत· जन समाज के तथा सामान्यत जन-समाज के उद्धार के लिए समर्पित कर दी है और उनकी उद्‌बोधक, प्रेरक और रोचक व्याख्यान-वाणी के द्वारा समाज और राष्ट्र को आशातीत लाभ भी पहुँचा है।

उन्होने धार्मिक अन्धश्रद्धा के स्थान पर 'धार्मिकता' की पुनः प्रतिष्ठा की है। समाज-जीवन मे घुसी हुई कुरूढियो के थरो को समाज के अग-प्रत्यग क्षत-विक्षत न हों ऐसी सतर्कता के साथ एक कुशल कलाकार के से कौशल से उखाड कर फैंक दिया है और उनके स्थान पर समाज की नवरचना

की है। समाज में से, रूढिच्छेद करने से धार्मिक अन्धश्रद्धा दूर करने से समाजोद्धार, सघोद्धार और राष्ट्रोद्धार की प्रवृत्ति को काफी वल मिला है और समाज व धर्म की जागृति के द्वारा राष्ट्र की जागृति भी हुई है।इसका श्रेय पूज्यश्री की धर्म-प्रचारकता, समयसूचकता और उनकी जीवन-कला की उपासना को प्राप्त होता है।

इस प्रकार जब पूज्यश्री की सर्वाङ्गीण जीवन-विकास की जीवन-कला के अनन्य उपासक और उसके प्रखर प्रचारक की दृष्टि से-समीक्षा करते है तव हमे कहना पडता है कि पूज्यश्री केवल जैन-समाज की ही नही अपितु समस्त भारतवर्ष की वदनीय विभूति है। जैन-समाज के तो जगमगाते ज्योतिर्धर 'जवाहर' है ही उन्होने अपनी जीवन ज्योति के द्वारा राष्ट्र, समाज और धर्म को आलोकित किया है।

वास्तव मे पूज्यश्री की ओजस्विनी, प्रभावोत्पादक धर्मवाणी वाग्विलास की बानगी नहीं है अपितु सुदीर्घ सयम-साधना के फलस्वरूप अन्तस्तल से निकली हुई युगवाणी है।इस उदान वाणी के उद्गाता ने जैनधर्म के प्राण भूत तत्त्वो का युगदृष्टि से पर्यवेक्षण करके जैन धर्म को युगधर्म बनाने मे बडा भारी योगदान दिया है। यही उनका दिव्य-दान है। पूज्यश्री की यह बहुत बडी देन है।

५८— हिन्दना धर्मगुरुओ अने क्रान्ति

सौराष्ट्र-राष्ट्रनायक राजकोट सत्याग्रह सेनानी श्री ढेबर भाई

खरेखर हिन्दुस्तान बीजा देशो करता जुदी जातनो मुल्क छे।बीजा देशो करता तेनी विशिष्टता एमा समायेली छे के तेनो बधार सामाजिक तथा राजकीय होवा छता साथे-साथे आध्यात्मिक पण छे। हिन्दुस्तान नी भूतकाल नी लगभग बधीज क्रान्तिओना प्रणेताओ राजपुरुष होवा ने उपरान्त अथवा विशिष्टपणे सत अने महात्माओ हता।अने आजे पण तेज इतिहास नु पुनरावर्तन आपणी नजर समक्ष आपणे देखीए छीए।

आथी ज्यारे-ज्यारे हिन्दनी वर्तमान क्रान्ति नु विचार करू छु त्यारे साथो साथ हिन्दमा विचरता धर्मगुरुओ धारे तो, हिंदने अत्यार नी पतित अने अनाथ दशा मा थी उगारवानी दिशामा जे कार्य हाल थई रह्यु छे तेने केटलो वेग मले ? अने टेको आपी शके! तेना विचारो मारा मन आगल तरी आवे छे।

मारी आ लागणीना जवाब रूपेज जाणे होय नहि तेम १९३८ नी सालमा राजकोट सत्याग्रह बखते श्रीमद् जवाहरलालजी महाराज राजकोट मा विराजता हता।आने जैन अने जैनेतर समाज ने हिम्मत भरी रीते तेज दिशामा मार्गदर्शन आपी रह्या हता।

तेमनु प्रभावशाली व्यक्तित्व, तेमनु सिद्धासन, तेमनो अस्खलित वाणी प्रवाह, आध्यात्मिक विषयनी चर्चा करती वखते पण श्रोताओनी मर्यादा अने तेने परिणामे उपस्थित थती धर्म-प्रवक्ता तरीकेनी पोतानी जवाबदारी नो ऊडो खयाल, ए-मर्यादाओ ने लक्षमॉ राखी ने व्यवहार शुद्धि ऊपर तेमनो भार, अने अहिसा ना आचार धर्म-तरीके खादी ने अपनाववानो , दरिद्र नारायण मात्रनी सेवा करवानो, राष्ट्रभावना नो विकास साधवानो अने सर्व रीते जीवन मा स्वाश्रयी बनवानो तेमनो आग्रह ए वधा आज पण मारी नजर आगल तरे छे।

५९– गीताशास्त्र के मर्मज्ञ

श्री हरनाथजी टल्लू, पुष्करणा–समाज नेता, जोधपुर

जब से पूज्यश्री जोधपुर मे चातुर्मास कर अपने व्याख्यान रसास्वादन का मुझे चस्का लगा कर गये है, तब से आज तक मेरी यही हार्दिक मनोकामना रही आई है कि मैं एक बार उसी आत्मशान्ति का पुन: अनुभव करू, जो कि पूर्व चातुर्मास में कर चुका हूँ। तदनुसार प्रयत्न आरभ कर एक बार मै स्वय कौसिल-सेक्रेटरी श्रीउमरावसिहजी के साथ जेठाणे तथा दूसीर बार श्रीमान् जसवन्तराजजी के साथ जयतारण भी विनत्यर्थ गया किन्तु पूज्यश्री की शारीरिक अस्वस्थता के कारण हमें अपने प्रयास में सफलता प्राप्त न हो सकी। फिर भी मुझे उनके सम्पर्क मे रहने पर उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो कुछ अनुभव हुआ है उसके आधार पर मै यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. गीता-शास्त्र के पूर्ण मर्मज्ञ है। गीता के गभीर श्लोको का जो अर्थ-स्पष्टीकरण करते है, वह वास्तव में अनुपम, सरल और सुबोध है। ऐसे मर्मज्ञ साधु अन्य समाज में कम पाये जाते है। उनकी शान्त मुखमुद्रा और ध्यान-स्थिति ने मेरे हृदय पर भक्तिभावना के नवीन ही अकुर अंकुरित किये है।

६०– प्रभावक प्रवचन

शाहजी जी हनवन्तचन्द्रजी लोढ़ा, जोधपुर

मेरे मन मे चिरकाल से यह उत्कठा तीव्र रूप धारण करती जा रही थी कि मै पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. जैसे उच्च महात्मा पुरुष का समागम करू व उनके सारगर्भित रहस्यपूर्ण व्याख्यान का श्रवण करू। निदान मेरी यह भावना उनके जोधपुर चातुर्मास के समय पूर्ण हुई। उक्त महात्मा के प्रवचनामृत का पान मैने पूर्ण उमग और हार्दिक भक्तिभावना से किया। अन्य सत महात्माओ की अपेक्षा भी उनमे जो प्रशसनीय गुण मैने पाया वह यह कि उनके उपदेश-तत्व विद्वान, मूर्ख, आबाल-वृद्ध, वनिता आदि सब पर एक समान जादू का असर डालकर सबको सन्मार्ग की ओर तत्काल आकर्षित कर लेते हैं। उनकी व्याख्यान शैली की विशिष्टता भूरि-भूरि प्रशसनीय है।

६१– परम प्रतापी पूज्यश्री जवाहरलाल जी म. के घटाकोपर चातुर्मास की एक महती स्मृति

श्री छत्रसिंह चुन्नीलाल परमार, मैनेजर घाटकोपर जीवदया खाता

शास्त्र में और व्यवहार मे यह बात सर्वमान्य कही जाती है कि जहा–जहा सत पुरुष के पदार्पण होते है वहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। यह भी एक ऐसी घटना है जो उपरोक्त कथन का सविशेष समर्थन करती है।

मे प्रतिदिन होती हुई हजारों निर्दोष दुधारू पशुओ की कतल को सुनकर उपस्थित सभी किर्तव्य विमूढ से हो गये। पूज्य महाराज ने भी मन मे सोच लिया कि इन निर्दोष दुधारू पशुओं की कतल हमारे देश-जाति-धर्म मानवता का एक महान कलंक रूप है। पूज्य महाराज साहब के मन मे यही मथन चला। अन्त मे कई कारणो को ध्यान मे लेते हुए वम्वई चातुर्मास से इन्कार करते हुए वम्वई को विना फरसे ही बीच मे वापिस घाटकोपर लौट आये और अनायास ही पूज्य महाराज साहव के चातुर्मास का अपूर्व लाभ घाटकोपर को मिल गया।

घाटकोपर के चातुर्मास में पूज्य महाराज साहब अपने व्याख्यानो मे जीवदया के प्रश्न की चर्चा करते ही रहते थे परन्तु साथ ही साथ एक ऐसा अपूर्व अवसर आ मिला जिसके फलस्वरूप इस श्री घाटकोपर सार्वजनिक जीव दया खाता की स्थापना मे खास निमित्त मिल गया।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. के सुशिष्य तपस्वी मुनि श्री सुन्दरलाल जी म. ने ८१ दिन के उपवास की घोर तपश्चर्या शुरू की। तपस्वी जी के दर्शनार्थ बम्बई शहर के और दूर सुदूर के जैन जैनेतर भाई-बहन आने लगे। व्याख्यानो मे जीव दया का सतत उपदेश, तपस्वी जी के तपश्चर्या के प्रभाव और स्थानीय तथा दर्शनार्थ आनेवाले आगेवान जैन जैनेतर भाइयो के सत्प्रयत्न से ता. १८-८-२३ तदनुसार मिति स. १९७९ की श्रावण शुक्ला सप्तमी के रोज 'श्री घाटकोपर सार्वजनिक जीवदया मण्डल' की स्थापना हुई।

६२— जवाहिर-ज्योति

ले. पं. रतनलालजी संघवी 'न्यायतीर्थ' विशारद, छोटी सादड़ी (मेवाड़)

वर्तमान-काल की विश्व विभूतियो मे जैनाचार्य श्री जवाहिरलाल जी महाराज भी एक उच्च कोटि की विभूति थे; ऐसा कहना, न तो अत्युक्ति पूर्ण है और न मिथ्या-कल्पना। उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व, वैराग्यमय साधुत्व, मौलिक-विचारधारा, अल्पारभ-महारभ रूप विवाद के प्रति उनका अपना गभीर सचोट विवेचन, आत्यतिक श्रद्धामय उनकी ईश्वर भक्ति, राष्ट्रीय भावना का प्रतीक रूप उनका खादी प्रेम, प्राञ्जल-शैली युक्त प्रसाद गुण सपन्न उनकी साहित्य-रचना और समय समय पर राष्ट्रधर्म के प्रति उन द्वारा दिये गये व्याख्यानों से प्रकटित उनका राष्ट्रीय नेतृत्व, निस्पृहतापूर्ण उनका आचार्यत्व, अछूतोद्धार-भावना, सत्य के प्रति उनका स्नेह और अहिंसा के प्रति उनकी आस्था - ये वे गुण है, जो कि उनके जीवन मे, मन मे, वचन मे, कर्म में, आत्मा में ओत-प्रोत थे! उनके इन्ही गुणो ने मुझे लेख की आदि मे यह लिखने को विवश किया कि "वे विश्व-विभूति थे"।

श्री स्थानकवासी समाज के दायरे में जीवन-यापन नही कर यदि राष्ट्रीय-क्षेत्र मे जीवन-यापन का प्रसग उपस्थित होता तो पूज्य श्री, महात्मा गांधी और प. जवाहरलाल नेहरू के समान ही भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर अपनी दिव्य ज्योति के साथ चमकते एव यह भी निस्सकोच कहा जा सकता है कि उस दशा मे भी इनकी कार्यप्रणाली और साधन अहिंसा एव सत्य ही रहते।

आचार्य श्री का पाडित्य पल्लवग्राही नही था, बल्कि वर्षो तक आपने भारतीय दर्शनो के साथ साथ भारतेतर-मुस्लिम, ईसाई आदि के धर्म-ग्रन्थो का भी वाचन, मनन और श्रवण किया था। आपकी व्याख्यान शैली-मधुर, अनुभूतिपूर्ण, सरल किन्तु मार्मिक और शब्दाडम्बरो से रहित होती हुई भी

प्रभावशाली एव हृदय तक पहुँच करने वाली होती थी। व्याख्याता की वाणी श्रोताओ के हृदय तक तभी पहुच सकती है जबकि वह हृदय से निकली हुई हो। वे केवल व्याख्यान देने के लिये व्याख्यान नही देते थे, किन्तु हृदय की अनुभूति को प्रकाश में लाने के लिये ही व्याख्यान दिया करते थे। उनकी त्यागमय श्रद्धा शब्द-शब्द मे टपकती थी। उनका आत्मबोध स्व पर कल्याणकर था। उनकी ईश्वरीय भक्ति सासारिक मोह को काटने मे एक अमोघ अस्त्र थी।

उनके स्वतत्र व्यक्तित्व ने यह उक्ति प्रचलित कर दी है कि भारत मे दो जवाहिर है-एक धर्मनायक तो दूसरे राष्ट्रनायक। निस्संदेह इस उक्ति मे सच्चाई है, क्योंकि उनके त्यागमय जीवन और वैराग्यमय भावना ने उनको एक आध्यात्मिक महापुरुष के रूप में परिणत कर दिया था। भारतीय दार्शनिक सस्कृति के अनुरूप उनमें अनुभूतिपूर्ण आत्मिकता और ईश्वरीय प्रेम, ईश्वरीय-अनुभव, प्राचीन ऋषियो के समान ही ज्योति रूप से विद्यामान था। इसी मौलिक विशेषता मे उनका स्वतत्र व्यक्तित्व निवास करता था, जो कि जनता को उनके प्रति आकर्षित, मोहित और श्रद्धामय करता था।

इनकी मौलिक विचार-धारा का पता इसी से लगता है कि ये अपने राष्ट्रऋण राष्ट्र-धर्म को साधु-मर्यादा मे भूल नही गये थे बल्कि खादी, अछूतोद्धार, देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम के मार्ग में बडा सुन्दर और स्तुत्य प्रयत्न व्याख्यानों द्वारा जीवन-पर्यत चलता रहा। स्थानकवासी-जैनसमाज के साधुओ की व्याख्यानो की परिपाटी मे उपरोक्त प्रयत्न से सुधार का विकास हुआ और अनेक साधुओ के हृदय में "देश क्या है और समाज का-श्रीसघ का क्या कर्त्तव्य है" की भावना और विचार जागृत हुए।

अल्पारभ-महारंभ का प्रश्न उनके जीवन मे बडा ही सुन्दर चला था। आपने बडी सुन्दर रीति से तात्विक तर्को के साथ-मशीनवाद रूप महारभ को और अन्य कृत वस्तु को खरीदने में, हाथ की कारीगरी और स्वीकृत-वस्तु के उपयोग के आगे; महारभ सिद्ध किया था। आज भी अनेक साधुओ के मस्तिष्क मे यह बात नही आ रही है-यह आश्चर्य और दुःख की बात है। स्थलसकोच से इस विषय में यहाँ पर अधिक नही लिखकर यह प्रयत्न करूँगा कि एक अलग ही स्वतन्त्र लेख में इस विषय पर प्रकाश डालू।

खादी उनके व्याख्यानो का एक अभिन्न अग थी। खादी मे वे सत्य और अहिंसा की झाकी देखते थे। मीलवाद बनाम मशीनरीवाद उनकी दृष्टि मे आत्मा का हनन करने वाला और नैतिक पतन के साथ-साथ महान् गरीबी लाने वाला था। खादी को वे गरीबो की रोटी, विधवाओ का सहारा और अन्धो की लकडी समझते थे। कहना प्रासगिक ही होगा कि स्थानकवासी समाज के अनेक धनाढ्य व्यक्तियो ने आप ही के उपदेश से खादी को पहनना प्रारम्भ किया था।

उनकी साहित्य रचना की शैली भी युगानुसारिणी थी। यही कारण है कि आपका साहित्य सैकडो वर्षो तक जनता मे इसी प्रकार आदर प्राप्त करता रहेगा जैसा कि उसे आज आदर प्राप्त है। उनकी स्मृति मे जो धन-राशि एकत्र की जा रही है, अच्छा यह हो कि इस धन-राशि से उनके अमर साहित्य का अत्यल्प मूल्य मे जैनेतर-जनता मे प्रचार किया जाय एवं नूतन-मौलिक साहित्य की रचना करवा कर उसे प्रकाशित किया जाय। तात्पर्य यह है कि उनकी पवित्र स्मृति की रक्षा साहित्य-निर्माण के कार्य से की जाय और एकत्र धन-राशि का यही उपयोग किया जावे।

६३—धर्माचार्य जवाहर

श्री इंद्रचन्द्र शास्त्री एम.ए. शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ प्रोफेसर वैश्य कॉलेज, भिवानी

विशाल हृदय, सूक्ष्म निरीक्षण, दृढ निश्चय तथा मानव समाज को उन्नत-ऊँचा उठाने की तीव्र भावना महापुरुष के आवश्यक गुण है। जीवन के आन्तरिक रहस्य को खोजकर ससार के सामने रखना महान् आत्माओ का सब से बडा कार्य होता है। जो व्यक्ति सर्वप्रथम उस रहस्य को अभिव्यक्त करता है उसे अवतार कहा जाता है। जो उसे सगीतमय बना देता है वह महाकवि है। जो उसके लिए युद्ध करता है वह नेता है। जो उसके लिए साधना करता है वह तपस्वी है। जो उसे जनता मे फैलाता है वह उपदेशक है। धर्माचार्य मे नेता, तपस्वी और उपदेशक तीनो का सम्मिश्रण होता है। पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज सच्चे धर्माचार्य थे।

एक सम्प्रदाय के गद्दीधर नायक होने पर भी उन का हृदय विशाल था। मत मतान्तरो का पारस्परिक-विरोध आपकी दृष्टि मे नगण्य था। समुद्र की एक तरग इधर से उठती है, एक उधर से उठती है। दोनो शत्रु बनकर टकराती है किन्तु समुद्र में विलीन होकर एक हो जाती हैं। गभीर समुद्र एक है। तरगे ऊपर का खेल है। इसी पकार वास्तविक धर्म एक है। मत मतान्तर तो केवल तरगे है। उसका विकार है। बुदबुदे है। आध्यात्मिक रहस्य एक ही है। विभिन्न परिस्थितियो के कारण ऊपरी विरोध खड़े होते है और परस्पर टकाराकर एकता मे लीन हो जाते है। चिरकाल से परस्पर विरोधी मानी जाने वाली श्रमण और ब्राह्मण सस्कृतियो के मूल मे भी पूज्य श्री एकता का दर्शन करते थे। भगवद्गीता और जैन शास्त्रो मे आपकी निष्काम कर्मयोग या अनासक्तिवाद का तत्त्व समान रूप से दिखाई देता था।

आप मानवता के पुजारी थे। मानवता आपकी दृष्टि मे सब से बड़ा धर्म था। दया, प्रेम, परस्पर सहानुभूति मानवता के स्वाभाविक गुण है। जो मत या सम्प्रदाय इनके विरुद्ध प्रचार करे वह आपकी दृष्टि मे मानवता का रोग है। उसका प्रबलतम विरोध करना तथा उसे मिटा देना आप अपना कर्तव्य मानते थे। इसके लिए कष्टों की परवाह न करते हुए वाणी, लेखनी और तपस्या के साधनो द्वारा आपने अथक परिश्रम किया और जनता के सामने सच्चाई रखी। आप कहा करते थे-"जब गरीब आपको प्यारे नही लगते तो क्या दूसरो को मारने के लिए ईश्वर से बल की याचना करते हो" ?

ईश्वर रक्षा के लिए बल देता है, संहार के लिए नहीं

धर्म की निर्जीवता का कारण क्या है ? इस प्रश्न पर आपने सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया था। आपका यह विश्वास था कि सासारिक द्वन्द्वो से डरा हुआ व्यक्ति धर्म का पालन नही कर सकता। उन द्वन्द्वो पर विजय प्राप्त करने वाला ही धर्म का सच्चा आराधक हो सकता है। आप की दृष्टि मे धर्म केवल उपाश्रय या स्थानक मे बैठकर करने की चीज नही है किन्तु जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति मे, प्रत्येक क्षेत्र मे और प्रत्येक क्षण में उसकी उपासना होनी चाहिए। धर्मस्थान मे सन्ध्या, उपासना, सामायिक आदि करता हुआ भी जो व्यक्ति व्यापार के समय धर्म को भूल जाता है, अपने भाइयो के साथ बर्ताव करते समय धर्म की परवाह नही करता वह सच्चा धर्मात्मा नही है। उसका धर्म निष्प्राण है। नि सार है। निर्जीव है।

समाज मे फैली हुई अन्ध श्रद्धा और कुरीतियो पर आपकी आत्मा तिलमिला उठती थी।

बीकानेर राज्य के प्रधानमत्री सर मनुभाई मेहता गोलमेज कान्फरेस मे सम्मिलित होने के लिए इग्लेड जा रहे थे। उस समय आप आचार्य श्री का सन्देश प्राप्त करने आए। आचार्य ने कहा-

लोग कहते है, धर्म व्यक्तिगत वस्तु है। इसलिए गोलमेज कान्फरेस मे धर्म का कोई प्रश्न नही हो सकता। मै कहता हूँ, गुलाम और अत्याचार पीडित जनता मे वास्तविक धर्म का विकास नही हो सकता। धार्मिक विकास के लिए स्वतन्त्रता अनिवार्य है''।

''विधवाओ की दुर्दशा देख कर आप की आत्मा पुकार उठती है-मित्रो! विधवा बहिने आपके घर की शील देविया है। इनका आदर करो। इन्हें पूज्य मानो। इन्हें खोटे दुखदाई शब्द मत कहो। ये शीलदेवियॉ पवित्र है। पावन है। मगल रूप हैं। इनके शकुन अच्छे है। शील की मूर्ति क्या कभी अमगलमयी हो सकती है''?

देशसेवा से प्रेरित होकर आपने एक दिन कहा-''याद रखिए आपके ऊपर मातृ भूमि का ऋण सब से अधिक है। आपके माता पिता इसी भूमि मे पले है और इसी के द्वारा आपका तथा उनका जीवन टिक रहा है। आपका सर्वप्रथम कर्तव्य मातृभूमि का ऋण चुकाना होना चाहिए। मातृभूमि और माता का ऋण चुकाने के बाद आगे पैर बढ़ाना चाहिए''।

आचार्य श्री की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। राष्ट्रीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक अथवा व्यावहारिक ऐसा कोई भी विषय नही है जिस पर आपने अधिकार पूर्ण विवेचन न किया हो। आप की वाणी मे जादू था। बिल्कुल साधारण सी बात को प्रभावशाली एव रोचक बनाने में आप सिद्धहस्त थे। सभी धर्म तथा सभी सिद्धान्तो का समन्वय करके नवनीत निकालने की कला अद्‌भुत रूप से विद्यमान थी। जीवनकला के आप महान् कलाकार थे। वैयक्तिक तथा सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक सभी क्षेत्रो मे आप की कला अव्याहत थी। आपके उपदेश सभी मार्गो के सगमस्थल थे।

जहाँ प्राणियों का दुख देख कर आपका हृदय रो पड़ता था, वहॉ आप कठोर अनुशासन के भी पक्षपाती थे। किसी प्रकार का दोष लगने पर प्रिय से प्रिय शिष्य को भी आपने उचित दण्ड दिया। योग्य होने पर दूसरे को भी ऊचे से ऊचा पद दिया। जिस बात को आपने ठीक समझा उसके लिए विरोध की परवाह न की। उसी के युक्ति द्वारा गलत साबित हो जाने पर अपनी भूल स्वीकार करने मे कोई हिचकिचाहट नही की। उस समय आप विरोधी दल के अग्रणी बन गए। विरोध के सामने झुकना आपने सीखा ही नही किन्तु युक्ति के आगे सिर झुकाना अपना कर्तव्य माना।

वह प्रतिभा, वह त्याग, वह तपस्या, वह तेज, वह सत्यप्रियता और वह वाणी अब कहॉ?

६४—अहिंसा और सत्य के महान् प्रचारक प्रतिभाशाली जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज

(श्री पदमसिंह जी जैन)

जैन जाति के उद्धार के लिये जिन्होने आजीवन अविश्रान्त श्रम किया, थली जैसे मिथ्या श्रद्धा वाले देश मे पैदल भ्रमण कर हजारो मिथ्या श्रद्धा वालो को शुद्ध श्रद्धा वाले बनाये, मोरवी नरेश आदि ऐसे अनेक राजा महाराजाओं को जैन धर्म कीं श्रेष्ठता और जैन धर्म के सिद्धान्त समझाये। गुजरात,

काठियावाड, मारवाड, मेवाड, मालवा, थली, दक्षिण खानदेश, वम्बई, दिल्ली आदि प्रान्तो मे पैदल भ्रमण करके जैनो मे से अज्ञानजन्य रूढिया दूर कराई और जिनके उपदेश मात्र से अनेक लोकोपकारी सस्थाए स्थापन हुई, ऐसे स्वनामधन्य जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के संवध मे यह लेखनी लिखने की कुछ भी शक्ति नहीं रखती।

सामाजिक, धार्मिक एवं देशोन्द्धारक कार्यो में रात-दिन लगे रहने पर भी आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना ऐसी सरल व सरस भाषा मे की है जिसके कारण आज उनके द्वारा जैनत्व और जैन धर्म के सत्य सिद्धान्तो का घर-घर मे प्रचार हो रहा है।

एक चतुर कलाकार मिट्टी के लोदे को जिस तरह अपनी अगुलियो की करामात से जी चाहा रूप दे देता है, उसी तरह पूज्यश्री को लोगो के दिल अपने अनुकूल बना लेने की शक्ति प्राप्त है। आपके उपदेश मे एक खास विशेषता है। वह यह कि-यद्यपि पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज जैनाचार्य है परन्तु आपका उपदेश सर्वसाधारण के लिए ऐसा रोचक और उपयोगी होता है, जिससे ब्राह्मण, जैन, क्षत्रिय, मुसलमान और पारसी आदि समस्त लोग मुग्ध हो जाते है।

वादीमान-मर्दक प्रात.स्मरणीय स्वर्गीय जैनाचार्य श्री माधव मुनिजी तो आपको समाज में शार्दूलसिह समान शक्तिशाली और शख जैसा पवित्र समझते रहे। ऐसी महान् आत्मा का साया हम पर बना रहे यही शासन देव से प्रार्थना है।

६५— तीर्थराज जवाहर

(लेखक – श्री तारानाथ रावल विशारद)

यो तो 'तीर्थ' शब्द के कोष में १७ अर्थ लिखे है, मुझे उन सबसे कोई मतलब नही। मै तो यहा उन्हीं अर्थो को लिखूगा जो मुझे अभिप्रेत हैं। वे अर्थ ये है - 1. माता पिता, 2. ईश्वर, 3. तारने वाला, 4. ब्राह्मण, 5. गुरु, 6. अवतार, 7. यज्ञ, 8. शास्त्र, 9. कोई भी पवित्र स्थान, 10. वह पवित्र या पुण्य स्थान जहा धर्म भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हों।

अब विज्ञ पाठक समझ गये होंगे, कि 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग मैने यहा किन अर्थो मे किया है, और क्यों इस लेख का शीर्षक 'तीर्थराज जवाहर' लिखा है।

मैंने पूज्यश्री के सबसे प्रथम बार दर्शन जयपुर राज्य मे किये और अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ चर्चा भी की। चर्चा के विषय गाधीजी, अहिंसा और तत्कालीन राजनीतिक समस्याये थी। उस समय मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि एक जैन साधु के मस्तिष्क मे भी कई राजनीतिक समस्याओ का कितना सुन्दर, सरल और व्यावहारिक हल था। अहिंसा पर काफी देर तक चर्चा हुई। मैने अनुभव किया कि गाधी जी द्वारा राजनीतिक हथियार के रूप में प्रचारित अहिंसा मे और जैन शासन द्वारा प्रचारित अहिसा मे जमीन आसमान का अतर है। मैने यह भी अनुभव किया कि जैन शासन द्वारा समर्पित अहिंसा सिद्धात पर अमल करने वाला व्यक्ति तो गीतावर्णित स्थितप्रज्ञ की दशा को प्राप्त कर ही सकता है। और पूज्यश्री का वाद विवाद का ढग कुछ ऐसा हृदयग्राही था कि प्रतिवादी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता था। वे to the point बोलते थे-अपने विषय के केन्द्र पर डटे रहते थे। परिणाम यह होता था कि प्रतिवादी को या तो उनके सिद्धान्तो की लोक हितैषिता स्वीकार करनी पडती

थी या उनके अकाट्य तर्कों का लोहा मानना पड़ता था। और पूज्यश्री का यही सर्वोपरि गुण था, जो अनगिनत नर नारियो को उनकी ओर आकर्षित कर देता था। यही वह अदृश्य डोरी थी जो असख्य श्रद्धालुओं को देश के कोन-कोने से पूज्यश्री के चरणो पर, फिर वे चाहे जहां हो, ला पटकती थी।

एक दिन खबर सुनी कि कल महाराज श्री के व्याख्यान मे दीवान साहब पधारेंगे। उन दिनो बीकानेर मे दीवान सर मनु भाई मेहता थे, और वे शीघ्र ही दूसरी गोलमेज काफ्रेन्स मे जाने वाले थे। मै उस दिन व्याख्यान स्थल पर जल्दी ही जा पहुचा। पूज्यश्री पधार गये थे। व्याख्यान प्रारम्भ करने का समय हो गया था। पर दीवान साहब नहीं आये थे। मैंने समझा, शायद दीवान साहब के आने तक प्रतीक्षा करेगे। पर यदि उस दिन प्रतीक्षा की जाती, तो मुझ जैसे के मन पर तो दीवान साहब के बडप्पन की छाप अकित होना ही स्वाभाविक था, पर नही, पूज्यश्री ने अपना भाषण ठीक समय पर प्रारम्भ कर दिया। दीवान साहब देर से आये। आकर वे अपने आसन पर बैठ गये। दीवान साहब के आने पर भी पूज्यश्री के रग-ढग और व्यवहार मे कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर न हुआ। वे अपना भाषण उसी प्रकार देते रहे। दस पन्द्रह मिनिट तक तो पूज्यश्री के व्याख्यान में धार्मिक कथाए चलती रहीं। मैने मन में सोचा कि इस ढग की बातो मे सर मनुभाई जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मुत्सद्दी को क्या रस आ रहा होगा। मगर वाह! पूज्यश्री ने विषयातर न करते हुए दीवान साहब के आगे कुछ ऐसे सुझाव रखे कि दीवान साहब को वहां पूज्यश्री को धन्यवाद देते हुए विश्वास दिलाना पड़ा।

सन् ४२ के अगस्त या सितम्बर मे मै इन्दौर था और वही पूज्यश्री की बीमारी की खबर सुनी। दिल में एकाएक धक्का-सा बैठा। मन मे सवाल उठा-क्या जैन जाति अपनी इस अलौकिक विभूति से वचित हो जायेगी ? पर श्री सेठ चपालाल जी बाठिया को पूज्यश्री की सेवा करके उन्हे एक साल और रख लेने का श्रेय मिलना था। हालाकि निराश तो तब ही सभी हो चुके थे। मेरा खयाल है तत्कालीन युवाचार्य और वर्तमान पूज्यश्री श्रीगणेशीलाल जी महाराज, प. मुनि श्री सिरेमल जी महाराज आदि साधु सन्तो की तथा सेठ चंपालाल जी बाठिया और भीनासर, गगाशहर, बीकानेर तथा आस-पास के अन्य श्रावको की श्रद्धा, भक्ति, निष्काम सेवा और प्रार्थनाओ का ही यह प्रभाव था कि पूज्यश्री का औदारिक शरीर एक साल तक रह गया। नही तो उन्होने अपने शरीर को तप-अग्नि में इतना तपा डाला था कि वह इस लोक में टिक सकने योग्य नही रह गया था।

सन् ४३ के फरवरी मे और फिर एप्रिल से अन्तिम दिन तक मुझे पूज्यश्री के दर्शन करने का सौभाग्य मिलता रहा। इन्ही दिनों मुझे अपने अकारण मित्र श्री शोभाचंद जी भारिल्ल द्वारा सम्पादित और भीनासर के श्री सेठ चपालाल जी तथा सेठ बहादुरमल जी बाठिया द्वारा प्रकाशित जवाहर किरणावली के तीनो भाग पढने को मिले। उक्त पुस्तको मे महाराज श्री के व्याख्यान पढ़कर तथा उनके विचारो पर मनन करके मै इस परिणाम पर पहुँचा कि यदि यह विभूति इस पराधीन भारत में, खास जैन जाति मे उत्पन्न न होकर, किसी स्वतत्र देश मे उत्पन्न हुई होती तो वहां वाले आज तक इनके विचारों का प्रचार करने के लिए क्या-क्या न कर चुके होते। दक्षिण वालो ने पूज्यश्री को जैनियो का 'दयानन्द' ठीक ही कहा था। मै कहता हू कि यदि ये पाश्चात्य देशों में होते तो क्या इन्हे लूथर न कहा जाता ?

एक दिन मै महाराज के दर्शन करने गया। पूज्यश्री तख्ते पर लेटे थे। आखें मुंदी हुई थी। उन्हे बोलने मे कष्ट भी होता था। पूज्यश्री की तन्मयातापूर्वक अनुपम सेवा करने वाले मुनि श्री सिरेमल जी

महाराज ने मेरा कुछ परिचय दिया। पूज्यश्री ने आखे खोली। मेरे प्रणाम के उत्तर मे हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम तो गत वर्ष भी मिले थे। मुझे पूज्यश्री की इस स्मरण शक्ति पर आश्चर्य हुआ। फिर ईर्ष्या भी हुई। यह भयकर वीमारी! यह जराजर्जर देह!! और गत वर्ष मिलने की वात याद!!! मुझ से पहले और बाद मे, मुझ जैसे कितने ही उपस्थित हुए होगे। चरण छूकर और अन्य प्रकार से, न जाने कितने अनेको ने अपनी असीम श्रद्धा और भक्ति का प्रकटीकरण न किया होगा इस तपोधन के आगे! पर मै, जिसने कभी साधारण प्रकार से प्रणाम करने के सिवा पूज्यश्री के प्रति अपनी भक्ति प्रगट न की, इस असाधारण शारीरिक कष्ट में भी एक वर्ष के बाद तक याद कैसे रह गया।

उक्त पक्तिया लिखने से मेरा आशय यही है कि पूज्यश्री का पच भौतिक देह यद्यपि निर्वल था, तो भी उनका मानस निर्बल नही था।

भगवान् बुद्ध ने भी अपने निर्वाण के समय, अपने आस-पास उपस्थित अपने रोते हुए शिष्यो को बडे जोरदार शब्दो मे सान्त्वना दी थी। भगवान् कृष्ण ने अपने पर तीर चलाने वाले बहेलिये को सान्त्वना देकर निर्भय किया था। और महर्षि दयानन्द ने तो अपने अन्तिम क्षणों मे हँसते हुए, अपने ईश्वर की लीला की प्रशसा की, और मानो उससे बाते करते हुए अपना शरीर छोडा था। ये सारे उदाहरण मानसिक कमजोरी के परिचायक नही है। खैर।

एक दिन मै महाराज के दर्शन करने भीनासर गया था। मैने समझा कि बीमारी के कारण पूज्यश्री लेटे हुए होंगे। सभव है निद्रा मे हों। अतः मै हॉल के आस पास एक दी दिशा मे इधर उधर मंडराने लगा पर जब दूसरी दिशा में पहुॅचा, तो वहॉ का दृश्य देख कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पूज्यश्री तख्ते पर एक दो शिष्यो के सहारे बैठे थे। और श्री गणेशीलाल जी महाराज श्री भगवद्गीता का पाठ सुना रहे थे। और पूज्यश्री बडे प्रेम से सुन रहे थे। मै भागा-भागा श्री सिरेमल जी महाराज के पास पहुॅचा। अपने आश्चर्य का कारण कहा। महाराज ने कहा–पूज्यश्री मौन रहते है। और जैन शास्त्रो के अलावा अन्य धर्म ग्रन्थो का भी कुछ समय तक पाठ सुनते हैं। आज श्रीमद् भगवद्गीता की बारी होने से उसी का पाठ हो रहा है।

मैने मन मे कहा-यदि भारत के सभी धर्माचार्य अपने में उदारता रख कर अन्य धर्मो के प्रति सहिष्णुता रख कर उनके धर्म ग्रथो का मनन किया करे तो देश के धार्मिक झगडे बहुत कुछ दूर हो सकते हैं।

इसके बाद फिर मै जब जब गया पूज्यश्री की तबीयत गिरती ही गई।

उस दिन शनिवार था। सायकाल के चार या पाच बजे मै बीकानेर में, सेठिया विद्यालय मे बैठा महाराज श्री के विषय मे ही अपने एक दो मित्रों से बाते करता करता लगभग गोधूली के समय जब कोट दरवाजे के बाहर पहुॅचा और सेठ लाभू जी श्रीमाल के कटले को बद होते देखा, तभी समझ गया कि पूज्यश्री का सथारा सीझ गया है। और जरा देर मे तो सारे शहर मे यह बात बिजली की तरह फैल गई।

फिर मैने उस दिन के अपने सब कामो को छोडा और भीनासर चल दिया। रास्ते मे भीनासर जाने वाले भक्त नर-नारियो का ताता सा लगा था। भीनासर पहुँचा। हॉल मे घुसा। भीड को चीरता हुआ आगे बढा। जो कुछ दिखाई दिया अतिम दर्शन थे, अतिम झाकी थी। पूज्यश्री तो वहा जा पहुॅचे

थे, जहा के लिए भगवान श्रीकृष्ण कहते है, "यद् गत्वा न निवर्तते तद्धाम परमं मम।" पर पूज्यश्री का औदारिक देह, जो उस दिन से ६९ साल पहिले मालवे के थादला ग्राम मे बालरूप मे अवतरित हुआ था, जिसने युवा, प्रौढ़ और वृद्ध रूप धारण किया था, अभी वही था। अभी उस निर्जीव देह से भी कुछ कार्य होना बाकी था।

एक लकडी के तख्ते पर, जिस पर बैठे-बैठे पूज्यश्री ने स्वस्थावस्था मे अनेक व्याख्यान, और रुग्णावस्था मे अपने भक्तो को आशीर्वाद ही दिये होगे, उनका देह व्याख्यान देते समय बैठने की स्थिति मे रखा था, हॉल के एक खभे से टिकाया हुआ। मालूम होता था व्याख्यान दे रहे है। मुख पर मुखवस्त्रिका लगी थी। पास में रजोहरण पडा हुआ था। आंखें खुली थी। दोनो हाथ घुटने पर रखे थे। सुखासन से बैठे थे। रात हो चुकी थी। हॉल मे लगभग १०० केडल पॉवर की बत्ती जल रही थी। उसी के प्रकाश में पूज्यश्री का मुखमंडल जगमगा रहा था। मानो दोनो एक दूसरे की ज्योति को बढा रहे थे। दर्शनार्थी आ जा रहे थे। आते अधिक थे, जाते कम थे। क्योकि जो सुबह वापिस आने का कष्ट न झेलना चाहते थे उन्होने वही रात बिताने का इरादा किया।

इस भीड मे मैंने सेठ चपालाल जी बाठिया को ढूंढना चाहा। पर उस समय तो वे पूंरे जंगम जीव बने हुए थे। बीकानेर से बाहर सब जगह तार से सूचना पहुँचाना, राज्याधिकारियों से राज्य के लवाजमे का प्रबन्ध करना, और कहा तक गिनाए, सारा प्रबन्ध उस एक दुबले पतले व्यक्ति के कधो पर आ पडा था। हा, कुँवर लहरचद जी सेठिया अवश्य उनके साथ इधर-उधर दौड़ धूप कर रहे थे।

रात को नीद न आई। सुबह पहुँचना जो था। बिस्तरा छोड कर, अपने आवश्यक कार्य से निपट कर, अँधेरे अँधेरे ही भीनासर की ओर चल पडा। गगाशहर की घाटी के ऊपरी सिरे पर पहुँचते पहुँचते मैने अपने को इक्के तागे और पैदल जानेवालो की भीड मे खोया हुआ सा पाया। पानी की बूंदे शुरू हो गई थी। लोग भीगते चले जा रहे थे। किसके लिए ? तीर्थराज जवाहर के अन्तिम दर्शन के लिए! उस तीर्थराज जवाहर के लिए जो अपने जीवनकाल मे अपने देश, जाति और सप्रदाय के लिए अलौकिक विभूति सावित हुआ था।

हॉल, सामने का बरडा, पीछे का बरडा, बाग, सामने की सडक, आस-पास के कमरे नर-नारियों से ठसाठस भरे थे। प्रबन्ध पूरा था। स्वयसेवक जी जान से काम कर रहे थे। इस समय जाने वाला कोई नही था। सब आने वाले थे। देविया दर्शन के लिए टूटी पडती थी। उनके लिए प्रबन्ध अलग था, फिर भी उन्हे इस बात की पर्वाह नहीं थी कि उनका कोई जेवर कहीं गिर न पडे या किसी पुरुष से उनका स्पर्श न हो जाये। वच्चे भीड़ को चीरते हुए घुसे जाते थे।

कई आदमी उछाल के लिए फड एकत्र करने मे लगे थे। और देने वाले वडी श्रद्धा भक्ति से दिये चले जा रहे थे। उस दिन पूज्यश्री के लिए कागज के रूप में चादी वरस रही थी। महिलाओं की दानशीलता उस दिन देखने के काविल थी। जेवरो से लदी हुई श्रीमती अगर एक अच्छी रकम दे देती थी तो कौन आश्चर्य की वात थी, पर जव एक ऐसी देवी जिसका वस्त्र-विन्यास लक्ष्मी की उदासीनता प्रगट करता था. फैलाये हुए पल्ले मे मुक्त हस्त से कुछ डालती नजर आती थी, तो वरवस मुह से 'धन्य धन्य' ही निकल पडता था।

अंत मे गगनभेदी जयघोष के साथ चांदी का विमान, जिसमे पूज्यश्री का शव रखा गया था, और जिसे श्री सेठ चंपालाल जी बाठिया ने पहले से तैयार करवा रखा था, उठाया गया। मार्ग तो नरमुडों से ठसाठस भरा ही था, पर आस पास के मकान भी दर्शनार्थियों से भरे नजर आते थे। गगाशहर के एक अच्छे भाग मे विमान घुमाया गया। लोग विमान के आगे दंडवत करने के लिए और उसे कधा देने के लिए टूटे पडते थे। शवयात्रा दिवंगत आचार्य की जीवनकाल के गौरव के अनुरूप ही थी। विमान के आगे राज्य की ओर से आया हुआ लवाजमा था। फिर दडवत करने वालो, जय घोष करने वालो, भजन गाने वालो और स्वयंसेवको की भीड थी। इसके बाद विमान के बाद पुरुषो की अपार भीड। पुरुषो की भीड के बाद गीत गाती हुई स्त्रिया। और सबके बाद ऊँट पर चढे हुए, रुपये और सोने चादी के फूल उछालने वाले और सबके बाद लूटने वाले।

पूज्यश्री के शव के फोटोग्राफ़रो ने फोटो भी खीचे। जीवितावस्था मे तो फोटो खीचे जाने के लिए वे तो, अपने धार्मिक सिद्धान्तो के कारण कभी स्वीकृति दे ही न सकते थे। पर इस समय फोटोग्राफर और प्रेस वाले कब चूकने लगे थे ? खास तौर से तब, कि जब उन्हे कोई रोकने वाला न हो ? पूज्यश्री की शवयात्रा के विमान उठने के स्थान से लगाकर श्मशान पहुँचने तक के कोई पाच सौ फोटो खीचे गये होगे।

विमान नौ बजे उठा था। गगाशहर के परले सिरे तक घूम कर श्मशान तक पहुॅचने मे १-१/२ मील का चक्कर लगा होगा। पर इतने ही चक्कर में, भीड की अधिकता के कारण ३-४ घटे लगे। श्मशान में विमान की चादी लूटने को लोग टूट पडे।

यहा मुझे महाकवि तुलसीदास की एक चौपाई याद आ रही है -

नयनन्हि संत दरश नहिं देखा। लोचन मोरपख कर लेखा॥

ते सिर कटु तुबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला॥

यही बात मै उन लोगो के लिए भी कहूँ, जिन्होंने न तो पूज्यश्री के दर्शन किये, न उनके आगे अपना सिर झुकाया, और न उनकी शवयात्रा का जुलूस देखा।

६६ — प्रखर तत्त्ववेत्ता श्रीमज्जवाहिराचार्य

(श्री घेवरचन्द बॉठिया 'वीरपुत्र' जैन न्यायव्याकरणतीर्थ, श. शास्त्री, बीकानेर)

परम प्रतापी श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब जैन समाज की ही विभूति नही अपितु 'विश्व विभूति' थे। उनमें ऐसे अनेक गुण विद्यामान थे जिन्होने उन्हे 'विश्व विभूति' बना दिया था। वे सच्चे महात्मा, महानूयोगी, प्रखर तत्ववेत्ता, कुशल उपदेशक, प्रकाण्ड विद्वान्, महान् त्यागी तपस्वी और कठोर सयमी थे। उनका हृदय अत्यन्त निर्मल और पवित्र था। इन महात्मा के दर्शन और वाणी श्रवण का सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हुआ था और जब पूज्यश्री का चातुर्मास जोधपुर था तब चार महीने तक उनके निकट सम्पर्क में रहने का भी मुझे सुअवसर मिला था। उस समय पूज्यश्री की समग्र दिनचर्या देखने का मुझे अवसर मिला था। पूज्यश्री प्रात·काल ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर तत्त्वो का चिन्तन किया करते थे। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण के बाद वे ध्यान मे विराजते थे। उनके ध्यान का आसन महान् योगी सा बडा स्थिर होता था। उस समय महान् योगी के चेहरे से

सताप के श्रीताप को मिटा देने वाली अपूर्व शान्ति टपकती थी। प्रकृतिदेवी की छोटी से छोटी बात का भी वे बडा सूक्ष्म निरीक्षण करते थे और व्याख्यान के समय उस पर जीवन का कोई महान् तत्त्व उतारते थे।

व्याख्यान शुरू करने से पहले आप 'विनयचन्द चौबीसी' मे से एक तीर्थकर भगवान् की प्रार्थना फरमाते थे। प्रार्थना की कडिया बोलते समय वे उसमें तल्लीन हो जाते थे और आत्म शान्ति का पूर्ण रसास्वाद करते थे। प्रार्थना गा लेने के पश्चात् प्रार्थना मे आये हुये विषय पर कुछ फरमाते थे और प्रार्थना का माहात्म्य बतलाते थे। प्रार्थना पर अत्यधिक जोर देते हुए आप फरमाते थे कि - मुमुक्षु पुरुष को अपना सारा जीवन ही प्रार्थनामय बनाना चाहिए। जिसका जीवन प्रार्थनामय बन जाता है उसे फिर किसी बात की कमी नही रहती। वह पूर्ण आत्म-शान्ति का अनुभव करता है। प्रार्थना पर बोलते हुए आप कई वक्त इन कड़ियो को दुहराया करते थे:-

सुनेरी मैने निर्बल के बल राम।
देखे री मैने निर्बल के बल राम॥

प्रार्थना तो पूज्यश्री के जीवन का एक विषय बन गया था। प्रति दिन प्रार्थना के विषय मे वे कुछ न कुछ अवश्य फरमाते थे। सब दर्शनो का समन्वय करने की क्षमता आपकी अपूर्व थी।

कथा कहने का ढग आपका निराला था। कथा के पात्रो को ऐसा चित्रित करते थे मानो वे सामने खडे हो। साधारण से साधारण कथा में भी जान डाल देना आपका विशेष गुण था।

पूज्यश्री स्वभाव के जितने नरम थे, अनुशासन के वे उतने ही कठोर थे। अनुशासन की किचिन्तमात्र शिथिलता को वे सहन न कर सकते थे। अनुशासन के विषय में यह कथन उन पर लागू होता था-

'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि पुष्पादपि'

अर्थात्-सन्तो के हृदय फूल से भी कोमल होते है किन्तु परिस्थिति के अनुसार वे ही हृदय वज्र से भी कठोर हो जाते है।

सत्य सिद्धान्त का पालन करते हुए उस मार्ग मे आनेवाली विघ्न बाधाओ के विरोध से पूज्यश्री तनिक भी घबराते न थे। जिस प्रकार सत्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में वे निर्भीक वक्ता थे उसी प्रकार उसका पालन करने मे भी आप निर्भीक थे। एक ऐसे कठिन परीक्षा के प्रसङ्ग को देखने का मुझे अवसर मिला था। अजमेर साधु सम्मेलन के समय कान्फरेन्स के पण्डाल मे मुनियो के व्याख्यान हुए थे। वहाँ लगे हुए लाउडस्पीकर मे बोलने के लिए आपसे कहा गया तो आपने लाउडस्पीकर मे बोलने से साफ इन्कार किया और यह स्पष्ट कहा कि लाउडस्पीकर मे अग्नि का स्पर्श होता है। उसमे बोलने से जैन मुनियों को दोष लगता है। उस पर वहीं उपस्थित जनता के बहुभाग ने बडा विरोध किया और लाउडस्पीकर मे बोलने के लिए पूज्यश्री को काफी जोर दिया तथा बडा कोलाहल मचाया किन्तु पूज्यश्री इस विरोध से तनिक भी न घबराये और सत्यसिद्धान्त की रक्षा के निमित्त वे लाउडस्पीकर मे न बोले। हजारो की मानवमेदिनी से भरे हुए पण्डाल मे से उठकर आप बाहर चले आये। इस प्रकार ऐसा विकट प्रसङ्ग एव कठिन परीक्षा का समय उपस्थित होने पर पूज्यश्री

ने जिस अपूर्व सत्साहस का परिचय दिया वह हमारे लिए गौरव लेने जैसी बात है। उस महापुरुष के इस सत्साहस को देख कर अपने से विरोध रखनेवाली तेरह-पन्थ समाज के मुह से भी वरवस प्रशंसा के शव्द निकल पडे थे:-

''लाउडस्पीकर मे न बोल कर पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने समस्त वाईस सम्प्रदाय समाज का मस्तक सदा के लिए उन्नत रखा है और जनता के विरोध से न घवराते हुए सत्य सिद्धान्त पर अटल रह कर उन्होने महापुरुषोचित सत्साहस का परिचय दिया है''।

जिस प्रकार पूज्यश्री का आध्यात्मिक शरीर उत्कृष्ट था उसी प्रकार भौतिक शरीर भी उत्कृष्ट था।

लम्बा कद, गौर वर्ण, विशाल भाल, तेजोमय सुदीर्घ नेत्र, चमकता हुआ ललाट, दीर्घ मस्तक, मुखमण्डल की अपूर्ण काति, ये सब पूज्यश्री के भौतिक शरीर की उत्कृष्टता को सूचित करते थे। उनकी उत्कृष्ट शारीरिक सम्पदा, देखने वाले एक अनजान व्यक्ति को भी एकदम प्रभावित किये बिना न रहती थी। उनकी आवाज बड़ी बुलन्द थी। जब वे व्याख्यान मण्डप मे बैठकर व्याख्यान फरमाते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई सिह गर्जना कर रहा हो। जो व्यक्ति एक वक्त उनके दर्शन कर लेता था उसके हृदय पर उनकी तेजोमय सौम्य मूर्ति की छाप सदा के लिए अमिट हो जाती थी। वह उन्हे कभी भूलता न था। जो एक वक्त उनका व्याख्यान श्रवण कर लेता था वह सदा के लिए उनका श्रद्धालु भक्त बन जाता था। उनके व्याख्यान मे जादू की सी शक्ति थी। उनका व्याख्यान तात्त्विक होता था, उसमे शब्दाडबर नही होता था। वे शब्दों की आत्मा को पकडते थे और उसमे गहरे उतर कर तत्त्व विश्लेषण पूर्वक विचार करते थे। गहन से गहन तत्त्वो की थाह लेने की उनमें क्षमता थी। उनमे ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय का त्रिवेणी सगम था। जिस प्रकार वे अपनी विद्वत्ता और वक्तृत्व कौशल से परमतावलम्बियो को पराजित करने में समर्थ थे उसी प्रकार वे कठोर सयम पालन मे भी चुस्त थे।

यद्यपि पूज्यश्री का भौतिक शरीर आज हमारे सामने विद्यमान नहीं है तथापि उनका निर्मल यश रूपी शरीर सदा अजर अमर रहेगा।

ऐसे युगावतारी महापुरुष के चरणो में मैं भक्ति-पूर्वक अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करता हूं। इति शुभम्।

६७— एक मुख से हजारों की वाणी

श्रीयुत शुभकरनजी

यो तो मेरे पिता ने मेवाड़ राज्य की काफी सेवा की है, लेकिन मै भी करीब ३५ वर्ष से मेवाड की सेवा कर रहा हूँ। लेकिन मेरा जीवन गोश्त खाना, शराब पीना, पान खाना, सिगरेट तमाखू पीना, शिकार करना (आदि कामो में) ही ओतप्रोत रहता था। अत्युक्ति न होगी, अगर मै उस समय का जीवन एक जबर्दस्त शराबी व गोश्त खाने वाला व शिकार करने वाला कहूँ। जीवहिंसा करने मे कोई पशोपेश नहीं था।

लेकिन सन् २० में उदयपुर मे पूज्यश्री जवाहर के दर्शन का सौभाग्य भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवतसिह जी के साथ प्राप्त हुआ। पूज्यश्री के उपदेश से मेरे मन मे घृणा व आत्मग्लानि उत्पन्न हुई

और मन ही मन बडा पश्चाताप करने लगा और उपदेश की दिल मे इतनी लगन लगी कि गोश्त खाना, शराब पीना,पान, तमाखू, बीडी पीना व शिकार करना सब छोड दिया।

मैं कह सकता हूँ कि पूज्यश्री की वाणी मे इतनी शक्ति और ऐसी अमृततुल्य है कि मुझ से जबर्दस्त मासाहारी व शराब पान करने वाले के दिल को भी सच्चा मार्ग सुझा दिया। आप बहुत सरल स्वभावी व अलौकिक मूर्ति है, जिससे मन बहुत ही प्रसन्न होता है।

मेरे जीवन के बदलने के बाद सन् १९२१ के वाद आज तक उसी तरह अमल कर रहा हूँ व एक वक्त सादा भोजन (चावल आदि) लेता हूँ। स्वास्थ्य पहले से काफी अच्छा है। इस ६० वर्ष की आयु मे भी पूज्यश्री के उपदेश से सब बुरी चीजो का सेवन छोड देने से जवान की तरह काम कर सकता हूँ और सादगी से समय बिताता हूँ।

सन् २० के बाद पूज्यश्री के चातुर्मास घाटकोपर, रतलाम, सरदारशहर, चूरू, धार, ब्यावर वगैरह स्थानो पर हुए। मै दर्शन करने को बलवतसिह जी के साथ जाता रहा और अमृतवाणी सुनता रहा हूँ, जिससे काफी शान्ति मिली है।

ज्यादा शब्द मेरे पास नही कि मै ऐसे उच्च मुनि की तारीफ करूँ, लेकिन मेरा जीवन ही उनके गुणो का गान करने के लिए थोडा-सा नमूना काफी है।

पत्रों की प्रतिध्वनि

सम्पादक 'फूलछाब' राणपुर (काठियावाड़)

भारत मे 'जवाहर' एक ही नही, दो है, एक राष्ट्रनायक है दूसरा धर्मनायक। युक्त प्रान्त से लेकर सौराष्ट्र की सीमा तक जिनकी सुवास महक रही है, वे जैन मुनि श्री जवाहरलाल जी दो एक वर्ष से काठियावाड़ मे है।

बारह वर्ष की (? सोलह वर्ष की) वय में दीक्षा लेने वाले यह साधु इस समय सत्तर (?) से अधिक वर्ष की वय वाले व्याधिग्रस्त वृद्ध है। स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु होते हुए जैनेतर जगत् से भी सम्मानित हैं। कालमीढ़ किले के बीच खडे रहते भी ये ऐसे पूर्ण प्रगतिशील विचारक हैं कि रूढिभक्त अनुयायियो को जिसकी कल्पना भी नही हो सकती। ये प्रामाणिक, निडर और निर्मल संत है।

अपनी क्रिया के विषय मे पक्के जैन होते हुए भी ये राष्ट्रवाद के उपासक है।

गाधीजी के और गाधीजी के विचार-तत्वो के (प्रायः) निडर अनुमोदक है। गाधीजी, मालवीयजी, तिलक-सब से इनका मिलन हुआ है। गीता पर लिखे भाष्य मे जैन धर्म सबधी स्व लोकमान्य की भूल प्रमाणित करके देने पर लोकमान्य ने उसे सुधारना स्वीकार किया था।

राजपूताना और मारवाड़ के हजारो जवाहर भक्त केवल मुनिश्री की खादी-प्रशसा पर खादी धारी बने है। ये सुधारक हे. चितक है, दर्शक है, पूर्ण क्रियानिष्ठ एव वैराग्य के ही उपासक है। ये अनेक युक्तियों से और आधी सदी से मुग्ध करने वाली नित्य-नई नूतनतापूर्वक अपनी समर्थ वाणी द्वारा ससारियो को ससार एवं धर्म का रहस्य समझाते है।

(१३ मई, १

स्थानकवासी जैन, अहमदावाद

स्थानकवासी जैन साधुओ मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र का त्रिवेणी-सगम हो सकता है। विद्वत्ता और वक्तृत्वशक्ति मे जैनेतरो को भी मात कर सकते हैं और जहाँ-जहाँ विहार करे वहाँ-वहाँ हजारो मनुष्यो को सच्चे अर्थ में श्रावक बना सकते है, यह वात विना अतिशयोक्ति के अगर किसी के लिए कही जा सकती है तो श्री जवाहरलाल जी महाराज के लिए ही। उनमे न कोरा ज्ञान है, न अध क्रिया है और न श्रोताओ के समूह पर उनका असर क्षणिक होता है। यह आचार्य श्री ज्ञान और क्रिया के चक्रो से चारित्ररथ को अग्रसर करते हुए लगभग आधी शताव्दी से जैन जनता की अनन्य सेवा वजाकर चार मास पहले स्वर्गवासी हुए है।

❑

१८

... हो सकता है। विद्वत्ता
... करे वहाँ-वहाँ हजारों
... के अगर किसी के लिए
... ज्ञान है न अथ क्रिया
... ज्ञान और क्रिया के
... की अनन्य सेवा बजाकर

□

ला, र

॥

र्॥

म्।

म्॥

श्रद्धाञ्जलि

(प. श्री गजानन्दजी शास्त्री, अजीतसरिया संस्कृतपाठशाला, रतनगढ)

(१)

प्रतिभाप्रतिभाषित शास्त्रचय,
शरदिन्दुसमानयशोनिलयम्।
विगतारिभयं भवदुःखदह,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(२)

जिन तत्त्वजुषा विदुषा प्रमुख,
शरणागतपालनलब्धसुखम्।
तपसा परिशोभितदिव्यमुख,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(३)

सुखशान्तिरकर परमार्तिहर,
जगतामुपकारविधानपरम्।
करुणापरिपूर्णविचारधर,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(४)

मनसा वचसा महता तपसा,
प्रतिपादित लोकहितसततम्।
करुणाकरसाधुजनैकगति,
प्रणमामि जवाहलालमहम्॥

(५)

अनुकम्पनयोगरत विरत,
शमसयमसाधनतानिरतम्।
अमृतोपमपुण्यवच सहित,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(६)

सौम्य प्रशान्त यशसा महान्त,
दिव्येरनेकै सुगुणैर्विभान्तम्।
आचार्यवर्य सुसमाधिचर्य,
जवाहर लालयुत नमामि॥

श्रद्धाञ्जलि

(प श्री गजानन्दजी शास्त्री, अजीतसरिया सस्कृतपाठशाला, रतनगढ)

(१)

प्रतिभाप्रतिभाषित शास्त्रचय,
शरदिन्दुसमानयशोनिलयम्।
विगतारिभय भवदुःखदह,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(२)

जिन तत्त्वजुषां विदुषा प्रमुख,
शरणागतपालनलब्धसुखम्।
तपसा परिशोभितदिव्यमुख,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(३)

सुखशान्तिरकर परमार्तिहर,
जगतामुपकारविधानपरम्।
करुणापरिपूर्णविचारधर,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(४)

मनसा वचसा महता तपसा,
प्रतिपादित लोकहितसततम्।
करुणाकरसाधुजनैकगति,
प्रणमामि जवाहलालमहम्॥

(५)

अनुकम्पनयोगरत विरत,
शमसयमसाधनतानिरतम्।
अमृतोपमपुण्यवच सहित,
प्रणमामि जवाहरलालमहम्॥

(६)

सौम्य प्रशान्त यशसा महान्त,
दिव्यैरनेकै सुगुणैर्विभान्तम्।
आचार्यवर्य सुसमाधिचर्य,
जवाहर लालयुत नमामि॥

पद्यमयी श्रद्धाजलिया

(६)

सर्वस्व त्यागी, निरभिमानी, ब्रह्मचारी, सत था।
तार्किक प्रवर, उसका तथा विद्या विलास अनत था॥
गुण-गण रसिक, सद्धर्म दश लक्षण-प्रचारक धीर था।
पडित प्रवर, प्रतिभा-प्रसिद्ध, प्रबुद्ध-पूजित पीर था॥

(७)

था वह स्वदेशी वस्तु-वस्त्र प्रयोग का हामी बड़ा।
निजदेश की परतत्रता का हृदय मे काटा गड़ा॥
हर रोम में उसने रमाया अहिसा सिद्धान्त था।
पर-पक्षियों के सामने निश्चल तथा निर्भान्त था॥

(८)

ससार मे चहुँ ओर उपदेशक दिखाई दे रहे।
जय घोष सुनकर अभ्र भेदी फूल कुप्पा हो रहे॥
पर वह जवाहर था, कि जो सब बात मे व्यवहार मे।
प्राचीन ऋषियों सा सदा था अनेकात विचार मे॥

(९)

था दयानद महर्षि लूथर या कि जैन समाज मे।
अवधूत पूत, सदा निरत था, लोक सेवा काज मे॥
वह एक अंतर्बाह्य था, उसमे न छल का लेश था।
श्रोता समूह विमुग्धकर, उस साधु का वर वेश था॥

(१०)

उस-सा अपर अव कौन है, उसका वही उपमान था।
जव खोलता मुख गूजता जिन-पथ-गोरव-गान था॥
वह आर्य जीवन काल में नित लोकहित करता रहा।
मन से, वचन से, कर्म से, शुभ भावना भरता रहा॥

(११)

जिन देव-शासन-शख फूका, जोर से किसने कहो।
श्री साधु मार्गी सघ को किसने दिपाया था अहो॥
शुभ राष्ट्र-सेवा-प्रेरणा की सव मे की स्थापना।
ओ शून्य कह दे जोर से जय जवाहर उन्नतपना॥
निज कर्म से आचार्यवर ने, जेन जाति निहाल की।
हो, पृज्य श्री मुनिवर तपोधन, जय जवाहरलाल की॥

(६)

सर्वस्व त्यागी, निरभिमानी, ब्रह्मचारी, सत था।
तार्किक प्रवर, उसका तथा विद्या विलास अनंत था॥
गुण-गण रसिक, सद्धर्म दश लक्षण-प्रचारक धीर था।
पडित प्रवर, प्रतिभा-प्रसिद्ध, प्रबुद्ध-पूजित पीर था॥

(७)

था वह स्वदेशी वस्तु-वस्त्र प्रयोग का हामी बडा।
निजदेश की परतन्त्रता का हृदय में काटा गडा॥
हर रोम में उसने रमाया अहिसा सिद्धान्त था।
पर-पक्षियों के सामने निश्चल तथा निर्भान्त था॥

(८)

ससार मे चहुँ ओर उपदेशक दिखाई दे रहे।
जय घोष सुनकर अभ्र भेदी फूल कुप्पा हो रहे॥
पर वह जवाहर था, कि जो सब बात मे व्यवहार में।
प्राचीन ऋषियों सा सदा था अनेकात विचार में॥

(९)

था दयानद महर्षि लूथर या कि जैन समा[illegible]
अवधूत पूत, सदा निरत था, लोक सेवा [illegible]।
वह एक अतर्बाह्य था, उसमें न छल का [illegible]
श्रोता समूह विमुग्धकर, उस साधु का [illegible]

(१०)

उस-सा अपर अब कौन है. [illegible]
जब खोलता मुख गूजता [illegible]।
वह आर्य जीवन काल [illegible]
मन से. वचन से [illegible]।

(७)

तुमने कहा- "जैन धर्म नही कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ़-बढ हाथ बताता है॥
जैनधर्म तो वीरो का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथों घर का मान घटाया"॥

(८)

तुमने कहा- "सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेतें हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमी लोग जो झगड़ेंगे तो होगी पतन कहानी"॥

(९)

तुमने कहा- "जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातों को सपने में याद कभी मत लाओ"॥
सुनी नही हा! इन बातों को कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना॥

(१०)

राष्ट्रदूत! ओ धर्मदूत!! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेंगे अब कोई?॥
दुख के सागर में धकेल कर चले गये क्यो हमे अहो।
कितना तड़फाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर! हमे कहो॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नही रहा।
बीच जवाहर को नही पा सभी व्यथित है आज महा॥

(१२)

विना हमे कुछ कहे गुरुदेव! नहीं चल देना था।
जाने से कुछ पूर्व तुम्हे गुरुदेव! हमें कह देना था॥
आज तुम्हारी मधुर याद मे लगा हुआ जग रोने मे।
वतलाओ गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कोने मे॥

(७)

तुमने कहा- "जैन धर्म नहीं कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ-बढ हाथ बताता है॥
जैनधर्म तो वीरो का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथो घर का मान घटाया"॥

(८)

तुमने कहा- "सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेतें हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमी लोग जो झगडेगे तो होगी पतन कहानी"॥

(९)

तुमने कहा- "जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातो को सपने में याद कभी मत लाओ"॥
सुनी नही हा! इन बातो की कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना॥

(१०)

राष्ट्रदूत! ओ धर्मदूत!! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेगे अब कोई?॥
दुख के सागर मे धकेल कर चले गये क्यो हमे अहो।
कितना तडफाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर! हमे कहो॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नहीं रहा।
बीच जवाहर को नही पा सभी व्यथित है आज महा॥

(१२)

बिना हमें कुछ कहे गुरुदेव! नही चल देना था।
जाने से कुछ पूर्व तुम्हें गुरुदेव! हमे कह देना था॥
आज तुम्हारी मधुर याद मे लगा हुआ जग रोने मे।
बतलाओ गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कौने मे॥

(७)

तुमने कहा- "जैन धर्म नहीं कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ़-बढ हाथ बताता है॥
जैनधर्म तो वीरों का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथों घर का मान घटाया"॥

(८)

तुमने कहा- "सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेतें हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमी लोग जो झगडेगे तो होगी पतन कहानी"॥

(९)

तुमने कहा- "जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातो को सपने में याद कभी मत लाओ"॥
सुनी नही हा! इन बातों को कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना॥

(१०)

राष्ट्रदूत! ओ धर्मदूत!! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेंगे अब कोई?॥
दुख के सागर मे धकेल कर चले गये क्यो हमे अहो।
कितना तड़फाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर! हमे कहो॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नहीं रहा।
बीच जवाहर को नही पा सभी व्यथित है आज महा॥

(१२)

बिना हमें कुछ कहे गुरुदेव! नहीं चल देना था।
जाने से कुछ पूर्व तुम्हे गुरुदेव! हमे कह देना था॥
आज तुम्हारी मधुर याद मे लगा हुआ जग रोने में।
वतलाओ गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कौने मे॥

गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कोने में?

(श्री मुनीन्द्रकुमारजी जेन)

(१)

ओ समाज के कर्णधार! ओ बुझते दीपक की आशा।
तुमने भी बुझकर दिखलाया जग है एक तमाशा॥
किन्तु तुम्हारे बुझने ने जग अन्धकार मे डाला।
हम सव की छाती मे मानो चुभा दिया है भाला॥

(२)

जगमग हीरे जैन जगत के! जैन जनो के सेनानी।
लाखो की आखो से तुमको क्या ढुलकाना था पानी॥
देख रही है आखे अव तो एक राख की ढेरी।
छोड गये यह देह कितु युग युग तक गाथा है तेरी॥

(३)

झोली लेकर निकल पडे तुम जग का सुनकर हाहाकार।
व्याकुल जग को देख देख तुम व्याकुल भी थे स्वय अपार॥
भारत के कौने कौने मे घूम घूम तुम आये थे।
जग के दुख बटोर–बटोर कर झोली तुम भर लाये थे॥

(४)

तुमने कहा- "जगत के वासी! क्यो तुम स्वय दुखी होते?
लगा चोट अपने ही हाथो तुम क्यो स्वय भला रोते?
ढूढ रहे सुख कहा जगत मे सुख जग मे किसने पाया?
नभ का लेने पार चले हो, पार भला किसने पाया"?

(५)

तुमने कहा- "अरे ओ धनवानो! क्यों धन पर इठलाते हो?
इस धन को अच्छे कृत्यों मे हॅस-हॅस क्यो न लगाते हो?
निर्धन का तुम गला घोंट कर धनिक आज दिखलाते हो?
धनवानो! तुम एक धनिक बन लाखो को रुलवाते हो"॥

(६)

तुमने कहा- "अहिंसावादी! क्यो कायर तू बनता है?
आज देश मे युद्ध छिडा है, क्यो न युद्ध को ठनता है?
सत्य अहिसा ले हाथो मे, करो युद्ध की तैयारी।
शत्रु भी तब काप उठेगा लख कर शक्ति तुम्हारी"॥

(७)

तुमने कहा- "जैन धर्म नहीं कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ-बढ हाथ बताता है॥
जैनधर्म तो वीरो का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथों घर का मान घटाया"॥

(८)

तुमने कहा- "सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेते हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमी लोग जो झगडेंगे तो होगी पतन कहानी"॥

(९)

तुमने कहा- "जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातो को सपने में याद कभी मत लाओ"॥
सुनी नही हा! इन बातो को कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना॥

(१०)

राष्ट्रदूत! ओ धर्मदूत!! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेंगे अब कोई?॥
दुख के सागर मे धकेल कर चले गये क्यो हमे अहो।
कितना तड़फाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर! हमे कहो॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नहीं रहा।
बीच जवाहर को नही पा सभी व्यथित हैं आज महा॥

(१२)

बिना हमें कुछ कहे गुरुदेव! नहीं चल देना था।
जाने से कुछ पूर्व तुम्हे गुरुदेव! हमें कह देना था॥
आज तुम्हारी मधुर याद मे लगा हुआ जग रोने में।
बतलाओ गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कौने मे॥

गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कोने में?

(श्री मुनीन्द्रकुमारजी जैन)

(१)

ओ समाज के कर्णधार! ओ वुझते दीपक की आशा।
तुमने भी वुझकर दिखलाया जग है एक तमाशा॥
किन्तु तुम्हारे वुझने ने जग अन्धकार मे डाला।
हम सब की छाती मे मानो चुभा दिया है भाला॥

(२)

जगमग हीरे जैन जगत के! जैन जनो के सेनानी।
लाखो की आखो से तुमको क्या ढुलकाना था पानी॥
देख रही है आखें अब तो एक राख की ढेरी।
छोड गये यह देह कितु युग युग तक गाथा है तेरी॥

(३)

झोली लेकर निकल पड़े तुम जग का सुनकर हाहाकार।
व्याकुल जग को देख देख तुम व्याकुल भी थे स्वय अपार॥
भारत के कौने कौने मे घूम घूम तुम आये थे।
जग के दु:ख बटोर-बटोर कर झोली तुम भर लाये थे॥

(४)

तुमने कहा- "जगत के वासी! क्यो तुम स्वय दुखी होते?
लगा चोट अपने ही हाथो तुम क्यो स्वय भला रोते?
ढूढ रहे सुख कहा जगत में सुख जग मे किसने पाया?
नभ का लेने पार चले हो, पार भला किसने पाया"?

(५)

तुमने कहा- "अरे ओ धनवानो! क्यों धन पर इठलाते हो?
इस धन को अच्छे कृत्यों मे हँस-हँस क्यो न लगाते हो?
निर्धन का तुम गला घोंट कर धनिक आज दिखलाते हो?
धनवानो! तुम एक धनिक बन लाखो को रुलवाते हो"॥

(६)

तुमने कहा- "अहिंसावादी! क्यो कायर तू बनता है?
आज देश में युद्ध छिडा है, क्यो न युद्ध को ठनता है?
सत्य अहिसा ले हाथों मे, करो युद्ध की तैयारी।
शत्रु भी तब काप उठेगा लख कर शक्ति तुम्हारी"॥

(७)

तुमने कहा- "जैन धर्म नहीं कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ़-बढ हाथ बताता है॥
जैनधर्म तो वीरो का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथों घर का मान घटाया"॥

(८)

तुमने कहा- "सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेतें हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमी लोग जो झगड़ेगे तो होगी पतन कहानी"॥

(९)

तुमने कहा- "जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातों को सपने में याद कभी मत लाओ"॥
सुनी नही हा! इन बातों को कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना॥

(१०)

राष्ट्रदूत! ओ धर्मदूत!! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेंगे अब कोई?॥
दुख के सागर मे धकेल कर चले गये क्यो हमें अहो।
कितना तडफाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर! हमें कहो॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नहीं रहा।
बीच जवाहर को नही पा सभी व्यथित है आज महा॥

(१२)

विना हमे कुछ कहे गुरुदेव! नहीं चल देना था।
जाने से कुछ पूर्व तुम्हे गुरुदेव! हमें कह देना था॥
आज तुम्हारी मधुर याद मे लगा हुआ जग रोने में।
वतलाओ गुरुदेव! छिपे हो किस अनन्त के कौने मे॥

'अंजलि'

(कुवर केशरीचन्द सेठिया, बीकानेर)

मोक्षमार्ग के पथिक पूज्यवर,
हम कृतकृत्य आज सारे।
तपोधनी, ऋषिवर्य! तुम्हारी
महिमा से उज्ज्वल सारे।
आज तुम्हारे त्याग, शील का
यश छाया भूमण्डल में।
हिंसा का जब प्रलय नृत्य
हो रहा व्योम मे, जल–थल मे।
आज विश्व का उर आहत है,
पीड़ित है वसुधा सारी।
हम सब को तब प्राप्त अहिंसा
का है तुम–सा व्रतधारी।
हम सब के पथ में प्रभुवर तुम
ज्ञान–प्रदीप सजग करते।
हम सबको धर्मामृत देकर
तुम सत्पथ पर ले बढ़ते।
कैसे आज तुम्हारे गुणगण
कहूँ प्रभो! मैं तुम्ही कहो।
जिसकी करुणा से भीगा है
रोम–रोम यह आज अहो।
अगर कहें तुमने समाज का
हित ही रक्खा है आगे।
और हमी सब को है प्रस्तुत
किये एकता के धागे।
दोषारोप आप पर होगा
तो ये पुण्यचरित! मेरा।

जो समदृष्टि रहा जीवन में;
जिसने सबको सम हेरा।
इसे आपका स्वार्थ कहे
या कहें परार्थ बताओ तो।
विश्वदृष्टि लेकर तुम आये
मुझको भी अपनाओ तो।
जीवन बने यज्ञ की वेदी
अहंकार कुछ हो न जहाँ।
सदा आपके चरणचिह्न का
रहे ध्यान ही मुझे यहॉ।
वही करूँ जो रुचा तुम्हे प्रभु
इस देवोपम जीवन मे।
देश, जाति क्या सब जगती को
मानू अपना-सा मन में।
कभी न मुझसे कष्ट मिले
हो ऐसा, सदा भाव मेरा।
इष्ट हमारा वने वही जो
मत्र आपने है प्रेरा।

"श्रद्धांजलि-समर्पण"

(लेखक-प्रिसिपल प. श्री त्रिलोकनाथ मिश्र, लोहना दरभंगा)

पूज्य जवाहरलाल-सूर्य को किस बादल ने छिपा लिया?।
किसने हा!! सारी दुनियाँ को, अन्धकार से लिपा दिया?।
अन्न-वस्त्र लुट कर भारत के, प्राण जवाहर को लूटा।
इस कसाई सवत ने हाहा!! धर्म्म-मर्म्म को भी कूटा॥
जिनके आगे हीरा-नीलम, पुखराज न कुछ दम रखते थे।
वे रत्न जवाहर कहाँ गये, जो दिन-दिन और चमकते थे?॥
जिनके वचनामृत को पीकर, मुर्दे भी जिन्दा होते थे।
दुनिया की झंझट को निपटा, आनन्द सेज पर सोते थे॥
जिनके उपदेशों का प्रभाव, राजाओं पर भी रहता था।
जिनकी अविरल वाणी-धारा से अमृत-स्रोत नित बहता था।

ससार-पूज्य मालवी और गाधी, से भी जो पूजित थे।
जिनके शब्दो से दिगन्त, जल-थल, वन-उपवन गूजित थे॥
जो सदाचार के उदयाचल, दुर्व्यसन-तिमिर के भास्कर थे।
सन्तापहरण, मृदुवचन, शान्ति मे, जो अकलङ्क सुधारक थे।
जो कटुवाद-कुहेस दिवस थे, धर्मवीरता मे वे-जोड॥
पूज्यपाद वे आज 'जवाहर', कहॉ गये भक्तों को छोड॥
जिन-प्रवचन का कौन करेगा, अब वैसा सुन्दर उपदेश।
कौन सुनावेगा भविजन को, ईश्वर का सच्चा सन्देश॥
कर के सारे भारत ही को शून्य, न केवल राजस्थान।
यद्यपि वे भौतिक शरीर को छोड सिधारे दिव्यस्थान॥
तो भी पूज्य जवाहर के विरही भक्तो की यही पुकार।
एक बार वह रूप दिखाकर भक्तो का कर दे उपकार॥
तप्त हृदय की ज्वाला का नहिं और दीखता है प्रतिकार।
निज भक्तो के लिए सदा प्रभु का रहता है सब अधिकार॥
भक्ति-रसामृत को जिस बादल ने बरसाया आठो याम।
इस नभ मण्डल बिच फिर भी वह आ जावे यह है मन-काम॥

पूज्यश्री जवाहरजी महाराजनी स्तुति

(रचयिता-गौडल सम्प्रदायना वयोवृद्ध श्री अम्बाजी महाराज)
राग-नदजीना लाल रमवा आवो ने रे

वर्त्यो छे जय-जयकार, पोरमा पूज्यजी पधार्या
जगत-जीवो तेणे तार्या, पोरमा पूज्यजी पधार्या-टेक

पूज्य जवाहरलालजी जेवा,
ज्ञान-झवेरात लाग्या छे देवा,
मोक्षना सुखज लेवा.............पोरमा. ॥१॥

देशी विदेशी ने निहाल करीने,
पोर बदरमा पाव धरी ने,
प्रतिबोधे चित्त हरी ने ....पोरमा. ॥२॥

शिष्य-परिवार शोभे छे भारी,
कुमति कुबुद्धि ने दूर निवारी
पाँचे समिति ने धारी ....पोरमा. ॥३॥

वैरागीनु मन ज्ञानमा वसीयु,

अजर अमर पद सेवानु रसीयु,

अज्ञान-तिमिर खसीयु ... .पोरमा. ॥४॥

अमूल्य तत्व तणी देशना दीधी

सुणता थाय खरे आत्मनी सिद्धि,

ज्ञान प्रसादी पाय पीधी ....पोरमा. ॥५॥

पूजयश्री तमे छो जग उपकारी,

घणु जीवी लेजो घणाने तारी,

आबाजी कहे हर्षधारी ....पोरता. ॥६॥

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराजना जीवन चरित्र अङ्गे

(लेखक- श्री टी. जी. शाह)

जैनो तणु साचु ए तो जवाहर छे रे (राग)

देश देश मा भ्रमण जेणे कर्यु रे

सँभलाववाने सुत्रो तणो सार (१)

महा कष्ट वेठी सिद्धान्त पालन कर्यु रे,

दुःख सह्यु जेणे देहे पारावार (२)

अहिसा सत्य तणो जेणे प्रचार कर्यो रे

दया तणों जे छे अखूट भण्डार (३)

घाटकोपर जीवदया मडली,

वली गोशाला ए एमनो प्रताप (४)

जेनी वाणी केसरी सिह समी रे,

उपदेशे वली जे छे अजोड (५)

जेनु जीवन चरित्र आदर्श छे रे

जेनो वाणी साथे कार्यनो सुमेल (६)

पारस मणि ज्यो लोहने कचन करे छे रे

तेम उजाल्या अनेकना चरित्र (७)

जेनाकाशे ए तो शशी तणी ज्योत छे रे

जेनो अमी-भर्यो शीतल प्रभाव (८)

ससार-पूज्य मालवी और गाधी, से भी जो पूजित थे।
जिनके शब्दो से दिगन्त, जल-थल, वन-उपवन गूंजित थे॥
जो सदाचार के उदयाचल, दुर्व्यसन-तिमिर के भास्कर थे।
सन्तापहरण, मृदुवचन, शान्ति मे, जो अकलङ्क सुधारक थे।
जो कटुवाद-कुहेस दिवस थे, धर्मवीरता मे बे-जोड़॥
पूज्यपाद वे आज 'जवाहर', कहाँ गये भक्तों को छोड़॥
जिन-प्रवचन का कौन करेगा, अब वैसा सुन्दर उपदेश।
कौन सुनावेगा भविजन को, ईश्वर का सच्चा सन्देश॥
कर के सारे भारत ही को शून्य, न केवल राजस्थान।
यद्यपि वे भौतिक शरीर को छोड़ सिधारे दिव्यस्थान॥
तो भी पूज्य जवाहर के विरही भक्तों की यही पुकार।
एक बार वह रूप दिखाकर भक्तो का कर दे उपकार॥
तप्त हृदय की ज्वाला का नहिं और दीखता है प्रतिकार।
निज भक्तो के लिए सदा प्रभु का रहता है सब अधिकार॥
भक्ति–रसामृत को जिस बादल ने बरसाया आठो याम।
इस नभ मण्डल बिच फिर भी वह आ जावे यह है मन–काम॥

पूज्यश्री जवाहरजी महाराजनी स्तुति

(रचयिता-गौडल सम्प्रदायना वयोवृद्ध श्री अम्बाजी महाराज)
राग–नदजीना लाल रमवा आवो ने रे

वर्त्यो छे जय–जयकार, पोरमा पूज्यजी पधार्या
जगत–जीवो तेणे तार्या, पोरमा पूज्यजी पधार्या–टेक

पूज्य जवाहरलालजी जेवा,
ज्ञान–झवेरात लाग्या छे देवा,
मोक्षना सुखज लेवा.............पोरमा. ॥१॥

देशी विदेशी ने निहाल करीने,
पोर बदरमा पाव धरी ने,
प्रतिबोधे चित्त हरी ने ....पोरमा. ॥२॥

शिष्य–परिवार शोभे छे भारी,
कुमति कुबुद्धि ने दूर निवारी
पाँचे समिति ने धारी ....पोरमा. ॥३॥

वैरागीनु मन ज्ञानमा वसीयु,

अजर अमर पद सेवानु रसीयु,
अज्ञान-तिमिर खसीयु ... . पोरमा. ॥४॥
अमूल्य तत्व तणी देशना दीधी
सुणतां थाय खरे आत्मनी सिद्धि,
ज्ञान प्रसादी पाय पीधी ....पोरमा ॥५॥
पूजयश्री तमे छो जग उपकारी,
घणु जीवी लेजो घणाने तारी,
आबाजी कहे हर्षधारी ....पोरता. ॥६॥

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराजना जीवन चरित्र अङ्गे

(लेखक- श्री टी. जी. शाह)

जैनो तणु साचु ए तो जवाहर छे रे (राग)

देश देश मा भ्रमण जेणे कर्यु रे
सॅभलाववाने सुत्रो तणो सार (१)
महा कष्ट वेठी सिद्धान्त पालन कर्यु रे,
दु:ख सह्यु जेणे देहे पारावार (२)
अहिंसा सत्य तणो जेणे प्रचार कर्यो रे
दया तणों जे छे अखूट भण्डार (३)
घाटकोपर जीवदया मडली,
वली गोशाला ए एमनो प्रताप (४)
जेनी वाणी केसरी सिह समी रे,
उपदेशे वली जे छे अजोड़ (५)
जेनु जीवन चरित्र आदर्श छे रे
जेनो वाणी साथे कार्यनो सुमेल (६)
पारस मणि ज्यो लोहने कचन करे छे रे
तेम उजाल्या अनेकना चरित्र (७)
जैनाकाशे ए तो शशी तणी ज्योत छे रे
जेनो अमी-भर्यो शीतल प्रभाव (८)

पूज्यश्रीनो वाणी-प्रभाव

(लेखक- अमीलाल जीवन भाई ठाकी)

राग–विकसावे नवजीवन–कुसुम आ विद्यानी वाडी।

पलटावे अम पंथ जीवननो पूज्य तणी वाणी-टेक

शूरवीरता नो नाद जगवती, भव-भवनी भ्रमणाओ हरती।

निर्मल मन करती पूज्य तणी वाणी। –पलटावे.॥

पवित्र जीवन नो पाठ पठवती उर-उरना अधारा हरती।

पतित ने पावन करती, पूज्य तणी वाणी। –पलटावे.॥

साखी

अणमूल अवसर आवीयो जामनगर ने द्वार।

पूज्य पुनीत विराजता ल्यो लाखोणो ल्हाव।

उन्नत दशा जो आणे ब्रह्मचर्य तणा बी वावो।

प्रेम सहित पचावो, श्रीपूज्य तणी वाणी। –पलटावे.॥

ढब चारणी

परब मडाणां परम ज्ञाननां,

पीओ पीओ ज्ञान तणी रस-लहाण।

पुण्य योगे पूज्य पधार्या,

बही रही छे वचनामृत धार।

वाणी जेनी मधुर मीठड़ी,

भर्यो ज्यां न्याय तणो भंडार।

पात्र बनी ने पीओ प्रेम थी,

सफल करो सहुजन जनमार।

कल्प वृक्ष फल्यो काठियावाड़ मा,

पीरसता परब्रह्मतणा पकवान।

उर्मि उभराये अम उरमा,

खूल्या अम अन्तरना द्वार।

सान्त स्वभावे गुरु शोभता,

गभीर गुणीअल छे अणगार।

मुखडु जाणे पूर्ण चन्द्रमा,
जीवन जेहनु झलकतु उजमाल।
शिष्य सुगुणी श्रीमल्ल नाम छे,
विनयवत विरल ने विद्वान्।
वन्दन स्वीकारो वीर-बालना,
वसवुं सद्‌गुरु चरणे वास।

हृदयोद्‌गार

(लेखक- श्रीहरिलाल के पारेख, राजकोट)

पूनित पगले पावन करी सुन्दर धरा सौराष्ट्रनी
जय-घोष सद्धर्मतणो कर्यो दशे दिशा गुजी रही
यशस्वी आ भूमी अहा! ज्यां वीर नर पाक्या घणा
जया पाकता सींह केसरी गीरीवर शीखर कंदरा।
वाय सुसवाट वायरो पवित्र रजकण जेमा भर्या
हीमगीरी थी पूनीत जे गिरनार शेत्रुजय अहा।
रमणी ने कचन तणा मोह स्पर्शी ना शक्या
महा प्रतापी जे महर्षी नेमिनाथ ज्या प्रवर्ज्या।
हाहाकार सुणी त्रस जीवोनो मडपे थी पाछा फर्या
राजेमती महासुन्दरी पूनीत पगले परवर्या
जगावी जोत आतम तणी अज्ञान-तिमिर छायो घणो।
चिर स्मृतिमा जे रहे व्याख्यानना प्रतिध्वनीओ
रजन कर्या कर्या मुग्ध जेणे दील जैन अजैनना
जीनोए बोध्युं तत्त्व जे समजाबयुं ते विशेषता
विशेष थी समजाब्यु जेणे प्रमाण दई नय सप्तना।
भय टले भव अनत केरा जो थाय आतम-सरधना
वसमी छे आगल वाट हा जो थाय न आत्म सरधना
अनंत पुद्‌गल परावर्त्तन लख चौरासी फरसना।

काठियावाड़-विहार-वर्णन

(श्रीवल्लभजी रतनशी वीराणी)

लावणी

मरुधर भूमि सत शिरोमणि जग सोरठ में आय खड़े,
नृपति भूपति सेठ सामतो प्रेम से उसका पाय पड़े।
राजकोट शहर में चौमासा ज्ञान की नौवत गडगड़े,
देश-विदेशी मानव आवै दर्शन का वहा हेला पड़े॥

वद बीज वीती कीर्ति जीती जे ताणे प्रभु पाय धरे,
गोंडल के गादीधर आकर आप तणो सत्कार करे।
धोराजी जूनाणों जाणो, ज्या गिरवर गिरनार खरे।
जैन जैनेतर की नहि गणना सघ सुधारा शीघ्र करे॥
खडीआ वीलखा मेन्द्रगढे थई वेरावल मंगरोल खरे,
माधवपुर मे पहायन जाकर श्रीजी हजूर मुजरो ज करे।
राणा साहब भाविक भारी दीवान दरसन आवी करे,
चटकी लग गई सारे शहर मे चौमासे लाएँ केस* लडे॥
एक विनती मेरी गुरुजी गौवा इधर वहुर खडे,
आप बिना अवतारी योगी कौन उन्हो की व्हार करे।

जामनगर में-पूज्यश्री

(रचयिता-राजकवि- श्रीकेशवलाल श्यामजी जामनगर)

मारवाड़ते दूर अति देश काठियावार।
होत वहा के साधु को यातें विरल विहार ॥१॥
तामें सत तपोनिधि वयोवृद्ध तन स्थूल।
पूज्य जवाहिरलालजी औसर लखि अनुकूल॥२॥
गुर्जर जैन समाज को आग्रह जानि अथोर।
कर निश्चय द्वय वर्ष को विचरे मुनि इस ओर॥३॥
राजाकोट में आरहे प्रथमहि चातुर्मास।
जामनगर आये बहुरि कछु दिन करन निवास॥४॥
थोरे दिन यहँ ठहरकर गयेउ हापा गाम।
चरण व्याधिते पुनि यहा लियो पूज्य विश्राम॥५॥

मनोहर

चातुर्मास दूजा मोरबी मे जाई करिवे का।
निश्चय था इतने में भई और घटना॥
केशव निपट बात व्याधि पूज्य चरन मे।
भया मन सोचा अब कैसे राह कटना।
डाक्टर मेहता को बुलायके सुनाई बात
डाक्टर ने कहा ठहरो! यहा से न हटना॥
हम श्रम ले करेंगे सूर्य किरनोपचार
दैव के अधीन व्याधि मिटना न मिटना॥६॥
पूज्य ने मजूर किया केना प्रानजीवन का।

---

* मोरबी मे निश्चित हुए पूज्यश्री के चातुर्मास को बदलवाकर पोरबदर मे कराने की चर्चा जोरो से छिडी थी और पोरबदर नरेश ने इसके लिए भारी प्रयत्न किया था।

डोली मेह बैठ जाने लगे होस्पिटल मे॥
केशव दुमास मे विनष्ट भया वातरोग।
चलन लगे पदाति बढ़ा रक्त बल मे॥
सेवक को ज्ञान रस मिल्यो यश डाक्टर को।
द्विगुन निवास जामनगर अन्न जल में॥
विमल चरित्र श्री जवाहिरलाल जैसे
जैनाचार्य आजकल होंगे कोउ स्थल मे॥७॥

मनोहर

पूज्यपाद जैनाचार्य जवाहिरलालजी को।
चातुर्मास हेतु जामनगर मे निवास भौ॥
केशव उनीसशत त्रानु के सवत्सर में।
जैन जनता के हिय परम हुलास भौ॥
अगनित मानव के सन्निध उपाश्रय मे।
गुरु मुख व्योम ज्ञान भानु को प्रकाश भौ।
सद्विचार सदाचार आदि को विकास भौ॥८॥
मान्यवर महाराज जवाहिरलालजी की।
प्रवचन शैली अति आकर्षक जानि के॥
केशव सौ पौढ़ गिरा आस्वादन करिबे को।
आन लगे जैनेतर श्रद्धा उर आनि के॥
प्रतिदिन चूटि चूटि नये नये बोध पुष्प।
माला बनवाई अनुपम गुन ठानिके॥
अबलो करत श्रोता मनन उसी को यहा।
सुमरत है वक्ता के सुभाव को बखानिके॥९॥
कोउ पूछे महाराज जवाहिरलाल जी को।
कैसा है प्रभाव श्वेताम्बर के समाज मे॥
केशव तो कहि दीजे बिन ही सकोच बुध।
जैसा है प्रभाव काष्ठ-तुम्बी और जहाज में॥
दुस्तर अथाह भवसिन्धुकों तरत आप।
तारत अनेक जीव सिद्ध निज साज में॥
वीरता है बाज में ज्यो शौर्य मृगराज मे त्यों
मृदुता भरी है इस सत शिरताज में॥१०॥

परिशिष्ट

परिशिष्ट 'क'

(पृष्ठ. न. ५५ का परिशिष्ट

जयतारण शास्त्रार्थ का प्रारम्भ

भगवान् महावीर स्वामी के चूकने के विषय मे प्रथम प्रश्न था। उसका उत्तर तेरहपन्थियों ने दस स्वप्नो के आधार पर भगवान् को मोहनीय कर्म का उदय होना बताकर दिया था। मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने उसी के विषय मे प्रश्न किया.-

प्रथम प्रश्न

भगवान् महावीर स्वामी ने जो दस स्वप्न देखे थे, वे सभी सत्य थे। इसलिए सभी धर्म मे अन्तर्गत है। मोहनीय कर्म का उदय उनका कारण नही है। यह बात श्रीदशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के पाचवें अध्ययन की तीसरी गाथा मे है। उस अध्ययन के अर्थ और टीका से यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है।

श्री फौजमल जी स्वामी का उत्तर

श्री स्थानाग सूत्र के छठे स्थान मे छह प्रकार का प्रतिक्रमण बताया गया है। उसमे छठा स्वप्न का प्रतिक्रमण है। भगवती सूत्र के सोलहवे शतक के छठे उद्देशक मे पाच प्रकार के स्वप्न बताए गए है। उनमे सत्य स्वप्न भी गिना है। धर्म मे अन्तर्गत वस्तु का प्रतिक्रमण नही होता। इससे सिद्ध होता है कि सभी स्वप्न प्रमाद के कारण होते है। चाहे वे सच्चे हो या मिथ्या हों। भगवान् महावीर स्वामी के स्वप्न भी प्रमाद ही थे। इससे मोहनीय कर्म का उदय होना सिद्ध होता है, क्योंकि मोहनीय कर्म के बिना प्रमाद नही आता।

मुनिश्री जवाहरलाल जी महाराज

श्री स्थानाग सूत्र के छठे स्थान की दीपिका, टीका और टब्बे मे नीचे लिखा खुलासा है:-

"आउल माउलाए सुमणवित्तियाए" इस प्रकार आवश्यक सूत्र का मूल पाठ है। इसका उद्धरण स्थानाग की दीपिका आदि में दिया गया है। आवश्यक सूत्र में 'आउल माउलाए' का अर्थ है स्त्री के विषय मे आकुल चित्त किया हो। 'सुमणवित्तियाए' का अर्थ है अनेक जजाल आदि का स्वप्न देखा हो। इससे सिद्ध होता है कि मिथ्या स्वप्नों के लिए प्रतिक्रमण कहा गया है, सत्य स्वप्नों के लिए नहीं।

श्री फौजमल जी स्वामी

'आउल माउलाए' यह पाठ अलग है और स्वप्नो का पाठ अलग है। 'आउलमाउलाए' पाठ जाग्रदवस्था के लिए है। स्वप्न के लिए नही है। जवाहरलाल जी ने जो उत्तर दिया है उस से हमारे प्रश्न का समाधान नही होता।

इसके बाद पहले दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। चारो मध्यस्थो ने हस्ताक्षर किए।

दूसरा दिन

(मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज)

प्रतिवादी का कहना है कि 'आउल माउलाए, पाठ जाग्रत अवस्था का है, स्वप्न का नही''। यह कहना मिथ्या है क्योकि स्थानांग सूत्र की टीका, दीपिका और टबा मे यह पाठ स्वप्न कोटि मे मौजूद है। उसे कोई भी देख सकता है।

दूसरी बात यह है- दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के पाँचवे अध्ययन मे चित्तसमाधि के दस स्थानक कहे गए हैं। उनमें तीसरा स्थान यथातथ्य स्वप्नदर्शन की प्राप्ति है। हमारी और प्रतिवादी दोनों की यह मान्यता है कि जिन कार्यों को भगवान् ने अच्छा कहा है अर्थात् जिन के लिए भगवान् की आज्ञा है उनमें पाप नही है। चित्त समाधि के दसों स्थान भगवान् की आज्ञा में हैं, इस लिए पाप नहीं है। तीसरी चित्तसमाधि की टीका में यथातथ्य स्वप्नों का उदाहरण देते हुए भगवान् के स्वप्नो का उदाहरण दिया है। इसलिए भगवान् के स्वप्न का यथार्थ होना तथा उनका चित्तसमाधि मे गिना जाना बताया है।

तीसरा दिन- श्री फौजमल जी स्वामी

वादी का कहना है कि 'आउल माउलाए' पाठ जाग्रदवस्था का नहीं है और स्वप्नावस्था का है। इसे वे दीपिका आदि का प्रमाण देकर सिद्ध करने को तैयार है। इसके लिए हमारा यही कहना है कि उस पाठ को देखकर निर्णय कर लेना चाहिए। हमारा कहना तो यही है कि 'आउल माउलाए' जाग्रदवस्था के लिए है और 'सुमिणवित्तियाए' यह स्वप्नावस्था के लिए। सूत्र मे दोनों अवस्थाओ के लिए प्रतिक्रमण बताया गया है, क्योकि दोनो में चित्त का विक्षेप समान रूप से होता है। यदि कोई स्वप्न में समुद्र को भुजाओ से तैरता है अथवा शत्रु को जीतता है तो उसे चित्तविक्षेप से होने वाली क्रिया तो अवश्य लगेगी। चाहे जगने पर वे स्वप्न सत्य ही सिद्ध हो जायॅ। भगवान् ने यथार्थ स्वप्न देखे थे, यह बात मैं मानता हूँ। किन्तु स्वप्नकाल मे तो चित्त का विक्षेप ही था। विक्षेप मोहनीय कर्म के उदय से होता है। इससे स्वप्न पाप सिद्ध हो जाते हैं।

चौथा दिन-मुनि श्री जवाहरलाल जी म.

'आउलमाउलाए, सुमिणवित्तियाए' इस पाठ के लिए अब तर्क की आवश्यकता नही है। मध्यस्थ महाशयो को चाहिए कि विद्वानों से पूछ कर अच्छी तरह निर्णय कर लेवे।

यह प्रसन्नता की बात है कि प्रतिवादी ने भगवान् के स्वप्नो को सत्य स्वीकार कर लिया है। किन्तु ऐसा करने में वे अपने पूर्वाचार्य जीतमल जी का विरोध कर बैठे हैं। क्योकि उन्होने 'भ्रम विध्वसन' में लिखा है-''वलि भगवत छद्मस्थपने दश स्वप्ना दीठा ते पण विपरीत छै।''

आवश्यक सूत्र मे जहाँ स्वप्नों का प्रतिक्रमण बताया गया है वह मिथ्या जजाल आदि विपरीत स्वप्नो के लिए है। यथार्थ स्वप्नो के लिए नही। यह बात स्वय भ्रमविध्वसन से सिद्ध होती है। उसमे लिखा है-

इहॉ सवुडो स्वप्नो देखे यथा तथ्य साचो देखे कह्यो। साधु तो आल जजाल आदि देखे तो झूठा पिण आवे छै! जे आवश्यक अध्ययन चोथे कह्यो- सोवण वित्तियाए। कहता स्वप्ना मे जजाल आदि देखे करी तथा आगल कह्यो 'पाणभोयणविपरियासयाए' कहता स्वप्ना मे पाणी नो पीवो, भोजन करवो ते अतिचार नो मिच्छा मि दुक्कड। इहा स्वप्न जजालादिक जूठा विपरीत स्वप्ना साधुने आवता कह्यो छे।

ठाणाग सूत्र में जहाँ प्रतिक्रमण की वात आई है, वहाँ टीका मे आवश्यक सूत्र का उद्धरण दिया है और आवश्यक सूत्र मे आए हुए पाठ की व्याख्या जीतमल जी ने ऊपर लिखे अनुसार की हे। इससे यह स्पष्ट है कि जीतमल जी भी यह मानते है कि सत्य स्वप्न का प्रतिक्रमण नही होता। ऐसी दशा मे फौजमल जी सत्य स्वप्न के लिए भी प्रतिक्रमण बताकर अपने पूर्वाचार्य और सिद्धान्त ग्रन्थ का विरोध कर रहे है।

यह नियम नही है कि प्रतिक्रमण उसी वात का होता है जो मोहकर्म के उदय से हो। वृहत्कल्प सूत्र में प्रथम और चरम तीर्थङ्करों के साधुओ के लिए दोनो समय प्रतिदिन प्रतिक्रमण करना आवश्यक बताया गया है। बाकी बाईस तीर्थंकरों के साधुओ के लिए दोप लगाने पर प्रतिक्रमण का विधान हे। ऐसी दशा मे भगवान् महावीर के शासन मे प्रतिक्रमण के लिए दोष का होना आवश्यक नही है।

हमने कहा था कि तीसरी चित्तसमाधि होने के कारण यथार्थ स्वप्न भगवान् की आज्ञा में हे, इसलिए पाप नही है। प्रतिवादी ने इसका कोई उत्तर नही दिया। भ्रमविध्वसन मे लिखा हे-

"तो इहाँ साचो स्वप्नो देखे इम क्यों कह्यो, एनो न्याय-ये सर्व सवुडा साधु आश्री न थी। विशिष्ट अत्यन्त निर्मल चारित्र नो धणी सवुडो स्वप्नो देखे ते आश्री कह्यो छे।" इति।

भगवती सूत्र १६ शातक ६ उद्देश्य के टब्बे में भी यही वात लिखी है। टव्वाकार ओर जीतमल जी दोनो इस बात को मानते हैं कि यथार्थ स्वप्न अत्यन्त निर्मल चारित्र वाले को ही आते है। फिर यथार्थ स्वप्नो के कारण भगवान् को प्रमाद वाला बताना कितनी वुरी वात है।

आचारांग सूत्र नवमाध्ययन तीसरे उद्देश की ८वी गाथा में कहा है- छद्मस्थ अवस्था में भगवान् ने पाप नहीं किया, नही कराया, करते को भला नही जाना।

इसी उद्देश की पन्द्रहवी गाथा मे कहा है कि भगवान् ने छद्मस्थापने में एक वार भी प्रमाद कपाय आदि पाप नहीं किया।

इन सब प्रमाणो के होते हुए भगवान् को पाप लगने की बात कहना शास्त्रविरुद्ध तथा स्वसिद्धान्त विरुद्ध है।

"स्वप्न में शत्रु जीतना, समुद्र पार करना आदि चित्त का विक्षेप है। इसलिए पाप है।" यह कर कर भगवान् को पाप बताना भी ठीक नही है। हम यहाँ शास्त्रों का अर्थ और उससे सिद्ध होने वाली बात का निर्णय करने के लिए बैठे है। भगवान् के स्वप्न पाप नही है, इसके लिए अनेक शास्त्रीय प्रमाण दिए जा चुके हैं। उनका विरोध किसी शास्त्र के प्रमाण द्वारा ही होना चाहिए। लौकिक स्वप्नो के साथ भगवान् के स्वप्न की तुलना करना उचित नही है। स्वप्नो का कारण चित्तविक्षेप ही नही है। सूत्र में स्वप्नों के बहुत से कारण बताए गए हैं। सब स्वप्नो को बराबर करना ठीक नही है। लोकोत्तर बातों के लिए हमे आगम से निर्णय करना चाहिए। अपनी अटकल लगाने से मिथ्यात्व का भागी होना पड़ता है।

पांचवा दिन- श्री फौजमल जी

१. वादी ने अपने कथन में 'आउल माउलाए' पाठ का अर्थ लिखा है। यह हमारा प्रश्न नही है। हमारा प्रश्न है कि यह पाठ जाग्रदवस्था का है या स्वप्नावस्था का? इसी प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

२. हमारा दूसरा प्रश्न है-साधु या गृहस्थ को यथातथ्य स्वप्न आते है या नही ? यदि आते है तो वे चित्तसमाधि मे गिने जाएँगे या नही ? यदि चित्तसमाधि मे है तो उन स्वप्नो की चित्तसमाधि में और इन स्वप्नो की चित्तसमाधि मे क्यों फरक है ?

३. आचाराग सूत्र १ श्रुतस्कन्ध, ९ अध्ययन, २ उद्देश्य की दूसरी गाथा मे १० स्वप्नो को निद्राप्रमाद कहा है। निद्राप्रमाद मोहनीय कर्म के उदय से होता है, इसलिए १० स्वप्न पाप हैं। इस प्रमाण के होते हुए वादी का यह कहना है कि भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था मे एक बार भी प्रमाद का सेवन नही किया, शास्त्रसगत नही है।

४. आचाराग सूत्र की टीका, दीपिका व टब्बा मे यह लिखा है कि भगवान् के १२ वर्ष व १३ पक्ष के छद्मस्थपने में एकबार प्रमाद का सेवन किया।

५. ठाणाग सूत्र के १०वे ठाणे की दीपिका मे भी निद्रा प्रमाद होना लिखा है।

६. प्रतिवादी का यह कहना भी शास्त्रविरुद्ध है कि प्रतिक्रमण मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले किसी कारण के बिना भी शास्त्रविहित है। क्योकि प्रतिक्रमण अतिचारो का होता है और अतिचार मोहनीय कर्म का उदय रूप है।

७. प्रतिवादी का कहना है कि भ्रमविध्वसन में शास्त्रविरुद्ध बातें है और भगवान् महावीर स्वामी पर विपरीत स्वप्न देखने का कलंक लगाया गया है। हमारे आचार्य जीतमल जी महाराज ने कोई बात शास्त्र विरुद्ध नहीं लिखी। भगवान् महावीर के वचनों के विपरीत प्ररूपणा भी नहीं की। इसके विपरीत प्रतिवादी महोदय ने ब्यावर मे आठ निह्नवो की प्ररूपणा की है, जबकि ठाणाग सूत्र मे सात ही निह्नव बताए गए है।

हमारे स्वामी जी पर मिथ्या आरोप तथा शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करने के लिए प्रतिवादी को प्रायश्चित्त लेना चाहिए। हमने शास्त्र के प्रमाण से अपनी बात को सिद्ध कर दिया।

छटा दिन-मुनि श्री जवाहरलाल जी

१. प्रतिवादी से हमारा प्रश्न था कि वे यथार्थ स्वप्न को मोहनीय कर्म के उदय से होना शास्त्र द्वारा सिद्ध करे। उन्होंने निद्राप्रमाद को लेकर मोहनीय कर्म का होना बताया है। किन्तु निद्राप्रमाद और स्वप्नदर्शन भिन्न-भिन्न है। स्वप्नदर्शन शास्त्रों मे क्षायोपशमिक भाव बताया गया है। ठाणांग सूत्र के आठवे ठाणे का पाठ हैः-

सुमिणदंसणे

टब्बाकार ने उसकी व्याख्या नीचे लिखे अनुसार की हैः-

''स्वप्न दर्शन तो अचक्षु दर्शन मा ही ज आवे, पिण सूतानी अवस्था माटे जूदी विवक्षा इति।''

उपरोक्त उद्धरण में स्वप्न दर्शन को अचक्षु दर्शन का भेद कहा है। टीकाकार भी इसी प्रकार कहते है.-

स्वप्नदर्शनस्याचक्षुर्दर्शनान्तर्भावेऽपि सुप्तावस्थोपाधितो भेदो विवक्षित इति।

इन प्रमाणो से स्वप्न दर्शन अचक्षुदर्शन का भेद है, यह सिद्ध हो जाता है। अनुयोगद्वार सूत्र में अचक्षु दर्शन को क्षायोपशमिक भाव कहा है-

"खउवसमिया अचक्खुदसणे।"

तेरहपथ के प्रणेता भीाम जी ने अपने वनाए हुए तेरह द्वारों में भी यही वात लिखी है-

"दर्शनावरणीय कर्म रो क्षयोपशम निपन्न होवे तो ५ इन्द्रिय, ३ दर्शन एव ८।" नन्दी सूत्र में स्वप्नप्रज्ञान को इन्द्रिय मतिज्ञान का भेद वताया है-

"एव स्वप्नमधिकृत्य नोइन्द्रियस्यार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः।"

इन सब प्रमाणो से सिद्ध है कि स्वप्न का दर्शन और स्वप्न का ज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। क्योंकि स्वप्नदर्शन को अचक्षुदर्शन का भेद वताया गया है और अचक्षुदर्शन क्षायोपशमिक भावों में वताया गया है। इससे स्वप्नदर्शन का भी क्षायोपशमिक भावो में होना सिद्ध हो जाता है। निद्राप्रमाद औदयिक भाव है, स्वप्नदर्शन नही है।

'आउल माउलाए' पाठ स्वप्न कोटि मे है। इसे कोई भी देख सकता है।

प्रतिवादी का छद्मस्थ या साधु को यथार्थ स्वप्न आते है या नहीं, इत्यादि पूछना शास्त्रार्थ के नियम विरुद्ध है। क्योंकि निश्चयानुसार पहले हमारे प्रश्न का उत्तर हो जाना चाहिए, फिर प्रतिवादी नया प्रश्न खड़ा कर सकते है। बीच मे नई-नई बाते खड़ी करना ठीक नही है। भगवान् ने छद्मस्थपने मे प्रमादकषायादि पाप का सेवन नहीं किया, उसके लिए आचाराग सूत्र का निम्नलिखित पाठ टव्वार्थ और टीका के साथ दिया जाता है-

मूल पाठ-छउमत्थो वि परक्कममाणोण पणमायं सय विकुव्वित्था।

टब्बा- श्री महावीर छद्मस्थ छतो पिण विविध अनेक प्रकार सयम अनुष्ठान ने विषे प्राक्रम करतो एक बार प्रमाद कषायादिक न करे, स्वामी इण परे वरत्या इति।

टीका-न प्रमादकषायादिक सकृदपि कृतवानिति।

इस पाठ को देख लेने के बाद सन्देह का अवसर नही रहता। यदि फौजमल जी इसे भी मानने को तैयार न हो तो हमारे पास कोई उपाय नही है। हमारा कार्य तो सत्य वस्तु को प्रकट कर देना है।

प्रतिवादी फौजमलजी का यह कहना भी ठीक नही है कि भगवान् के १० स्वप्न निद्रा प्रमाद मे है और निद्रा प्रमाद मोहनीय कर्म का उदय है। इसके लिए उन्होने आचाराग तथा ठाणाग की दीपिका आदि के जो प्रमाण दिए है, उनमे कहीं पर भी उपरोक्त बात नहीं है।

शास्त्रों में निद्रा दो प्रकार की बताई है- द्रव्यनिद्रा और भावनिद्रा। नीद आना या स्वप्न आदि देखना द्रव्यनिद्रा है और मिथ्यात्व, अविरति कषाय आदि भावनिद्रा हैं। भावनिद्रा मोहनीय कर्म के उदय से असयती जीव को होती है। वही पाप है। द्रव्यनिद्रा दर्शनावरणीय के उदय से होती है, उसमें पाप नहीं है।

भगवान् ने एक बार द्रव्यनिद्रा का सेचन किया था, भावनिद्रा का नही। इन सब बातों के लिए हम शास्त्र और प्रतिवादी के सिद्धान्तग्रन्थ 'भ्रमविध्वसन' का प्रमाण देने को तैयार हैं-

भगवती सूत्र के १६ शतक ६ उद्देश मे पाठ है-

सुत्ते ण भन्ते सुविण पासन्ति, जागरे सुविण पासति, सुत्तजागरे सुविण पासति ? गोयमा! नो सुत्ते सुमिणं पासइ, नो जागरे सुविण पासइ, सुत्तजागरे सुविणं पासइ।''

इसके अर्थ में बताया गया है कि द्रव्यनिद्रा से सोता-जागता स्वप्न देखता है। टीका मे भी यही बात है-

नाति सुप्तो नाति जागर इत्यर्थः। इह सुप्तो जागरश्च द्रव्यभावाभ्या स्यात्तत्र द्रव्यतो निद्रापेक्षया भावतश्चाविरत्यपेक्षया। तत्र स्वप्नव्यतिकरो द्रव्यनिद्रापेक्ष उक्त·।

इससे स्वप्न का आना द्रव्यनिद्रा में सिद्ध होता है। 'भ्रमविध्वसन' मे भी यही लिखा है-

अथ इहां कह्यो सूतो स्वप्नो न देखै, जागतो स्वप्नो न देखै, सूतो जागतो स्वप्नो देखै, तो कह्यो ते सूता नाम निद्रा मे, जागरो नाम जागता में छे। ए तो सूतो निद्रा में कह्यो ते द्रव्यनिद्रा नी अपेक्षाय सूतो कह्यो, पिण भावनिद्रानी अपेक्षा य सूतो न कह्यो। तेहनी टीका मे पिण इम कह्यो, इहा पिण द्रव्यनिद्रा भावनिद्रा कही छे तो भावनिद्रा थी पाप लागे, द्रव्यनिद्रा थी पाप नही लागे। अनेक ठामे सुवणो ते निद्रा नो नाम कह्यो छे ते माटे जेण थी सूतां पाप न लागे सुवण री आज्ञा छे ते माटे इति। (जुना भ्रमविध्वसन पाना १५३)

उपरोक्त पाठ से स्वप्न का द्रव्यनिद्रा होना तथा उसमे पाप नही लगाना स्पष्ट है। फौजमल जी इसमें मोहनीय कर्म का उदय तथा पाप बता कर शास्त्र तथा अपने गुरु दोनो के विरुद्ध बोल रहे है।

दीपिका आदि मे जहाँ भगवान् के स्वप्नों के विषय में 'निद्राप्रमाद' शब्द आया है वह द्रव्यनिद्रा के लिए ही है।

दीपिका तथा टीका में आया है-

''निद्रामप्यसौ अपरप्रमाद रहितो न प्रकामतः सेवते।'' अर्थात् दूसरे प्रमादो से रहित भगवान् निद्रा को भी खूब नहीं लेते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि निद्रा के सिवाय भगवान ने और किसी प्रमाद का सेवन नही किया। निद्रा भी यहा द्रव्यनिद्रा है। आचारांग सूत्र के तीसरे अध्ययन, प्रथम उद्देश के पहले सूत्र मे कहा है-

मू. ''सुत्ता अमुणी मुणिणो सयय जागरति''

दीपिका-इह सुप्ता द्वेधा द्रव्यतो भावतश्च। ततो निद्राप्रमादापन्ना द्रव्यसुप्ताः भावसुप्तास्तु मिथ्यात्वाज्ञानमयमहानिद्राव्यामोहिता·, ततो येऽमुनयो मिथ्यादृष्टय· सतत भावसुप्ता सद्विज्ञानानुष्ठानरहितत्वात् निद्रयानुभजनीया·।मुनयस्तु सद्बोधोपेता मोक्षमार्गे चलन्तस्ते सततमनवरत जाग्रति हिताहितप्राप्तिपरिहार कुर्वते अतो द्रव्यनिद्रोपेता अपि क्वचिद्द्वितीय पौरुष्यादौ सतत जागरूका न एव। तदेव दर्शनावरणीयकर्मविपाकोदयेन क्वचित् स्वपन्नपि यः सविग्नो यतनावाश्च स दर्शनमोहनीयमहानिद्रापगमात् जाग्रदवस्थ एवेति।

भावार्थ-सुप्त दो प्रकार के होते हैं- द्रव्यसुप्त और भावसुप्त। निद्राप्रमाद वाला द्रव्यसुप्त होता है। जो व्यक्ति मिथ्यात्व और अज्ञान रूप महानिद्रा में सोया हुआ है वह भावसुप्त है। असयीत मिथ्यादृष्टि निरन्तर भावसुप्त है। सम्यग् ज्ञान और तदनुकूल अनुष्ठान न होने से वे निद्रा में पडे हुए है। सम्यग् ज्ञान

वाले मुनि जो मोक्षमार्ग मे चलते है वे तो सदा जागृत है। वे हित की प्राप्ति तथा अहित का परिहार करते हैं। इसलिए दूसरी पौरुषी आदि मे द्रव्यनिद्रा लेते हुए भी वे सदा जागते है। इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विपाक का उदय होने से कहीं पर सोता हुआ भी जो सवेग तथा यतना वाला है वह दर्शनमोहनीय रूप महानिद्रा हट जाने से जागृत ही है।

उपरोक्त टीका मे भावनिद्रा वाले को अमुनि तथा मिथ्यादृष्टि कहा है। भगवान् तो सर्वश्रेष्ठ मुनि तथा सम्यग्दृष्टि थे। उनके लिए उपरोक्त विशेषण नही हो सकते। इसलिए उनके भावनिद्रा का होना भी सिद्ध नही होता।

भगवतीसूत्र ६ शतक उद्देश मे भावनिद्रा वाले को अव्रती कहा है। इसलिए भगवान् को भावनिद्रा न मानकर दर्शनावरणीय कर्म के उदय से होने वाली द्रव्यनिद्रा ही माननी चाहिए। द्रव्यनिद्रा में पाप नही है, यह बात भ्रवविध्वसनकार भी मानते है। इसके लिए पाठ ऊपर लिखा जा चुका है। एक और जगह 'भ्रमविध्वसन' मे लिखा है-

"एक मोहनीय रा उदय बिना और कर्मा रा उदय थी पाप न लागे।"

द्रव्यनिद्रा दर्शनावरणीय का उदय है, मोहनीय का नहीं। यह सिद्ध हो चुका है। इसलिए भगवान् को पाप का लगना बताना शास्त्रविरुद्ध तथा भ्रमविध्वसन विरुद्ध है।

निद्राप्रमाद को मोहनीय कर्म का उदय मूल या दीपिका आदि किसी में नहीं बताया गया है। इसके लिए फौजमल जी का कथन कपोलकल्पित है। द्रव्यनिद्रा के लिए निद्राप्रमाद शब्द हम आचाराग की टीका तथा दीपिका मे बता चुके है।

फौजमल जी का यह कथन भी ठीक नहीं है कि निद्रा और निद्राप्रमाद दोनों भिन्न भिन्न हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के ११वे अध्ययन की तीसरी गाथा में टीकाकार लिखते हैं-

"प्रमादेन मदविषयकषायनिद्राविकथारूपेण।"

इसमें निद्रा को ही निद्राप्रमाद बताया गया है।

आवश्यक सूत्र में अज्ञान का प्रतिक्रमण बताया गया है। इसका पाठ है- 'अन्नाणं परियाणामि'

अनुयोगद्वार सूत्र में तीन अज्ञानों को क्षायोपशमिक भाव कहा है। ऐसी दशा में मोहनीय के उदय का ही प्रतिक्रमण बताना शास्त्रविरुद्ध है। श्री बृहत्कल्पसूत्र के चौथे उद्देश का प्रमाण भी पहले दिया जा चुका है।

फौजमल जी का यह कहना ठीक नहीं है कि जीतमलजी ने कहीं पर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा नहीं की और न भगवान् की अवज्ञा की है। भगवान ने सत्य स्वप्न देखे थे, ऐसा शास्त्रों में जगह जगह आया है। 'भ्रमविध्वसन' में उन्हे विपरीत लिखा है। यह शास्त्र और भगवान् दोनों का अनादर है।

फौजमल जी ने हमारे लिए कहा है- शास्त्र में सात निह्नव हैं और जवाहरलालजी ने आठ निह्नव बताकर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा की है। उनका यह कथन ठीक नहीं है।

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की टीका का लेख है-

"अथ भूरिविसंवादी प्रसगात् प्रोच्यतेऽष्टमः श्री वीरमुक्तेर्जातोऽव्दशतै षड्भिर्नवोत्तरै.।"

अर्थात् वीरनिर्वाण के ६०९ वर्ष बाद भूरिविसवादी आठवा निह्नव हुआ।

आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति में भी यही बताया है-

छव्वास सयाइ नवोत्तर तइआ सिद्धिगयस्स वीरस्स।

तो वोडी अणादिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥

इन सब प्रमाणों से आठवाँ निह्नव सिद्ध होता है। यद्यपि यह विषयान्तर है किन्तु फौजमल जी को उत्तर देने के लिए सक्षेप से बता दिया है। इन सब वचनों के होते हुए यह कहना कि आठवाँ निह्नव नही है, शास्त्रो की अनभिज्ञता को सूचित करता है।

फौजमल जी लिखते है कि हमने स्वप्न का आना मोहनीय कर्म के उदय से ही होता है, इस बात को सिद्ध कर दिया है। अब इसमे प्रश्नोत्तर की गुञ्जाइश नही है। उनका कहना ऐसा ही है जैसे किसी कर्जदार का मिट्टी की ठीकरियाँ देकर यह कहना कि हमने कर्ज चुका दिया है, अब किसी को कुछ न मागना चाहिए।

निर्णायक सूत्र

पौष शुक्ला द्वादशी के दिन मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने अपने प्रमाण देने के बाद कहा था- "यदि फौजमलजी का यही कहना है कि भगवान् महावीर को दस स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय से आए तो वे शास्त्र या टीका आदि प्रमाण दिखलाएँ।"

इस पर फौजमल जी ने भगवती सूत्र १६ शतक ६ उद्देश पृष्ठ १३२२ (छपी हुई प्रति) मे टीका का नीचे लिखा पाठ बताया-

"एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्य स्वयमूह्यमिति।"

इस पाठ का मनमाना अर्थ करके फौजमल जी ने कहा कि स्वप्नों का मोहनीय कर्म से आना सिद्ध हो गया है।

मुनिश्री जवाहरलाल जी ने उस पाठ को अपने हाथ में लिया और फौजमल जी की गलती बताकर ठीक अर्थ कर दिया।

इस पर मध्यस्थों ने मुनि श्री जवाहरलाल जी तथा फौजमल जी दोनो से अपना अपना अर्थ लिख देने के लिए कहा। मुनिश्री जवाहरलाल जी ने तो उसी समय ठीक ठीक लिख दिया किन्तु फौजमल जी ने सभा में जैसा कहा था, वैसा न लिखकर अंडबड करना शुरू किया। मध्यस्थों ने उन्हे बहुत कहा किन्तु फिर भी अपने कहे अनुसार अर्थ नही लिखा। इस पर मध्यस्थो ने संवेगी श्री केसरविजय जी के कथन को प्रमाण मानकर निर्णय कराने के विषय मे पूछा। फौजमल जी ने यह बात भी नहीं मानी इस पर मुनिश्री जवाहरलालजी ने कहा- अब सभा के नियमानुसार मध्यस्थों को अन्तिम निर्णय दे देना चाहिए।

पौष शुक्ला चतुर्दशी को मध्यस्थो ने कहा-ऊपर लिखे पाठ का अर्थ बाईस सम्प्रदाय की तरफ से पण्डित बिहारीलाल जी तथा तेहरपथ की तरफ से पण्डित बालकृष्ण जी लिखकर दे देवे। हम उसका निर्णय अपनी इच्छानुसार विद्वानो से करा लेवेगे। वह निर्णय दोनो पक्ष वालो को मान्य होगा ?

दोनो पक्ष वालों ने इस बात को मान लिया।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से नीचे लिखे अनुसार लिखा गया- "हमारा कथन यह है कि स्वप्नदर्शन को श्रीमत् ठाणाग जी के आठवे ठाणे मे अचक्षुदर्शन का भेद कहा है। यानि अचक्षुदर्शन के गर्भित ही है और अचक्षुदर्शन को श्रीमत् सूत्र अनुयोगद्वार जी मे क्षयोपशम भाव मे कहा है। तथा प्रतिवादी फौजमल जी के मत के आदि पुरुष भीषमजी ने जो तेरह द्वार बनाए हैं, उनके अष्टम द्वार में भी अचक्षुदर्शन को क्षमोपशम भाव मे कहा है। स्वप्न दर्शन अचक्षुदर्शन के अन्तर्गत है, इसलिए क्षयोपशम भाव मे है। मोहनीय कर्म के उदय भाव में नही है। इस हेतु से यह सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर स्वामी द्वारा देखे गए दस स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय भाव मे नहीं है।

श्री भगवती सूत्र की टीका का खुलासा निम्ननिखित है-

"एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतै· सह साधर्म्य स्वमूह्यमिति।"

अर्थ-इन पिशाचादि अर्थो का स्वप्नफल के विषय रूप मोहनीय कर्म आदि के साथ सादृश्य स्वय समझ लेना चाहिए।"

हम अपनी तरफ से समेगी श्री केसरविजय जी को निर्णायक चुनते है। यदि टीका का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार न हो अथवा इससे स्वप्नो का कारण मोहनीय का उदय सिद्ध होता हो तो केसरविजय जी का निर्णय हमे मजूर है।

फौजमल जी की तरफ से नीचे लिखे अनुसार लिखा गया-

हमारा यह कथन है कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश छठा छापा की पडत पत्र १३२२ मा की टीका-

"एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभि· स्वप्नफलविषयभूतै· सह साधर्म्य स्वयमूह्यम्।"

इस टीका मे भगवान् महावीर स्वामी ने देखे वह यथातथ्य स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय सिद्ध होते हैं।

मध्यस्थो ने पूछा- क्या आपको समेगी केसरविजय जी का निर्णय मान्य होगा?

तेरहपथी साधु फौजमलजी तथा जयचन्द जी ने विचार करके बाद मे उत्तर देने के लिए कहा। दूसरे दिन तेरह पथियों ने उन्हे निर्णायक तो मान लिया किन्तु केसरविजय जी विहार कर गए।

मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज ने मध्यस्थों से अन्तिम निर्णय के लिए फिर कहा। मध्यस्थों ने दोनो तरफ के पण्डितो की लिखित राय ली।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से पण्डित बिहारीलालजी ने नीचे लिखे अनुसार राय दी।

"सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश छठा छापा की पड़त का पत्र १३२२ की टीका-

"एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतै· सह साधर्म्य स्वयमूह्यमिति।"

एषा पूर्वोक्ताना पिसाचाद्यर्थाना स्वप्नफलविषयभूतै मोहनीयादिभिः सह स्वय विद्वद्भिरिति शेष· साधर्म्यमूह्य तर्कणीयमित्यन्वय·। इन पिशाचादिक स्वप्नों के अर्थात् पीछे जो कह चुके है, इनके

जो स्वप्नों के फल विषय भूत मोहनीयादिक है अर्थात् दश स्वप्नो के दश फल ज्यो पीछे कह चुके है, इनके साथ स्वय विद्वान् पुरुषों ने साधर्म्य जैसे होय वैसे तर्कणा करना योग्य है। सो अव दश स्वप्न और दश स्वप्नों के फल दोनों नीचे दर्ज करते हैं।

स्वप्न	फल
१-ताल पिशाच	मोहनीय कर्म घात करना।
२-शुक्ल पक्षी कोकिल	शुक्ल ध्यान का ध्याना।
३-विचित्र पंख का कोकिल	द्वादश अंगों की प्ररूपणा।
४-रत्नमाला का जोडा	साधु श्रावक के धर्म को स्थापन करना।
५-श्वेत गायों का वर्ग	चतुर्विध सघ को स्थापन करना।
६-पुष्पो से भरा पद्म सरोवर	चतुर्विध देवता की प्ररूपणा।
७-समुद्र तरण	ससार समुद्र को तिरना।
८- तेजस्वी सूर्य	केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न होना।
९-मानुषोत्तर पर्वत को आतों वींटा	तीनों भुवन में कीर्ति फैलना।
१०-मेरु पर्वत की चूलिका पर सिहासन पर बैठै	बारह प्रकार की पर्षदा में सिहासन पर बैठ के धर्मोपदेश सुनाना।

इन सभों का भावार्थ यह है कि इस टीका से भी भगवान् ने दस स्वप्न देखे, उनसे मोहनीय कर्म को जीतना आदि दस फल प्राप्त हुए। परन्तु इस टीका से भगवान् ने दस स्वप्न देखे वह स्वप्नदर्शन मोहनीय के उदय में नहीं है। जेकर होवे तो जैसा हमने टीका का अन्वय अर्थ लिखा है वैसा ही इस टीका से दश स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय है, ऐसा टीका व अन्वय अर्थ लिख के दिखावो, तिस से सत्य निर्धार होवे और टीका से मोहनीय कर्म के उदय में स्वप्नदर्शन सिद्ध होवेगा तो माना जायगा। अन्य बातो से प्रयोजन नहीं है।

तेरह पंथियो की तरफ से पण्डित बालकृष्ण जी की राय-

सभा के मध्यस्थ महाशयो से हमारा कथन है कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश ६ पाना १३२२ पक्ति (एषां च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्य स्वयमूह्यमिति) एषा दश स्वप्नाना कथ भूताना पिशाचाद्यर्थाना स्वप्नफलविषयभूतै. मोहनीयादिभिः साधर्म्यमस्ति। ते पिशाचराजिते मोह पराजित करिष्याभि इत्यादि सम्बन्धः।

पिशाच गत है सो उदय है, मोहनीय कर्म को जीतना है सो क्षायिक भाव है। अठे मोटा पण में दोनों ने समान धर्म आश्रयी लिया है। एषा कहिये यह दश स्वप्न पिशाच आदि अर्थ को प्राप्त होने वाले। इन्हो का स्वप्न फल का विषय भूत जे मोहनीय आदि कर्म तिन करके साधर्म्य नाम समान उत्पन्न धर्म है। स्वयमेव साधन को प्राप्ति हो करके प्रतिबुद्ध हुआ नाम जागृत हुआ उस वक्त में छद्मस्थपना यानि मोहनीयादि कर्म साबित रहा। क्षय पीछे हुआ और निद्रा प्रमाद मे स्वप्न हुआ उस वक्त छद्मस्थ

गुणस्थान ६ कर्म ८ सहित थे। उस वक्त क्षय नहीं हुआ। इस वजे से मोहनी सावित है। इसका प्रमाण पहिला ठाणाग आचराग की टीका दीपिका टवा आदि प्रमाण पहले दे चुके हे। सभाजन के सामने मोहनीय कर्म का उदय सावित है।

इन दोनो लेखो का निर्णय करने के लिए पण्डित देवीशङ्कर जी को मध्यस्थ चुना गया, उन्होने नीचे लिखे अनुसार फेसला दिया-

श्रीमान् सर्व मध्यस्थ महाशयो से श्रीमाली ज्ञाति पडित देवीशङ्कर का यह निवेदन है कि आपने जेतारण ग्राम में तेरापथी साधु फोजमल जी आदि तथा वाईस टोलो के साधु जवाहरलाल जी आदि का यहाँ समागम होने से विराजने से दोनों साधु जी के परस्पर स्वप्न विपय मे चर्चा ठहरी। उसमें साधु जी जवाहरलाल जी का प्रश्न यह हे कि भगवान् महावीर स्वामी को दस स्वप्न आए सो चित्तसमाधि में हैं। और धर्मध्यान में है। और फोजमल जी का उत्तर यह है कि मोहनीय कर्म का उदय में है। तो यहां मध्यस्थो की अपेक्षा हुई जद दोनो की रजावदी से ४ मध्यस्थ मुकर्रर किए गए। वह मध्यस्थों के नाम- जैनधर्मी सेठ साकलचन्द जो मन्दिरमार्गी, सेठ मुल्तानमल जी मन्दिर मार्गी, विष्णुधर्मी कथाव्यास जी सरूपचन्द जी, पचोली उदयराजजी, और वाईस टोलों की तरफ से पडित विहारीलाल जी और तेरह पथियो की तरफ से पडित वालकृष्ण जी। और मध्यस्थो की तरफ से दोनो साधु जी की रजाबन्दी से मुझ को मुकर्रर किया। जिस पर दोनों साधु जी की तरफ से सूत्र समवायाग जी, ठाणांग जी की टीका, दीपिका टवा का प्रमाण परस्पर दिखलाया। वाद में सूत्र छापा की भगवती जी की सस्कृत टीका की पक्ति। एपा च पक्ति-

''एपा च पिसाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभि स्वप्नफलविषय
भूतैः सह सावर्म्यं स्वयं समूह्यमिति।''

छापा की भगवती सूत्र के पत्र १३२२ के शतक १६ उद्देश ६ में लिखी हुई पक्ति पर टूट होने की ठहरी। पौष सुदी १४ के रोज, बाद मे माघकृष्ण ३ के रोज मध्यस्थो ने मुझ को कहा कि आपने इतने दिन बैठ के ग्रन्थों का दोनों तरफ से प्रमाण सुना तो इससे आप की राय क्या है सो लिखो। जब मैने ग्रन्थो को सुनने से या देखने से या तुच्छ मेरी बुद्धि के अनुसार राय लिखता हूँ तो यथाः-

महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था में दश स्वप्न देखे थे। तो छद्म नाम कपट तत्र कोषः-

कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे।
कुसृतिर्निकृर्ति शाठ्य प्रमादोऽनवधानता॥

इत्यमरः।

तर्हि शठत्वात् चित्तसमाधिर्न ज्ञायते। छद्मस्थपणे से चित्तसमाधि रो ज्ञान नहीं होवै है किन्तु सदा ही काल मोहादिक बने रहते हैं। और वीर प्रभु को दश स्वप्न आये थे उसी समय छठा गुणठाणा था तो छठा गुणस्थान का नाम प्रमादी है प्रमाद नाम भी कपट का हीज है। तो धर्मध्यान के साथ बिल्कुल सम्बन्ध है ई नही। हमेशे पाप के साथ सम्बन्ध सिद्ध है तो इनसे भी मोहादिक सिद्ध हुए। और भगवती सूत्र का टीका का अर्थ यह है कि-एषं च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभि- स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वयमूह्यमिति।''

जो स्वप्नों के फल विषय भूत मोहनीयादिक है अर्थात् दश स्वप्नो के दश फल ज्यों पीछे कह चुके है, इनके साथ स्वयं विद्वान् पुरुषों ने साधर्म्य जैसे होय वैसे तर्कणा करना योग्य है। सो अब दश स्वप्न और दश स्वप्नों के फल दोनों नीचे दर्ज करते हैं।

स्वप्न	फल
१-ताल पिशाच	मोहनीय कर्म घात करना।
२-शुक्ल पक्षी कोकिल	शुक्ल ध्यान का ध्याना।
३-विचित्र पख का कोकिल	द्वादश अंगो की प्ररूपणा।
४-रत्नमाला का जोड़ा	साधु श्रावक के धर्म को स्थापन करना।
५-श्वेत गायों का वर्ग	चतुर्विध सघ को स्थापन करना।
६-पुष्पों से भरा पद्म सरोवर	चतुर्विध देवता की प्ररूपणा।
७-समुद्र तरण	ससार समुद्र को तिरना।
८- तेजस्वी सूर्य	केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न होना।
९-मानुषोत्तर पर्वत को आतो वीटा	तीनों भुवन में कीर्ति फैलना।
१०-मेरु पर्वत की चूलिका पर सिंहासन पर बैठे	बारह प्रकार की पर्षदा में सिंहासन पर बैठ के धर्मोपदेश सुनाना।

इन सभों का भावार्थ यह है कि इस टीका से भी भगवान् ने दस स्वप्न देखे, उनसे मोहनीय कर्म को जीतना आदि दस फल प्राप्त हुए। परन्तु इस टीका से भगवान् ने दस स्वप्न देखे वह स्वप्नदर्शन मोहनीय के उदय में नहीं है। जेकर होवे तो जैसा हमने टीका का अन्वय अर्थ लिखा है वैसा ही इस टीका से दश स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय है, ऐसा टीका व अन्वय अर्थ लिख के दिखावो, तिस से सत्य निर्धार होवे और टीका से मोहनीय कर्म के उदय में स्वप्नदर्शन सिद्ध होवेगा तो माना जायगा। अन्य बातो से प्रयोजन नहीं है।

तेरह पथियो ंकी तरफ से पण्डित बालकृष्ण जी की राय-

सभा के मध्यस्थ महाशयों से हमारा कथन है कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ मां उद्देश ६ पाना १३२२ पंक्ति (एषा च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभि. स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्य स्वयमूह्यमिति) एषा दश स्वप्नाना कथ भूताना पिशाचाद्यर्थाना स्वप्नफलविषयभूतैः मोहनीयादिभिः साधर्म्यमस्ति। ते पिशाचराजिते मोह पराजित करिष्याभि इत्यादि सम्बन्धः।

पिशाच गत है सो उदय है, मोहनीय कर्म को जीतना है सो क्षायिक भाव है। अठे मोटा पण में दोनों ने समान धर्म आश्रयी लिया है। एषा कहिये यह दश स्वप्न पिशाच आदि अर्थ को प्राप्त होने वाले। इन्हों का स्वप्न फल का विषय भूत जे मोहनीय आदि कर्म तिन करके साधर्म्य नाम समान उत्पन्न धर्म है। स्वयमेव साधन को प्राप्ति हो करके प्रतिबुद्ध हुआ नाम जागृत हुआ उस वक्त में छद्मस्थपना यानि मोहनीयादि कर्म साबित रहा। क्षय पीछे हुआ और निद्रा प्रमाद मे स्वप्न हुआ उस वक्त छद्मस्थ

गुणस्थान ६ कर्म ८ सहित थे। उस वक्त क्षय नहीं हुआ। इस वजे से मोहनी सावित है। इसका प्रमाण पहिला ठाणाग आचराग की टीका दीपिका टवा आदि प्रमाण पहले दे चुके है। सभाजन के सामने मोहनीय कर्म का उदय सावित है।

इन दोनों लेखो का निर्णय करने के लिए पण्डित देवीशङ्कर जी को मध्यस्थ चुना गया, उन्होने नीचे लिखे अनुसार फेसला दिया-

श्रीमान् सर्व मध्यस्थ महाशयो से श्रीमाली ज्ञाति पडित देवीशङ्कर का यह निवेदन है कि आपने जेतारण ग्राम मे तेरापथी साधु फोजमल जी आदि तथा वाईस टोलो के साधु जवाहरलाल जी आदि का यहाँ समागम होने से विराजने से दोनो साधु जी के परस्पर स्वप्न विषय मे चर्चा ठहरी। उसमे साधु जी जवाहरलाल जी का प्रश्न यह है कि भगवान् महावीर स्वामी को दस स्वप्न आए सो चित्तसमाधि मे है। और धर्मध्यान मे है। और फोजमल जी का उत्तर यह है कि मोहनीय कर्म का उदय में हैं। तो यहा मध्यस्थो की अपेक्षा हुई जद दोनो की रजावदी से ४ मध्यस्थ मुकर्रर किए गए। वह मध्यस्थो के नाम- जैनधर्मी सेठ साकलचन्द जी मन्दिरमार्गी, सेठ मुल्तानमल जी मन्दिर मार्गी, विष्णुधर्मी कथाव्यास जी सरूपचन्द जी, पचोली उदयराजजी, और वाईस टोलो की तरफ से पडित विहारीलाल जी और तेरह पथियो की तरफ से पडित वालकृष्ण जी। और मध्यस्थो की तरफ से दोनो साधु जी की रजाबन्दी से मुझ को मुकर्रर किया। जिस पर दोनो साधु जी की तरफ से सूत्र समवायाग जी, ठाणाग जी की टीका, दीपिका टवा का प्रमाण परस्पर दिखलाया। वाद मे सूत्र छापा की भगवती जी की सस्कृत टीका की पक्ति। एषा च पक्तिः-

"एषा च पिसाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषय
भूतै सह साधर्म्यं स्वय समूह्यमिति।"

छापा की भगवती सूत्र के पत्र १३२२ के शतक १६ उद्देश ६ में लिखी हुई पक्ति पर टूट होने की ठहरी। पौष सुदी १४ के रोज, वाद मे माघकृष्ण ३ के रोज मध्यस्थों ने मुझ को कहा कि आपने इतने दिन वैठ के ग्रन्थो का दोनों तरफ से प्रमाण सुना तो इससे आप की राय क्या है सो लिखो। जब मैने ग्रन्थो को सुनने से या देखने से या तुच्छ मेरी वुद्धि के अनुसार राय लिखता हूँ तो यथाः-

महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था मे दश स्वप्न देखे थे। तो छद्म नाम कपट तत्र कोषः-

कपटोऽस्त्री व्याजदाम्नोपधयश्छद्मकैतवे।
कुसृतिर्निकृतिं शाठ्य प्रमादोऽनवधानता॥

इत्यमरः।

तर्हि शठत्वात् चित्तसमाधिर्न ज्ञायते। छद्मस्थपणे सें चित्तसमाधि रो ज्ञान नहीं होवै है किन्तु सदा ही काल मोहादिक बने रहते है। और वीर प्रभु को दश स्वप्न आये थे उसी समय छठा गुणठाणा था तो छठा गुणस्थान का नाम प्रमादी है प्रमाद नाम भी कपट का हीज है। तो धर्मध्यान के साथ (सम्बन्ध है ई नही। हमेशे पाप के साथ सम्बन्ध सिद्ध है तो इनसे भी मोहादिक सिद्ध हुए। और सूत्र का टीका का अर्थ यह है कि-एष च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः स्वयमूह्यमिति।"

पिशाचादि अर्थो को प्राप्ति होने वाले जो दश स्वप्न उनों का स्वप्न फल का विषयभूत जो मोहनीय आदि कर्म है उन्हे करके सदृशपणा है, ऐसे पोते महावीर स्वामी तर्क करते हुए। इति भावार्थायानि तात्पर्य यह है कि प्रथम स्वप्न पिशाच ने हनन करने से मोहने जीतूंगा यह विचार वर्तमान काल का था, यानि छद्मस्थ अवस्था का था। वहाँ कार्य कारण का उपाधि करके सम्बन्ध है। स्वप्न तो कारण है और पिशाच ने हनन करना उपाधि है, उनसे कार्य क्या बना कि मोह कू जीतूगा, और यह केवल ज्ञान उत्पन्न हुए बाद मोहकर्म के साथ पिशाचादिक अर्थों का अर्थ मोहादि कर्मो के साथ घटना करनी चाहिए। इस वास्ते मध्यस्थ महाशयों से निवेदन है कि ऊपर लिखे हुए लेख से तो मोहनीय कर्म हीज सिद्ध होता है। अलमति विस्तरेण। संवत् १९६० रा मिति माघ कृष्णा ४ सौम्यदिने लिखितम्॥

मध्यस्थों को पण्डित देवीशङ्कर जी का निर्णय पक्षपातपूर्ण मालूम पड़ा। इसलिए उन्होंने किसी जैन शास्त्र विद्वान् से निर्णय कराने का निश्चय किया। इसके लिए दोनो पक्षो की राय लेकर जयपुर में समेगी महाराज श्री शिवजीराम जी के पास पहिले दिन के प्रश्न भगवती सूत्र की टीका के पाठ तथा तीनो पडितो की निर्णय की नकल भेज दी तथा अन्तिम निर्णय के लिए लिख दिया।

महाराज शिवजीराम जी ने नीचे लिखा फैसला भेजा- सवत् १९६० का मिति माघ वदि ९ का पत्र १ आया। दस्तखत इतना जनों का-गाधी साकलचन्द जी, सेठ मुल्तानमल जी, पचोली उदयराज जी, व्यास रूपचन्द जी। जिसमे यह लिखा है कि यहाँ बाईस समुदाय के साधु जी जवाहरलाल जी और तेरह पथियों के साधु जी फौजमल जी के आपस में पौष वदि ५ से लेकर पौष सुदी १४ तक चर्चा हुई। जिण चर्चा मे माने चारों जणाने दोनु तरफ से मुकर्रर किया हा सो उस चर्चा का खुलासा पौष सुदी १४ के रोज टूट होने के वास्ते यह बात मुकर्रर हुई कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ वॉ उद्देश छठा छापा की प्रति पाना १३२२ की टीका मे खुलासा होना ठहरा। उस पाठ का अर्थ दोनू तरफ के पडितो का नकल करके भेजा है। और एक श्रीमाली ब्राह्मण यहाँ का पडित देवीशङ्कर ने उस टीका का अर्थ किया। उसकी भी नकल, जुमले नकल तीन और पहिले रोज से प्रश्न चला उसकी विगत आपकू भेजी है, इस मजमून का पत्र हमारे पास आया। बाँच कर वाकब हुए। जिसमें था लोकाने लिखा कि दोनो तरफ के पडितों की तरफदारी होने से इसका भेद खुल सका नही। ये था लिखी। जिस पर इहा से हमारी बुद्धि के अनुसार और वर्तमान काल में इस संप्रदायगत विद्वज्ञन जो अर्थ करते हैं उसके अनुसार उस पंक्ति का कि जिस पर टूट होना ठहरा था इसका अर्थ इस मुजब है। या पक्ति जिण सूत्रो पर है सो सूत्र सूचन के वास्ते लिखते हैं।

समणे भगव महावीरे छउमत्थकालियाए अतिमराइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ताण पडिबुद्धे। त जहा॥

यह पिशाच स्वप्न प्रतिपादक प्रथम सूत्र से लेकर दश सूत्र हैं।

'एकं च णं'

मदिरे सिहासनस्थ आत्मा दर्शनरूप यह दश सूत्र स्वप्न प्रतिपादक सूत्र है। इन स्वप्नों का फल प्रतिपादक भी सूत्र है। सो यह है-

ज णं समणे भगव महावीरे मह घोररूव दित्तधर तालपिसाय सुविणे पराजिय पासित्ताण पडिवुद्धे तेण समणे भगव महावीरे मोहणिज्ञे कम्म मूलओ घाइओ॥

यह प्रथम सूत्र स्वप्नफली प्रतिपादकसूत्र है। इसी रीति से दश सूत्र तो स्वप्न प्रतिपादक है और दश ही सूत्र इनों का फल प्रतिपादक एव बीस सूत्र हैं।

अनुक्रम योजना ऐसे हैं-

१. पिशाच	मोहघात।
२. श्वेतच्छद पुस्कोकिल	शुक्लध्यान प्राप्ति।
३. चित्रच्छद कोकिल दर्शन	द्वादशाङ्गी प्ररूपण।
४. दामयुग	द्विविध धर्म प्ररूपण।
५. श्वेत गोवर्ग	चतुर्विध सघ स्थापना।
६. पद्म सरोवर	चतुर्विधदेव प्ररूपण।
७. भुजाओ से सागर तरण	ससार समुद्र तरण।
८. दिनकर दर्शन	कैवल्य समुत्पत्ति।
९. आन्तड़ियो से मानुषोत्तर वेष्टन	त्रैलोक्य कीर्ति।
१०. मन्दर चूलिकास्थसिहासन पर वैठना	१२ प्रकार की पर्षदा में धर्म का कथन।

श्रमणो भगवान् महावीरः छद्मस्थकालिक्यामन्तिमरात्रौ छद्मस्थकालसम्बन्धिन्या रात्रेरन्तिमभागे इत्यर्थः। इमान् महास्वप्नावान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धस्तद्यथा- एक महान्त घोररूप दीप्तिधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः। इत्यादितः दशम स्वप्नप्रतिपादकानि सूत्राणि सन्ति। एतेषा फलप्रतिपादकानि सूत्राणि त्विमानि। यत् श्रमणो भगवान् महावीर. एक महान्त घोररूप दीप्तिधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिबुद्धस्तच्छ्रमणेन भगवता महावीरेण मोहनीयकर्म मूलतो घातितम्। इति स्वप्नफलप्रतिपादकानि सूत्राणि। एव विशतिसूत्राणि सूत्रकारेण कथितानि।

भावार्थ-भाषा में-वीर प्रभु ने दश स्वप्न देखे सो सूत्र ऊपर लिखा ही है। उनों के फल कहने वाले सूत्र नीचे लिखे है। अब सर्व स्वप्न कहने वाले और उसके फल कहने वाले सूत्रों को यथायोग्य अन्वित करके वृत्ति के कायदे से व्याख्या कर्ता श्री अभयदेवाचार्य बोलते है- एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफल विषयभूतैः सह साधर्म्य स्वयमूह्यम्।'' कीदृशैः मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः इत्यन्वय ।च शब्दात् ऊह्यमिति क्रियापदं प्रत्येकं योजनीयम्। यथा पिशाचधर्म मोहनीयधर्मेण सह व्याख्याकर्तृभिः स्वयमात्मना तर्कणीय विचारणीयम्। एवमग्रेतनानि श्वेतपुरुषकोकिलपदान्यपि अनयैव क्रियया सयोजनीयानि इति। इनका भाषार्थ-

इन पिशाच आदि अर्थो का धर्म स्वप्नफल का विषयभूत मोहनीयादिकों के धर्म के साथ साधर्म्य समानधर्मता तुल्यधर्मता व्याख्यान करने वालों ने आप ही तर्कना और उन स्वप्नों और स्वप्नो के फल की साधर्म्यता बार बार विचारना ये ही तात्पर्य है। उसकी धर्मयोजना इस प्रकार है-पिशाच मे अनेक धर्म रहते हैं पिण यहाँ कौन धर्म लेके मोह के धर्म के साथ जोड़ना और पिशाच के लगने से वा उसके देखने से मनुष्यो की बुद्धि विपरीत हो जाती है वैसे ही मोहनीय कर्म के प्रभाव से जीव स्वरूप के वि... को प्राप्त होता है। उस विपर्यय को वीरप्रभु ने अपनी बुद्धि में नहीं होने दिया अर्थात् मोह का ... स्वात्म प्रदेशों में किचित् भी नहीं होने दिया, निष्फल कर दिया। ये ही मोह का जीतना

पिशाचादि अर्थो को प्राप्ति होने वाले जो दश स्वप्न उनों का स्वप्न फल का विषयभूत जो मोहनीय आदि कर्म है उन्हें करके सदृशपणा है, ऐसे पोते महावीर स्वामी तर्क करते हुए। इति भावार्थायानि तात्पर्य यह है कि प्रथम स्वप्न पिशाच ने हनन करने से मोहने जीतूगा यह विचार वर्तमान काल का था, यानि छद्‌मस्थ अवस्था का था। वहाँ कार्य कारण का उपाधि करके सम्बन्ध है। स्वप्न तो कारण है और पिशाच ने हनन करना उपाधि है, उनसे कार्य क्या बना कि मोह कू जीतूगा, और यह केवल ज्ञान उत्पन्न हुए बाद मोहकर्म के साथ पिशाचादिक अर्थों का अर्थ मोहादि कर्मो के साथ घटना करनी चाहिए। इस वास्ते मध्यस्थ महाशयो से निवेदन है कि ऊपर लिखे हुए लेख से तो मोहनीय कर्म हीज सिद्ध होता है। अलमति विस्तरेण। संवत् १९६० रा मिति माघ कृष्णा ४ सौम्यदिने लिखितम्॥

मध्यस्थों को पण्डित देवीशङ्कर जी का निर्णय पक्षपातपूर्ण मालूम पड़ा। इसलिए उन्होने किसी जैन शास्त्र विद्वान् से निर्णय कराने का निश्चय किया। इसके लिए दोनों पक्षो की राय लेकर जयपुर में समेगी महाराज श्री शिवजीराम जी के पास पहिले दिन के प्रश्न भगवती सूत्र की टीका के पाठ तथा तीनों पंडितों की निर्णय की नकल भेज दी तथा अन्तिम निर्णय के लिए लिख दिया।

महाराज शिवजीराम जी ने नीचे लिखा फैसला भेजा- सवत् १९६० का मिति माघ वदि ९ का पत्र १ आया। दस्तखत इतना जनो का-गाधी साकलचन्द जी, सेठ मुल्तानमल जी, पचोली उदयराज जी, व्यास रूपचन्द जी। जिसमें यह लिखा है कि यहॉ बाईस समुदाय के साधु जी जवाहरलाल जी और तेरह पंथियों के साधु जी फौजमल जी के आपस में पौष वदि ५ से लेकर पौष सुदी १४ तक चर्चा हुई। जिण चर्चा में माने चारों जणाने दोनु तरफ से मुकर्रर किया हा सो उस चर्चा का खुलासा पौष सुदी १४ के रोज टूट होने के वास्ते यह बात मुकर्रर हुई कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ वॉ उद्देश छठा छापा की प्रति पाना १३२२ की टीका में खुलासा होना ठहरा। उस पाठ का अर्थ दोनू तरफ के पंडितो का नकल करके भेजा है। और एक श्रीमाली ब्राह्मण यहाँ का पडित देवीशङ्कर ने उस टीका का अर्थ किया। उसकी भी नकल, जुमले नकल तीन और पहिले रोज से प्रश्न चला उसकी विगत आपकू भेजी है, इस मजमून का पत्र हमारे पास आया। बाँच कर वाकब हुए। जिसमें था लोकाने लिखा कि दोनो तरफ के पडितो की तरफदारी होने से इसका भेद खुल सका नही। ये था लिखी। जिस पर इहा से हमारी बुद्धि के अनुसार और वर्तमान काल में इस सप्रदायगत विद्वज्ञन जो अर्थ करते हैं उसके अनुसार उस पक्ति का कि जिस पर टूट होना ठहरा था इसका अर्थ इस मुजब है। या पक्ति जिण सूत्रो पर है सो सूत्र सूचन के वास्ते लिखते है।

समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अतिमराइयसि इमे दस महासुमिणे पासित्ताण पडिबुद्धे। त जहा॥

यह पिशाच स्वप्न प्रतिपादक प्रथम सूत्र से लेकर दश सूत्र है।

'एक च णं'

मदिरे सिंहासनस्थ आत्मा दर्शनरूप यह दश सूत्र स्वप्न प्रतिपादक सूत्र है। इन स्वप्नों का फल प्रतिपादक भी सूत्र हैं। सो यह है-

ज ण समणे भगव महावीरे मह घोररूव दित्तधर तालपिसाय सुविणे पराजिय पासित्ताण पडिबुद्धे तेण समणे भगव महावीरे मोहणिज्झे कम्म मूलओ घाइओ॥

यह प्रथम सूत्र स्वप्नफली प्रतिपादकसूत्र है। इसी रीति से दश सूत्र तो स्वप्न प्रतिपादक हे और दश ही सूत्र इनों का फल प्रतिपादक एव बीस सूत्र है।

अनुक्रम योजना ऐसे हैं-

१. पिशाच	मोहघात।
२. श्वेतच्छद पुस्कोकिल	शुक्लध्यान प्राप्ति।
३. चित्रच्छद कोकिल दर्शन	द्वादशाङ्गी प्ररूपण।
४. दामयुग	द्विविध धर्म प्ररूपण।
५. श्वेत गोवर्ग	चतुर्विध संघ स्थापना।
६. पद्म सरोवर	चतुर्विधदेव प्ररूपण।
७. भुजाओ से सागर तरण	ससार समुद्र तरण।
८. दिनकर दर्शन	कैवल्य समुत्पत्ति।
९. आन्तडियो से मानुषोत्तर वेष्टन	त्रैलोक्य कीर्ति।
१०. मन्दर चूलिकास्थसिहासन पर बैठना	१२ प्रकार की पर्षदा मे धर्म का कथन।

श्रमणो भगवान् महावीरः छद्मस्थकालिक्यामन्तिमरात्रौ छद्मस्थकालसम्बन्धिन्या रात्रेरन्तिमभागे इत्यर्थः। इमान् महास्वप्नावान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धस्तद्यथा- एकं महान्तं घोररूप दीप्तिधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः। इत्यादितः दशम स्वप्नप्रतिपादकानि सूत्राणि सन्ति। एतेषा फलप्रतिपादकानि सूत्राणि त्विमानि। यत् श्रमणो भगवान् महावीरः एक महान्त घोररूप दीप्तिधर तालपिशाच स्वप्ने पराजित दृष्ट्वा प्रतिबुद्धस्तच्छ्रमणेन भगवता महावीरेण मोहनीयकर्म मूलतो घातितम्। इति स्वप्नफलप्रतिपादकानि सूत्राणि। एव विशतिसूत्राणि सूत्रकारेण कथितानि।

भावार्थ-भाषा में-वीर प्रभु ने दश स्वप्न देखे सो सूत्र ऊपर लिखा ही है। उनो के फल कहने वाले सूत्र नीचे लिखे है। अब सर्व स्वप्न कहने वाले और उसके फल कहने वाले सूत्रों को यथायोग्य अन्वित करके वृत्ति के कायदे से व्याख्या कर्ता श्री अभयदेवाचार्य बोलते हैं- एषा च पिशाचाद्यर्थाना मोहनीयादिभिः स्वप्नफल विषयभूतैः सह साधर्म्य स्वयमूह्यम्।'' कीदृशै. मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः इत्यन्वय. ।च शब्दात् ऊह्यमिति क्रियापद प्रत्येक योजनीयम्। यथा पिशाचधर्म मोहनीयधर्मेण सह व्याख्याकर्तृभिः स्वयमात्मना तर्कणीय विचारणीयम्। एवमग्रेतनानि श्वेतपुरुषकोकिलपदान्यपि अनयैव क्रियया सयोजनीयानि इति। इनका भाषार्थ-

इन पिशाच आदि अर्थो का धर्म स्वप्नफल का विषयभूत मोहनीयादिको के धर्म के साथ साधर्म्य समानधर्मता तुल्यधर्मता व्याख्यान करने वालों ने आप ही तर्कना और उन स्वप्नो और स्वप्नों के फल की साधर्म्यता बार बार विचारना ये ही तात्पर्य है। उसकी धर्मयोजना इस प्रकार है-पिशाच में अनेक धर्म रहते है पिण यहॉ कौन धर्म लेके मोह के धर्म के साथ जोड़ना और पिशाच के लगने से वा उसके देखने से मनुष्यो की बुद्धि विपरीत हो जाती है वैसे ही मोहनीय कर्म के प्रभाव से जीव स्वरूप के विपर्यय को प्राप्त होता है। उस विपर्यय को वीरप्रभु ने अपनी बुद्धि में नही होने दिया अर्थात् मोह का प्रभाव स्वात्म प्रदेशों में किचित् भी नही होने दिया, निष्फल कर दिया। ये ही मोह का जीतना है।

प्रथमस्वप्नप्रतिपादक सूत्र में ' मूल ओ घाइओ' यह क्रिया धरी तो 'पराजितः' और 'मूलतो घातितः' यह दोनो एकार्थ प्रतिपादक है। हिसी हिंसाया चुरादि, हन हिंसागत्यो' अदादि। हन् गत्यर्थक अधिक है। मूलत' घातितः इसका अर्थ झटपट ये कर लेते है कि मारा पिण भावार्थ नही सोचते हैं। भावार्थ ये है कि मूल से घात किया हिसा किया। हिसा का अर्थ ये है- प्राणवियोगानुकूलो व्यापारो हिसा। प्राण का वियोग हो जाय ऐसी तरह का व्यापार यानी क्रिया उसको हिंसा कहते है। अर्थात् जुदा करने का नाम हिसा है उसका घात-मारा बोलते है। पराजितः परा उपसर्ग पूर्वक 'जि जये' परा का अर्थ 'जी' के उपदेश मे भृशार्थक होता है, इससे अत्यर्थ पणे मोह का असर अपने ऊपर नहीं होने दिया। अनादि काल से सर्व जीवो को मोहने अपने वश कर रखा है। अनन्त चतुष्ट्य आदि आत्मा के निजगुणो का विपर्यय करके अपने सवभाव का असर कर दिया। इसीसे अनादि काल से ससार मे रुलाता है। उस असर को भी वीरप्रभु ने बिलकुल मूल से उखाड के दूर किया। इसका आगामी फळ केवल ज्ञान का पाना हुआ। इसी तरे अगाड़ी के श्वेतपुरुषकोकिल स्वप्न के अर्थ को शुक्लध्यान के अर्थ के साथ साधर्म्यता विचारना। इसी तरे दशवें स्वप्न तक आपस में साधर्म्य विचारना। एषा च इत्यादि पक्ति का भावार्थ वृत्तिकार श्रीमान् अभयदेवाचार्य कहते हैं सो विचार लेना। और सवुड महानुभावो को जो स्वप्न आते है सो सत्यार्थ ही आते हैं। वही छठे उद्देश में है। अब यहाँ महाशयों को विचारणीय है कि इस पक्त्यर्थ में मोहोदय से स्वप्न आए यह बात तो सूत्र के प्रकृति प्रत्ययों से वा वृत्ति के अक्षरों के प्रकृति प्रत्ययों से निकल सकती है नहीं और इस सूत्र वृत्ति के अक्षरो से जो कोई विद्वान् महाशय निकाले तो हम भी उपकार मानें।

और नकल तीन पडितो की भेजी जिसमे पडित जी देवीशकर जी की लिखित तो विपरीत (अशुद्ध) है। यह लिखित देखने से मालूम पड़ता है कि जैनग्रन्थों से मूल मे अजाण है॥

और पडित जी बालकृष्ण जी ने जो पक्ति का अर्थ किया है सो अशुद्ध अन्वय लगाया है सो दुरुस्त नही है। और पडित जी बिहारीलाल जी ने पंक्ति का जो अर्थ लिखा है सो ठीक है, शास्त्र से मिलता है।

इति तत्वम्

मिति फागण कृष्ण ८ भौम सवत् १९६०॥

नोटः- मध्यस्थो का फैसला पृ. ५५ पर दिया जा चुका है।

सुजानगढ़-चर्चा
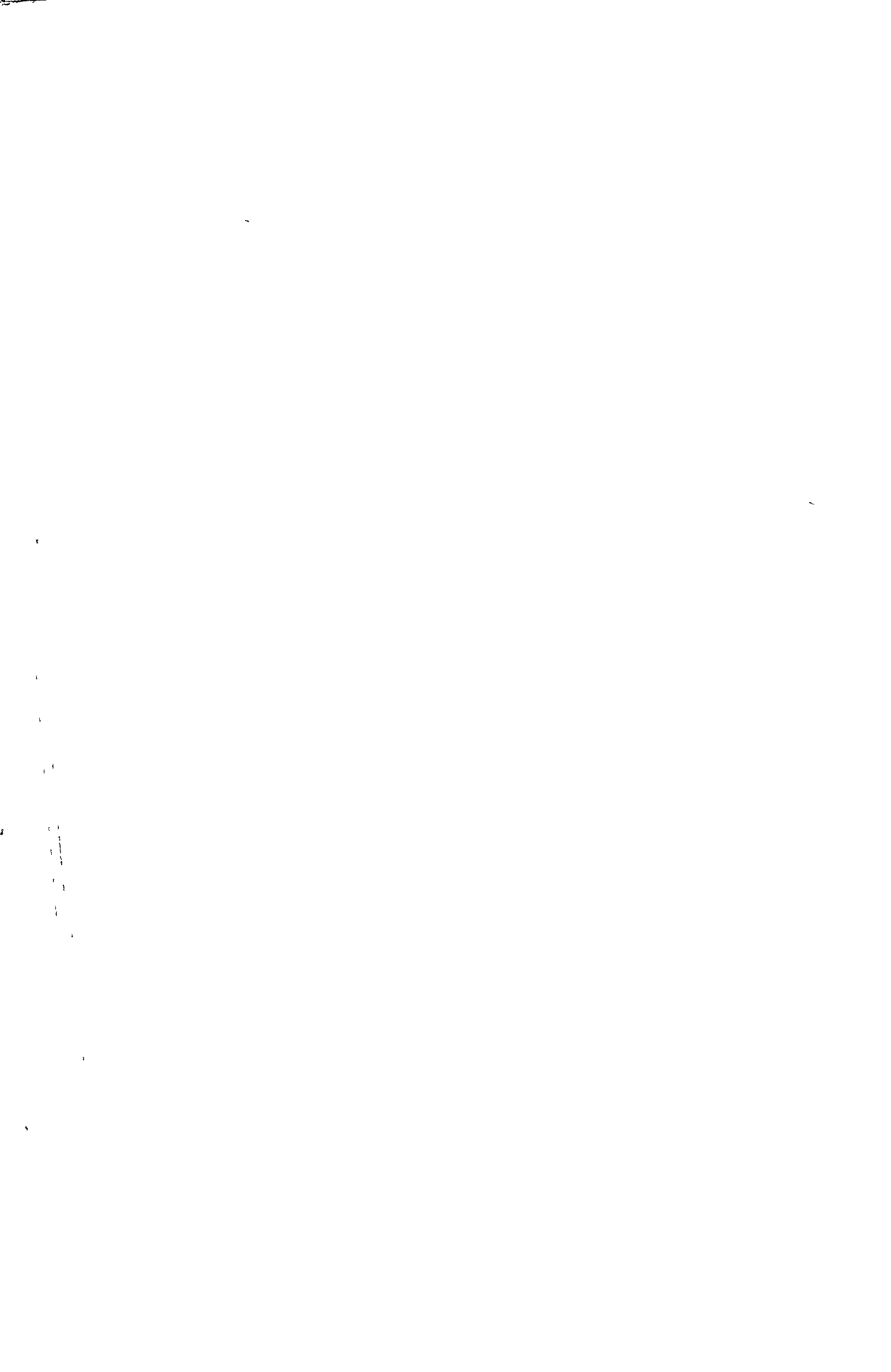
सुजानगढ़-चर्चा

सुजानगढ मे सोमवार तारीख १७-२-३० मिति फाल्गुन कृष्णा ५ संवत् १९८६ को जब पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज, श्रीइन्द्रचन्द्रजी सिघी के भवन (बैठक) में व्याख्यान दे रहे थे और सैकड़ों की सख्या मे स्त्री-पुरुष तथा सनातनधर्मसभा के प्रेसीडेण्ट श्रीलक्ष्मणप्रसादजी आदि आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जन श्रवण कर रहे थे, उस समय तेरह पन्थ समप्रदाय के लगभग १५-२० श्रावक जिनमें से श्रीबालचन्दजी बेगाणी, श्रीहजारीमलजी रामपुरिया, श्रीझीटूलालजी बोरड़, श्री आशकरणजी भूतोड़िया, श्रीमूलचन्दजी सेठिया, श्रीरूपचन्द्रजी बोथरा, श्रीसच्यालालजी भूतोड़िया के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने आकर पूज्यश्री से प्रार्थना की कि तेरह पन्थ-सम्प्रदाय और बाईस सम्प्रदाय मे जिन बातों का मतभेद है, हम उन बातो के विषय मे आप से प्रश्न करना चाहते हैं। पूज्यश्री ने उक्त प्रार्थना के उत्तर में फरमाया कि यह समय व्याख्यान का है। नियमानुसार व्याख्यानमें न तो बडे प्रश्नोत्तर होते ही हैं, न थोड़े समय में प्रश्न सुन कर उनका समुचित उत्तर देना ही सम्भव है। यदि आप लोग इस विषय में प्रश्न करना चाहते है तो किसी दूसरे समयमे प्रश्नोत्तर करना ठीक होगा। प्रार्थी सज्जनोंने पूज्यश्रीसे फिर कहा, कि हम लोग प्रश्न करने के लिए आपके समीप किस समय आवें ? पूज्यश्री ने फरमाया कि एक बजेसे तीन बजे तक का समय इसके लिये उपयुक्त होगा, अतः आप लोग उस समयमें प्रश्न पूछ सकते है। आये हुए तेरह पन्थ सम्प्रदाय के श्रावको ने पुन प्रश्न किया कि, क्या हम आजही आ सकते हैं ? पूज्यश्रीने फरमाया-यद्यपि आज सोमवार मेरा मौन का दिन है, तथापि शास्त्र-विषयक प्रश्नों के उत्तर देने मे मुझे कोई आपत्ति नहीं।

इस बातचीत के पश्चात् व्याख्यान समाप्त हुआ। व्याख्यान में उपस्थित जनता को इस बातचीत से मालूम हो ही गया था कि, आज एक बजे तेरह पन्थ के श्रावकों और पूज्यश्री मे प्रश्नोत्तर होंगे, अतः दर्शक जनता निश्चित समयके पहिले से ही पूज्यश्री के ठहरने के स्थानके समीप श्री सिंघीजी के मन्दिर (देवसागर) के पूर्वकी ओर की छाया में एकत्रित होने लगी। सन्तों सहित पूज्यश्री ठीक एक बजे ही जहा जनता एकत्रित थी वहां विराज गये और तेरहपन्थ-सम्प्रदायी श्रावकों के निश्चित समय के पश्चात् भी न आने के कारण श्रीगणेशीलालजी महाराज ने ओजस्विनी वाणी द्वारा उपस्थित जनता को ज्ञानोपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। डेढ़ बजे के लगभग श्रीझूमरमलजी डोसी, श्रीझूमरमलजी

चोरडिया, श्रीबालचन्दजी बेगाणी, श्रीहजारीमल जी रामपुरिया, श्रीमेघराजजी भूतोडिया, श्रीझीटूलालजी बोरड़, श्रीटीकमचन्दजी डागा, श्रीआशकरणजी भूतोडिया, श्रीकुन्दनमलजी सेठिया, श्रीकन्हैयालालजी रामपुरिया, श्रीरूपचन्दजी बोथरा, श्रीमोहनलालजी डोसी, श्रीसच्यालालजी भूतोड़िया, श्रीहुलासमलजी रामपुरिया, श्रीपन्नालालजी बोरड आदि सुजानगढ़ के सैकडो तेरह पन्थ-सम्प्रदाय के श्रावक तथा लाडनू बीदासर, सरदारशहर और जयपुर के अल्प संख्यक तेरहपन्थी श्रावक, श्री नेमीनाथजी सिद्ध (जाट, सरदारशहर निवासी) को लेकर आये। तेरहपन्थ–सम्प्रदायी श्रावकोकी ओर से नेमीनाथजी सिद्ध (जाट, सरदारशहर निवासी) को लेकर आये। तेरहपन्थ–सम्प्रदायी श्रावको की ओर से नेमीनाथजी ने पूज्यश्री से फिर प्रार्थना की कि आपके और हमारे अर्थात् तेरहपन्थ के बीच में जिन बातो का मतभेद है हम उन बातों के विषय मे आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते है। पूज्यश्री ने फरमाया कि आप लोग जो प्रश्न करना चाहते है, वे शास्त्रार्थ की तरह या केवल शका निवारण के लिये ? नेमीनाथजी ने पूज्यश्री के प्रश्न के उत्तर में कहा कि दोनों बातो का क्या अर्थ है ? पूज्यश्री ने फरमाया- शास्त्रार्थ तो नियम पूर्वक किसी को मध्यस्थ नियत करके होता है तथा उसमें एक विजयी व दूसरा पराजयी होता है और शंका निवारण के लिये जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनमे केवल शकाओं का समाधान करना अभीष्ट होता है। इनमे न तो किसी की विजय होती है न पराजय और न किसी को मध्यस्थ नियत करने की आवश्यकता होती है। नेमीनाथजी ने कहा हम केवल अपनी शकाओ के निवारणार्थ प्रश्न करना चाहते हैं। तब पूज्यश्री ने नेमीनाथजी से प्रश्न किया कि आप व्यक्तिगत प्रश्न पूछना चाहते है या तेरहपन्थ समाज की ओर से ? इस प्रश्न का उत्तर मूलचन्दजी सेठिया ने दिया कि ये (नेमीनाथजी) यहा बैठे हुए तेरहपन्थ समाज की ओर से प्रश्न करते हैं। पूज्यश्री ने फिर पूछा कि जिनकी ओर से नेमीनाथ जी प्रश्नकर्त्ता नियत हुए हैं, उन उपस्थित तेरहपन्थ समाज के श्रावको की अनुमानतः कितनी सख्या होगी ? इसके उत्तर मे मूलचन्दजी सेठिया ने कहा- उपस्थित तेरहपन्थ सम्प्रदायी श्रावकों की मर्दुमशुमारी (मनुष्य-गणना) तो नहीं है, हम बैठे हुए श्रावकों की ओर से नेमीनाथजी प्रश्न करते है। इत्यादि बातें होकर प्रश्नोत्तर के लिये श्री नाजिम साहब सुजानगढ, श्रीतहसीलदार साहब सुजानगढ, श्री सरिश्तेदार साहब निजामत सुजानगढ़ आदि प्रतिष्ठित सज्ञनों द्वारा यह नियम बनाया गया कि प्रश्नकर्त्ता उपस्थित जनता आदि सबको अपना प्रश्न सुनाकर उन प्रश्नों को लिखवा दे और इसी प्रकार पूज्यश्री का जो उत्तर हो, वह सबको सुनाया जाकर प्रश्नकर्त्ता को नोट करा दिया जाय।तेरहपन्थ सम्प्रदाय तथा इस ओर से श्रीनाजिम सा. को शान्ति रक्षा के लिये चुना गया।

नेमीनाथजी ने अपना प्रश्न उपस्थित जनता, जो लगभग डेढ़ दो हजार होगी, को सुनाकर श्रीगणेशीलालजी महाराज आदि को नोट कराया, वह निम्न है:-

"जो कोई धर्मावलम्बी जैनधर्म को असत्य मानता हुआ अपने धर्म का पूर्ण अनुरागी, वैष्णवधर्म को माननेवाला, अपने धर्म में अनुरक्तता रखता हुआ जप, तप, ब्रह्मचर्य, अहिंसा इत्यादिक धर्म का पालन करता है उसका यह उपरोक्त कर्त्तव्य जन्म-मरण की वृद्धि का हेतु है या घटाने का ? उस कर्त्तव्य से कर्म बधते हैं या कटते है ?"

इस प्रश्न का जो उत्तर पूज्यश्री ने उपस्थित लोगों को सुनाकर प्रश्नकर्त्ता को नोट कराया वह नीचे लिखा जाता है -

"जो पुरुष जैनधर्म को या कोई भी सत्यधर्म को असत्य मानता है वह पुरुष शास्त्रोक्त अहिसा-सत्य आदि का कदापि पालन नही करता है, क्योकि 'वह सत्य जैनधर्म को असत्य मानता है, ऐसा वादी कायम कराता है।[1] अतएव उस पुरुष के जब शास्त्रोक्त अहिंसा सत्यआदि व्रत है ही नही तो फिर उसके अहिसा-सत्य आदि व्रत पालने का प्रश्न करना बन्ध्या-पुत्र की तरह असम्भव है।

तेरहपन्थ-सम्प्रदाय की ओर से इस उत्तर के खण्डन और अपने प्रश्न के समर्थन के लिये पुन॰ नेमीनाथजी ने निम्न प्रश्न सुनाकर नोट कराया:-

"हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि, जैनेतर जनता सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, अहिसा का पानल करती है उससे उनका जन्म-मरण घटता है या बढता है? इसका उत्तर आपने कुछ भी न दिया मेरे प्रश्न को असम्भव बताया। यह तो जब उचित था कि जैनधर्म के सिवाय अन्य धर्मवाले कोई भी सत्य न बोलते हो। किन्तु जैनधर्म मे इसका पुष्ट प्रमाण है कि अन्य धर्म वाले भी सत्य को ग्रहण करते है, जिसका प्रमाण प्रश्नव्याकरण में देखिये। यह है-

अनेग पाखण्डि परिग्गहियं

जिसका यह अर्थ है कि सत्यको अनेक पाखण्डियो ने ग्रहण किया है। इससे सत्य वोलना जैनधर्मानुसार भी अन्य धर्मवालो के लिये प्रमाणित है। तब मेरा प्रश्न सत्यादि के विपय मे असम्भव कैसे हुआ? और आपने जो 'जैनधर्म के अतिरिक्त कोई भी सत्यधर्म को असत्य मानता है' ऐसा उत्तर मे लिखा है तो वह सत्यधर्म कौनसा है!

इसका जो उत्तर पूज्यश्री ने सुना कर नोट कराया, वह इस प्रकार है-

"प्रश्नकर्त्ता अपने लेखी प्रश्न को भी टालाटूली करके शका मे लिखता है कि 'हमारा अभिप्राय और था' इत्यादि लिख कर अपना मूल प्रश्न उलटाना चाहता है, परन्तु वह लेखवद्ध होने से अव उलट नही सकता। जैनेतर के लिये प्रश्न नही लिखवाया किन्तु जैनधर्म को असत्य मानने वाले दुराग्रही के लिये पूछा है। और जो सत्य जैनधर्म को असत्य मानता है, वह अहिंसा सत्य आदि व्रतो का कदापि पालन नही करता है। अतएव प्रथम पूछा हुआ प्रश्न गलत है। वह अपनी गलती स्वीकार किये बिना प्रश्नकर्त्ता का आगे बढ़कर बोलना व मूल प्रश्न को उलटाना कदापि उचित नही कहा जा सकता। और जो प्रश्नव्याकरण सूत्र का मूल पाठ का अर्थ प्रश्नकर्त्ता ने, वह भी प्रश्नकर्त्ता के उस पाठ की टीका का आज्ञानपना सूचित करता है। जब प्रश्न ही गलत है तब उसके विषय मे प्रमाणादिक देने की बातें करना बन्ध्या पुत्रका विवाह करने की तरह व्यर्थ है।

---

१ 'जैन' शब्द 'जि' धातुसे बना है और 'नक्' प्रत्यय है। जिन शब्दका अर्थ विजय करना या जीतना है। अभिप्राय यह कि, राग, द्वेष और काम-क्रोध इत्यादि क्लिष्ट वृत्तियो का दमन करना 'जिन' शब्दका अर्थ होता है। इसलिये जैन उस धर्मका नाम है, जो क्लिष्ट वृत्तियां दमन करना 'जिन' शब्द का अर्थ होता है। इसलिये जैन उस धर्मका नाम है, जो क्लिष्ट वृत्तियो को जीत कर मोक्ष प्राप्त करने का अभिलाषी हो। बौद्ध और वैष्णव के लिये भी कोष मे 'जिन' शब्द का प्रयोग किया गया है। अतएव जो पुरुष जैन धर्म को असत्य मानता है, वह 'क्लिष्ट वृत्तियों को दमन करना' यह भी असत्य मानने वाला ठहरता है। ऐसी अवस्था मे उसके अहिसादि व्रतो का पालन करना असम्भव बताना ठीक ही है।

—प्रकाशक

और मैने उत्तर में कोई भी सत्यधर्म को असत्य नही लिखा है, उस पर भी 'सत्यधर्म को असत्य आपने अपने उत्तर में कहा "यह प्रश्नकर्त्ता का कहना अति ही गलत है।"

इन प्रश्नोत्तर में लगभग ३ ॥ बज चुके थे, अतः दूसरे दिन के लिये यही समय नियत करके सभा विसर्जित हुई।

दूसरे दिन मगलवार तारीख १८/२/३० मिति फाल्गुन कृष्ण ६ को फिर कल की ही तरह कार्य्यारम्भ हुआ। उपस्थिति कल सी ही थी। हा, कल की अपेक्षा आज प्रतिष्ठित सभासदों मे श्रीशेरसिहजी जज साहब और प्रतिष्ठित तेरहपन्थ-सम्प्रदायी श्रावकों मे श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी सरदारशहर निवासी विशेष थे। नेमीनाथने अपने कलवाले प्रश्न के समर्थन मे जो कुछ लिखकर लाये थे उसे पढ़कर सुनाया और जो कुछ सब को सुनाया गया था, उसे श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी ने नोट कराया; वह नीचे दिया जाता है।

"(क) आपने लिखा है कि प्रश्नकर्त्ता अपने प्रश्नको टालाटूली करके शका मे लिखता है, जिसके प्रमाण स्वरूप आपने यह वाक्य लिखे हैं कि प्रश्नकर्त्ता मूल प्रश्न मे जैन धर्म को असत्य मानने वाला लिखता है और अब जैनेतर लिखता है।" मुझे आश्चर्य है कि जिसको साधारण मनुष्य भी समझ सकता है कि जैनधर्म को असत्य माननेवाला निज धर्म का अनुरागी, और 'जैनेतर' ये शब्द एक ही अर्थ के वाचक है। आपकी इन शब्दोंमें भेद दिखाने की चेष्टा व्यर्थ है"

"(ख) आपने लिखा है कि, 'प्रश्नकर्त्ता लिखता है कि हमारा अभिप्राय और था परन्तु मैंने 'मेरा अभिप्राय और था' ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है। मैने मेरे द्वितीय प्रश्न में 'मेरा अभिप्राय यह है' ऐसा लिखा है इसलिये आप मेरा लिखा हुआ 'यह है' के बदले 'और था' यह शब्द कहा से ले आये ? क्योकि मैने 'मेरा अभिप्राय और था' ऐसा कहीं नही लिखा है। मैंने तो मेरे प्रश्न को स्पष्ट करने के लिये 'जैनेतर' शब्द दिया है जो कि जैनधर्म को असत्य मानने वाला पर पूर्ण रूप से घटता है। आपने जो मेरे प्रश्न के लिखित वाक्यों के विपरीत लेखनी चलाने की चेष्टा की है, उन वाक्यों को आप कृपया फिर दुबारा देखिये।"

"(ग) मेरे मूल प्रश्नमें कोई भी सत्यधर्म को असत्य मानता है, ऐसा शब्द नही आया तो फिर आपने उत्तर न. १ में 'कोई भी सत्यधर्म को असत्य मानता है' ऐसा क्यों लिखा ? और उत्तर न. १ में उपरोक्त बात लिखकर उत्तर न. २ मे फिर आप लिखते है कि 'मैंने अपने उत्तर मे कोई भी सत्य धर्मको असत्य नहीं लिखा है' यह परस्पर विरोधी वचन क्यों ?"

"(घ) उत्तर न. २ में जो जैनधर्म को असत्य मानता है, उसको दुराग्रही की पदवी आपने दी है। मैंने मेरे प्रश्न में जैनधर्म को असत्य माननेवालेके लिये 'दुराग्रही' शब्द नही लिखा है। फिर आप मेरे पर असत्य-कलक क्यों लगते हैं ? आप चाहे उसको दुराग्रही कहें तो आपकी इच्छा और उसका दायित्व आपके ऊपर है।'

"(ङ) और आपने जो उत्तर न. २ मे लिखा कि 'जो जैन धर्मको असत्य मानता है, वह अहिंसा सत्य आदि का कदापि पालन नही करता है' यह आपका लिखना शशक-श्रृगवत् है; क्योंकि शिवराज ऋषि (जैनधर्म अगीकार करने के पहिले) जैनधर्मको असत्य मानता हुआ भी अपने नियमादि मे दृढ़ था। प्रमाण भग. श. ११ उ. ९।"

"(च) आपने उत्तर न. २ मे प्रश्न व्याकरण सूत्रके मूल पाठ की टीका से प्रश्नकर्त्ता की अज्ञानता सूचित की है, वह व्यर्थ है, क्योकि वह टीका मेरे ही प्रमाण के अनुकूल है।"

"अतएव आप जो मेरे प्रश्नको गलत बताते है, वह प्रश्न ठीक है, लेकिन आपकी समझ मे ही गलती है। इसलिये मेरे प्रश्न का उत्तर मिलना चाहिये।"

उक्त बातो को सुनाने व नोट कराने के पश्चात् समय वहुत कम रह गया था। पूज्यश्रीने इन वातो के उत्तर मे जबानी ही ५-७ मिनिट मे कुछ फरमाया, परन्तु समयाभाव से पूरा उत्तर सुनाया जाकर नोट करा देना असम्भव था और गोठीजी तथा नेमीनाथजी को, जो उत्तर आज सुनाया जाय उसे कल नोट करना स्वीकार करना न था, अत. कल के लिये भी यही समय नियत होकर तीन वजे के लगभग सभा विसर्जित हुई।

तीसरे दिन बुधवार ता. १९-२-३० मिति फाल्गुन कृष्ण ७ को फिर उसी प्रकार कार्यारम्भ हुआ। जनता आज भी उसी सख्या मे थी। श्रीनाजिम साहव कार्यवश किसी अन्य ग्राम को चले गये थे और उनके स्थान पर श्रीडिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्डेण्ट साहव पुलिस सिपाहियो सहित पधारे थे जिन्होने शान्तिरक्षा का कार्य अपने हाथ में लिया।

नेमीनाथजी ने अपने प्रश्न के समर्थन मे कल जो वाते सुनाई थी और गोठीजी ने जिन्हे नोट कराया था, उन सम्पूर्ण बातो का क्रमवार उत्तर तथा भविष्य में उन मुख्य-मुख्य वातो जिनमें तेरहपन्थ और बाईस-सम्प्रदाय में मतभेद है- के विषय मे प्रश्नोत्तर होने आदि के लिये जो लेख पूज्यश्री की ओर से तेरहपन्थ-सम्प्रदायी और दर्शक जनता को सुना कर नोट कराया गया, वह नीचे दिया जाता है-

"(क) आपने जो 'जैन धर्म को असत्य मानने वाला निज धर्म का अनुरागी' और 'जेनेतर' इन शब्दो को एक ही अर्थ का वाचक लिखा है, वह विलकुल असगत है। जिन शव्दो का प्रवृत्ति-निमित्त एक होता है, वह ही शब्द एकार्थ वाचक होते है, जैसे घट और कलश। क्योकि इन दोनो का प्रवृत्ति-निमित्त एक ही घटत्व जाति है। परन्तु 'जैन धर्म को असत्य मानने वाला निज धर्म का अनुरागी है' और 'जैनेतर' इनका प्रवृत्ति-निमित्त एक नही है। 'जैनेतर' शब्दका प्रवृत्ति-निमित्त जेनोपाधि व्यतिरिक्तापाधि धारित्व है। यानी 'जैन' इस उपाधि से भिन्न किसी दूसरी उपाधि का धारण करना हे। और जेन धर्म को असत्य मानता हुआ निज धर्म का अनुरागी' इसका प्रवृत्ति-निमित्त केवल जैनोपाधि व्यतिरिक्तोपाधि धारित्व' नही है। किन्तु जो जैन शास्त्र मे विधान की हुई वातों को एकान्त पाप तथा निषेध की हुई वातों में धर्म मानता हो और इस प्रकार के अपने धर्म में अनुराग रखता हो यह प्रवृत्ति-निमित्त है चाहे वह जैनोपाधि धारी ही क्यो न हो जैसे, साधु के गले मे लगी हुई फासी को काटना, किसी निर्दोष वच्चे के पेट मे छुरी भौकते हुए को रोकना, क्रोधित होकर कुए या गड्ढ़े मे गिरते हुए को वचाना, गायों से भरे हुए बाड़े मे अग्नि लगने पर दरवाजा खोलकर उनकी रक्षा करना, दीन दु.खी पर अनुकम्पा लाकर उनका दुख मिटाना इत्यादि जैन शास्त्र में किसी और पुण्य रूप मे विधानकी हुई वात को एकान्त-पाप बताकर जो निषेध करता है; तथा साधुओं के स्थान में रात के समय ओरतों का आना और उन्हे व्याख्यान सुनाना, गृहस्थो के घर से वारी वाधकर साधुओं का भोजन लाना और विहार मे गृहस्थियों को साथ रख कर उनके पास से भोजन लेना आदि जेन-शास्त्र मे निषेध की हुई, बात का जो विधान करता हुआ तदनुसार आचरण करता है, वह जैन-धर्म को असत्य मानने वाला और निज धर्म का

अनुरागी है। पर वह जैनोपाधिधारी होने से लोक मे जैनेतर नही कहलाता। अत उक्त दोनो शब्द एकार्थवाची नही है और मेरा भेद दिखाना उचित ही है।

''(ख) आपने परसो के दूसरे लेख मे 'हमारे पूछने का अभिप्राय यह है' इत्यादि लिखकर जो आशय प्रकट किया है, वह आपके प्रश्न न. १ के वाक्यो से नही निकलता। क्योकि यह बताया जा चुका है कि 'जैन धर्म को असत्य-मानने वाला' और 'जैनेतर' यह दोनो शब्द पर्यायवाची नही है। अत· जैन धर्म को 'असत्य मानने वाला निज धर्म का अनुरागी' इस शब्द का 'जैनेतर जनता' यह अभिप्राय बतलाना और ही हुआ। इसलिये जो मैंने आपका अभिप्राय और बतलाया है, वह अनुचित नही है। अलबत्ता आपने 'और' शब्द का प्रयोग नही किया लेकिन यह और शब्द आपके लिखे हुए का अनुकरण नहीं, बल्कि हमारी तरफ से है और ठीक है। क्योकि आपका अभिप्राय 'जैनेतर' लिख कर प्रश्न से जो आशय प्रकट नहीं होता है, वह बतलाना है।''

''(ग) आपने 'जैन धर्म को असत्य मानने वाला' यह विशेषण ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि के पालन करने वाले के लिये लगाया है। अतः उसका उत्तर देते हुए मैने लिखा है कि 'जो पुरुष जैन धर्म को या कोई भी सत्य धर्म को असत्य मानता है, वह पुरुष शास्त्रोक्त अहिंसा सत्य आदि का कदापि पालन नहीं करता है।' इस उत्तर मे मैने जैन धर्म या कोई भी सत्य धर्म को असत्य बताने वाला लिखा है, इसमे आपके बताये हुए जैन धर्म को असत्य मानने वाला भी सगृहीत हो गया है। फिर यह आपका आक्षेप करना व्यर्थ है कि उत्तर न. १ में कोई भी सत्य धर्म को असत्य मानता है, क्यों लिखा ? यह आपके प्रश्न-वाक्य का अनुसरण नहीं, कितु हमारा उत्तर वाक्य है। विशेष रूप से पूछे गये प्रश्नो का सामान्य रूप से उत्तर दिया जाना भी शास्त्र प्रसिद्ध है।''

''आपके लिखे हुए शब्द से भिन्न शब्द का लिखना मेरे लिये अनुचित समझते हो तो आपने मेरे उत्तर-वाक्य 'जो पुरुष जैन धर्म को या किसी भी सत्य धर्म को असत्य मानता है' को उदधृत करते हुए 'जैनधर्म के अतिरिक्त कोई भी सत्य धर्म को असत्य मानता है, इसमे 'अतिरिक्त' शब्द और कहा से लगा दिया ?''

''(२) 'सत्य धर्म को असत्य मैने नही लिखा' इसका मतलब यह है कि इस लिखने से सत्य धर्म को असत्य कहने का मेरा अभिप्राय नही है, किन्तु यह अभिप्राय है कि कोई भी सत्य धर्म को असत्य माने उसमे अहिंसादि व्रत की प्राप्ति नही होती। अब आपका प्रश्न यह है कि 'वह सत्य धर्म कौनसा है' तो इस प्रश्न का उत्तर यह है कि, जिस धर्म मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप यथार्थ रीति से माने जाते हों, तथा जो धर्म साधु के गले मे लगी हुई फासी को काटने, किसी निर्दोष बच्चे के पेट मे छुरी भौकते हुए को रोकने, क्रोधित होकर कुए या गड्ढे मे गिरते हुए को बचाने, जलते हुए बाड़े से रक्षा के लिये गायों को निकालने आदि मे पाप न मानकर इनका प्रतिपादक हो और रात के समय साधुओ के समीप स्त्रियों के आने-जाने, साधुओं का गृहस्थियों के यहा से बारी बाध कर भोजन लाने, आदि मे धर्म न मानकर उनका निषेधक हो, वे सब सत्य धर्म है, चाहे उनकी उपाधि कुछ भी हो।'

''(घ) जैन धर्म को असत्य मानने वाला वह है जो जैन धर्म मे विधान किये हुए मरते प्राणी की रक्षा और दीन-दुःखियों पर अनुकम्पा लाकर उनके दु.खों को मिटाना इत्यादि पवित्र कार्य को एकान्त पाप कह कर अपवित्र बतलाता हो। वह चाहे आपके मत में सत्याग्रही क्यो न हो, पर मै उसे दुराग्रही मानता हूँ और ससार भी उसे दुराग्रही ही कहेगा।''

"(ड) शिवराज ऋषि, जैन धर्म स्वीकार करने के पहले अहिसा सत्य आदि व्रतो का पालन करने वाला था, वह भगवती शतक ११ उद्देश ९ में नही लिखा है। न जैन धर्म को असत्य मानने वाला ही लिखा है। फिर उनके नियमादि का नाम लेकर जैन धर्म को झूठा मानता हुआ अहिंसा-सत्य आदि व्रतो का पालन करने का सम्भव बताना ही शशक-श्रृंगवत् है।"

"(च) प्रश्न व्याकरण सूत्र की टीका को जो आपने अपने अनुकूल बताया, यह आपका भ्रम है। वास्तव मे वह टीका, आपने जो अर्थ बताया है उसके सर्वथा प्रतिकूल है, क्योंकि वहा पाखण्डी शब्द का अर्थ व्रतधारी किया है जैसे-

अनेकपाखण्डिपरिगृहीत नानाविधव्रतिभिरङ्गीकृतम्।*

तथा दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति मे लिखा है-

पव्वइए अणगारे पासण्डे चरग तावसे भिक्खू।[1]

परिवाइए य समणे निग्गन्थे सञ्जए मुत्ते॥[2]

इसी निर्युक्ति की टीका में पाखण्डी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है-

पाखण्ड-व्रतं तदस्यास्तीति पाखण्डी।[3]

इन सबों का तात्पर्य यह है कि पाखण्ड नाम व्रत का है और जो व्रतों को धारण करता है, वह पाखण्ड या पाखण्डी कहलाता है। ऐसे अनेक व्रतधारियों से स्वीकार किया हुआ होने से सत्य व्रत को 'अनेक पाखण्ड परिगृहीत' कहा है। निर्युक्तिकार ने व्रतधारी-साधुओं के पर्याय में पाखण्ड शब्द की गणना की है। वह निर्युक्ति ऊपर लिख दी गई है और उसकी टीका मे पाखण्ड शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए टीकाकार ने 'पाखण्ड' व्रत का नाम बताया है। परन्तु 'पाखण्ड' शब्द का और भी अर्थ है। जैसे कि 'पाखण्डी' दाम्भिक यानी ढोंगी का भी नाम है। परन्तु वह पाखण्डी सत्य व्रत धारी नहीं होता, अतः यहा वह अर्थ नहीं घटता । इसलिये 'पाखण्डी' शब्द का अर्थ 'व्रतधारी' टीकाकार ने किया है, यहा पर वही उपयुक्त है।"

" अब आपने अपने पहिले नम्बर के प्रश्न को ठीक बतलाते हुए उसका उत्तर मेरे से मांगा है तो, यदि आपका पूछने का भाव यह हो कि, अहिंसा सत्य आदि व्रतों का धारण करने वाला जो जैन से भिन्न उपाधिधारी पुरुष हो तो वह अपने उक्त व्रत से ससार को घटाता है या बढ़ाता है तथा अपने कर्मो का क्षय करता है या वृद्धि करता है, तो इसका उत्तर यह है कि वह चाहे जैनोपाधि धारी हो चाहे किसी दूसरी उपाधि से विभूषित हो, पर उसके अहिंसा-सत्यादि व्रतों के धारण करने से जन्म-मरण घटता ही है बढ़ता नही है । उसके कर्म क्षीण होते है, पर बढ़ते नहीं हैं। इस विषय मे उत्तराध्यन सूत्र अ. २८ की गाथा प्रमाण है। जैसे कि-

---

१. अनेक व्रतधारियो ने सत्य व्रत को स्वीकार किया है।

२. प्रवर्जित, अणगार, पाखण्ड, चरक, तापस, भिक्षु, निग्रन्थ, सयत, मुक्त, परिब्राजित और श्रमण ये पर्यायवाची शब्द है।

३. पाखण्ड नाम व्रत का है। यह व्रत जिसके अन्दर मौजूद है, उसे पाखण्डी कहते है।

नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सुग्गई॥

अर्थात् ज्ञान, दर्शन और अहिसा सत्यादि-सत्यादि व्रतरूप चरित्र मोक्ष के मार्ग है। इनका आश्रय लिये हुए जीव मोक्ष प्राप्त करते है।

इस गाथा मे किसी विशेष उपाधिधारी की चर्चा नही करते हुए हर एक का मोक्षगामी होना कहा है। मोक्ष पाने में, उपाधि विशेष कोई कारण नही है। जैसे कि जैन ग्रन्थो में लिखा है-

सेयवरो य आसवरो य वुद्धो अ अहव अन्नो वा।
समभावभाविअप्पा लहेइ मुक्ख न सन्देहो॥

अर्थात् श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या शैव, वैष्णवादि अन्य किसी उपाधि का धारी हो, पर समभाव से जिसकी आत्मा भावित है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

इसी आश्य के जैन सूत्रों में अङ्गोपागों मे भी पाठ पाये जाते हैं। जैसे कि–

स्वलिङ्गि सिद्धा, अन्य लिङ्गि सिद्धा और गृहलिङ्गि सिद्धा।

अर्थात् अपने लिङ्ग मे अन्य लिङ्ग में तथा गृहस्थ के लिङ्ग में भी सिद्ध होते है।

तथा अश्रुत्वा केवली के अधिकार मे भगवती सूत्र के अन्दर अन्य लिङ्ग मे भी केवल ज्ञान प्राप्त होना लिखा है।

किसी विद्वान ने कहा है कि-

भवबीजाकुर जनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥[१]

इसी तरह यह भी श्लोक है कि-

य शैवाः समुपासते शिव इति।[२]

१.भव–बीज के अकुर को उत्पन्न करने वाले रागादि दोष जिनके क्षीण हो गये है, वह चाहे ब्रह्मा हों, या विष्णु हों, या हर हों, या जिन हों, उनको नमस्कार है।

२.य शैवा· समुपासते शिव इति ब्रह्मोति वेदान्तिनो।

बौद्धा· बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः॥

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमासका·।

सोय वो विद्धातु वाछितफल त्रैलोक्य नाथो हरि·॥

अर्थात्–शैव लोग 'शिव' कहकर जिसकी उपासना करते है, वेदान्ती लोग जिसे 'ब्रह्मा' कहते है, बौद्ध लोग जिसे 'बुद्ध' कहकर ध्याते है, प्रमाण देने मे निपुण नैयायिक लोग 'कर्त्ता' बतलाते हैं, जैन–शासन मे रत (जैन) लोग जिसे 'अर्हन्' मानते है, मीमासक जिसे 'कर्म' बतलाते है, वह तीनो लोक का नाथ हरि आप लोगों के मनोरथ को पूर्ण करे।

यह मेरा उत्तर जो लोग जैन से भिन्न उपाधिधारी होकर भी अहिसादि व्रतो के पालन करने वाले है, उनके सम्बन्ध मे है। पर आपने तो जैन धर्म को झूठा मानने वाले के लिए पूछा है, इस पर तो मेरा कहना है कि, जैन धर्म को असत्य मानने वाला अहिंसादि धर्मो को भी असत्य मानने वाला है। फिर वह अहिसादि का पालन भी करता हो, यह बात असम्भव है।''

''हमारा अन्तिम वक्तव्य यह है कि प्रश्न के आरम्भ में जबानी तौर पर तेरहपन्थ-सम्प्रदाय की ओर से माना गया था कि, जिन-जिन बातों में आपके साथ हमारा मतभेद है, उन बातो का हम प्रश्नोत्तर द्वारा खुलासा करना चाहते है। इसके सम्बन्ध में मैने यह कहा था कि तेरहपन्थ के पूज्य कालूरामजी मेरे साथ शास्त्रार्थ करते तो अति ही उत्तम होता, परन्तु मेरे खुले चेलेंज देने पर भी शास्त्रार्थ नहीं हुआ। खैर, अब नेमीनाथजी द्वारा आप प्रश्न पूछना चाहते है तो भी शान्ति और नियमानुसार प्रश्नोत्तर करने में मुझे कुछ भी आपत्ति नही है। जो नेमीनाथजी ने पूछा और दूसरे रोज नेमीनाथजी की ओर से सरदारशहर निवासी तेरहपन्थ-सम्प्रदाय के मुखिया श्रावक श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी ने नेमीनाथजी के प्रत्युत्तर मे जो लिखवाया, उसका उत्तर मेरी ओर से आज आम सभा में सुनाकर लिखा दिया जाता है। अब आगे व्यर्थवाद न बढाकर बाईस-सम्प्रदाय और तेरहपन्थ-सम्प्रदाय मे जिन मुख्य-मुख्य बातों का फर्क है, उन्ही के विषय मे विचार होना चाहिए। वे मुख्य बाते ये है-

(१) पंच महाव्रतधारी साधु के गले में किसी ने फासी लगा दी हो उसको कोई दयावान गृहस्थ खोल देगे तो उसमें बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म बतलाते हैं और तेरहपन्थ वाले एकान्त-पाप।

(२) किसी अबोध बच्चे के पेट मे छुरी भौकते हुए दुष्टो को रोकने और बच्चे को बचाने की अनुकम्पा करने में बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ-सम्प्रदाय वाले पाप कहते हैं।

(३) गायो के बाड़े में किसी दुष्ट के द्वारा आग लगा देने पर उन गायों पर दया करके कोई यदि उस बाडे के दरवाजे को खोले अथवा आग लगाते हुए को रोक दे तो, उसमे बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ वाले एकात-पाप बतलाते है।

(४) ११ प्रतिमाधारी साधु तुल्य श्रावक को कोई निर्दोष आहारादि देवे तो उसमें बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ वाले एकान्त-पाप बतलाते हैं।

(५) अगली रात और पिछली रात में साधुओं के स्थान में स्त्रियो के आने-जाने और उन्हे रात में मकान के अन्दर व्याख्यानादि सुनाने का बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध करते हैं और तेरहपथ वाले विधान।

(६) बारी बाधकर गृहस्थों के यहां से भोजन लाना और रास्ते मे अपने साथ सेवार्थ गृहस्थों को रखना और उनसे भोजन लेना, इनका बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध और तेरहपन्थ वाले विधान करते है।

(७) साध्वियो के साथ बिना कारण आहार पानी आदि के लेने-देने का बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध और तेरहपन्थ वाले विधान करते है।

इन बातों का खुलासा होना चाहिये।[1]

-प्रकाशक।

इस उत्तरादि के सुनाते समय तेरहपन्थ-सम्प्रदायी लोगों ने हो-हल्ला मचाना प्रारम्भ ओर शान्ति-भङ्ग की चेष्टा अवश्य की, लेकिन श्री डिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस के प्रशसनीय प्रबन्ध से वे लोग इसमे असफल रहे।

सुनाये जाने के पश्चात् जब कि टीकमचन्दजी डागा व नेमीनाथजी, इन दोनो को सुनाया हुआ उत्तर नोट कराया जा रहा था- तेरहपन्थ-सम्प्रदायवालो ने सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस से इस उत्तर के खडन और अपने पक्ष के लिये अगले रोज फिर सभा होने के विचार प्रकट किए। उनके विचारोको सुनकर पूज्यश्री ने सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब से फरमाया कि, मैने एक ही प्रश्न का उत्तर तीन रोज तक दिया, परन्तु प्रश्नकर्त्ता हठवश यही कहते है कि हमारे प्रश्न का उत्तर नही मिला। इतना ही नही कहते बल्कि इसके साथ असभ्यता के शब्दो का भी प्रयोग कर जाते है। जैसे उनका यह कहना कि, 'आपने अपने उत्तंर में हमें गालियें लिखी है। आदि, अत यदि प्रश्नकर्त्ता मेरे उत्तर से असतुष्ट हैं और मेरे उत्तर को अपने प्रश्न का उत्तर नही समझते है तो, कल दोनों ओर से किसी को मध्यस्थ नियत कर दिया जाय जो मेरे उत्तर और उनके प्रश्न को गलत सही का निर्णय दे सके। इसके सिवाय यदि तेरहपन्थ सम्प्रदाय वाले शास्त्रार्थ करना चाहते हों तो, नियमानुसार किसी को मध्यस्थ नियत करके शास्त्रार्थ हो जाये। तेरहपथ के पूज्य कालूरामजी या जो मुझसे शास्त्रार्थ करने के योग्य हो, उससे मैं शास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ। आप लोगो का, जनता का और मैं अपना स्वय का इस प्रकार अकारण समय नष्ट नही करना चाहता।'

पूज्यश्री के फरमाने को सुनकर सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब ने तेरहपन्थ-सम्प्रदाय वालों से प्रश्न किया कि आप लोग मध्यस्थ नियत करके जो प्रश्नोत्तर हुए है उनका निर्णय कराना चाहते हैं या शास्त्रार्थ! लेकिन तेरहपन्थ-सम्प्रदाय की ओर से श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी, श्रीमूलचन्दजी सेठिया, श्रीझीटूलालजी बोरड, श्रीबालचदजी बैगाणी, श्रीआशकरणजी भूतेडिया, आदि ने इन दोनो बातो में से किसी भी एक को स्वीकार नहीं किया। अतः ३। बजे के लगभग सभा विसर्जित हुई।

---

१. नोटः– तेरहपन्थ और बाईस–सम्प्रदाय मे मतभेद के जो मुख्य–मुख्य विषय ऊपर बताये गये है, वे यथार्थ है। परन्तु जनता को भ्रम मे रखने के लिये तेरहपन्थी लोग प्राय मतभेद की बातो की असलियत को तो छिपा रखते हैं और इन बातो के लिए यद्वा–तद्वा कहकर टाला–टूली कर देते है। इसलिए मतभेद की बातो के विषय मे हमारी सूचना है कि, यदि तेरहपन्थ–सम्प्रदायी लोग साधु के गले की फासी को गृहस्थ के खोलने आदि बातों में पाप न मानते हों तो फिर वे 'इन कामों मे हम धर्म मानते है, ऐसा स्पष्ट स्वीकार करके प्रसिद्ध कर दे, जिसमे तेरहपन्थ और बाईस–सम्प्रदाय मे मतभेद न रहकर एकता रहे। अन्यथा यह बाते स्वयसिद्ध है कि तेरहपंथ–सम्प्रदाय वाले, जो बाते ऊपर बताई गई है उन्हे उसी रूप मे मानते है। इसके सिवाय तेरहपथ सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रंथों से भी इन बातो का इसी रूप मे माना जाना सिद्ध है। यदि तेरहपथ–सम्प्रदाय वाले यह कहते हो कि हमारे ये सिद्धान्त शास्त्रानुमोदित है तो उनके पूज्य कालूरामजी बाईस–सम्प्रदाय के पूज्य जवाहरलालजी से शास्त्रार्थ करें जिसमें सर्व साधारण को सन्तोष हो जाय।

इन प्रश्नोत्तरो को सर्वसाधारण की सूचना के लिये हम प्रकाशित किये देते है, जिसमे तेरहपथ-सम्प्रदाय के लोग कोई भ्रमोत्पादक बात न फैला सके।

अन्त मे हम श्री रघुबरदयालसिहजी नाजिम साहब, श्रीशेरसिहजी जज साहब, श्रीडिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस, श्रीहजारीसिह जी तहसीलदार साहब और श्रीलक्ष्मणप्रसादजी प्रेसीडेण्ड सनातनधर्म सभा को उनके निष्पक्ष शाति रक्षा और परिश्रम के लिए धन्यवाद देते है। इस कार्य में पडित अम्बिकादत्तजी ओझा और पडित शकरप्रसादजी दीक्षित ने भी प्रशसनीय परिश्रम किया है, अत· वे भी धन्यवाद के पात्र है।

❑

[पृ. १७४ का परिशिष्ट]

चूरू-चर्चा

सम्वत् १९८४ की साल में पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी म. सा., कोठारी मूलचन्दजी की आग्रह भरी विनती को स्वीकार कर बीकानेर, सरदारशहर विहार करते हुए चूरू नगर मे पधारे थे और वहा एक अग्रवाल सज्जन के मकान मे विराजे थे। सयोगवश उस समय तेरापथियों का महामहोत्सव भी चूरू नगर में ही था। इस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये स्थान-स्थान से तेरापथी साधु और श्रावक चूरू में एकत्रित हुए थे। पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. का व्याख्यान जहाँ होता था, वहा जैन तथा जैनेतर जनता की अपार भीड होती थी। पूज्यश्री के युक्तियुक्त हृदयाकर्षक व्याख्यान का प्रभाव जनता पर जादू की तरह पडता था। एक दिन की बात है कि पूज्यश्री ने अपने व्याख्यान मे प्रसगवश यह फरमाया कि साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार नही ले सकता। यदि लेता है तो चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी बनता है। वह साधु तीन बार तक प्रायश्चित्त लेकर गच्छ मे रह सकता है, पर चौथी बार निष्कारण साध्वी से आहार पानी लेने पर यदि प्रायश्चित्त स्वीकार करे तो भी वह गच्छ से बाहर कर देने योग्य होता है। इस विषय की सिद्धि के लिये पूज्यश्री ने अनेक शास्त्रीय प्रमाण बतलाये, जिसका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। परन्तु यह बात तेरापन्थी श्रावकों को अच्छी नही लगी। क्योकि उनके साधु तो रोज ही बिना कारण साध्वियो से आहार-पानी लेते-देते हैं। अतः व्याख्यान श्रवण के पश्चात् चूरू-निवासी तेरापन्थी श्रावक गौरीलालजी वैद अपने पूज्य कालूरामजी के पास गये और इस विषय की चर्चा करते हुए अपने पूज्यजी से पूछा कि-क्या साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी नही ले सकता?

पूज्य कालूरामजी ने उत्तर देते हुए कहा-यदि साध्वी का लाया हुआ आहार पानी नही कल्पता तो फिर हम क्यो लेते?

वैदजी ने कहा- क्या इस विषय में कोई शास्त्रीय प्रमाण भी है?

पूज्यजी- हा, बहुत प्रमाण है।

वैदजी-अगर बाईस सम्प्रदाय के साधु इस विषय में प्रमाण जानने के लिये अपके पास आवे तो क्या आप उन्हें बता सकेंगे?

पूज्यजी- क्यो नहीं ? अवश्य बतलाएँगे।

इस प्रकार पूज्य कालूरामजी के कहने पर वैदजी पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा के पास आये और कहा कि- आप तो साध्वी के द्वारा लाये हुए आहार-पानी के लेने का साधु के लिये निषेध करते है, परन्तु हमारे पूज्यजी का तो कहना है कि साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी साधु ग्रहण कर सकता है।

पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने पूछा-क्या इस विषय मे आपके पूज्यजी कोई शास्त्रीय प्रमाण भी बता सकेंगे ?

वैदजी-हा, क्यो नहीं, अगर आप या आपके साधु पधारेंगे तो वे अवश्य बतलायेगे।

तब पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने मुनिश्री बड़े चादमलजी म. वर्तमान आचार्य प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. मुनिश्री हरकचन्दजी म. तपस्वी मुनिश्री सुन्दरलालजी म. और तपस्वी मुनिश्री केशरीमलजी म. को सरल भाव से प्रमाण पूछने के लिये भेजा और कहा कि मेरे जानने मे तो कोई शास्त्रीय प्रमाण नही है, पर तेरापथी पूज्यजी यदि कोई शास्त्रीय प्रमाण बतावें तो आप लोग उसे देख आवें। यदि वस्तुत. कोई शास्त्रीय प्रमाण होगा तो अपने को मानने मे कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार पूज्यश्री की आज्ञा पाकर उपरोक्त पाचों मुनिराज तेरापथी साधुओं के स्थान पर गये। उस समय तेरापथियों के स्थान मे व्याख्यान हो रहा था। वर्तमान आचार्य प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. सा. ने पुछवाया कि क्या हम लोग भीतर आ सकते है ? स्वीकृति सूचक उत्तर मिलने पर पाचो मुनिराजो ने भीतर प्रवेश किया। तेरापथी श्रोताओ मे जो सभ्य थे वे मुनिराजो के आने पर खडे हुए और उनसे बैठने का भी आग्रह किया। परन्तु प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने फरमाया कि हम लोग थोडी देर के लिये ही आये है, बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है। थोड़ी देर बाद प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने गौरीलालजी वैद से कहा कि आपके पूज्यजी ने बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार पानी साधु को ग्रहण करना कल्पता है, इस विषय मे शास्त्रीय प्रमाण देने का कहा है सो वह किस शास्त्र का प्रमाण है; यह बतावें।

तेरापथी पूज्यजी ने कल्पना भी नही की होगी कि भरी सभा में इस प्रकार शास्त्रीय प्रमाण बतलाने की चुनौती दी जायगी। उन्होने तो अपने भक्त को भोला समझकर टाल दिया था। परन्तु अचानक यह प्रश्न उपस्थित होने पर पूज्य कालूरामजी सकपका गये। उनके चेहरे का रग उड़ गया। आखे नीचे झुक गई। प्रश्न एक दम सीधा (Direct) था। हिया हवाला करने की कोई गुञ्जाइश नही थी। बेचारे पूज्यजी मुसीबत में फॅस गये। अगर कहते हैं- प्रमाण है, तो दिखावे कहॉ से ? और अगर कहते है- नही, तो कलई खुलती है। जैसे सद्गृहिणी अपने पति को भोजन कराती है, बिछौना बिछाती है, वैसे ही उनकी साध्वियाँ आहार लाती है, परोसती है, बिछौना करती है, सो यह सब शास्त्र विरुद्ध ठहरता है। इस प्रकार एक ओर कुआ और दूसरी ओर खाई देखकर कालूरामजी घबरा गये। कुछ देर मौन रहने के बाद आखिर उनसे यही कहते बना कि-

'शास्त्र में कठेई निषेध चाल्यो कोयनी, ई वास्ते साध्वी रो लायो हुवो आहार-पाणी साधु ने कल्पे है।'

यह है कालूरामजी स्वामी का प्रमाण जिसके बल पर तेरापथी साधु, साध्वियो से आहार पानी मगवाते है और फिर भी नव बाड सहित ब्रह्मचर्य पालने का दम्भ भरते है। कैसी विडम्बना है!

मगर प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. सहज ही मानने वाले नही थे। उन्होने फरमाया कि साधु को साध्वी से आहार मगवाकर खाने का शास्त्र मे कहीं विधान नही है। आपका कहना है कि निषेध न होने के कारण ही साधु, साध्वी का लाया हुआ आहार ग्रहण कर सकता है, परन्तु यह कथन भी तो शास्त्रविरुद्ध है। शास्त्र में स्पष्ट निषेध किया गया है-

"जे निग्गथा य निग्गथिओ य संभोइया सिया, णो ण कप्पइ अन्नमन्नस्स अतिए वेयावडिय करित्तए। अत्थि वा इण्ह केइ वेयावच्च कप्पइ ण तण्ह वेयावच्च कारावित्तए। णत्थि वा इण्ह केई वेयावच्च करेत्तए, एव णं कप्पइ अन्नमन्नेण वेयावच्च कारावित्तए।"

व्यवहार सूत्र, उ. ५

टीका-ये निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्याश्च साभोगिकास्तेषा नो णमिति वाक्यालकारे कल्पते अन्योऽन्यस्य वैयावृत्य कारयितुम्। अस्ति कश्चित् वैयावृत्यकरस्ततः कल्पते त वैयावृय कारयितुम्। नास्ति चेत् क्वचित् वैयावृत्यकर एव सति कल्पते अन्योन्यस्य वैयावृत्य कारयितुमिति सूत्रसक्षेपार्थ.।"

भावार्थ- एक गच्छ के (साभोगिक) साधु-साध्वियों को परस्पर मे व्यावच्च करवाना नही कल्पता है। एक मात्र साधु ही दूसरे साधु की व्यावच्च (वैयावृत्य-सेवा) करे, तथा साध्वी ही साध्वी की व्यावच्च करे। कदाचित् कोई सकट का समय आ गया हो, साधु के पास दूसरा साधु न हो अथवा साध्वी के पास दूसरी साध्वी न हो तो ऐसे सकटकाल में साधु साध्वी परस्पर मे एक दूसरे से व्यावच्च करा सकते है।

व्यवहार सूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्य में कहा है-

उउभजमाणसुहेहि देहसहावाणुलोमभुञ्जेहि।
कढिणहिययाण वमण बधत चिरेण कइयविया।

टीका-ऋतौ यैर्भजमानैर्भज सेवायामिति वचनात् सुख जन्यते तानि ऋतुभजमानसुखानि तैस्तथा देह. शरीर तस्य स्वभाव स्वरूप देहस्वभावस्यानुलोमान्यनुकूलानि यानि तैर्वैयावृत्य कुर्वत्य· सयत्यो, ये सयतीभिरानीत भुञ्जते तेषा कठिनहृदयानामपि धृतिबलिष्ठानामपि सयतात्मनोऽचिरेण कालेन बध्नन्ति बाधयन्तीत्यर्थः। कथभूता इत्याह कैतविक्य कैतवेन कपटेन अन्यन्मनसि अन्यद्वाचि इत्यादि लक्षणेन निर्वृत्ताः कैतविक्यः।

अर्थात्- जिस ऋतु में जो पदार्थ सुखदायी होते हैं उन पदार्थो द्वारा तथा शरीर की प्रकृति के अनुकूल पदार्थो द्वारा साधु की सेवा करने वाली-ऐसा आहार लाकर साधु को खिलाने वाली साध्विया मजबूत दिलवाले अर्थात् धैर्य आदि के सम्पन्न हृदय वाले-धीर-वीर और सयम-परायण साधु के सयम को भी नष्ट कर डालती है। उन साध्वियो के हृदय में कुछ और होता है तथा वाणी मे कुछ और होता है। वे कपट-युक्त होती है।

बिना करण व्यावच्च करने के निषेध का शास्त्रीय पाठ और भाष्य बतलाते हुए प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. सा. ने उसका विवेचन करते हुए कहा कि- हट्टे कट्टे साधुओ के मौजूद रहते हुए

भी शास्त्र विरुद्ध साध्वियो का लाया हुआ आहार पानी आदि भोगना साधु के लिये उचित नही है। क्योंकि वर्तमान काल के साधु-साध्वियो ने वीतरागावस्था को प्राप्त नही कर लिया है। साधु-साध्वी के पारस्परिक अधिक ससर्ग रहने से मानसिक विकृति उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

वास्तविक बात यह है कि ब्रह्मचर्य साधु धर्म का प्राण है। वह सब तपों में उत्तम तप है। 'तवेसु वा उत्तम बभचेर' कह कर शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य की महिमा प्रकट की है। अतएव ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये शास्त्रों मे अनेक मर्यादाए साधुओ के लिए बताई गई है। दशवैकालिक सूत्र मे यहां तक कहा है कि 'चित्तभित्तिं न निज्झाए' अर्थात् जिस दीवाल पर स्त्रियो के चित्र बने हों, उस दीवाल को भी साधु न देखे। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ही नौ वाडो का कथन शास्त्र में किया गया है। ऐसी दशा मे साध्वी, साधु के लिए आहार-पानी लावे, साधु को परोस कर जिमावे, उनका बिछौना बिछावे, इत्यादि घनिष्ट सम्पर्क साधुओं के साथ रखे, यह कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ? गृहस्थ पति-पत्नी को यह व्यवहार भले ही शोभा देता हो, पर साधु साध्वी को यह शोभा नही देता। इस सीधे-सादे सत्य को जो नही समझते या समझकर भी जो अपनी सुख-सुविधा के स्वार्थ से प्रेरित होकर मानना नही चाहते, वे किस प्रकार अपने ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते है, यह भगवान् ही जानें या स्वय वही जानें।

इस प्रकार प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने निम्न १२ प्रकार के सभोग बतलाये-

दुवालसविहे सभोगे पण्णत्ता, तजहा-
उवहिसु अ भत्तपाणे, अजलीपग्गहे त्ति य।
दायणे य निकाए य, अब्भुट्ठाणे त्ति आवरे॥
किइकम्मस्स य करणे, वेयावच्च करणे इ य।
समोसरण सन्निसिज्जा य कहाए य पबधणे॥

अर्थात्- (१) उपधि (२) शास्त्र की वाचना (३) आहार पानी (४) अंजली-करण (५) वस्त्र तथा शिष्य आदि देना (६) स्वाध्याय; शय्या आदि के लिये निमन्त्रण देना (७) अभ्युत्थान, उठकर खड़ा होना (८) कृतिकर्म—विधिपूर्वक वन्दन करना (९) वेयावच्च-आहारादि देकर सहायता करना (१०) समवसरण—व्याख्यान आदि मे साधर्मी साधुओं का मिलना (११) निषद्या-एक आसन पर बैठना (१२) कथा प्रबध—पाच प्रकार की कथा करना।

इन बारह में से साधु, साध्वी के साथ छह व्यवहार कर सकते हैं। वह यह हैं- १. श्रुत, २. अजलि-ग्रहण, ३. अभ्युत्थान, ४. कृतिकर्म, ५. समवसरण, ६. कथा प्रबंध। कथा प्रबध में से साधुवाद, जल्प तथा वितडा यह तीन कथाए साध्वी के साथ नही कर सकते है- सिर्फ दो प्रकीर्ण कथा और निश्चय कथा ही कर सकते हैं। इन छ व्यवहारों के अतिरिक्त शेष छह व्यवहार साध्वी के साथ साधु को करना नही कल्पता है। अर्थात् १. उपधि (वस्त्र पात्र का धुलाना, रंगाना, लेन देन) २. आहार- पानी लेना-देना, ३. सेवा के लिए शिष्यादिक देना ४. निमत्रण, ५. वेयावच्च और ६. निषद्या (एक आसन पर बैठना) यह छः प्रकार के सम्भोग करना शास्त्र में निषिद्ध हैं। उपरोक्त छ· प्रकार के सम्भोगों का निषेध करते हए समवायाग सूत्र की टीका में लिखा है- 'विसभोगिकेन पार्श्वस्थादिना वा संयत्या वा सार्द्धमुपधि शुद्धमशुद्ध वा निष्कारण गृह्णन् प्रेरितः प्रतिपन्नप्रायश्चित्तोऽपि वेलात्रयस्योपरि न संभोग्यः। एवमुपधे परिकर्म परिभोग वा कुर्वन् सम्भोग्यो विसम्भोग्यश्चेति अर्थात्- अन्य गच्छ के साधु के साथ, शिथिलाचारी

साधु के साथ और साध्वी के साथ शुद्ध वस्त्र-पात्र आदि रूप उपधि को बिना कारण ग्रहण करने वाले साधु को तीन बार तक तो प्रायश्चित्त देकर गच्छ में लिया जा सकता है। अगर चौथी बार फिर ग्रहण करे और प्रायश्चित्त लेना चाहे तो भी उसे गच्छ से बाहर कर देना चाहिए। इसी तरह साध्वी से परिक्रम-वस्त्र को धुलाना-सिलाना, पात्र को रंगाना, ओघे पूजनी बटाना आदि और परिभोग यानी उपरोक्त चीजो को साध्वी से लेकर पुनः अपने काम मे लेने वाले साधु को भी उपधि लेने की तरह तीन बार तो प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है, पर चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नही रखा जा सकता।

'भत्तपाणे' त्ति-उपधिद्वारवद्‌वसेय, नवरमिह भोजनदान च परिकर्मपरिभोगयो स्थाने वाच्यमिति।

अर्थात्–भात-पानी का सभोग भी उपधि की तरह समझना चाहिये। यहा भी साध्वी से लाया हुआ बिना कारण आहारादि ग्रहण करे या बिना कारण साध्वी को देवे तो लेने और देने वाले साधु को तीन बार प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है, परन्तु चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नहीं रखा जा सकता है।

वैयावृत्त्यम्-'आहारोपधिदानादिना प्रश्रवणादिमात्रकार्पणादिनाऽधिकरणोपशमनेन साहाय्यदानेन वोपष्टम्भकरण तस्मिश्च विषये सम्भोगासम्भोगौ भवत इति।'

अर्थात्- आहार और उपधि देना, लघुनीत और बड़ी नीत को परठना, क्लेश होने पर समझा कर शान्त करना, आसन बिछाना, प्रतिलेखन करना, उठाना-बैठाना, सुलाना आदि सहायता करना यह सब व्यावच्च संभोग का अर्थ है। ये व्यावच्च सबधी बातें जो साधु निष्कारण साध्वी से करावें तो उसे तीन बार प्रायश्चित्त देकर गच्छ मे रखा जा सकता है, परन्तु चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नहीं रखा जा सकता।

इसी तरह छहों सभोगों का समवायाग सूत्र की टीका में निषेध किया गया है। परन्तु विस्तार भय से हम यहॉ सब सभोगों का विवेचन नही कर रहे हैं। बचे हुए सभोगों का विवरण भी उपधि आदि की तरह ही समझ लेना चाहिए। जब कि साध्वी से व्यावच्च कराने का व्यवहार सूत्र के मूल मे ही निषेध है तो फिर साध्वियों से आहार-पानी मॅगा कर खाना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ?

इस पर तेरापथी पूज्य कालूरामजी ने कहा कि व्यावच्च करने का अर्थ केवल हाथ-पैर दबाना ही है, यह बात शास्त्र-सम्मत नही है। व्यावच्च शब्द के इस सकीण अर्थ की कल्पना सिर्फ इसलिए की गई है कि तेरापथी साधुओं को आहार-पानी लाने का कष्ट न करना पड़े और साधु साध्वियों का लाया आहार-पानी करने मे सुविधा हो। अपनी सुविधा और मोज के लिए यह अर्थ करते समय न तो शास्त्रीय अर्थ पर ध्यान दिया गया है और न अपने मान्य ग्रन्थ भ्रम-विध्वसन पर ही नजर फेरी है।

व्यवहारसूत्र में वेयावच्च का विवेचन करते हुए कहा है-

दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते, तजहा-आयरियवेयावच्चे.........इत्यादि। इस पाठ के भाष्य में कहा है-त्रयोदशभिः पदै. वैयावृत्य कर्त्तव्यम्, तान्येव त्रयोदशपदान्याह-

भत्ते पाणे सयणासणे (म) पडिलेहपाममच्छिमद्धाणे।
राया तेणे दडगाहणे य गेलण्णमत्ते य। १२५।

टीका- 'भक्तेन भक्तानयनेन वैयावृत्त्यं कर्त्तव्यम्। पानेन-पानीयानयनेन'

अर्थात्- भोजन और पानी लाकर देना व्यावच्च है।

इस पाठ मे आहार लाने को स्पष्ट रूप से वैयावृत्त्य कहा है। इसके अतिरिक्त आपके ग्रन्थ भ्रमविध्वसन मे भी लिखा है-

वेयावच्च-भातादि धर्मना जे आधारकारी वस्तु तेणे करी ने आधार दे तो (भ्र, वि. पृष्ठ २५८)

'व्यावच करे- आहारादिक आपवे करीने'। (भ्र. वि पृ. २५९)

इस उद्धरणो से यह बात स्पष्ट हुई कि वेयावच्च का अर्थ सिर्फ हाथ-पैर दबाना नही है बल्कि आहार-पानी ला देना भी है। और वैयावच्च नामक व्यवहार बिना कारण साधु-साध्वी का आपस में करना निषिद्ध है, इसलिए साध्वी का लाया हुआ आहार ग्रहण करना साधु के लिए निषिद्ध है। अतः जो आहार लेता है वह प्रायश्चित्त का भागी होता है।

थोड़ी देर तक चुप्पी साधकर तेरापथी पूज्य कालूरामजी ने कहा कि-'देखिये, व्यवहार सूत्र मे स्पष्ट रूप से साध्वी द्वारा लाये हुए आहार-पानी को ग्रहण करने का विधान किया गया है।

'कप्पतिनिग्गथाण वा निग्गथीण वा निग्गथी अण्णगणातो आगत खयायार सवलायारं सकिलिट्ठायार चरित्त तस्स ठाणस्स आलोयावेत्ता पडिक्कमावेत्ता पायच्छित्त पडिवज्ञित्ता उवट्ठावित्तए वा सभुजित्तए वा सवसित्तए वा तीसेइ तिरियादिसि वा उद्दिसित्तए वा धारित्तए वा'।

—व्यवहार सूत्र, उ. ६।

अर्थात्- अन्य गच्छ से आई क्षत, शबल, भिन्न और सक्लिष्ट आचार वाली अकेली साध्वी को आलोचना कर लेने पर प्रतिक्रमण कर लेने पर और प्रायश्चित्त अगीकार कर लेने पर उसको महाव्रतों मे स्थापन करना, आहार आदि का सभोग करना, एक स्थान में रखना और यथायोग्य पदवी देना साधु को कल्पता है।

देखिए, जैसे यहा अकेली साध्वी आई और आलोचना आदि लेकर शुद्ध हो गई। अब इसके साथ आहार-पानी आदि लेना-देना कल्पता है। इसी तरह दस और सौ के साथ भी देना-लेना कल्पता है'।

उपरोक्त व्यवहार सूत्र का प्रमाण बताकर जब पूज्य कालूरामजी म. चुप हो गये तब प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. ने कहा कि साध्वी के साथ आहार-पानी आदि लेने-देने का जो व्यवहार सूत्र के ६ उद्देश का प्रमाण बताया है, वह बिलकुल असगत है। क्योकि इस सूत्र में तो अपवाद रूप से कथन किया गया है। जिसका आशय यह है कि सयम रक्षा के लिए किसी हालत मे भी अकेली साध्वी को रहना नही कल्पता है। कम-से-कम ३ साध्विया ही एक साथ रह सकती है। सयोगवश दो साध्विया यदि काल कर जाएँ या दो साध्विया कही मार्ग भूल जाएँ तो ऐसी हालत मे वह अकेली रही हुई साध्वी अगर भटकती हुई निर्ग्रन्थ मुनियो के पास आजाय, जहा अन्य साध्विया भी न हों तो उस साध्वी को वे निर्ग्रन्थ मुनि उसकी सयम रक्षा के लिए आलोचना आदि कराकर आहार-पानी आदि दे ले सकते हैं और जहा तक दूसरी साध्वियो का योग न मिले वहा तक अपने स्थान में भी रख सकते है। इस प्रकार उपरोक्त सूत्र का विधान जहा अपवाद रूप में किया गया है वहा यदि कोई इस पाठ मे आये हुए 'सभुजित्तए' और 'सवसित्तए' आदि पदो को प्रमाण मे उपस्थित करके साध्वियों के साथ आहार-पानी का लेना-

देना और खाना-पीना सिद्ध करना चाहे तो उसका यह प्रयास समझदारो के सामने हास्यास्पद ही ठहरेगा। क्योकि 'सभुञ्जित्तए' और 'सवसित्तए' यह दोनों पद एक साथ आये है। अगर सभुञ्जित्तए पद के आधार पर आहार-पानी के लेन-देन का बिना कारण ही विधान मान लिया जाय तो 'सवसित्तए' पद के आधार पर उपाश्रय मे बिना कारण एक साथ निवास करना भी विधेय ठहर जायगा। अगर सकट-काल के बिना, साधारण अवस्था मे भी साधु-साध्वी का एक जगह बसना शास्त्रानुकूल है तो फिर खेद के साथ कहना पडेगा कि ऐसे साधु-साध्वी गृहस्थ पुरुषों और स्त्रियो से किस बात मे श्रेष्ठ है ?

अगर 'सवसित्तए' पद सिर्फ सकट काल के लिए है, सदा के लिए नहीं तो फिर 'संभुञ्जित्तए' पद भी सकट काल के लिए ही मानना उचित है।

तात्पर्य यह है कि जैसे प्रबलतर कारण उपस्थित होने पर साधु, साध्वियो के साथ एक जगह निवास कर सकता है उसी प्रकार प्रबलतर कारण के होने पर ही साधु साध्वी को आहार-पानी दे दिला सकता है। एक साथ निवास करने के विषय मे ठाणाग सूत्र का निम्न पाठ प्रमाण है-

पचहिं ठाणेहिं निग्गथा निग्गथीओ य एगत्तओ ठाण वा सिज्ज वा निसीहिय वा चेतेमाणे णातिकम्मति, तजहा-अत्थेगइआ निग्गथा निग्गथीओ य एग मह अगामितँ छिन्नावाय दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा। तत्थ गओ ठाण वा सेज्ज वा निसीहिय वा चेएमाणे णातिक्कमति (१) अत्थेगइआ निग्गथा २ गामसि वा नयरसि वा जाव रायहाणि वा वास उवगता एगतिया यत्थ उवस्सय लभति एगतिता णो लभति, तत्थेगतितो ठाणं वा जाव नातिक्कम्मति। (२) अत्थेगतिआ निग्गथा य २ नागकुमारावाससि वा. वास उवागता; तत्थेगयओ जाव नातिक्कमति। (३) आमोसगा दीसति ते इच्छति निग्गथीओ चीवरपडिताते पडिगाहित्तते, तत्थेगयओ ठाण वा जावणातिक्कमति (४) जुवाणा दीसंति ते इच्छति निग्गथीओ मेहुणपडिताते पडिगाहित्तते, तत्थेगयओ ठाण वा जाव णातिक्कमति। (५) इच्चेहि पचहिं कारणेहिं जाव नातिक्कमति।'

भावार्थ- साधु तथा साध्वी निम्न-लिखित पांच कारणों से एक स्थान मे कायोत्सर्ग, उपवेशत (बेठना) श्यन तथा स्वाध्याय करते हुए साधु की आचार सबंधी आज्ञा का उल्लङ्घन नही करते।

(१) पहला कारण-दुर्भिक्ष आदि कारण से एक देश को छोडकर दूसरे देश में जाते हुए रास्ते मे ऐसा जगल आ गया हो, जिसके इर्द-गिर्द कोई गाव न हो, जो बहुत बड़ा हो, जिसमें कोई निवास न करता हो, निर्जन हो, जिसमें अपने साथियों के तथा गौ आदि के आने-जाने का पता न चलता हो, मार्ग मालूम न पडता हो, जिसे पार करने में बहुत समय लगता हो, ऐसे भयानक निर्जन-वन मे साधु-साध्वी एक जगह निवास करे तो उन्हे आज्ञा के उल्लङ्घन का दोष नहीं लगता।

(२) दूसरा कारण-जहा राजा का राज्याभिषेक होता हो ऐसी राजधानी में मनुष्यों की बहुतायत से साधु-साध्वी मे से एक को स्थान मिल गया हो और दूसरे को स्थान न मिला हो तो ऐसी अवस्था मे एक साथ रह सकते हैं।

(३) तीसरा कारण-किसी गृहस्थ का घर रहने को न मिलने की हालत मे साध्वियों को सुनसान मदिर मे रहना पड़े या जहा बहुत भीडभड़क्का हो या जिसकी देख-रेख करने वाला कोई न हो ऐसे स्थान मे साध्वियो को रहना पडे तो उस स्थान पर साध्वियों की रक्षा के निमित्त साधु भी एक किनारे रह सकते है।

(५) पाँचवाँ कारण-अगर कोई दुष्ट पुरुष साध्वियो का शील खडन करना चाहता हो तो उनके शील की रक्षा के लिए साधु, साध्वी के साथ रह सकते है।

यह एक अपवाद सूत्र है। सामान्य नियम तो यह है कि साधु और साध्वी एक साथ निवास न करे और न एकान्त मे भाषण करे, किन्तु यहा पूर्वोक्त पाच कारणो मे से किसी कारण के उपस्थित होने पर साधु-साध्वियो के साथ रहने का अपवाद रूप मे विधान किया गया है।

आप लोगो को समझना चाहिए कि व्यवहार सूत्र के छठे उद्देशक के २३वे सूत्र मे आये हुए 'सभंज्ञिए' पद से अगर आप साधु-साध्वी आपस मे बिना कारण ही आहार का लेन-देन शास्त्रानुकूल मानते है तो फिर 'संवसित्तए' पद से बिना कारण ही साधु-साध्वी का एक ही उपाश्रय मे रहना शास्त्रानुकूल क्यो नहीं मानते ? सच तो यह है कि शिथिलाचार बढ जाने के कारण और साधुओ मे आराम तलबी आजाने के कारण ही इस प्रकार की शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा होने लगी है। ऐसा न होता तो साध्वियो के अधिक सम्पर्क से बचने के लिए दी गई शास्त्राज्ञा के विरुद्ध आप क्यों साध्वियो से आहार मगवा-मगवा कर खाते ? अगर आप अपने ही हाथो भिक्षा लावें और साध्वियों से न मगवावे तथा न परोसवावे तो आपकी क्या हानि है ? ऐसा करने से आपके सयम की अशुद्धता की सभावना हट सकती है और इस प्रकार लाभ ही हो सकता है। हानि कुछ भी नही है मगर पता नहीं, किस रहस्यमय कारण से आप अपना आग्रह त्यागना नहीं चाहते। कुछ भी हो, अगर दूरदर्शिता से काम न लिया गया तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब आपके साधु और साध्वी बिना कारण आहार-पानी का लेन-देन करने के समान बिना कारण एक ही मकान मे रहने लगे। ऐसा करने वाले शिथिलाचारी साधु कहेंगे 'सभुञ्जित्तए' पद के आधार पर जैसे आहार पानी बिना कारण लिया जा सकता है, उसी प्रकार 'सभुञ्जित्तए' पद के आधार पर एक मकान मे निवास भी किया जा सकता है। जिनका शिथिलाचार भोजन के लेन-देन तक सीमित है, वे उन्हें क्या उत्तर देंगे ?

जो कुछ भी हो, दुराग्रह के कारण अगर कोई इस अच्छे आशय से दिये गये परामर्श को स्वीकार नही करता तो उसकी मर्जी! निष्पक्ष विचारक सच्चाई को समझ ले तो हमारा प्रयास असफल नही होगा।

हमने ऊपर ठाणाग सूत्र का उद्धरण देकर पाच कारण बताए हैं, उनके अनुसार साधु और साध्वी दोनो ही एक स्थान में रह सकते है और कारणवश आई हुई अकेली साध्वी को भी अपने मकान में रख सकते हैं। जैसे कि किसी अनार्य पुरुष द्वारा किये जाने वाले अत्याचार से बचाने के लिये किसी सती स्त्री को हाथ पकड़ कर कोई गृहस्थ अपने घर ले आवे और उसके शील की रक्षा करे तो वह पुरुष लोक की दृष्टि मे अपराधी नहीं माना जाता है, किन्तु उस सती स्त्री का शीलरक्षक होने के कारण धार्मिक माना जाता है। इस अपवाद दृष्टान्त का आश्रय लेकर यदि कोई निष्कारण अवस्था मे पराई स्त्री का हाथ पकड़ कर अपने घर मे ले आवे तो वह अपराधी, अन्यायी और राजदड का भागी माना जाता है, परन्तु धार्मिक नहीं। इसी तरह किसी अन्य गच्छ से निकल कर आई हुई अकेली साध्वी को यदि शील रक्षा करने के लिए शुद्ध करके अपने पास रखे और आहार आदि देवे तो वह शास्त्राज्ञा का उल्लङ्घन करने वाला नही, अपितु आज्ञापालक माना जायगा। परन्तु निष्कारण अवस्था मे यदि कोई इस अपवाद सूत्र का आश्रय लेकर साध्वी का लाया हुआ आहार स्वय ग्रहण करे और उसे देवे तो वह अवश्य ही शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाला होगा।

इस तरह प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. के सबल प्रमाणो को जोश भरी वाणी में सुनकर पूज्य कालूरामजी गुमसुम हो गए। उनका मुँह नीचा हो गया। मगर उस व्याख्यान-सभा मे उनके बहुत से अन्ध भक्त श्रोता मौजूद थे। अपने पूज्यश्री की यह दशा देखकर उन्होने मदद करदी। श्रोताओ ने अपने अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया। वह अमोघ अस्त्र था-हो हल्ला! कोलाहल! चिल्लाहट!! भारी कोलाहल मे प. मुनिश्री की वाणी विलीन-सी हो गई। पाचो मुनिराज अपने स्थान पर शान्ति पूर्वक लौट आये।

चूरू मे वर्तमान आचार्य प. मुनिश्री गणेशीलालजी म. की तेरापथी पूज्य कालूरामजी के साथ जो चर्चा हुई थी उसका सक्षिप्त वृत्तान्त यही है जो ऊपर दिया जा चुका है। परन्तु यह आश्चर्य के साथ कहना पडता है कि तेरापथ के वर्तमान आचार्य तुलसीरामजी ने अपने 'कालू जस रसायन' नामक ग्रन्थ मे चूरू की चर्चा का वर्णन करते हुए स्वरचित ढालो में लिखा है कि चूरू की चर्चा में पूज्य कालूरामजी ने निष्कारण साध्वियो से आहार लेने का विधान करने वाले शास्त्र का प्रमाण बतलाकर बाईस सम्प्रदाय के साधुओं को परास्त किया था। इस प्रकार मिथ्या बाते लिखकर अपनी पोपलीला को जाहिर न होने देने के लिये जो प्रयत्न किया गया है वह समझदारों की दृष्टि मे निद्य ही ठहरेगा। यदि वस्तुत: शास्त्र मे ऐसा प्रमाण मिलता हो और तेरापथी साधु उसे बतलाने का कष्ट करे तो बाईस सम्प्रदाय के साधु अब भी मानने के लिए तैयार बैठे है। जब कि शास्त्र में स्थान-स्थान पर इस विषय का निषेध पाया जाता है तब फिर इसका विधान हो ही कैसे सकता है-फिर भी तेरहपथी साधु अपने सयम मर्यादा के घातक मन्तव्य का समर्थन करने के लिए अक्सर ठाणाग सूत्र का पाठ पेश करते रहते है। अब यहॉ उस पाठ पर भी जरा विचार कर लेना आवश्यक है। वह पाठ इस प्रकार है-

चउहिं ठाणेहिं णिग्गथे णिग्गथि आलवमाणे वा सलवमाणे वा णातिक्कमति तजहा-पथ पुच्छमाणे वा, पथ देसमाणेवा, असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा दलेमाणे वा, दलाबेमाणे वा।

-ठा. ड. २, सूत्र २९।

टीका-चउहीत्यादि स्फुटं, किन्तु आलपन् ईषत् प्रथमतया वा जल्पन् सलपन् मिथो भाषणेन नातिक्रमतिन लघयति निर्ग्रन्थाचार- 'एगो एगित्थिए सद्धि नेव चिट्ठे न सलवे विशेषत साधव्या इत्येव रूप, मार्गप्रश्नादीनां पुष्टालम्बनत्वादिति, तत्र मार्गपृच्छन् प्रश्नीयसाधर्मिक गृहस्थपुरुषादीनामभावे-हे आर्ये! कोऽस्माकमितो गच्छता मार्ग. ? इत्यादिना क्रमेण मार्ग वा तस्या देशयन्-धर्मशीले! अय मार्गस्ते इत्यादिना क्रमेण; अशनादि वा ददत्-धर्मशीले! गृहाणेदमशनादीत्येव, तथा अशनादि दापयन्-आर्ये! दापयाम्येत्तत्तुभ्यम् आगच्छेह गृहादावित्यादिविधिनेति।

अर्थ- निर्ग्रन्थ का यह आचार है कि वह अकेला अकेली स्त्री के साथ और खास कर साध्वी रे साथ न ठहरे और न बातचीत करे। किन्तु सूत्रोक्त चार कारणो में से कोई कारण उपस्थित होने पर साधु यदि अकेली साध्वी के साथ थोडा या सभाषण करे तो वह अपने पूर्वोक्त आचार का उल्लघन नही करता क्योंकि, वार्त्तालाप करने के यह चार प्रबल कारण हैं। अकेली साध्वी के साथ वार्त्तालाप करने के चार प्रबल कारण इस प्रकार है-

(१) पहला कारण- जब पूछने योग्य कोई साधर्मी या गृहस्थ पुरुष न हो तो साध्वी से मार्ग पूछना। जैसे- 'आर्ये! हमारे इधर जाने का मार्ग कौन-सा है?'

(२) दूसरा कारण- साध्वी अगर मार्ग भूल गई हो तो उसे मार्ग बतलाना। जैसे- 'हे धर्मशीले! तुम्हारे जाने का मार्ग यह है।'

(३) तीसरा कारण- अकेली साध्वी को भिक्षा न मिली हो तो यह कह कर भिक्षा देना- 'साध्वी! मैं अपनी भिक्षा मे से अशन आदि देता हूँ।'

(४) चौथा कारण- किसी गृहस्थ के घर से भिक्षा दिलाने के लिए कहना। जैसे- 'आर्यिके! आओ मै तुम्हें भिक्षा दिलवाता हूँ।''

अकेली साध्वी के साथ इन चार कारणो के होने पर ही साधु वार्त्तालाप कर सकता है, अन्यथा नहीं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि यह एक अपवाद रूप विधान है जिसका सकट के समय ही प्रयोग किया जा सकता है। अगर यह विधान विवशता और लाचारी की हालत का न होता तो फिर शास्त्रकार चार कारणो का उल्लेख ही क्यों करते ? चार कारणो का उल्लेख करने से ही यह सिद्ध हो जाता है कि इन कारणो के अभाव में साधु अकेली साध्वी से न बातचीत कर सकता है और न उसके साथ खड़ा हो सकता है।

यह पाठ इतना स्पष्ट है कि इस पर अधिक विवेचन करने की आवश्यकता ही नही है। इस पाठ से साधु-साध्वी का आपस मे निष्कारण आहार आदि लेना-देना किसी भी हालत मे सिद्ध नहीं होता। यही नहीं वरन् इसी पाठ से बिना कारण उनका आहार लेना-देना निषिद्ध ठहरता है।

सूत्र में और सूत्र की टीका मे 'णिग्गथे' और 'णिग्गंथि' यह एक वचन का प्रयोग है। एक वचन के इस प्रयोग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मार्ग भूली हुई अकेली साध्वी को मार्ग बता देना अथवा साधु स्वयं मार्ग भूल गया हो तो अकेली साध्वी से मार्ग पूछ लेना लाचारी की हालत मे दोष नही है। इसी प्रकार गुण्डों आदि के उपद्रव के कारण जब साध्वी बाहर न जा सकती हो तब अकेली साध्वी को आहार-पानी देना भी साधु का कर्त्तव्य है। यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि सूत्र में यह तो लिखा है कि विशेष कारण होने पर साधु अपनी भिक्षा में से साध्वी को भिक्षा दे दे, मगर यह कही नहीं लिखा कि साधु, साध्वी की भिक्षा में से अपने लिए ले लेवे। ऐसी दशा में साध्वियो के झुंड के साथ साधुओ का खाना-पीना और बिना ही किसी कारण के उनकी लाई हुई भिक्षा ग्रहण कर लेना, यह शास्त्र से सर्वथा असंगत है, स्वेच्छा है और लोलुपता का परिचायक है। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि साधु-साध्वी निष्कारण आहार-पानी का लेन-देन नही कर सकते है। यदि तेरहपंथी साधु भी इस सरल सत्य को स्वीकार कर अपनी कुमान्यता का परिहार कर देंगे तो अपने सयममार्ग को कलुषित होने से बचा सकेगे।

❑

न्यायविजयजी से निवेदन

आपकी प्रश्नावली कालक्रम से माघ शुक्ल ११ मे हमे भी मिली। उसके आदि पृष्ठ मे आप तीनो फिरको के आपसी झगडे मिटाने की कोशिश करते है। वह ऊपर से बहुत भली मालूम पडती है, किन्तु वास्तविक कलहवर्धक दोष को पोषिका है। इस बात को आपके मंगलाचरण के अग्रिम असूया युक्त श्लोक साबित कर रहे हैं। उन श्लोको मे से एक दो श्लोक का हिन्दी भाषा मे ज्यों का त्यों अनुवाद कर देते है, जिससे सर्व साधारण को यह आपका कर्त्तव्य अच्छी तरह समझ मे आ जाय।

(५) हे नामधारी जैनी! अगर अपना स्वीकृत धर्म का अभिमान रखते हो, तो खुले मैदान मे सभा के बीच आकर अपना बल देखावो। हम सब वाद करने को तैयार है। किन्तु तुम्हारा घर से निकलना नही होगा। फिर भी जोर से कहते है, अगर मूर्ख न हो, तो चर्चा करो।

(६) हे घर मे बली! चर्चा करने मे असमर्थ हो, तो मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दो। अगर यह भी न हो सके, तो जैन–मार्ग को प्राप्त करो। नही तो मूर्खता से अपने मार्ग में ही प्रसिद्धि को प्राप्त करो।

इसी को कहते है "विनायक प्रकूर्वाणो रचयामास वानरम्" बनाने लगे गणेश बना लिया बन्दर। विचारशील पुरुषो से यह बात छिपी नही है कि, आपका यह प्रयास शान्ति भग का बीज है। अगर कोई मनुष्य किसी प्रकार की अच्छी शक्ति हासिल करता है, तो उससे प्रथम आत्म–सस्कार करता है, बाद क्रम से मित्र का, गृह का, आम का, समाज का, देश का सस्कार करता है। तदनुसार शान्ति–स्थापना की शक्ति यदि आपने हासिल की है, तो प्रथम अपना मूर्ति–पूजक–समाज का तपागच्छ और खरतर गच्छ में जो भेदभाव से एक दूसरे पर आक्षेप करते हुए कुमति कुठार, कुमति कुदाल नामक ग्रन्थ प्रगट किया है, तथा तीन स्तुति चतुर स्तुति का बखेडा आदि कहा तक लिखे, आपके एक ही तपगच्छ में सक्लेशरूप द्वन्द्व जैन पत्रादि मे बार बार निकल कर उक्त पत्र का पाठकवृन्द को सन्तपप्त किया है, उसको सर्वथा शान्त कर, बाद अन्य सम्प्रदाय के बखेडे मिटाने में हस्तक्षेप करते। ऐसा न करने अपनी साधुता दिखाने के लिए लिखना किं "आइन्दे के लिए इन तीनो फिरको के झगडो को मिटा देना चाहिए" यह तो एक ऐसा हुआ कि "मुझे निष्ठीवन्त मनपचार्य तटस्ये शौर्याभिसरणम्" मुख पर थूकनेवाले को कुछ न कहकर तटस्थ रहनेवाले पर बल दिखाना इस लोकोक्ति को सार्थक करना है। आपका बारम्बार वाद करने के अभिमान वाक्य से "विद्या विवादाय धन मदाय शक्ति परेषा परिपीडनाय। खलस्य" यह वाक्य स्मरण होता है। प्रश्नो को पढ कर तो और भी विस्मित होना पडा। क्योकि, सुई से सग्राम जीतने के समान इन प्रश्नों से सम्प्रदायगत भेद का अभाव होना है। केवल अपनी विद्वत्ता, वाग्मिता आदि पब्लिक को समझाना और साथ साथ दूसरो को तुच्छ बताना रूप अहकार को सिद्ध करना ही इस प्रयास का उद्देश्य है। किन्तु, आप चूकते हैं। इस नीरस निस्सार व्यवहार से सभ्य–समाज मे उलटे कलह कटक गिने जाइएगा। "नम्रत्वेनोन्नमन्त·" इत्यादि सज्जन के लक्षण से च्युत होना पडेगा। अतएव–"सन्त स्वय प्रकाशन्ते गुणा न परतो जनै·। आमोदो नहि कस्तूटर्या· शपथेन विभाव्यते॥" गुण रहने पर आपसे आप प्रकाश होता है, किन्तु दूसरे के कहने से नही। जैसे कस्तूरी

की सुगन्ध शपथ खाने से नही जानी जाती है। इस वाक्य मे श्रद्धा रखकर, उदार जैनधर्म का क्या ध्येय है इस बात को जान कर, विश्वव्यापी पवित्र प्रेम फैलावे, न कि घोडमुखी कलह। इस द्रोहमय व्यवहार से निर्मल साधुमार्ग मलिन होता है।''अपृष्टोऽपि प्रिय ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम्'' जिसका पराभव इष्ट न हो, बिना पूछे भी उसे हित करना चाहिये। इस वाक्य के अनुसार इतना कहना हम उचित समझे।

आपके प्रश्नों में से आठ प्रश्नो का उत्तर दिया है। क्योकि, आपने जिज्ञासु होकर तत्व जानने की इच्छा से प्रश्न नहीं किया है। किन्तु केवल अपना महत्व दिखाना, दूसरो की योग्यता देखनी इस आकाक्षा से ही प्रश्न किये गये है। अतएव इसी इच्छा को पूर्ण करने के लिए हमने बालभाषा को छोडकर सस्कृत भाषा मे श्लोकबद्ध आठ ही प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। इससे आप स्थालीपुलाक न्याय से अर्थात् जैसे एक चावल सिद्ध पाने से सब चावल सिद्ध समझा जाता है। ऐसे ही आठ प्रश्नो के उत्तर से आपको दूसरे की योग्यता का भान अच्छी तरह से हो जायगा, तो फिर पठन–पाठन आदि कार्य मे समर्पित अमूल्य समय को हम व्यर्थ क्यों खोवें।

और ''बत्तीस सूत्र से अन्य आप कुछ नही मानते है'' आपका लिखना एक देशी है। क्योकि, वास्तविक हमारा आगम प्रमाण विषयक मन्तव्य ऐसा है–आप्तोक्तवाक्यमागम·, रागद्वेषाऽज्ञानभयादिरहितत्वादर्हतो वाक्यमागमः, तदनुयायिपूर्वाऽविरुद्ध मिथ्यात्वाऽसयमकषायभ्रान्ति रहित स्याद्वःदोषेत वाक्यमन्येषा शिष्टनामप्यागमः।'' अर्थात् आप्त का कहा हुआ वाक्य आगम है। राग, द्वेष, अज्ञान, भय आदि से रहित होने से अर्हद्वाक्य आगम है। तदनुसार पूर्वा पर विरोधरहित मिथ्यात्व, असयम, कषाय, भ्रान्तिरहित, स्याद्वाद सहित अन्य शिष्ट का वाक्य भी आगम है। इससे स्पष्ट है कि, अर्हद्वाक्या का वर्द्धक और पोषक सर्व वाक्य प्रमाण रूप हैं।''

ऐसे तो सख्या के अनुरोध से आप लोग भी 45 सूत्रों को ही मानते है, तो क्या तदनुसार उससे अतिरिक्त कुछ भी नही मानते है ? किन्तु, मानते ही है। तद्वत् हमें भी बत्तीस सूत्रों के अविरोधी वाक्य प्रमाणभूत माननीय हैं। तदनुसार प्रश्नो के उत्तर दिए गए है। इन प्रश्नोत्तर से यदि आपकी आकाक्षा तृप्त नही तो हम पठन–पाठन के सबब से अभी महाराष्ट्र देश में विचरते है, यहा आकर आप चर्चा कर सकते हैं।

अलमति विस्तरेण

उत्तरदाता

पं. मुनि श्री १०८ जवाहिरलाल जी महाराज।

प्रकाशक
साधुसेवक घोड़नदी सघ
नै. पो. घोड़नदी
जि. पूना।

"सत्यार्थकथन"

शान्तस्वान्तनितान्तसाधुचरितान् साधून् विधूयाऽऽत्मनो–
दौरात्म्य प्रकटीकरोपि परुषाऽऽलापै किमेव् भुवि॥
रुक्षाऽऽक्षेप दुग्क्षरैस्तव मुधा वाचा चयै र्नोद्विजे
किन्तु न्यायपद कलककयसि चेत्खेदोऽति नः केवलम्॥ १ ॥
कस्मात् क्रोधरयोऽयमाविहभवद्धावत्क इद्दङ्मयि
चिन्तासन्ततिभश्चिरात्सुरुचिर निरणायिनश्चेतसा॥
स्वार्थान्धीकृतज्ञानद्दक् तव समोऽराग व्यधाद्रागिण
तते बालविजृम्भित न च सहे दोषोयमेको मम॥ २ ॥
ज्ञानेनाऽन्यधनै· स्वकीयसुषमासवर्द्धन चेत्सता
धर्मच्छद्मवता तत· सुरिचिरा अज्ञानकष्टस्पृश ॥
प्रज्ञावज्ञनता विदन्ति चरित केषा जनाना हित
युष्माक व्यसनानि नोनिरशनान्या होस्विदेव सदा॥ ३ ॥
वद्धाऽऽस्या ब्रवतेऽत्र जातु सुकृताऽऽलाप भवन्तो वय
धर्माऽऽसक्तधियः सदैव वसनैर्युक्ताऽऽननाः स्मोऽनिशम्॥
धर्माऽधर्मपरायणास्तव समा· स्यामैव ते सम्मति
सिद्धा नैव भविष्यतीव सहसा न्यायद्रुहामीहितम्॥ ४ ॥
वद्धाऽऽस्ये खलु के गुणा इति पूरा निर्णीयता तत्त्वतः
औदर्याऽग्निकदुष्णवायुनिवहैर्जायन्ति जीवा न वा॥
उच्छिष्ट न सरत्यर वृतमुख· शिष्टत्वमापद्यते
शिष्टैर्दिष्टमितीष्टमिष्टगुणिभिर्माल्य भवेन्नोकथम्॥ ५ ॥
सर्वोत्कर्षमति· समस्तजगता विद्यापति· सद्गति·
शान्तस्वान्तयतिः स्वधर्मनिधन श्रेयस्कर मन्यते॥
त्वन्तून्नेतुमनाः स्वकीयसरणावन्यान्सदैवेहसे
चेष्टेय तव हास्यता मुपन येन्नत्वा कय सव्यथम्॥ ६ ॥
एतानऽर्हदनर्हगर्हितपथान् त्वक्त्वात्मनीनान्पथो
भ्राम्यन्तान्तु सुशीलसबलबला स्थाने निदेशोऽस्ति मे॥
प्रज्ञावद्विमुख विरोधसुमुख शीलस्य शान्त्यै मख
कर्त्तव्य भवताऽवताति विनय नो जातु देय्य क्वचित् ॥ ७॥
व्यर्थश्चतदनल्पजल्पनमह कर्तु न चेशे तव
पृच्छाऽष्टोत्तरवच्छतेषु प्रथमा नष्टावुदातारिषम्॥
तैरेव प्रतिजानता प्रतिवचो वाचा निजाना यतो
मा भूद्भूरिभयावह तव पुर· शार्दूलविक्रीडितम्॥ ८॥
शकाऽऽतकिनि चेतसि प्रसरति प्रष्टु· सतस्ते न चेत्

स्वप्नज्ञातदिशा समेत्य समितौ शकाऽऽपनेया त्वया॥
दुर्दान्तं कुविकल्पकल्पनमिद जल्पन् भवानन्यथा
पृच्छामात्रपटुर्गृहस्थित इति हास्यामहे त्वां वयम्॥ ९॥

अथ मंगलश्लोक:

अश्रद्धा प्रतिमाऽऽमयाऽपनयनाऽभिज्ञोऽगदकारकः विघ्नौघप्रविणाश्नोष्णकमलासर्कषको मन्त्रवत्॥
निष्कामर्भववृन्दवन्दितपदस्त्रैलोक्य चिन्तामणिः द्रव्याऽर्च्याशिवमार्गद्दतुमदिशन्वीरप्रभुः पातु व· ॥१॥
येनाऽधारिधराऽमरत्वमभितो मत्या सुयत्या मुदा येनाऽकारि करालकाल कलितोत्तापप्रशान्तिः सदा॥
वाक्पीयूषविसर्जनेन जगतीप्राखण्डसखण्डनं ॥ २॥

श्री १००८ श्रीलालगखऽधिप.सजयतु प्राज्ञ.क्षितेर्मण्डनम्

मोक्षेह शमतासुधासुकलहक्ष्वेड स नोत्पादयेन् तीक्ष्णज्ञप्तिरहर्दिव हि सगुणा मेध्यक्रिया सेवते।
लाभस्तत्त्वविचारणासु समता तुभ्य समाधीयते लप्सीष्टोत्तरचन्द्ररश्मिनिचयैस्तोष मुने रुतेजसा ॥ ३॥

प्रश्न १

विकलाऽऽदेश सप्त भगी का क्या लक्षण है? स्याद्वाद का क्या स्वरूप है? उसे न माना जाय तो क्या हरकत होगी? सो न्याय से सिद्ध कर दिखावें।

उत्तर १

आदेशो विकलोऽग्र भेदबहुला दृष्टि विधायाऽथया भेदस्यैव प्रधानता परिवहन् धर्म गृहीत्वा क्रमात्॥
प्रत्येक विषय करोति नयतो भिन्नस्वरूप सदा
यस्मात्सोऽस्ति नयाऽऽकृति· क्रमवशाद्वस्त्वाऽऽकृतिग्राहकः ॥ १॥
जीवादौ कुहचित्स्वधर्मनिवहेष्वेकैकमादाय तन्–मुख्यत्त्वाज्ञनितेऽनुयोगनिबहे स्याचिह्नितैर्वाक्चयै·॥
पार्थक्येष्वथवा समानसमये सत्तानिषेधादिपु प्रत्यक्षादिमितेर्विदन्तु सुधिय· स्याद्वादरूपं यथा॥ २॥
स्यादास्ते निजपर्ययै·, परगुणैर्नास्ते, परस्वैर्गुणै–र्नास्त्यस्ति, क्रमतो घटो न वचनैर्वक्तव्यता गाहते॥
स्यादस्त्यैव चनैव वाक्पथगतो, नास्त्योव वाच्योऽपि न
स्यादस्त्येव हि नास्त्यवच्य इति च स्यादरूपन्त्विदम् ॥ ३॥
सोऽय शस्तसमस्तवस्तुनिकष· स्याद्वाद आदौ न चेत् एक नित्यमनित्यमन्यदिति सत्प्रेज्ञावदुत्प्रेक्षितम्॥
तथ्य स्यादसति क्षमापरिवृढे सोपलचेवाऽवनौ
निर्नीतिर्जनताऽर्हदर्हमतिभिर्वस्तुस्थितिः स्यात् कथम् ॥ ४॥

प्रश्न २

प्रत्यभिज्ञान को प्रमाण नही मानने वाले बौद्धो के समाने किस न्याय से प्रत्यभिज्ञान की प्रमाणता साबित की जाय?

उत्तर २

सद्यो जातशिशुर्विरौति हसति स्तन्य जिघृक्षुर्मुहु–र्मातुर्वक्षति तत्पयोधरयुगे सवेशयत्याननम्॥
पूर्वस्मिन् जनने विचेष्टितमदो न स्याद्यदि ततस्मृतौ शक्तो नैव भवेद्भवे भवति तन्मान्यैव पूर्वस्मृति· ॥ १॥
ससारे व्यवहारकारणमिय जागर्ति पूर्वस्मृति· स्मृत्यैवाऽव विराजते नृपकृता मुद्राऽपि मान्या सदा॥
सैवाऽय परिचीयते विरहित कालाद्वहोरागत· सत्ता नैव भवेत्स्मृतेरिहभवेद्विद्याविहीन जगत्॥ २॥

प्रश्न ३

ठाणाग जी में कारक का विचार चला है, तो कारक क्या चीज है ? कारक का सामान्य लक्षण क्या है ? और उस लक्षणो को सब कारक मे कैसे घटाया जाय ? कर्त्ता आदि कारको का विशेष लक्षण क्या है ? 'हे देवदत्त' यह कौन सा कारक है ? हेतु और कारण मे कितना फर्क है ?

उत्तर ३

येषा योग इह क्रियासु भवति श्रुत्याऽनुमित्याऽथवा
साक्षाद्वाऽस्तु परस्पराऽपि भवतु कुर्यु क्रिया यानि च॥
तानि व्याकरणज्ञ आह नियमात् पट् कारकाणि क्रमात्
तेषा रूपमधो विधानविधिना बद्धादरो बुध्यताम् ॥ १ ॥
कर्त्ता कर्म करोति तत्परिणतौ मत्या विरक्ताय तत् दत्ते चाभिमत च तेन सहसा तस्मात्सरत्यालसः॥
तस्याऽऽस्तेऽऽभ्युदयः सखेऽव निपुण जानीहि यल्लक्षण
पूर्वोक्त घटते च कारकचये योगात् क्रियाकारणात् ॥ २ ॥
व्यापाराऽश्रय एव कर्तृपदग स्यात्स स्वतन्त्र कृतौ वाच्य कर्मफलाऽऽश्रित च करण सिद्धक्रियाकारणम्॥
द्रव्यादेर्जनकोऽव हेतुरुदितो दानक्रियाकर्मणा
लिप्त यत् क्रिययाऽऽहित च तदपि स्यात्सप्रदानाऽभिधम् ॥ ३ ॥
विश्लेषेऽवधिरस्थिर स्थिरसमो गच्छत्यपादानता
सम्बन्धोऽस्त्य भिधेयतासुपगत पष्ठ्या अनेकाऽऽकृति ॥
आधारोऽधिपुर. परच करण कर्त्रा क्रियाया भवेत् हे देवेति कृतिश्रित तदधुना सम्बोधन बोधत ॥ ४ ॥
द्रव्ये वापि गुणे क्रियासु यदि वा बोभूयते जन्यता तद्दृष्ट्या जनकत्ववानिह सता हेतु समान्नायने॥
जन्यत्वात् कृतिनिष्ठतो जनकतावद्व्यापृतौ निश्चित
मित्थ भेदयुत चकाऽस्ति करण हेतो सकाशादलम् ॥ ५ ॥

प्रश्न ४

बौद्ध आदि पाच दर्शन किस किस नय से प्रकट हुए है ? जिस जिस नय से जो दर्शन प्रकट भया है, उस उस नय के साथ उस दर्शन के सिद्धान्त का मिलान भी जरा सा कर दिखलावे।

उत्तर ४

जैनाऽन्यानि तु दर्शनानि प्रकटीभूतानि तत्कारण चत्वारो व्यवहारसग्रह ऋजूत्सूत्रा नया नैगम.॥
एकान्त स्थितितश्चतानि विमतग्रस्तानि पूर्वैर्नयै–रायुक्तानि चतुर्भिरेव हि यतस्ते चैव दुष्टाऽऽश्रिताः ॥ १ ॥
साख्याऽऽम्नाय निदर्शनेस्ति पुरुषोऽकर्तेति युक्तेर्हि तत् एकान्तग्रहणे च सग्रहनये सविष्टमस्तीक्षणात्॥
राद्धान्तोयमुदेति जैमिनिमुनेर्व्याप्नोति जीव. सदा तस्मात्सोऽपि समेति सग्रहनय तत्वान्तरैर्नैगमम् ॥ २ ॥
विश्व कार्यतया सकर्तुकमिद नैयायिकानामय व्याहारो व्यवहारमेव विशति प्रायो विशेषान्नये॥
सर्वस्मिन् घटते यतो नयविदा तत्व सत षड्विध बौद्धोपक्रमेआविशत्यलमत सूक्ष्मर्जुसत्रे नये ॥ ३ ॥
यस्मात्तस्य समीप्सितोऽस्ति पलिक सर्व पदार्थस्तत पञ्चस्कन्धप्रतीक्षया व्यवहृतौ सोस्ति प्रविष्टो नये॥
प्रत्यक्ष मनुते ततो व्यवहृतौ शुद्धेतराया नये चार्वाक प्रविशत्यल विमतितो जानाति नान्यद्यत ॥ ४ ॥
सर्वेऽमी निजदर्शनोर्जनविधौ वृत्या प्रवृत्तास्तत सावद्या व्यवहारभेदनयत. साधप्रवृत्यात्मके॥
इत्येव बहुभेदभूषितनये वक्तव्यतोऽन्त कृत. चित्रोऽय नयवाद इत्यतिशय. सूत्रान्तराद् ज्ञायताम् ॥ ५ ॥

प्रश्न ५

केवल ज्ञान और केवल दर्शन ये दोनो उपयोग यदि युगपत (एकसाथ) माना जाय, तो क्या दोष आवेगा ?

उत्तर ५

दृष्टि· केवलसज्ञिका भवतु वा ज्ञप्तिस्तस्था केवला चैकस्मिन् समयेऽनयोर्व्यवहृतौ ज्ञप्त्यर्धभेदः कृत·॥
दोषोऽय भवितैनयोश्चबहुधा भेदोऽर्थतो भासते वस्तु स्थूल विशेषरूपगमके स्त· केवले हक्चितौ ॥१॥
तस्वद्भिन्नकृतोस्तयोर्हि भवति भिन्ना प्रवृत्ति· सदा लब्धिर्यद्यपि जायते च युगपत् तथ्य तयोर्दृक्चितो·॥
भिन्नेऽनेहसि किन्तु भेदघटितैवास्ते प्रवृत्तिस्तयोः मत्तज्ञप्तिचतुश्वचिद्वति मुनौ वृत्तिर्यथा भेदत· ॥२॥
यद्यप्यन्यमुनि· सुयुक्तिनिवहैः प्राबोधयत्सर्वथा वर्तेते युगपत्सदैव जगतीमे केवले हक्चितौ॥
किन्त्वन्यागणभद्रसूरिरपरे मान्यास्तिरश्चक्रिरे तद्युक्ति शतधा विभिद्य भवता सम्प्रेक्षयतामन्यत· ॥३॥
साध्येऽस्मिन् विमताऽन्वेतेऽपि बहुश· प्रज्ञावता भासते भिन्ना वृत्तिरितिप्रतीतिरतुला या जैनभद्रो गणि॥
प्रावोचन्निगमप्रमाणसहिता मान्या सुधीभिः सदा यस्मादागमपद्धतावपि तयोर्भिन्नां प्रवित्ति व्यधात्॥४॥

प्रश्न ६

लेश्या योग का परिणाम है या कर्म का निष्पन्द है? सूत्रानुसार इस बात को सिद्ध करें।

उत्तर ६

लेश्या द्रव्यतया विभिन्नकथिता भावेन पृष्ठा यथा– सामान्येन तयोत्तर च भवता सामान्यरूप शृणु॥
सा कर्मोदयभावजन्यविकृतिर्लेश्याऽनुयोगानने उक्तात· सुधियाऽपि मान्यमभितो निष्यन्दन कर्मण· ॥१॥

प्रश्न ७

अवधिज्ञान व अवधिदर्शन के पहले और पीछे जैसे अवधि दर्शन और केवल दर्शन माना और ज्ञान मात्र जब दर्शन के साथ सम्बन्ध रखता है, तो मन·पर्याय ज्ञान के पहले मन· पर्याय दर्शन को क्यो न मजूर रक्खा ?

उत्तर ७

स्वान्तःपर्ययसचितोरन हि पुरा हृत्पर्यय दर्शन स्वान्त·पर्ययधीरिद्दाऽस्ति नयतः सामान्यसग्राहिणी॥
सामान्य सविशेषयैव हि धिया ज्ञानेऽत्र सभासते एतस्याश्च मतेः क्षयोपशमताऽपीहक्कृता वर्त्तते ॥१॥
याऽन्यच्चित्तगवस्तु पश्यति न तु स्वान्तर्निमित्ताहते तस्माद्भिन्नामिद क्षयोपशमतो ज्ञान हृद· पर्ययम्॥
नैवोचुर्युनया विमर्शपटव· सिद्धाऽन्वित दर्शन विस्तारोऽपि बुधेलिमोऽवभवता सन्नन्दिसूत्रात्त्वया ॥२॥

प्रश्न ८

क्षायिक समकित वर्तमान काल मे हो सकता है या नही ?

उत्तर ८

एतस्मिन्समये निषेधरहित स्वात्क्षायिकः साम्यत· जम्बुस्वामिनि मोक्षतामुपगते पङ्क्यन्विता वृत्तय·॥
नाश जम्पुरिति प्रकाशधिषण· सत्कल्पसूत्रेऽगदत् तन्नाऽपक्षिणतत्परोऽप्यहमिम नेक्षे निषेधाऽन्वितम् ॥१॥

शुभमधिकम् ॥

परिशिष्ट

युगद्रष्टा युगपुरुष आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के द्वारा तीर्थकर देवों के सिद्धान्तों का वास्तविक रूप से भव्य प्रतिपादन हुआ। उस प्रतिपादन में कुछ भ्रांत धारणाएं एव रूढ़िगत जैन धर्म के नाम से चलने वाली परम्पराओं का विखण्डन एवं सत्य का मण्डन हुआ है। इस प्रतिपादन से सम्बन्धित व्यक्तियों में स्वाभाविक तौर से ईर्ष्या भाव एव असहिष्णुता की भावना प्रबल हो चली तथा जन मानस में आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के प्रभाव को धूमिल करने हेतु तेरापंथ समाज की ओर से कई प्रकाशन हुए और हो रहे हैं एतदर्थ साधुमार्गी जैन सघ ने संक्षिप्त में प्रस्ताव भी पारित किया वह कुछ संक्षिप्त स्पष्टीकरण इस परिशिष्ट में दिया जाना अति आवश्यक समझ कर दिया जा रहा है जिसमें अप्रमाणिकता और असत्यता सप्रमाण प्रस्तुत की गयी है। इससे तेरापंथ समाज के साहित्य में जो आचार्य श्री रूगनाथ जी म. सा. से लेकर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. आदि पर जितने भी असत्य आरोप एवं मन कल्पित बातें लिखी है वे सभी अप्रामाणिक सिद्ध होती है क्योकि वे असत्य और मन कल्पित हैं। इन सभी असत्य आरोपों को एवं मन कल्पित बातों को यहाँ उद्धृत नहीं करते हुए नमूने के तौर पर कुछेक मन कल्पित बातों की अप्रामाणिकता बतलाई जा रही है।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का उद्देश्य निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षण संवर्धन हेतु उसके अनुपोषक महापुरुषों के ज्ञान-दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि में सहयोग का रहा है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के परिप्रेक्ष्य में सघ अछूतोद्धार एव धर्म शिक्षण जैसी अनेक जन कल्याणकारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता रहा है।

संघ की नीति सदा सर्जनात्मक एवं शान्त क्रांति की रही है। निन्दात्मक एवं आक्रान्ता नीति का संघ ने सदा बहिष्कार ही किया है। किन्तु संघ यह भी नही चाहता है कि आगम विरुद्ध धारणाओं, निर्मूल भ्रान्तियों एवं असत्य आक्षेपों को भी सहन किया जाता रहे। ऐसे प्रसंगों का यथोचित प्रामाणिक स्पष्टीकरण करके भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल करना संघ अपना कर्त्तव्य समझता है।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ से अनुबन्धित चतुर्विध संघ के बहुमुखी विकास से उत्पन्न ईर्ष्या से एवं निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु उठाए गये अहिंसक असहयोग से विक्षुब्ध हो इस सघ के चरित्र-निष्ठ आदर्श पुरुषों पर कतिपय कट्टर साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों ने हीन भावना के वशीभूत हो समाचार पत्रों एवं साहित्य आदि के माध्यम से अप्रामाणिक मिथ्या आरोप लगाये गये। छल-छद्म नीति का प्रयोग कर वस्तु स्वरूप को तोड़-मरोड़ कर विपरीत ढंग से प्रस्तुत किया और जनमानस को भी

गुमराह किया। यहाँ तक कि अपने मन की दूषित असूया वृत्ति को सतुष्ट करने के लिए आगम के सिद्धान्त विरुद्ध एकान्तवादी मनोकल्पित अर्थ किये। अपनी साम्प्रदायिक धारणा को आगम सम्मत बताने हेतु आगमों का प्रकाशन किया और इस प्रकार आगम के साथ भी उत्सूत्र प्ररूपण जैसा महाअपराध किया है।

संघ ने अपनी सौम्य नीति के अनुसार तटस्थतापूर्वक सहन करने का प्रयास किया किन्तु इसका भी विक्षुब्ध मनोवृत्तियो ने दुरुपयोग किया और अपने दु.साहस को बढ़ावा देते हुए पूर्वाचार्यो पर भी मिथ्या आक्षेप करने लगे।

आचार्य श्री रूगनाथजी म. सा. के द्वारा निष्कासित श्रीभीखणजी स्वामी आदि कतिपय सत एवं श्रावकों ने अपनी खिन्नता को रूपान्तरण देकर एक पथ चलाया और उसकी पुष्टि हेतु शास्त्रों के स्थलों को तोड़-मरोड़ कर मनमाने तरीके से मानवता विरोधी कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। बाद में जयाचार्य जी ने तो उन सिद्धान्तों को ग्रंथ के रूप में ग्रंथित भी कर दिया और उस भ्रमविध्वंसन ग्रंथ के पेज ७६ में यहाँ तक कह दिया गया है कि—

'साधु थी अनेरो कुपात्र छेः अनेरा ने दीधा अनेरी प्रकृति नो बन्ध कहयो ते अनेरी प्रकृति पाप नी छे।'

एवं पृष्ठ ८२ की टिप्पणी में कुपात्र दान का फल बताते हुए लिखा है कि—

'कुपात्रदान, मांसादि सेवन, व्यसन-कुशीलादिक ये तीनों ही एक ही मार्ग के पथिक है। जैसे चोर, जार, ठग ये तीनों समान व्यवसायी हैं, वैसे ही जयाचार्य सिद्धान्तानुसार कुपात्रदान भी मांस आदि सेवन एवं व्यसन-कुशीलादिक की ही श्रेणी मे गिनने योग्य है।'

तात्पर्य यह है कि उनके उक्त कथनानुसार साधु के अलावा अन्य माता-पिता समाज एवं राष्ट्र के नेता यहाँ तक कि महात्मा गांधी आदि का भी कुपात्र मे समावेश हो जाता है क्योकि वे पच महाव्रतधारी साधु नही कहलाते और उनको अन्न जल आदि किसी भी प्रकार की सहायता देना मांस सेवन वैश्यागमन आदि के समान पाप करना है। जब मानव को किये जाने वाले उक्त सहयोग के लिए भी इस प्रकार पाप होना बतलाया जाता है तो पशु-पक्षी आदि के लिए तो कहना ही क्या?

ऐसे सिद्धान्त जब जैन धर्म के नाम से प्रसारित होने लगे तब स्वर्गीय आचार्य श्री श्रीलाल जी म. सा. एवं युगद्रष्टा स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. आदि जो चतुर्विध संघ के संचालक महापुरुष थे, ने भी जब इस प्रकार के सिद्धान्त जैन धर्म के नाम से जनता में प्रसारित होते हुए देखे तो उनसे कैसे रहा जा सकता था? क्योकि इस प्रकार के मानवता विरोधी सिद्धान्त जैन धर्म के नाम से प्रसारित हो इससे जैन धर्म का अवमूल्यन एवं तीर्थकर आदि पवित्र पुरुषों के प्रति जनमानस में कलुषित भाव पैदा होना स्वाभाविक ही था।

इन भ्रान्त सिद्धान्तों को आगमीय धरातल पर भ्रांत सिद्ध करते हुए सद्धर्ममण्डन आदि ग्रन्थों का प्रसग बना, जिससे प्रबुद्ध वर्ग सावधान होने लगा तो तेरापथ समाज का वर्ग येन-केन प्रकारेण उक्त आचार्य देवों का प्रभाव कम करने का प्रयत्न करने लगा एवं प्रपंचमूलक बातें भी रखने लगा। लेकिन आचार्य देवों ने एवं उनके अनुयायियों ने यथास्थान यथायोग्य स्पष्टीकरण आदि के द्वारा वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन किया। वर्तमान में आचार्य श्री तुलसी तेरापंथ समाज के एक मात्र अनुशास्ता कहलाते हैं और आचार्य श्री तुलसी जैन समाज की एकता सम्बन्धी बातें रखते हुए अपने उन पूर्वाचार्यो के सिद्धान्तों को जनता की दृष्टि से बचाने के लिए भाषा चातुर्य एवं लेखन कला के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत करने लगे। अनेक आयामों के साथ ऐसा कुछ वातावरण बनाया जाने लगा जिससे सहसा भाषित होने लगा कि सम्भव है आचार्य श्री तुलसी उन सिद्धान्तों के प्रति सक्रिय न रह रहे हों परन्तु आम जनता की रुचि के अनुसार साहित्य के साथ-साथ पूर्व की मानवता विरोधी मान्यता को शब्दों के आवरण में कलापूर्ण तरीके से पुरानी शराब को नई बोतल में भरने की तरह जन-मानस के सामने प्रसारित किया जाने लगा।

इतिहास आदि के नाम से कालुगणी आदि के जीवन चरित्र के प्रसग से एवं दृष्टात आदि पुस्तकों के माध्यम से आचार्य श्री रघुनाथ जी म. सा. से लेकर अन्य स्थानकवासी समाज के चारित्रनिष्ठ महाव्रतधारी महात्माओं के प्रति घृणास्पद अशुद्ध वायुमण्डल भी लुभावने प्रचार की आड़ में चल रहा है। विशेष कर कालुगणी के जीवन चरित्र में युगद्रष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. एवं शान्त क्रांति के अग्रदूत आचार्यप्रवर श्री गणेशीलालजी म. सा. पर जो मिथ्या आक्षेपात्मक वर्णन देकर अप्रामाणिक अनर्गल प्रलाप किया गया है, वह नितान्त असत्य तो है ही साथ ही तेरापंथ संघ एवं सघनायक की छद्मपूर्ण नीति एवं अशोभनीय मनोवृत्ति को भी स्पष्ट करता है।

इस नीति का जब परिज्ञान होता है तो कोई भी सिद्धान्तप्रिय पुरुष इसे कैसे पसद कर सकता है? इधर तो जैन एकता का नारा और उधर छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तको के माध्यम से आज भी स्थानकवासी समाज को भ्रमित करने की असफल चेष्टा की जा रही है और स्थानकवासी महात्माओं को मनमाने तरीके से हीन बताने का असफल प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार के सिद्धान्त विरोधी साहित्य, चाहे वह इतिहास के रूप में हो अथवा पुस्तकाकार एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हो, जो कुछ किया जा रहा है वह कतई शोभास्पद नहीं है। आचार्य श्री तुलसी जी को चाहिए कि इस प्रकार की दुधारी नीति को अपनी छत्र-छाया में न पनपने दें यही श्रेयस्कर है।

तेरापंथ समाज के साहित्य में स्थानकवासी साधुमार्गी महापुरुषो पर जो असत्य एवं मन कल्पित अनर्गल लेखन हुआ है उससे साधुमार्गी सघ सदस्यो को

कितना आघात लगा उसे स्पष्ट करने के लिए उनके द्वारा पारित प्रस्ताव की शब्दशः प्रतिलिपि १० नवम्बर १९८१ के श्रमणोपासक अंक से दी जा रही है—

प्रस्ताव ११ :—आज की यह आम सभा बालोतरा टाइम्स के तेरापंथ विशेषांक में 'तेरापंथ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणी' शीर्षक से श्री मोतीलालजी सालेचा द्वारा लिखित लेख में 'विरोध व हत्या का षड्यन्त्र उपशीर्षक में स्थानकवासी साधु गणेशराज जी व जवाहरलालजी इनको धर्मचर्चा में परास्त नहीं करने के कारण विघ्न खड़ा करने पर तुले हुए थे। एक बार मगनलालजी स्वामी को स्थंडिल भूमि से लौटते कोई कोड़ा मारकर चला गया एवं इस घटना के बाद कालूगणी की हत्या के षड्यन्त्र का भंडाफोड़ हुआ। बीकानेर के टीबों में शौचादि से लौटते समय एक व्यक्ति कालूगणी के सामने पिस्तौल लेकर खड़ा हो गया आदि।' जिस तरह की भ्रांतिपूर्ण एवं अशिष्ट भाषा में मनगढ़न्त जो उद्धरण दिया है, इससे समस्त साधुमार्गी जैन संघ के अनुयायियों के हृदय पर गहरा आघात ही नहीं लगा वरन् उत्तेजनापूर्ण वातावरण भी उत्पन्न हुआ है। अतः समस्त संघ इसके प्रति कड़ा विरोध प्रकट करता है।

अनुशासन व एकता की बात करने वालों से यह अपेक्षा है कि वे अपनी कथनी व करनी में एकरूपता दरसायें।

तेरापंथ इतिहास में सद्धर्ममंडन के प्रकरण से जो कहा है उसका कुछ स्पष्टीकरण यहाँ किया जा रहा है—

तेरहपंथ समाज के मान्य ग्रन्थ भ्रम-विध्वंसनम् में अप्रामाणिक वंग चूलिया ग्रन्थ का उद्धरण देते हुए अपने मिथ्या अहं का पोषण किया जो कि कल्पसूत्र आदि से विपरीत पड़ता है।

कल्पसूत्र से विपरीत भावों को व्यक्त करने वाले इस प्रसंग को भ्रम विध्वंसन में देखा तो सद्धर्ममंडन की प्रथम आवृत्ति की भूमिका में भूमिकाकार ने उसी ग्रन्थ का उद्धरण देकर उनके मिथ्या अहं का निरसन किया है।

वंग चूलिका की प्रथम गाथा जिसमें कि वीर निर्वाण के २९१ वर्ष पश्चात् सम्प्रति राजा के होने का उल्लेख है, यह उल्लेख भगवान् के निर्वाण के पश्चात् कब-कब, क्या-क्या घटना घटी, इसका द्योतन करने के लिए किया गया है। वीर निर्वाण के पश्चात् २९१ वर्ष में सम्प्रति राजा हुआ और उसने क्या-क्या कार्य किया और उसी वीर निर्वाण के १६६६ वर्ष से आगे ३३३ वर्ष तक दुष्ट व्यक्ति धर्म की अवमानना करते रहेंगे। १६६६ वर्ष के बाद संघ अर्थात् भगवान महावीर की जन्म की राशि पर ३३३ वर्ष का धूमकेतु-ग्रह लगेगा। वह जब उस राशि पर से हट जायेगा तब संघ की पुनः उदय-उदय पूजा होगी। इस आधार से भगवान निर्वाण के २०३२ वर्ष के लगभग धूमकेतु ग्रह हट जाने से संघ की उदय-उदय पूजा का प्रारम्भ होगा। यह बात कल्पसूत्र के मूल पाठ से प्रमाणित होती है।

'जप्पभिइं च णं सुद्धाए भास रासी महागहे दो वास सहस्सठिइ समणस्स भगवओ महा-वीरस्स जन्म नक्खतं संकंते तप्पभिइं च ण समणाण निग्गंयाण य नो उदिए उदिए पूजा सक्कोर पवत्तई।' [कल्पसूत्र]

इस कल्पसूत्र के मूल पाठ को पुष्ट करने वाली बात सद्धर्ममंडन की भूमिका में स्पष्ट की गई है वह ठोस एवं प्रामाणिक है।

तेरापंथ इतिहास में जो लिखा गया है उसमें वंग चूलिका की प्रथम गाथा के अन्दर जो प्रथम घटना वीर निर्वाण के बाद घटी वह वीर निर्वाण के बाद २६१ वर्ष में घटी। इस २६१ वर्ष को १६६६ में और जोड़ लिया गया है, वह जोड़ना उपयुक्त नही है, क्योकि १६६६ वर्ष के अन्तर्गत ही २६१ वर्ष समाविष्ट है। यदि इनको १६६६ वर्ष से अलग गिनते हैं तो उदय-उदय पूजा नहीं होने का जो उल्लेख कल्पसूत्र में है, उससे मेल नहीं होता। क्योंकि २६१+१६६६+३३३ वर्ष जोड़ने से २३२३ वीर निर्वाण हो जाता है।

वीर निर्वाण के २००० वर्ष बाद दुष्ट ग्रह हटा और इसके बाद अब तक लगभग ५०८ वर्ष बीते यदि इन ५०८ वर्षो को २३२३ में जोड़ेगे तो २८३१ होता है जबकि आज तक वीर निर्वाण को २५०८ वर्ष ही हुए हैं। अतः यह प्रत्यक्ष विसगति एव अप्रामाणिकता सामने आती है।

तेरापंथ इतिहास में दूसरी अप्रामाणिकता यह प्रदर्शित हुई है कि वीर निर्वाण की २३२३ की गिनती लगाकर उसमें से ४७० वर्ष विक्रम संवत् का काटकर १८५३ वर्ष रखकर यह ध्वनित किया है कि १८५३ में दुष्ट ग्रह की समाप्ति हुई। लेकिन यह १८५३ तो विक्रम संवत् से होता है। जबकि दुष्टग्रह की अवस्था वीर निर्वाण से २००० वर्ष तक चलने का कल्पसूत्र में स्पष्ट कहा है। अतः उससे यह संगत नही होता। विक्रम संवत् की दृष्टि से भी २००० वर्ष पूरे नहीं होते हैं। इस प्रकार तेरापंथ इतिहास में मनमाने तरीके से तोड़-मरोड़ कर अप्रामाणिकता के साथ कई विसंगतियाँ पैदा कर दी गई हैं और वह भी अप्रामाणिक ग्रन्थ के आधार पर।

सद्धर्ममंडन की भूमिकाकार ने कल्पसूत्र के अविरुद्ध और वीर निर्वाण की विसगतियों से रहित वंग चूलिका की प्रथम गाथा की संख्या सहित वीर निर्वाण से १६६६ वर्ष में धूमकेतु ग्रह का ग्रहण किया। प्रथम गाथा में २६१ वर्ष की घटना का उल्लेख कर यहाँ जोड़ने का प्रसंग नही था इसलिए उसका उल्लेख नही किया है। लेकिन प्रथम गाथा की संख्या को १६६६ के अन्तर्गत ग्रहण किया है। वीर निर्वाण से १६६६ वर्ष तक और भी कई घटनाएं घटीं, उन सभी का उल्लेख करने का यहाँ प्रसग नही है। उसी तरह से वंग-चूलिका की प्रथम गाथा की घटना का उल्लेख इस १६६६ मे सयुक्त कर लिया गया है, जो कि उपयुक्त एवं प्रामाणिक है।

सद्धर्ममंडन की भूमिका पृष्ठ ञ में कल्पसूत्र का जो पाठ ऊपर दिया है उसे ध्यान से देखें। इस मूल पाठ में स्पष्ट कहा है भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर २००० वर्ष की स्थिति वाला भस्मराशि नामक महाग्रह जबसे लगेगा तब से श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों का पूजा सत्कार उदय-उदय नही होगा।

भगवान महावीर का निर्वाण हो जाने के बाद जब २००० वर्ष पूर्ण हुए उस समय विक्रम संवत् १५३० चल रहा था। जब यह भस्म ग्रह सम्पूर्ण हो गया तब सवत् १५३१ में लोंकाशाह ने धर्म क्रांति के बीज बोये। जिसके लिए तेरह पंथ इतिहास के पृष्ठ २५ के दूसरे पेराग्राफ में लिखते हैं—

'भष्म ग्रह जब वृद्ध हो चुका था उस समय लोकाशाह ने धर्म क्राति के बीज बोये थे। भस्म ग्रह के उतरते ही वे फलीभूत हुए और विक्रम संवत् १५३१ में लोकाशाह प्रतिबोधित ४५ व्यक्ति ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की।'

तेरहपथ इतिहास में दिये गये इस उद्धरण से भी स्पष्ट हो जाता है कि कल्पसूत्र के मूल पाठ में जो कहा गया है वह एवं सद्धर्ममण्डन की प्रथम आवृत्ति की भूमिका में दिया वह प्रामाणिक सिद्ध होता है। अतः वंग चूलिका नामक ग्रन्थ का उद्धरण देकर विक्रम संवत् १८५३ बता कर जनता को भ्रमित करना मिथ्या सिद्ध होता है।

तेरह पंथ इतिहास के पृष्ठ ४२७-४२८ में चूरू चर्चा का उद्धरण देकर स्व. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. के विषय में जो अनर्गल बातें लिखी है वे भी उपरोक्त बातों की तरह अप्रामाणिक है वहॉ की घटना की सिलसिलेवार व्यवस्थित जानकारी इसी जीवन चरित्र के चूरू चर्चा नामक परिशिष्ट से देखी जा सकती है।

इसी प्रकार तेरापंथ इतिहास आदि ग्रंथों में अनेक अप्रामाणिक प्रसग दिये गये है इससे वे ग्रंथ प्रामाणिकता की कोटि में नही आ सकते है।

आचार्य श्री तुलसी भी अपने पूर्वाचार्यो की अप्रामाणिक परम्परा को निभा रहे हैं उसका भी एक नमूना 'नमस्कार महामंत्र' विषयक यहॉ उद्धृत किया जा रहा है—

'आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का प्रश्नोत्तर' शीर्षक विचार जिनवाणी मई १६७८ के पृष्ठ पर 'क्या नवकार में 'लोए' शब्द हटा दिया, सही है ? प्रकाशित हुआ। इसके उत्तर में जिनवाणी १६७८ जून के पृष्ठ ३५ पर आचार्य तुलसी का स्पष्टीकरण छपा है—उसमें उनकी निम्न वाक्यावली—

'आचार्य श्री तुलसी ने नवकार मंत्र से लोए शब्द को हटा दिया है या हटाने की बात करते हैं—यह सर्वथा मिथ्या एवं भ्रमपूर्ण है। आचार्य श्री तुलसी ने नमस्कार महामंत्र से न तो लोए शब्द को हटाया है और न हटाने की इच्छा रखते है........' से स्पष्ट है कि उन्होने न तो लोए शब्द हटाया है और न हटाने की इच्छा रखते हैं आदि जो स्पष्टीकरण दिया वह कहॉ तक सत्य है ?'

इसकी अप्रामाणिकता विश्व भारती लाडनूं से प्रकाशित अंग सुत्ताणिके विवाह पण्णती नामक अंग से देखी जा सकती है। इस ग्रन्थ के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में जो नमस्कार मंत्र दिया है, उसमें लोए शब्द नही है। (अन्य भगवती सूत्र जो आगमोदय समिति सूरत से, आचार्य श्रीअमोलक ऋषि जी म. सा. के द्वारा हैदराबाद से, एवं शास्त्रोद्धार समिति राजकोट से तथा सुत्तागमें लुधियाना से प्रकाशित हुए है अन्य भी कई स्थलों से प्रकाशित है उन सभी के मूल पाठ में 'लोए' शब्द लिखा हुआ है।)

यदि उपरोक्त स्पष्टीकरण में सत्यता होती तो नमस्कार मंत्र के साथ ही लोए शब्द रहता पर किसी प्रति का बहाना लेकर लोए शब्द को मूल से हटाना और फिर कहना कि मै हटाना नही चाहता यह कितना असत्य है? हॉ, 'लोए' शब्द को मूल से नहीं हटाकर टिप्पणी में स्पष्टीकरण होता तब तो सत्यता प्रकट होती। पर ऐसा न करके मगलाचरण के रूप में आये हुए नमस्कार मंत्र के मूल पाठ में से लोए शब्द को हटाकर स्पष्टीकरण में यह कहना कि—

'आचार्य श्री तुलसी ने न तो लोए शब्द को हटाया और न हटाने की इच्छा रखते है।' यह कथन कैसे प्रामाणिक कहा जा सकता है? ऐसे प्रत्यक्ष राजनैतिक ढग से अप्रामाणिकता बर्तने वाले अगुवा एव उनके अनुयायी 'तेरा पंथ-इतिहास' के माध्यम से अप्रामाणिक तरीके से किसी को भी अप्रामाणिक करने में या लिखने में कैसे संकोच कर सकते है।'

अस्तु